CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता । अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा ॥१३९॥
मनसा देवितुं शक्ता चाऽऽत्मना सिद्धयोगिनी । तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भवे ॥१४०॥
यां भक्त्या मनसा देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम् । तेन त्वां मनसादेवीं प्रवदन्ति पुराविदः ॥१४१॥
सत्त्वरूपा च देवी त्वं शश्वत्सत्त्वनिषेवया । यो हि यद्भावयेन्नित्यं शतं प्राप्नोति तत्समम् ॥१४२॥
इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीं च ताम् । निर्जगाम स्वभवनं भूषावासपरिच्छदाम् ॥१४३॥
पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे । भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्नात्या वन्द्या च सर्वतः ॥१४४॥
गोलोकात्सुरभी ब्रह्मंस्तत्राऽगत्य सुपूजिताम् । तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम् ॥१४५॥
ज्ञानस्य कथयामास स्वरूपं सर्वदुर्लभम् । तदा देवैः पूजिता सा स्वर्गलोकं पुनर्ययौ ॥१४६॥
इदं स्तोत्रं पुण्यबीजं तां संपूज्य च यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥१४७॥
विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रं यदा पठेत् । पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः
सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः ॥१४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० तदुत्पत्तिपूजास्तोत्रादिकथनं
नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

तुम्हारा 'मनसा' नाम है ॥१३९॥ तुम मन से पूजा कराने में समर्थ एवं सिद्धयोगिनी हो इसीलिए तुम संसार में मनसा देवी होकर सब की पूजिता और वन्दिता हुई हो ॥१४०॥ जिसे भक्तिपूर्वक देवगण मन से नित्य और बार-बार पूजते हैं, इसी कारण प्राचीन वेत्ताओं ने तुम्हें मनसा देवी कहा है ॥१४१॥ निरन्तर सत्त्व सेवन करने के नाते तुम सत्त्वस्वरूपा देवी हो। इस भाँति जो प्रेमपूर्वक तुम्हें जो कुछ अर्पित करता है, वह सौ गुना होकर उसे पुनः प्राप्त होता है। ॥१४२॥ इन्द्र ने अपनी भगिनी मनसा देवी की स्तुति की और वस्त्राभूषणों से विभूषित कर के उसे अपने भवन ले गये ॥१४३॥ अनन्तर वह देवी पुनः अपने पुत्र समेत पिता के घर आकर वहाँ चिरकाल तक रही। वह निरन्तर अपने भ्राताओं (देवों) द्वारा पूजित है, दूसरी (देवी) सबकी वन्द्या नहीं है। हे ब्रह्मन्! अनन्तर गोलोक से आकर सुरभी ने उस सुपूजित मनसा देवी को क्षीर से स्नान कराया और सादर उसका पूजन किया तथा उसे ज्ञान का सर्वदुर्लभ स्वरूप बताया। उस समय देवों द्वारा पूजित होने पर वह देवी पुनः स्वर्ग-लोक चली गयी ॥१४४-१४६॥ उस (देवी) की पूजा कर के जो इस पुण्य रूप स्तोत्र का पाठ करता है, उसे नाग-भय नहीं होता है तथा उसके वंश में उत्पन्न होने वाले किसी को भी वह भय नहीं होता है ॥१४७॥ उसके स्तोत्र सिद्ध कर के पाठ करने पर विष भी अमृत हो जाता है। पाँच लाख जप करने पर मनुष्य को उसके स्तोत्र की सिद्धि प्राप्त होती है तब वह निश्चित सर्प पर शयन कर सकता है और सर्पों को वाहन भी बना सकता है ॥१४८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद-विषयक मनसोपाख्यान में मनसा की उत्पत्ति, पूजा और स्तोत्र आदि कथन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥४६॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

का वा सा सुरभी देवी गोलोकादागता च या । तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

नारायण उवाच

गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः । गवां प्रधाना सुरभी गोलोके च समुद्भवा ॥२॥
सर्वादिसृष्टेः कथनं कथयामि निशामय । बभूव येन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥३॥
एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकात् । गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ ॥४॥
सहसा[क] तत्र रहसि विजहार च कौतुकात् । बभूव क्षीरपानेच्छा तदा स्वेच्छापरस्य च ॥५॥
ससृजे सुरभीं देवो लीलया वामपार्श्वतः । वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सानां च मनोरमाम् ॥६॥
दृष्ट्वा सवत्सां सुरभीं रत्नभाण्डे दुदोह सः । क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥७॥
तदुष्णं च पयः स्वादु पपौ गोपीपतिः स्वयम् । सरो बभूव पयसा भाण्डविस्रंसनेन च ॥८॥
दैर्घ्यं च विस्तृते चैव परितः शतयोजनम् । गोलोकेषु प्रसिद्धं तद्रम्यं क्षीरसरोवरम् ॥९॥

अध्याय ४०

सुरभी की कथा

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! जो सुरभी देवी गोलोक से आयी है, वह कौन है, उसका जन्म और चरित्र सरहस्य बताने की कृपा करें॥१॥

नारायण बोले—वह सुरभी, गोलोक में उत्पन्न गौओं में प्रधान, गौओं की अधिष्ठात्री देवी, गौओं की आदि देवी और उनकी जननी है॥२॥ उस सर्वादि सृष्टि सुरभी की कथा मैं तुम्हें सुना रहा हूँ, सुनो। पूर्व काल में वृन्दावन नामक वन में उसका जन्म हुआ॥३॥ एक बार राधिका जी के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण कौतुक-वश राधा एवं अन्य गोपियों समेत पुण्य वृन्दावन गये। ॥४॥ वहाँ पहुँचने पर कौतुकवश वे एकान्त में सहसा छिप गये। अनन्तर स्वेच्छापरायण उन्हें दुग्ध-पान करने की इच्छा उत्पन्न हुई॥५॥ उन्होंने उसी क्षण अपने वाम भाग से सुरभी देवी की लीलापूर्वक रचना की जो सवत्सा (बछड़े समेत) दूध देने वाली एवं बछड़ों के साथ अति मनोरम लग रही थी॥६॥ बछड़े समेत सुरभी को देख कर उन्होंने रत्न के पात्र में उसका दोहन किया जो क्षीर सुधा के समान और जन्म मृत्यु का अपहारी भी था ॥७॥ पश्चात् उसके उस गर्म-गर्म दुग्ध को गोपी-पति भगवान् कृष्ण ने स्वयं पान किया। पुनः वहाँ उस दुग्ध-पात्र के किसी प्रकार गिर जाने से दुग्ध का सरोवर उत्पन्न हो गया जो चारों ओर से सौ योजन का लम्बा-चौड़ा था और गोलोक में वही रमणीय क्षीरसरोवर के नाम से

क. सहसा।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता । अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा ॥१३९॥
मनसा देवितुं शक्ता चाऽऽत्मना सिद्धयोगिनी । तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भवे ॥१४०॥
यां भक्त्या मनसा देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम् । तेन त्वां मनसादेवीं प्रवदन्ति पुराविदः ॥१४१॥
सत्त्वरूपा च देवी त्वं शश्वत्सत्त्वनिषेवया । यो हि यद्भावयेन्नित्यं शतं प्राप्नोति तत्समम् ॥१४२॥
इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीं च ताम् । निर्जगाम स्वभवनं भूषावासपरिच्छदाम् ॥१४३॥
पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे । भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्नात्या वन्द्या च सर्वतः ॥१४४॥
गोलोकात्सुरभी ब्रह्मंस्तत्राऽगत्य सुपूजिताम् । तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम् ॥१४५॥
ज्ञानस्य कथयामास स्वरूपं सर्वदुर्लभम् । तदा देवैः पूजिता सा स्वर्गलोकं पुनर्ययौ ॥१४६॥
इदं स्तोत्रं पुण्यबीजं तां संपूज्य च यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥१४७॥
विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रं यदा पठेत् । पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः
सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः ॥१४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० तदुत्पत्तिपूजास्तोत्रादिकथनं
नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

तुम्हारा 'मनसा' नाम है ॥१३९॥ तुम मन से पूजा कराने में समर्थ एवं सिद्धयोगिनी हो इसीलिए तुम संसार में मनसा देवी होकर सब की पूजिता और वन्दिता हुई हो ॥१४०॥ जिसे भक्तिपूर्वक देवगण मन से नित्य और बार-बार-पूजते हैं, इसी कारण प्राचीन वेत्ताओं ने तुम्हें मनसा देवी कहा है ॥१४१॥ निरन्तर सत्त्व सेवन करने के नाते तुम सत्त्वस्वरूपा देवी हो। इस भाँति जो प्रेमपूर्वक तुम्हें जो कुछ अर्पित करता है, वह सौ गुना होकर उसे पुनः प्राप्त होता है। ॥१४२॥ इन्द्र ने अपनी भगिनी मनसा देवी की स्तुति की और वस्त्राभूषणों से विभूषित कर के उसे अपने भवन ले गये ॥१४३॥ अनन्तर वह देवी पुनः अपने पुत्र समेत पिता के घर आकर वहाँ चिरकाल तक रही। वह निरन्तर अपने भ्राताओं (देवों) द्वारा पूजित है, दूसरी (देवी) सबकी वन्द्या नहीं है। हे ब्रह्मन्! अनन्तर गोलोक से आकर सुरभी ने उस सुपूजित मनसा देवी को क्षीर से स्नान कराया और सादर उसका पूजन किया तथा उसे ज्ञान का सर्वदुर्लभ स्वरूप बताया। उस समय देवों द्वारा पूजित होने पर वह देवी पुनः स्वर्ग-लोक चली गयी ॥१४४-१४६॥ उस (देवी) की पूजा कर के जो इस पुण्य रूप स्तोत्र का पाठ करता है, उसे नाग-भय नहीं होता है तथा उसके वंश में उत्पन्न होने वाले किसी को भी वह भय नहीं होता है ॥१४७॥ उसके स्तोत्र सिद्ध कर के पाठ करने पर विष भी अमृत हो जाता है। पाँच लाख जप करने पर मनुष्य को उसके स्तोत्र की सिद्धि प्राप्त होती है तब वह निश्चित सर्प पर शयन कर सकता है और सर्पों को वाहन भी बना सकता है ॥१४८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद-विषयक मनसोपाख्यान में मनसा की उत्पत्ति, पूजा और स्तोत्र आदि कथन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥४६॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

का वा सा सुरभी देवी गोलोकादागता च या । तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

नारायण उवाच

गवामधिष्ठातृदेवी गवाद्या गवां प्रसूः । गवां प्रधाना सुरभी गोलोके च समुद्भवा ॥२॥
सर्वादिसृष्टेः कथनं कथयामि निशामय । बभूव येन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥३॥
एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकात् । गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ ॥४॥
सहसा तत्र रहसि विजहार च कौतुकात् । बभूव क्षीरपानेच्छा तदा स्वेच्छापरस्य च ॥५॥
ससृजे सुरभीं देवो लीलया वामपार्श्वतः । वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सानां च मनोरमाम् ॥६॥
दृष्ट्वा सवत्सां सुरभीं रत्नभाण्डे दुदोह सः । क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥७॥
तदुष्णं च पयः स्वादु पपौ गोपीपतिः स्वयम् । सरो बभूव [क]पयसा भाण्डविस्रंसनेन च ॥८॥
दैर्घ्यं च विस्तृते चैव परितः शतयोजनम् । गोलोकेषु प्रसिद्धं तद्रम्यं क्षीरसरोवरम् ॥९॥

अध्याय ४०

सुरभी की कथा

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! जो सुरभी देवी गोलोक से आयी है, वह कौन है, उसका जन्म और चरित्र सरहस्य बताने की कृपा करें॥१॥

नारायण बोले—वह सुरभी, गोलोक में उत्पन्न गौओं में प्रधान, गौओं की अधिष्ठात्री देवी, गौओं की आदि देवी और उनकी जननी है॥२॥ उस सर्वादि सृष्टि सुरभी की कथा मैं तुम्हें सुना रहा हूँ, सुनो। पूर्व काल में वृन्दावन नामक वन में उसका जन्म हुआ॥३॥ एक बार राधिका जी के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण कौतुक-वश राधा एवं अन्य गोपियों समेत पुण्य वृन्दावन गये। ॥४॥ वहाँ पहुँचने पर कौतुकवश वे एकान्त में सहसा छिप गये। अनन्तर स्वेच्छापरायण उन्हें दुग्ध-पान करने की इच्छा उत्पन्न हुई॥५॥ उन्होंने उसी क्षण अपने वाम भाग से सुरभी देवी की लीलापूर्वक रचना की जो सवत्सा (बछड़े समेत) दूध देने वाली एवं बछड़ों के साथ अति मनोरम लग रही थी॥६॥ बछड़े समेत सुरभी को देख कर उन्होंने रत्न के पात्र में उसका दोहन किया जो क्षीर सुधा के समान और जन्म मृत्यु का अपहारी भी था॥७॥ पश्चात् उसके उस गर्म-गर्म दुग्ध को गोपी-पति भगवान् कृष्ण ने स्वयं पान किया। पुनः वहाँ उस दुग्ध-पात्र के किसी प्रकार गिर जाने से दुग्ध का सरोवर उत्पन्न हो गया जो चारों ओर से सौ योजन का लम्बा-चौड़ा था और गोलोक में वही रमणीय क्षीरसरोवर के नाम से

क. सहसा।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा । रत्नेन रचिता तूर्णं भूता वापीश्वरेच्छया ॥१०॥
बभूवुः कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः । तावत्यो हि सवत्साश्च सुरभीलोमकूपतः ॥११॥
तासां पुत्राश्च पौत्राश्च संबभूवुरसंख्यकाः । कथिता च गवां सृष्टिस्तया संपूरितं जगत् ॥१२॥
पूजां चकार भगवान्सुरभ्याश्च पुरा मुने । ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥१३॥
दीपान्विता परदिने श्रीकृष्णस्याऽऽज्ञया भवे । बभूव सुरभीपूजा धर्मवक्त्रादिति श्रुतम् ॥१४॥
ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रं यद्यत्पूजाविधिक्रमम् । वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि ते ॥१५॥
ॐ सुरभ्यै नम इति मन्त्रस्तस्याः षडक्षरः । सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ॥१६॥
स्थितं ध्यानं यजुर्वेदे पूजनं सर्वसंमतम् । ऋद्धिदां वृद्धिदां चैव मुक्तिदां सर्वकामदाम् ॥१७॥
लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम् । गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम् ॥१८॥
पवित्ररूपां पूज्यां च भक्तानां सर्वकामदाम् । यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभीं भजे ॥१९॥
घटे वा धेनुशिरसि बन्धस्तम्भे गवां च वा । शालग्रामे जलेऽग्नौ वा सुरभीं पूजयेद्द्विजः ॥२०॥
दीपान्विता परदिने पूर्वाह्णे भक्तिसंयुतः । यः पूजयेच्च सुरभीं स च पूज्यो भवेद्भुवि ॥२१॥
एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया । क्षीरं जहार सहसा चिन्तिताश्च सुरादयः ॥२२॥

प्रख्यात है ॥८-९॥ वही गोपियों की अधीश्वरी श्री राधिका जी की क्रीड़ा की बावली भी हुई. जो ईश्वरेच्छया शीघ्र रत्नों से रच दी गयी थी ॥१०॥ अनन्तर सुरभी के लोमकूप से लाखों करोड़ों और उतनी ही बछड़े समेत गौएँ उत्पन्न हुईं जिनके पुत्र पौत्र असंख्य हुए तथा उन्हीं से समस्त जगत् आच्छादित हो गया। इस प्रकार गौओं की सृष्टि मैंने बता दी ॥११-१२॥ हे मुने! पूर्व काल में भगवान् ने सुरभी की पूजा। अनन्तर तीनों लोकों में उसकी दुर्लभ पूजा प्रारम्भ हुई ॥१३॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से दूसरे दिन संसार में उसकी दीपक समेत पूजा हुई, ऐसा धर्म के मुख से मैंने सुना है ॥१४॥ हे महाभाग! अब मैं वेदानुसार उसका ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र और पूजाविधान का क्रम बता रहा हूँ, सुनो ॥१५॥ ओं सुरभ्यै नमः यह छह अक्षर का उसका मन्त्र है, जो एक लाख जप करने से सिद्ध होता है और भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के समान है ॥१६॥ यजुर्वेद में जिस प्रकार उसके ध्यान और सर्वसम्मत पूजन को बताया गया है, उसे कह रहा हूँ, सुनो। जो देवी ऋद्धि, वृद्धि तथा मुक्ति समेत सकल कामनाओं को देने वाली, लक्ष्मी स्वरूप, श्रेष्ठ, राधा की परम सहचरी, गौओं की अधिष्ठात्री देवी, गौओं को आदि और उनकी जननी, पवित्ररूप, पूज्या, भक्तों की सभी कामनाओं को सफल करने वाली है एवं जिससे समस्त विश्व पावन हुआ है, उस सुरभी देवी की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥१७-१९॥ कलश में, गौ के शिर पर, या गौओं के बाँधने वाले खम्भे, शालग्राम, जल या अग्नि में सुरभी देवी की पूजा ब्राह्मणों को सुसम्पन्न करनी चाहिए ॥२०॥ इस भाँति पूर्वाह्ण में जो भक्तिपूर्वक दीपक समेत सुरभी की पूजा करता है, वह भूतल में पूज्य होता है ॥२१॥ एक बार वाराह अवतार के समय भगवान् की माया ने सहसा क्षीर का अपहरण कर लिया, जिससे देवों को अति चिन्ता उत्पन्न हो गयी ॥२२॥ अनन्तर वे सब उस समय ब्रह्मलोक

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ते गत्वा ब्रह्मणो लोकं ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा। तदाज्ञया च सुरभीं तुष्टुवे पाकशासनः ॥२३॥

महेन्द्र उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः। गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके ॥२४॥
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः। नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः ॥२५॥
कल्पवृक्षस्वरूपायै प्रदात्र्यै सर्वसंपदाम्। श्रीदायै धनदायै च बुद्धिदायै नमो नमः ॥२६॥
शुभदायै [1]प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः। यशोदायै सौख्यदायै धर्मदायै नमो नमः ॥२७॥
स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः। आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी ॥२८॥
महेन्द्राय वरं दत्त्वा वाञ्छितं सर्वदुर्लभम्। जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् ॥२९॥
बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद। दुग्धाद्घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च ॥३०॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। स गोमान्धनवांश्चैव कीर्तिमान्पुण्यवान्भवेत् ॥३१॥
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम् ॥३२॥

में जाकर ब्रह्मा की स्तुति करने लगे। तब ब्रह्मा ने इन्द्र को आज्ञा प्रदान की। जिससे उन्होंने सुरभी की स्तुति की ॥२३॥

महेन्द्र बोले—देवी को नमस्कार है, महादेवी सुरभी को बार-बार नमस्कार है, गौओं के मूल कारण तथा उस जगदम्बिका को नमस्कार है ॥२४॥ राधाजी की प्रिया को नमस्कार है, पद्मा के उस अंश रूप को नमस्कार है, कृष्ण की प्रिया को नमस्कार है, और गौओं की माता को बार-बार नमस्कार है, जो कल्पवृक्ष स्वरूप होकर समस्त सम्पत्ति प्रदान करती है तथा श्री देने वाली, धनप्रदायिनी एवं बुद्धि देने वाली को नमस्कार है ॥२५-२६॥ शुभप्रदा, प्रसन्न तथा गो प्रदान करने वाली को बार-बार नमस्कार है यश देने वाली, सौख्यप्रदा और धर्मप्रदा को बार-बार नमस्कार है ॥२७॥ इस प्रकार इस स्तोत्र के सुनने मात्र से वह जगज्जननी सुरभी अति सन्तुष्ट और हर्षित हो गई। अनन्तर ब्रह्मलोक में उसी स्थान पर उस सनातनी देवी ने प्रकट होकर महेन्द्र को वर प्रदान किया जिससे उनका सर्वदुर्लभ मनोरथ सफल हुआ। अनन्तर वह गोलोक को चली गयी। हे नारद! देवलोग भी अपने-अपने घर चले गये। ॥२८-२९॥ तब जगत् एकाएक दुग्धपूर्ण हो गया। उपरान्त उस दुग्ध से घृत निकला और उसी घृत से यज्ञपूर्ण हुआ जिससे देवों की अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई। ॥३०॥ इस महापुण्य स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह गोमान्, धनवान्, कीर्तिमान् और पुण्यवान् होता है तथा वह मानों समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका एवं सम्पूर्ण यज्ञों में दीक्षित हो गया। फिर इस लोक में सुख भोगकर

---

१ क. ०यै सुभद्रायै गो०

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सुचिरं निवसेत्तत्र कुरुते कृष्णसेवनम् । न पुनर्भवनं तस्य ब्रह्मपुत्र भवे भवेत् ॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सुरभ्युपा० तदुत्पत्तितत्पूजादिकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग नारायणपरायण । नारायणांश भगवन्ब्रूहि नारायणीं कथाम् ॥१॥
श्रुतं सुरभ्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु पुराविद्भिः प्रशंसितम् ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम् । तदुत्पत्तिं च तद्ध्यानं स्तोत्रं कवचमुत्तमम् ॥३॥

नारायण उवाच

पुरा कैलासशिखरे भगवन्तं सनातनम् । सिद्धेशं सिद्धिदं सर्वस्वरूपं शंकरं परम् ॥४॥
प्रफुल्लवदनं प्रीतं सस्मितं मुनिभिः स्तुतम् । कुमाराय प्ररोचन्तं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
रासोत्सवरसाख्यानं रासमण्डलवर्णनम् । ॥५॥

वह अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के भवन में जाता है और वहाँ अति चिरकाल तक निवास करते हुए उनकी सेवा करता है। हे ब्रह्मपुत्र! संसार में उसका पुनः जन्म नहीं होता है ॥३१-३३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारदनारायणसंवादविषयक सुरभी के उपाख्यान में उसकी उत्पत्ति और पूजा आदि कथन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

अध्याय ४८

नारायणी कथा, राधोपाख्यान

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे नारायण में लीन रहने वाले! हे नारायण के अंश! हे भगवन्! मुझे नारायणी कथा सुनाने की कृपा कीजिए ॥१॥ मैंने सुरभी का उपाख्यान सुन लिया, जो अत्यन्त मनोहर, समस्त पुराणों में गुप्त और प्राचीनवेत्ताओं से प्रशंसित है ॥२॥ अब मैं श्री राधिका का परमोत्तम आख्यान जिसमें उनकी उत्पत्ति, ध्यान स्तोत्र और उत्तम कवच वर्णित है, सुनना चाहता हूँ ॥३॥

नारायण बोले—पहले समय में (एक बार) कैलाश पर्वत के शिखर पर विराजमान सनातन भगवान् शंकर से, जो सिद्धों के अधीश्वर, सिद्धि प्रदान करने वाले, सब के स्वरूप, श्रेष्ठ, विकसित मुख, प्रसन्न, मन्दहास करते हुए, मुनियों द्वारा संस्तुत तथा कुमार की उत्सुकता बढ़ाते हुए परमात्मा कृष्ण के रासोत्सव के रस का आख्यान तथा रासमण्डल का वर्णन सुना रहे थे, अवसर

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तदाख्यानावसाने च प्रस्तावावसरे सती । पप्रच्छ पार्वती स्फीता सस्मिता प्राणवल्लभम् ॥६॥
स्तवनं कुर्वती भीता प्राणेशेन प्रसादिता । प्रोवाच तं महादेवं महादेवी सुरेश्वरी ॥७॥

पार्वत्युवाच

अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम् । आगमं निखिलं नाथ श्रुतं सर्वमनुत्तमम् ॥८॥
पाञ्चरात्रादिकं नीतिशास्त्रं योगं च योगिनाम् । सिद्धानां सिद्धिशास्त्रं च नानातन्त्रं मनोहरम् ॥९॥
भक्तानां भक्तिशास्त्रं च कृष्णस्य परमात्मनः । देवीनामपि सर्वासां चरितं त्वन्मुखाम्बुजात् ॥१०॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम् । श्रुतौ श्रुतं प्रशस्तं च राधायाश्च समासतः ॥११॥
त्वन्मुखात्काण्वशाखायां व्यासेनोक्तं वदाधुना । आगमाख्यानकाले च भवता स्वीकृतं पुरा ॥१२॥
नहीश्वरव्याहृतिश्च मिथ्या भवितुमर्हति । तदुत्पत्तिं च तद्ध्यानं नाम्नो माहात्म्यमुत्तमम् ॥१३॥
पूजाविधानं चरितं स्तोत्रं कवचमुत्तमम् । आराधनविधानं च पूजापद्धतिमीप्सिताम् ॥१४॥
सांप्रतं ब्रूहि भगवन्मां भक्तां भक्तवत्सल । कथं न कथितं पूर्वमागमाख्यानकालतः ॥१५॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा नम्रवक्त्रो बभूव सः । पञ्चवक्त्रश्च भगवाञ्छुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥१६॥
स्वसत्यभङ्गभीतश्च मौनीभूय विचिन्तयन् । सस्मार कृष्णं ध्यानेनाभीष्टदेवं कृपानिधिम् ॥१७॥

पाकर सती पार्वती जी ने पूछा जो हर्षमग्न एवं मन्द मुसुकानयुक्त होकर अपने प्राणवल्लभ (शिवजी) की स्तुति कर रही थीं और भयभीत होने पर उन प्राणाधीश्वर का पूर्ण कृपापात्र भी हो चुकी थीं। उन देवाधीश्वरी महादेवी ने महादेव जी से कहा ॥४-७॥

पार्वती बोलीं—मैं श्री राधिका जी का अपूर्व आख्यान सुनना चाहती हूँ, जो पुराणों में अतिदुर्लभ है। हे नाथ! मैंने सम्पूर्ण आगम (शास्त्र), परमोत्तम समस्त पाञ्चरात्र आदि, नीतिशास्त्र, योगियों का योग-शास्त्र, सिद्धों का सिद्धिशास्त्र, अनेक भाँति का मनोहर तन्त्र और परमात्मा श्रीकृष्ण के भक्तों का भक्ति-शास्त्र सुन लिया है तथा उसी भाँति तुम्हारे मुखकमल द्वारा सभी देवियों के चरित भी सुन चुकी हूँ। अब श्री राधिका जी का अनूठा आख्यान सुनना चाहती हूँ, जो वेदों में कथित, तुम्हारे द्वारा प्रशंसित तथा काण्व-शाखा में व्यास द्वारा प्रतिपादित है। आपने पहले ही आगमों (शास्त्रों) के व्याख्यान-काल में यह स्वीकार किया था। ईश्वर (शिव) की व्याहृति (कथन) कभी मिथ्या नहीं होती है। अतः हे भगवन्! हे भक्तवत्सल! अब राधा जी की उत्पत्ति, ध्यान, उनके नाम का उत्तम माहात्म्य, पूजाविधान, चरित, स्तोत्र, उत्तमकवच, आराधना का विधान और मनोवाञ्छित पूजा-पद्धति मुझे बताने की कृपा करें। आगमों (शास्त्रों) के आख्यान के समय से पूर्व आपने इसे क्यों नहीं कहा? पार्वती की ऐसी बातें सुनकर शिवने अपना मुख नीचे कर लिया। भगवान् पञ्चमुख (पांच मुख वाले) शिव के अपने सत्य-भंग के भय से कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गये। ॥८-१६॥ वे मौन होकर विचार करने लगे। उस समय उन्होंने ध्यान द्वारा अपने इष्टदेव एवं कृपा-

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तदनु ज्ञानं संप्राप्य स्वार्धाङ्गां तामुवाच सः ॥ ॥१८॥

महादेव उवाच

निषिद्धोऽहं भगवता कृष्णेन परमात्मना । आगमारम्भसमये राधाख्यानप्रसङ्गतः ॥१९॥
मदर्धाङ्गस्वरूपा त्वं न मद्भिन्ना [1]स्वरूपतः । अतोऽनुज्ञां ददौ कृष्णो महयं वक्तुं महेश्वरि ॥२०॥
मदिष्टदेवकान्ताया राधायाश्चरितं सति । अतीव गोपनीयं च सुखदं कृष्णभक्तिदम् ॥२१॥
जानामि तदहं दुर्गे सर्वं पूर्वापरं वरम् । यज्जानामि रहस्यं च न तद्ब्रह्मा फणीश्वरः ॥२२॥
न तत्सनत्कुमारश्च न च धर्मः सनातनः । न देवेन्द्रो मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः सिद्धपुंगवाः ॥२३॥
मत्तो बलवती त्वं च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यता । अतस्त्वां गोपनीयं च कथयामि सुरेश्वरि ॥२४॥
शृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । चरितं राधिकायाश्च दुर्लभं च सुपुण्यदम् ॥२५॥
पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । शतशृङ्गैकदेशे च मालतीमल्लिकावने ॥२६॥
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः । स्वेच्छामयश्च भगवान्बभूव रमणोत्सुकः ॥२७॥
[2]रिरंसोस्तस्य जगतां पत्युस्तन्मल्लिकावने । इच्छया च भवेत्सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः । दक्षिणाङ्गं च श्रीकृष्णो वामार्धाङ्गं च राधिका ॥२९॥

निवान भगवान् कृष्ण का स्मरण किया। पश्चात् उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर उन्होंने अपनी उस अर्द्धांगिनी से कहा ॥१७-१८॥

महादेव बोले—आगमों के आख्यान काल में मैं राधाजी का आख्यान वर्णन करने से परमात्मा भगवान् श्री कृष्ण द्वारा रोक दिया गया था ॥१९॥ हे महेश्वरि! तुम मेरी अर्द्धांगिनी हो और स्वरूपतः मुझसे भिन्न भी नहीं हो, इसीलिए भगवान् कृष्ण ने मुझे तुमसे कहने की अब आज्ञा प्रदान की है ॥२०॥ राधिका जी मेरे इष्ट-देव की प्रेयसी हैं। उनका चरित अत्यन्त गोपनीय, भक्तों को सुखप्रद तथा कृष्णभक्तिप्रदायक है ॥२१॥ हे दुर्गे! मैं उनका सभी पूर्वापर (अगला पिछला) रहस्य जानता हूँ, जिसे ब्रह्मा, शेष, सनत्कुमार, सनातन धर्म, देवराज इन्द्र, श्रेष्ठ मुनिगण, सिद्धेन्द्र, और सिद्धेश्वर नहीं जान पाये हैं ॥२२-२३॥ हे सुरेश्वरि! इसके लिए तुम प्राणत्याग करने को तैयार हो गयी थीं, इसलिए हमसे तुम बलवती हो। मैं इसीलिए ऐसी गोपनीय बातें तुम्हें बता रहा हूँ ॥२४॥ हे दुर्गे! राधा जी का वह परम अद्भुत चरित तुम्हें बता रहा हूँ, जो दुर्लभ और अतिपुण्यदायक है ॥२५॥ पहले समय में गोलोक के रमणीय वृन्दावन के रासमण्डल में सैकड़ों शिखरों से सुशोभित पर्वत के एक भाग में एवं मालती और बेला के जंगल में पुरुषोत्तम जगदीश्वर रत्नसिंहासन पर विराजमान थे। अनन्तर उनस्वेच्छाचारी भगवान् को रमण करने की इच्छा उत्पन्न हुई ॥२६-२७॥ क्योंकि उन्हीं की इच्छा से सभी कुछ होता है। अतः उस बेला के वन में जब जगन्नाथ को रमण करने की इच्छा हुई तब इसी बीच वे दो रूपों में विभक्त हो गये। हे दुर्गे! उनका दाहिना भाग भगवान् श्रीकृष्ण रूप में और अर्द्धांग बायाँ

---

१ क. जगत्प्रसूः । २ क. रमणीं कर्तुमिच्छामि तद्बभूव सुरेश्वरी । इ० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

बभूव रमणी रम्या रासेशा रमणोत्सुका । अमूल्यरत्नाभरणा रत्नसिंहासनस्थिता ॥३०॥
वह्निशुद्धांशुकाधाना कोटिपूर्णशशिप्रभा । तप्तकाञ्चनवर्णाभा राजिता च स्वतेजसा ॥३१॥
सस्मिता सुदती शुद्धा शरत्पद्मनिभानना । बिभ्रती कबरीं रम्यां मालतीमाल्यमण्डिताम् ॥३२॥
रत्नमालां च दधती ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् । मुक्ताहारेण शुभ्रेण गङ्गाधारानिभेन च ॥३३॥
सयुक्तं वर्तुलोत्तुङ्गं सुमेरुगिरिसंनिभम् । कठिनं सुन्दरं दृश्यं कस्तूरीपत्रचिह्नितम् ॥३४॥
माङ्गल्यं मङ्गलार्हं च स्तनयुग्मं च बिभ्रती । नितम्बश्रोणिभारार्ता नवयौवनसुन्दरी ॥३५॥
कामातुरां सस्मितां तां ददर्श रसिकेश्वरः । दृष्ट्वा कान्तां जगत्कान्तो बभूव रमणोत्सुकः ॥३६॥
दृष्ट्वा रिरंसुं कान्तं च सा दधार हरेः पुरः । तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्महेश्वरि ॥३७॥
राधा भजति तं कृष्णं स च तां च परस्परम् । उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च ॥३८॥
भवनं धावनं रासे स्मरत्यालिङ्गनं जपन् । तेन जल्पति संकेतं तत्र राधां स ईश्वरः ॥३९॥
राशब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम् । धाशब्दोच्चारणाद्दुर्गे धावत्येव हरेः पदम् ॥४०॥

भाग राधिका रूप में परिणत हुए ॥२८-२९॥ वह रमणी अतिरमणीक, रास की अधीश्वरी और रमण करने के लिए उत्सुक थी, जो अमूल्य रत्नों के आभूषणों से विभूषित होकर रत्नसिंहासन पर सुशोभित हो रही थी ॥३०॥ उसका वस्त्र अग्नि की भाँति विशुद्ध था, करोड़ों पूर्ण चन्द्रमा की भाँति कान्ति थी, तपाये सुवर्ण के समान रूपरंग था और वह निजी तेज द्वारा विराजित एवं मन्द-मन्द मुसुकाती थी। उसके सुन्दर दांतों की पंक्तियाँ शुद्ध थीं और, शारदीय कमल की भाँति मुख था। वह स्वयं रम्य केशपाश धारण किये, मालती की माला से सुशोभित, ग्रीष्म-कालीन सूर्य की कान्ति के समान प्रदीप्त रत्नमाला और गंगा की धारा के समान स्वच्छ मुक्ताहार पहने थी ॥३१-३३॥ एवं एक में मिले हुए, गोलाकार, सुमेरु पर्वत की भाँति उन्नत, कठोर, सुन्दर, देखने योग्य, कस्तूरीपत्र (चित्रकारी) से अंकित, मंगलनिधि और मंगलयोग्य युगल स्तनों को धारण किये, नितम्ब और श्रोणीभार से थकी-जैसी तथा नयी युवावस्था के नाते परम सुन्दरी थी ॥३४-३५॥ रसिकों के स्वामी तथा जगत्सुन्दर भगवान् कृष्ण कामातुर एवं मन्द मुसुकाती उसे देखकर रमण करने को उत्सुक हो गये। ॥३६॥ उसने भी उन सुन्दर प्रियतम को देखकर उन्हें अपने अंक में धारण कर लिया था। महेश्वरि! प्राचीनवेत्ता इसी कारण उसे राधा कहते हैं ॥३७॥ राधा कृष्ण को भजती हैं और भगवान् कृष्ण राधा को भजते हैं। और वे दोनों आपस में सभी कुछ में समान हैं, ऐसा महात्माओं का कहना है ॥३८॥ रास में भगवान् श्रीकृष्ण उसका रूप धारण करते हैं, साथ में दौड़ते हैं, स्मरण करते हैं, आलिंगन करते हैं, उसी का नाम जपा करते हैं और इसी कारण संकेत स्थान को जाने के लिए राधा से संकेत (इशारा) करते रहते हैं ॥३९॥ इसलिए हे दुर्गे! भगवान् का भक्त रा शब्द का उच्चारण करने से अति दुर्लभ मुक्ति प्राप्त करता है और धा शब्द का उच्चारण करने से वह भगवान् के लोक को दौड़ जाता है ॥४०॥ रास की अधीश्वरी श्री राधा जी

---

१ क. धारयामास सा रत्याऽऽलिङ्गने जयात् । ते० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कृष्णवामांशसंभूता राधा रासेश्वरी पुरा । तस्याश्चांशांशकलया बभूवुर्देवयोषितः ॥४१॥
रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः । ततोऽवाप्नोति मुक्तिं च तेन राधा प्रकीर्तिता ॥४२॥
बभूव गोपीसंघश्च राधाया लोमकूपतः । श्रीकृष्णलोमकूपेभ्यो बभूवुः सर्वबल्लवाः ॥४३॥
राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्बभूव सा । तस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्बभूव सा ॥४४॥
चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी । तदंशा सिन्धुकन्या च श्वेतद्वीपनिवासिनी ॥४५॥
क्षीरोदशायिनः पत्नी विष्णोर्विषयिणः शिवे । तदंशा सा स्वर्गलक्ष्मीः शक्रसंपत्प्रदायिनी ॥
तदंशा राजलक्ष्मीश्च राजसंपत्प्रदायिनी ॥४६॥
तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहिणां च गृहे गृहे । [1]दीपाधिष्ठातृदेवी च सा चैव गृहदेवता ॥४७॥
स्वयं राधा कृष्णपत्नी कृष्णवक्षःस्थलस्थिता । प्राणाधिष्ठातृदेवी च तस्यैव परमात्मनः ॥४८॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति । भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम् ॥४९॥
परं प्रधानं परमं परमात्मानमीश्वरम् । सर्वाद्यं सर्वपूज्यं च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥५०॥
स्वेच्छामयं नित्यरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् । तद्भिन्नानां च देवानां प्राकृतं रूपमेव च ॥५१॥
तस्य प्राणाधिका राधा बहुसौभाग्यसंयुता । महाविष्णोः प्रसूः सा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥५२॥

भगवान् कृष्ण के बायें भाग से पूर्वकाल में उत्पन्न हुई थीं और देवस्त्रियां उन्हीं के अंश की अंशकला से उत्पन्न हुईं॥४१॥ एवं आदान (ग्रहण करने) अर्थ में रा शब्द और निर्वाण (मुक्ति) अर्थ में धा शब्द प्रयुक्त होता है। अतः जिसके नाम के उच्चारण से मुक्ति प्राप्त होती है उसे राधा कहते हैं ॥४२॥ राधाजी के लोमकूप से समस्त गोपियाँ और भगवान् श्रीकृष्ण के लोमकूप से निखिल गोपगण उत्पन्न हुए ॥४३॥ राधा के बायें अंश भाग से महालक्ष्मी का जन्म हुआ जो भगवान् की अधिष्ठात्री देवी गृहलक्ष्मी हुई ॥४४॥ वह चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णु की पत्नी होकर वैकुण्ठ में निवास करती है। उसके अंश से उत्पन्न सिन्धुकन्या श्वेतद्वीप में निवास करती है तथा क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु की पत्नी है। शिवे ! उसके अंश से उत्पन्न स्वर्गलक्ष्मी इन्द्र को सम्पत्ति देने वाली है। उसी के अंश से राजलक्ष्मी उत्पन्न हुई है जो राजस सम्पत्ति प्रदान करती है ॥४५-४६॥ उसके अंश से उत्पन्न मर्त्य लक्ष्मी गृहस्थों के घर घर में दीपों की अधिष्ठात्री देवी एवं गृहदेवता है॥४७॥ राधा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नी होकर उनके वक्षःस्थल पर स्थित रहती हैं और उसी परमात्मा के प्राणों की वह अधिष्ठात्री देवी भी हैं॥४८॥ हे पार्वती ! इसलिए तिनके से लेकर ब्रह्म पर्यन्त सभी को मिथ्या जानकर परब्रह्म राधेश को भजो, जो सत्यस्वरूप, तीनों गुणों से परे, सर्वश्रेष्ठ, परम, परमात्मा, ईश्वर, सबका आदि, सबका पूज्य, इच्छा रहित, प्रकृति से परे, स्वेच्छामय, नित्य-रूप, तथा भक्तों पर कृपा करने के लिए शरीर धारण करनेवाला है। उससे भिन्न तथा देवताओं का प्राकृत (प्रकृति द्वारा निर्मित) रूप ही है।.४९-५१॥ उनकी राधा उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय है जो अमित सौभाग्य से युक्त है। वही महाविष्णु की जननी और ईश्वरी मूल प्रकृति है ॥५२॥

१क. सस्याधि०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मानिनीं राधिकां सन्तः सेवन्ते नित्यशः सदा । सुलभं यत्पदाम्भोजं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥५३॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहि पश्यन्ति बल्लवाः । स्वयं देवी हरेः क्रोडे छायारूपेण कामिनी ॥५४॥
स च द्वादशगोपानां रायणः[1] प्रवरः प्रिये । श्रीकृष्णांशश्च भगवान्विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥५५॥
सुदामशापात्सा देवी गोलोकादागता महीम् । वृषभानुगृहे जाता तन्माता च कलावती ॥५६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० राधोपा० राधोत्पत्तिकथनं
नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

कथं सुदामशापं च सा च देवी ललाभ ह । कथं शशाप भृत्यो हि स्वाभीष्टदेवकामिनीम् ॥१॥

महादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु शुभदं भक्तिमुक्तिदम् ॥२॥

उस मानिनी राधिका जी की सेवा सन्त गण सदैव नित्य किया करते हैं क्योंकि उन्हें उनका चरण कमल अति सुलभ है और ब्रह्मा आदि देवों को परम दुर्लभ है ॥५३॥ गोपगण तो राधा के चरण-कमलों को स्वप्न में भी नहीं देख पाते हैं और स्वयं राधा भगवान् के छायारूप की भाँति उनकी गोद में कामिनी होकर स्थित रहती हैं ॥५४॥ हे प्रिये ! बारह गोपों में सर्वप्रधान रायण नामक गोप (वैश्य) था, जो भगवान् श्रीकृष्ण का अंश और भगवान् विष्णु के तुल्य पराक्रमी था ॥५५॥ सुदामा नामक गोप के शाप वश उस देवी राधा ने गोलोक से यहाँ पृथिवी में आकर वृषभानु के घर जन्म लिया था जिनकी माता का नाम कलावती था ॥५६॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत राधोपाख्यान में राधोत्पत्ति कथन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

अध्याय ४९

राधा और सुदामा का परस्पर शाप

पार्वती बोलीं—(हे भगवान्) उस देवी को सुदामा का शाप कैसे हो गया और उस सेवक ने अपनी अभीष्ट देवी को शाप कैसे दे दिया ?

महादेव बोले—हे देवि ! इस परमअद्भुत रहस्य को मैं बता रहा हूं, सुनो, जो सभी पुराणों में गोप्य, शुभप्रद और भुक्ति-मुक्ति का प्रदाता है ॥२॥ एक बार गोलोक के रास-मण्डल में, जो वृन्दावन नामक वन के

---

१ क. रायाण इति ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

एकदा राधिकेशश्च गोलोके रासमण्डले । शतशृङ्गाख्यगिर्येकदेशे वृन्दावने वने ॥३॥
गृहीत्वा विरजां गोपीं सुभाग्यां राधिकासमाम् । क्रीडां चकार भगवान्रत्नभूषणभूषितः ॥४॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते रत्ननिर्माणमण्डपे । अमूल्यरत्नखचितमञ्चके पुष्पतल्पके ॥५॥
कस्तूरीकुङ्कुमारक्ते [1]सुचन्दनसुधूपिते । सुगन्धिमालतीमालासमूहपरिमण्डिते ॥६॥
सुरताद्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ । तौ द्वौ परस्परासक्तौ सुखसंभोगतन्द्रितौ ॥७॥
मन्वन्तराणां लक्षश्च कालः परिमितो गतः । गोलोकस्य स्वल्पकाले जन्मादिरहितस्य च ॥८॥
दूत्यश्चतस्रो ज्ञात्वाऽथ जगदुस्तां तु राधिकाम् । श्रुत्वा परमरुष्टा सा तत्याज हरिमीश्वरी ॥९॥
प्रबोधिता च सखिभिः कोपरक्तास्यलोचना । विहाय रत्नालंकारं वह्निशुद्धांशुके शुभे ॥१०॥
क्रीडापद्मं च सद्रत्नामूल्यदर्पणमुज्ज्वलम् । निर्मार्जयामास सती सिन्दूरं चित्रपत्रकम् ॥११॥
प्रक्षाल्य तोयाञ्जलिभिर्मुखरागमलक्तम् । विस्रस्तकबरीभारा मुक्तकेशी प्रकम्पिता ॥१२॥
शुक्लवस्त्रपरीधाना रूक्षा वेषादिवर्जिता । ययौ यानान्तिकं तूर्णं प्रियालीभिर्निवारिता ॥१३॥
आजुहाव सखीसंघं रोषविस्फुरिताधरा । शश्वत्कम्पान्विताङ्गी सा गोपीभिः परिवारिता ॥१४॥

सौ शिखरों वाले पर्वत के एक प्रदेश में था, विरजा नामक गोपी को लेकर, जो अति भाग्यवती और राधा के समान थी, रत्नों के भूषणों से भूषित भगवान् रमण करने लगे ॥३-४॥ रत्नों के प्रदीपों से संयुक्त उस रत्न-निर्मित मण्डल में अमूल्य रत्नों से खचित पलंग पर पुष्पों की शय्या पर, जो कस्तूरी और कुंकुम से किंचित् रक्त, उत्तम चन्दनों से सुवासित और सुगन्धित मालती पुष्पों की माला से चारों ओर सुशोभित हो रही थी, दोनों लिपटे थे। उन रतिपण्डित दम्पती (स्त्रीपुरुष) को सुरत से विराग नहीं हो रहा था। वे दोनों परस्पर जुटे सुख-सम्भोग से क्लान्त हो रहे थे ॥५-७॥ इतने में एक लाख मन्वन्तर का समय व्यतीत हो गया, जो जन्मादि-रहित गोलोक का अल्प समय होता है ॥८॥ तब चार दूतियों ने इसे जानकर राधाजी से कह दिया। उसे सुनते ही वह ईश्वरी अति रुष्ट हो गयी और उसने भगवान् का त्याग कर दिया ॥९॥ कोप से उसके नेत्र लाल हो गये। सखियों के समझाने पर भी उसने रत्नों के आभूषणों, दोनों अग्नि-विशुद्ध वस्त्रों, क्रीडाकमल, उत्तम रत्न के बने हुए अमूल्य एवं उज्ज्वलाकार दर्पण को त्याग दिया, सिन्दूर एवं चित्र-पत्र को मिटा दिया और मुखराग तथा महावर को अञ्जलियों के जल से धो दिया। केशपाश (जूड़े) को खोलकर केशों को इधर-उधर अस्त-व्यस्त कर (फैला) दिया और काँपने लगी ॥१०-१२॥ फिर श्वेत वस्त्र पहनकर शृंगार रहित रूखा वेष कर लिया। प्रिय सखियों के मना करने पर भी उन लोगों का कहना न मान कर बड़ी शीघ्रता से यान (विमान) के पास पहुँच गयी और वहीं से सभी सखी वृन्दों को बुलाने लगी। उस समय उसके अधरोष्ठ क्रोध से काँप रहे थे, सारा शरीर निरन्तर काँप रहा था और गोपियाँ उसके चारों ओर घेरे खड़ी थीं। भक्तिपूर्वक वे गोपियाँ कातर भाव से विनय-प्रार्थना कर रहीं

१क. सुगन्धिचन्दनाञ्चिते ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ताभिर्भक्त्या नताभिश्च कातराभिश्च संस्तुता । आरुरोह रथं दिव्यममूल्यं रत्ननिर्मितम् ॥१५॥
दशयोजनविस्तीर्णं दैर्ध्ये तच्छतयोजनम् । सहस्रचक्रयुक्तं च नानाचित्रसमन्वितम् ॥१६॥
नानाविचित्रवसनैः सूक्ष्मैः क्षौमैर्विराजितम् । अमूल्यरत्ननिर्माणदर्पणैः परिशोभितम् ॥१७॥
मणीन्द्रजालमालाभैः पुष्पमालासहस्रकैः । सद्रत्नकलशैर्युक्तं रम्यैर्मन्दिरकोटिभिः ॥१८॥
त्रिलक्षकोटिभिः सार्धं गोपीभिश्च प्रियालिभिः । ययौ रथेन तेनैव सुमनोमालिना प्रिये ॥१९॥
श्रुत्वा कोलाहलं गोपः सुदामा कृष्णपार्षदः । कृष्णं कृत्वा सावधानं गोपैः सार्धं पलायितः ॥२०॥
भयेन कृष्णः संत्रस्तो विहाय विरजां सतीम् । स्वप्रेममग्नः कृष्णोऽपि तिरोधानं चकार सः ॥२१॥
सा सती समयं ज्ञात्वा विचार्य स्वहृदि क्रुधा । राधाप्रकोपभीता च प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम् ॥२२॥
विरजालिगणास्तत्र भयविह्वलकातराः । प्रययुः शरणं साध्वीं विरजां तत्क्षणं भिया ॥२३॥
गोलोके सा सरिद्रूपा जाता वै शैलकन्यके । कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा ॥२४॥
गोलोकं वेष्टयामास परिखेव मनोहरा । बभूवुः क्षुद्रनद्यश्च तदाऽन्या गोप्य एव च ॥२५॥
सर्वा नद्यस्तदंशाश्च प्रतिविश्वेषु सुन्दरि । इमे सप्त समुद्राश्च विरजानन्दना भुवि ॥२६॥
अथाऽऽगत्य महाभागा राधा रासेश्वरी परा । न दृष्ट्वा विरजां कृष्णं स्वगृहं च पुनर्ययौ ॥२७॥

थीं। किन्तु, कुछ भी ध्यान न देकर राधाजी उस अमूल्य दिव्य रथ पर जा बैठीं, जो रत्नों द्वारा निर्मित, एक सहस्र योजन का लम्बा और दश योजन का चौड़ा था ॥१३-१५॥ उसमें एक सहस्र चक्के तथा अनेक भाँति के चित्र लगे थे। वह अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र और सूक्ष्म रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित, अमूल्य रत्नों के बने दर्पणों से (चारों ओर) सुशोभित, उत्तम मणिसमूहों की माला और सहस्रों पुष्पों की मालाओं से सुरचित एवं उत्तम रत्नों के बने रमणीक कलशों वाले करोड़ों मन्दिरों से युक्त था। उस पर साथ में तीन लाख करोड़ प्रिय गोपियाँ जा बैठीं। हे प्रिये ! उसी सुमनोमालि नामक रथ पर बैठ कर उसने प्रस्थान कर दिया, जिसका कोलाहल सुनकर भगवान् श्री कृष्ण के पार्षद सुदामा ने गोपों के साथ दौड़ते हुए वहाँ पहुँचकर कृष्ण को सावधान कर दिया। अनन्तर भगवान् कृष्ण ने भयभीत होकर विरजा को (अपने पास से) पृथक् कर दिया और उसके प्रेम में मग्न होने के नाते स्वयं भी तिरोहित हो गये। सती विरजा ने समय जान कर अपने हृदय में क्रोधपूर्ण विचार तो किया, किन्तु राधिका जी के महाकोप से भयभीत होकर वह संभल न सकीं, उसी क्षण प्राण छोड़ दिया। ॥१६-२२॥ विरजा की सखियाँ भी भयाकुल एवं कातर भाव से उसी समय सती विरजा की ही शरण गयीं। किन्तु हे शैलकन्यके ! वह (विरजा) गोलोक में नदी रूप धारण कर प्रवाहित हो गई। गोलोक में करोड़ योजन की चौड़ी और करोड़ योजन की लम्बी होकर वह मनोहर परिखा (खाईं) की भाँति उसे चारों ओर से घेरने लगी। हे सुन्दरि! अन्य गोपियाँ, जो उसकी सखी थीं, छोटी-छोटी नदियाँ हो गयीं ॥२३--२५॥ प्रत्येक विश्व में प्रवाहित होने वाली समस्त नदियाँ उसी के ही अंश से उत्पन्न हैं ॥२६॥ भूतल पर स्थित ये सातों समुद्र विरजा के ही नन्दन (पुत्र) हैं। अनन्तर महाभाग एवं रास की अधिष्ठात्री देवी राधिका जी वहाँ आकर विरजा और कृष्ण को न देखकर पुनः अपने भवन को लौट गयीं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

जगाम कृष्णस्तां राधां गोपालैरष्टभिः सह। गोपीभिर्द्वारि युक्ताभिर्वारितोऽपि पुनः पुनः ॥२८॥
दृष्ट्वा कृष्णं च सा देवी भर्त्सयामास तं तदा। सुदामा भर्त्सयामास तां तथा कृष्णसंनिधौ ॥२९॥
क्रुद्धा शशाप सा देवी सुदामानं सुरेश्वरी। गच्छ त्वमासुरीं योनिं गच्छ दूरमतो द्रुतम् ॥३०॥
शशाप तां सुदामा च त्वमितो गच्छ भारतम्। भव गोपी गोपकन्या मुख्याभिः स्वाभिरेव च ॥३१॥
तत्र ते कृष्णविच्छेदो भविष्यति शतं समाः। तत्र भारावतरणं भगवांश्च करिष्यति ॥३२॥
इति शप्त्वा सुदामाऽसौ प्रणम्य जननीं हरिम्। साश्रुनेत्रो मोहयुक्तस्ततो गन्तुं समुद्यतः ॥३३॥
राधा जगाम तत्पश्चात्साश्रुनेत्राऽतिविह्वला। वत्स क्व यासीत्युच्चार्य पुत्रविच्छेदकातरा ॥३४॥
कृष्णस्तां बोधयामास विद्यया च कृपानिधिः। शीघ्रं संप्राप्स्यसि सुतं मा रुदस्त्वं वरानने ॥३५॥
स चासुरः शङ्खचूडो बभूव तुलसीपतिः। मच्छूलभिन्नकायेन गोलोकं वै जगाम सः ॥३६॥
राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सती। वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह ॥३७॥
अयोनिसंभवा देवी वायुगर्भा कलावती। सुषुवे मायया वायुं सा तत्राऽऽविर्बभूव ह ॥३८॥
अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम्। सार्धं रायणवैश्येन तत्संबन्धं चकार सः ॥३९॥
छायां संस्थाप्य तद्गेहे साऽन्तर्धानमवाप ह। बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह ॥४०॥

पश्चात् भगवान् कृष्ण आठ गोपों के साथ राधिका जी के महल पहुँचे वहाँ दरवाजे पर द्वारपाल रूप में खड़ी रहने वाली गोपियों के बार-बार रोकने पर भी कृष्ण भीतर चले ही गये, किन्तु उन्हें देखते ही श्री राधिका जी डाँटने-फटकारने लगीं। उधर कृष्ण के साथ खड़े हुए सुदामा गोप ने भी राधा जी को कुछ कहा, जिससे क्रुद्ध होकर उस सुरेश्वरी ने सुदामा को शाप दिया कि—'यहाँ से दूर असुर योनि को शीघ्र प्राप्त हो'। ॥२७-३०॥ सुदामा ने भी उन्हें शाप दिया—'तुम यहाँ से भारतभूमि पर जाओ और वहाँ अपनी सखियों समेत गोप कन्या होने पर तुम्हें कृष्ण का सौ वर्ष का वियोग प्राप्त होगा। वहाँ भगवान् अवतरित होकर पृथ्वी का भार उतारेंगे' ॥३१-३२॥ इस प्रकार शाप देने के पश्चात् सुदामा, माता (राधिका) और भगवान् कृष्ण को प्रणाम कर मोहवश आँखों में आँसू भरकर जाने को तैयार हो गया ॥३३॥ उसके पीछे राधिका भी सजलनयन तथा अति व्याकुल होती हुई चलने लगीं। उस समय पुत्र-वियोग से कातर होकर 'हे वत्स! कहाँ जा रहे हो।' ऐसा कहने लगीं ॥३४॥ अनन्तर भगवान् कृपानिधान कृष्ण ने विद्या द्वारा उन्हें सचेत किया और कहा—'हे वरानने! रुदन मत करो! तुम्हारा पुत्र तुम्हें शीघ्र मिलेगा ॥३५॥ वही शंखचूड़ नामक असुर होकर तुलसी का पति हुआ, जो हमारे शूल द्वारा शरीर त्यागकर पुनः गोलोक चला गया' ॥३६॥ वाराहकल्प में श्री राधिका जी भारत के गोकुल गाँव में वृषभानु वैश्य (गोप) के यहाँ उनकी कन्या होकर अवतरित हुईं, जो अयोनिजा थीं। उनकी माता कलावती के गर्भ में केवल वायु स्थित था। जिस समय माया द्वारा वे वायु का जन्म दे रही थीं उसी बीच वे वहाँ पुत्री होकर प्रकट हो गईं ॥३७-३८॥ बारह वर्ष बीतने पर उनकी नयी युवावस्था देख कर किसी रायण नामक वैश्य के साथ विवाह सम्बन्ध कर दिया गया ॥३९॥ विवाह के समय राधा जी अपने पिता के घर अपनी छाया रखकर, जिससे उस वैश्य का विवाह हुआ था, स्वयं अन्तर्हित हो गईं ॥४०॥ चौदह वर्ष

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गते चतुर्दशाब्दे तु कंसभीतेश्छलेन च । जगाम गोकुलं कृष्णः शिशुरूपी जगत्पतिः ॥४१॥
कृष्णमातुर्यशोदाया रायणस्तत्सहोदरः । गोलोके गोपकृष्णांशः संबन्धात्कृष्णमातुलः ॥४२॥
कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने । [1]विवाहं कारयामास विधिना जगतां विधिः ॥४३॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहि पश्यन्ति बल्लवाः । स्वयं राधा हरेः क्रोडे छाया रायणमन्दिरे ॥४४॥
षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । राधिकाचरणाम्भोजदर्शनार्थी च पुष्करे ॥४५॥
भारावतरणे भूमेर्भारते नन्दगोकुले । ददर्श तत्पदाम्भोजं तपसस्तत्फलेन च ॥४६॥
किंचित्कालं स वै कृष्णः पुण्ये वृन्दावने वने । रेमे गोलोकनाथश्च राधया सह भारते ॥४७॥
ततः सुदामशापेन विच्छेदश्च बभूव ह । तत्र भारावतरणं भूमेः कृष्णश्चकार सः ॥४८॥
शताब्दे समतीते तु तीर्थयात्राप्रसङ्गतः । ददर्श कृष्णं सा राधा स च तां च परस्परम् ॥४९॥
ततो जगाम गोलोकं राधया सह तत्त्ववित् । कलावती यशोदा च पर्यगाद्राधया सह ॥५०॥
वृषभानुश्च नन्दश्च ययौ गोलोकमुत्तमम् । सर्वे गोपाश्च गोप्यश्च ययुस्ता याः समागताः ॥५१॥

व्यतीत होने पर जगत्पति कृष्ण, जो उस समय शिशु रूप में थे, कंस के भय से कपट द्वारा गोकुल गाँव लाये गये ॥४१॥ भगवान् कृष्ण की माता यशोदा का वह रायण सहोदर (सगा भाई) है, जो गोलोक में कृष्ण का अंश और यहाँ के सम्बन्ध से उनका मामा है ॥४२॥ वृन्दावन नामक पवित्र वन में जगत् के रचयिता ब्रह्मा ने कृष्ण के साथ राधा का सविधि विवाह कराया था ॥४३॥ जिस राधा के चरणकमल को गोपगण स्वप्न में भी नहीं देख सकते थे, वही स्वयं राधा भगवान् श्रीकृष्ण के अंक में स्थित थीं और उनकी छाया रायण के भवन में विराजमान थी ॥४४॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा ने श्री राधिका जी के चरणकमल के दर्शनार्थ पुष्कर क्षेत्र में साठ सहस्र वर्ष तक तप किया था। इस कारण पृथ्वी का भार उतारने के लिए हुए कृष्णावतार में नन्द गोकुल गाँव में उन्हें उस तपस्या के फलस्वरूप उनके चरणकमल का दर्शन हुआ ॥४५-४६॥ भारत के पुण्य वृन्दावन में गोलोकाधीश्वर कृष्ण भगवान् ने राधा के साथ कुछ ही काल तक रमण किया। उसके उपरान्त सुदामा के शापवश उन दोनों का वियोग हो गया। उसी समय कृष्ण ने पृथ्वी का भार उतारा ॥४७-४८॥ सौ वर्ष व्यतीत होने के उपरान्त तीर्थ यात्रा के अवसर पर परस्पर राधा ने पुनः कृष्ण को देखा और कृष्ण ने राधा को ॥४९॥ अनन्तर तत्त्ववेत्ता श्रीकृष्ण श्री राधिका जी को साथ लेकर अपने गोलोक चले गये और राधा के साथ उनकी माता कलावती तथा (कृष्ण माता) यशोदा भी चली गयीं ॥५०॥ उस परमोत्तम गोलोक में वृषभानु, नन्द तथा सभी गोप-गोपियाँ जो वहाँ (गोलोक) से आयी थीं, चली गयीं ॥५१॥ हे पार्वती ! वहाँ साथ रहने के नाते छाया रूप में आये हुए गोप और गोपियों की मुक्ति हो गयी। वे (गोपियाँ) वहाँ (गोलोक में) भगवान् कृष्ण के साथ रमण

१क. विहारं का° ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

छायागोपाश्च गोप्यश्च प्रापुर्मुक्तिं च संनिधौ । रेमिरे ताश्च तत्रैव सार्धं कृष्णेन पार्वति ॥५२॥
षट्त्रिंशल्लक्षकोटिश्च गोप्यो गोपाश्च तत्समाः । गोलोकं प्रययुर्मुक्ताः सार्धं कृष्णेन राधया ॥५३॥
द्रोणः प्रजापतिर्नन्दो यशोदा तत्प्रिया धरा । संप्राप पूर्वतपसा परमात्मानमीश्वरम् ॥५४॥
वसुदेवः कश्यपश्च देवकी चादितिः सती । देवमाता देवपिता प्रतिकल्पे स्वभावतः ॥५५॥
पितॄणां मानसी कन्या राधामाता कलावती । वसुदामाऽपि गोलोकाद् वृषभानुः समाययौ ॥५६॥
इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम् । संपत्करं पापहरं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥५७॥
श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥५८॥
चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मीः सरस्वती । गङ्गा च तुलसी चैव देव्यो नारायणप्रियाः ॥५९॥
श्रीकृष्णपत्नी सा राधा तदर्धाङ्गसमुद्भवा । तेजसा वयसा साध्वी रूपेण च गुणेन च ॥६०॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं वदेद्बुधः । व्यतिक्रमे ब्रह्महत्यां लभते नात्र संशयः ॥६१॥
कार्तिके पूर्णिमायां च गोलोके रासमण्डले । चकार पूजां राधायास्तत्संबन्धिमहोत्सवम् ॥६२॥
[1]सद्रत्नगुटिकायाश्च कृत्वा तत्कवचं हरिः । दधार कण्ठे बाहौ च दक्षिणे सह गोपकैः ॥६३॥

करने लगीं। छत्तीस लाख करोड़ गोपियाँ और उतने ही गोपगण कृष्ण और राधा के साथ मुक्त होकर गोलोक गये थे ॥५२-५३॥ उनमें से प्रजापति द्रोण नन्द हुए थे और उनकी पत्नी धरा यशोदा हुई थीं, उन्होंने अपनी पूर्व तपस्या द्वारा परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को पुत्र रूप में प्राप्त किया था ॥५४॥ कश्यप जी वसुदेव हुए थे और उनकी पत्नी अदिति देवकी हुई थीं। प्रत्येक कल्प में देवों की माता और पिता स्वभावानुसार जन्म-धारण किया करते हैं ॥५५॥ पितरों की मानसी कन्या राधा की माता कलावती हुई थीं और गोलोक से आकर वसुदामा वृषभानु हुए थे ॥५६॥ हे दुर्गे! इस प्रकार मैंने तुम्हें राधिका जी का परमोत्तम आख्यान सुना दिया, जो सम्पत्तिप्रद, पापहारी और पुत्र-पौत्र की अति वृद्धि करने वाला है ॥५७॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने दो भुजाओं वाला और चार भुजाओं वाला, दो रूप धारण किये जिसमें चार भुजाओं से वे वैकुण्ठ में रहते हैं और दो-भुजाओं से स्वयं गोलोक में ॥५८॥ चार भुजा वाले भगवान् की महालक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी इतनी पत्नियां हैं और ये देवियाँ भगवान् को प्रिय हैं ॥५९॥ और भगवान् श्री कृष्ण की पत्नी उनके आधे अंग से उत्पन्न होने वाली केवल सती राधिका जी हैं, जो तेज, अवस्था, रूप और गुण में उन्हीं के समान हैं ॥६०॥ इस कारण विद्वान् को चाहिये कि पहले राधा कहकर पश्चात् कृष्ण कहें अन्यथा व्यतिक्रम (उल्टा) होने पर ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है इसमें संशय नहीं ॥६१॥ कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन गोलोक के रासमण्डल में भगवान् श्रीकृष्ण ने राधाजी की पूजा और तत्सम्बन्धी महोत्सव किया ॥६२॥ भगवान् ने उत्तम रत्नों की गुटिका (यंत्र की तावीज) में राधा कवच रख कर गोपों के साथ अपने कण्ठ और दाहिनी भुजा में धारण किया ॥६३॥ भक्तिपूर्वक ध्यान करते हुए उन्होंने उनके इस स्तोत्र का निर्माण किया। भगवान् मधुसूदन ने राधा जी का चबाया

१ख. 'घुटि'।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कृत्वा ध्यानं च पूजां च स्तोत्रमेतच्चकार सः । राधाचर्वितताम्बूलं चखाद मधुसूदनः ॥६४॥
राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान्प्रभुः । परस्पराभीष्टदेवे भेदकृन्नरकं व्रजेत् ॥६५॥
द्वितीये पूजिता सा च धर्मेण ब्रह्मणा मया । अनन्तवासुकिभ्यां च रविणा शशिना पुरा ॥६६॥
महेन्द्रेण च रुद्रैश्च मनुना मानवेन च । सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सर्वविश्वैश्च पूजिता ॥६७॥
तृतीये पूजिता सा च सप्तद्वीपेश्वरेण च । भारते च सुयज्ञेन पुत्रैर्मित्रैर्मुदाऽन्वितैः ॥६८॥
ब्राह्मणेनाभिशप्तेन दैवदोषेण भूभृता । व्याधिग्रस्तेन हस्तेन दुःखिना च विदूयता ॥६९॥
संप्राप राज्यं भ्रष्टश्रीः स च राधावरेण च । स्तोत्रेण ब्रह्मदत्तेन स्तुत्वा च परमेश्वरीम् ॥७०॥
[1]अभेद्यं कवचं तस्याः कण्ठे बाहौ दधार सः । ध्यात्वा चकार पूजां च पुष्करे शतवत्सरान् ॥७१॥
अन्ते जगाम गोलोकं रत्नयानेन भूमिपः । इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥७२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरिसं० राधोपा० राधायाः
सुदामशापादिकथनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

हुआ पान खाया ॥६४॥ इस प्रकार राधा भगवान् कृष्ण की पूज्या हैं और राधा के श्रीकृष्ण । अतः परस्पर अभीष्ट देव में भेद बुद्धि रखनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है ॥६५॥ पूर्वकाल में दूसरे उनकी पूजा धर्म, ब्रह्मा, मैंने, अनन्तनाग, वासुकी नाग, सूर्य और चन्द्रमा, महेन्द्र, ग्यारहों रुद्रगण, मानव मनु, सुरेन्द्रों और मुनीन्द्रों ने की, इस भाँति वे समस्त विश्व द्वारा पूजित हुईं ॥६६-६७॥ तीसरे उनकी पूजा भारत के सप्तद्वीपाधीश्वर सुयज्ञ ने अपने पुत्रों और मित्रों समेत सहर्ष सम्पन्न किया ॥६८॥ दैव (भाग्य) दोषवश राजा को ब्राह्मण द्वारा शाप हो गया, जिससे उनके हाथ में रोग उत्पन्न हो गया । उस रोगपीड़ित हाथ द्वारा दुःख का अनुभव करते हुए राजा ने ब्रह्मा के दिये हुए स्तोत्र द्वारा परमेश्वरी राधा जी की आराधना की, जिससे उनके वरदान द्वारा उसे पुनः भ्रष्ट (नष्ट) राजलक्ष्मी प्राप्त हो गयी ॥६९-७०॥ फिर राधा जी के अभेद्य कवच को अपने कण्ठ तथा बाहु में धारण कर पुष्कर क्षेत्र में सौ वर्ष तक ध्यानपूर्वक उनकी पूजा की और अन्त में वह राजा रत्नखचित विमान द्वारा गोलोक चला गया। इस प्रकार मैंने तुम्हें सभी कुछ सुना दिया है । अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ?॥७१-७२॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारदनारायणसंवादविषयक हरगौरीसंवाद के राधोपाख्यान में राधा को सुदामा द्वारा शापादि कथन नामक उन्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

१क. आद्यं च कं ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

को वा सुयज्ञो नृपतिः कुत्र वंशे बभूव सः । कथं विप्राभिशप्तश्च कथं संप्राप राधिकाम् ॥१॥
सर्वात्मनश्च कृष्णस्य पत्नीं श्रीकृष्णपूजिताम् । कथं विण्मूत्रधारी च सिषेवे परमेश्वरीम् ॥२॥
षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । यत्पादाम्भोजरेणूनां लब्धये पुष्करे विभुः ॥३॥
कथं ददर्श तां देवीं महालक्ष्मीं पुरा[1] सतीम् । दुर्दर्शामपि युष्माकं दृश्या साऽभूत्कथं नृणाम् ॥४॥
कथं त्रिजगतां धाता तस्मै तत्कवचं ददौ । ध्यानं पूजाविधिं स्तोत्रं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥५॥

महादेव उवाच

स्वायंभुवो मनुर्देवि मनूनामादिरेव च । ब्रह्मात्मजस्तपस्वी च शतरूपापतिः प्रभुः ॥६॥
उत्तानपादस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रो ध्रुव एव च । ध्रुवस्य कीर्तिर्विख्याता त्रैलोक्ये शैलकन्यके ॥७॥
उत्कलस्तस्य पुत्रश्च नारायणपरायणः । सहस्रं राजसूयानां पुष्करे स चकार ह ॥८॥
सर्वाणि रत्नपात्राणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा । अमूल्यरत्नराशीनां सहस्रं तेजसाऽऽवृतम् ॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा यज्ञान्ते सुमहोत्सवे । ॥९॥

अध्याय ५०

सुयज्ञ की कथा

पार्वती बोलीं—सुयज्ञ राजा कौन थे, वे किस वंश में उत्पन्न हुए थे एवं उन्हें ब्राह्मणशाप कैसे प्राप्त हुआ और उन्होंने राधिका जी को कैसे प्राप्त किया, जो समस्त के आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नी एवं उनके द्वारा पूजित हुई हैं। उस परमेश्वरी की सेवा उस विष्ठा-मूत्रधारी ने कैसे की ? ॥१-२॥ जिसके चरणकमल की धूलि प्राप्त करने के लिए समर्थ ब्रह्मा ने पूर्वकाल में साठ सहस्र वर्ष तप किया था, उस महालक्ष्मी सती देवी को उसने कैसे देख लिया ? जो आप लोगों को भी अति कठिनाई से दिखायी देती हैं, उन्हें मनुष्य कैसे देख सका ? और तीनों लोकों के विधाता ने राधा जी का कवच, ध्यान, पूजा-विधान और स्तोत्र उसे कैसे दे दिया ? यह मुझे बताने की कृपा करें॥३-५॥

श्री महादेव बोले—मनुवंश में सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु ने जन्म ग्रहण किया, जो ब्रह्मा के सुपुत्र, तपस्वी, समर्थ एवं शतरूपा के पति थे ॥६॥ उनके पुत्र राजा उत्तानपाद और उनके पुत्र ध्रुव हुए। हे शैलकन्यके ! ध्रुव की कीर्ति विख्यात है। उसका उत्कल नामक पुत्र भगवान् नारायण में सतत लीन रहा करता था। उन्होंने पुष्कर क्षेत्र में सहस्र राजसूय नामक यज्ञ सुसम्पन्न किया ॥७-८॥ उसमें उन्होंने ब्राह्मणों को समस्त रत्नों के पात्र और अमूल्य रत्नों की सहस्र राशियाँ, जो अत्यन्त प्रकाशपूर्ण (देदीप्यमान) थीं, सहर्ष प्रदान कीं ॥९॥

१क. परां।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दृष्ट्वा तच्छोभनं यज्ञं विधाता जगतां प्रिये। सुयज्ञं नाम नृपतिं चकार सुरसंसदि ॥१०॥
स च राजा सुयज्ञश्च मनुवंशसमुद्भवः। अन्नदाता रत्नदाता दाता वै सर्वसंपदाम् ॥११॥
दशलक्षं गवां चैव रत्नशृङ्गपरिच्छदम्। नित्यं ददौ स विप्रेभ्यो मुदा युक्तः सदक्षिणम् ॥१२॥
गवां द्वादशलक्षाणां ददौ नित्यं मुदान्वितः। सुपक्वानि च मांसानि ब्राह्मणेभ्यश्च पार्वति ॥१३॥
षट्कोटीब्राह्मणानां च भोजयामास नित्यशः। चोष्यैश्चव्यैर्लेह्यपेयै रतितृप्तं दिने दिने ॥१४॥
विप्रलक्षं सूपकारं भोजयामास तत्परम्। पूर्णमन्नं च सूपाक्तं सगव्यं मांसवर्जितम् ॥१५॥
विप्रा भोजनकाले च मनुवंशसमुद्भवम्। न तुष्टुवुः सुयज्ञं च तुष्टुवुस्तत्पितॄंश्च ते ॥१६॥
दिने सुयज्ञयज्ञान्ते षट्त्रिंशल्लक्षकोटयः। चक्रुः सुभोजनं विप्राश्चातितृप्ताश्च सुन्दरि ॥१७॥
गृहीतानि च रत्नानि स्वगृहं वोढुमक्षमाः। वृषलेभ्यो ददुः किंचित्किंचित्पथि च तत्यजुः ॥१८॥
विप्राणां भोजनान्ते च विप्रान्येभ्यो ददौ नृपः। तथाप्युर्वरितं तत्र चान्नराशिसहस्रकम् ॥१९॥
कृत्वा यज्ञं महाबाहुः समुवास स्वसंसदि। रत्नेन्द्रसारसंकल्पतच्छत्रकोटिसमन्विते ॥२०॥
रत्नसिंहासने रम्ये पट्टवस्त्रैः सुसंस्कृते। चन्दनादिसुसंसृष्टे रम्ये चन्दनपल्लवैः ॥२१॥
शाखायुक्तैः पूर्णकुम्भै रम्भावृक्षैश्च शोभिते। चन्दनागुरुकस्तूरीघनसिन्दूरसंस्कृते ॥२२॥
वसुवासवचन्द्रेन्द्ररुद्रादित्यसमन्विते। मुनिनारदमन्वादिब्रह्मविष्णुशिवान्विते ॥२३॥

हे प्रिये! उस महोत्सव में यज्ञ की समाप्ति के अवसर पर ब्राह्मणों को उस प्रकार का दान देते हुए राजा को तथा उसके सुशोभित यज्ञ को देखकर जगत् के विधाता ब्रह्मा ने देवसभा में उसका 'सुयज्ञ' नामकरण किया, जो मनुवंश में उत्पन्न हुआ था ॥१०½॥ वह नित्य अन्नदान, रत्नदान, समस्त सम्पत्ति का दान तथा लाख गौओं का दान, जिनकी सींगे रत्नों से सुशोभित रहती थीं, दक्षिणा समेत ब्राह्मणों को सहर्ष अर्पित करता था। बारह लाख गोदान नित्य सहर्ष सम्पन्न करता था। हे पार्वती! पके मांस ब्राह्मणों को अर्पित करता था ॥११-१३॥ नित्य छह करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराता था जो चूसने, चबाने, स्वाद लेने और पीने योग्य पदार्थों से नित्य तृप्त होते थे। उसके यहाँ एक लाख ब्राह्मण भण्डारी भोजन करते थे ॥१४½॥ गौ के घी, दूध और दही से अतिपूर्ण भोजन रहता था ॥१५॥ भोजन के समय ब्राह्मण लोग मनुवंश में उत्पन्न उस सुयज्ञ की प्रशंसा न करके उसके पितरों की प्रशंसा करते थे। यज्ञ की समाप्ति के दिन सुयज्ञ ने छत्तीस लाख करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराया। हे सुन्दरि! उत्तम भोजन से तृप्त हुए उन ब्राह्मणों को इतना रत्न दान दिया, जो उसे अपने घर ले जाने में वे सभी असमर्थ हो गये—उनमें से कुछ लोगों ने शूद्रों को कुछ दे दिया और कुछ रास्ते में छोड़ दिया। उन ब्राह्मणों के अतिरिक्त और अन्य ब्राह्मणों को उसने भोजन कराया। तिस पर भी सहस्रों अन्न की राशियाँ अछूती पड़ी रह गईं ॥१६-१९॥ यज्ञ के उपरान्त उस महाबाहु ने अपनी सभा में उस रत्नसिंहासन के ऊपर, जो उत्तम रत्नों के सार भाग से विभूषित, कोटि छत्रों से युक्त, रमणीक, रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित, चन्दनों से आर्द्र (गीला), शाखा (डाली) युक्त चन्दन के पल्लवों, पूर्ण कलशों और केले के वृक्षों से सुशोभित एवं चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कपूर तथा सिन्दूर से विभूषित था, पदार्पण किया ॥२०-२२॥ सिंहासन के समीप वसुगण, इन्द्र, चन्द्र, रुद्रगण और

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्र एकः समाययौ। रूक्षो मलिनवासाश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥२४॥
रत्नसिंहासनस्थं च माल्यचन्दनचर्चितम्। राजानमाशिषं चक्रे सस्मितः संपुटाञ्जलिः ॥२५॥
प्रणनाम नृपस्तं च नोत्तस्थौ किंचिदेव हि। सभासदश्च नोत्तस्थुर्जहसुः स्वल्पमेव च ॥२६॥
मुनिभ्योऽपि च देवेभ्यो नमस्कृत्य द्विजोत्तमः। शशाप नृपतिं क्रोधात्तत्रातिष्ठन्निरङ्कुशः ॥२७॥
गच्छ दूरमतो राज्याद्भ्रष्टश्रीर्भव पामर। भवाचिरं गलत्कुष्ठी बुद्धिहीनोऽप्युपद्रुतः ॥२८॥
इत्युक्त्वा कम्पितः क्रोधात्सभास्थाञ्छप्तुमुद्यतः। ये तत्र जहसुः सर्वे समुत्तस्थुः सभासदः ॥२९॥
सर्वे चक्रुः प्रणामं ते क्रोधं तत्याज वाडवः ॥३०॥
प्रणम्याऽऽगत्य राजा तं रुरोद भयकातरः। निःससार सभामध्याद्धृदयेन विदूयता ॥३१॥
ब्राह्मणो गूढरूपी च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। तत्पश्चान्मुनयः सर्वे प्रययुर्भयकातराः ॥३२॥
हे विप्र तिष्ठ तिष्ठेति समुच्चार्य पुनः पुनः। पुलहश्च पुलस्त्यश्च प्रचेता भृगुरङ्गिराः ॥३३॥
मरीचिः कश्यपश्चैव वसिष्ठः क्रतुरेव च। शुक्रो बृहस्पतिश्चैव दुर्वासा लोमशस्तथा ॥३४॥
गौतमश्च कणादश्च कण्वः कात्यायनः कठः। पाणिनिर्जाजलिश्चैव ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥३५॥
तैत्तिरिश्चाऽऽप्यापिशलिर्मार्कण्डेयो महातपाः। सनकश्च सनन्दश्च वोढुः पैलः सनातनः ॥३६॥
सनत्कुमारो भगवान्नरनारायणावृषी। पराशरो जरत्कारुः संवर्तः करभस्तथा ॥३७॥

सूर्य तथा मुनि नारद, मनु आदि, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव विराजमान थे। उसी बीच वहाँ एक ब्राह्मण आया ॥२३॥ वह रूखा तथा मैले-कुचैले वस्त्र पहने था। उसके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये थे ॥२४॥ उस रत्न-सिंहासन पर विभूषित एवं मालाओं और चन्दनों से चर्चित राजा को उस ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर तथा मुस्कराकर आशीर्वाद दिया, किन्तु राजा ने न उस ब्राह्मण को प्रणाम किया और न वह स्वागतार्थ आसन से कुछ उठा ही। वहां के सभासद गण भी आसन से नहीं उठे, अपितु कुछ हास्य (मजाक) ही करने लगे ॥२५-२६॥ वह श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनियों और देवताओं को नमस्कार करने के अनन्तर क्रुद्ध होने के कारण वहाँ निर्भय खड़ा रहा और उसने राजा को शाप दे दिया—'हे पामर (नीच)! तुम्हारी श्री नष्ट हो जाय, अतः राज्य से तुम दूर चले जाओ, तुम्हें शीघ्र गलत्कुष्ठ का रोग हो जाय, तुम बुद्धिरहित और उपद्रवी होगे, इतना कहकर क्रोध से काँपता हुआ वह ब्राह्मण सभासदों को भी शाप देने के लिए तैयार हो गया। अनन्तर जो जहाँ हँस रहे थे, वे सभी सभासद लोग वहां से उठकर उसे प्रणाम करने लगे। (यह देख) वह ब्राह्मण भी क्रोधरहित हो गया ॥२७-३०॥ भय से कातर होकर राजा ने भी प्रणाम किया और वहाँ आकर रुदन करने लगा। उपरान्त हार्दिक वेदना का अनुभव करते हुए वह ब्राह्मण सभा-मध्य से निकल गया। उस ब्राह्मण का अतिगूढ़ रूप था क्योंकि ब्रह्मतेज से वह देदीप्यमान हो रहा था। उसके पश्चात् सभी मुनिगण भय से दुःखी होकर —'हे ब्राह्मण! ठहरो-ठहरो! ऐसा बार-बार कहते हुए उसके पीछे-पीछे जाने लगे। पुलह, पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, अंगिरा, मरीचि, कश्यप, वशिष्ठ, क्रतु, शुक्र, बृहस्पति, दुर्वासा, लोमश, गौतम, कणाद, कण्व, कात्यायन, कठ, पाणिनि, जाजलि, शृंगी ऋषि, विभाण्डक, तैत्तिरि, आपिशलि, महातपस्वी मार्कण्डेय, सनक, सनन्द, वोढु, पैल, सनातन, सनत्कुमार, भगवान् नर-नारायण ऋषि, पराशर, जरत्कारु, संवर्त्त,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

भरद्वाजश्च वाल्मीकिरौर्वश्च च्यवनस्तथा । अगस्त्योऽत्रिरुतथ्यश्च संकर्ताऽऽस्तीक आसुरिः ॥३८॥
शिलालिर्लाङ्गलिश्चैव शाकल्यः शाकटायनः । गर्गो वत्सः पञ्चशिखो जमदग्निश्च देवलः ॥३९॥
जैगीषव्यो वामदेवो बालखिल्यादयस्तथा । शक्तिर्दक्षः कर्दमश्च प्रस्कन्नः कपिलस्तथा ॥४०॥
विश्वामित्रश्च कौत्सश्चाप्यृचीकोऽप्यघमर्षणः । एते चान्ये च मुनयः पितरोऽग्निर्हरिप्रियाः[1] ॥४१॥
दिक्पाला देवताः सर्वा विप्रं पश्चात्समाययुः । ब्राह्मणं बोधयामासुर्वासयामासुरीश्वरि ॥४२॥
समूचुस्तं क्रमेणैव नीतिं नीतिविशारदाः ॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपाख्यानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

किमूचुर्ब्राह्मणं ब्रह्मन्ब्राह्मणा ब्रह्मणः सुताः । नीतिज्ञा नीतिवचनं तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

महादेव उवाच

संतोष्य तं ब्राह्मणं च स्तवेन विनयेन च । क्रमेण वक्तुमारेभे मुनिसंघो वरानने ॥२॥

करभ, भरद्वाज, वाल्मीकि, और्व, च्यवन, अगस्त्य, अत्रि, उतथ्य, संकर्ता, आस्तीक, आसुरि, शिलालि, लांगलि, शाकल्य, शाकटायन, गर्ग, वत्स, पंचशिख, जमदग्नि, देवल, जैगीषव्य, वामदेव और बालखिल्यादि, शक्ति, दक्ष, कर्दमप्रस्कन्न, कपिल, विश्वामित्र, कौत्स, ऋचीक एवं अघमर्षण तथा इनके अतिरिक्त अन्य मुनिवृन्द, पितरगण, अग्नि, हरिप्रिया, दिक्पाल और सभी देवगण भी वहाँ आये । हे ईश्वरि! वे सब, ब्राह्मण को रोककर समझाने लगे। वे नीति-कुशल लोग क्रमशः नीति की बात कहने लगे ॥३१-४३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायणसंवादविषयक हरगौरी-संवाद के राधोपाख्यान में सुयज्ञोपाख्यान-कथन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥५०॥

अध्याय ५१

ऋषियों द्वारा पाप एवं पाप-फल का वर्णन

पार्वती बोलीं—हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा के पुत्र उन ब्राह्मणों ने, जो नीति के ज्ञाता थे, उस ब्राह्मण से कौनसी नीति की बातें कही थीं, मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

महादेव बोले—हे वरानने! उस मुनिवृन्द ने क्रमशः अनुनय-विनयपूर्वक उस ब्राह्मण को संतुष्ट करते हुए (नीति की बातें) कहना आरम्भ किया ॥२॥

---

१ क. °हविःप्रियाः ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सनत्कुमार उवाच

त्वत्पश्चादागता लक्ष्मीः कीर्तिः सत्त्वं यशस्तथा । सुशीलं च महैश्वर्यं पितरोऽग्निः सुरास्तथा ॥३॥
आगता नृपगेहेभ्यः कृत्वा भ्रष्टश्रियं नृपम् । भव तुष्टो द्विजश्रेष्ठ चाऽऽशुतोषश्च वाडवः ॥४॥
ब्राह्मणानां तु हृदयं कोमलं नवनीतवत् । शुद्धं सुनिर्मलं चैव मार्जितं तपसा मुने ॥५॥
क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् । आशिषं कुरु तस्मै त्वं पवित्रपदरेणुना ॥६॥

भृगुरुवाच

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । पितरस्तस्य देवाश्च वह्निश्चैव तथैव च ॥७॥
निराशाः प्रतिगच्छन्ति चातिथेरप्रतिग्रहात् । क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥८॥
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः । तुल्यदोषो भवत्येतैर्यस्यातिथिरनर्चितः ॥९॥

पुलस्त्य उवाच

पश्यन्ति ये वक्रदृष्ट्या चातिथिं गृहमागतम् । दत्त्वा स्वपापं तस्मै तत्पुण्यमादाय गच्छति ॥१०॥
क्षमस्व नृपदोषं च गच्छ वत्स यथासुखम् । राजा स्वकर्मदोषेण नोत्तस्थौ तत्क्षमां कुरु ॥११॥

सनत्कुमार बोले—तुम्हारे पीछे ही लक्ष्मी, कीर्ति, सत्त्व (बल), यश, सुशील, महान् ऐश्वर्य, पितरगण और अग्नि समेत सभी देवता लोग राजा को श्री (राजलक्ष्मी) हीन कर उसके घर से चले आये। हे द्विजश्रेष्ठ! अब प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि ब्राह्मण आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न) होते हैं। हे मुने! ब्राह्मणों का हृदय नवनीत (मक्खन) की भाँति कोमल होता है और तप द्वारा मार्जन (सफाई) करने के नाते शुद्ध एवं अति निर्मल होता है॥३-५॥ अतः हे विप्रेन्द्र! क्षमा करो और आकर राजा का घर चरणरेणु (धूलि) द्वारा शुद्ध करते हुए उसे आशीर्वाद प्रदान करो॥६॥

भृगु बोले—अतिथि (अभ्यागत) जिसके घर से निराश होकर लौट जाते हैं, उसके पितरगण, देवगण और अग्नि ये सभी उस अतिथि के प्रतिग्रह (दान-भिक्षा) न लेने के कारण उस घर से निराश होकर चले जाते हैं। अतः हे विप्रेन्द्र! क्षमा करो! और चल कर राजा का घर शुद्ध करो, क्योंकि जिसके यहाँ अतिथि की पूजा नहीं होती है, उसे स्त्रीहत्या, गोहत्या, कृतघ्नता, ब्रह्महत्या और गुरुपत्नीगामित्व के समान दोष लगता है॥७-९॥

पुलस्त्य बोले—घर आये हुए अभ्यागत को जो टेढ़ी आँख से देखता है, वह अतिथि उसे अपना समस्त पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है॥१०॥ अतः हे वत्स! राजा का यह दोष क्षमा करो, सुखपूर्वक जाओ, राजा अपने कर्मदोषवश (स्वागतार्थ) नहीं उठ सके, उसे क्षमा करो॥११॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पुलह उवाच

राजश्रिया विद्यया वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते । विप्रस्त्रिसंध्यहीनो यः श्रीहीनः क्षत्रियो भवेत् ॥१२॥
एकादशीविहीनश्च विष्णुनैवेद्यवञ्चितः । क्षमस्वाऽऽगच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥१३॥

ऋतुरुवाच

ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा शूद्र एव च । दीक्षाहीनो भवेत्सोऽपि ब्राह्मणं योऽवमन्यते ॥१४॥
धनहीनः पुत्रहीनो भार्याहीनो भवेद्ध्रुवम् । क्षमस्वाऽऽगच्छ भगवञ्छुद्धं कुरु नृपालयम् ॥१५॥

अङ्गिरा उवाच

ज्ञानवान्ब्राह्मणो भूत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते । वृषवाहो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु ॥१६॥

मरीचिरुवाच

पुण्यक्षेत्रे भारते च देवं च ब्राह्मणं गुरुम् । विष्णुभक्तिविहीनश्च स भवेद्योऽवमन्यते ॥१७॥

कश्यप उवाच

वैष्णवं ब्राह्मणं दृष्ट्वा यो हसत्यवमन्यते । विष्णुमन्त्रविहीनश्च तत्पूजाविरतो भवेत् ॥१८॥

प्रचेता उवाच

अतिथिं ब्राह्मणं दृष्ट्वा नाभ्युत्थानं करोति यः । पितृमातृभक्तिहीनः स भवेद्भारते भुवि ॥१९॥

पुलह बोले—जो क्षत्रिय या ब्राह्मण राजलक्ष्मी अथवा विद्या द्वारा किसी ब्राह्मण का अनादर करता है, वह क्षत्रिय श्रीहीन होता और ब्राह्मण तीनों कालकी संध्या (कर्म) से हीन, एकादशीव्रतविहीन एवं भगवान् विष्णु के नैवेद्य से वञ्चित हो जाता है। अतः हे विप्रेन्द्र! क्षमा करो, आओ राजा का घर पवित्र करो॥१२-१३॥

ऋतु बोले—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, जो कोई ब्राह्मण का अपमान करता है, वह दीक्षाहीन, धनरहित, पुत्रहीन और निश्चित स्त्रीहीन हो जाता है। अतः हे भगवन्! क्षमा करो और चलकर राजा का गृह शुद्ध करो। ॥१४-१५॥

अंगिरा बोले—ब्राह्मण ज्ञानी होकर यदि किसी ब्राह्मण का अपमान करता है, वह भारत में सात जन्मों तक 'वृषवाह' (बैल द्वारा किसी भाँति जीविका चलाने वाला) होता है॥१६॥

मरीचि बोले—इस पुण्य प्रदेश भारत में जो देवता, ब्राह्मण तथा गुरु का अपमान करता है, वह भगवान् विष्णु की भक्ति से सदा रहित हो जाता है॥१७॥

कश्यप बोले—जो वैष्णव ब्राह्मण को देखकर हँसता है और उसका अपमान करता है वह भगवान् विष्णु के मन्त्र और उनकी पूजा से विरत हो जाता है॥१८॥

प्रचेता बोले—ब्राह्मण अभ्यागत को देखकर जो (आसन से) उठता नहीं है, वह भारत-भूतल पर माता-पिता

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्राप्नोति [1]कौञ्जरीं योनिं स मूढः सप्तजन्मसु। शीघ्रं गच्छ द्विजश्रेष्ठ राज्ञे देह्याशिषः शुभाः ॥२०॥

दुर्वासा उवाच

गुरुं वा ब्राह्मणं वाऽपि देवताप्रतिमामपि। दृष्ट्वा शीघ्रं न प्रणमेत्स भवेत्सूकरो भुवि ॥२१॥
मिथ्यासाक्षी च भवति तथा विश्वासघातकः। क्षमस्व सर्वमस्माकमातिथ्यग्रहणं कुरु ॥२२॥

राजोवाच

छलेन कथितो धर्मो युष्माभिर्मुनिपुंगवैः। सर्वं कृत्वा च विस्पष्टं मां मूढं बोधयन्त्वहो ॥२३॥
स्त्रीघ्नगोघ्नकृतघ्नानां गुरुस्त्रीगामिनां तथा। ब्रह्मघ्नानां च को दोषो ब्रूत मां योगिनां वराः ॥२४॥

वसिष्ठ उवाच

कामतो गोवधे राजन्वर्षं तीर्थं भ्रमेन्नरः। यवयावकभोजी च करेण च जलं पिबेत् ॥२५॥
तदा धेनुशतं दिव्यं ब्राह्मणेभ्यः सदक्षिणम्। दत्त्वा मुञ्चति पापाच्च भोजयित्वा शतं द्विजान् ॥२६॥
प्रायश्चित्ते तु वै चीर्णे सर्वपापान्न मुच्यते। पापावशेषाद्भवति दुःखी चाण्डाल एव च ॥२७॥
आतिदेशिकहत्यायां तदर्धं फलमश्नुते। प्रायश्चित्तानुकल्पेन सर्वपापान्न मुच्यते ॥२८॥

की भक्ति से विहीन होता है ॥१९॥ और वह मूर्ख सात जन्मों तक हाथी की योनि में उत्पन्न होता है। हे द्विजश्रेष्ठ ! शीघ्र चलकर राजा को शुभाशिष प्रदान करो ॥२०॥

दुर्वासा बोले—गुरु, ब्राह्मण और देवता की प्रतिमा देखकर जो सहसा प्रणाम नहीं करता है, वह पृथिवी पर सूकर होकर उत्पन्न होता है, तथा झूठा गवाह और विश्वासघाती होता है। अतः हम लोगों का सब (अपराध) क्षमा करके (राजा द्वारा की गयी) अतिथि-सेवा स्वीकार करो ॥२१-२२॥

राजा बोले—आप मुनीन्द्रों ने धर्म का प्रतिपादन छल से किया है, अतः अत्यन्त स्पष्ट रूप से मुझ मूर्ख को बोध कराने की कृपा कीजिये ॥२३॥ हे श्रेष्ठ योगिवृन्द ! स्त्रीहत्या एवं गोहत्या करने वाले, कृतघ्न, गुरु-स्त्री के साथ भोग करने वाले और ब्राह्मण की हत्या करने वाले को कौन दोष होता है, मुझे बताने की कृपा करें ॥२४॥

वसिष्ठ बोले—हे राजन् ! गोवध की इच्छा रख कर जो गोहत्या करता है, उस मनुष्यको एक वर्ष तीर्थाटन करना चाहिए और यव की लप्सी का भोजन करते हुए हाथ से जल पीना चाहिए ॥२५॥ पश्चात्दक्षिणा समेत सौ उत्तम गौएँ ब्राह्मणों को समर्पित करके सौ ब्राह्मणों को भोजन कराये, इससे वह पापमुक्त हो जाता है ॥२६॥ किन्तु, प्रायश्चित्त करने पर भी वह समस्त पापों से मुक्त नहीं होता है और इसी कारण उसे दुःखी और चाण्डाल होना पड़ता है ॥२७॥ यदि किसी के कहने से वह हत्या करता है, तो उसे आधे फल का भागी होना पड़ता है और वह भी प्रायश्चित्त करने से समस्त पापों से मुक्त नहीं होता है ॥२८॥

---

१ क. सौकरीं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

शुक्र उवाच

गोहत्याद्विगुणं पापं स्त्रीहत्यायां भवेद्ध्रुवम् । षष्टिवर्षसहस्राणि कालसूत्रे वसेद्ध्रुवम् ॥२९॥
ततो भवेन्महापापी सूकरः सप्तजन्मसु । ततो भवति सर्पश्च सप्तजन्मन्यतः शुचिः ॥३०॥

बृहस्पतिरुवाच

स्त्रीहत्याद्विगुणं पापं ब्रह्महत्याकृतो भवेत् । लक्षवर्षं महाघोरे कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम् ॥३१॥
ततो भवेन्महापापी विष्ठाकीटः शताब्दकम् । ततो भवति सर्पश्च सप्तजन्मन्यतः शुचिः ॥३२॥

गौतम उवाच

दोषः कृतघ्ने राजेन्द्र ब्रह्महत्याचतुर्गुणः । निष्कृतिर्नास्ति वेदोक्ता कृतघ्नानां च निश्चितम् ॥३३॥

राजोवाच

लक्षणं च कृतघ्नानां वद वेदविदां वर । कृतघ्नः कतिधा प्रोक्तः केषु को दोष एव च ॥३४॥

ऋष्यशृङ्ग उवाच

कृतघ्नाः षोडशविधाः सामवेदे निरूपिताः । सर्वः प्रत्येकदोषेण प्रत्येकं फलमश्नुते ॥३५॥
कृते सत्ये च पुण्ये च स्वधर्मे तपसि स्थिते । प्रतिज्ञायां च दाने च स्वगोष्ठीपरिपालने ॥३६॥
गुरुकृत्ये देवकृत्ये काम्यकृत्ये द्विजार्चने । नित्यकृत्ये च विश्वासे परधर्मप्रदानयोः ॥३७॥
एतान्यो हन्ति पापिष्ठः स कृतघ्न इति स्मृतः । एतेषां सन्ति लोकाश्च तज्जन्म भिन्नयोनिषु ॥३८॥

शुक्र बोले—गोहत्या से दुगुना पाप स्त्रीहत्या में होता है, जिससे उसे कालसूत्र नामक नरक में साठ सहस्र वर्ष तक निश्चित ही रहना पड़ता है ॥२९॥ पश्चात् वह महापापी सात जन्मों तक सूकर और उसके पश्चात् सात जन्मों तक सर्प होता है, अनन्तर शुद्ध हो जाता है ॥३०॥

बृहस्पति बोले—स्त्री हत्या का दुगुना पाप ब्रह्महत्या करने से होता है, जिससे उसे लाख वर्ष तक महाघोर कुम्भीपाक नरक में निश्चित रूप से रहना पड़ता है ॥३१॥ अनन्तर वह महापापी सौ वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा और सात जन्मों तक सर्प होता है, पश्चात् शुद्ध हो जाता है ॥३२॥

गौतम बोले—हे राजेन्द्र ! कृतघ्न को ब्रह्महत्या से चौगुना पाप लगता है और यह निश्चित है कि—वेदों में कृतघ्नों का उद्धार नहीं बताया गया है ॥३३॥

राजा बोले—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! कृतघ्नों का लक्षण, उसका भेद और किसे कौन दोष होता है, बताने की कृपा करें ॥३४॥

ऋष्यशृंग बोले—सामवेद में सोलह प्रकार के कृतघ्न बताये गये हैं, सबको प्रत्येक दोष का प्रत्येक फल भोगना पड़ता है ॥३५॥ उपकार, सत्य, पुण्य कार्य, अपने धर्म एवं तपस्या में लगे रहने, प्रतिज्ञा, दान और अपनी गोष्ठी (संख्या) का पालन करने में तथा गुरु कार्य, देवकार्य, काम्यकर्म, ब्राह्मण-पूजन, नित्य कर्म, के विश्वास, परधर्म और प्रदान कर्म में जो पापिष्ठ बाधक होता है, वही कृतघ्न कहा गया है। इन पापियों के

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यान्यांश्च नरकांस्ते च यान्ति राजेन्द्र पापिनः। ते ते च नरकाः सन्ति यमलोके सुनिश्चितम् ॥३९॥

सुयज्ञ उवाच

के किं कृत्वा कृतघ्नाश्च कान्कान्गच्छन्ति रौरवान्। प्रत्येकं श्रोतुमिच्छामि वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥४०॥

कात्यायन उवाच

कृत्वा शपथरूपं च सत्यं हन्ति न पालयेत्। स कृतघ्नः कालसूत्रे वसेदेव चतुर्युगम् ॥४१॥
सप्तजन्मसु काकश्च सप्तजन्मसु पेचकः। ततः शूद्रो महाव्याधिः सप्तजन्मस्वतः शुचिः ॥४२॥

सनन्दन उवाच

पुण्यं कृत्वा वदत्येव कीर्तिवर्धनहेतुना। स कृतघ्नस्तप्तसूर्म्यां वसत्येव युगत्रयम् ॥४३॥
पञ्चजन्मसु मण्डूकस्त्रिषु जन्मसु कर्कटः। तदा मूको महाव्याधिर्दरिद्रश्च ततः शुचिः ॥४४॥

सनातन उवाच

स्वधर्मं हन्ति यो विप्रः संध्यात्रयविवर्जितः। अतर्पयंश्च यत्स्नाति विष्णुनैवेद्यवर्जितः ॥४५॥
विष्णुपूजाविष्णुभक्तिविष्णुमन्त्रविहीनकः। एकादशीविहीनः श्रीकृष्णजन्मदिने तथा ॥४६॥
शिवरात्रौ च यो भुङ्क्ते श्रीरामनवमीदिने। पितृकृत्यादिहीनो यः स कृतघ्न इति स्मृतः ॥४७॥

पृथक्-पृथक् लोक हैं और भिन्न-भिन्न योनियों में इनके जन्म होते हैं ॥३६-३८॥. हे राजेन्द्र! ये पापी जिन-जिन नरकों में जाते हैं, वे यमलोक में निश्चित रूप से विद्यमान हैं ॥३९॥

सुयज्ञ बोले—हे प्रभो! वे (मनुष्य) क्या-क्या करके कृतघ्न होते हैं और किस-किस रौरव नरक में जाते हैं, मुझे प्रत्येक को सुनने की इच्छा है, अतः बताने की कृपा करें ॥४०॥

कात्यायन बोले—शपथ (सौगन्ध) करके सत्य का पालन न कर जो उसका हनन करता है, वह कृतघ्न चार युगों तक कालसूत्र नामक नरक में निश्चित रहता है ॥४१॥ अनन्तर सात जन्मों तक कौवा, सात जन्मों तक उल्लू पक्षी और सात जन्मों तक महारोगी शूद्र होता है अनन्तर शुद्ध हो जाता है ॥४२॥

सनन्दन बोले—पुण्य करके जो अपनी कीर्ति बढ़ाने के हेतु उसे कहता है, वह कृतघ्न तप्तसूर्मी नामक नरक में तीन युग तक निवास करता है ॥४३॥ पश्चात् पांच जन्मों तक मेढक, तीन जन्मों तक केंकड़ा होकर गूंगा, महारोगी एवं दरिद्र मनुष्य होता है, अनन्तर शुद्ध होता है ॥४४॥

सनातन बोले—जो ब्राह्मण तीनों काल के सन्ध्या कर्म से रहित होकर स्वधर्म का हनन करता है, बिना तर्पण का स्नान करता है, भगवान् विष्णु को बिना भोग लगाये भोजन करता है, विष्णु की पूजा, विष्णु की भक्ति, विष्णु के मन्त्र तथा एकादशी व्रत से हीन रहकर भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म दिन (भादों की कृष्णाष्टमी), शिवरात्रि और रामनवमी के दिन भोजन करता है एवं पितरों के कृत्य (कर्म) से हीन रहता है, वह 'कृतघ्न' कहा जाता है ॥४५-४७॥ इन पापों से वह कुम्भीपाक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक निवास करता है।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कुम्भीपाके वसत्येव [1]यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततश्चाण्डालतां याति सप्तजन्मसु निश्चितम् ॥४८॥
शतजन्मनि गृध्रश्च शतजन्मनि सूकरः । ततो भवेद्ब्राह्मणश्च शूद्राणां सूपकारकः ॥४९॥
ततो भवेज्जन्मसप्त ब्राह्मणो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च भवेत्सप्तसु जन्मसु ॥५०॥
द्विजो भूत्वा सप्तजनौ भारते वृषलीपतिः । भुक्त्वा स्वभोगलेशं च भ्रमित्वा याति रौरवम् ॥५१॥
पुनः पुनः पापयोनिं नरकं च पुनः पुनः । ततो भवेद्गर्दभश्च मार्जारः पञ्चजन्मसु ॥५२॥
पञ्चजन्मसु मण्डूको भवेच्छुद्धस्ततः क्रमात् ॥५३॥

सुयज्ञ उवाच–

शूद्राणां सूपकरणे शूद्राणां शवदाहने । शूद्रान्नभोजने वाऽपि शूद्रस्त्रीगमनेऽपि च ॥५४॥
ब्राह्मणानां च को दोषो वृषाणां वाहने तथा । एतान्सर्वान्समालोच्य ब्रूहि मां निश्चितं मुने ॥५५॥

पराशर उवाच–

शूद्राणां सूपकारश्च यो विप्रो ज्ञानदुर्बलः । असिपत्रे वसत्येव [2]युगानामेकसप्ततिः ॥५६॥
ततो भवेद्गर्दभश्च मूषकः सप्तजन्मसु । तैलकीटः सप्तजन्मस्वतः शुद्धो भवेन्नरः ॥५७॥

जरत्कारुरुवाच

भृत्यद्वारा स्वयं वाऽपि यो विप्रो वृषवाहकः । स कृतघ्न इति ख्यातः प्रसिद्धो भारते नृप ॥५८॥

पश्चात् निश्चित रूप से सात जन्मों तक चाण्डाल, सौ जन्मों तक गीध और सौ जन्मों तक सूकर होने के उपरान्त शूद्रों का भण्डारी होता है। अनन्तर सात जन्मों तक वृषवाहक (बैल पर लादने का कार्यकारी), सात जन्मों तक शूद्रों के शव (मुर्दे) का दाह करने वाला, पुनः सात जन्मों तक भारत में वृषली (शूद्रा स्त्री) का पति ब्राह्मण होता है। इस भाँति अपने भोग के लेशमात्र शेष रहने पर रौरव नरक का चक्कर काटते हुए पुनः पापयोनि में जन्म ग्रहण करता है और पश्चात् पुनः नरक प्राप्त करता है। उपरान्त पाँच जन्मों तक गधा, बिल्ली और पाँच जन्मों तक मेढक होकर अन्त में क्रमशः शुद्ध होता है॥४८-५३॥

सुयज्ञ बोले—मुने ! शूद्रों के भण्डारी होने, उनके शव (मुर्दे) के दाही बनने, शूद्रों के अन्न भोजन करने और उनकी स्त्रियों से भोग करने पर तथा वृषवाहक होने पर ब्राह्मणों को कौन दोष लगता है, इन्हें विवेचनापूर्वक बताने की कृपा करें॥५४-५५॥

पराशर बोले—ज्ञान की दुर्बलता के कारण जो ब्राह्मण शूद्रों का भण्डारी होता है, वह इकहत्तर युगों तक असिपत्र नामक नरक में रहता है॥५६॥ पश्चात् सात जन्मों तक गधा, चूहा और सात जन्मों तक तेल का कीड़ा होकर अन्त में वह शुद्ध हो जाता है॥५७॥

जरत्कारु बोले—हे नृप ! जो ब्राह्मण भृत्य (नौकर) द्वारा अथवा स्वयं वृषवाहक (बैलों द्वारा जोतने लादने) का कार्य करता है, वह भारत में 'कृतघ्न' रूप में प्रख्यात होता है॥५८॥ बैलों को (उस कार्य में) नित्य मारने-पीटने

---

१ क. ०वच्चन्द्रदिवाकरौ। २ क. ०कविंशतिः।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्महत्यासमं पापं तन्नित्यं वृषताडने। वृषपृष्ठे भारदानात्पापं तद्द्विगुणं भवेत् ॥५९॥
सूर्यातपे वाहयेद्यः क्षुधितं तृषितं वृषम्। ब्रह्महत्याशतं पापं लभते नात्र संशयः ॥६०॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं विप्राणां वृषवाहिनाम्। पितरो नैव गृह्णन्ति तेषां श्राद्धं च तर्पणम् ॥६१॥
देवता नहि गृह्णन्ति तेषां पुष्पं फलं जलम्। ददाति यदि दम्भेन विपाताय प्रकल्पते ॥६२॥
यो भुङ्क्ते कामतोऽन्नं च ब्राह्मणो वृषवाहिनाम्। नाधिकारो भवेत्तेषां पितृदेवार्चने नृप ॥६३॥
[1]लालाकुण्डे वसत्येव [2]यावच्चन्द्रदिवाकरौ। विष्ठा भक्ष्यं मूत्रजलं तत्र तस्य भवेद्ध्रुवम् ॥६४॥
त्रिसंध्यं ताडयेत्तं च शूलेन यमकिंकरः। उल्कां ददाति मुखतः सूच्या कृन्तति संततम् ॥६५॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत्। ततः काकः पञ्चजन्मस्वथैवं बक एव च ॥६६॥
पञ्चजन्मसु गृध्रश्च शृगालः सप्तजन्मसु। ततो दरिद्रः शूद्रश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः ॥६७॥

भरद्वाज उवाच

शूद्राणां शवदाही यः स कृतघ्न इति स्मृतः। [3]वयःप्रमाणां राजेन्द्र ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम्
तत्तुल्ययोनिभ्रमणात्तत्तुल्यनरकाच्छुचिः ॥६८॥
यो दोषो ब्राह्मणानां च शूद्राणां शवदाहने। तावदेव भवेद्दोषः शूद्रश्राद्धान्नभोजने ॥६९॥

से ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है और उनके ऊपर भार (बोझ) लादने से उसका दुगुना पाप होता है ॥५९॥ इस प्रकार सूर्य के (प्रचण्ड) धूप में जो भूखे-प्यासे बैलों को अपने (जोतने-लादने के) काम में लगाये रहता है उसे सौ ब्रह्म-हत्या के समान पाप होता है, इसमें संशय नहीं ॥६०॥ हे नृप! उन वृषवाही (बैलों द्वारा जोतने-लादने के काम करने वाले) ब्राह्मणों का अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है तथा उनके श्राद्ध-तर्पण को पितर लोग ग्रहण नहीं करते हैं। देवता भी उनका फूल, फल एवं जल ग्रहण नहीं करते हैं। जो ब्राह्मण स्वेच्छा से वृषवाहकों का अन्न भोजन करता है, उसे पितृकार्य एवं देवकार्य (पूजादि) में अधिकार भी नहीं रहता है। (इस कारण) चंद्रमा और सूर्य के समय तक उसे लाला (लार) कुण्ड नरक में रहते हुए विष्ठा भोजन और मूत्र पान निश्चित ही करना पड़ता है। यमराज के सेवक शूल द्वारा तीनों संध्याओं में उसे ताड़ना देते हैं, मुख में जलती हुई लकड़ी डाल देते और सूई से शरीर में निरन्तर छेदते रहते हैं। पश्चात् साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा, पाँच जन्मों तक कौवा और बगुला, पाँच जन्मों तक गीध और सात जन्मों तक सियार होता है। अनन्तर दरिद्र और महारोगी शूद्र होकर उसके पश्चात् शुद्ध होता है ॥६१-६७॥

भरद्वाज बोले—हे राजेन्द्र! जो शूद्रों का शव (मुर्दा) दाह करता है, वह कृतघ्न कहा गया है, उसे (अपनी) अवस्थानुसार निश्चित ब्रह्महत्या लगती है। अनन्तर उसी के समान योनियों में भ्रमण करते हुए उसी के समान नरक कुण्डों में जाता है और अन्त में शुद्ध होता है। शूद्रों के शव (मुर्दे) जलाने के कार्य करने से ब्राह्मणों को जो दोष प्राप्त होता है, शूद्रों के श्राद्धान्न भोजन करने में भी वही दोष उन्हें लगता है ॥६८-६९॥

---

१ क. ०लाभक्षे व०। २ क. ०वदिन्द्राश्चतुर्दश। ३ क. ०शवप्र०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

विभाण्डक उवाच

पितृश्राद्धे च शूद्राणां भुङ्क्ते यो ब्राह्मणोऽधमः। सुरापीती ब्रह्मघाती पितृदेवार्चनाद्बहिः ॥७०॥

मार्कण्डेय उवाच

यो दोषो ब्राह्मणानां च शूद्रस्त्रीगमने नृप। अहं वक्ष्यामि वेदोक्तं सावधानं निशामय ॥७१॥
कृतघ्नानां प्रधानश्च यो विप्रो वृषलीपतिः। कृमिदंष्ट्रे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥७२॥
कृमिभक्ष्यो भवेद्विप्रो विद्धश्च यमकिंकरैः। प्रतिमायां तप्तलौह्यामाश्लेषयति नित्यशः ॥७३॥
ततश्च पुंश्चलीयोनौ कृमिर्भवति निश्चितम्। एवं वर्षसहस्रं च ततः शूद्रस्ततः शुचिः ॥७४॥

सुयज्ञ उवाच

अन्येषां च कृतघ्नानां वद कर्मफलं मुने। श्लाघ्यो मे ब्रह्मशापश्च कस्य संपद्विनाऽऽपदम् ॥७५॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम। आगतास्तु यतो मुक्ता मद्गेहे मुनयः सुराः ॥७६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० नृपमुनिसं० राधोपा० कर्मविपाको नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

विभाण्डक बोले—शूद्रों के यहाँ पितृश्राद्ध में जो अधम ब्राह्मण भोजन करता है, वह मद्यपायी और ब्रह्म-घाती के समान पितर एवं देवों की अर्चना कार्य से सदैव बाहर रहता है ॥७०॥

मार्कण्डेय बोले—हे नृप! शूद्र की स्त्री के साथ रति करने पर जो वेदोक्त दोष ब्राह्मणों को प्राप्त होता है, वह मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। जो (ब्राह्मण) वृषली (शूद्र स्त्री) का पति होता है, वह कृतघ्नों में प्रधान माना जाता है और चौदहों इन्द्रों के समय तक कृमिदंष्ट्र (कीड़े काटने के) नरक में रहता है। वहाँ उसे कीड़े (काट-काट कर) खाते हैं, (ऊपर से) यमदूत ताड़ना देकर दुःखी करते हैं और (उस स्त्री की) जलती हुई लोह-मूर्ति का उसे नित्य आलिंगन करना पड़ता है। पश्चात् पुंश्चली स्त्री के भग में कीड़ा होकर वह निश्चित उत्पन्न होता है। इस भाँति सहस्र वर्ष बीतने पर शूद्र होता है और पश्चात् शुद्ध हो जाता है ॥७१-७४॥

सुयज्ञ बोले—हे मुने! अन्य कृतघ्नों के कर्मफल बताने की कृपा करें! हमें तो ब्रह्मशाप प्रशस्त मालूम हो रहा है। बिना आपत्ति के सम्पत्ति नहीं मिलती है। हम धन्य, कृतकृत्य हो गये, हमारा जीवन सफल हो गया; क्योंकि हमारे घर मुक्त मुनिवृन्द और देवगण पधारे हैं ॥७५-७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत राधोपाख्यान में कर्मविपाक-कथन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५१॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीपार्वत्युवाच

अन्येषां च कृतघ्नानां यद्यत्कर्मफलं प्रभो। तेषां किमूचुर्मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥१॥

श्रीमहेश्वर उवाच

प्रश्नं कुर्वति राजेन्द्रे सर्वेषु मुनिषु प्रिये। तत्र प्रवक्तुमारेभे ऋषिर्नारायणो महान् ॥२॥

श्रीनारायण उवाच

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः। स कृतघ्न इति ज्ञेयः फलं शृणु च भूमिप ॥३॥
यावन्तो रेणवः सिक्ता विप्राणां नेत्रबिंदुभिः। तावद्वर्षसहस्रं च शूलपोते स तिष्ठति ॥४॥
तप्ताङ्गारं च तद्भक्ष्यं पानं वै तप्तमूत्रकम्। तप्ताङ्गारे च शयनं ताडितो यमकिंकरैः ॥५॥
तदन्ते च महापापी विष्ठायां जायते कृमिः। षष्टिवर्षसहस्राणि देवमानेन भारते ॥६॥
ततो भवेद्भूमिहीनः प्रजाहीनश्च मानवः। दरिद्रः कृपणो रोगी शूद्रो निन्द्यस्ततः शुचिः ॥७॥

नारद उवाच

हन्ति यः परकीर्तिं च स्वकीर्तिं वा नराधमः। स कृतघ्न इति ख्यातस्तत्फलं च निशामय ॥८॥

अध्याय ५२

पार्वती बोलीं—हे प्रभो! अन्य कृतघ्नों के कर्मफल के विषय में वेद-वेदांग के पारगामी मुनियों ने क्या कहा? ॥१॥

महेश्वर बोले—हे प्रिये! समस्त मुनियों से राजेन्द्र (सुयज्ञ) के प्रश्न करने पर महान् ऋषि नारायण ने कहना आरम्भ किया ॥२॥

नारायण बोले—हे भूमिप! अपने द्वारा अथवा दूसरे द्वारा दी गयी ब्रह्म-वृत्ति (ब्राह्मण-जीविका) का जो अपहरण करता है, वह कृतघ्न कहा जाता है, उसका फल कह रहा हूँ, सुनो! (उस समय) ब्राह्मण के आँसुओं से जितनी भूमि की धूलि भीग जाती है, उतने रेणु के सहस्र वर्ष प्रमाण वह शूलपोत नामक नरक में रहता है। वहाँ तप्त अंगारों का भक्षण, संतप्त मूत्रजलों का पान और तप्त अंगारों पर शयन करते हुए वह (ऊपर से) यमदूतों द्वारा ताड़ित होता रहता है ॥३-५॥ पश्चात् वह महापापी भारत में देवों के वर्षमान के हिसाब से साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होकर उत्पन्न होता रहता है ॥६॥ अनन्तर भूमिरहित, संतानहीन, दरिद्र, कृपण (कंजूस), रोगी और निन्दित शूद्र होकर शुद्ध होता है ॥७॥

नारद बोले—जो अधम मनुष्य अपनी कीर्ति या दूसरे की कीर्ति को नष्ट करता है, वह कृतघ्न कहा गया है, उसका फल कह रहा हूँ, सुनो ॥८॥ हे नृप! चौदहों इन्द्रों के समय तक वह अन्धकूप नामक नरक में

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अन्धकूपे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । कीटैर्नकुलगृध्रैश्च भक्षितः सततं नृप ॥९॥
तप्तक्षारोदकं पापी नित्यं पिबति वै ततः । सप्तजन्मस्वतः सर्पः काकः पञ्चस्वतः शुचिः ॥१०॥

देवल उवाच

ब्रह्मस्वं वा गुरुस्वं वा देवस्वं वाऽपि यो हरेत् । स कृतघ्न इति ज्ञेयो महापापी च भारते ॥११॥
अवटोदे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततो भवेत्सुरापी स ततः शूद्रस्ततः शुचिः ॥१२॥

जैगीषव्य उवाच

पितृमातृगुरूंश्चापि भक्तिहीनो न पालयेत् । वाचाऽपि ताडयेत्तांश्च स कृतघ्न इति स्मृतः ॥१३॥
वाचा च ताडयेन्नित्यं स्वामिनं कुलटा च या । सा कृतघ्नीति विख्याता भारते पापिनी वरा ॥१४॥
वह्निकुण्डं महाघोरं तौ प्रयातः सुनिश्चितम् । तत्र वह्नौ वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ
ततो भवेज्जलौकाश्च सप्तजन्मस्वतः शुचिः ॥१५॥

वाल्मीकिरुवाच

यथा तरुषु वृक्षत्वं सर्वत्र न जहाति च । तथा कृतघ्नता राजन्सर्वपापेषु वर्तते ॥१६॥
मिथ्यासाक्ष्यं यो ददाति कामात्क्रोधात्तथा भयात् । सभायां पाक्षिकं वक्ति स कृतघ्न इति स्मृतः ॥१७॥
पुण्यमात्रं चापि राजन्यो हन्ति स कृतघ्नकः । सर्वत्रापि च सर्वेषां पुण्यहानौ कृतघ्नता ॥१८॥

रहता है और उसे कीड़े, नेवला और गीध निरन्तर खाया करते हैं॥८-९॥ वह पापी नित्य तप्त खारा जल पीता है। पश्चात् सात जन्मों तक सर्प और पाँच जन्मों तक कौवा होकर अनन्तर शुद्ध हो जाता है॥१०॥

देवल बोले—जो ब्राह्मण-धन, गुरु-धन, या देव-धन का अपहरण करता है, भारत में वह महापापी कृतघ्न कहा जाता है॥११॥ चौदहों इन्द्रों के समय तक वह अवटोद (खाईं वाले) नरक में रहता है। पश्चात् मद्य पीने वाला और शूद्र होकर अन्त में शुद्ध हो जाता है॥१२॥

जैगीषव्य बोले—जो भक्तिरहित होकर माता, पिता और गुरु का पालन नहीं करता है और कड़ुवी बातों से उन्हें दुःखी करता है, वह 'कृतघ्न' कहा गया है। उसी भाँति जो कुलटा (व्यभिचारिणी) स्त्री अपने पति को कड़वी बातों से दुःखी करती है, भारत में वह पापिनी प्रधान एवं विख्यात 'कृतघ्नी' कही जाती है। वे दोनों महाघोर अग्निकुण्ड नरक में निश्चित जाते हैं। वहाँ चन्द्रमा-सूर्य के समय तक रह कर पश्चात् सात जन्मों तक जलौका (जोंक) होकर अन्त में शुद्ध होते हैं॥१३-१५॥

वाल्मीकि बोले—हे राजन्! वृक्षों में सर्वत्र वर्तमान वृक्षत्व धर्म की भाँति कृतघ्नता भी सभी पापों में वर्तमान रहती है॥१६॥ जो काम, क्रोध अथवा भयवश झूठी गवाही या सभा में किसी का पक्ष लेकर कहता है वह कृतघ्न कहा जाता है॥१७॥ हे राजन्! जो पुण्य मात्र का हनन करता है, वह कृतघ्न है। क्योंकि सभी जगह पुण्यों का नाश होने पर सभी को कृतघ्न होना पड़ता है॥१८॥ हे नृप! भारत में जो झूठी गवाही या किसी का पक्ष

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मिथ्यासाक्ष्यं पाक्षिकं वा भारते वक्ति यो नृप। यावदिन्द्रसहस्रं च सर्पकुण्डे वसेद्ध्रुवम् ॥१९॥
संततं वेष्टितः सर्पैर्भीतो वै भक्षितस्तथा। भुङ्क्ते च सर्पविण्मूत्रं यमदूतेन ताडितः ॥२०॥
कृकलासो भवेत्तत्र भारते सप्तजन्मसु। सप्तजन्मसु मण्डूकः पितृभिः सप्तभिः सह ॥२१॥
ततो भवेद्वै वृक्षश्च महारण्ये तु शाल्मलिः। ततो भवेन्नरो मूकस्ततः शूद्रस्ततः शुचिः ॥२२॥

आस्तीक उवाच

गुर्वङ्गनानां गमने मातृगामी भवेन्नरः। नराणां मातृगमने प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥२३॥
भारते च नृपश्रेष्ठ यो दोषो मातृगामिनाम्। ब्राह्मणीगमने चैव शूद्राणां तावदेव हि ॥२४॥
ब्राह्मण्यास्तावदेव स्याद्दोषः शूद्रेण मैथुने। कन्यानां पुत्रपत्नीनां स्वश्रूणां गमने तथा ॥२५॥
सगर्भभ्रातृपत्नीनां भगिनीनां तथैव च। दोषं वक्ष्यामि राजेन्द्र यदाह कमलोद्भवः ॥२६॥
यः करोति महापापी चैताभिः सह मैथुनम्। जीवन्मृतो भवेत्सोऽपि चण्डालोऽस्पृश्य एव च ॥२७॥
नाधिकारो भवेत्तस्य सूर्यमण्डलदर्शने। शालग्रामं तज्जलं च तुलस्याश्च दलं जलम् ॥२८॥
सर्वतीर्थजलं चैव विप्रपादोदकं तथा। स्प्रष्टुं च नैव शक्नोति विट्तुल्यः पातकी नरः ॥२९॥
देवं गुरुं ब्राह्मणं च नमस्कर्तुं न चार्हति। विष्ठाधिकं तदन्नं च जलं मूत्राधिकं तथा ॥३०॥

लेकर कहता है, वह सहस्र इन्द्रों के समय तक सर्प-कुण्ड में निश्चित रहता है ॥१९॥ उसकी देह में साँप निरन्त लिपटे रहते हैं और भयभीत होने पर उसे वे खा लेते हैं। इस प्रकार वह वहाँ रह कर सर्पों का विष्ठा और मूत्र खाता-पीता है तथा यमदूतों द्वारा ताड़ित होता है ॥२०॥ पश्चात् भारत में सात पुस्त समेत सात जन्मों तक गिरगिट और सात जन्मों तक मेढक होकर वह घोर महाजंगल में सेमर का वृक्ष होता है। अनन्तर गूंगा शूद्र होकर अन्त में शुद्ध हो जाता है ॥२१-२२॥

आस्तीक बोले—गुरुपत्नियों के साथ गमन (रति) करने पर मनुष्य मातृगामी (माता के साथ व्यभिचार) का दोषभागी होता है और माता के साथ गमन करने पर मनुष्यों को (उद्धार होने के लिए) कोई प्रायश्चित्त ही नहीं कहा गया है ॥२३॥ हे नृपश्रेष्ठ! भारत में जो दोष मातृगमन में होता है, वही दोष शूद्रों को ब्राह्मणीगमन में होता है ॥२४॥ हे राजेन्द्र! शूद्र के साथ मैथुन करने पर ब्राह्मणी को भी उतना ही दोष होता है तथा कन्या, पुत्र-वधू (पतोहू), सास, भाइयों की गर्भिणी स्त्रियों और भगिनियों (बहनों) के साथ भोग करने पर होने वाले दोष को मैं बता रहा हूँ, जिसे ब्रह्मा ने बताया है ॥२५-२६॥ जो महापापी इन स्त्रियों के साथ मैथुन करता है, वह जीवित रहते हुए मृतक और चाण्डाल की भाँति अस्पृश्य (न छूने योग्य) है ॥२७॥ उसे सूर्य-मण्डल के दर्शन का अधिकार नहीं रहता है। तथा शालग्राम एवं उसके जल, तुलसीदल और उसके जल, समस्त तीर्थों के जल एवं ब्राह्मणों के चरणोदक का स्पर्श वह नहीं कर सकता है, क्योंकि वह पातकी विष्ठा के समान होता है ॥२८-२९॥ और देव, गुरु तथा ब्राह्मण को नमस्कार करने योग्य भी नहीं रहता है। अतः भारत में देवता, पितर तथा ब्राह्मणगण विष्ठा से अधिक उसके अन्न और मूत्र से अधिक उसके जल को अशुद्ध मान कर

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

देवताः पितरो विप्रा नैव गृह्णन्ति भारते। भवेत्तदङ्गवातेन तीर्थमङ्गारवाहनम् ॥३१॥
सप्तरात्रं ह्युपवसेद्दैवस्पर्शात्तथा द्विजः। भाराक्रान्ता च पृथिवी तद्भारं वोढुमक्षमा ॥३२॥
तत्पापात्पतितो देशः कन्याविक्रयिणो यथा। तत्स्पर्शाच्च तदालापाच्छयनाश्रयभोजनात् ॥३३॥
नृणां च तत्समं पापं भवत्येव न संशयः। कुम्भीपाके वत्सरेत्सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥३४॥
दिवानिशं भ्रमेत्तत्र चक्रावर्ते निरन्तरम्। दग्धो वाऽग्निशिखाभिश्च यमदूतैश्च ताडितः ॥३५॥
एवं नित्यं महापापी भुङ्क्ते निरययातनाम्। विष्ठाहारश्च[1] सर्वत्र कुम्भीपाकेऽथ पातितः ॥३६॥
गते प्राकृतिके घोरे महति प्रलये तथा। पुनः सृष्टेः समारम्भे तद्विधो वा भवेत्पुनः ॥३७॥
(षष्टिवर्षसहस्राणि कृमिश्च पुंश्चलीभगे। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत्) ॥३८॥
ततो भवति चण्डालो भार्याहीनो नपुंसकः। (सप्तजन्म गलत्कुष्ठी चाण्डालोऽस्पृश्य एव च ॥३९॥
ततस्तीर्थे भवेद्वृक्षः क्षुधितः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मसु सर्पश्च भार्याहीनो नपुंसकः) ॥४०॥
सप्तजन्मसु शूद्रश्च गलत्कुष्ठी नपुंसकः। ततो भवेद्ब्राह्मणश्चाप्यन्धः कुष्ठी नपुंसकः ॥४१॥
लब्ध्वैवं सप्त जन्मानि महापापी भवेच्छुचिः ॥४२॥

उसका ग्रहण नहीं करते हैं। उसके अंग-स्पृष्ट वायु के स्पर्श होने से तीर्थ मानों अंगार वहने लगता है ॥३०-३१॥ दैववश उसका स्पर्श हो जाने पर ब्राह्मण को सात रात उपवास करना चाहिए, उसके भार से पृथ्वी दबी रहती है और उसका भार ढोने में अपनी असमर्थता प्रकट करती है ॥३२॥ कन्या-विक्रेता की भाँति उसके पातक से देश पतित हो जाता है और उसके स्पर्श, उसके साथ बातचीत, शयन, बैठने और भोजन करने से मनुष्यों को उसके समान ही पाप लगता है, इसमें संशय नहीं। पश्चात् सौ ब्रह्मा के समय तक कुम्भीपाक नरक में वह रहता है ॥३३-३४॥ चक्के की भाँति गोलाकार उसकी लहरों में रातदिन उसे भ्रमण करना पड़ता है, अग्नि की ज्वालाओं से जलता रहता है और यमदूत ऊपर से ताड़ना देते हैं ॥३५॥ इस प्रकार वह महापापी नित्य नरक-यातनाओं को भोगता है। कुम्भीपाक में गिरने पर सर्वत्र विष्ठा का ही आहार करना पड़ता है ॥३६॥ प्राकृतिक घोर महाप्रलय के व्यतीत होने और सृष्टि के पुनः आरम्भ होने पर वह पूर्व की भाँति ही रहता है ॥३७॥ उसे साठ हजार वर्ष तक पुंश्चली के भग का कीड़ा और उतने ही समय तक विष्ठा का कीड़ा होना पड़ता है। तदनन्तर वह चाण्डाल, पत्नीरहित तथा नपुंसक होता है, फिर सात जन्म गलत्कुष्ठी और अस्पृश्य चाण्डाल होता है, अनन्तर किसी तीर्थ में वृक्ष, सात जन्म भुक्खड़, सात जन्म साँप, पत्नीहीन और नपुंसक होता है। पुनः सात जन्मों तक शूद्र, गलत्कुष्ठ का रोगी और नपुंसक होकर अंधा, कुष्ठी एवं नपुंसक ब्राह्मण होता है। इस प्रकार सात जन्मों तक वह महापापी यातना भोगने के अनन्तर शुद्ध होता है ॥३८-४२॥

---

१. क. आहारश्चास्ति सर्वत्र कुम्भीपाके विवर्जिते।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मुनय ऊचुः

इत्येवं कथितं सर्वमस्माभिर्वो यथागमम् । एभिस्तुल्यो भवेद्दोषोऽप्यतिथीनां पराभवे ॥४३॥
प्रणामं कुरु विप्रेन्द्रं गृहं प्रापय निश्चितम् । संपूज्य ब्राह्मणं यत्नाद्गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम् ॥४४॥
वनं गच्छ महाराज तपस्यां कुरु सत्वरम् । ब्रह्मशापैर्विनिर्मुक्तः पुनरेवाऽऽगमिष्यसि ॥४५॥
इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे ययुस्तूर्णं स्वमन्दिरम् । सुराश्चापि च राजानो बन्धुवर्गाश्च पार्वति ॥४६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपा० कर्मविपाको नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

गतेषु मुनिसंघेषु श्रुत्वा कर्मफलं नृणाम् । किं चकार नृपश्रेष्ठो ब्रह्मशापेन विह्वलः ॥१॥
अतिथिर्ब्राह्मणो वाऽपि किं चकार तदा प्रभो । जगाम नृपगेहं वा न वा तद्वक्तुमर्हसि ॥२॥

महेश्वर उवाच

गतेषु मुनिसंघेषु चिन्ताग्रस्तो नराधिपः । प्रेरितश्च वसिष्ठेन धर्मिष्ठेन पुरोधसा ॥३॥
पपात दण्डवद्भूमौ पादयोर्ब्राह्मणस्य च । त्यक्त्वा मन्युं द्विजश्रेष्ठो ददौ तस्मै शुभाशिषम् ॥४॥
सस्मितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा त्यक्तमन्युं कृपामयम् । उवाच नृपतिश्रेष्ठः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः ॥५॥

मुनिवर बोले—इस भाँति हम लोगों ने शास्त्रानुसार सब सुना दिया। इनके समान ही दोष अभ्यागत के अपमान करने पर होता है। अतः इस ब्राह्मणराज को प्रणाम करो और अपने गृह ले चलकर सप्रयत्न ब्राह्मण की पूजा करके आशिष ग्रहण करो। हे महाराज! अनन्तर वन जाकर तपस्या करो, जिससे इस ब्रह्म-शाप से मुक्त होकर पुनः यहाँ आगमन कर सको। हे पार्वती! इतना कहकर वे मनि लोग शीघ्र अपने-अपने घर चले गये। पीछे देवगण, राजा लोग और वन्धुवर्ग भी चले गये ॥४३-४६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हर-गौरी-संवाद-विषयक राधोपाख्यान में सुयज्ञोपाख्यान-कर्मविपाक-कथन नामक वावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५२॥

अध्याय ५३

अतिथि का उपदेश

पार्वती बोलीं—मुनियों के चले जाने पर ब्राह्मण-शाप से आकुल, श्रेष्ठ राजा ने मनुष्यों का कर्मफल सुनकर क्या किया? हे प्रभो! तव उस अभ्यागत ब्राह्मण ने क्या किया? राजा के यहाँ वह गया या नहीं? यह मुझे वताने की कृपा करें ॥१-२॥

महेश्वर बोले—मुनि-समूहों के चले जाने पर चिन्दाग्रस्त राजा धार्मिक एवं पुरोहित वसिष्ठ जी द्वारा प्रेरित होकर ब्राह्मण के चरणों में दण्डे की भांति भूमि पर गिर पड़ा। अनन्तर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने भी क्रोध त्याग कर उसे शुभाशिष प्रदान किया ॥३-४॥ मन्द मुसुकान करते हुए ब्राह्मण को क्रोधरहित और कृपालु देख कर नृपश्रेष्ठ ने हाथ जोड़कर एवं आँखों में आँसू भरे, उससे कहना आरम्भ किया ॥५॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

राजोवाच

कुत्र वंशे भवाञ्जातः किं नाम भवतः प्रभो। किं नाम वा पितुर्ब्रूहि क्व वासः कथमागतः ॥६॥
विप्ररूपी स्वयं विष्णुर्गूढः कपटमानुषः। साक्षात्स मूर्तिमानग्निः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥७॥
को वा गुरुस्ते भगवन्निष्टदेवश्च भारते। तव वेषः कथमयं ज्ञानपूर्णस्य सांप्रतम् ॥८॥
गृहाण राज्यं निखिलमैश्वर्यं कोशमेव च। स्वभृत्यं कुरु मे पुत्रं मां च दासीं स्त्रियं मुने ॥९॥
सप्तसागरसंयुक्तां सप्तद्वीपां वसुंधराम्। [1]अष्टादशोपद्वीपाढ्यां सशैलवनशोभिताम् ॥१०॥
मया भृत्येन शाधि त्वं राजेन्द्रो भव भारते। रत्नेन्द्रसारखचिते तिष्ठ सिंहासने वरे ॥११॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। उवाच परमं तत्त्वमज्ञातं सर्वदुर्लभम् ॥१२॥

अतिथिरुवाच

मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रस्तत्पुत्रः कश्यपः स्वयम्। कश्यपस्य सुताः सर्वे प्राप्ता देवत्वमीप्सितम् ॥१३॥
तेषु त्वष्टा महाज्ञानी चकार परमं तपः। दिव्यं वर्षसहस्रं च पुष्करे दुष्करं तपः ॥१४॥
सिषेवे ब्राह्मणार्थं च देवदेवं हरिं परम्। नारायणाद्वरं प्राप विप्रं तेजस्विनं सुतम् ॥१५॥
ततो बभूव तेजस्वी विश्वरूपस्तपोधनः। पुरोधसं चकारेन्द्रो वाक्पतौ तं क्रुधा गते ॥१६॥

राजा बोले—हे प्रभो! आप किस वंश में उत्पन्न हुए हैं और आपका नाम क्या है, कहाँ निवास-स्थान है एवं यहाँ कैसे आगमन हुआ है? ब्राह्मण रूप में छिपे साक्षात् विष्णु ही आप हैं, जो छल से मनुष्य तथा ब्रह्म तेज से प्रज्वलित होने के नाते साक्षात् मूर्तिमान् अग्नि मालूम हो रहे हैं ॥६-७॥ हे भगवन्! इस भारत में आप के गुरु और इष्टदेव कौन हैं? आप ज्ञानपूर्ण हैं किन्तु आधुनिक वेष आपका ऐसा क्यों है? हे मुने! समस्त ऐश्वर्य और कोश समेत यह राज्य ग्रहण कीजिये। पुत्र समेत मुझे अपना सेवक बनाइये और स्त्री को दासी कीजिये ॥८-९॥ सातों सागर, सातों द्वीप, अट्ठारहों उपद्वीप एवं पर्वत-वन से विभूषित इस पृथिवी का मुझ भृत्य द्वारा शासन कीजिये और आप भारत में राजेन्द्र (महाराज) बन कर उत्तमरत्नों के सार भाग से खचित परम श्रेष्ठ सिंहासन पर सुप्रतिष्ठित रहें ॥१०-११॥ राजा की ऐसी बातें सुनकर वे मुनि-श्रेष्ठ हँस पड़े। अनन्तर परमतत्त्व की बातें कहना आरम्भ किया, जो सभी से अज्ञात एवं सबको दुर्लभ थी ॥१२॥

अतिथि बोले—ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप और कश्यप के सभी पुत्रों ने अभीप्सित देवत्व प्राप्त कर लिया है ॥१३॥ उन्हीं में से महाज्ञानी त्वष्टा ने पुष्कर क्षेत्र में सहस्र दिव्य वर्ष तक दुष्कर (कठिन) तप किया। उन्होंने ब्राह्मणार्थ देवाधिदेव भगवान् की अति सेवा की, जिससे नारायण द्वारा 'तेजस्वी पुत्र होने' का उन्हें वरदान प्राप्त हुआ ॥१४-१५॥ अनन्तर उनके तेजस्वी एवं महातपस्वी विश्वरूप नामक पुत्र हुआ, जिसे इन्द्र ने क्रुद्ध होकर बृहस्पति के चले जाने पर अपना पुरोहित बनाया ॥१६॥ जिस समय मातामह दैत्यों के

---

१. क. नवद्वीपोपद्वीपां तां स०

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मातामहेभ्यो दैत्येभ्यो दत्तवन्तं घृताहुतिम्। चिच्छेद तं शुनासीरो ब्राह्मणं मातुराज्ञया ॥१७॥
विश्वरूपस्य तनयो विरूपो सत्पिता नृप। अहं च सुतपा नाम विरागी काश्यपो द्विजः ॥१८॥
महादेवो मम गुरुर्विद्याज्ञानमनुप्रदः। अभीष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥१९॥
तच्चिन्तयामि पादाब्जं न मे वाञ्छाऽस्ति संपदि। सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यं राधिकापतेः ॥२०॥
तेन दत्तं न गृह्णामि विना तत्सेवनं शुभम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा मन्येऽहं जलबिन्दुवत् ॥२१॥
भक्तिव्यवहितं मिथ्याभ्रमसेव तु नश्वरम्। इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सौरत्वं वा नराधिप ॥२२॥
न मन्ये जलरेखेति नृपत्वं केन गण्यते।
श्रुत्वा सुयज्ञ यज्ञे ते मुनीनां गमनं नृप। लालसां विष्णुभक्तिं ते संप्रापयितुमागतः ॥२३॥
केवलानुगृहीतस्त्वं नहि शप्तो मयाऽधुना। समुद्धृतश्च पतितो घोरे निम्ने भवार्णवे ॥२४॥
नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात् ॥२५॥
राजन्निर्गम्यतां गेहाद्देहि राज्यं सुताय च। पुत्रे न्यस्य प्रियां साध्वीं गच्छ वत्स वनं द्रुतम् ॥२६॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव भूमिप। श्रीकृष्णं भज राधेशं परमात्मानमीश्वरम् ॥२७॥
ध्यानसाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। आविर्भूतैस्तिरोभूतैः प्राकृतैः प्रकृतेः परम् ॥२८॥

लिए (उस यज्ञ में) घृत की आहुति उस ब्राह्मण ने दी उसी समय इन्द्र ने उस ब्राह्मण को माता की आज्ञा से मार डाला ॥१७॥ हे नृप! उन्हीं विश्वरूप के पुत्र मेरे पिता थे। मेरा नाम सुतपा है, मैं विरागी एवं कश्यप गोत्र का ब्राह्मण हूँ ॥१८॥ विद्या एवं ज्ञान के प्रदाता महादेवजी हमारे गरु हैं और सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण, जो प्रकृति से परे हैं, हमारे इष्टदेव हैं। मैं उन्हीं के चरणकमल का सतत चिन्तन करता हूँ, अतः मुझे सम्पत्ति की इच्छा नहीं है। राधिका जी के पति भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य और सामीप्य नामक मोक्ष को भी बिना उनकी शुभ सेवा किये नहीं चाहता हूँ, ब्रह्मत्व और अमरत्व (ब्रह्मा और देव होने) को मैं जल के बुलबुले के समान मानता हूँ। हे राजन्! ये सब भक्ति में व्यवधानकारक, मिथ्या, भ्रमात्मक और नाशवान् हैं। मैं इन्द्रत्व, मनुत्व, सौरत्व (सूर्य होने) को जब जल रेखा की भाँति (क्षणिक नश्वर) मानता हूँ, तो नृपत्व (राजा होने) की क्या गणना है! हे नृप! सुयज्ञ! तुम्हारे यज्ञ में मुनियों का गमन सुनकर मैं भगवान् विष्णु की भक्ति तुम्हें प्राप्त कराने की लालसा (इच्छा) से आया हूँ। संप्रति मैंने तुम्हें शाप नहीं दिया है, प्रत्युत तुम उसी द्वारा अनुगृहीत हुए हो। अधःपतन करने वाले इस घोर संसार-सागर में तुम पतित हो गये थे, मैंने तुम्हारा उद्धार कर दिया है ॥१९-२४॥ क्योंकि न तीर्थ जलमय होते हैं और न देवता लोग मिट्टी और पत्थरमय होते हैं। वे पवित्र करते हैं लम्बे समय में और भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त दर्शनमात्र से पवित्र कर देते हैं ॥२५॥ अतः हे राजन्! राज्य पुत्र को सौंप कर घर से (तप करने के हेतु) चले जावो। हे वत्स! हे भूमिप! साध्वी स्त्री और राज्य पुत्र को सौंपकर तप के लिए शीघ्र जंगल जाओ, क्योंकि तृण से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी कुछ मिथ्या ही है। अतः राधा जी के प्राणेश भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करो, जो परमात्मा, ईश्वर एवं ध्यान करने से साध्य हैं; अन्यथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि और प्रकट एवं अन्तर्हित होने वाले प्राकृत जनों के लिए वे दुराराध्य हैं एवं प्रकृति से परे हैं ॥२६-२८॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्मा स्रष्टा हरिः पाता हरः संहारकारकः । दिक्पालाश्च दिगीशाश्च भ्रमन्त्येवास्य मायया ॥२९॥
यदाज्ञया वाति वायुः सूर्यो दिनपतिः सदा । निशापतिः शशी शश्वत्सस्यमुस्निग्धताकरः ॥३०॥
कालेन मृत्युः सर्वेषां सर्वविश्वेषु वै भवेत् । काले वर्षति शक्रश्च दहत्यग्निश्च कालतः ॥३१॥
भीतवद्विश्वशास्ता च प्रजासंयमनो यमः । कालः संहरते काले काले सृजति पाति च ॥३२॥
स्वदेशे वै समुद्रश्च स्वदेशे वै वसुंधरा । स्वदेशे पर्वताश्चैव स्वाः पातालाः स्वदेशतः ॥३३॥
स्वर्लोकाः सप्त राजेन्द्र सप्तद्वीपा वसुंधरा । शैलसागरसंयुक्ताः पातालाः सप्त चैव हि ॥३४॥
ब्रह्माण्डमेभिर्लोकैश्च [1]डिम्बाकारं जलप्लुतम् । सन्त्येव प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३५॥
सुरा नराश्च नागाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः । आपातालाद्ब्रह्मलोकपर्यन्तं डिम्बरूपकम् ॥३६॥
इदमेव तु विध्यण्डमुत्तमं कृत्रिमं नृप । नाभिपद्मे विराड्विष्णोः क्षुद्रस्य जलशायिनः ॥३७॥
स्थितं यथा पद्मबीजं कर्णिकायां च पङ्कजे । एवं सोऽपि शयानः स्याज्जलतल्पे सुविप्लुते ॥३८॥
ध्यायत्येव महायोगी प्राकृतः प्रकृतेः परम् । कालभीतश्च कालेशं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥३९॥
महाविष्णोर्लोमकूपे साधारः सोऽस्ति विस्तृते । कूपेषु लोम्नां प्रत्येकमेवं विश्वानि सन्ति वै ॥४०॥

उन्हीं के द्वारा ब्रह्मा सृष्टि करने वाले, विष्णु रक्षक और शिव संहार करने वाले हुए हैं। उन्हीं की माया द्वारा दिक्पाल-गण एवं दिशाओं के अधीश्वर चारों ओर भ्रमण किया करते हैं ॥२९॥ उन्हीं की आज्ञा से वायु बहता है, सूर्य सदा दिन के स्वामी बने रहते हैं, चन्द्रमा रात्रि के पति हैं, जो निरन्तर सस्य (फसल) को अति स्निग्ध करते हैं। सम्पूर्ण विश्वों में काल द्वारा ही सब की मृत्यु होती है। काल में ही इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि काल द्वारा ही जलाते हैं। प्रजाओं पर संयम (शासन) करने वाले यमराज काल द्वारा ही भयभीत के समान होकर विश्व के ऊपर शासन करते हैं। काल में ही प्रजाओं का संहार होता है, काल में ही सृष्टि और रक्षा होती है ॥३०-३२॥ अपने ही देश में सातों समुद्र, अपने ही देश में समस्त पृथ्वी, अपने ही देश में समस्त पर्वत और स्वदेश में ही समस्त पाताल आदि लोक हैं। हे राजेन्द्र! सात स्वर्गलोक, सातों द्वीपों समेत पृथ्वी और पर्वत, सागर समेत सात पाताल लोक के साथ समस्त ब्रह्माण्ड जल के मध्य डिम्बाकार बना रहता है। इस भाँति प्रति ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देव रहते हैं ॥३३-३५ देवगण, मनुष्य, नागगण, गन्धर्व लोग और राक्षस आदि पाताल से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त डिम्ब का रूप है ॥३६॥ हे नृप! यह परमोत्तम (प्राकृत) ब्रह्माण्ड कृत्रिम (नश्वर) है। जलशायी क्षुद्र विष्णु के नाभि-कमल पर विराड् रूप ब्रह्मा इस भाँति स्थित रहते हैं जैसे कमल-पुष्प की कर्णिका में कमल बीज। अति विस्तृत जल की शय्या पर शयन किये वे विष्णु महायोगी, जो प्रकृति-जन्य हैं, प्रकृति से परे रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का सतत ध्यान करते हैं ॥३९॥ उन काल के ईश भगवान् श्रीकृष्ण से, जो ईश्वर एवं सब के आत्मा हैं, काल की भाँति भयभीत रहते हैं। वे महाविष्णु के विस्तृत लोमकूप में साधार रहते हैं। उनके प्रत्येक लोमकूप में विश्व अवस्थित हैं ॥३७-४०॥ हे भूपति! महाविष्णु के शरीर-लोम और ब्रह्माण्ड की संख्या

---

१ क. विम्बा० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

महाविष्णोर्गात्रलोम्नां ब्रह्माण्डानां च भूमिप । संख्यां कर्तुं न शक्नोति कृष्णोऽप्यन्यस्य काकथा ॥४१॥
महाविष्णुः प्राकृतिकः सोऽपि डिम्बोद्भवः सदा । भवेत्कृष्णेच्छया डिम्बः प्रकृतेर्गर्भसंभवः ॥४२॥
सर्वाधारो महाविष्णुः कालभीतः स शङ्कितः । कालेशं ध्यायति स्वैरं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥४३॥
एवं च सर्वविश्वस्था ब्रह्मविष्णुशिवादयः । महान्विराट् क्षुद्रविराट् सर्वे प्राकृतिकाः सदा ॥४४॥
सा सर्वबीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । काले लीना च कालेशे कृष्णे तं ध्यायति स्म सा ॥४५॥
एवं सर्वे कालभीताः प्रकृतिः प्राकृतास्तथा । आविर्भूतास्तिरोभूताः कालेन परमात्मनि ॥४६॥
इत्येवं कथितं सर्वं महाज्ञानं सुदुर्लभम् । शिवेन गुरुणा दत्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधोपा० सुयज्ञोपा० सुयज्ञं प्रत्यतिथ्युपदेशो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजोवाच

कुत्राऽऽधारो महाविष्णोः सर्वाधारस्य तस्य च । कालभीतस्य कतिचित्कालमायुर्मुनीश्वर ॥१॥

स्वयं कृष्ण भी नहीं कर सकते हैं अन्य की तो बात ही क्या है ॥४१॥ वे महाविष्णु भी प्रकृति द्वारा उस डिम्ब से सदैव उत्पन्न होते हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा होती है, प्रकृति के गर्भ से डिम्ब उत्पन्न हो जाता है॥४२॥ इस भाँति समस्त के आधार महाविष्णु भी काल से भयभीत एवं सशंकित रह कर कालाधीश्वर एवं परम स्वतंत्र ईश्वर एवं सर्वात्मा श्रीकृष्ण का सतत ध्यान करते हैं॥४३॥ इस प्रकार सभी विश्वों में रहने वाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि तथा महाविराट् एवं क्षुद्र विराट् सभी प्राकृत (प्रकृतिजन्य) हैं। वही ईश्वरी मल प्रकृति समस्त बीजों का स्वरूप है, जो समय आने पर कालाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाती है और नित्य उनका ध्यान करती रहती है॥४४-४५॥ अतः सभी लोग काल से भयभीत रहते हैं और प्रकृति से उत्पन्न होने के नाते प्राकृत हैं तथा समय-समय पर उसी परमात्मा में आविर्भूत और विलीन हुआ करते हैं॥४६॥ इस प्रकार मैंने अति दुर्लभ महाज्ञान तुम्हें सुना दिया, जिसे गुरु शिव ने मुझे बताया था। अब और क्या सुनना चाहते हो॥४७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हरगौरी-संवाद के राधोपाख्यान में सुयज्ञ के प्रति अतिथि-उपदेश-कथन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५३॥

अध्याय ५४

सुयज्ञ की गोलोकप्राप्ति का वर्णन

राजा बोले—हे मुनीश्वर! समस्त के आधार महाविष्णु का आधार कौन है और

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

क्षुद्रस्य कतिचित्कालं ब्रह्मणः प्रकृतेस्तथा । मनोरिन्द्रस्य चन्द्रस्य सूर्यस्याऽऽयुस्तथैव च ॥२॥
अन्येषां वै जनानां च प्राकृतानां परं वयः । वेदोक्तं सुविचार्य च वद वेदविदां वर ॥३॥
विश्वानामूर्ध्वभागे च कः स्याद्वा लोक एव सः । कथयस्व महाभाग संदेहच्छेदनं कुरु ॥४॥

मुनिरुवाच

गोलोको नृप विश्वानां विस्तृतश्च नभः समः । तथा नित्यं डिम्बरूपः श्रीकृष्णेच्छासमुद्भवः ॥५॥
जलेन परिपूर्णश्च कृष्णस्य मुखबिन्दुना । सृष्टचुन्मुखस्याऽऽदिसर्गे परिश्रान्तस्य खेलतः ॥६॥
प्रकृत्या सह युक्तस्य कलया निजया नृप । तत्राऽऽधारो महाविष्णोर्विश्वाधारस्य विस्तृतः ॥७॥
प्रकृतेर्गर्भसंभूतडिम्बोद्भूतस्य भूमिप । सुविस्तृते जलाधारे शयानश्च महाविराट् ॥८॥
राधेश्वरस्य कृष्णस्य षोडशांशः प्रकीर्तितः । दूर्वादलश्यामरूपः सस्मितश्च चतुर्भुजः ॥९॥
वनमालाधरः श्रीमाञ्शोभितः पीतवाससा । ऊर्ध्वं नभसि तद्विष्णोर्नित्यवैकुण्ठ एव च ॥१०॥
आत्माकाशसमो नित्यो विस्तृतश्चन्द्रबिम्बवत् । ईश्वरेच्छासमुद्भूतो निर्लक्ष्यश्च निराश्रयः ॥११॥
आकाशवत्सुविस्तारो रत्नौघैश्च विनिर्मितः । तत्र नारायणः श्रीमान्वनमाली चतुर्भुजः ॥१२॥
लक्ष्मीसरस्वतीगङ्गातुलसीपतिरीश्वरः । सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥१३॥

उस कालभीत की आयु कितने काल की है? ॥१॥ क्षुद्र विराट् की आयु, ब्रह्मा, प्रकृति, मनु, इन्द्र, चन्द्र और सूर्य की आयु क्या है? ॥२॥ हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! अन्य प्राकृत जनों की आयु भी वेदानुकूल भलीभांति विचार कर बताने की कृपा करें ॥३॥ समस्त विश्वसंघ के ऊपर कौन लोक है? अथवा वही है क्या? हे महाभाग! यह सन्देह दूर करने की कृपा करें ॥४॥

मुनि बोले—हे नृप! समस्त विश्व-समूहों के ऊपर गोलोक है जो आकाश की भाँति विस्तृत है तथा भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से उत्पन्न एवं नित्य डिम्ब (अण्ड) रूप में रहता है ॥५॥ आदि सृष्टि के समय सृष्टि के प्रति उन्मुख होने पर खेल से श्रान्त भगवान् श्रीकृष्ण के मुख-बिन्दु रूप जल से यह परिपूर्ण है ॥६॥ हे नृप! अपनी निजी कला रूप प्रकृति से युक्त एवं विश्व के आधार महाविष्णु का वही विस्तृत आधार है ॥७॥ हे भूमिपाल! वह महाविष्णु प्रकृति के गर्भ से उत्पन्न डिम्ब से प्रकट हुआ है, उसका आधार महाविराट् अति विस्तृत जलाधार पर शयन करता रहता है ॥८॥ राधेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का वह षोडशांश (सोलहवाँ अंश) कहा जाता है जो दूर्वादल की भाँति श्यामल एवं मन्द मुसुकान करते हुए चार भुजाओं से युक्त है ॥९॥ तथा वनमाला धारण किए वह श्री-सुशोभित एवं पीताम्बर-भूषित है। आकाश में ऊपर उस विष्णु का नित्य स्थायी वैकुण्ठ लोक है ॥१०॥ जो आत्मा एवं आकाश की भाँति नित्य, चन्द्र-विम्ब के समान विस्तृत, ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न, लक्ष्यहीन और निराधार है ॥११॥ तथा आकाश की भाँति अति विस्तार में स्थित एवं रत्नसमूहों से सुरचित है। जिसमें श्रीमान् नारायण भगवान् वनमाला धारण किए चार भुजाओं से विराजमान रहते हैं ॥१२॥ उन ईश्वर के लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी ये चार पत्नियाँ हैं। वे स्वयं सुनन्द नन्द और कुमुद आदि पार्षदों से सदा आवृत रहते हैं ॥१३॥ सर्वेश्वर, समस्त सिद्धों के अधीश्वर एवं

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सर्वेशः सर्वसिद्धेशो भक्तानुग्रहविग्रहः । श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ॥१४॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् । ऊर्ध्वं वैकुण्ठलोकाच्च पञ्चाशत्कोटियोजनात् ॥१५॥
गोलोको वर्तुलाकारो वरिष्ठः सर्वलोकतः । अमूल्यरत्नखचितैर्मन्दिरैश्च विभूषितः ॥१६॥
रत्नेन्द्रसारखचितैः स्तम्भसोपानचित्रितैः । मणीन्द्रदर्पणासक्तैः कपाटैः कलशोज्ज्वलैः ॥१७॥
नानाचित्रविचित्रैश्च शिबिरैश्च विराजितः । कोटियोजनविस्तीर्णो दैर्घ्ये शतगुणस्तथा ॥१८॥
विरजासरिदाकीर्णैः शतशृङ्गैः सुवेष्टितः । सरिदर्धप्रमाणेन दैर्घ्येण च ततेन च ॥१९॥
शैलार्धपरिमाणेन युक्तो वृन्दावनेन च । तदर्धमानविलसद्रासमण्डलमण्डितः ॥२०॥
सरिच्छैलवनादीनां मध्ये गोलोक एव च । यथा पङ्कजमध्ये च कर्णिका सुमनोहरा ॥२१॥
तत्र गोगोपगोपीभिर्गोपीशो रासमण्डले । रासेश्वर्या राधिकया संयुक्तः संततं नृप ॥२२॥
द्विभुजो मुरलीहस्तः शिशुर्गोपालरूपधृत् । वह्निशुद्धांशुकाधानो रत्नभूषणभूषितः ॥२३॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नमालाविराजितः । रत्नसिंहासनस्थश्च रत्नच्छत्रेण शोभितः ॥२४॥
तथा स प्रियगोपालैः सेवितः श्वेतचामरैः । भूषिताभिश्च गोपीभिर्मालाचन्दनचर्चितः ॥२५॥
सस्मितः सकटाक्षाभिः सुवेषाभिश्च वीक्षितः । कथितो लोकविस्तारो यथाशक्ति यथागमम् ॥२६॥

भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण दो भुजाओं और चार भुजाओं से दो रूप धारण कर चार भुजाओं से वैकुण्ठ में और दो भुजाओं से स्वयं गोलोक में स्थित हैं, जो वैकुण्ठ लोक से पचास करोड़ योजन ऊपर स्थित है ॥१४-१५॥ यह गोलोक गोलाकार, सभी लोकों से श्रेष्ठ, अमूल्य रत्नों से खचित असंख्य मन्दिरों से विभूषित है ॥१६॥ वहाँ के खम्भे और सीढ़ियाँ उत्तम रत्नों के सारभाग से खचित होने के नाते चित्रविचित्र हैं। उत्तम मणियों के दर्पणों (शीशों) से युक्त किवाड़ों, उज्ज्वल कलशों और अनेक भाँति के चित्र-विचित्र शिविरों से वह गोलोक सुशोभित है। उसकी चौड़ाई एक करोड़ योजन है और लम्बाई सौ गुनी अधिक ॥१७-१८॥ विरजा नामक नदी से व्याप्त सौ शिखरों वाले पर्वतों से वह आवेष्टित है। उक्त नदी के आधे प्रमाण लम्बे-चौड़े तथा पर्वत के आधे प्रमाण ऊँचे वृन्दावन से वह युक्त है। उसके आधे प्रमाण में स्थित रास-मण्डल से मण्डित गोलोक नदी, पर्वत और जंगलों आदि के मध्य में इस प्रकार सुशोभित है जैसे कमल-पुष्प के मध्य अति मनोहर कर्णिका रहती है। हे नृप! उस रासमण्डल में गोपाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण रासेश्वरी राधिका को निरन्तर साथ लिए गौओं, गोपवृन्दों और गोपियों से आवृत रहते हैं। वे सदैव दो भुजाओं वाले रूप से मुरली हाथ में लिए बच्चे की अवस्था वाले गोपाल रूप को धारण किये रहते हैं। अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र धारण किये, रत्नों के भूषणों से भूषित, समस्त अंगों में चन्दन लगाये, रत्नों की माला से सुशोभित होकर रत्न-सिंहासन पर वे विराजमान हैं। ऊपर रत्नों का छत्र लगा है और प्रिय गोपाल गण श्वेत चँवरों से सेवा करते रहते हैं। उत्तम वेषभूषा धारण करने वाली गोपियाँ उन्हें माला-चन्दन लगाती हैं और अपने कटाक्षों से बार-बार देखती रहती हैं, जिससे भगवान् मन्द मुसुकान करते रहते हैं। इस प्रकार मैंने गोलोक का विस्तार वेदानुसार यथाशक्ति बता दिया है ॥१९-२६॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यथाश्रुतं शंभुवक्त्रात्कालमानं निशामय । पात्रं षट्पलसंभूतं गंभीरं चतुरङ्गुलम् ॥२७॥
स्वर्णमाषकृतच्छिद्रं दण्डैश्च चतुरङ्गुलैः । यावज्जलप्लुतं पात्रं तत्कालं दण्डमेव च ॥२८॥
दण्डद्वयं मुहूर्तं च यामस्तस्य चतुष्टयम् । वासरश्चाष्टभिर्यामैः पक्षस्तैर्दशपञ्चभिः ॥२९॥
मासो द्वाभ्यां च पक्षाभ्यां वर्षं द्वादशमासकैः । मासेन वै नराणां च पितृणां तदहर्निशम् ॥३०॥
कृष्णपक्षे दिनं प्रोक्तं शुक्ले रात्रिः प्रकीर्तिता । वत्सरेण नराणां च देवानां च दिवानिशम् ॥३१॥
अयनं ह्युत्तरमहो रात्रिर्वै दक्षिणायनम् । युगकर्मानुरूपं च नरादीनां वयो नृप ॥३२॥
प्रकृतेः प्राकृतानां च ब्रह्मादीनां निशामय । कृतं त्रेता द्वापरं च कालश्चेति चतुर्युगम् ॥३३॥
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैः सावधानं निशामय । चत्वारि त्रीणि च द्वयेकं सहस्राणि कृतादिकम् ॥३४॥
तेषां च संध्यासंध्यांशौ द्वे सहस्रे प्रकीर्तिते । त्रिचत्वारिंशकैर्लक्षैः सविंशतिसहस्रकैः ॥३५॥
चतुर्युगं परिमितं नरमानक्रमेण च । लक्षैश्च सप्तदशभिः साष्टविंशसहस्रकैः ॥३६॥
कृतं युगं नृमानेन संख्याविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥३७॥
सहस्रैः षण्णवतिभिर्लक्षैर्द्वादशभिः सह । त्रेतायुगं परिमितं कालविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥३८॥
अष्टलक्षैः सह मितं चतुःषष्टिसहस्रकम् । परिमाणं द्वापरस्य संख्याविद्भिरितीरितम् ॥३९॥
सद्वात्रिंशत्सहस्रैश्च चतुर्लक्षैश्च वत्सरैः । नृमानाद्वै कलियुगं विदुः कालविदो बुधाः ॥४०॥

शंकर के मुख से मैंने समय के मान के सम्बन्ध में जैसा सुना था वह तुम भी सुन लो। छह पल सोने का बना हुआ एक पात्र हो, जिसकी गहराई चार अंगुल की हो। उसमें एक-एक माशे सोने के बने हुए चार-चार अंगुल लंबे चार कीलों से छेद कर दिये जायँ। फिर उस पात्र को जल के ऊपर रख दिया जाय। उन छिद्रों से जल आकर जितनी देर में वह पात्र भर दे उतने समय को एक दण्ड कहा जाता है॥२७-२८॥ वैसे दो दण्ड का एक मुहूर्त (घटी) होता है, और चार घटी का एक याम (प्रहर), आठ याम का एक दिन-रात तथा पन्द्रह दिन का एक पक्ष (पाख), दो पक्ष (पाख) का एक मास और बारह मास का एक वर्ष होता है। मनुष्यों का एक मास पितरों का एक अहोरात्र ही होता है॥२९-३०॥ उनका दिन कृष्ण पक्ष में और रात्रि शुक्ल पक्ष में होती है। मनुष्यों का एक वर्ष देवों का एक दिन-रात होता है॥३१॥ उत्तरायण उनका दिन और दक्षिणायन उनकी रात्रि है। हे नृप! युग-कर्म के अनुरूप मनुष्य आदि की आयु होती है॥३२॥ अब प्रकृति, प्राकृत पदार्थ एवं ब्रह्मा आदि की भी आयु कह रहा हूँ, सुनो। कृत (सत्य) त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग हैं॥३३॥ जो दिव्य बारह सहस्र वर्ष के होते हैं। उन्हें सावधानी से सुनो। कृत (सत्य) चार सहस्र, त्रेता तीन सहस्र, द्वापर दो सहस्र और कलि एक सहस्र वर्ष का होता है, इनके सन्ध्या और सन्ध्यांश भी दो सहस्र वर्ष के होते हैं। मनुष्यों के वर्ष प्रमाण से चारों युग तैंतालीस लाख बीस सहस्र (हजार) वर्ष के होते हैं॥३४-३५॥ अब चारों युगों का पृथक्-पृथक् वर्ष प्रमाण मनुष्यों के मान से बता रहा हूँ—सत्रह लाख अट्ठाइस सहस्र वर्ष का कृत (सत्य) युग होता है, ऐसा संख्या-वेत्ताओं ने मनुष्यों के मान से बताया है। उसी भाँति बारह लाख छानवे सहस्र वर्ष का त्रेता युग, आठ लाख चौंसठ सहस्र वर्ष का द्वापर और चार लाख बत्तीस सहस्र वर्ष का कलियुग होता है, ऐसा संख्या-वेत्ताओं और काल के पण्डितों ने बताया है॥३६-४०॥ इनमें

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यथा सप्त च वारा वै तिथयः षोडश स्मृताः । दिवारात्र्यश्च पक्षौ द्वौ मासो वर्षं च निर्मितम् ॥४१॥
यथा भ्रमति तच्चक्रमेवमेव चतुर्युगम् । यथा युगानि राजेन्द्र तथा मन्वन्तराणि च ॥४२॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । एवं क्रमाद्भ्रमन्त्येव मनवश्च चतुर्दश ॥४३॥
पञ्चविंशतिसाहस्रं षष्ट्यन्तशतपञ्चकम् । नरमानयुगं चैव परं मन्वन्तरं स्मृतम् ॥४४॥
आख्यानं च मनूनां च धर्मिष्ठानां नराधिप । यच्छ्रुतं [1]शिववक्त्रेण तत्त्वं मत्तो निशामय ॥४५॥
आद्यो मनुर्ब्रह्मपुत्रः शतरूपा पतिव्रता । धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च गरिष्ठो मनुषु प्रभुः ॥४६॥
स्वायंभुवः शंभुशिष्यो विष्णुव्रतपरायणः । जीवन्मुक्तो महाज्ञानी भवतः प्रपितामहः ॥४७॥
राजसूयसहस्रं च चक्रे वै नर्मदातटे । त्रिलक्षमश्वमेधं च त्रिलक्षं नरमेधकम् ॥४८॥
गोमेधं च चतुर्लक्षं विधिवन्महदद्भुतम् । ब्राह्मणानां त्रिकोटीश्च भोजयामास नित्यशः ॥४९॥
पञ्चलक्षगवां मांसैः सुपक्वैर्घृतसंस्कृतैः । चर्व्यैश्चोष्यैर्लेह्यपेयैर्मिष्टद्रव्यैः सुदुर्लभैः ॥५०॥
[2]अमूल्यरत्नलक्षं च दशकोटिसुवर्णकम् । स्वर्णशृङ्गयुतं दिव्यं गवां लक्षं सुपूजितम् ॥५१॥
वह्निशुद्धानि वस्त्राणि मणीन्द्राणां च लक्षकम् । भूमिं च सर्वसस्याढ्यां गजेन्द्राणां च लक्षकम् ॥५२॥
त्रिलक्षमश्वरत्नं च शातकुम्भविभूषितम् । सहस्ररथरत्नं च शिबिकालक्षमेव च ॥५३॥

सात दिन, सोलह तिथियाँ, दिन और रात्रि, दो पक्ष, मास और वर्ष का निर्माण किया गया है ॥४१॥ हे राजेन्द्र ! इसमें चक्के की भाँति चारों युगों का चक्र, प्रत्येक युगों के पृथक्-पृथक् चक्र और मन्वन्तरों का चक्र घूमता रहता है ॥४२॥ इकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है। इसी भाँति चौदहों मन्वन्तर क्रमशः घूमा करते हैं ॥४३॥ मनुष्यों के मान से पच्चीस सहस्र पाँच सौ साठ युगों का एक मन्वन्तर होता है ॥४४॥ हे नराधिप ! धर्मिष्ठ मनुष्यों का आख्यान मैंने शिवजी के मुख से जैसा सुना है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥४५॥ आदि मनु, जो ब्रह्मा के पुत्र एवं शतरूपा के पति हैं, धर्मिष्ठों में श्रेष्ठ, गौरव पूर्ण एवं मनुओं में समर्थ हैं ॥४६॥ स्वायम्भुव मनु शंकर जी के शिष्य हैं और भगवान् विष्णु के व्रत का पालन करते रहते हैं। वे जीवन्मुक्त, महाज्ञानी एवं आपके प्रपितामह (परदादा) हैं ॥४७॥ उन्होंने नर्मदा जी के तट पर एक सहस्र राजसूय यज्ञ, तीन लाख अश्वमेध, तीन लाख नरमेध और चार लाख गोमेध यज्ञ सविधान सुसम्पन्न किये हैं, जिनका आयोजन महान् एवं अद्भुत था, उसमें तीन करोड़ ब्राह्मण नित्य भोजन करते थे ॥४८-४९॥ जिसमें पाँच लाख गौओं के घृत में भली भाँति पकाये मांस रहते थे और चबाने, चूसने, आस्वाद लेने (चाटने), पान करने योग्य वस्तुओं एवं अति दुर्लभ मिष्टान्नों का कुछ कहना ही नहीं है ॥५०॥ एक लाख अमूल्य रत्न, दश करोड़ सोने के सिक्के, सुवर्ण-भूषित सींगों वाली दश लाख गौएँ एवं अग्निविशुद्ध वस्त्रों के समूह एक लाख मुनिश्रेष्ठों को समर्पित किये गये। समस्त धान्यों से सम्पन्न हरी-भरी भूमि, एक लाख गजराज, सुवर्णभूषित तीन लाख उत्तम अश्व, एक सहस्र उत्तम रथ, एक लाख शिविका

---

१ क. धर्मव० । २ क. ०त्नपात्रं च ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

त्रिकोटिस्वर्णपात्रं च सान्नं सजलमीप्सितम् । त्रिकोटिस्वर्णभूषाश्च कर्पूरादिसुवासितम् ॥५४॥
ताम्बूलं सुविचित्रं च त्रिकोटिस्वर्णतल्पकम् । रत्नेन्द्रखचितैर्मञ्चै रचितैर्विश्वकर्मणा ॥५५॥
वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रै राजितं माल्यजालकैः । नित्यं ददौ ब्राह्मणेभ्यो विष्णुप्रीत्यै शिवाज्ञया ॥५६॥
संप्राप्य शंकराज्ज्ञानं कृष्णमन्त्रं सुदुर्लभम् । संप्राप्य कृष्णदास्यं च गोलोकं वै जगाम सः ॥५७॥
दृष्ट्वा मुक्तं स्वपुत्रं च प्रहृष्टोऽभूत्प्रजापतिः । तुष्टाव शंकरं तुष्टः ससृजेऽन्यं मनुं विधिः ॥५८॥
यतः स्वयंभुपुत्रोऽयमतः स्वायंभुवो मनुः । स्वारोचिषो मनुश्चैव द्वितीयो वह्निनन्दनः ॥५९॥
राजा वदान्यो धर्मिष्ठः स्वायंभुवसमो महान् । प्रियव्रतसुतावन्यौ द्वौ मनू धर्मिणां वरौ ॥६०॥
तौ तृतीयौ चतुर्थौ च वैष्णवौ तापसोत्तमौ । तौ च शंकरशिष्यौ च कृष्णभक्तिपरायणौ ॥६१॥
धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च रैवतः पञ्चमो मनुः । षष्ठश्च चाक्षुषो ज्ञेयो विष्णुभक्तिपरायणः ॥६२॥
श्राद्धदेवः सूर्यसुतो वैष्णवः सप्तमो मनुः । सावर्णिः सूर्यतनयो वैष्णवो मनुरष्टमः ॥६३॥
नवमो दक्षसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः । दशमो ब्रह्मसावर्णिर्ब्रह्मज्ञानविशारदः ॥६४॥
ततश्च धर्मसावर्णिर्मनुरेकादशः स्मृतः । धर्मिष्ठश्च वरिष्ठश्च वैष्णवव्रततत्परः ॥६५॥
ज्ञानी च रुद्रसावर्णिर्मनुश्च द्वादशः स्मृतः । धर्मात्मा देवसावर्णिर्मनुरेवं त्रयोदशः ॥६६॥
चतुर्दशो महाज्ञानी चन्द्रसावर्णिरेव च । यावदायुर्मनूनां स्यादिन्द्राणां तावदेव हि ॥६७॥
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं ब्रह्मणो दिनमुच्यते । तावती ब्रह्मणो रात्रिः सा च ब्राह्मी निशा नृप ॥६८॥

(पालकी), मन इच्छित अन्न-जल समेत तीन करोड़ सुवर्ण के पात्र, तीन करोड़ सुवर्ण के भूषण, कर्पूरादि सुवासित ताम्बूल, अति विचित्र एवं सुवर्ण रचित तीन करोड़ पलंग जो विश्वकर्मा द्वारा सुरचित रत्नेन्द्र खचित, अग्नि-विशुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित और चित्र-विचित्र माला-जालों से सुशोभित थे, शिव जी की आज्ञा से भगवान् विष्णु के प्रसन्नतार्थ नित्य ब्राह्मणों को समर्पित करते थे ॥५१-५६॥ अनन्तर शंकर जी से ज्ञान तथा भगवान् कृष्ण का अति दुर्लभ मन्त्र प्राप्त कर भगवान् का दास (पार्षद) बन कर वे गोलोक चले गये ॥५७॥ उस समय प्रजापति ब्रह्मा ने अपने पुत्र को मुक्त होते देख कर अति हर्ष प्रकट किया और शंकर की अति स्तुति की। अनन्तर ब्रह्मा ने पुनः अन्य मनु का सर्जन किया ॥५८॥ वे स्वयम्भु के पुत्र थे इसलिए उनका स्वायम्भुव मनु नाम था। दूसरे अग्नि के पुत्र स्वारोचिष मनु हुए, जो दानी, धर्मिष्ठ राजा एवं स्वायम्भुव के समान महान् थे। धर्मात्माओं में श्रेष्ठ प्रियव्रत के दोनों पुत्र अन्य दो मनु हुए ॥५९-६०॥ जो वैष्णव, परम तापस, शिव जी के शिष्य और भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे ॥६१॥ पाँचवाँ रैवत मनु हुआ, जो धर्मात्माओं में श्रेष्ठ था। छठा चाक्षुष मनु हुए जो भगवान् विष्णु की भक्ति में तन्मय रहा करते थे ॥६२॥ सूर्यपुत्र श्राद्धदेव, जो वैष्णव थे, सातवें मनु हुए। दूसरे वैष्णव सूर्यपुत्र सावर्णि आठवें मनु हुए ॥६३॥ विष्णु के व्रत परायण दक्षसावर्णि नवें मनु हुए। दशवे ब्रह्मसावर्णि मनु हुए, जो ब्रह्मज्ञान में अति निपुण थे ॥६४॥ ग्यारहवें धर्मसावर्णि मनु हुए, जो धर्मिष्ठ, श्रेष्ठ एवं भगवान् विष्णु के व्रत में तत्पर रहते थे ॥६५॥ ज्ञानी रुद्रसावर्णि बारहवें मनु हुए। इसी प्रकार धर्मात्मा देव-सावर्णि तेरहवें मनु और महाज्ञानी चन्द्रसावर्णि चौदहवें मनु हुए। मनुओं की आयु के समान ही इन्द्रों की आयु होती

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कालरात्रिश्च सा ज्ञेया वेदेषु परिकीर्तिता । ब्रह्मणो वासरं राजन्क्षुद्रकल्पः प्रकीर्तितः ॥६९॥
सप्तकल्पे चिरंजीवी मार्कण्डेयो महातपाः । ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका दग्धाश्च तत्र वै ॥७०॥
उत्थितेनैव सहसा संकर्षणमुखाग्निना । चन्द्रार्कब्रह्मपुत्राश्च ब्रह्मलोकं गता ध्रुवम् ॥७१॥
ब्राह्मरात्रिव्यतीते तु पुनश्च ससृजे विधिः । तस्यां ब्रह्मनिशायां च क्षुद्रः प्रलय उच्यते ॥७२॥
देवाश्च मनवश्चैव[1] तत्र दग्धा नरादयः । एवं त्रिंशद्दिवारात्रैर्ब्रह्मणो मास एव च ॥७३॥
वर्षं द्वादशमासैश्च ब्रह्मसंबन्धि चैव हि । एवं पञ्चदशाब्दे तु गते च ब्रह्मणो नृप ॥७४॥
दैनंदिनस्तु प्रलयो वेदेषु परिकीर्तितः । ॥७५॥
मोहरात्रिश्च सा प्रोक्ता वेदविद्भिः पुरातनैः । तत्र सर्वे प्रणष्टाः स्युश्चन्द्रार्कादिदिगीश्वराः ॥७६॥
आदित्या वसवो रुद्रा मनवो मानवादयः । ऋषयो मुनयश्चैव गन्धर्वा राक्षसादयः ॥७७॥
मार्कण्डेयो लोमशश्च पेचकश्चिरजीविनः । इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिश्चाकूपारश्च कच्छपः ॥७८॥
नाडीजङ्घो बकश्चैव सर्वे नष्टाश्च तत्र वै । ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका नागालयास्तथा ॥७९॥
ब्रह्मलोकं ययुः सर्वे ब्रह्मपुत्रादयस्तथा । गते दैनंदिने ब्रह्मा लोकांश्च ससृजे पुनः ॥८०॥
एवं शताब्दपर्यन्तं परमायुः प्रजापतेः । ब्रह्मणश्च निपाते च महाकल्पो भवेन्नृप ॥८१॥
प्रकीर्तिता महारात्रिः सैव चेह पुरातनैः । ब्रह्मणश्च निपाते च ब्रह्माण्डौघो जलप्लुतः ॥८२॥

है। हे नृप! चौदह इन्द्रों के समय के समान ब्रह्मा का एक दिन होता है और उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। वेदों में वही कालरात्रि कही गयी है। हे राजन्! ब्रह्मा का दिन क्षुद्र (छोटा) कल्प कहा जाता है॥६६-६९॥ महातपस्वी मार्कण्डेय को ऐसे सात कल्पों तक का चिरजीवन प्राप्त है। संकर्षण (शेष) जी के सहसा उठने पर उनके मुख के अग्नि द्वारा ब्रह्मलोक से नीचे सभी लोक दग्ध हो जाते हैं। अनन्तर चन्द्र, सूर्य और ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मलोक चले जाते हैं। इस भाँति रात्रि व्यतीत होने पर ब्रह्मा पुनः उनकी सृष्टि करते हैं। उसी ब्रह्मरात्रि को क्षुद्र (छोटा) प्रलय कहा जाता है॥७०-७२॥ उसमें देववृन्द, मनुगण और मनुष्य आदि सभी जल जाते हैं। इस प्रकार तीस दिन रात्रि का ब्रह्मा का एक मास होता है और उनके बारह मास का उनका एक वर्ष होता है। हे नृप! इस भाँति ब्रह्मा के पन्द्रह वर्ष व्यतीत होने पर एक प्रलय होता है, जो दैनन्दिन नाम से वेदों में बताया गया है॥७३-७५॥ प्राचीन वेदवेत्ताओं ने इसे ही मोहरात्रि कहा है जिसमें चन्द्र, सूर्य आदि दिशाओं के अधीश्वर, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मनुवृन्द, मानव आदि, ऋषिगण, मुनिगण, गन्धर्व, राक्षस, चिरजीवी मार्कण्डेय, लोमश, पेचक, राजा इन्द्रद्युम्न, अकूपार, कच्छप, नाडीजंघ और बक सभी नष्ट हो जाते हैं। और ब्रह्मलोक के नीचे रहने वाले सभी पाताल पर्यन्त लोक जल जाते हैं एवं ब्रह्मा के पुत्र आदि ब्रह्मलोक चले जाते हैं। इस प्रकार दैनन्दिन व्यतीत होने पर ब्रह्मा पुनः उन लोकों का निर्माण करते हैं॥७६-८०॥ हे नृप! इस भाँति प्रजापति ब्रह्मा की सौ वर्ष की परमायु होती है और ब्रह्मा के अन्त होने पर महाप्रलय होता है॥८१॥ प्राचीनों ने उसे महारात्रि कहा है। ब्रह्मा के अन्त

---

१ क. मुनयश्चै०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

वेदमाता च सावित्री वेदा धर्मादयस्तथा । सर्वे प्रणष्टा मृत्युश्च प्रकृतिं च शिवं विना ॥८३॥
नारायणे प्रलीनाश्च विश्वस्था वैष्णवास्तथा । कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वरुद्रगणैः सह ॥८४॥
मृत्युंजये महादेवे प्रलीनः स तमोगुणः । ब्रह्मणश्च निपातेन निमेषः प्रकृतेर्भवेत् ॥८५॥
नारायणस्य शंभोश्च महाविष्णोश्च निश्चितम् । निमेषान्ते पुनः सृष्टिर्भवेत्कृष्णेच्छया नृप ॥८६॥
कृष्णो निमेषरहितो निर्गुणः प्रकृते परः । सगुणानां निमेषश्च कालसंख्यावयोमितः ॥८७॥
निर्गुणस्य च नित्यस्य चाऽऽद्यन्तरहितस्य च । निमेषाणां सहस्रेण प्रकृतेर्दण्ड उच्यते ॥८८॥
षष्टिदण्डात्मकस्तस्य वासरश्च प्रकीर्तितः । त्रिंशद्रात्रिदिनैर्मासो वर्षं द्वादशमासकैः ॥८९॥
एवं गते शताब्दे च श्रीकृष्णे प्रकृतेर्लयः । प्रकृत्यां च प्रलीनायां श्रीकृष्णे प्राकृतो लयः ॥९०॥
सर्वान्संहृत्य सा चैका महाविष्णोः प्रसूश्च या । कृष्णवक्षसि लीना च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥९१॥
सन्तो वदन्ति तां दुर्गां विष्णुमायां सनातनीम् । सर्वशक्तिस्वरूपां च परां नारायणीं सतीम् ॥९२॥
बुद्ध्यधिष्ठातृदेवीं च[1] कृष्णस्य त्रिगुणात्मिकाम् । यन्मायामोहिताश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥९३॥
वैष्णवास्तां महालक्ष्मीं परां राधां वदन्ति ते । यदर्धाङ्गा महालक्ष्मीः प्रिया नारायणस्य च ॥९४॥
प्राणाधिष्ठातृदेवीं च प्रेम्णा प्राणाधिकां वराम् । स्थिरप्रेममयीं शक्तिं निर्गुणां निर्गुणस्य च ॥९५॥

होने पर ब्रह्माण्ड-समूह जल में डूब जाता है। उसमें देवमाता, सावित्री, वेद, धर्म आदि एवं मृत्यु का भी नाश हो जाता है, केवल शिव और प्रकृति शेष रहते हैं॥८२-८३॥ विश्व के समस्त वैष्णव नारायण में विलीन हो जाते हैं और समस्त रुद्रगणों समेत संहार करने वाले कालाग्नि रुद्र, मृत्युञ्जय महादेव में लीन होते हैं, क्योंकि वे तमोगुण स्वरूप हैं। इस प्रकार ब्रह्मा के पतन होने पर प्रकृति का एक निमेष (क्षण) होता है। हे नृप! निमेष के अन्त में नारायण (विष्णु), शिव और महाविष्णु आदि की सृष्टि भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से आरम्भ हो जाती है॥८४-८६॥ भगवान् श्रीकृष्ण, निमेषरहित, निर्गुण और प्रकृति से परे हैं। उनके सगुण रूप का निमेष, काल-संख्या और आयु परिमित होती है किन्तु गुणहीन, नित्य, आदि-अन्त रहित की परिमितता (इयत्ता) नहीं होती है। प्रकृति के सहस्र निमेष का उसका एक दण्ड होता है, साठ दण्ड का एक दिन, तीस दिन का मास और बारह मास का वर्ष होता है॥८७-८९॥ इस प्रकार प्रकृति के सौ वर्ष व्यतीत होने पर भगवान् श्रीकृष्ण में उसका लय हो जाता है और प्रकृति के श्रीकृष्ण में विलीन होने पर वह प्राकृतलय कहा जाता है॥९०॥ इस भाँति महाविष्णु की जननी प्रकृति जो ईश्वरी एवं मूल प्रकृति कही जाती है, अपने में सबका संहरण कर के स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में विलीन हो जाती है॥९१॥ जिसे सन्त महात्मागण दुर्गा, विष्णु-माया, सनातनी, समस्त शक्ति रूप और सर्वश्रेष्ठ सती नारायणी कहते हैं॥९२॥ वही भगवान् श्रीकृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है, जिसकी माया से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव मोहित रहा करते हैं॥९३॥ वैष्णवगण उसे ही महालक्ष्मी एवं सर्वोत्तम राधा कहते हैं, जो नारायण की अर्द्धांगिनी एवं प्रिया महालक्ष्मी है॥९४॥ वह उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवी, प्रेमतः प्राण से अधिक प्रिय एवं श्रेष्ठा है, और निर्गुण की स्थिर प्रेममयी निर्गुणा शक्ति है॥९५॥ नारायण (विष्णु) और शिव (अपने में) अपने-अपने

---

१ क. °च श्रीकृष्णस्यैव निर्गुणम् ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नारायणश्च शंभुश्च संहृत्य स्वगणान्बहून् । शुद्धसत्त्वस्वरूपी श्रीकृष्णे लीनश्च निर्गुणे ॥९६॥
गोपा गोप्यश्च गावश्च सवत्साश्च नराधिप । सर्वे लीनाः प्रकृत्यां च प्रकृतिः परमेश्वरे ॥९७॥
महाविष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः । महाविष्णुः प्रकृत्यां च सा चैवं परमात्मनि ॥९८॥
प्रकृतिर्योगनिद्रा च श्रीकृष्णनयनद्वये । अधिष्ठानं चकारैवं मायया चेश्वरेच्छया ॥९९॥
प्रकृतेर्वासरो यावन्मितः कालः प्रकीर्तितः । तावद्वृन्दावने निद्रा कृष्णस्य परमात्मनः ॥१००॥
अमूल्यरत्नतल्पे च वह्निशुद्धांशुकार्चिते । गन्धचन्दनमाल्यौघवाय्वादिसुरभीकृते ॥१०१॥
पुनः प्रजागरे तस्य सर्वसृष्टिर्भवेत्पुनः । एवं सर्वे प्राकृताश्च श्रीकृष्णं निर्गुणं विना ॥१०२॥
तद्वन्दनं तत्स्मरणं तस्य ध्यानं तदर्चनम् । कीर्तनं तद्गुणानां च महापातकनाशनम् ॥१०३॥
एतत्ते कथितं सर्वं यद्यन्मृत्युंजयाच्छ्रुतम् । यथागमं महाराज किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०४॥

सुयज्ञ उवाच

कालाग्निरुद्रो विश्वानां संहर्ता च तमोगुणः । ब्रह्मणोऽन्ते विलीनश्च सत्त्वं मृत्युंजये शिवे ॥१०५॥
शिवो लीनो निर्गुणे च श्रीकृष्णे प्राकृते लये । कथं तव गुरोर्नाम मृत्युंजय इति श्रुतम् ॥१०६॥
कथं प्रसूर्महाविष्णोर्मूलप्रकृतिरीश्वरी । असंख्यानि च विश्वानि सन्ति वै यस्य लोमसु ॥१०७॥

गणों का संहरण कर के शुद्ध सत्त्व रूप से निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाते हैं॥९६॥ हे नराधिप! गोप, गोपी, बछड़ों समेत गौएँ प्रकृति में लीन होती हैं और प्रकृति परमेश्वर में॥९७॥ सब छोटे विष्णु महाविष्णु में लीन होते हैं, महाविष्णु प्रकृति में और प्रकृति परमात्मा में विलीन होती है॥९८॥ ईश्वरेच्छया प्रकृति योगनिद्रा होकर भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों नेत्रों पर माया से अपना अधिष्ठान बनाती है॥९९॥ इस भाँति प्रकृति का वासर (दिन) काल जितने समय का रहता है, उतने समय तक वृन्दावन में परमात्मा श्रीकृष्ण को निद्रा रहती है॥१००॥ वे अमूल्य रत्नों की शय्या पर, जो अग्नि विशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित एवं गन्ध, चन्दन तथा मालाओं की वायु से अति सुवासित रहती है, शयन करते हैं। उनके जागने पर पुनः सब की सृष्टि होने लगती है, इस प्रकार केवल निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त सभी प्राकृत (प्रकृति से उत्पन्न) कहे जाते हैं। अतः उनका वन्दन, स्मरण, ध्यान, अर्चन और उनके गुणों का कीर्तन करना महापाप का नाश करता है। हे महाराज! मृत्युञ्जय के मुख से मैंने आगमानुसार जो कुछ सुना था, वह तुम्हें सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो॥१०१-१०४॥

सुयज्ञ बोले—विश्व के संहर्ता कालाग्नि रुद्र, जो तमोगुण रूप हैं, ब्रह्मा का अन्त होने पर सत्त्व रूप से मृत्युञ्जय शिव में विलीन होते हैं॥१०५॥ और शिव जी प्राकृत लय के समय निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाते हैं। तो तुम्हारे गुरु शिव मृत्युञ्जय कैसे कहे जाते हैं? ॥१०६॥ और जिस महाविष्णु के लोम में असंख्य विश्व सुनिहित रहता है, ईश्वरी मूल प्रकृति उनकी जननी कैसे कही जाती है? ॥१०७॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सुतपा उवाच

ब्रह्मणोऽन्ते मृत्युकन्या प्रणष्टा जलबिन्दुवत्। संहर्त्री सर्वलोकानां ब्रह्मादीनां नराधिप ॥१०८॥
कतिधा मृत्युकन्यानां ब्रह्मणां कोटिशो लये। कालेन लीनः शंभुश्च सत्त्वरूपेच निर्गुणे ॥१०९॥
मृत्युकन्या जिता शश्वच्छिवेन गुरुणा मम। न मृत्युना जितः शंभुः कल्पे कल्पे श्रुतौ श्रुतम् ॥११०॥
शंभुर्नारायणस्यैव प्रकृतेश्च नराधिप। नित्यानां लीनता नित्ये तन्माया न तु वास्तवी ॥१११॥
स्वयं पुमान्निर्गुणश्च कालेन सगुणः स्वयम्। स्वयं नारायणः शंभुर्मायया प्रकृतिः स्वयम् ॥११२॥
तदंशस्तत्समः शश्वद्यथा वह्नेः स्फुलिङ्गवत्। ये ये च ब्रह्मणा सृष्टा रुद्रादित्यादयस्तथा ॥११३॥
कल्पे कल्पे जितास्ते ते नश्वरा मृत्युकन्यया। न शिवो ब्रह्मणा सृष्टः सत्यो नित्यः सनातनः ॥११४॥
कतिधा ब्रह्मणां पातो यन्निमेषेण भूमिप। अथाऽऽदिसर्गे श्रीकृष्णः प्रकृत्यां च जगद्गुरुः ॥११५॥
चकार वीर्याधानं च पुण्ये वृन्दावने वने। तद्वामांशसमुद्भूता रासे रासेश्वरी परा ॥११६॥
गर्भं दधार सा राधा यावद्वै ब्रह्मणो वयः। ततः सुषाव सा डिम्भं गोलोके रासमण्डले ॥११७॥
चुकोप डिम्भं सा दृष्ट्वा हृदयेन विदूयता। तड्डिम्भं प्रेरयामास तदधो विश्वगोलके ॥११८॥

सुतपा बोले—हे नराधिप! ब्रह्मा के अन्त होने पर मृत्युकन्या जो समस्त लोकों के समेत ब्रह्मा आदि का संहार करती है, जलविन्दु की भाँति स्वयं नष्ट हो जाती है, ॥१०८॥ इस प्रकार कितनी मृत्यु-कन्याओं और करोड़ों ब्रह्मा के लय होने के अनन्तर शिव जी अवसर देखकर सत्त्व रूप एवं निर्गुण (श्रीकृष्ण) में लीन हो जाते हैं ॥१०९॥ मेरे गुरु शिव जी ने ही मृत्युकन्या को जीता है, न कि मृत्यु ने शंकर जी को, ऐसा प्रत्येक कल्प में वेद में सुना गया है॥११०॥ हे नराधिप! शिव, नारायण और प्रकृति ये तीनों नित्य हैं, अतः नित्य में नित्यों की लीनता उनकी माया है, वास्तव में नहीं है॥१११॥ क्योंकि स्वयं पुरुष निर्गुण है और वही समय पाकर सगुण होता है। स्वयं नारायण ही शिव हैं और माया से स्वयं प्रकृति है॥११२॥ जो अग्नि की चिनगारी की भाँति उसी का अंश और निरन्तर उसी के समान है। ब्रह्मा द्वारा रुद्र, आदित्य आदि जिन-जिन की प्रत्येक कल्पों में सृष्टि होती है, वे मृत्यु कन्या द्वारा विजित होने के नाते नश्वर हैं। किन्तु शिव की सृष्टि ब्रह्मा द्वारा नहीं होती है, वे सत्य, नित्य एवं सनातन हैं॥११३-११४॥ हे भूमिप! जिनके निमेष मात्र से कितने ब्रह्मा का पतन हो जाता है। वे जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण सृष्टि के आदि में वृन्दावन नामक पुण्य स्थान में प्रकृति में वीर्याधान करते हैं। उस समय रासमण्डल में उनके बाँयें भाग से सर्वश्रेष्ठा रासेश्वरी राधा उत्पन्न होती हैं। जो भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा वीर्याधान करने पर ब्रह्मा की आयु तक उस गर्भ को धारण किए रहती हैं। अनन्तर गोलोक के रासमण्डल में डिम्भ (अंड) को उत्पन्न करती हैं॥११५-११७॥ किन्तु उसे देख कर उन्हें महान् क्रोध उत्पन्न होता है जिससे हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई वे उस डिम्भ (अंडे) को गोलोक से नीचे विश्व के कुण्डों में फेंक देती हैं॥११८॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

त्यक्त्वाऽपत्यं महादेवी रुरोद च मुहुर्मुहुः। कृष्णस्तां बोधयामास महायोगेन योगवित् ॥११९॥
बभूव तस्माड्डिम्भाच्च सर्वाधारो महाविराट् ॥१२०॥

सुयज्ञ उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम। शापो मे वररूपश्चाप्यभवद्भुक्तिकारणम् ॥१२१॥
सुदुर्लभा हरेर्भक्तिः सर्वमङ्गलमङ्गला। न तस्याश्च समं विप्र वेदोक्तं भक्तिपञ्चकम् ॥१२२॥
यथा भक्तिर्मम भवेच्छ्रीकृष्णे परमात्मनि। सुदुर्लभा च सर्वेषां तत्कुरुष्व महामुने ॥१२३॥
नहयम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात् ॥१२४॥
सर्वेषामाश्रमाणां च द्विजातेर्जातिरुत्तमा। स्वधर्मनिरतश्चैव तेषु श्रेष्ठश्च भारते ॥१२५॥
कृष्णमन्त्रोपासकश्च कृष्णभक्तिपरायणः। नित्यं नैवेद्यभोजी च ततः श्रेष्ठो महाञ्छुचिः ॥१२६॥
त्वां वैष्णवं द्विजश्रेष्ठं महाज्ञानार्णवं परम्। संप्राप्य शिवशिष्यं च कं यामि शरणं मुने ॥१२७॥
अधुनाऽहं गलत्कुष्ठो तव शापान्महामुने। कथं तपस्यामशुचिर्नाधिकारी करोमि च ॥१२८॥

इस प्रकार सन्तान त्याग कर वह महादेवी बार-बार रुदन करती है और योगवेत्ता भगवान् श्रीकृष्ण महायोग द्वारा उन्हें बोध कराते (समझाते) हैं ॥११९॥ उसी अंडे से समस्त का आधार महाविराट् (महाविष्णु) उत्पन्न होता है ॥१२०॥

सुयज्ञ बोले—आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन सार्थक हुआ और यह शाप वरदान रूप में मिला है, क्योंकि इसी कारण भक्ति प्राप्त हुई है ॥१२१॥ हे विप्र! भगवान् की भक्ति समस्त मंगलों का मंगल होने के नाते अति दुर्लभ है और वेद में कही हुई पाँच प्रकार की भक्ति, उसके समान नहीं है। हे महामुने! उन परमात्मा श्रीकृष्ण में जिस प्रकार मेरी भक्ति उत्पन्न हो, जो सबको अति दुर्लभ है, वही उपाय करने की कृपा करें ॥१२२-१२३॥ क्योंकि तीर्थ जलमय ही नहीं होते हैं और न देव मिट्टी पत्थरों में ही रहते हैं। वे लम्बे समय में पवित्र करते हैं और भगवान् कृष्ण के भक्त देखते ही पवित्र कर देते हैं ॥१२४॥ सभी आश्रमों में द्विजाति की जाति अति उत्तम कही गयी है, उसमें भी जो अपने धर्म का पालन करने में लगा रहता है वह श्रेष्ठ है ॥१२५॥ कृष्ण मन्त्र की उपासना करने वाला, उनकी भक्ति में लीन रहने वाला, और नित्य उनके नैवेद्य का भोजन करने वाला व्यक्ति महान् पवित्र होता है, अतः वह उस (द्विज) से श्रेष्ठ है ॥१२६॥ हे मुने! शंकर के शिष्य, द्विजों में श्रेष्ठ, विष्णु के भक्त तथा महान् ज्ञानसागर आपको पाकर मैं अन्य किसकी शरण में जाऊँ। हे महामुने! इस समय आपके शाप द्वारा हमें गलित-कुष्ठ हो गया है, अतः अशुद्ध रहने के नाते मुझे तपस्या करने का अधिकार नहीं है। इसलिए मैं तप नहीं कर सकता हूँ ॥१२७-१२८॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सुतपा उवाच

हरिभक्तिप्रदात्री सा विष्णुमाया सनातनी। सा च याननुगृह्णाति तेभ्यो भक्तिं ददाति च ॥१२९॥
यांश्च माया मोहयति तेभ्यस्तां न ददाति च। करोति वञ्चनां तेषां नश्वरेण धनेन च ॥१३०॥
कृष्णप्रेममयीं शक्तिं प्राणाधिष्ठातृदेवताम्। भज राधां निर्गुणां तां प्रदात्रीं सर्वसंपदाम् ॥१३१॥
शीघ्रं यास्यसि गोलोकं तदनुग्रहसेवया। या सेविता श्रीकृष्णेन सर्वाराध्येन पूजिता ॥१३२॥
ध्यानसाध्यं दुराराध्यं भक्ताः संसेव्य निर्गुणम्। सुचिरेण च गोलोकं प्रयान्ति बहुजन्मतः ॥१३३॥
कृपामयीं च संसेव्य भक्ता यान्त्यचिरेण वै। सा प्रसूश्च महाविष्णोः [1]सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥१३४॥
विप्रपादोदकं भुङ्क्ष्व वर्षं च संयतः शुचिः। कामदेवस्वरूपश्च रोगहीनो भविष्यसि ॥१३५॥
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्पुष्करपत्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥१३६॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे। सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥१३७॥
विप्रपादोदकं चैव पापव्याधिविनाशनम्। सर्वतीर्थोदकसमं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१३८॥
विप्रो मानवरूपी च देवदेवो जनार्दनः। विप्रेण दत्तं द्रव्यं च भुञ्जते सर्वदेवताः ॥१३९॥

सुतपा बोले—भगवान् विष्णु की सनातनी माया भगवान् की भक्ति प्रदान करती है। वह जिसके ऊपर अनुग्रह करती है, उन्हें भक्ति प्रदान करती है ॥१२९॥ वह माया जिन्हें मोहित करती है, उन्हें नश्वर वस्तुएँ—धन आदि देकर भक्ति से वंचित रखती है ॥१३०॥ अतः उस राधा को भजो, जो भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेममयी शक्ति, उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवता, निर्गुण और समस्त सम्पदा प्रदान करने वाली है ॥१३१॥ सेवा करने पर उनकी कृपा से शीघ्र गोलोक प्राप्त करोगे, क्योंकि सभी के आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकी सेवा-पूजा स्वयं की है ॥१३२॥ ध्यानसाध्य, दुराराध्य एवं निर्गुण श्री कृष्ण की सम्यक् सेवा करके भक्त जन सुदीर्घकाल किंवा अनेक जन्मों के पश्चात् गोलोक प्राप्त करते हैं ॥१३३॥ किन्तु उस कृपामयी जननी की सेवा करने पर भक्तगण थोड़े काल में ही गोलोक चले जाते हैं और समस्त सम्पत्ति स्वरूप वाली यही महाविष्णु की जननी है ॥१३४॥ अतः तुम संयमपूर्वक एक वर्ष तक ब्राह्मण का चरणोदक पान करो, उससे तुम्हें कामदेव के समान रूप प्राप्त होगा और नीरोग हो जाओगे ॥१३५॥ क्योंकि ब्राह्मण के चरणोदक से पृथ्वी जब तक भीगी रहती है, उतने दिनों तक पितर गण कमल के पत्ते में जलपान करते हैं ॥१३६॥ पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं उतने ही सागर में भी हैं और सागर में जितने तीर्थ हैं उतने ही ब्राह्मणों के चरणों में भी रहते हैं ॥१३७॥ इस कारण ब्राह्मण का चरणोदक समस्त रोगों का नाशक, समस्त तीर्थों के जल के समान भुक्ति-मुक्ति-दायक और शुभ है ॥१३८॥ क्योंकि मनुष्य रूप में ब्राह्मण देवाधिदेव जनार्दन हैं और ब्राह्मणों द्वारा दी गई वस्तुओं का उपभोग सभी देव करते हैं ॥१३९॥

---

१ क. ०र्वशक्तिस्व०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च गृहीत्वा तस्य पूजनम् । जगाम गृहमित्युक्त्वा त्वायास्ये वत्सरान्तरे ॥१४०॥
भक्त्या च बुभुजे राजा विप्रपादोकं शिवे। विप्रांश्च पूजयामास भोजयामास वत्सरम् ॥१४१॥
संवत्सरे व्यतीते तु निर्मुक्तो व्याधितो नृपः। आजगाम मुनिश्रेष्ठः सुतपाः कश्यपाग्रणीः ॥१४२॥
राधापूजाविधानं च स्तोत्रं च कवचं मनुम् । ध्यानं च सामवेदोक्तं ददौ तस्मै नृपाय सः ॥१४३॥
राजन्निर्गम्यतां शीघ्रमित्युक्त्वा तपसे मुनिः। जगाम स्वालयाद्दुर्गं निर्जगाम त्वरन्नृपः ॥१४४॥
रुरुदुर्बान्धवाः सर्वे त्रिरात्रं शोकमूर्च्छिताः । भार्याश्च तत्यजुः प्राणान्पुत्रो राजा बभूव ह ॥१४५॥
सुयशः पुष्करं गत्वा चक्रे वै दुष्करं तपः। दिव्यं वर्षशतं राजा जजाप परमं मनुम् ॥१४६॥
तदा ददर्श गगने रथस्थां परमेश्वरीम् । स तद्दर्शनमात्रेण निष्पापश्च बभूव ह ॥१४७॥
तत्याज मानुषं देहं दिव्यां मूर्तिं दधार ह। सा देवी तेन यानेन रत्नेन्द्रैर्निमितेन च ॥१४८॥
नृपं नीत्वा च गोलोकं तत्र चैषा ययौ तदा। राजा ददर्श गोलोकं नद्या विरजयाऽऽवृतम् ॥१४९॥
वेष्टितं पर्वतेनैव शतशृङ्गेण चारुणा। श्रीवृन्दावनसंयुक्तं रासमण्डलमण्डितम् ॥१५०॥
गोगोपगोपीनिकरैः शोभितं परिसेवितैः । रत्नेन्द्रसारखचितैर्मन्दिरैः सुमनोहरैः ॥१५१॥
नानाचित्रविचित्रैश्च राजितं परिशोभितम्। सप्तत्रिंशद्भिराक्रीडैः कल्पवृक्षसमन्वितैः ॥१५२॥
पारिजातद्रुमाकीर्णैर्वेष्टितं कामधेनुभिः । आकाशवत्सुविस्तीर्णं वर्तुलं चन्द्रबिम्बवत् ॥१५३॥

इतना कह कर वह ब्राह्मण उनकी पूजा ग्रहण करने के अनन्तर अपना घर चला गया और कहता गया कि—'वर्ष बीतने पर मैं पुनः आऊँगा।' ॥१४०॥ हे शिवे! उसके पश्चात् राजा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों का चरणोदक पान कर उनकी पूजा करने लगा। उन्हें वर्ष भर भोजन भी कराया। वर्ष के व्यतीत होते ही वह राजा नीरोग हो गया और उसी समय वह मुनिश्रेष्ठ सुतपा, जो कश्यप-गोत्रों में अग्रसर थे, वहाँ पुनः आ पहुँचे। उन्होंने राजा को राधा जी का पूजा-विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र, और सामवेदानुसार ध्यान बताया ॥१४१-१४३॥ और कहा—'हे राजन्! अब तप के लिए शीघ्र चले जाओ।' इतना कह कर मुनि के चले जाने पर राजा ने भी अपने भवन से प्रस्थान कर दिया ॥१४४॥ उनके वियोग में, बान्धवगण तीन रात्रि तक शोक-निमग्न पड़े रहे और स्त्रियों ने तो प्राण परित्याग ही कर दिया। अन्त में उनका पुत्र राजसिंहासन पर सुशोभित हुआ ॥१४५॥ राजा सुयज्ञ ने पुष्कर जाकर दिव्य सौ वर्षों तक उस परम मन्त्र का जप करते हुए अति कठिन तप किया ॥१४६॥ अनन्तर आकाश में रथ पर सुशोभित परमेश्वरी राधा का दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ, जिससे ये उसी समय पापरहित हो गये ॥१४७॥ एवं अपनी मनुष्य-देह का त्याग कर दिव्य शरीर धारण किया और रत्नेन्द्र-निर्मित उस रथ पर देवी के साथ बैठ कर राजा गोलोक चले गये। वहाँ पहुँच कर राजा ने विरजा नदी से आवृत (घिरा) उस गोलोक को देखा, जो सौन्दर्यपूर्ण सौ शिखरों वाले पर्वत से वेष्टित, श्रीवृन्दावन से युक्त एवं रासमण्डल से विभूषित था ॥१४८-१५०॥ गौओं, गोपों और गोपियों के वृन्दों से सुसेवित होने के नाते अति सुशोभित, उत्तम रत्नों के सार भागों से खचित, अति मनोहर एवं चित्र-विचित्र मन्दिरों से सुविराजित था। एवं क्रीडा स्थान वाले सैंतीस कल्पवृक्षों से युक्त, पारिजात से आच्छादित, कामधेनुओं से पूर्ण, आकाश की भाँति अति विस्तृत और चन्द्र बिम्ब के समान गोलाकार था ॥१५१-१५३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अत्यूर्ध्वमपि वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम् । शून्ये स्थितं निराधारं ध्रुवमेवेश्वरेच्छया ॥१५४॥
आत्माकाशसमं नित्यमस्माकं च सुदुर्लभम् । अहं नारायणोऽनन्तो ब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट् ॥१५५॥
धर्मक्षुद्रविराट्संघो गङ्गा लक्ष्मी सरस्वती । त्वं विष्णुमाया सावित्री तुलसी च गणेश्वरः ॥१५६॥
सनत्कुमारः स्कन्दश्च नरनारायणावृषी । कपिलो दक्षिणा यज्ञो ब्रह्मपुत्राश्च योगिनः ॥१५७॥
पवनो वरुणश्चन्द्रः सूर्यो रुद्रो हुताशनः । कृष्णमन्त्रोपासकाश्च भारतस्थाश्च वैष्णवाः ॥१५८॥
एभिर्दृष्टश्च गोलोको नान्यैर्दृष्टः कदाचन । निरामये च तत्रैव रत्नसिंहासने स्थितम् ॥१५९॥
रत्नमालाकिरीटैश्च भूषितं रत्नभूषणैः । सुनिर्मलैः पीतवस्त्रैर्वह्निशुद्धैर्विराजितम् ॥१६०॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं किशोरं गोपरूपिणम् । नवीननीरदश्यामं श्वेतपङ्कजलोचनम् ॥१६१॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१६२॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ध्यानसाध्यं दुराराध्यमस्माकं च सुदुर्लभम् ॥१६३॥
प्रियैर्द्वादशगोपालैः सेवितं श्वेतचामरैः । वीक्षितं गोपिकावृन्दैः सस्मितैः सुमनोहरैः ॥१६४॥
पीडितैः कामबाणैश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनैः । वह्निशुद्धांशुकाधानै रत्नभूषणभूषितैः ॥१६५॥
रासमण्डलमध्यस्थं श्रीकृष्णं च परात्परम् । ददर्श राजा तत्रैव राधया दर्शितं तदा ॥१६६॥
स्तुतं चतुर्भिर्वेदैश्च मूर्तिमद्भिर्मनोहरैः । रागिणीनां च रागाणामतीव सुमनोहरम् ॥१६७॥

वैकुण्ठ लोक से अत्यन्त ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर स्थित एवं ईश्वरेच्छया शून्य प्रदेश में निराधार होते हुए ध्रुव की भाँति अटल था ॥१५४॥ वह आत्मा और आकाश की भाँति नित्य तथा हम लोगों के लिए भी अति दुर्लभ है। मैं, नारायण, अनन्त, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट् (महाविष्णु), धर्म, क्षुद्रविष्णु-वृन्द, गंगा, लक्ष्मी, सरस्वती, तुम, विष्णुमाया, सावित्री, तुलसी, गणेश्वर, सनत्कुमार, स्कन्द, नर-नारायण दोनों ऋषि, कपिल, दक्षिणा, यज्ञ, ब्रह्मा के योगी पुत्रगण, वायु, वरुण, चन्द्र, सूर्य, रुद्र, अग्नि और भारत के रहने वाले एवं भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र की आराधना करने वाले वैष्णव वृन्द, इन्हीं लोगों ने गोलोक को देखा है अन्य कोई नहीं। उसी गोलोक में निरामय (सुरचित) रत्नसिंहासन पर भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं, जो रत्नों की माला, किरीट, रत्नों के भूषणों से भूषित, अतिनिर्मल एवं अग्नि की भाँति विशुद्ध पीताम्बर से सुसज्जित हैं ॥१५५-१६०॥ सर्वाङ्ग में चन्दन लगाये किशोरावस्था तथा गोपरूप धारण किये हुए हैं। जो नये मेघ के समान श्यामल और श्वेतकमल की भाँति नेत्र वाले एवं शारदीय पूर्णचन्द्रमा के समान मुख वाले हैं। वे मन्द मुसुकान से युक्त एवं मनोहर हैं। दो भुजाओं से युक्त, हाथ में मुरली लिये हुए, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले, स्वेच्छामय, परब्रह्म, निर्गुण, प्रकृति से परे, ध्यान द्वारा ही साध्य होने वाले अन्यथा दुराराध्य और हम लोगों के लिए अति दुर्लभ हैं ॥१६१-१६३॥ उनकी सेवा में बारह प्रिय गोपाल श्वेत चामर डुला रहे हैं, गोपियों का अति मनोहर समूह मन्द मुसुकान भरी चितवन से देख रहा है, जो अति स्थायी यौवन से निरन्तर भूषित, काम के बाणों से आहत, अग्निविशुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित और रत्नों के भूषणों से विभूषित था ॥१६४-१६५॥ अनन्तर राजा ने राधिका जी द्वारा दिखाये गए परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण को रत्नसिंहासन पर सुविराजमान देखा, जो मनोहर मूर्ति धारण किये चारों वेदों द्वारा स्तुत, राग-रागिनियों से

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च गृहीत्वा तस्य पूजनम् । जगाम गृहमित्युक्त्वा त्वायास्ये वत्सरान्तरे ॥१४०॥
भक्त्या च बुभुजे राजा विप्रपादोकं शिवे। विप्रांश्च पूजयामास भोजयामास वत्सरम् ॥१४१॥
संवत्सरे व्यतीते तु निर्मुक्तो व्याधितो नृपः। आजगाम मुनिश्रेष्ठः सुतपाः कश्यपाग्रणीः ॥१४२॥
राधापूजाविधानं च स्तोत्रं च कवचं मनुम् । ध्यानं च सामवेदोक्तं ददौ तस्मै नृपाय सः ॥१४३॥
राजन्निर्गम्यतां शीघ्रमित्युक्त्वा तपसे मुनिः। जगाम स्वालयाद्दुर्गं निर्जगाम त्वरन्नृपः ॥१४४॥
रुरुदुर्बान्धवाः सर्वे त्रिरात्रं शोकमूर्च्छिताः । भार्याश्च तत्यजुः प्राणान्पुत्रो राजा बभूव ह ॥१४५॥
सुयशः पुष्करं गत्वा चक्रे वै दुष्करं तपः। दिव्यं वर्षशतं राजा जजाप परमं मनुम् ॥१४६॥
तदा ददर्श गगने रथस्थां परमेश्वरीम् । स तद्दर्शनमात्रेण निष्पापश्च बभूव ह ॥१४७॥
तत्याज मानुषं देहं दिव्यां मूर्तिं दधार ह। सा देवी तेन यानेन रत्नेन्द्रैर्निमितेन च ॥१४८॥
नृपं नीत्वा च गोलोकं तत्र चैषा ययौ तदा। राजा ददर्श गोलोकं नद्या विरजयाऽऽवृतम् ॥१४९॥
वेष्टितं पर्वतेनैव शतशृङ्गेण चारुणा। श्रीवृन्दावनसंयुक्तं रासमण्डलमण्डितम् ॥१५०॥
गोगोपगोपीनिकरैः शोभितं परिसेवितैः । रत्नेन्द्रसारखचितैर्मन्दिरैः सुमनोहरैः ॥१५१॥
नानाचित्रविचित्रैश्च राजितं परिशोभितम्। सप्तत्रिंशद्भिराक्रीडैः कल्पवृक्षसमन्वितैः ॥१५२॥
पारिजातद्रुमाकीर्णैर्वेष्टितं कामधेनुभिः । आकाशवत्सुविस्तीर्णं वर्तुलं चन्द्रबिम्बवत् ॥१५३॥

इतना कह कर वह ब्राह्मण उनकी पूजा ग्रहण करने के अनन्तर अपना घर चला गया और कहता गया कि—'वर्ष बीतने पर मैं पुनः आऊँगा।' ॥१४०॥ हे शिवे! उसके पश्चात् राजा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों का चरणोदक पान कर उनकी पूजा करने लगा। उन्हें वर्ष भर भोजन भी कराया। वर्ष के व्यतीत होते ही वह राजा नीरोग हो गया और उसी समय वह मुनिश्रेष्ठ सुतपा, जो कश्यप-गोत्रों में अग्रसर थे, वहाँ पुनः आ पहुँचे। उन्होंने राजा को राधा जी का पूजा-विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र, और सामवेदानुसार ध्यान बताया ॥१४१-१४३॥ और कहा—'हे राजन्! अब तप के लिए शीघ्र चले जाओ।' इतना कह कर मुनि के चले जाने पर राजा ने भी अपने भवन से प्रस्थान कर दिया ॥१४४॥ उनके वियोग में, बान्धवगण तीन रात्रि तक शोक-निमग्न पड़े रहे और स्त्रियों ने तो प्राण परित्याग ही कर दिया। अन्त में उनका पुत्र राजसिंहासन पर सुशोभित हुआ ॥१४५॥ राजा सुयज्ञ ने पुष्कर जाकर दिव्य सौ वर्षों तक उस परम मन्त्र का जप करते हुए अति कठिन तप किया ॥१४६॥ अनन्तर आकाश में रथ पर सुशोभित परमेश्वरी राधा का दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ, जिससे ये उसी समय पापरहित हो गये ॥१४७॥ एवं अपनी मनुष्य-देह का त्याग कर दिव्य शरीर धारण किया और रत्नेन्द्र-निर्मित उस रथ पर देवी के साथ बैठ कर राजा गोलोक चले गये। वहाँ पहुँच कर राजा ने विरजा नदी से आवृत (घिरा) उस गोलोक को देखा, जो सौन्दर्यपूर्ण सौ शिखरों वाले पर्वत से वेष्टित, श्रीवृन्दावन से युक्त एवं रासमण्डल से विभूषित था ॥१४८-१५०॥ गौओं, गोपों और गोपियों के वृन्दों से सुसेवित होने के नाते अति सुशोभित, उत्तम रत्नों के सार भागों से खचित, अति मनोहर एवं चित्र-विचित्र मन्दिरों से सुविराजित था। एवं क्रीडा स्थान वाले सैंतीस कल्पवृक्षों से युक्त, पारिजात से आच्छादित, कामधेनुओं से पूर्ण, आकाश की भाँति अति विस्तृत और चन्द्र बिम्ब के समान गोलाकार था ॥१५१-१५३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अत्यूर्ध्वमपि वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम् । शून्ये स्थितं निराधारं ध्रुवमेवेश्वरेच्छया ॥१५४॥
आत्माकाशसमं नित्यमस्माकं च सुदुर्लभम् । अहं नारायणोऽनन्तो ब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट् ॥१५५॥
धर्मक्षुद्रविराट्संघो गङ्गा लक्ष्मी सरस्वती । त्वं विष्णुमाया सावित्री तुलसी च गणेश्वरः ॥१५६॥
सनत्कुमारः स्कन्दश्च नरनारायणावृषी । कपिलो दक्षिणा यज्ञो ब्रह्मपुत्राश्च योगिनः ॥१५७॥
पवनो वरुणश्चन्द्रः सूर्यो रुद्रो हुताशनः । कृष्णमन्त्रोपासकाश्च भारतस्थाश्च वैष्णवाः ॥१५८॥
एभिर्दृष्टश्च गोलोको नान्यैर्दृष्टः कदाचन । निरामये च तत्रैव रत्नसिंहासने स्थितम् ॥१५९॥
रत्नमालाकिरीटैश्च भूषितं रत्नभूषणैः । सुनिर्मलैः पीतवस्त्रैर्वह्निशुद्धैर्विराजितम् ॥१६०॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं किशोरं गोपरूपिणम् । नवीननीरदश्यामं श्वेतपङ्कजलोचनम् ॥१६१॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१६२॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ध्यानसाध्यं दुराराध्यमस्माकं च सुदुर्लभम् ॥१६३॥
प्रियैर्द्वादशगोपालैः सेवितं श्वेतचामरैः । वीक्षितं गोपिकावृन्दैः सस्मितैः सुमनोहरैः ॥१६४॥
पीडितैः कामबाणैश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनैः । वह्निशुद्धांशुकाधानै रत्नभूषणभूषितैः ॥१६५॥
रासमण्डलमध्यस्थं श्रीकृष्णं च परात्परम् । ददर्श राजा तत्रैव राधया दर्शितं तदा ॥१६६॥
स्तुतं चतुर्भिर्वेदैश्च मूर्तिमद्भिर्मनोहरैः । रागिणीनां च रागाणामतीव सुमनोहरम् ॥१६७॥

वैकुण्ठ लोक से अत्यन्त ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर स्थित एवं ईश्वरेच्छया शून्य प्रदेश में निराधार होते हुए ध्रुव की भाँति अटल था ॥१५४॥ वह आत्मा और आकाश की भाँति नित्य तथा हम लोगों के लिए भी अति दुर्लभ है। मैं, नारायण, अनन्त, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट् (महाविष्णु), धर्म, क्षुद्रविष्णु-वृन्द, गंगा, लक्ष्मी, सरस्वती, तुम, विष्णुमाया, सावित्री, तुलसी, गणेश्वर, सनत्कुमार, स्कन्द, नर-नारायण दोनों ऋषि, कपिल, दक्षिणा, यज्ञ, ब्रह्मा के योगी पुत्रगण, वायु, वरुण, चन्द्र, सूर्य, रुद्र, अग्नि और भारत के रहने वाले एवं भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र की आराधना करने वाले वैष्णव वृन्द, इन्हीं लोगों ने गोलोक को देखा है अन्य कोई नहीं। उसी गोलोक में निरामय (सुरचित) रत्नसिंहासन पर भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं, जो रत्नों की माला, किरीट, रत्नों के भूषणों से भूषित, अतिनिर्मल एवं अग्नि की भाँति विशुद्ध पीताम्बर से सुसज्जित हैं ॥१५५-१६०॥ सर्वाङ्ग में चन्दन लगाये किशोरावस्था तथा गोपरूप धारण किये हुए हैं। जो नये मेघ के समान श्यामल और श्वेतकमल की भाँति नेत्र वाले एवं शारदीय पूर्णचन्द्रमा के समान मुख वाले हैं। वे मन्द मुसुकान से युक्त एवं मनोहर हैं। दो भुजाओं से युक्त, हाथ में मुरली लिये हुए, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले, स्वेच्छामय, परब्रह्म, निर्गुण, प्रकृति से परे, ध्यान द्वारा ही साध्य होने वाले अन्यथा दुराराध्य और हम लोगों के लिए अति दुर्लभ हैं ॥१६१-१६३॥ उनकी सेवा में बारह प्रिय गोपाल श्वेत चामर डुला रहे हैं, गोपियों का अति मनोहर समूह मन्द मुसुकान भरी चितवन से देख रहा है, जो अति स्थायी यौवन से निरन्तर भूषित, काम के बाणों से आहत, अग्निविशुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित और रत्नों के भूषणों से विभूषित था ॥१६४-१६५॥ अनन्तर राजा ने राधिका जी द्वारा दिखाये गए परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण को रत्नसिंहासन पर सुविराजमान देखा, जो मनोहर मूर्ति धारण किये चारों वेदों द्वारा स्तुत, राग-रागिनियों से

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

श्रुतवन्तं च संगीतं यन्त्रवक्त्रोत्थितं शिवे। नित्यया च सनातन्या प्रकृत्या च सह त्वया ॥१६८॥
शश्वत्पूजितपादाब्जमखण्डतुलसीदलैः। कस्तूरीकुङ्कुमार्द्रैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः ॥१६९॥
दूर्वाभिरक्षताभिश्च पारिजातप्रसूनकैः। निर्मलैर्विरजातोयैर्दत्ताघ्यैरतिशोभितम् ॥१७०॥
सुप्रसन्नं स्वतन्त्रं च सर्वकारणकारणम्। सर्वेषां चान्तरात्मानं सर्वेशं सर्वजीवनम् ॥१७१॥
सर्वाधारं परं[1] पूज्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। सर्वसंपत्स्वरूपं च दातारं सर्वसंपदाम् ॥१७२॥
सर्वमङ्गलरूपं च सर्वमङ्गलकारणम्। सर्वमङ्गलदं सर्वमङ्गलानां च मङ्गलम् ॥१७३॥
तं दृष्ट्वा नृपतिस्त्रस्तो ह्यवरुह्य रथात्त्वरन्। साश्रुनेत्रः पुलकितो मूर्ध्ना स प्रणनाम च ॥१७४॥
परमात्मा ददौ तस्मै स्वदास्यं च शुभाशिषम्। स्वभक्तिं निश्चलां सत्यामस्माकं च सुदुर्लभाम् ॥१७५॥
राधाऽवरुह्य स्वरथात्कृष्णवक्षस्युवास सा। गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेविता श्वेतचामरैः ॥१७६॥
संभाषिता श्रीकृष्णेन सस्मितेन च पूजिता। समुत्थितेन सहसा भक्त्या वै संभ्रमेण च ॥१७७॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं च माधवम्। प्रवदन्ति च वेदेषु वेदविद्भिः पुरातनैः ॥१७८॥
विपर्ययं ये वदन्ति ये निन्दन्ति जगत्प्रसूम्। कृष्णप्राणाधिकां प्रेममयीं शक्तिं च राधिकाम् ॥१७९॥

आवृत होने के नाते अति मनोहर थे। हे शिवे! नित्य सनातनी प्रकृति रूप तुम्हारे साथ, यंत्र-मुख से निकले हुए संगीत को वे सुन रहे थे ॥१६६-१६८॥ उनके चरण कमल की निरन्तर पूजा हो रही थी, जो कस्तूरी, कुंकुम से आर्द्र, गन्ध एवं चन्दन-चर्चित अखण्ड तुलसी दल अक्षत-दूर्वादल, पारिजात (मन्दार) के पुष्पों और विरजा नदी के जल के दिए गये अर्घ्य से अति शोभित थे तथा जो स्वयं अति प्रसन्न, स्वतन्त्र, समस्त कारणों के कारण, सभी के अन्तरात्मा, सर्वाधीश, सब के जीवन, सबके आधार, परमपूज्य, ब्रह्म, सनातन ज्योतिः-स्वरूप, समस्त सम्पत्ति स्वरूप, सम्पूर्ण सम्पदाओं के प्रदाता, समस्त मंगल स्वरूप, सम्पूर्ण मंगलों के कारण, सर्व-मंगलप्रद और समस्त मंगलों के मंगल हैं॥१६९-१७३॥ उन्हें देख कर राजा ने भयभीत होकर सजल नयन और रोमाञ्चित होते हुए रथ से उतर कर शीघ्र शिर से प्रणाम किया ॥१७४॥ उपरान्त परमात्मा ने शुभ आशीर्वाद देकर उन्हें अपना दास (पार्षद) बनाया और अपनी निश्चल एवं सत्य भक्ति भी प्रदान की जो हम लोगों को अति दुर्लभ है॥१७५॥ अनन्तर राधा अपने रथ से उतर कर भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर निवसित हो गयीं और उनकी अत्यन्त प्रेयसी गोपियाँ श्वेत चामरों से उनकी सेवा करने लगीं॥१७६॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने भी मन्द हास करते हुए उनसे प्रेमालाप और पूजा तथा सहसा खड़े होकर भक्तिपूर्वक सम्मान किया॥१७७॥ (इस कारण) पहले राधा पश्चात् कृष्ण या माधव कहना चाहिए, ऐसा वेदों में प्राचीन वेद-वेत्ताओं ने कहा है॥१७८॥ क्योंकि जो विपर्यय (उलटा अर्थात् कृष्ण कह कर राधा का नामोच्चारण करते हैं और उस जगज्जननी राधिका की, जो भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों से अधिक प्रिय एवं उनकी प्रेममयी शक्ति है,

---

१ क. ०रं ज्योतिरं०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ते पच्यन्ते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भवन्ति स्त्रीपुत्रहीना रोगिणः शतजन्मसु ॥१८०॥
इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम्। सा त्वं सती भगवती वैष्णवी च सनातनी ॥१८१॥
नारायणी विष्णुमाया मूलप्रकृतिरीश्वरी। मायया मां पृच्छसि त्वं सर्वज्ञा सर्वरूपिणी ॥१८२॥
स्त्रीजातिष्वधिदेवी च परा जातिस्मरा वरा। कथितं राधिकाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१८३॥

श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधाख्या० सुयज्ञाख्या०
सुयज्ञगोलोकगमनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

श्रीकृष्णस्य स्थिते मन्त्रे चान्येषामीश्वरस्य वः। कथं जग्राह राधाया मन्त्रं वै वैष्णवो नृपः ॥१॥
किं विधानं च किं ध्यानं किं स्तोत्रं कवचं च किम्। कं मन्त्रं च ददौ राज्ञे तां पूजापद्धतिं वद ॥२॥

महेश्वर उवाच

हे विप्र कं भजामीति प्रश्नं कुर्वति राजनि। शीघ्रं प्राप्नोमि गोलोकं कस्याऽऽराधनतो मुने ॥३॥

निन्दा करते हैं, उन्हें चन्द्र-सूर्य के समय तक कालसूत्र नामक नरक में रहना पड़ता है और सौ जन्मों तक स्त्री-पुत्र से हीन एवं रोगी भी होना पड़ता है॥१७९-१८०॥ हे दुर्गे! इस प्रकार मैंने श्री राधिका जी का परमोत्तम आख्यान तुम्हें सुना दिया और तुम भी वही सती, भगवती, वैष्णवी, सनातनी, नारायणी, विष्णु की माया, मूल प्रकृति, ईश्वरी होकर माया से मुझसे पूछ रही हो क्योंकि तुम भी सब कुछ जानने वाली, समस्त का स्वरूप, स्त्री जाति की अधीश्वरी, श्रेष्ठा और जाति स्मरण रखने वाली देवी हो। इस भाँति मैंने राधिका जी का आख्यान कह दिया अब पुनः क्या सुनना चाहती हो॥१८१-१८३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हरगौरी के संवाद में राधाख्यान एवं सुयज्ञाख्यान में सुयज्ञ का गोलोक-प्राप्ति-कथन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥५४॥

अध्याय ५५

राधा की पूजा, स्तोत्र आदि

पार्वती बोलीं—आपके और दूसरों के भी ईश्वर श्रीकृष्ण के मंत्र के रहते उस वैष्णव राजा ने कैसे राधा का मंत्र ग्रहण किया? तथा उसका विधान, ध्यान, स्तोत्र एवं कवच क्या है, उन्होंने राजा को कौन मन्त्र बताया? उस पूजापद्धति को बताने की कृपा कीजिये॥१-२॥

महेश्वर बोले—हे विप्र! मैं किसकी आराधना करूँ, तथा हे मने! किसकी सेवा से मुझे गोलोक की शीघ्र प्राप्ति होगी॥३॥ ऐसा उस महाराज के पूछने पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने कहा कि—भगवान् की सेवा

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इत्युक्तवन्तं राजेन्द्रमुवाच ब्राह्मणोत्तमः। तत्सेवया च तल्लोकं प्राप्स्यसे बहुजन्मतः ॥४॥
तत्प्राणाधिष्ठातृदेवीं भज राधां परात्पराम्। कृपामयीप्रसादेन शीघ्रं प्राप्नोषि तत्पदम् ॥५॥
इत्युक्त्वा राधिकामन्त्रं ददौ तस्मै षडक्षरम्। ओं राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥६॥
प्राणायामं भूतशुद्धिं मन्त्रन्यासं तथैव च। कराङ्गन्याससमेवं च ध्यानं सर्वसुदुर्लभम् ॥७॥
स्तोत्रं च कवचं तं च शिक्षयामास भक्तितः। राजा तेन क्रमेणैव जजाप परमं मनुम् ॥८॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं मङ्गलानां च मङ्गलम्। कृष्णस्तां पूजयामास पुरा ध्यानेन येन च ॥९॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् ॥१०॥
सुश्रोणीं सुनितम्बां च पक्वबिम्बाधरां वराम्। मुक्तापङ्क्तिप्रतिनिधिदन्तपङ्क्तिमनोहराम् ॥११॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नमालाविभूषिताम् ॥१२॥
रत्नकेयूरवलयां रत्नमञ्जीररञ्जिताम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन विचित्रेण विराजिताम् ॥१३॥
सूर्यप्रभाप्रतिकृतिगण्डस्थलविराजिताम्। अमूल्यरत्नखचितग्रैवेयकविभूषिताम् ॥१४॥
सद्रत्नसारखचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलाम्। रत्नाङ्गुलीयसंयुक्तां रत्नपाशकशोभिताम् ॥१५॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यशोभितम्। रूपाधिष्ठातृदेवीं च मत्तवारणगामिनीम् ॥१६॥
गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः। कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना ॥१७॥

करने से अनेक जन्मों में गोलोक की प्राप्ति होगी। अतः उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवी राधा का भजन करो; क्योंकि उसी परात्पर (सर्वश्रेष्ठ) एवं कृपामयी के प्रसाद से तुम्हें शीघ्र उस स्थान की प्राप्ति हो जायगी ॥४-५॥ ऐसा कहकर (ब्राह्मण ने) उसे राधा जी का षडक्षर वाला 'ओं राधायै स्वाहा' मन्त्र, प्राणायाम, भूतशुद्धि, मन्त्र-न्यास, करन्यास, अंगन्यास, तथा सबके लिए अति दुर्लभ ध्यान, स्तोत्र एवं कवच की भी उन्हें शिक्षा दी। अनन्तर राजा ने उसी व्रत से उस परम मन्त्र का जप तथा ध्यान भी किया, जो सामवेदानुसार एवं समस्त मंगलों का मंगल था। पूर्वकाल में जिस ध्यान द्वारा भगवान् श्री कृष्ण ने उस राधा की पूजा की थी वह यह है— उनका श्वेत चम्पा पुष्प के समान रूप-रंग है एवं करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की भांति मुख, शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्र, सुन्दर श्रोणी भाग, अति सुन्दर नितम्ब, पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ, स्वयं सबसे उत्तम, मोती की पंक्ति के समान दाँतों की मनोहर पंक्तियाँ तथा मन्दहास समेत प्रसन्नतापूर्ण मुख हैं। वे भक्तों पर अनुकम्पा करने वाली, अग्नि-विशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित, रत्नों की मालाओं से विभूषित, रत्नों के केयूर (अंगद), रत्नों के मंजीर, रत्नों के नूपुर और रत्नों के विचित्र एवं युगल कुण्डलों से विभूषित तथा सूर्य की कान्ति के समान कान्तिपूर्ण गण्डस्थल (कपोल) से सुशोभित, अमूल्य रत्नों के हार से भूषित, उत्तम रत्नों के सार भाग से खचित किरीट-मुकुट से देदीप्यमान, रत्नों की अंगूठी आदि भूषण एवं पाशक (चेन या पासा आदि) भूषणों से सुशोभित हैं ॥६-१५॥ मालती की माला से विभूषित केश-पाश धारण करने वाली, रूप की अधिष्ठात्री और मतवाले हाथी की भाँति गमन करने वाली उन (राधा देवी) की अत्यन्त प्रिय गोपियाँ श्वेत चामरों से सेवा कर रही हैं। उनके भाल में कस्तूरी बिन्दी के साथ नीचे चन्दन की बिन्दी लगी है ॥१६-१७॥ सुन्दर सीमन्त

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सिन्दूरबिन्दुना चारुसीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम् । नित्यं सुपूजितां भक्त्या कृष्णेन परमात्मना ॥१८॥
कृष्णसौभाग्यसंयुक्तां कृष्णप्राणाधिकां वराम् । कृष्णप्राणाधिदेवीं च निर्गुणां च परात्पराम् ॥१९॥
महाविष्णुविधात्रीं च प्रदात्रीं सर्वसंपदाम् । कृष्णभक्तिप्रदां शान्तां मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥२०॥
वैष्णवीं विष्णुमायां च कृष्णप्रेममयीं शुभाम् । रासमण्डलमध्यस्थां रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥२१॥
रासे रासेश्वरयुतां राधां रासेश्वरीं भजे । ॥२२॥
ध्यात्वा पुष्पं मूर्धिन दत्त्वा पुनर्ध्यायेज्जगत्प्रसूम् । दद्यात्पुष्पं पुनर्ध्यात्वा चोपचाराणि षोडश ॥२३॥
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं गन्धानुलेपनम् । धूपं दीपं सुपुष्पं च स्नानीयं रत्नभूषणम् ॥२४॥
नानाप्रकारनैवेद्यं ताम्बूलं वासितं जलम् । मधुपर्कं रत्नतल्पमुपचाराणि षोडश ॥२५॥
प्रत्येकं वेदमन्त्रेण दत्तं भक्त्या च भूभृता । मन्त्रांश्च श्रूयतां दुर्गे वेदोक्तान्सर्वसंमतान् ॥२६॥
रत्नसारविकारं च निर्मितं विश्वकर्मणा । वरं सिंहासनं रम्यं राधे पूजासु गृह्यताम् ॥२७॥
अमूल्यरत्नखचितममूल्यं सूक्ष्ममेव च । वह्निशुद्धं निर्मलं च वसनं देवि गृह्यताम् ॥२८॥
सद्रत्नसारपात्रस्थं सर्वतीर्थोदकं शुभम् । पादप्रक्षालनार्थं च राधे पाद्यं च गृह्यताम् ॥२९॥
दक्षिणावर्तशङ्खस्थं सदूर्वापुष्पचन्दनम् । पूतं युक्तं तीर्थतोये राधेऽर्घ्यं प्रतिगृह्यताम् ॥३०॥

(माँग) में सिन्दूर की बिन्दी लगने के कारण उसके नीचे के भाग में समुज्ज्वल, परमात्मा श्रीकृष्ण द्वारा भक्तिपूर्वक नित्य सुपूजित, कृष्ण के सौभाग्य से युक्त, उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय, उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवी, निर्गुण और परात्पर (सर्वश्रेष्ठ), महाविष्णु की जननी, समस्त सम्पत्ति की प्रदायिनी, कृष्ण-भक्ति देने वाली, शान्तस्वरूप, मूलप्रकृति, ईश्वरी, वैष्णवी, विष्णु की माया, भगवान् कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति, शुभ, रासमण्डल के मध्य रत्नसिंहासन पर विराजमान, रास में रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ रहनेवाली रासेश्वरी श्रीराधा जी की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥१८-२२॥ इस प्रकार ध्यान करने के उपरान्त उस पुष्प को मस्तक पर रख कर पुनः जगदम्बा (श्रीराधा) का ध्यान करे और फूल चढ़ावे। पुनः ध्यान के पश्चात् सोलह उपचार—आसन, वस्त्र, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, लेपन, धूप, दीप, उत्तम पुष्प, स्नान का जल, रत्न के आभूषण, अनेक भाँति के नैवेद्य, सुवासित ताम्बूल जल, मधुपर्क, रत्नजड़ित शय्या समर्पित करे। इनमें से प्रत्येक को राजा ने वेदमंत्र से भक्तिपूर्वक अर्पित किया। हे दुर्गे! वेदोक्त एवं सर्वसम्मत उन मंत्रों को बता रहा हूँ, सुनो! ॥२३-२६॥ हे राधे! उत्तम रत्नों के सारभाग का विश्वकर्मा द्वारा सुरचित यह रमणीक एवं उत्तम सिंहासन इस पूजा में तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो॥२७॥ हे देवि! अमूल्य रत्नों से विभूषित, अमूल्य, सूक्ष्म, अग्नि की भाँति विशुद्ध तथा निर्मल (स्वच्छ) वस्त्र तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥२८॥ हे राधे! यह पाद्य (पैर धोने वाला जल) जो उत्तम रत्नों के सारभाग के बने पात्र में स्थित है, तथा समस्त तीर्थों का शुभ जल है, चरण धोने के लिए तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥२९॥ हे राधे! दक्षिणावर्त (दाहिनी ओर को घूमे हुए) शंख में दूर्वा, पुष्प और चन्दन समेत यह पवित्र तीर्थ के जल का अर्घ्य तुम्हें समर्पित कर रहा हूं, स्वीकार करो॥३०॥ हे राधे! पार्थिव द्रव्य

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पार्थिवद्रव्यसंभूतमतीव सुरभीकृतम् । मङ्गलार्हं पवित्रं च राधे गन्धं गृहाण मे ॥३१॥
श्रीखण्डचूर्णं सुस्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । सुगन्धयुक्तं देवेशि गृहयतामनुलेपनम् ॥३२॥
वृक्षनिर्याससंयुक्तं पार्थिवद्रव्यसंयुतम् । 'अग्निखण्डशिखाजातं धूपं देवि गृहाण मे ॥३३॥
अन्धकारे भयहरममूल्यमणिशोभितम् । रत्नप्रदीपं शोभाढ्यं गृहाण परमेश्वरि ॥३४॥
पारिजातप्रसूनं च गन्धचन्दनचर्चितम् । अतीव शोभनं रम्यं गृह्यतां परमेश्वरि ॥३५॥
सुगन्धामलकीचूर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम् । विष्णुतैलसमायुक्तं स्नानीयं देवि गृह्यताम् ॥३६॥
अमूल्यरत्नखचितं केयूरवलयादिकम् । शश्वत्सुशोभनं राधे गृह्यतां भूषणं मम ॥३७॥
कालदेशोद्भवं पक्वफलं वै लड्डुकादिकम् । परमान्नं च मिष्टान्नं नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ॥३८॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । सर्वभोगाधिकं स्वादु ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥३९॥
अशनं रत्नपात्रस्थं सुस्वादु सुमनोहरम् । मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वरि ॥४०॥
रत्नेन्द्रसारखचितं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् । पुष्पचन्दनचर्चाढ्यं पर्यङ्कं देवि गृह्यताम् ॥४१॥
एवं संपूज्य देवीं तां दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम् । यत्नेन पूजयेद्देवीं नायिकाश्च व्रते व्रती ॥४२॥

से बनाया गया अत्यन्त सुगन्धित, मंगलमय और पवित्र यह मेरा दिया हुआ गन्ध ग्रहण करो ॥३१॥ हे देवेशि ! श्रीखण्ड के चूर्ण का बना हुआ यह अनुलेपन, जो कस्तूरी, कुंकुम युक्त होने के नाते, अति स्निग्ध और अति सुगन्धपूर्ण है, तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥३२॥ हे देवि ! वृक्ष की गोंद और पार्थिव द्रव्यों से युक्त यह धूप, जो अग्नि-शिखा से उत्पन्न है, तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ ॥३३॥ हे परमेश्वरि ! अन्धकार में उत्पन्न भय का नाशक, अमूल्य मणियों से सुशोभित और शोभाशाली यह रत्नप्रदीप तुम्हें समर्पित है ॥३४॥ हे परमेश्वरि ! गन्ध, चन्दन-चर्चित यह पारिजात (मन्दार), पुष्प, जो अत्यन्त सुशोभित और सुन्दर है, अर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥३५॥ हे देवि ! स्नान के लिए सुगन्धित आंवले का चूर्ण मिश्रित जल जो अति स्निग्ध, अति मनोहर और विष्णुतैल से युक्त है, तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥३६॥ हे राधे ! अमूल्य रत्नों से खचित केयूर (बहूंटा), कंकण आदि मेरे द्वारा अर्पित भूषण, जो निरन्तर सौन्दर्यपूर्ण रहता है, ग्रहण करो ॥३७॥ हे देवि ! देश-काल के अनुसार उपलब्ध पके फल तथा लड्डू आदि मिष्टान्न समेत यह परमान्न नैवेद्य तुम्हें समर्पित है, ग्रहण करो ॥३८॥ हे देवि ! कपूर आदि से सुवासित, समस्त भोगों से अधिक स्वादुपूर्ण, उत्तम और सुन्दर ताम्बूल ग्रहण करो ॥३९॥ हे परमेश्वरि ! रत्नों के पात्रों में स्थापित यह अतिस्वादिष्ठ भोजन, जो अत्यन्त मनोहर है, तुम्हें भक्ति-पूर्वक मैं समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥४०॥ हे देवि ! उत्तम रत्नों के सार भाग से खचित, अग्नि-विशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित और पुष्पों एवं चन्दनों से अतिचर्चित (उत्तम) पलंग तुम्हें समर्पित है, ग्रहण करो ॥४१॥ इस भाँति यत्न से सविधान देवी की पूजा करने के अनन्तर व्रती को व्रत में तीन पुष्पांजलि देनी चाहिए तथा हे प्रिये ! उनकी अतिप्रिय परिचारिका नायिकाओं की भी, जो पूर्वादि दिशाओं के

---

१ क. ज्वलदग्निशि° ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्रागादिक्रमयोगेन दक्षिणावर्ततः प्रिये । भक्त्या पञ्चोपचारेण सुप्रियाः परिचारिकाः ॥४३॥
मालावतीं पूर्वकोणे वह्निकोणे च माधवीम् । दक्षिणे रत्नमालां च सुशीलां नैर्ऋते सतीम् ॥४४॥
पश्चिमे वै शशिकलां पारिजातां च मारुते । पद्मावतीमुत्तरे चाथैशान्यां सुन्दरीं तथा ॥४५॥
यूथिकामालतीपद्ममाला दद्याद्व्रते व्रती । परीहारं च कुरुते सामवेदोक्तमेव च ॥४६॥
त्वं देवि जगतां माता विष्णुमाया सनातनी । कृष्णप्राणाधिदेवी च कृष्णप्राणाधिका शुभा ॥४७॥
कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णे सौभाग्यरूपिणी । कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे ॥४८॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम । पूजिताऽसि मया सा च या श्रीकृष्णेन पूजिता ॥४९॥
कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसंयुता । रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दा वृन्दावने वने ॥५०॥
कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसीकानने तुला[1] । चम्पावती कृष्णसङ्गे क्रीडा चम्पकानने ॥५१॥
[2]चन्द्रावली चन्द्रवने शतशृङ्गे सतीति च । विरजादर्पहन्त्री च विरजातटकानने ॥५२॥
पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णसरोवरे । भद्रा कुञ्जकुटीरे च काम्या वै काम्यके वने ॥५३॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्वाणी नारायणोरसि । क्षीरोदे सिन्धुकन्या च मर्त्ये लक्ष्मीर्हरिप्रिया ॥५४॥

क्रम से स्थित रहती हैं, दक्षिणावर्त से भक्तिपूर्वक पांचों उपचारों द्वारा पूजा आरम्भ करनी चाहिए॥४२-४३॥ पूर्वकोण में मालावती, अग्निकोण में माधवी, दक्षिण में रत्नमाला, नैर्ऋत में सती सुशीला, पश्चिम में शशिकला, वायुकोण में पारिजाता, उत्तर में पद्मावती और ईशान में सुन्दरी की पूजा करनी चाहिए॥४४-४५॥ व्रत में जूही, मालती और कमल की मालाएँ अर्पित कर व्रती सामवेदानुसार परिहार नामक स्तुति करे॥४६॥ हे देवि! तुम जगत् की माता, भगवान् विष्णु की सनातनी माया, भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी, उनके प्राणों से अधिक प्रिय, शुभमूर्ति, भगवान् कृष्ण की प्रेममयी एवं मूर्तिमती शक्ति, कृष्ण में सौभाग्य रूप, उनकी भक्ति प्रदान करने वाली और मंगलदायिनी हो, अतः हे राधे! तुम्हें नमस्कार है॥४७-४८॥ आज हमारा जन्म सफल हो गया और जीवन सार्थक हुआ क्योंकि मैंने उसकी प्रार्थना की है, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना आराध्य बनाकर पूजन किया है॥४९॥ जो राधिका जी समस्त सौभाग्य लिये भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर विहार करती हैं, वही रास में रासेश्वरी, वृन्दावन नामक वन में वृन्दा, गोलोक में कृष्ण की परम प्रिया, तुलसी वन में चम्पावती, चम्पक वन में कृष्ण के साथ उनकी क्रीड़ा मूर्ति, चन्द्रवन में चन्द्रावली, सौ शिखरवाले पर्वत पर सती, विरजा (नदी) के तट वाले जंगल में विरजा (सखी) के दर्प (अभिमान) का नाश करने वाली, पद्मवन में पद्मावती, कृष्ण सरोवर (तालाब) में कृष्णा, कुञ्जकुटीर में भद्रा, काम्यक वन में काम्या, वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, नारायण के हृदय में वाणी, क्षीर सागर में सिन्धुकन्या, मनुष्यों के लोक में हरिप्रिया लक्ष्मी हैं॥५०-५४॥ तथा समस्त स्वर्ग में देवों के दुःख विनाश करने वाली स्वर्ग-

---

१ ख. तु या। २ क. चन्द्रावती।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सर्वस्वर्गे स्वर्गलक्ष्मीर्देवदुःखविनाशिनी । सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शंकरवक्षसि ॥५५॥
सावित्री वेदमाता च कलया ब्रह्मवक्षसि । कलया धर्मपत्नी त्वं नरनारायणप्रभोः ॥५६॥
कलया तुलसी त्वं च गङ्गा भुवनपावनी । लोमकूपोद्भवा गोप्यः कलांशा रोहिणी रतिः ॥५७॥
कलाकलांशरूपा च शतरूपा शची दितिः । अदितिर्देवमाता च त्वत्कलांशा हरिप्रिया ॥५८॥
देव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कलाकलया शुभे । कृष्णभक्तिं कृष्णदास्यं देहि मे कृष्णपूजिते ॥५९॥
एवं कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत् । पुरा कृतं स्तोत्रमेतद्भक्तिदास्यप्रदं शुभम् ॥६०॥
एवं नित्यं पूजयेद्यो विष्णुतुल्यः स भारते । जीवन्मुक्तश्च पूतश्च गोलोकं याति निश्चितम् ॥६१॥
कार्तिके पूर्णिमायां च राधां यः पूजयेच्छिवे । एवं क्रमेण प्रत्यब्दं राजसूयफलं लभेत् ॥६२॥
परमैश्वर्ययुक्तः स्यादिह लोके स पुण्यवान् । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम् ॥६३॥
आदावेवं क्रमेणैव रासे वृन्दावने वने । स्तुता सा पूजिता राधा श्रीकृष्णेन पुरा सती ॥६४॥
संपूजिता द्वितीये च धात्रा त्वेवं क्रमेण च । त्वद्वरेण च संप्राप्य विधाता वेदमातरम् ॥६५॥
नारायणो महालक्ष्मीं प्राप संपूज्य भारतीम् । गङ्गां च तुलसीं चैव परां भुवनपावनीम् ॥६६॥
विष्णुः क्षीरोदशायी च प्राप सिन्धुसुतां तथा । मृतायां दक्षकन्यायां मया कृष्णाज्ञया पुरा ॥६७॥

लक्ष्मी, शंकरजी के वक्षःस्थल पर (विहार करने वाली) भगवान् विष्णु की सनातनी माया दुर्गा और ब्रह्मा के वक्षः-स्थल पर विहरने वाली अपनी कला से वेदमाता सावित्री हैं। तुम्हीं अंश द्वारा भगवान् नरनारायण की धर्मपत्नी हो। ॥५५-५६॥ अपनी कला से तुम तुलसी और लोकपावनी गंगा, लोमकूपों से उत्पन्न होने वाली गोपियाँ, कलांश रूप रोहिणी, रति, तथा कला-कलांश रूप शतरूपा, शची, (इन्द्राणी), दिति (दैत्यमाता), देवों की माता अदिति और हरिप्रिया भी तुम्हारी कलांशरूपा हैं॥५७-५८॥ हे शुभे! तुम्हारी कला की कलामात्र देवियाँ और मुनियों की पत्नियाँ हैं। अतः हे कृष्णपूजिते! मुझे भगवान् कृष्ण की भक्ति देकर उनका दास (पार्षद) बनाओ॥५९॥ इस प्रकार परिहारपूर्वक स्तुति करने के अनन्तर उनका कवच पाठ करे। भक्ति और दास्य प्रदान करने वाला यह शुभ स्तोत्र प्राचीन काल में ही बनाया गया था॥६०॥ इस भाँति भारत में जो नित्य पूजन करते हैं वे भगवान् विष्णु के समान होकर जीवन्मुक्त और पवित्र हो जाते हैं तथा निश्चित गोलोक में निवास करते हैं॥६१॥ हे शिवे! कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन जो राधा जी की अर्चना करते हैं और प्रति वर्ष करते रहते हैं वे सदैव राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं॥६२॥ इस लोक में समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर वह पुण्यात्मा समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और अन्त में भगवान् विष्णु के लोक में चला जाता है॥६३॥ पूर्वकाल में पतिव्रता राधा सर्वप्रथम वृन्दावन के रासमण्डल में इसी क्रम द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण से स्तुत और पूजित हुई थीं॥६४॥ दूसरे ब्रह्मा ने भी इसी क्रम से उनकी अर्चना की थी, जिससे तुम्हारे वरदान द्वारा वेदमाता सावित्री उन्हें प्राप्त हुई थी॥६५॥ नारायण ने भी अर्चना करके महालक्ष्मी, सरस्वती, लोकपावनी गंगा और तुलसी को प्राप्त किया था॥६६॥ क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु ने सिन्धु-सुता (लक्ष्मी) प्राप्त की और पहले समय में दक्षकन्या (सती) के प्राण त्याग करने के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

त्वमेव दुर्गा संप्राप्ता पूजिता पुष्करे च सा । अदितिं कश्यपः प्राप चन्द्रः संप्राप रोहिणीम् ॥६८॥
कामो रतिं च संप्राप धर्मो मूर्तिं पतिव्रताम् । देवाश्च मुनयश्चैव यां संपूज्य पतिव्रताम् ॥६९॥
संप्रापुर्यद्वरेणैव धर्मकामार्थमोक्षकम् । एवं पूजाविधानं च कथितं च स्तवं शृणु ॥७०॥

महेश्वर उवाच

एकदा मानिनी राधा बभूवागोचरा प्रभोः । संसक्तस्य तुलस्यां च गोप्यां च तुलसीवने ॥७१॥
सा संहृत्य स्वमूर्तीश्च कलाः सर्वाश्च लीलया । सर्वे बभूवुर्देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७२॥
भ्रष्टैश्वर्याश्च निःश्रीका भार्याहीना ह्यपद्रुताः । ते च सर्वे समालोच्य श्रीकृष्णं शरणं ययुः ॥७३॥
तेषां स्तोत्रेण संतुष्टः स्नात्वा संपूज्य तां शुचिः । तुष्टाव परमात्मा स सर्वेषां राधिकां सतीम् ॥७४॥

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेव प्रियोऽहं ते प्रमोदश्चैव ते मयि । सुव्यक्तमद्य कापट्यवचनं ते वरानने ॥७५॥
हे कृष्ण त्वं मम प्राणा जीवात्मेति च संततम् । यद्ब्रूहि नित्यं प्रेम्णा त्वं सांप्रतं तत्कुतो गतम् ॥७६॥
तस्मात्सर्वमलीकं ते वचनं जगदम्बिके । क्षुरधारं च हृदयं स्त्रीजातीनां च सर्वतः ॥७७॥
अस्माकं वचनं सत्यं यद्ब्रवीमि च तद्ध्रुवम् । पञ्चप्राणाधिदेवी त्वं राधा प्राणाधिकेति मे ॥७८॥

शिरोधार्य कर मैंने पुष्कर क्षेत्र में श्री राधिका जी की पूजा करके तुम दुर्गा को प्राप्त किया। उसी प्रकार कश्यप को अदिति, चन्द्रमा को रोहिणी, काम को रति और धर्म को पतिव्रता मूर्ति प्राप्त हुई तथा देवगण एवं मुनिवृन्दों ने उस पतिव्रता (राधा) की अर्चना करके उनके वरदान द्वारा धर्म अर्थ काम और मोक्षरूप चारों पदार्थों की प्राप्ति की। इस प्रकार मैंने पूजा-विधान तुम्हें सुना दिया, अब स्तोत्र सुना रहा हूँ, सुनो! ॥६७-७०॥

महेश्वर बोले—एक बार मानिनी राधा ने भगवान् श्रीकृष्ण को तुलसी वन में तुलसी गोपी के साथ विहार-मग्न देख कर उनसे अपने को छिपा लिया और अपनी कला से उत्पन्न होने वाली सभी स्त्रियों को लीला की भाँति अपने में अन्तर्हित कर लिया, जिससे ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि सभी देवगण ऐश्वर्य, श्री और स्त्री से हीन होने के कारण अति संतप्त होने लगे। अनन्तर भली भाँति विचार कर भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में पहुँचे। उन लोगों की स्तुति से सन्तुष्ट होकर परमात्मा ने स्नान आदि से पवित्र होकर उन सभी लोगों के हितार्थ पतिव्रता श्रीराधा जी की पूजा और स्तुति की ॥७१-७४॥

श्रीकृष्ण बोले—हे वरानने! यद्यपि मैं तुम्हारा प्रिय हूँ और मुझमें तुम्हारा प्रेम भी रहता है, किन्तु तुम्हारी कपट की बातें आज सब प्रकट हो गयीं—तुम नित्य प्रेममग्न हो कर कहती थीं कि हे कृष्ण! तुम मेरे प्राण हो, निरन्तर जीवात्मा हो! यह सभी बातें सम्प्रति इतने शीघ्र कहाँ चली गयीं ॥७५-७६॥ हे जगदम्बिके! इससे तुम्हारी सभी बातें झूठी हैं क्योंकि स्त्री जाति का हृदय सब ओर से क्षुर (स्तुरे) के धार के समान तीव्र होता है ॥७७॥ और मैं जो कह रहा हूँ, वह ध्रुव सत्य है। तुम हमारे पाँचों प्राणों की अधीश्वरी और प्राणों से अधिक प्रिय राधा हो।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

शक्तो न रक्षितुं त्वां च यान्ति प्राणास्त्वया विना । विनाऽधिष्ठातृदेवीं च को वा कुत्र च जीवति ॥७९॥
महाविष्णोश्च माता त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी । सगुणा त्वं च कलया निर्गुणा स्वयमेव तु ॥८०॥
ज्योतीरूपा निराकारा भक्तानुग्रहविग्रहा । भक्तानां रुचिवैचित्र्यान्नानामूर्तीश्च बिभ्रती ॥८१॥
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे भारती च गिरां प्रसूः । पुण्यक्षेत्रे भारते च सती त्वं पार्वती तथा ॥८२॥
तुलसी पुण्यरूपा च गङ्गा भुवनपावनी । ब्रह्मलोके च सावित्री कलया त्वं वसुंधरा ॥८३॥
गोलोके राधिका त्वं च सर्वगोपालकेश्वरी । त्वया विनाऽहं निर्जीवो ह्यशक्तः सर्वकर्मसु ॥८४॥
शिवः शक्तस्त्वया शक्त्या शवाकारस्त्वया विना । वेदकर्ता स्वयं ब्रह्मा वेदमात्रा त्वया सह ॥८५॥
नारायणस्त्वया लक्ष्म्या जगत्पाता जगत्पतिः । फलं ददाति यज्ञश्च त्वया दक्षिणया सह ॥८६॥
बिभर्ति सृष्टिं शेषश्च त्वां कृत्वा मस्तके भुवम् । बिभर्ति गङ्गारूपां त्वां मूर्ध्नि गङ्गाधरः शिवः ॥८७॥
शक्तिमच्च जगत्सर्वं शवरूपं त्वया विना । वक्ता सर्वस्त्वया वाण्या मूतो मूकस्त्वया विना ॥८८॥
यथा मृदा घटं कर्तुं कुलालः शक्तिमान्सदा । सृष्टिं स्रष्टुं तथाऽहं च प्रकृत्या च त्वया सह ॥८९॥
त्वया विना जडश्चाहं सर्वत्र च न शक्तिमान् । सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं त्वमागच्छ ममान्तिकम् ॥९०॥
वह्नौ त्वं दाहिका शक्तिर्नाग्निः शक्तस्त्वया विना । शोभास्वरूपा चन्द्रे त्वं त्वां विना न स सुन्दरः ॥९१॥

मैं तुम्हारी रक्षा करने में समर्थ नहीं हूँ, अतः तुम्हारे विना मेरे ये प्राण अब जा रहे हैं क्योंकि अधिष्ठात्री देवी विना कौन कहाँ जीवित रह सकता है ॥७८-७९॥ तुम महाविष्णु की माता ईश्वरी मूल प्रकृति, कला से सगुणा और स्वयं निर्गुणा हो ॥८०॥ तुम ज्योतिरूप, निराकार, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाली और भक्तों के विभिन्न रुचि के कारण अनेक मूर्ति धारण करने वाली तथा वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, पुण्य प्रदेश भारत में सज्जनों की जननी भारती, तुम सती एवं पार्वती हो ॥८१-८२॥ तुम पुण्य स्वरूपा तुलसी, लोकपावनी गंगा, ब्रह्मलोक में सावित्री और कला द्वारा वसुन्धरा (पृथ्वी) हो ॥८३॥ गोलोक में तुम्हीं समस्त गोपालों की ईश्वरी राधा हो, तुम्हारे विना मैं निर्जीव सा हो गया हूँ, सभी कर्मों में असमर्थ हूँ ॥८४॥ शिव जी तुम्हीं शक्ति को प्राप्त कर शक्तिमान् हैं और तुम्हारे विना शवतुल्य हैं। तुम वेदमाता (सावित्री) के साथ रहने पर ब्रह्मा स्वयं वेदकर्ता कहलाते हैं, तुम लक्ष्मी के साथ नारायण जगत् के रक्षक और अधीश्वर होते हैं, तुम्हीं दक्षिणा के साथ यज्ञ फल प्रदान करता है ॥८५-८६॥ शेष पृथ्वी रूप तुम्हें मस्तक पर रखकर सम्पूर्ण सृष्टि धारण करते हैं, गंगारूप तुम्हें धारण कर शिव गंगाधर कहलाते हैं ॥८७॥ तुमसे ही सारा संसार शक्तिमान् है और तुम्हारे विना शव रूप। तुम वाणी (सरस्वती) के योगदान से सभी लोग वक्ता हैं और तुम्हारे विना सूत भी मूक हो जाता है ॥८८॥ जिस प्रकार कुम्हार घड़े बनाने में सदा शक्तिशाली रहता है, उसी भाँति मैं भी तुम प्रकृति के साथ सृष्टि की रचना करने में समर्थ हूँ ॥८९॥ किन्तु तुम्हारे विना मैं शक्तिमान् न रहकर सर्वत्र जड़ हो गया हूँ क्योंकि तुम सम्पूर्ण शक्ति स्वरूपा हो, अतः मेरे समीप शीघ्र आओ ॥९०॥ अग्नि की दाहिका (जलाने वाली) शक्ति तुम्हीं हो, तुम्हारे विना वह अशक्त रहता है। चन्द्रमा में शोभास्वरूप तुम्हीं हो, तुम्हारे बिना वह सुन्दर नहीं हो सकता है ॥९१॥ तुम

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्रभारूपा हि सूर्ये त्वं त्वां विना न स भानुमान् । न कामः कामिनीबन्धुस्त्वया रत्या विना प्रिये ॥९२॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा तां संप्राप जगत्प्रभुः । देवा बभूवुः सश्रीकाः सभार्याः शक्तिसंयुताः ॥९३॥
सस्त्रीकं च जगत्सर्वं सभूच्छैलकन्यके । गोपीपूर्णश्च गोलोको ह्यभवत्तत्प्रसादतः ॥९४॥
राजा जगाम गोलोकमिति स्तुत्वा हरिप्रियाम् । श्रीकृष्णेन कृतं स्तोत्रं राधाया यः पठेन्नरः ॥९५॥
कृष्णभक्तिं च तद्दास्यं संप्राप्नोति न संशयः । स्त्रीविच्छेदे यः शृणोति मासमेकमिदं शुचिः ॥९६॥
अचिराल्लभते भार्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । भार्याहीनो भाग्यहीनो वर्षमेकं शृणोति यः ॥९७॥
अचिराल्लभते भार्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । पुरा मया च त्वं प्राप्ता स्तोत्रेणानेन पार्वति ॥९८॥
मृतायां दक्षकन्यायामाज्ञया परमात्मनः । स्तोत्रेणानेन संप्राप्ता सावित्री ब्रह्मणा पुरा ॥९९॥
पुरा दुर्वाससः शापान्निःश्रीके देवतागणे । स्तोत्रेणानेन देवैस्तैः संप्राप्ता श्रीः सुदुर्लभा ॥१००॥
शृणोति वर्षमेकं च पुत्रार्थी लभते सुतम् । महाव्याधी रोगमुक्तो भवेत्स्तोत्रप्रसादतः ॥१०१॥
कार्तिके पूर्णिमायां तु तां संपूज्य पठेत्तु यः । अचलां श्रियमाप्नोति राजसूयफलं लभेत् ॥१०२॥
नारी शृणोति चेत्स्तोत्रं स्वामिसौभाग्यसंयुता । भक्त्या शृणोति यः स्तोत्रं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥१०३॥

सूर्य में प्रभा रूप हो, तुम्हारे बिना वह भानु (किरण) युक्त नहीं हो सकता है। और हे प्रिये! तुम रति बिना काम-देव भी कामिनियों का बन्धु नहीं हो सकता है॥९२॥ इस प्रकार स्तुति करने पर जगत् के प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण को राधा मिल गयीं और सब देवगण श्री (ऐश्वर्य), स्त्री और शक्ति आदि से सम्पन्न हो गये॥९३॥ हे शैलकन्ये! उनकी प्रसन्नता से सारा संसार स्त्री-सम्पन्न और गोलोक गोपियों से भर गया॥९४॥ उसी हरिप्रिया श्री राधा जी की स्तुति करके राजा ने गोलोक की प्राप्ति की। इस प्रकार श्री कृष्ण द्वारा किये गये श्रीराधा जी के स्तोत्र का जो मनुष्य पाठ करेगा, उसे भगवान् कृष्ण की भक्ति और उनकी दासता प्राप्त होगी, इसमें संशय नहीं। स्त्री के मृतक होने पर जो पवित्र होकर एक मास तक इसे श्रवण करता है, वह अचिरकाल में ही सुशीला, सुन्दरी और पतिव्रता स्त्री प्राप्त करता है। भाग्यहीन और स्त्रीहीन पुरुष यदि वर्षपर्यन्त इसका श्रवण करता है, तो उसे सुशीला, सुन्दरी और पतिव्रता स्त्री शीघ्र प्राप्त होती है। हे पार्वति! पहले समय में दक्षकन्या (सती) के मरणानन्तर मैंने परमात्मा की आज्ञा शिरोधार्य कर इसी स्तोत्र द्वारा तुम्हें प्राप्त किया था। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने भी इसी स्तोत्र द्वारा सावित्री की प्राप्ति की थी और पहले समय में दुर्वासा के शाप के कारण श्रीहीन होने पर देवों ने इसी स्तोत्र द्वारा अति दुर्लभ श्री (लक्ष्मी) प्राप्त की थी॥९५-१००॥ पुत्र की कामना से एक वर्ष तक इसे सुनने पर पुत्र की प्राप्ति होती है तथा इस स्तोत्र के प्रसाद से महारोगी प्राणी रोगमुक्त हो जाता है॥१०१॥ कार्तिक मास की पूर्णिमा में श्री राधा जी की पूजा के अनन्तर इसका पाठ करने से अचल लक्ष्मी और राज-सूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है॥१०२॥ यदि स्त्री इसका श्रवण करती है तो स्वामी (पति) के सौभाग्य से युक्त होती है। भक्तिपूर्वक जो इसे सुनता है, वह निश्चित बन्धनमुक्त हो जाता है॥१०३॥ जो भक्तिपूर्वक श्री राधा

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नित्यं पठति यो भक्त्या राधां संपूज्य भक्तितः । स प्रयाति च गोलोकं निर्मुक्तो भवबन्धनात् ॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० हरगौरीसं० राधिकोपा०
राधापूजास्तोत्रादिकथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

पूजाविधानं स्तोत्रं च श्रुतमत्यद्भुतं मया । अधुना कवचं ब्रूहि श्रोष्यामि त्वत्प्रसादतः ॥१॥

महेश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे दुर्गे कवचं परमाद्भुतम् । पुरा मह्यं निगदितं गोलोके परमात्मना ॥२॥
अतिगुह्यं परं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा संप्राप्तो वेदमातरम् ॥३॥
यद्धृत्वाऽहं तव स्वामी सर्वमाता सुरेश्वरी । नारायणश्च यद्धृत्वा महालक्ष्मीमवाप सः ॥४॥
यद्धृत्वा परमात्मा च निर्गुणः प्रकृतेः परः । बभूव शक्तिमान्कृष्णः सृष्टिं कर्तुं पुरा विभुः ॥५॥
विष्णुः पाता च यद्धृत्वा संप्राप्तः सिन्धुकन्यकाम् । शेषो बिभर्ति ब्रह्माण्डं मूर्ध्नि सर्षपवद्यतः ॥६॥

जी की पूजा करने के उपरान्त इसका नित्य पाठ करता है, वह संसार (जन्ममरण) रूप बन्धन से मुक्त होकर गोलोक जाता है ॥१०४॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत हरगौरी-संवाद के श्रीराधिकोपाख्यान में राधा की पूजा, स्तोत्र आदि कथन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५५॥

अध्याय ५६

राधा के मंत्र आदि का निरूपण

श्री पार्वती बोलीं—मैंने अति अद्भुत पूजा विधान और स्तोत्र तो सुन लिया, किन्तु तुम्हारे प्रसाद से सम्प्रति उनका कवच भी सुनना चाहती हूँ, अतः उसे कहने की कृपा करें ॥१॥

श्री महेश्वर बोले—हे दुर्गे! पूर्व समय गोलोक में परमात्मा श्रीकृष्ण ने जिसे मुझे बताया था, वह परम अद्भुत कवच तुम्हें मैं बता रहा हूँ, सुनो! ॥२॥ जो अति गुप्त, परमतत्त्व रूप तथा समस्त मन्त्रों का समूह स्वरूप है और जिसके धारण एवं पाठ करने से ब्रह्मा ने वेदमाता सावित्री को प्राप्त किया ॥३॥ जिसे धारण कर मैं सबकी जननी और देवों की अधीश्वरी देवी तुम्हारा पति हूँ। जिसे धारण कर नारायण ने महालक्ष्मी की प्राप्ति की ॥४॥ जिसे धारण कर परमात्मा श्रीकृष्ण, जो निर्गुण प्रकृति से परे और विभु (व्यापक) हैं, सृष्टि करने के लिए शक्तिमान् हुए ॥५॥ जिसे धारण कर विष्णु विश्वपालक हुए और उन्होंने सिन्धु-पुत्री लक्ष्मी को प्राप्त किया। जिसके कारण शेष समस्त ब्रह्माण्ड को अपने मस्तक पर राई के समान रखते हैं तथा महाविराट् जिसे धारण

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यद्धृत्वा पठनादग्निर्जगत्पूतं करोति च। यद्धृत्वा वाति वातोऽयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥११॥
यद्धृत्वा च स्वतन्त्रो हि मृत्युश्चरति जन्तुषु। त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्त्रां चकार च वसुन्धराम्॥१२॥
जामदग्न्यश्च रामश्च पठनाद्धारणात्प्रभुः। ययौ समुद्रं यद्धृत्वा राजसूयं चकार सः।
पपौ समुद्रं यद्धृत्वा पठनात्कुम्भसंभवः ॥१३॥
सनत्कुमारो भगवान्यद्धृत्वा ज्ञानिनां गुरुः। जीवन्मुक्तौ च सिद्धौ च नरनारायणावृषी ॥१४॥
यद्धृत्वा पठनात्सिद्धो वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः। सिद्धेशः कपिलो यस्माद्यस्माद्दक्षः प्रजापतिः ॥१५॥
यस्माद्भृगुश्च मां द्वेष्टि कर्मःशेषं बिभर्ति च। सर्वाधारो यतो वायुर्वरुणः पवनो यतः ॥१६॥
ईशानो दिक्पतिश्चैव यमः शास्ता यतः शिवे। कालः कालाग्निरुद्रश्च संहर्ता जगतां यतः ॥१७॥
यद्धृत्वा गौतमः सिद्धः कश्यपश्च प्रजापतिः। वसुदेवसुतां प्राप चैकांशेन तु तत्कलाम् ॥१८॥
पुरा स्वजायाविच्छेदे दुर्वासा मुनिपुंगवः। संप्राप रामः सीतां च रावणेन हृतां पुरा ॥१९॥
पुरा नलश्च संप्राप दयमन्तीं यतःसतीम्। शङ्खचूडो महावीरो दैत्यानामीश्वरो यतः ॥२०॥
वृषो वहति मां दुर्गे यतो हि गरुडो हरिम्। एवं संप्राप्य संसिद्धिं सिद्धाश्च मुनयः सुराः ॥२१॥
यद्धृत्वा च महालक्ष्मीः प्रदात्री सर्वसंपदाम्। सरस्वती सतां श्रेष्ठा यतः क्रीडावती रतिः ॥२२॥
सावित्री वेदमाता च यतः सिद्धिमवाप्नुयात्। सिन्धुकन्या मर्त्यलक्ष्मीर्यतो विष्णुमवाप सा ॥२३॥

लोकों को पवित्र करते हैं॥११॥ जिसे धारण कर मृत्यु जीवों में स्वतन्त्र विचरती है। जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने जिसके धारण से समर्थ होकर सम्पूर्ण पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियरहित कर दिया था। जिसे धारण कर कुम्भ-पुत्र अगस्त्य ने समुद्र का पान कर लिया था। जिसके कारण सनत्कुमार भगवान् ज्ञानियों के गुरु हुए तथा नर-नारायण ऋषि जीवन्मुक्त और सिद्ध हो गये॥१२-१४॥ जिसके धारण और पाठ से ब्रह्मा के सुपुत्र वशिष्ठ सिद्ध हो गये तथा जिसके बल से कपिल सिद्धेश हुए, दक्ष प्रजापति और भृगु मुझसे द्वेष रखते हैं, कच्छप शेष को धारण करता है और वायु एवं वरुण समस्त के आधार हुए हैं॥१५-१६॥ हे शिवे! जिसके बल से ईशान (शिव), दिक्पाल और यम शासन करते हैं, काल एवं कालाग्नि रुद्र जगत् का संहार करते हैं, जिसके धारण करने से गौतम सिद्ध हुए कश्यप प्रजापति हुए। पहले समय में मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने अपनी स्त्री के मरणानन्तर वसुदेव जी की कन्या से विवाह किया था, जो राधा के कला अंश से उत्पन्न हुई थी। और पहले समय में राम ने जानकी जी को प्राप्त किया था, जिसे रावण हर ले गया था॥१७-१९॥ जिसके कारण पहले समय में नल को सती दमयन्ती प्राप्त हुई थी और महाबलवान् शंखचूड़ दैत्यों का अधीश्वर हुआ॥२०॥ हे दुर्गे! जिसके बल से बैल हमारा वाहन हुआ और गरुड़ भगवान् का और पूर्वकाल में मुनिवृन्द जिसके बल से संसिद्धि प्राप्त कर सिद्ध हो गये॥२१॥ जिसे धारण कर महालक्ष्मी समस्त सम्पत्ति प्रदान करती हैं, सरस्वती सज्जनों में श्रेष्ठ हो गयीं, रति क्रीड़ावती हुई और जिसके कारण वेदमाता सावित्री को सिद्धि प्राप्त हो गयी। मर्त्यलोक की लक्ष्मी सिन्धु-कन्या को जिसके बल से विष्णु (पति) रूप में प्राप्त हुए॥२२-२३॥ जिसे धारण करने से तुलसी पवित्र हो गयी, गंगा लोकपावनी

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यद्धृत्वा तुलसी पूता गङ्गा भुवनपावनी। यद्धृत्वा सर्वसस्याढ्या सर्वाधारा वसुंधरा ॥२४॥
यद्धृत्वा मनसा देवी सिद्धा वै विश्वपूजिता। यद्धृत्वा देवमाता च विष्णुं पुत्रमवाप सा ॥२५॥
पतिव्रता च यद्धृत्वा लोपामुद्राऽप्यरुन्धती। लेभे च कपिलं पुत्रं देवहूती यतः सती ॥२६॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ प्राप च तत्प्रसूः। त्वन्माता चापि संप्राप[1] त्वां देवीं गिरिजां यतः ॥२७॥
एवं सर्वे सिद्धगणाः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः। श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥२८॥
ऋषिश्छन्दोऽस्य गायत्री देवी[2] रासेश्वरी स्वयम्। श्रीकृष्णभक्तिसंप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः ॥२९॥
शिष्याय कृष्णभक्ताय ब्राह्मणाय प्रकाशयेत्। शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥३०॥
राज्यं देयं शिरो देयं न देयं कवचं प्रिये। कण्ठे धृतमिदं भक्त्या कृष्णेन परमात्मना ॥३१॥
मया दृष्टं च गोलोके ब्रह्मणा विष्णुना पुरा। ॐ राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥३२॥
कृष्णेनोपासितो मन्त्रः कल्पवृक्षः शिरोऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं रधिकां ङेन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥३३॥
कपालं नेत्रयुग्मं च श्रोत्रयुग्मं सदाऽवतु। अं ऐं ह्रीं श्रीं राधिकायै वह्निजायान्तमेव च ॥३४॥
मस्तकं केशसंघांश्च मन्त्रराजः सदाऽवतु। ओं रां राधां चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥३५॥
सर्वसिद्धिप्रदः पातु कपोलं नासिकां मुखम्। क्लीं ह्रीं कृष्णप्रियां ङेन्तं कण्ठं पातु नमोऽन्तकम् ॥३६॥
ओं रां रासेश्वरीं ङेन्तं स्कन्धं पातु नमोऽन्तकम्। ओं रां रासविलासिन्यै स्वाहा[3] पृष्ठं सदाऽवतु ॥३७॥

वनी, वसुन्धरा समस्त सस्य (फसलों) से परिपूर्ण और सभी का आधार हुई ॥२४॥ जिसे धारण कर मनसा देवी सिद्ध होकर विश्वपूजित हुई, देवमाता (अदिति) को विष्णु पुत्र रूप में प्राप्त हुए ॥२५॥ लोपामुद्रा और अरुन्धती पतिव्रता हुईं तथा सती देवहूति को कपिल पुत्र रूप में प्राप्त हुए ॥२६॥ शतरूपा को प्रियव्रत एवं उत्तानपाद पुत्र मिले और जिसके नाते तुम्हारी माता मेना ने तुम गिरिजा देवी को प्राप्त किया ॥२७॥ इस भाँति सभी सिद्धगणों ने समस्त ऐश्वर्य प्राप्त किये हैं। इस जगन्मंगल (नामक) कवच के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, स्वयं रासेश्वरी (राधा) देवी और श्रीकृष्ण की भक्ति की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग है ॥२८-२९॥ भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त शिष्य एवं ब्राह्मण से ही इसे प्रकट करना चाहिए क्योंकि किसी दूसरे के शिष्य एवं शठ को बताने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥३०॥ हे प्रिये! राज्य दे सकते हैं शिर भी दे सकते हैं, किन्तु यह कवच कभी नहीं देना चाहिए। क्योंकि परमात्मा श्रीकृष्ण इसे भक्तिपूर्वक अपने कण्ठ में धारण करते हैं जिसे ब्रह्मा विष्णु के साथ मैंने गोलोक में (एक बार) पहले समय देखा था। 'ओं राधायै स्वाहा' यह भगवान् कृष्ण द्वारा उपासित कल्पवृक्ष तुल्य मन्त्र (मेरे) शिर की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा' यह मन्त्र मेरे कपाल, दोनों नेत्रों तथा दोनों कानों की सदा रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा' यह मन्त्रराज मस्तक और केशसमूह की सदा रक्षा करे। 'ओं रां राधायै स्वाहा' यह समस्त सिद्धिदायक मंत्र कपोल, नासिका और मुख की रक्षा करे। 'क्लीं ह्रीं कृष्णप्रियायै नमः' कण्ठ की रक्षा करे ॥३१-३६॥ 'ओं रां रासेश्वर्यै नमः' स्कन्ध की रक्षा करे, 'ओं रां रासविलासिन्यै स्वाहा' सदा पीठ की रक्षा करे ॥३७॥

१क. त्वामेव प्रकृतिं सुताम्। २क. देवो रासेश्वरःस्व०। ३क. वाहू।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु। तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा पातु नितम्बकम् ॥३८॥
कृष्णप्राणाधिका ङेन्तं स्वाहान्तं प्रणवादिकम्। पादयुग्मं च सर्वाङ्गं संततं पातु सर्वतः ॥३९॥
प्राच्यां रक्षतु सा राधा वह्नौ कृष्णप्रियाऽवतु। दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैर्ऋतेऽवतु ॥४०॥
पश्चिमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता। उत्तरे संततं पातु मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥४१॥
सर्वेश्वरी सदैशान्यां पातु मां सर्वपूजिता। जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा ॥४२॥
महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु संततम्। कवचं कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम् ॥४३॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं गुह्याद्गुह्यतरं परम्। तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥४४॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ धृत्वा विष्णुसमो भवेत् ॥४५॥
महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति सुकीर्तिता। तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्तिता ॥४६॥
पर्वतस्य सुता देवी साऽऽविर्भूता च पर्वते। पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्तिता ॥४७॥
सर्वकाले सना प्रोक्तो विस्तृते च तनोति च। सर्वत्र सर्वकाले च विद्यमाना सनातनी ॥४८॥
शतलक्षजपेनैव सिद्धं च कवचं भवेत्। यदि स्यात्सिद्धकवचो न दग्धो वह्निना भवेत् ॥४९॥
एतस्मात्कवचाद्दुर्गे राजा दुर्योधनः पुरा। विशारदो जलस्तम्भे वह्निस्तम्भे च निश्चितम् ॥५०॥
मया सनत्कुमाराय पुरा दत्तं च पुष्करे। सूर्यपर्वणि मेरौ च स सांदीपनये ददौ ॥५१॥

'वृन्दावन विलासिन्यै स्वाहा' सदा वक्षःस्थल की रक्षा करे, 'तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा' नितम्ब की रक्षा करे॥३८॥ 'ओं कृष्णप्राणाधिकायै स्वाहा' युगल चरण और चारों ओर से सर्वांग की सतत रक्षा करे॥३९॥ पूर्व की ओर राधा रक्षा करें, अग्निकोण की ओर कृष्णप्रिया रक्षा करें, दक्षिण की ओर रासेश्वरी रक्षा करें, नैर्ऋतकोण में गोपीशा रक्षा करें॥४०॥ पश्चिम दिशा में निर्गुणा, वायव्य कोण में कृष्णपूजिता और उत्तर की ओर ईश्वरी मूल प्रकृति निरन्तर रक्षा करें॥४१॥ ईशान कोण में सदा सर्वेश्वरी मेरी रक्षा करें, जल, स्थल, अन्तरिक्ष (आकाश में), स्वप्न, जागरण (सोते-जागते) में सर्वपूजिता और महाविष्णु की जननी चारों ओर से निरन्तर रक्षा करें। हे दुर्गे! यह श्री जगन्मंगल नामक कवच तुम्हें बता दिया, जो जिस किसी को देने योग्य नहीं है क्योंकि यह गुप्त से भी परम गुप्ततर है, तुम्हारे स्नेहवश मैंने तुम्हें बताया है, अतः किसी से न कहना॥४२-४४॥ वस्त्र, अलंकार, चन्दन द्वारा गुरु की सविधि अर्चा करने के अनन्तर कण्ठ में अथवा दाहिने बाहु में इस कवच को धारण करने से वह विष्णु के समान हो जाता है॥४५॥ विशेष प्रकार के महोत्सव में वह 'पर्वन्' कही गई है। उसको जो अधिष्ठात्री देवी है, वह पार्वती कही गई हैं। पर्वत की पुत्री के रूप में वह देवी पर्वत में उत्पन्न हुई थी। इस लिए पर्वत की अधिष्ठात्री देवी (होने) से पार्वती कहलायी। 'सना' शब्द का प्रयोग सर्वकाल के अर्थ में होता है और 'तनी' का प्रयोग विस्तृत अर्थ में होता है। इसलिए सर्वत्र सर्वकाल में विद्यमान होने से वह सनातनी है। सौ लाख जप करने से यह कवच सिद्ध होता है, यदि कवच सिद्ध हो गया, तो वह अग्नि से जल नहीं सकता॥४६-४९॥ हे दुर्गे! पूर्वकाल में राजा दुर्योधन ने इसी कवच द्वारा जल और अग्नि का स्तम्भन किया था। पहले समय में मैंने पुष्कर क्षेत्र में सनत्कुमार को यह दिया था। मेरु पर्वत पर सान्दीपनि को सूर्य ग्रहण के समय

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

[1]बल्लाय तेन दत्तं च ददौ दुर्योधनाय सः। कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥५२॥
नित्यं पठति भक्त्येदं तन्मन्त्रोपासकश्च यः। विष्णुतुल्यो भवेन्नित्यं राजसूयफलं लभेत् ॥५३॥
स्नानेन सर्वतीर्थानां सर्वदानेन यत्फलम्। सर्वव्रतोपवासेन पृथिव्याश्च प्रदक्षिणैः ॥५४॥
सर्वयज्ञेषु दीक्षायां नित्यं वै सत्यरक्षणे। नित्यं श्रीकृष्णसेवायां कृष्णनैवेद्यभक्षणे ॥५५॥
पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं च लभेन्नरः। तत्फलं लभते नूनं पठनात्कवचस्य च ॥५६॥
राजद्वारे श्मशाने च सिंहव्याघ्रान्विते वने। दावाग्नौ संकटे चैव दस्युचौरान्विते भये ॥५७॥
कारागारे [2]विपद्ग्रस्ते घोरे च दृढबन्धने। व्याधियुक्तो भवेन्मुक्तो धारणात्कवचस्य च ॥५८॥
इत्येतत्कथितं दुर्गे तवैवेदं महेश्वरि। त्वमेव सर्वरूपा मां माया पृच्छसि मायया ॥५९॥

नारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिकाख्यानं स्मारं स्मारं च माधवम्। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रो बभूव सः ॥६०॥
न कृष्णसदृशो देवो न गङ्गासदृशी सरित्। न पुष्करात्परं तीर्थं न वर्णो ब्राह्मणात्परः ॥६१॥
परमाणोः परं सूक्ष्मं महाविष्णोः परो महान्। नभः परं च विस्तीर्णं यथा नास्त्येव नारद ॥६२॥
तथा न वैष्णवाज्ज्ञानी योगीन्द्रः शंकरात्परः। कामक्रोधलोभमोहा जितास्तेनैव नारद ॥६३॥

उन्होंने दिया और सान्दीपनि ने बलराम को तथा बलराम ने वह दुर्योधन को दिया था। इस कवच के प्रसाद से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥५०-५२॥ उन (राधा) के मन्त्र की उपासना करने वाला यदि भक्तिपूर्वक नित्य इसका पाठ करता है, तो वह विष्णु के समान होकर नित्य राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥५३॥ इस प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान, समस्त दान, सम्पूर्ण व्रतों के उपवास, पृथिवी की परिक्रमा, समस्त यज्ञों की दीक्षा, नित्य सत्य की रक्षा, भगवान् श्रीकृष्ण की नित्य सेवा, उनके नैवेद्य के भक्षण और चारों वेदों के पारायण से जो फल प्राप्त होता है, वह इस कवच के पाठ करने से निश्चय प्राप्त होता है ॥५४-५६॥ राज दरबार, श्मशान, सिंह-बाघ से युक्त वन, दावाग्नि, संकट, चोर-डाकुओं के भय, कारागार (जेल), घोर विपत्ति, दृढ़बन्धन (गिरफ्तारी) और रोगी होने पर इस कवच के धारण करने से (उस संकट से) शीघ्र मुक्त हो जाता है ॥५७-५८॥ हे दुर्गे! हे महेश्वरि! यह जो मैंने तुम्हें सुनाया है, वह तुम्हारी ही वस्तु है, क्योंकि तुम सर्वरूपा हो, माया होकर माया (छल) करके मुझसे पूछ रही हो ॥५९॥

नारायण बोले—इस प्रकार राधिका जी का आख्यान कहने के अनन्तर बार-बार भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करने से शिवजी के समस्त शरीर में रोमाञ्च हो आया और नेत्र सजल हो गये ॥६०॥ क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के समान कोई देव नहीं है तथा गंगा के समान नदी, पुष्कर से बढ़कर तीर्थ और ब्राह्मण से बढ़कर उच्चवर्ण कोई नहीं है ॥६१॥ हे नारद! जिस भाँति परमाणु से बढ़कर सूक्ष्म, महाविष्णु से बढ़कर महान् और आकाश से बढ़ कर विस्तीर्ण कोई नहीं है उसी प्रकार वैष्णव से बढ़ कर ज्ञानी, शंकर जी से बढ़कर योगिराज और नहीं है; क्योंकि हे नारद! इन्होंने

१क. बालाय। २क. रिपुग्रस्ते।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्वप्ने जागरणे शश्वत्कृष्णध्यानरतः शिवः। यथा कृष्णस्तथा शंभुर्न भेदो माधवेशयोः ॥६४॥
यथा शंभुर्वैष्णवेषु यथा देवेषु माधवः। तथेदं कवचं वत्स कवचेषु प्रशस्तकम् ॥६५॥
शिशब्दो मङ्गलार्थश्च वकारो दातृवाचकः। मङ्गलानां प्रदाता यः स शिवः परिकीर्तितः ॥६६॥
नराणां संततं विश्वे शं कल्याणं करोति यः। कल्याणं मोक्ष इत्युक्तं स एव शंकरः स्मृतः ॥६७॥
ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां वेदवादिनाम्। तेषां च महतां देवो महादेवः प्रकीर्तितः ॥६८॥
महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी। तस्या देवः पूजितश्च महादेवः स च स्मृतः ॥६९॥
विश्वस्थानां च सर्वेषां महतामीश्वरः स्वयम्। महेश्वरं च तेनेमं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥७०॥
हे ब्रह्मपुत्र धन्योऽसि यद्गुरुश्च महेश्वरः। श्रीकृष्णभक्तिदाता यो भवान्पृच्छति मां च किम् ॥७१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० राधिकोपा० तन्मन्त्रादिकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

सर्वाख्यानं श्रुतं ब्रह्मन्नतीव परमाद्भुतम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥१॥
दुर्गा नारायणीशाना विष्णुमाया शिवा सती। नित्या सत्या भगवती शर्वाणी सर्वमङ्गला ॥२॥
अम्बिका वैष्णवी गौरी पार्वती च सनातनी। नामानि कौथुमोक्तानि सर्वेषां शुभदानि च ॥३॥

ही काम, क्रोध, लोभ और मोह को जीता है। सोते-जागते सब समय शिव भगवान् कृष्ण के ध्यान में निरन्तर मग्न रहते हैं, अतः जैसे कृष्ण हैं वैसे शिव हैं, इन माधव और शंकर में कोई भेद नहीं है। हे वत्स! जिस प्रकार वैष्णवों में शम्भु, देवों में माधव (श्रेष्ठ) हैं, वैसे ही समस्त कवचों में यह कवच अति प्रशस्त है ॥६२-६५॥ (शिव शब्द में) शि शब्द का मंगल अर्थ और वकार का दाता अर्थ है, अतः मंगलों के प्रदाता को शिव कहा जाता है ॥६६॥ विश्व में मनुष्यों का जो निरन्तर कल्याण करता है, उसे शंकर कहा गया है कल्याण को मोक्ष कहा गया है ॥६७॥ ब्रह्मादि देवगण तथा वेदवक्ता मुनिवृन्द का जो महान् देवता है, उसे 'महादेव' कहा गया है ॥६८॥ समस्त विश्व में ईश्वरी मूल प्रकृति अत्यन्त पूजित है और उसका जो पूजित देव है, उसे महादेव कहा जाता है ॥६९॥ विश्व के समस्त महान् प्राणियों का वह स्वयं ईश्वर है, इसी से मनीषी लोग उन्हें 'महेश्वर' कहते हैं। हे ब्रह्मपुत्र! तुम धन्य हो, श्रीकृष्ण की भक्ति देने वाले महेश्वर जिसके गुरु हैं, ऐसे आप मुझसे क्यों पूछते हैं ॥७०-७१॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के राधिकोपाख्यान में उनके मंत्र आदि कथन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥५६॥

अध्याय ५७

दुर्गा आदि नामों की व्युत्पत्ति

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! मैंने परम अद्भुत समस्त आख्यान सुन लिया, अब श्री दुर्गा जी का उत्तम उपाख्यान सुनना चाहता हूँ। दुर्गा, नारायणी, ईशानी, विष्णुमाया, शिवा, सती, नित्या, सत्या, भगवती, शर्वाणी, सर्वमंगला, अम्बिका, वैष्णवी, गौरी, पार्वती और सनातनी ये कौथुम शाखा में कहे गये सभी नाम शुभप्रद हैं ॥१-३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अयं षोडशनाम्नां च सर्वेषामीप्सितं वरम्। ब्रूहि वेदविदां श्रेष्ठ वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥४॥
केन वा पूजिता साऽऽदौ द्वितीये केन वा पुरा। तृतीये वा चतुर्थे वा केन सर्वत्र पूजिता ॥५॥

नारायण उवाच

अयं षोडशनाम्नां च विष्णुर्वेदे चकार सः। ज्ञात्वा पुनः पृच्छसि त्वं कथयामि यथागमम् ॥६॥
दुर्गो दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धे च कर्मणि। शोके दुःखे च नरके यमदण्डे च जन्मनि ॥७॥
महाभयेऽतिरोगे चाप्याशब्दो हन्तृवाचकः। एतान्हन्त्येव या देवी सा दुर्गा परिकीर्तिता ॥८॥
यशसा तेजसा रूपैर्नारायणसमा गुणैः। शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता ॥९॥
ईशानः सर्वसिद्धचर्थे चाशब्दो दातृवाचकः। सर्वसिद्धिप्रदात्री या साऽप्यीशाना प्रकीर्तिता ॥१०॥
सृष्टा माया पुरा सृष्टौ विष्णुना परमात्मना। मोहितं मायया विश्वं विष्णुमाया प्रकीर्तिता ॥११॥
शिवे कल्याणरूपा च शिवदा च शिवप्रिया। प्रिये दातरि चाऽऽशब्दो शिवा तेन प्रकीर्तिता ॥१२॥
सद्बुद्धचधिष्ठातृदेवी विद्यमाना युगे युगे। पतिव्रता सुशीला च सा सती परिकीर्तिता ॥१३॥
यथा नित्यो हि भगवान्नित्या भगवती तथा। स्वमायया तिरोभूता तत्रेशे प्राकृते लये ॥१४॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव कृत्रिमम्। दुर्गा सत्यस्वरूपा सा प्रकृतिर्भगवान्यथा ॥१५॥

हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! इन सोलह नामों के समुचित अर्थ बताने की कृपा करें, जो सभी के लिए अभिलषित, श्रेष्ठ, वेदोक्त और सर्वसम्मत हों॥४॥ सर्वप्रथम इस देवी की किसने आराधना की? पुनः दूसरा, तीसरा और चौथा कौन हैं जिन्होंने उनकी पूजा की? और किसके द्वारा ये पूजित हुईं ॥५॥

नारायण बोले—भगवान् विष्णु ने वेद में इन सोलह नामों के अर्थ बताये हैं, उसे जानते हुए भी मुझसे पूछ रहे हो, अतः शास्त्रानुसार मैं कह रहा हूँ॥६॥ (दुर्गा शब्द में) दुर्ग शब्द दैत्य, महाविघ्न, संसाररूपी बन्धन, संसार के कर्म, शोक, दुःख, नरक, यमदण्ड, जन्म, महाभय, और असाध्यरोग अर्थ में प्रयुक्त होता है, तथा आ शब्द का हन्ता अर्थ है अतः इन सभी का जो हनन (नाश) करती है उस देवी को दुर्गा कहा जाता है॥७-८॥ यश, तेज, रूप और गुणों में यह नारायण के समान है और उन्हीं की यह शक्ति है अतः इसे नारायणी कहते हैं॥९॥ समस्त सिद्धि अर्थ में ईशान शब्द प्रयुक्त होता है और आ शब्द का अर्थ दाता है अतः सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली देवी को 'ईशाना' कहा जाता है॥१०॥ परमात्मा विष्णु ने सृष्टि के पूर्वकाल में माया को उत्पन्न किया और उस माया द्वारा समस्त विश्व को मोहित कर दिया, अतः इसे विष्णुमाया कहते हैं॥११॥ शिव में वह कल्याण रूप है, शिवदायिनी और शिव की प्रिया है। प्रिय और दाता अर्थ में आ शब्द प्रयुक्त होता है, इसी से उसे शिवा कहा जाता है॥१२॥ प्रत्येक युग में यह सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी विद्यमान रहती है, तथा पतिव्रता और उत्तम-स्वभाव की होने के नाते इसे 'सती' कहा जाता है॥१३॥ जिस प्रकार भगवान् नित्य हैं उसी प्रकार यह भगवती भी नित्या है। प्राकृत लय के समय अपनी माया द्वारा उस ईश (भगवान् कृष्ण में) तिरोहित हो जाती है। इसीलिए तृण से लेकर ब्रह्मा तक सब कुछ कृत्रिम (बनावटी) और मिथ्या है। भगवान् की भाँति प्रकृति दुर्गा भी सत्य-स्वरूपा हैं॥१४-१५॥ प्रत्येक युग में जिसमें सभी सिद्धियाँ और ऐश्वर्यादि वर्तमान रहते हैं, उस सिद्धादिक अर्थ

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सिद्धैश्वर्यादिकं सर्वं यस्यामस्ति युगे युगे। सिद्धादिके भगो ज्ञेयस्तेन सा भगवती स्मृता ॥१६॥
सर्वान्मोक्षं प्रापयति जन्ममृत्युजरादिकम्। चराचरांश्च विश्वस्थाञ्छर्वाणी तेन कीर्तिता ॥१७॥
मङ्गलं मोक्षवचनं चाऽऽशब्दो दातृवाचकः। सर्वान्मोक्षान्या ददाति सैव स्यात्सर्वमङ्गला ॥१८॥
हर्षे संपदि कल्याणे मङ्गलं परिकीर्तितम्। तान्ददाति च सर्वेभ्यस्तेन सा सर्वमङ्गला ॥१९॥
अम्बेति मातृवचनो वन्दने पूजने सदा। पूजिता वन्दिता माता जगतां तेन साऽम्बिका ॥२०॥
विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णोः शक्तिस्वरूपिणी। सृष्टौ च विष्णुना सृष्टा वैष्णवी तेन कीर्तिता ॥२१॥
गौरः पीते च निर्लिप्ते परे ब्रह्मणि निर्मले। तस्याऽऽत्मनः शक्तिरियं गौरी तेन प्रकीर्तिता ॥२२॥
गुरुः शंभुश्च सर्वेषां तस्य शक्तिः प्रिया सती। गुरुः कृष्णश्च तन्माया गौरी तेन प्रकीर्तिता ॥२३॥
तिथिभेदे पर्वभेदे कल्पभेदेऽन्यभेदके। ख्यातौ तेषु च विख्याता पार्वती तेन कीर्तिता ॥२४॥
महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति सुकीर्तिता। तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्तिता ॥२५॥
पर्वतस्य सुता देवी साऽऽविर्भूता च पर्वते। पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्तिता ॥२६॥
सर्वकाले सना प्रोक्तो विस्तृते च तनीति च। सर्वत्र सर्वकाले च विद्यमाना सनातनी ॥२७॥
अर्थः षोडशनाम्नां च कीर्तितश्च महामुने। यथागमं त्वं वेदोक्तोपाख्यानं च निशामय ॥२८॥
प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना। वृन्दावने च सृष्ट्यादौ गोलोके रासमण्डले ॥२९॥

में भग शब्द प्रयुक्त होने के कारण उसे भगवती कहते हैं ॥१६॥ जो सभी को मोक्ष दिलाती हैं और समस्त विश्व के चर-अचर प्राणियों को जन्म, मृत्यु एवं जरा आदि प्रदान करती हैं, उसे 'शर्वाणी' कहते हैं ॥१७॥ मंगल शब्द का मोक्ष अर्थ और आ शब्द का दाता अर्थ है, तथा जो सभी को मोक्ष प्रदान करती है, उसे 'सर्वमंगला' कहा गया है ॥१८॥ हर्ष, सम्पत्ति और कल्याण अर्थ में मंगल शब्द प्रयुक्त होता है और वह सभी प्राणियों को प्रदान करती है, इसलिये भी उसे 'सर्वमंगला' कहते हैं ॥१९॥ माता तथा सदा वन्दन एवं पूजन अर्थ में अम्बा शब्द प्रयुक्त होता है अतः जगत् की वन्दिता एवं पूजिता माता होने के नाते उसे अम्बिका कहते हैं ॥२०॥ विष्णुभक्त विष्णुस्वरूप, विष्णु की शक्ति और सृष्टि में विष्णु द्वारा उत्पन्न होने के नाते उसे 'वैष्णवी' कहते हैं ॥२१॥ गौर शब्द पीत वर्ण, निर्लिप्त परब्रह्म और निर्मल अर्थ में प्रयुक्त होता है और परमात्मा की शक्ति होने के कारण उसे 'गौरी' कहा जाता है ॥२२॥ सभी के गुरु शिव हैं, उनकी यह शक्ति है और कृष्ण भी सभी के गुरु हैं उनकी यह माया है इससे भी इन्हें 'गौरी' कहा गया है ॥२३॥ तिथिभेद, पर्वभेद कल्पभेद और अन्य भेद तथा ख्याति में विख्यात होने के नाते उसे 'पार्वती' कहा गया है ॥२४॥ महोत्सव विशेष अर्थ में पर्वन् शब्द प्रयुक्त होता है, उसकी अधिष्ठात्री देवी होने के नाते उसे 'पार्वती' कहा जाता है ॥२५॥ और यह देवी पर्वत की कन्या होकर पर्वत पर प्रकट हुई और पर्वतों की अधिष्ठात्री देवी होने के नाते भी उसे 'पार्वती' कहा गया है ॥२६॥ सर्वकाल अर्थ में सना शब्द प्रयुक्त होता है, और विस्तृत अर्थ में तनी शब्द। अतः सभी जगह सब समय विद्यमान रहने के कारण उसका 'सनातनी' नामकरण हुआ है ॥२७॥ हे महामुने! सोलहों नामों का अर्थ मैंने कह दिया है, अब वेदानुसार उनका उपाख्यान भी शास्त्र रीति से कह रहा हूँ, सुनो ॥२८॥ सृष्टि के आदि में परमात्मा श्रीकृष्ण ने गोलोक में वृन्दावन के रासमण्डल में इनकी सर्वप्रथम अर्चना की ॥२९॥ दूसरे मधुकैटभ से भयभीत होकर

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मधुकैटभभीतेन ब्रह्मणा सा द्वितीयतः। त्रिपुरप्रेरितेनैव तृतीये त्रिपुरारिणा ॥३०॥
भ्रष्टश्रिया महेन्द्रेण शापाद्दुर्वाससः पुरा। चतुर्थे पूजिता देवी भक्त्या भगवती सती ॥३१॥
तदा मुनीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैर्देवैश्च मुनिपुंगवैः। पूजिता सर्वविश्वेषु समभूत्सर्वतः सदा ॥३२॥
तेजःसु सर्वदेवानां साऽऽविर्भूता पुरा मुने। सर्वे देवा ददुस्तस्यै शस्त्राण्याभरणानि च ॥३३॥
दुर्गादयश्च दैत्याश्च निहिता दुर्गया तथा। दत्तं स्वराज्यं देवेभ्यो वरं च यदभीप्सितम् ॥३४॥
कल्पान्तरे पूजिता सा सुरथेन महात्मना। राज्ञा च मेधशिष्येण मृन्मय्यां च सरित्तटे ॥३५॥
मेषादिभिश्च महिषैः कृष्णसारैश्च गण्डकैः। छागैरिक्षुसुकूष्माण्डैः पक्षिभिर्बलिभिर्मुने ॥३६॥
वेदोक्तांश्चैव दत्त्वैवमुपचारांस्तु षोडश। ध्यात्वा च कवचं धृत्वा संपूज्य च विधानतः ॥३७॥
राजा कृत्वा परीहारं वरं प्राप यथेप्सितम्। मुक्तिं संप्राय वैश्यश्च संपूज्य च सरित्तटे ॥३८॥
तुष्टाव राजा वैश्यश्च साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः। ससर्ज मृन्मयीं तां वै गभीरे निर्मले जले ॥३९॥
मृन्मयीं तामदृष्ट्वा च जलधौतां नराधिपः। रुरोद च तदा वैश्यस्ततः स्थानान्तरं ययौ ॥४०॥
त्यक्त्वा देहं च वैश्यस्तु पुष्करे दुष्करं तपः। कृत्वा जगाम गोलोकं दुर्गादेवीवरेण सः ॥४१॥
राजा ययौ स्वराज्यं च पूज्यो निष्कण्टकं बली। भोगं च बुभुजे भूपः षष्टिवर्षसहस्रकम् ॥४२॥

ब्रह्मा ने और तीसरे त्रिपुर से प्रेरित होकर त्रिपुरारि (शिव) ने उनकी पूजा की ॥३०॥ चौथे पूर्वसमय में महेन्द्र ने दुर्वासा द्वारा प्रदत्त शाप के कारण ऐश्वर्यादि से भ्रष्ट होने पर भक्तिपूर्वक सती भगवती देवी की अर्चना की ॥३१॥ उसी समय से वह समस्त विश्व में मुनीन्द्रवृन्द, सिद्धगण, देवों और श्रेष्ठ महर्षियों द्वारा पूजित होकर चारों ओर सदैव पूजित होने लगी ॥३२॥ हे मुने! प्राचीन समय में समस्त देवों के तेजःपुञ्ज से प्रकट होकर उस दुर्गा देवी ने, जिसे समस्त देवों ने अपने शस्त्र और आभूषण प्रदान किये थे, दुर्ग आदि दैत्यों को मारकर समस्त राज्य और मनइच्छित वरदान देवों को प्रदान किया ॥३३-३४॥ कल्पान्तर में मेध के शिष्य राजा सुरथ ने नदी के तट पर मिट्टी की मूर्ति बनाकर देवी की पूजा की थी ॥३५॥ हे मुने! भेड़ें आदि, भैंसे, मृग, मेढ़क, बकरे, ऊख, कुम्हड़े, और पक्षियों की बलि प्रदान द्वारा वेदोक्त षोडशोपचार से सविधि-पूजन करने के उपरान्त राजा ने कवच धारण किया तथा देवी की स्तुति करके मनइच्छित वर प्राप्त किया। (समाधि नामक) वैश्य ने भी नदी-तट पर देवी की आराधना करके मुक्ति प्राप्त की ॥३६-३८॥ राजा और वैश्य दोनों ने सजलनयन एवं हाथ जोड़े स्तुति करते हुए मिट्टी की उस प्रतिमा को गम्भीर जल में डाल दिया ॥३९॥ अनन्तर राजा उस मिट्टी की मूर्ति को, जो जल में घुल गयी थी, न देखकर रुदन करने लगा और वह वैश्य उसी समय वहाँसे दूसरी जगह चला गया ॥४०॥ पुष्कर में कठिन तप करके उस वैश्य ने अपनी देह का त्याग किया और दुर्गा देवी के वरदान द्वारा गोलोक की प्राप्ति की एवं उस बलवान् राजा ने अपने निष्कण्टक राज्य का साठ सहस्र वर्ष तक उपभोग किया। अनन्तर स्त्री और राज्य पुत्र को सौंपकर कालयोगवश पुष्कर में तप करके सावर्णि मनु

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

भार्यां स्वराज्यं संन्यस्य पुत्रे वै कालयोगतः । मनुर्बभूव सावर्णिस्तप्त्वा वै पुष्करे तपः ॥४३॥
इत्येवं कथितं वत्स समासेन यथागमम् । दुर्गाख्यानं मुनिश्रेष्ठ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० दुर्गोपा० दुर्गादिनाम-व्युत्पत्त्यादिकथनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

कस्य वंशो ध्रुवो राजा सुरथो धर्मिणां वरः । कथं संप्राप वै ज्ञानं मेधसो ज्ञानिनां वरात् ॥१॥
कस्य वंशो ध्रुवो ब्रह्मन्मेधसो मुनिसत्तम । बभूव कुत्र संवादो नृपस्य मुनिना सह ॥२॥
सख्यं बभूव कुत्रास्य वा प्रभो नृपवैश्ययोः । व्यासेन श्रोतुमिच्छामि वद वेदविदां वर ॥३॥

नारायण उवाच

अत्रिश्च ब्रह्मणः पुत्रस्तस्य पुत्रो निशाकरः । स च कृत्वा राजसूयं द्विजराजो बभूव ह ॥४॥
गुरुपत्न्यां च तारायां तस्याभूच्च बुधः सुतः । बुधपुत्रस्तु चैत्रश्च तत्पुत्रः सुरथः स्मृतः ॥५॥

होकर जन्म ग्रहण किया। हे वत्स! हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने तुम्हें शास्त्रानुसार दुर्गा जी का उपाख्यान सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥४१-४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में दुर्गा आदि नामों की व्युत्पत्ति आदि कथन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५७॥

अध्याय ५८

तारा और चन्द्रमा का दोष-निवारण

नारद बोले—धार्मिकों में श्रेष्ठ राजा सुरथ किसके वंश में उत्पन्न हुआ ? और ज्ञानिप्रवर श्री मेधस् ऋषि से उसने कैसे ज्ञान प्राप्त किया? ॥१॥ हे ब्रह्मन्! हे मुनिसत्तम! मेधस् ऋषि किस वंश में उत्पन्न हुए ? और राजा का मुनि के साथ संवाद किस स्थान पर हुआ ? ॥२॥ हे प्रभो! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य की मित्रता कहाँ हुई थी ? मैं यह सब विस्तार से सुनना चाहता हूँ ॥३॥

नारायण बोले—ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और उनके चन्द्रमा नामक पुत्र हुए, जो राजसूय यज्ञ सुसम्पन्न करने के कारण 'द्विजराज' कहलाये थे ॥४॥ उन्होंने गुरु (बृहस्पति) की पत्नी तारा में बुध नामक पुत्र उत्पन्न किया। बुध के पुत्र चैत्र और चैत्र के पुत्र सुरथ हुए ॥५॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नारद उवाच

गुरुपत्न्यां च तारायां समभूत्तत्सुतः कथम् । अहो व्यतिक्रमं ब्रूहि देवस्य च महामुने ॥६॥

नारायण उवाच

संपन्मत्तो महाकामी [1] ददर्श जाह्नवीतटे । तारां सुरगुरोः पत्नीं धर्मिष्ठां च पतिव्रताम् ॥७॥
सुस्नातां सुन्दरीं रम्यां पीनोन्नतपयोधराम् । सुश्रोणीं सुनितम्बाढ्यां मध्यक्षीणां मनोहराम् ॥८॥
सुदतीं कोमलाङ्गीं च नवयौवनसंयुताम् । सूक्ष्मवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥९॥
कस्तूरीबिन्दुना सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना । सिन्दूरबिन्दुना चारुफालमध्यस्थलोज्ज्वलाम् ॥१०॥
वायुनाऽधोवस्त्रहीनां सकामां [2] रक्तलोचनाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां पक्वबिम्बाधरां वराम् ॥११॥
सुस्मितां नम्रवक्त्रां च लज्जया चन्द्रदर्शनात् । गच्छन्तीं स्वगृहं हर्षान्मत्तवारणगामिनीम् ॥१२॥
तां दृष्ट्वा मन्मथाक्रान्तश्चन्द्रो लज्जां जहौ मुने । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः सकामस्तामुवाच सः ॥१३॥

चन्द्र उवाच

योषिच्छ्रेष्ठे क्षणं तिष्ठ वरिष्ठे रसिकासु च । सुविदग्धे विदग्धानां मनो हरसि संततम् ॥१४॥

नारद बोले—हे महामुने! गुरुपत्नी तारा में उन्होंने कैसे पुत्र उत्पन्न किया, क्योंकि यह तो देव का व्यतिक्रम है, अतः उसे अवश्य बताने की कृपा कीजिये ॥६॥

नारायण बोले—एक बार धन-मदान्ध और महाकामी चन्द्रमा गंगा के किनारे विचरण कर रहे थे। उसी समय स्नान के लिए आई हुई पतिव्रता तारा को उन्होंने देखा, जो देवगुरु (बृहस्पति) की पत्नी और धर्मात्मा थी ॥७॥ वह रमणीय सुन्दरी मोटे और उन्नत स्तन, उत्तम जघन भाग, अति सुन्दर नितम्ब, पतली कमर, सुन्दर दाँतों की पंक्ति, कोमल अंग, नवयौवन, सूक्ष्म वस्त्र एवं रत्नों के भूषणों से भूषित थी। उसके भाल पर कस्तूरी की बिन्दी के साथ नीचे चन्दन-बिन्दु था और सुन्दर तथा उज्ज्वल माँग में सिन्दूर लगा था ॥८-१०॥ उसी बीच वायु के झकोरे से अधोवस्त्र हट गया। तब रक्तवर्ण के नेत्र, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख और पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ वाली वह कामिनी, मन्द मुसुकाती, नीचे मुख किये, लज्जा की ओट में चन्द्रमा को देखती हुई अति हर्ष से मतवाले हाथी की-सी चाल से अपने घर जाने लगी ॥११-१२॥ हे मुने! उसे देखकर चन्द्रमा अति कामपीड़ित हो गये। इससे उन्होंने लज्जा त्याग कर शरीर के सर्वांग में पुलकायमान होने के नाते काम-भावना से उससे कहा—॥१३॥

चन्द्र बोले—हे रमणीश्रेष्ठ! एवं रसिक ललनाओं में उत्तम! क्षणमात्र ठहर जाओ! हे सुदक्षे! तुम विदग्ध (चतुर) पुरुषों के मन का निरन्तर अपहरण करती हो ॥१४॥ हे काम-सागरे! बृहस्पति

---

१ ख. व्यचरज्जा० । २ क. वक्रलो० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

निषेव्य प्रकृतिं जन्मसहस्रं कामसागरे । तपःफलेन त्वां प्राप बृहच्छ्रोणीं बृहस्पतिः ॥१५॥
अहो तपस्विना सार्धमविदग्धेन वेधसा । योजिता त्वं रसवती शश्वत्कामातुरा वरा ॥१६॥
किं वा सुखं च विज्ञातमविज्ञेषु समागमे । विदग्धाया विदग्धेन संगमः सुखसागरः ॥१७॥
कामेन कामिनी त्वं च दग्धाऽसि व्यर्थमीश्वरि । कर्मणा वाऽऽत्मदोषाद्वा को जानाति मनः स्त्रियाः ॥१८॥
दिने दिने वृथा याति दुर्लभं नवयौवनम् । नवीनयौवनस्थाया वृद्धेन स्वामिना तव ॥१९॥
शश्वत्तपस्यायुक्तश्च [1]कृष्णमात्मानमीप्सितम् । स्वप्ने जागरणे वाऽपि ध्यायन्नास्ते बृहस्पतिः ॥२०॥
सर्वकामरसज्ञा त्वं निष्कामं काममीप्सितम् । ध्यायन्ती कामुकी शश्वद्यूनां शृंगारमात्मनि ॥२१॥
अन्यश्च त्वन्मनः कामो भिन्नं त्वद्दूर्तुरीप्सितम् । ययोश्च भिन्नौ विषयौ का प्रीतिःसंगमे तयोः ॥२२॥
वसन्ती पुष्पतल्पे च गन्धचन्दनचर्चिते । मोदस्व मां गृहीत्वा त्वं वसन्ते माधवीवने ॥२३॥
सुगन्ध्युत्फुल्लकुसुमे निर्जने चन्दने वने । भवती युवती भाग्यवती तत्रैव मोदताम् ॥२४॥
चन्दने चम्पकवने शीतचम्पकवायुना । रम्ये चम्पकतल्पे च क्रीडां कुरु मया सह ॥२५॥
रम्यायां मलयद्रोण्यां मन्दचन्दनवायुना । रामे रम मया सार्धमतीव निर्जने वने ॥२६॥

ने सहस्रों जन्म श्री दुर्गा जी की सेवा करके उस तपस्या के फलस्वरूप तुम वृहत् श्रोणी भाग वाली स्त्री को प्राप्त किया है ॥१५॥ किन्तु आश्चर्य है कि मूर्ख ब्रह्मा ने रसीली और निरन्तर कामातुर रहने वाली तुम ऐसी उत्तम स्त्री को एक तपस्वी के गले बाँध दिया है ॥१६॥ इसलिए उस अज्ञानी (बृहस्पति) के साथ समागम में तुम्हें कौन सुख मिलता होगा। क्योंकि विदग्धा (चतुर) स्त्री का विदग्ध (चतुर) पुरुष के ही साथ जब समागम होता है, तब सुखसागर उमड़ पड़ता है ॥१७॥ हे ईश्वरि! तुम कामिनी होकर जो काम द्वारा व्यर्थ जल रही हो, यह कर्मवश या अपने दोष के नाते हो रहा है। क्योंकि स्त्री के मन को कौन जान सकता है ॥१८॥ तुम्हारी नयी जवानी है और पति वृद्ध हैं, अतः उनके साथ तुम्हार यह दुर्लभ नव यौवन दिन-दिन व्यर्थ होता जा रहा है ॥१९॥ और बृहस्पति तो निरन्तर तपस्या में लगे रहते हैं सोते-जागते सब समय अपने इष्टदेव परमात्मा श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न रहते हैं ॥२०॥ वे तो निष्काम हैं और तुम काम के समस्त रस को जानती हो, इससे तुम्हें काम की चाह है, क्योंकि निरन्तर कामुकी बन कर युवा पुरुषों के शृंगार का तुम ध्यान करती रहती हो ॥२१॥ तुम्हारा मन काम चाहता है और तुम्हारे पति के मन को इससे भिन्न और ही कुछ अभीष्ट है। तो जिस (पति-पत्नी) के (मन के) विषय भिन्न-भिन्न हों, उनके समागम में उन्हें कौन सुख मिल सकेगा? ॥२२॥ इसलिए वसन्त के समय इस माधवी वन में गन्ध एवं चन्दन से चर्चित वासन्ती पुष्प की शय्या पर तुम हमारे साथ (रति का) आनन्द प्राप्त करो ॥२३॥ उस निर्जन चन्दन के वन में, जो सुगन्धित और पूर्ण-विकसित पुष्पों से सुशोभित है, भाग्यवती युवती आप (वहाँ चलकर) आनन्द लें ॥२४॥ चन्दन वन के अनन्तर चम्पक वन में चम्पक के शीतल वायु के लहरों में चम्पा की रमणीक शय्या पर मेरे साथ विहार करो ॥२५॥ हे सुन्दरि! मन्द चन्दन-वायु से युक्त मन्दराचल की कन्दरा के निर्जन वन में मेरे साथ रमण करो ॥२६॥ हे

---

१ क. ० मीश्वरम् ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्वर्णरेखातटवने नर्मदापुलिने शुभे । सुराणां वाञ्छितस्थाने रतिं कुरु मया सह ॥२७॥
इत्युक्त्वा मदनोन्मत्तो मदनाधिकसुन्दरः । पपात चरणे देव्या मन्दो मन्दाकिनीतटे ॥२८॥
निरुद्धमार्गा चन्द्रेण शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । अभीतोवाच कोपेन रक्तपङ्कजलोचना ॥२९॥

तारोवाच

धिक् त्वां चन्द्र तृणं मन्ये परस्त्रीलम्पटं शठम् । अत्रेरभाग्यात्त्वं पुत्रो व्यर्थं ते जन्म जीवनम् ॥३०॥
अरे कृत्वा राजसूयमात्मानं मन्यसे बली । बभूव पुण्यं ते व्यर्थं विप्रस्त्रीषु च यन्मनः ॥३१॥
यस्य चित्तं परस्त्रीषु सोऽशुचिः सर्वकर्मसु । न कर्मफलभावपापी निन्द्यो विश्वेषु सर्वतः ॥३२॥
सतीत्वं मे नाशयसि यक्ष्मग्रस्तो भविष्यसि । अत्युच्छ्रितो निपतनं प्राप्नोतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥३३॥
दुष्टानां दर्पहा कृष्णो दर्पं ते निहनिष्यति । त्यज मां मातरं वत्स सत्यं ते शं भविष्यति ॥३४॥
इत्युक्त्वा तारका साध्वी रुरोद च मुहुर्मुहुः । चकार साक्षिणं धर्मं सूर्यं वायुं हुताशनम् ॥३५॥
ब्रह्माणं परमात्मानमाकाशं पवनं धराम् । दिनं रात्रिं च संध्यां च सर्वं सुरगणं मुने ॥३६॥
तारकावचनं श्रुत्वा न भीतः स चुकोप ह । करे धृत्वा रथे तूर्णं स्थापयामास सुन्दरीम् ॥३७॥

शुभे ! नर्मदा के किनारे स्वर्णरेखा के तटवर्ती वन में—देवताओं के अभीष्ट स्थान में—मेरे साथ रति करो ॥२७॥ इस प्रकार मन्दाकिनी के तट पर मन्दबुद्धि चन्द्रमा, जो काम से उन्मत्त और काम से अधिक सुन्दर थे, इतना कहकर तारा देवी के चरण पर गिर पड़े ॥२८॥ चन्द्रमा के इस भाँति मार्ग रोक लेने पर तारा के कण्ठ, ओष्ठ और तालू सूख गये और उसके नेत्र रक्त कमल की भाँति लाल-लाल हो गये। अनन्तर उसने निर्भय होकर क्रोध से कहा ॥२९॥

तारा बोली—हे चन्द्र ! तुम्हें धिक्कार है, मैं तुम्हें तृणवत् समझती हूँ, क्योंकि तुम परस्त्रीलम्पट होने के नाते शठ हो। अत्रि का दुर्भाग्य था, जो तुम्हें पुत्ररूप में प्राप्त किया, क्योंकि तुम्हारा जन्म और जीवन दोनों व्यर्थ हैं ॥३०॥ अरे ! राजसूय यज्ञ करके तुम अपने को बड़ा बलवान् समझते हो। ब्राह्मण की स्त्रियों में तुम्हारे मन के दूषित होने के कारण वह तुम्हारा समस्त पुण्य व्यर्थ हो गया है ॥३१॥ क्योंकि जिसका चित्त परस्त्रियों में लगा रहता है, वह सभी कर्मों में अपवित्र माना जाता है। इतना ही नहीं, वह पापी समस्त विश्व में सब प्रकार से निन्दित होने के नाते (उत्तम) कर्मफल का भागी नहीं होता है ॥३२॥ यदि तुमने मेरा सतीत्व नष्ट किया तो तुम्हें यक्ष्मा (तपेदिक) का रोग हो जायगा। क्योंकि वेद में ऐसा सुना गया है कि—जो अत्यन्त उन्नत हो जाता है उसका पतन होता ही है ॥३३॥ दुष्टों के अभिमान को नष्ट करने वाले भगवान् कृष्ण तुम्हारे दर्प का हनन करेंगे। अतः हे वत्स ! मैं तुम्हारी माता हूँ, मुझे छोड़ दो, सत्य कहती हूँ, तुम्हारा कल्याण होगा ॥३४॥ इतना कह कर पतिव्रता तारा ने बार-बार रुदन किया और धर्म, सूर्य, वायु, अग्नि, ब्रह्मा, परमात्मा, आकाश, पवन, पृथ्वी, दिन-रात्रि, सन्ध्या, और समस्त देवों को साक्षी (गवाही) बनाने लगी ॥३५-३६॥ हे मुने ! तारा की ऐसी बातें सुनकर चन्द्रमा भयभीत नहीं हुआ अपितु क्रुद्ध हो गया और उसने उस सुन्दरी के दोनों हाथ पकड़ कर बलात् शीघ्रता

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रथं च चालयामास मनोयायी मनोहरम्। मनोहरां गृहीत्वा तां स च रेमे मनोहरः ॥३८॥
विस्पन्दके सुरवने चन्दने पुष्पभद्रके। पुष्करे च नदीतीरे पुष्पिते पुष्पकानने ॥३९॥
सुगन्धिपुष्पतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना। निर्जने मलयद्रोण्यां स्निग्धचन्दनचर्चिते ॥४०॥
शैले शैले नदे नद्यां शृङ्गारं कुर्वतोस्तयोः। गतं वर्षशतं[1] हर्षान्मुहूर्तमिव नारद ॥४१॥
बभूव शरणापन्नो भीतो दैत्येषु चन्द्रमाः। तेजस्विनि तथा शुक्रे तेषां च बलिनां गुरौ ॥४२॥
अभयं च ददौ तस्मै कृपया भृगुनन्दनः। गुरुं जहास देवानां स्वविपक्षं बृहस्पतिम् ॥४३॥
सभायां जहसुर्हृष्टा बलिनो दितिनन्दनाः। अभयं च ददुस्तस्मै भीताय च कलङ्किने ॥४४॥
सतीसतीत्वध्वंसेन पापिष्ठे चन्द्रमण्डले। बभूव शशरूपं च कलङ्कं निर्मले मलम् ॥४५॥
उवाच तं महाभीतं शुक्रो वेदविदां वरः। हितं तथ्यं वेदयुक्तं परिणामसुखावहम् ॥४६॥

शुक्र उवाच

त्वमहो ब्रह्मणः पौत्रोऽप्यत्रेर्भगवतः सुतः। दुर्नीतं कर्म ते पुत्र नीचवन्न यशस्करम् ॥४७॥
राजसूयस्य सुफले निर्मले कीर्तिमण्डले। सुधाराशौ सुराबिन्दुरूपमङ्कमुपार्जितम् ॥४८॥

से रथ पर बैठा लिया। मन की भाँति वेग से चन्द्रमा ने अपने मनोहर रथ का संचालन किया और उस सुन्दरी को पकड़कर उसके साथ रमण किया ॥३७-३८॥ पुष्पभद्रा नदी के तट पर देवों के विस्पन्दक नामक चन्दन वन, पुष्कर के किनारे, खिले हुए पुष्पों के उपवन में; पुष्प-चन्दन और वायु द्वारा सुगन्धित पुष्प की शय्या पर तथा मलय-पर्वत के बीच की निर्जन भूमि में स्निग्ध और चन्दनचर्चित पर्वतों, नदी और नदों में केलि करते उन दोनों के, हे नारद! सौ वर्ष का समय मुहूर्त (दो घड़ी) की भाँति व्यतीत हो गया ॥३९-४१॥ अनन्तर (देवों से) भयभीत होकर चन्द्रमा दैत्यों और उन बलवानों के तेजस्वी गुरु शुक्र की शरण में गया ॥४२॥ भृगुनन्दन (शुक्र) ने कृपा करके उसे अभय दान दिया और देवों के गुरु बृहस्पति की, जो उनके शत्रु हैं, हँसी उड़ाने लगे ॥४३॥ उस सभा में बलोन्मत्त दैत्यों ने भी भीत और कलंकी चन्द्रमा को अभयदान देकर बृहस्पति की खिल्ली उड़ायी ॥४४॥ सती स्त्री का सतीत्व नष्ट करने के कारण पापी चन्द्रमा के निर्मल मण्डल में कलंक मल स्वरूप ही शश (खरहे) का स्वरूप हो गया है। ॥४५॥ वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ शुक्र ने महाभयभीत चन्द्रमा से उसके हित, सत्य, वेदानुसार और परिणाम में सुखप्रदायक वचन कहा ॥४६॥

शुक्र बोले—अहो! तुम ब्रह्मा के पौत्र और भगवान् अत्रि महर्षि के पुत्र हो। हे पुत्र! तुम्हारा यह उद्दण्डकर्म नीचों की भांति है, कीर्तिकारी नहीं है ॥४७॥ राजसूय यज्ञ के सुसम्पन्न करने पर उसके परिणामस्वरूप यह निर्मल कीर्तिमण्डल तुम्हें प्राप्त हुआ था, किन्तु सुधा-समूह में सुराबिन्दु के समान उसमें तुमने कलंक लगा ही लिया ॥४८॥ मैं चाहता हूँ, देवगुरु बृहस्पति की पत्नी को तुम छोड़ दो।

---

१ क. ०सहस्रं तन्मु०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्वकान्तं वञ्चयित्वा च या याति परपूरुषम्। सा यातु वह्निकुण्डं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम् ॥७३॥
कीर्तिं करोति रजसा परकीर्तिं विलुप्य च। स युगं चन्द्रपापेन कुम्भीपाकं च गच्छतु ॥७४॥
पितरं मातरं भार्यां यो न पुष्णाति पातकी। स्वगुरुं चन्द्रपापेन यातु चण्डालतां ध्रुवम् ॥७५॥
कुलटान्नमवीरान्नमृतुस्नातान्नमेव च। योऽश्नाति चन्द्रपापं च यातु तं पापिनं ध्रुवम् ॥७६॥
स यातु तेन पापेन कुम्भीपाकं चतुर्युगम्। तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोति पातकी ॥७७॥
दिवसे यो ग्राम्यधर्मं महापापी करोति च। यो गच्छेत्कामतः कामी गर्भिणीं वा रजस्वलाम् ॥७८॥
तं यातु चन्द्रपापं च महाघोरं च पापिनम्। स यातु तेन पापेन कालसूत्रं चतुर्युगम् ॥७९॥
मुखं श्रोणीं स्तनं योनिं यः पश्यति परस्त्रियाः। कामतः कामदग्धश्च यातु तं चन्द्रकल्मषम् ॥८०॥
स यातु लालाभक्ष्यं च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम्। तस्मादुत्तीर्य भवतु चाण्डालोऽन्धो नपुंसकः ॥८१॥
कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च। मांसं मसूरं लकुचं यश्च भुङ्क्ते हरेर्दिने ॥८२॥
कुरुते ग्राम्यधर्मं च यातु तं चन्द्रकिल्विषम्। चतुर्युगं कालसूत्रं तेन पापेन गच्छतु ॥८३॥
तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोतु पातकी। सप्तजन्म महारोगी दरिद्रः कुब्ज एव च ॥८४॥

कालसूत्र नामक नरक में रहे ॥७२॥ जो स्त्री अपने पति को वञ्चित कर पर पुरुष के पास जाती है, वह चन्द्र-पाप से अग्निकुण्ड नामक नरक में चारों युग पर्यन्त रहे ॥७३॥ जो लोभवश दूसरे की कीर्ति लुप्त कर अपनी कीर्ति बढ़ाता है वह चन्द्र-पाप से एक युग पर्यन्त कुम्भीपाक नरक में जाकर रहे ॥७४॥ जो पुरुष अपने पिता, माता, स्त्री और गुरु का पालन-पोषण नहीं करता है, वह पापी चन्द्रपाप से निश्चित चाण्डाल हो जाये ॥७५॥ कुलटा, पतिपुत्रहीना और रजस्वला स्त्री का अन्न जो भोजन करता है, वह पापी चन्द्र पाप का भागी हो और उस पाप से चारों युगों तक कुम्भीपाक नरक में रहने पर अन्त में उस पातकी को चाण्डाल के यहाँ जन्म लेना पड़े ॥७६-७७॥ जो महापापी दिन में मैथुन करता है और काम-भावना से गर्भिणी अथवा रजस्वला स्त्री का उपभोग करता है वह पापी महाघोर चन्द्र-पाप का भागी होता है और उस पाप के नाते कालसूत्र नामक नरक में चारों युग पर्यन्त रहता है ॥७८-७९॥ जो कामी कामपीड़ित होकर परस्त्री के मुख, श्रोणीभाग और स्तन को देखता है, वह चन्द्रपाप का भागी होता है और उस पाप के कारण चारों युगों तक लालाभक्ष्य नामक नरक में पड़ा रहता है। पश्चात् चांडाल, अन्धा एवं नपुंसक होता है ॥८०-८१॥ चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति और अष्टमी तथा एकादशी या रविवार के दिन जो मांस, मसूर और बढ़हर खाता है तथा मैथुन करता है, वह चन्द्रपाप का भागी होता है और चारों युगपर्यन्त कालसूत्र नामक नरक में रहता है ॥८२-८३॥ पुनः उसमें से निकल कर वह पातकी चाण्डाल-योनि में जाता है और सात जन्म तक रोगी, दरिद्र तथा कूबड़ा होता है ॥८४॥

---

१ ख. रवे०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

एकादश्यां च यो भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीदिने । शिवरात्रौ महापापी यातु तं चन्द्रपातकम् ॥८५॥
स यातु कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश । तेन पापेन चाऽऽप्नोतु चाण्डालीं योनिमेव च ॥८६॥
ताम्रस्थं दुग्धमाध्वीकमुच्छिष्टं घृतमेव च । नारिकेलोदकं कांस्ये दुग्धं सलवणं तथा ॥८७॥
पीतशेषजलं चैव भुक्तशेषं तथौदनम् । असकृच्चौदनं भुङ्क्ते सूर्ये नास्तंगते द्विजः ॥८८॥
तं यातु चन्द्रपापं च दुर्निवारं च दारुणम् । स यातु तेन पापेन चान्धकूपं चतुर्युगम् ॥८९॥
स्वकन्याविक्रयी विप्रो देवलो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च तेषां वै सूपकारकः ॥९०॥
अश्वत्थतरुघाती च विष्णुवैष्णवनिन्दकः । तं यातु चन्द्रपापं च दारुणं पापिनं भृशम् ॥९१॥
स यातु तस्मात्पापाच्च तप्तसूर्मीं च पातकी । शश्वद्दग्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥९२॥
तस्मादुत्तीर्य चाण्डालीं योनिमाप्नोतु पातकी । सप्तजन्मसु चाण्डालो [1]वृषभः पञ्चजन्मसु ॥९३॥
गर्दभो जन्मशतकं सूकरः सप्तजन्मसु । तीर्थध्वाङ्क्षः सप्तसु वै विट्कृमिः पञ्चजन्मसु
जलौका जन्मशतकं शुचिर्भवतु तत्परम् ॥९४॥
वृथामांसं च यो भुङ्क्ते स्वार्थं पाकान्नमेव च । तददत्तं महापापी प्राप्नुयाच्चन्द्रपातकम् ॥९५॥
स यातु चन्द्रपापेन चासिपत्रं चतुर्युगम् । ततो भवतु सर्पश्च पशुः स्यात्सप्तजन्मसु ॥९६॥

एकादशी, भगवान श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी तथा शिवरात्रि के दिन जो भोजन करता है वह महापापी चन्द्रपाप का भागी होता है ॥८५॥ तथा चौदहों इन्द्रों के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहता है। और उसी पाप के कारण चाण्डाल-योनि में उत्पन्न होता है ॥८६॥ तांबे के पात्र में दुग्ध, महुए की शराब, उच्छिष्ट घृत; काँसे के पात्र में नारियल का जल, लवण समेत दुग्ध, पीने से बचा हुआ जल, खाने से बचा हुआ भात और सूर्यास्त के पहले जो बार-बार भात खाता है, वह दुर्निवार एवं भीषण चन्द्रपाप का भागी होता है और उस पाप के कारण उसे अन्धकूप नरक में चारों युग पर्यन्त रहना पड़ता है ॥८७-८९॥ जो ब्राह्मण अपनी कन्या का विक्रय करता है, मन्दिर का पुजारी है, बैलों की सवारी करता है, शूद्रों के शव का दहन एवं उनके भोजन बनाने का काम करता है, पीपल का वृक्ष काटता है, विष्णु और वैष्णवों की निन्दा करता है, उस पापी को अति दारुण चन्द्रपाप लगता है ॥९०-९१॥ उस पाप के नाते वह पातकी, तप्तसूर्मी नामक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक निरन्तर दग्ध होता रहता है ॥९२॥ पुनः उसमें से निकलने पर वह पापी चाण्डाल-योनि प्राप्त कर सात जन्मों तक चाण्डाल, पाँच जन्मों तक बैल, सौ जन्मों तक गधा, सात जन्मों तक सूकर, सात जन्मों तक तीर्थ में काक, पाँच जन्मों तक विष्टा का कीड़ा और सौ जन्मों तक जोंक होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥९३-९४॥ जो व्यर्थ मांस भोजन करता है और बिना किसी को दिये अपने लिए अन्न पकाकर खाता है, वह महापापी चन्द्र-पाप का भागी होता है ॥९५॥ उस पाप के नाते उसे चारों युग पर्यन्त असिपत्र नामक नरक में रहना पड़ता है। पश्चात् वह सात जन्मों तक सर्प और पशु होता है ॥९६॥

---

१ क. वृषलः ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

विप्रो वार्धुषिको यो हि योनिजीवी चिकित्सकः। हरेर्नाम्नां च विक्रेता यश्च वा [1]स्वाङ्गविक्रयी ॥९७॥
स्वधर्मकथकश्चैव यश्च स्वात्मप्रशंसकः। स्वयोजीवी धावकश्च कुलटापोष्य एव च ॥९८॥
तं यातु चन्द्रपापं च चन्द्रो भवतु विज्वरः। न यातु तेन पापेन शूलप्रोतं सुदारुणम् ॥९९॥
तत्र विद्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ततो दरिद्रो रोगी च दीक्षाहीनो नरः पशुः ॥१००॥
लाक्षामांसरसानां च तिलानां लवणस्य च। अश्वानां चैव लोहानां विक्रेता नरघातकः ॥१०१॥
विप्रः कुलालः चौरश्च यातु तं चन्द्रपातकम्। स यातु तेन पापेन क्षुरधारं सुदुःसहम् ॥१०२॥
तत्र च्छिन्नो भवतु स यावदिन्द्रसहस्रकम्। तस्मादुत्तीर्य स भवेत्सृगालः सप्तजन्मसु ॥१०३॥
सप्तजन्मसु मार्जारो महिषो जन्मपञ्चकम्। सप्तजन्मसु भल्लूकः कुक्कुरः सप्तजन्मसु ॥१०४॥
[2]मत्स्यश्च जन्मशतकं कर्कटी जन्मपञ्चकम्। गोधिका जन्मशतकं [3]गर्दभः सप्तजन्मसु ॥१०५॥
सप्तजन्मसु मण्डूकस्ततः स्यान्मानवोऽधमः। चर्मकारश्च रजकस्तैलकारश्च वर्धकिः ॥१०६॥
नाविकः शवजीवी च व्याधश्च स्वर्णकारकः। कुम्भकारो लोहकारस्ततः क्षत्रस्ततो द्विजः ॥१०७॥
इति चन्द्रं शुचिं कृत्वा समुवाच स तारकाम्। त्यक्त्वा चन्द्रं महासाध्वि गच्छ कान्तमिति द्विजः ॥१०८॥

जो ब्राह्मण ब्याज लेता है, योनि द्वारा जीविका निर्वाह करता है, चिकित्सक है, भगवान् के नामों का विक्रेता है तथा अपना अंग विक्रय करता है, अपना धर्म कहता है, अपनी प्रशंसा करता है, स्याही से जीविका चलाता है, हरकारे का काम करता है, कुलटा स्त्री द्वारा पालित होता है, वह चन्द्रपाप का भागी हो और चन्द्रमा पाप से मुक्त हो जायँ। उस पापवश वह अति भीषण शूलप्रोत नामक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक उसमें छिद कर टंगा रहे, अनन्तर दरिद्र, रोगी और दीक्षाहीन नरपशु हो ॥९७-१००॥ लाख (लाह), मांस, रस, तिल, लवण (नमक) अश्व (घोड़े) और लोहे का विक्रेता, नरघाती तथा कुम्हार का कार्य करने वाला एवं चोरी करने वाला ब्राह्मण चन्द्रपाप का भागी हो। उस पाप से वह अतिदुःसह क्षुरधार नामक नरक में सहस्र इन्द्रों के समय तक छिन्न-भिन्न होता रहे। उसमें से निकलने पर वह सात जन्मों तक स्यार होता है। अनन्तर सात जन्मों तक बिलाड़, पाँच जन्मों तक भैंसा, सात जन्मों तक भालू सात जन्मों तक कुत्ता, सौ जन्मों तक मछली, पाँच जन्मों तक कर्कटी (केकड़ा), सौ जन्मों तक गोह, सात जन्मों तक गधा, सात-जन्मों तक मण्डूक (मेढक) होकर अनन्तर अधम मनुष्य होता है—चर्मकार (चमार), धोबी, तेली, बढ़ई, काछी, शवजीवी, व्याध, सोनार, कुम्हार, लोहार के उपरान्त क्षत्रिय होकर पुनः ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न होता है ॥१०१-१०७॥ इस भाँति चन्द्रमा को पवित्र करके शुक्र ने तारा से कहा—हे महासाध्वि! चन्द्रमा को छोड़कर तू अब अपने पति के पास चली जा ॥१०८॥ क्योंकि शुद्ध मन होने के नाते तू प्रायश्चित्त बिना ही शुद्ध है, कामहीन स्त्री बल-

---

१ क. यज्ञवि०। २ क. आखुश्च जन्मशतकं कुक्कुटी। ३ क.० गृध्रश्च स०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रुरोदोच्चैः सशिष्यश्च हृदयेन विदूयता । शोकेन लज्जयाऽऽविष्टो[1] विललाप मुहुर्मुहुः ॥५
उवाच शिष्यान्संबोध्य नीतिं च श्रुतिसंमताम् । साश्रुनेत्रः साश्रुनेत्राञ्छोकार्तः शोककर्शितान् ॥६॥

बृहस्पतिरुवाच

हे वत्साः केन शप्तोऽहं न जाने कारणं परम् । दुःखं धर्मविरुद्धो यः स प्राप्नोति न संशयः ॥७॥
यस्य नास्ति सती भार्या गृहेषु प्रियवादिनी । अरण्यं तेन गन्तव्यं[2] यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥८॥
भावानुरक्ता वनिता हृता यस्य च शत्रुणा । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥९॥
सुशीला सुन्दरी भार्या गता यस्य गृहादहो । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥१०॥
दैवेनापहृता यस्य पतिसाध्वी पतिव्रता । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥११॥
यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥१२॥
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणबन्धुभिः । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥१३॥
भार्याशून्या वनसमाः सभार्याश्च गृहा गृहाः । गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते ॥१४॥
अशुचिः स्त्रीविहीनश्च देवे पित्र्ये च कर्मणि । यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥१५॥

स्वर से रोने लगे। शोक और लज्जा से उन्होंने बार-बार विलाप किया ॥४-५॥ अनन्तर वे शिष्यों को सम्बोधित कर वेद-सम्मत नीति कहने लगे। उस समय शिष्य-वर्ग भी आँखों में आँसू भरे शोकव्याकुल हो रहा था ॥६॥

बृहस्पति बोले—हे वत्स! मुझे किसने शाप दे दिया, मैं इस महान कारण को नहीं जानता हूँ। क्योंकि धर्म-विरोधी प्राणी को ही दुःख प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥७॥ जिसके गृह में पतिप्राणा एवं मधुर-भाषिणी स्त्री नहीं है, उसे (गृह त्यागकर) जंगल चला जाना चाहिए क्योंकि उसके लिए जंगल और गृह दोनों समान हैं ॥८॥ जिसकी प्रेमानुरागिणी स्त्री का शत्रु द्वारा अपहरण हो गया हो, उसे जंगल में निवास करना चाहिए, क्योंकि अरण्य और गृह दोनों उसके लिए समान हैं ॥९॥ अहो! जिसके घर से सुशीला एवं सुन्दरी पत्नी चली जाये, उसे (उसी समय) अरण्य चला जाना चाहिए; क्योंकि जंगल और घर उसके लिए दोनों समान हैं ॥१०॥ दैवसंयोगवश जिसकी पतिव्रता एवं पतिपरायणा स्त्री का अपहरण हो जाय उसे वन में चला जाना चाहिए, उसके लिए जैसे घर वैसे वन है ॥११॥ जिसके घर में माता नहीं है और सुशासित स्त्री नहीं है, उसे अरण्य और गृह दोनों समान होने के नाते वन चला जाना चाहिए ॥१२॥ जिसके घर में धनराशि एवं बन्धु वर्ग अधिक हैं, किन्तु प्रिया नहीं है उसे अरण्य चला जाना चाहिए क्योंकि उसके लिए घर और वन दोनों समान हैं ॥१३॥ स्त्री-शून्य गृह वन के समान है, जिस घर में स्त्री है वही गृह है, क्योंकि स्त्री ही घर है, केवल गृह को गृह नहीं कहा गया है ॥१४॥ इसलिए स्त्रीविहीन पुरुष देव एवं पितृ कर्मों में अपवित्र माना गया है और वह दिन में जो कुछ कर्म करता है, उसका फलभागी नहीं होता है ॥१५॥ जिस प्रकार दाहिका शक्ति से हीन अग्नि, प्रभा-

---

१ क. विप्रो। २ क. व्यं तयाऽरण्यं गृहाद्वरम् ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दाहिकाशक्तिहीनश्च यथा मन्दो हुताशनः। प्रभाहीनो यथा सूर्यः शोभाहीनो यथा शशी ॥१६॥
शक्तिहीनो यथा जीवो यथा चाऽऽत्मा तनुं विना। विनाऽऽधारं यथाऽऽधेयो यथेशः प्रकृतिं विना ॥१७॥
न च शक्तो यथा यज्ञः फलदां दक्षिणां विना। कर्मणां च फलं दातुं सामग्री मूलमेव च ॥१८॥
विना स्वर्णं स्वर्णकारो यथाऽशक्तः स्वकर्मणि। यथाऽशक्तः कुलालश्च मृत्तिकां च विना द्विज ॥१९॥
तथा गृही न शक्तश्च संततं सर्वकर्मणि। गृहाधिष्ठातृदेवीं च स्वशक्तिगृहिणीं विना ॥२०॥
भार्यामूलाः[1] क्रियाः सर्वा भार्यामूला गृहास्तथा। भार्यामूलं सुखं सर्वं गृहस्थानां गृहे सदा ॥२१॥
भार्यामूलः सदा हर्षो भार्यामूलं च मङ्गलम्। भार्यामूलश्च संसारो भार्यामूलं च [2]सौरभम् ।२२॥
यथा रथश्च रथिनां गृहिणां च तथा गृहम्। सारथिस्तु यथा तेषां गृहिणां च तथा प्रिया ॥२३॥
सर्वरत्नप्रधानं च स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि। गृहीता सा गृहस्थेनेवेत्याह कमलोद्भवः ॥२४॥
यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभां विना यथा। तथैव पुंसां स्वगृहं गृहिणां गृहिणीं विना ॥२५॥
इत्येवमुक्त्वा स गुरुः प्रविवेश गृहं मुहुः। गृहाद्बहिर्निःससार भूयो भूयः शुचाऽन्वितः ॥२६॥
मुहुर्मुहुश्च मूर्च्छां च चेतनां समवाप सः। भूयो भूयो रुरोदोच्चैः स्मारंस्मारं प्रियागुणान् ॥२७॥

हीन सूर्य, शोभाहीन चन्द्रमा, शक्तिहीन जीव, शरीर बिना आत्मा, आधार बिना आधेय, प्रकृति बिना ईश मन्द (शून्य) रहता है॥१६-१७॥ हे द्विज! जिस प्रकार फलदायक यज्ञ दक्षिणा बिना असमर्थ रहता है, यज्ञ की सामग्री और उसका मूल भाग कर्मों के फल प्रदान में असमर्थ होता है॥१८॥ एवं सोनार जिस प्रकार सुवर्ण के बिना अपने कर्म में अशक्त रहता है और मृत्तिका (मिट्टी) के बिना कुम्हार अपने कार्यों में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार गृहस्थ गृह की अधिष्ठात्री देवी एवं अपनी शक्ति रूप गृहिणी के बिना अपने सभी कर्मों में निरन्तर अशक्त रहता है॥१९-२०॥ क्योंकि जितनी क्रियायें हैं सभी स्त्री द्वारा आरम्भ होती हैं, सभी गृह स्त्री के कारण ही बनते हैं, इसलिए गृहस्थों को गृह में भी सुख स्त्री द्वारा ही प्राप्त होता है॥२१॥ सदा हर्ष भी स्त्री मूलक ही प्राप्त होता है, सभी मंगल स्त्री द्वारा होते हैं। इस भाँति सारा संसार स्त्री मूलक है। प्रसन्नता भी स्त्री द्वारा ही प्राप्त होती है। जिस प्रकार रथी का रथ होता है उसी प्रकार गृहस्थों का गृह होता है और रथ का संचालक सारथी जैसे होता है उसी भाँति गृहस्थों की संचालिका उसकी प्रिया पत्नी होती है॥२२-२३॥ इसलिए सभी रत्नों में स्त्रीरत्न प्रधान है। उसे दुष्कुल से भी गृहस्थों को ले लेना चाहिए, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है॥२४॥ जैसे बिना कमल का जल और बिना शोभा के कमल (हेय) होता है उसी भाँति गृही पुरुषों का गृह बिना गृहिणी का होता है॥२५॥ इतना कह कर गुरु बृहस्पति घर के भीतर चले गये और फिर घर से बाहर निकल आये। अधिक शोकमग्न होने के नाते उनका यही क्रम बना रहा। बार-बार मूर्च्छित हो जाते थे और थोड़े समय में चेतना भी आ जाती थी। अपनी प्रिया के गुणों का बार-बार स्मरण करके उच्च स्वर से वे बार-बार रोदन करते थे॥२६-२७॥ अनन्तर महाज्ञानी बृहस्पति को उनके बड़े-बड़े शिष्यों

---

१ क. ०लाश्च पुत्राश्च भा०। २ क. यौवनम।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथान्तरे महाज्ञानी ज्ञानिभिश्च प्रबोधितः । सच्छिष्यैर्मुनिभिश्चान्यैः पुरंदरगृहं ययौ ॥२८॥
स गुरुः पूजितस्तेन चाऽऽतिथ्येन मरुत्वता । तमुवाच स्ववृत्तान्तं हृदि शल्यमिवाप्रियम् ॥२९॥
बृहस्पतिवचः श्रुत्वा रक्तपङ्कजलोचनः । तमुवाच महेन्द्रश्च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥३०॥

महेन्द्र उवाच

दूतानां वै सहस्रं च चारकर्मणि गच्छतु । अतीव निपुणं दक्षं तत्त्वप्राप्तिनिमित्तकम् ॥३१॥
यत्रास्ति पातकी चन्द्रो मन्मात्रा तारया सह । गच्छामि तत्र संनद्धः सवैर्देवगणैः सह ॥३२॥
त्यज चिन्तां महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति । भद्रबीजं दुर्गमिदं कस्य संपद्विपद्विना ॥३३॥
इत्युक्त्वा च शुनासीरो दूतानां च सहस्रकम् । तूर्णं प्रस्थापयामास तत्कर्मनिपुणं मुने ॥३४॥
ते दूता वै वर्षशतं ययुर्निर्जनमेव च । [1]सुदुर्लङ्घ्यं च विश्वेषु भ्रमित्वा शक्रमाययुः ॥३५॥
चन्द्रं च शुक्रभवने तं प्रपन्नं च विज्वरम् । दृष्ट्वा सतारकं भीतं कथयामासुरीश्वरम् ॥३६॥
इति श्रुत्वा शुनासीरो नतवक्त्रो बृहस्पतिम् । उवाच शोकसंतप्तो हृदयेन विदूयता ॥३७॥

महेन्द्र उवाच

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि परिणामसुखावहम् । भयं त्यज महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति ॥३८॥

और अन्य महर्षियों ने भलीभाँति समझाया, जिससे वे सुरेन्द्र के घर गये ॥२८॥ इन्द्र ने उनकी अर्चना समेत आतिथ्य सत्कार किया और कुशल पूछा। गुरु ने अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जो हृदय में शल्य (कील) की भाँति चुभनेवाला था ॥२९॥ बृहस्पति की बातें सुनकर इन्द्र के नेत्र रक्त कमल की भाँति रक्तवर्ण हो गये। क्रोध से अधरोष्ठ फड़काते हुए उन्होंने उनसे कहा ॥३०॥

महेन्द्र बोले—इस बात की खोज करने के लिए एक सहस्र गुप्तचर भेज रहा हूँ, जो अति निपुण एवं दक्ष होने के नाते इसके रहस्य का ठीक-ठीक पता लगायेंगे ॥३१॥ और मेरी माता तारा के साथ पापी चन्द्रमा जहाँ होगा, वहीं सर्म देवगणों के साथ तैयार होकर चल रहा हूँ ॥३२॥ हे महाभाग! आप चिन्ता त्याग दें, सब अच्छा ही होगा। यह विपत्ति कल्याण मूलक है क्योंकि विना विपत्ति भोगे किसे सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥३३॥ हे मुने! इतना कहकर इन्द्र ने अतिशीघ्र एक सहस्र दूतों को भेज दिया, जो उस कर्म में अति निपुण थे ॥३४॥ वे दूतगण समस्त विश्व के अति दुर्लंघ्य और निर्जन स्थानों में उस रहस्य का पता लगाते हुए सौ वर्ष के उपरान्त लौटकर इन्द्र से मिले और कहने लगे—शुक्राचार्य के यहाँ चन्द्रमा सुखपूर्वक रह रहा है, तारा समेत भयभीत होकर वह उन्हीं की शरण में है—ऐसा दूतों ने इन्द्र से कहा ॥३५-३६॥ इसे सुनकर इन्द्र ने मुख नीचे कर लिया और शोक सन्तप्त होकर हार्दिक दुःख प्रकट करते हुए उन्होंने बृहस्पति से कहा।

महेन्द्र बोले—हे नाथ! सुनिये मैं कह रहा हूँ, जो परिणाम में सुखप्रदायक होगा। हे महाभाग! आप भय छोड़ दें, अनन्तर सब कुछ अच्छा ही होगा। न तो आपने शुक्र को जीता और न मैंने दैत्य को जीता

---

१ क. °लंघं च।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

त्वया नहि जितः शुक्रो न मया दितिनन्दनः। एतदालोच्य चन्द्रश्च जगाम शरणं कविम् ॥३९॥
गच्छ शीघ्रं ब्रह्मलोकमस्माभिः सार्धमेव च। ब्रह्मणा सह यास्यामः [1]कैलासे शंकरं वयम् ॥४०॥
इत्युक्त्वा तु महेन्द्रश्च संतप्तो गुरुणा सह। जगाम ब्रह्मलोकं च सुखदृश्यं निरामयम् ॥४१॥
तत्र दृष्ट्वा च ब्रह्माणं ननाम गुरुणा सह। प्रोवाच सर्ववृत्तान्तं देवानामीश्वरं परम् ॥४२॥
महेन्द्रवचनं श्रुत्वा हसित्वा कमलोद्भवः। हितं तथ्यं नीतिसारमुवाच विनयान्वितः ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

यो ददाति परस्मै च दुःखमेव च सर्वतः। तस्मै ददाति दुःखं च शास्ता कृष्णः सनातनः ॥४४॥
अहं स्रष्टा च सृष्टेश्च पाता विष्णुः सनातनः। यथा रुद्रश्च संहर्ता ददाति च शिवं शिवः ॥४५॥
निरन्तरं सर्वसाक्षी धर्मो वै सर्वकारणम्। सर्वे देवा विषयिणः कृष्णाज्ञापरिपालकाः ॥४६॥
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तश्च जितेन्द्रियः। त्रयश्चाङ्गिरसः पुत्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥४७॥
संवर्ताय[2] कनिष्ठाय न च किंचिद्ददौ गुरुः। स बभूव तपस्वी च कृष्णं ध्यायति चेश्वरम् ॥४८॥
मध्यमस्योतथ्यकस्य सतीं भार्यां च गर्विणीम्। जहार कामतस्तां च भ्रातृजायामकामुकीम् ॥४९॥
यो हरेद्भ्रातृजायां च कामी कामादकामुकीम्। ब्रह्महत्यासहस्रं च लभते नात्र संशयः ॥५०॥

यही सोचकर चन्द्रमा कवि शुक्र की शरण में गया है ॥३७-३९॥ इसलिए हमलोगों के साथ आप शीघ्र ब्रह्मलोक चलें और ब्रह्मा को साथ लेकर हमलोग शिवजी के यहाँ चलेंगे ॥४०॥ इतना कहकर महेन्द्र सन्तप्त होते हुए गुरु को साथ लिये ब्रह्मलोक गये, जो देखने में सुखप्रद और निरामय था ॥४१॥ वहाँ ब्रह्मा को देखकर गुरु समेत उन्होंने उन्हें नमस्कार किया और देवों के परमेश्वर उन ब्रह्मा को समस्त वृत्तान्त कहकर सुनाया ॥४२॥ महेन्द्र की बातें सुनकर कमल से उत्पन्न होने वाले विनययुक्त ब्रह्मा ने हँस कर उनसे कहा, जो हित, तथ्य एवं नीति का सार था ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—जो दूसरे को दुःख पहुँचाता है, उसे सनातन भगवान् श्रीकृष्ण शासक होने के नाते स्वयं दुःख देते हैं ॥४४॥ मैं सृष्टि का स्रष्टा हूँ, सनातन विष्णु उसकी रक्षा करते हैं, रुद्र संहार करते हैं और शिव (कल्याण) प्रदान करते हैं। धर्म समस्त के साक्षी एवं निरन्तर सब के कारण हैं, इस प्रकार सभी देवगण अपने-अपने विषय में भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करते हैं ॥४५-४६॥ बृहस्पति, उतथ्य और जितेन्द्रिय संवर्त, ये तीन पुत्र अंगिरा से उत्पन्न हुए जो वेद-वेदांग के पारगामी थे ॥४७॥ अंगिरा ने कनिष्ठ (छोटे) पुत्र संवर्त को कुछ नहीं दिया, वह तपस्वी हो गया, परमेश्वर श्रीकृष्ण का सतत ध्यान करता है ॥४८॥ मध्यम (मझला) पुत्र उतथ्य की पतिव्रता पत्नी का, जो उस समय गर्भिणी एवं कामभावनाहीन तथा भाई की पत्नी थी, इन्होंने कामवश अपहरण कर लिया। जो कामी कामवश भाई की कामभावनाहीन पत्नी का अपहरण करता है, उसे सहस्र ब्रह्महत्या का पाप लगता है, इसमें संशय नहीं ॥४९-५०॥ उसे

---

१ क. ०कैलासं शंकरालयम्। २ क. कुशिष्याय।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स याति कुम्भीपाकं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भ्रातृजायापहारी च मातृगामी भवेन्नरः ॥५१॥
तस्माद्युत्तीर्य पापी च विष्ठायां जायते कृमिः। वर्षकोटिसहस्राणि तत्र स्थित्वा च पातकी ॥५२॥
ततो भवेन्महापापी वर्षकोटिसहस्रकम्। पुंश्चलीयोनिगर्ते च कृमिश्चैव पुरंदर ॥५३॥
गृध्रःकोटिसहस्राणि शतजन्मानि कुक्कुरः। भ्रातृजायापहरणाच्छतजन्मानि सूकरः ॥५४॥
ददाति यो न दायं च बलिष्ठो दुर्बलाय च। स याति कुम्भीपाकं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५५॥
ना ऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥५६॥
जगद्गुरोः शिवस्यापि गुरुपुत्रो बृहस्पतिः। ज्ञातं करोतु वृत्तान्तमीश्वरं बलिनां वरम् ॥५७॥
सर्वे समूहा देवानां संनद्धाश्च सवाहनाः। मध्यस्था मुनयश्चैव सन्तु वै नर्मदातटे ॥५८॥
पश्चादहं च यास्यामि पुण्यं तं नर्मदातटम्। गुरुस्तद्गुरुपुत्रोऽपि शीघ्रं यातु शिवालयम् ॥५९॥

महेन्द्र उवाच

कथं वा वेदकर्तुश्च सिद्धानां योगिनां गुरोः। मृत्युंजयस्य शंभोश्च गुरुपुत्रो बृहस्पतिः ॥६०॥
अङ्गिरास्तव पुत्रश्च तत्पुत्रश्च बृहस्पतिः। त्वत्तो ज्ञानी महादेवः कथं शिष्यो गुरोः पितुः ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

कथेयमतिगुप्ता च पुराणेषु पुरंदर। इमां पुराप्रवृत्तिं च कथयामि निशामय ॥६२॥

चन्द्र-सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहना पड़ता है, क्योंकि भाई की स्त्री का अपहरण करनेवाला मनुष्य मातृगामी कहलाता है॥५१॥ उपरान्त वहाँ से निकलकर वह पापी विष्ठा का कीड़ा होता है, सहस्रों करोड़ वर्ष तक उसमें रहकर वह पातकी महापापी होता है। हे पुरन्दर! पश्चात् पुंश्चली (व्यभिचारिणी) स्त्री की योनि के गड्ढे का कीड़ा होता है॥५२-५३॥ अनन्तर सहस्र करोड़ वर्ष गीध, सौ जन्मों तक कुत्ता और भाई की पत्नी का अपहरण करने के नाते सौ जन्मों तक सूकर होता है॥५४॥ एवं जो वलवान् पुरुष अपने दुर्वल भाई को उसका दाय भाग (हिस्सा) नहीं देता है, उसे चन्द्र-सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहना पड़ता है॥५५॥ क्योंकि सैकड़ों करोड़ कल्प वीत जाने पर भी विना उपभोग किये कर्म नष्ट नहीं होता है, अतः अपना किया हुआ शुभ-अशुभ कर्म अवश्य भोगना पड़ता है॥५६॥ वृहस्पति जगद्गुरु शिव के गुरुपुत्र हैं, इसलिए बलवानों में श्रेष्ट उन ईश्वर को यह वृत्तान्त वता देना चाहिए॥५७॥ समस्त देववृन्द अपने वाहन समेत तैयार होकर नर्मदा के तटपर चलें और मुनिगण वहाँ मध्यस्थ रहेंगे, पीछे उस पुण्य नर्मदा तट पर हम भी आ रहे हैं। गुरुपुत्र (वृहस्पति) भी कैलाश जायँ॥५८-५९॥

महेन्द्र बोले—वेदों के प्रणेता, सिद्धों और योगियों के गुरु एवं मृत्युञ्जय शिव के गुरुपुत्र बृहस्पति कैसे हुए? क्योंकि अंगिरा तुम्हारे पुत्र हैं और उनके पुत्र वृहस्पति हैं और महादेव तुम से श्रेष्ठ ज्ञानी हैं अतः गुरु के पिता के शिष्य कैसे हुए? ॥६०-६१॥

ब्रह्मा बोले—हे पुरन्दर! यह कथा पुराणों में अति गुप्त है। अतः मैं इस प्राचीन कथा को पुनः कह रहा हूँ, सुनो॥६२॥?

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मृतवत्सा कर्मदोषाद्भार्या चाङ्गिरसः पुरा । व्रतं चकार मद्वाक्यात्कृष्णस्य परमात्मनः ॥६३॥
व्रतं पुंसवनं नाम वर्षमेकं चकार सा । सनत्कुमारो भगवान्कारयामास तां व्रतम् ॥६४॥
तदाऽऽगत्य च गोलोकात्परमात्मा कृपामयः । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः ॥६५॥
सुव्रतां च सलक्ष्मीकां तामुवाच कृपानिधिः । प्रणतां साश्रुनेत्रां च विनीतां च तया स्तुतः ॥६६॥

श्रीकृष्ण उवाच

गृहाणेदं [1]व्रतफलं मम तेजः समन्वितम् । भुङ्क्ष्व मद्वरतः पुत्रो भविष्यति मदंशतः ॥६७॥
पतिर्गुरुश्च देवानां महतां ज्ञानिनां वरः । पुत्रस्ते भविता साध्वि मद्वरेण बृहस्पतिः ॥६८॥
मद्वरेण भवेद्यो हि स च मद्वरपुत्रकः । त्वद्गर्भे मम पुत्रोऽयं चिरजीवी भविष्यति ॥६९॥
वरजो वीर्यजश्चैव क्षेत्रजः पालकस्तथा । विद्यामन्त्रसुतौ चैव गृहीतः सप्तमः सुतः ॥७०॥
इत्युक्त्वा राधिकानाथः स्वलोकं च जगाम सः । श्रीकृष्णवरपुत्रोऽयं ज्ञानी सुरगुरुः स्वयम् ॥७१॥
मृत्युंजयं महाज्ञानं शिवाय प्रददौ पुरा । दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपश्चक्रे हिमालये ॥७२॥

पहले समय में अंगिरा की पत्नी कर्म दोषवश मृतवत्सा थी (उसके बच्चे छोटी अवस्था में मर जाते थे)। उसने परमात्मा श्रीकृष्ण का व्रत किया ॥६२-६३॥ भगवान् सनत्कुमार ने एक वर्ष तक उससे पुंसवन नामक व्रत सविधि सम्पन्न कराया, जिससे उस समय दयामय एवं परमात्मा श्रीकृष्ण ने, जो कृपानिधि, स्वेच्छामय, परब्रह्म एवं भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले हैं, गोलोक से आकर उस लक्ष्मीमूर्ति सुव्रता से कहा, जो विनय-विनम्र, आँखों में आँसू भरे स्तुति कर रही थी ॥६४-६६॥

श्रीकृष्ण बोले—हे पुत्रि ! इस व्रत-फल को ग्रहण करो, जो मेरे तेज से युक्त है। इसका भक्षण कर लो, मेरे वरदान द्वारा मेरे अंश से पुत्र उत्पन्न होगा। जो देवों का पति और गुरु तथा बड़े-बड़े ज्ञानियों में श्रेष्ठ होगा। हे साध्वि ! मेरे वरदान द्वारा तुम्हारे बृहस्पति पुत्र उत्पन्न होगा ॥६७-६८॥ मेरे वरदान द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मेरा वरपुत्र कहलायेगा। अतः तुम्हारे गर्भ में जो मेरा पुत्र होगा, वह चिरजीवी होगा ॥६९॥ वरदान से उत्पन्न; वीर्य से उत्पन्न, क्षेत्र से उत्पन्न पालक, विद्या एवं मंत्र जन्य दो पुत्र और सातवाँ यह बृहस्पति पुत्र है ॥७०॥ इतना कहकर राधिका-नाथ भगवान् श्रीकृष्ण अपने लोक चले गये। अतः भगवान् श्रीकृष्ण का यह वर (दान जन्य) पुत्र है, जो ज्ञानीश्वर, और स्वयं गुरु है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मृत्यु जीतने वाला महाज्ञान पहले शिव जी को दिया था। उन्होंने हिमालय पर तीन लाख दिव्य वर्ष तक तप किया, जिससे भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना योग, सम्पूर्ण ज्ञान, अपने समान तेज, अपनी शक्ति विष्णुमाया, और अपना अंश वृष वाहन रूप में दिया तथा अपना शूल, अपना कवच, अपना द्वादशाक्षर मंत्र भी

---

१ क. ०व्रतानशनक्षीणां ता०। २ क. यज्ञफ०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्वयोगं ज्ञानमखिलं तेजः स्वात्मसमं परम्। स्वशक्तिं विष्णुमायां च स्वांशं वै वाहनं वृषम् ॥७३॥
स्वशूलं च स्वकवचं स्वमन्त्रं द्वादशाक्षरम्। कृपामयः स्तुतस्तेन श्रीकृष्णश्च परात्परः ॥७४॥
शिवलोके शिवा सा च विष्णुमाया शिवप्रिया। शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता ॥७५॥
तेजःसु सर्वदेवानां साऽऽविर्भूता सनातनी। जघान दैत्यनिकरं देवेभ्यः प्रददौ पदम् ॥७६॥
कल्पान्ते दक्षकन्या च सा मूलप्रकृतिः सती। पितृयज्ञे तनुं त्यक्त्वा योगाद्वै सिद्धयोगिनी ॥७७॥
बभूव शैलकन्या सा साध्वी वै भर्तृनिन्दया। कालेन कृष्णतपसा शंकरं प्राप शंकरी ॥७८॥
श्रीकृष्णो हि गुरुः शंभोः परमात्मा परात्परः। कृष्णस्य वरपुत्रोऽयं स्वयमेव बृहस्पतिः ॥७९॥
अतो हेतोः सुरगुरुर्गुरुपुत्रः शिवस्य च। इत्येवं कथितं सर्वमतिगुह्यं पुरातनम् ॥८०॥
इति प्रधानसंबन्धः श्रुतश्च कथितो मया। पारम्परिकमन्यं च कथयामि निशामय ॥८१॥
दुर्वासा गरुडश्चैव शंकरांशः प्रतापवान्। शिष्यौ चाङ्गिरसस्तौ द्वौ गुरुपुत्रोऽथवा ततः ॥८२॥
प्राणाधिकायां सत्यां च मृतायां दक्षशापतः। स्वज्ञानं स्वं च भगवान्विसस्मार स्वमोहतः ॥८३॥
स्मरणं कारयामास कृष्णेन प्रेरितोऽङ्गिराः। अतो हेतोर्गुरुश्चैवं[1] मत्सुतः स्याच्छिवस्य सः ॥८४॥
शीघ्रं गच्छतु कैलासं स्वयमेव बृहस्पतिः। त्वं गच्छ तत्र संनद्धः सदेवो नर्मदातटम् ॥८५॥

प्रदान किया। अनन्तर शिव ने कृपामय एवं परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की। शिवलोक (कैलास) में विष्णु की माया शिवजी की प्रिया शिवा होकर रहने लगी। वह नारायण की सनातनी शक्ति है। उस सनातनी ने समस्त देवों के तेज से प्रकट होकर समस्त दैत्य-वृन्दों का संहार किया और देवों को उनके अपने-अपने पद पर प्रतिष्ठित किया। वही मूल प्रकृति कल्पान्त में दक्ष की कन्या सती होकर अवतीर्ण हुई, जिसने पिता के यज्ञ में पति की निन्दावश योग द्वारा अपना शरीर त्याग कर हिमालय की कन्या होकर जन्म ग्रहण किया। वही पतिव्रता शंकरी अधिक काल तक भगवान् कृष्ण का तप करके शंकर जी को प्राप्त हुई है। अतः परात्पर एवं परमात्मा श्रीकृष्ण शंकर जी के गुरु हैं। बृहस्पति स्वयमेव भगवान् श्रीकृष्ण के वरदत्त पुत्र हैं, इसी कारण देवगुरु (बृहस्पति) शिवजी के गुरुपुत्र हैं। इस प्रकार मैंने अति गुह्य एवं प्राचीन कथा तथा प्रधान सम्बन्ध जो सुना था, तुम्हें सुना दिया। परम्परा प्राप्त अन्य कथा भी सुना रहा हूँ, सुनो ॥७१-८१॥ दुर्वासा और गरुड़ ये दोनों प्रतापी शंकर जी के अंश हैं और अंगिरा के शिष्य हैं। इस प्रकार भी बृहस्पति शिवजी के गुरुपुत्र हैं तथा दक्ष के शापवश प्राणप्रिया सती के मर जाने पर भगवान शिव मोहवश अपना ज्ञान और स्वयं अपने को भूल गये थे, भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेरित होकर अंगिरा ने उन्हें पुनः उसका स्मरण कराया था। इसीलिए मेरे पुत्र अंगिरा शिवजी के गुरु हैं, अतः स्वयं बृहस्पति केवल कैलास जायें। और तुम देवों के साथ तैयार होकर नर्मदा तट पर चलो। हे नारद!

---

१ क. ०रुरिव शिवस्य मत्सुतस्य च।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च नारद। गुरुर्ययौ च कैलासं मन्द्रेद्रो नर्मदातटम् ॥८६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० बृहस्पतेः कैलासगमनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग। निपीतं च सुधाख्यानं त्वन्मुखेन्दुविनिःसृतम् ॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि किमुवाच बृहस्पतिः। शिवं च गत्वा कैलासं दातारं सर्वसंपदाम् ॥२॥
जगत्कर्ता विधाता च किंवा तं प्रत्युवाच सः। एतत्सर्वं समालोच्य वद वेदविदां वर ॥३॥

नारायण उवाच

शीघ्रं गत्वा च कैलासं भ्रष्टश्रीः शंकरं गुरुः। प्रणम्य तस्थौ पुरतो [1]लज्जामलिनविग्रहः ॥४॥
दृष्ट्वा गुरुसुतं शंभुरुदतिष्ठत्कुशासनात्। आलिङ्गनं ददौ तस्मै शीघ्रं साङ्गलिकाशिषः ॥५॥
स्वासने वासयित्वा वै पप्रच्छ कुशलं वचः। उवाच मधुरं वाक्यं भीतं तं लज्जितं शिवः ॥६॥

जगत् के विधाता ब्रह्मा इतना कहकर चुप हो गये। अनन्तर गुरु कैलास गये और महेन्द्र नर्मदा तट पर पहुँचे ॥८२-८६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक दुर्गोपाख्यान में बृहस्पति का कैलास-गमन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

अध्याय ६०

तारा के उद्धार का उपाय-कथन

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! आप वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान् हैं, आपके मुखचन्द्र से निकले हुए आख्यान रूप अमृत का मैंने यथेच्छ पान किया ॥१॥ सम्प्रति मैं यही सुनना चाहता हूँ कि बृहस्पति ने कैलास जाकर समस्त सम्पत्ति के प्रदाता शिव जी से क्या कहा ॥२॥ और जगन्नियन्ता एवं रचयिता शिव जी ने उन्हें क्या उत्तर दिया। हे वेदविदों में श्रेष्ठ! यह सब बातें भलीभाँति विचार कर मुझे बताने की कृपा करें ॥३॥

नारायण बोले—श्रीहत गुरु बृहस्पति ने शीघ्र कैलास जाकर शंकर को प्रणाम किया और लज्जा से कन्धा झुकाये उन्हीं के सामने बैठ गये ॥४॥ अनन्तर शिव ने गुरुपुत्र बृहस्पति को सामने देख कर तुरन्त कुशासन से उठ कर उनका आलिंगन किया और मांगलिक शुभाशिष प्रदान किया ॥५॥ शिव जी ने उन्हें अपने आसन पर बैठा कर जो भयभीत और लज्जित हो रहे थे, मधुर शब्दों में उनसे कुशल पूछा ॥६॥

---

१ ख. ०ज्ज.वनतकन्धरः।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

षष्टितमोऽध्यायः

शंकर उवाच

कथमेवंविधस्त्वं च दुःखी मलिनविग्रहः। साश्रुनेत्रो लज्जितश्च भ्रातस्तत्कारणं वद ॥७॥
किंवा तपस्या हीना ते संध्या हीनाऽथवा मुने। किंवा श्रीकृष्णसेवा सा विहीना दैवदोषतः ॥८॥
किंवा गुरौ भक्तिहीनोऽभीष्टदेवेऽथवा हरौ। किंवा न रक्षितुं शक्तः प्रपन्नं शरणागतम् ॥९॥
किंवाऽतिथिस्ते विमुखः किंवा पोष्या बुभुक्षिताः। किंवा स्वतन्त्रा स्त्री वा ते किंवा पुत्रोऽवचस्करः ॥१०॥
सुशासितो न शिष्यो वा किं भृत्याश्चोत्तरप्रदाः। किंवा ते विमुखा लक्ष्मीः किंवा रुष्टो गुरुस्तव ॥११॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च शश्वत्संतुष्टमानसः। गुरुस्तव वसिष्ठश्च श्रेष्ठः श्रेष्ठः सतामहो ॥१२॥
किंवा रुष्टोऽभीष्टदेवः किंवा रुष्टाश्च वाडवाः। किंवा रुष्टा [1]वैष्णवाश्च किंवा ते प्रबलो रिपुः ॥१३॥
किंवा ते बन्धुविच्छेदो विग्रहो बलिना सह। किंवा पदं परग्रस्तं किंवा बन्धुधनं च वा ॥१४॥
केन ते वा कृता निन्दा खलैर्वा पापिभिर्मुने। केन वा त्वं परित्यक्तो बान्धवेन प्रियेण वा ॥१५॥
बन्धुस्त्यक्तस्त्वया किंवा वैराग्येण क्रुधाऽथवा। किंवा तीर्थे नहि स्नातं न दत्तं पुण्यवासरे ॥१६॥
गुरुनिन्दा बन्धुनिन्दा खलवक्त्राच्छ्रुताऽथवा। गुरुनिन्दा हि साधूनां मरणादतिरिच्यते ॥१७॥
असद्वंशप्रजातानां खलानां निन्दनं तथा। दौःशील्यमेवमसतां शश्वन्नारकिणामिह ॥१८॥

श्रीशंकर बोले—हे भ्रातः! इस भाँति तुम दुःखी और मलिन शरीर आँखों में आँसू भरे तथा लज्जित क्यों हो रहे हो, उसका कारण कहो। हे मुने! क्या तुम्हारी तपस्या नहीं हो पायी या सन्ध्यारहित हो गये? अथवा दैवदोषवश भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा नहीं कर पाये? या अभीष्ट देव या गुरु की भक्ति से विहीन हो गए या किसी शरण-प्राप्त की रक्षा नहीं कर पाये?॥७-९॥ या तुम्हारे यहाँ से अतिथि निराश होकर चला तो नहीं गया? या तुम्हारे पोष्य वर्ग भूखे तो नहीं हैं? क्या तुम्हारी स्त्री स्वतन्त्र हो गयी? या पुत्र तुम्हारा कहना नहीं मानता?॥१०॥ या शिष्य सुशासित नहीं है? सेवक वर्ग ने कहीं उत्तर तो नहीं दे दिए हैं? क्या लक्ष्मी विमुख होकर चली गयी? क्या गुरु तुम पर रुष्ट हो गए?॥११॥ हे निरन्तर सन्तुष्ट रहने वाले! तुम गौरवपूर्ण और श्रेष्ठ हो, अहो तुम्हारे गुरु वशिष्ठ जी सज्जनों में अति श्रेष्ठ और बड़े हैं॥१२॥ क्या अभीष्ट देव रुष्ट हो गए हैं या ब्राह्मणवर्ग रुष्ट है? या वैष्णव लोग रुष्ट हो गए हैं? या तुम्हारा शत्रु प्रबल हो गया है? या बन्धु-वियोग हो गया है? या बलवान् के साथ युद्धारम्भ हो गया है? या तुम्हारा पद या बन्धुओं का धन दूसरे के अधीन हो गया है?॥१३-१४॥ हे मुने! अथवा किसी पापी दुष्ट ने तुम्हारी निन्दा की है? या प्रिय बन्धु ने तुम्हारा त्याग कर दिया है? या तुम्हीं ने वैराग्य अथवा क्रोधवश बन्धु-त्याग कर दिया है या तीर्थ में स्नान नहीं किया अथवा पुण्य अवसर पर दान नहीं दिया?॥१५-१६॥ या दुष्टों के मुख से गुरु या बन्धुओं की निन्दा तो नहीं सुनी? क्योंकि गुरुनिन्दा साधु स्वभाव वाले को मरण से भी अधिक दुःखप्रद होती है॥१७॥ असत्कुल में उत्पन्न दुष्ट स्वभाव वाले प्राणियों का, जो निरन्तर नरक-सेवन करते हैं, निन्दा करना स्वभाव ही होता है॥१८॥ भारत में पुण्यात्मा सन्त लोग दूसरे की प्रशंसा ही करते हैं, इसीलिए

---

१ क बान्धवा०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

परप्रशंसकाः सन्तः पुण्यवन्तो हि भारते। शश्वन्मङ्गलयुक्ताश्च राजन्तेऽमलमानसाः ॥१९॥
पुत्रे यशसि तोये च समृद्धे च पराक्रमे। ऐश्वर्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिधनेषु च ॥२०॥
वचनेषु च बुद्धौ च स्वभावे च चरित्रतः। आचारे व्यवहारे च ज्ञायते हृदयं नृणाम् ॥२१॥
यादृग्येषां च हृदयं तादृक्तेषां च मङ्गलम्। यादृग्येषां पूर्वपुण्यं तादृक्तेषां च मानसम् ॥२२॥
इत्युक्त्वा च महादेवो विरराम स्वसंसदि। तमुवाच महावक्ता स्वयमेव बृहस्पतिः ॥२३॥

बृहस्पतिरुवाच

अकथ्यमेव वृत्तान्तं कथयामि किमीश्वर। लोकाः कर्मवशा नित्यं नानाजन्मसु यत्कृतम् ॥२४॥
स्वकर्मणां फलं भुङ्क्ते जन्तुर्जन्मनि जन्मनि। नहि नष्टं च तत्कर्म विना भोगाच्च भारते ॥२५॥
सुखं दुःखं भयं शोको नराणां यत्कृतं प्रभो। केचिद्वदन्ति हि भवेत्स्वकृतेन च कर्मणा ॥२६॥
केचिद्वदन्ति दैवेन स्वभावेनेति केचन। त्रिविधा गतयो ह्यस्य वेदवेदाङ्गपारग ॥२७॥
स्वयं च कर्मजनकः कर्म वै दैवकारणम्। स्वभावो जायते नृणां स्वात्मनः पूर्वकर्मणः ॥२८॥
स्वकर्मणा च सर्वेषां जन्तूनां प्रतिजन्मनि। सुखं दुःखं भयं शोकः स्वात्मनश्च प्रजायते ॥२९॥
स्वकर्मफलभोक्ता च जीवो हि सगुणः सदा। आत्मा भोजयिता साक्षी निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥३०॥
स एवाऽऽत्मा सर्वसेव्यः सर्वेषां च फलप्रदः। स वै सृजति दैवं च स्वभावं कर्म चैव हि ॥३१॥

निरन्तर मंगल युक्त होकर सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं ॥१९॥ क्योंकि पुत्र, यश, जल, धन, पराक्रम, ऐश्वर्य, प्रताप, प्रजा, भूमि, धन, वचन, बुद्धि, स्वभाव, चरित्र, आचार और व्यवहार में मनुष्यों का हृदय स्वयं प्रवृत्त होता है ॥२०-२१॥ इसलिए जिन लोगों के हृदय में जितनी शुद्धता रहती है, उतना ही उन्हें मंगल प्राप्त होता है और पूर्व का (किया हुआ) जिनका जैसा पुण्य रहता है वैसा उनका मन होता है ॥२२॥ इस प्रकार अपनी सभा में कह कर महादेव चुप हो गये। अनन्तर महावक्ता बृहस्पति जी स्वयं कहने लगे ॥२३॥

बृहस्पति बोले—हे ईश्वर! यद्यपि मेरा समाचार कहने योग्य नहीं है, तथापि कहूँगा ही। कर्म के अधीन प्राणी अनेक जन्मों में जो कुछ कर्म करता है, अपने कर्मों के फल उसे प्रत्येक जन्म में भोगने पड़ते हैं। क्योंकि भारत में बिना उपभोग किए कर्म नष्ट नहीं होता है ॥२४-२५॥ हे प्रभो! कुछ लोगों का कहना है कि भारत में मनुष्यों के सुख, दुःख, भय एवं शोक अपने किए कर्म वश होते हैं, कोई कहते हैं कि दैव वश और कुछ लोग कहते हैं कि स्वभावतः होते हैं॥ हे वेद-वेदांग के पारगामी (विद्वान्)! इस प्रकार इसकी तीन प्रकार की गतियाँ बतायी गयी हैं ॥२६-२७॥ प्राणी जो स्वयं कर्म करता है, वही कर्म दैव का कारण होता है और मनुष्यों का स्वभाव उसके पूर्व जन्म के कर्मानुसार ही होता है ॥२८॥ इस प्रकार सभी प्राणियों को प्रत्येक जन्म में उसके पूर्वजन्मकृत कर्मानुसार ही सुख, दुःख, भय एवं शोक होता है ॥२९॥ अपना कर्म फल भोगने के लिए जीव सदा सगुण रहता है, और आत्मा भोग कराने वाला, साक्षी, निर्गुण और प्रकृति से परे है ॥३०॥ इसीलिए वह आत्मा सभी के सेवन करने योग्य है। वही सब को फल प्रदान करता है, वही दैव (भाग्य), स्वभाव और कर्म का

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कर्मणा च नृणां लज्जा प्रशंसा च प्रफुल्लता। लज्जाबीजं च वृत्तान्तं तथाऽपि कथयामि ते ॥३२॥
इत्युक्त्वा सर्ववृत्तान्तमवोचत्तं बृहस्पतिः। श्रुत्वा बभूव नम्रास्यो गौरीशो लज्जया तदा ॥३३॥
जपमाला कराद्भ्रष्टा कोपाविष्टस्य शूलिनः। बभूव सद्यः कम्पश्च रक्तपङ्कजलोचने ॥३४॥
संहर्तुरीशो रुद्रस्य विष्णोः पातुः सखा शिवः। स्रष्टुः स्तुत्यश्च मान्यश्च स्वात्मनः परमा गतिः ॥३५॥
निर्गुणस्य च कृष्णस्य प्रकृतीशस्य नारद। कोपात्प्रवक्तुमारेभे शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥३६॥

शिव उवाच

शिवमस्तु च साधूनां वैष्णवानां सतामिह। अवैष्णवानामसतामशिवं च पदे पदे ॥३७॥
ददाति वैष्णवेभ्यश्च यो दुःखं सुस्थितो जनः। श्रीकृष्णस्तस्य संहर्ता विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥३८॥
अवैष्णवानां हृदयं नहि शुद्धं सदामलम्। श्रीकृष्णमन्त्रस्मरणं मनोनैर्मल्यकारणम् ॥३९॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः विष्णुमन्त्रोपासनया क्षीयते कर्म तन्नृणाम् ॥४०॥
अहो श्रीकृष्णदासानां कः स्वभावः सुनिर्मलः। हृतभार्यं मूर्च्छितश्च न शशाप रिपुं गुरुः ॥४१॥
गुरुर्यस्य वरिष्ठश्च क्रोधहीनश्च धार्मिकः। शतपुत्रघ्नमप्येनं न शशाप रिपुं मुनिः ॥४२॥
निःश्वासाद्वै सुरगुरोर्भ्रातुर्मम बृहस्पतेः। भस्मीभूतो निमेषेण शतचन्द्रो भवेद्ध्रुवम् ॥४३॥

सर्जन करता है ॥३१॥ इसलिए मनुष्यों को कर्मानुसार ही लज्जा, प्रशंसा और प्रफुल्लता (प्रसन्नता) प्राप्त होती है। हमारा समाचार लज्जाजनक है, किन्तु मैं आप से कह ही रहा हूँ ॥३२॥ इतना कह कर बृहस्पति ने उन्हें अपना वृत्तान्त सुना दिया, जिसे सुन कर गौरी के प्राणेश्वर शिव ने उसी समय लज्जित होकर नीचे मुख कर लिया ॥३३॥ अनन्तर क्रुद्ध होने पर शिव के हाथ से जपमाला गिर पड़ी और नेत्र रक्त कमल की भाँति लाल हो गये और वे स्वयं काँपने लगे ॥३४॥ हे नारद! शिव जी संहर्त्ता रुद्र के ईश, पालन करने वाले विष्णु के सखा, सर्जन करने वाले (ब्रह्मा) के स्तुत्य और मान्य तथा स्वात्मभूत, निर्गुण एवं प्रकृति के ईश श्रीकृष्ण की परम गति हैं। कोप के नाते शिव जी का कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गया। अनन्तर उन्होंने कहना आरम्भ किया ॥३५-३६॥

शिव बोले—साधुओं, वैष्णवों एवं सज्जनों का कल्याण हो और अवैष्णव असज्जनों का पग-पग पर अशुभ हो ॥३७॥ जो प्राणी अच्छी स्थिति में रह कर वैष्णवों को दुःख देता है, उसका संहार भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं करते हैं और पद-पद पर उसका अशुभ होता है ॥३८॥ जो वैष्णव नहीं है उसका हृदय शुद्ध नहीं रहता है, सदा मल से भरा रहता है; क्योंकि मन के निर्मल होने में भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र का स्मरण करना ही कारण कहा गया है ॥३९॥ भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना करने से मनुष्यों के हृदय की ग्रन्थि नष्ट हो जाती है, समस्त सन्देह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और कर्मों का क्षय हो जाता है ॥४०॥ अहो! भगवान् श्रीकृष्ण के दासों का स्वभाव कैसा निर्मल होता है कि स्त्री के अपहरण हो जाने पर गुरु (बृहस्पति) मूर्च्छित हो गए, किन्तु उस शत्रु को उन्होंने शाप नहीं दिया ॥४१॥ जिसके गुरु श्रेष्ठ, क्रोधरहित और धार्मिक हैं उस मुनि ने सैकड़ों पुत्रों के हनन करने वाले के समान होते हुए भी उस शत्रु को शाप नहीं दिया ॥४२॥ यद्यपि हमारे भाई देव गुरु बृहस्पति के निःश्वास से निमेष (पलक) मात्र में सैकड़ों चन्द्रमा निश्चित भस्म हो सकते हैं, तथापि धर्म-भंग होने के भय से इन्होंने उसे शाप नहीं दिया।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तथाऽपि तं नो शशाप धर्मभङ्गभयेन च। तपस्या हीयते शप्तुः कोपाविष्टस्य नित्यशः ॥४४॥
अहो ह्यत्रेरसत्पुत्रः परस्त्रीलुब्धकः शठः। तपस्विनो वैष्णवस्य ब्रह्मपुत्रस्य धीमतः ॥४५॥
धर्मिष्ठा ब्रह्मणः पुत्रा वैष्णवा ब्राह्मणास्तथा। केचिद्देवा द्विजा दैत्याः पौत्राश्च त्रिविधा मताः ॥४६॥
ये सात्त्विका ब्राह्मणास्ते देवा राजसिकास्तथा। दैत्यास्तामसिका रौद्रा बलिष्ठाश्चोद्धताः सदा ॥४७॥
स्वधर्मनिरता विप्रा नारायणपरायणाः। शैवाः शाक्ताश्च ते देवा दैत्याः पूजाविवर्जिताः ॥४८॥
मुमुक्षवो विष्णुभक्ता ब्राह्मणा दास्यलिप्सवः। ऐश्वर्यलिप्सवो देवाश्चासुरास्तामसास्तथा ॥४९॥
ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च कृष्णस्यार्चनमीप्सितम्। निष्कामानां निर्गुणस्य परस्य प्रकृतेरपि ॥५०॥
ये ब्राह्मणा वैष्णवाश्च स्वतन्त्राः परमं पदम्। यान्त्यन्योपासकाश्चान्यैः सार्धं च प्राकृते लये ॥५१॥
वर्णानां ब्राह्मणाः श्रेष्ठाः साधवो वैष्णवा यदि। विष्णुमन्त्रविहीनेभ्यो द्विजेभ्यः श्वपचो वरः ॥५२॥
परिपक्वा विपक्वा वा वैष्णवाः साधवश्च ते। सततं पाति तांश्चैव विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥५३॥
यथा वह्नौ शुष्कतृणं भस्मीभूतं भवेत्सदा। तथा पापं वैष्णवेषु तेजस्विषु हुताशनात् ॥५४॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रवेक्ष्यति। तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५५॥
पुंसां शतं पितॄणां च शतं मातामहस्य च। स्वसोदरांश्च जननीमुद्धरन्त्येव वैष्णवाः ॥५६॥

क्योंकि क्रुद्ध होकर जो शाप देते हैं उनकी तपस्या नित्यशः क्षीण होती चली जाती है ॥४३-४४॥ अहो! तपस्वी, वैष्णव, ब्रह्मा के पुत्र एवं धीमान् महर्षि अत्रि के असज्जन, परस्त्री-लोभी और शठ पुत्र-हो आश्चर्य है ॥४५॥ ब्रह्मा के पुत्र धार्मिक, वैष्णव एवं ब्राह्मण हुए हैं तो कुछ देवता, कुछ ब्राह्मण एवं दैत्य तीन प्रकार के उनके पौत्र हैं ॥४६॥ उनमें सात्त्विक जो हैं वे ब्राह्मण हैं, देव लोग राजसिक (रजोगुण प्रधान) और दैत्य गण तामसी हुए, जो सदा भीषण, बलवान् तथा उद्धत होते हैं ॥४७॥ ब्राह्मणगण अपने धर्म में लगे हुए नारायण का सतत चिन्तन करते हैं, देवगण शैव और शाक्त होते हैं और दैत्यगण पूजाहीन होते हैं ॥४८॥ विष्णु के भक्त वैष्णव गण मुमुक्षु (मोक्ष के इच्छुक) होते हैं, ब्राह्मण (भगवान के) दास होने की इच्छा रखते हैं; देवगण ऐश्वर्य के इच्छुक और असुरगण तामसी होते हैं ॥४९॥ निष्काम ब्राह्मणों का अपना धर्म है—भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चा करना जो निर्गुण और प्रकृति से भी परे हैं ॥५०॥ जो ब्राह्मण वैष्णव होते हैं वे स्वतन्त्र होकर परमपद प्राप्त करते हैं और अन्य की उपासना करने वाले भी प्राकृत लय के समय अन्य के साथ परम पद प्राप्त कर लेते हैं ॥५१॥ वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं यदि वे साधु एवं वैष्णव हों। क्योंकि भगवान विष्णु के मन्त्र से रहित ब्राह्मणों से श्वपच (चाण्डाल) कहीं श्रेष्ठ होता है ॥५२॥ वैष्णव एवं साधु ब्राह्मण भक्ति में परिपक्व हों या अपक्व, विष्णु का चक्र सुदर्शन उन सब की रक्षा करता ही है ॥५३॥ जिस प्रकार अग्नि में सूखा तृण सदा भस्म हो जाता है, उसी तरह तेजस्वी वैष्णवों में अग्नि से पाप नष्ट हो जाते हैं ॥५४॥ जिसके कान में गुरु के मुख से निकला हुआ विष्णु-मन्त्र प्रवेश करता है, विद्वद्वृन्द उसे महापवित्र वैष्णव कहते हैं ॥५५॥ वैष्णव लोग पितरों (पूर्वजों) की सौ पीढ़ी, मातामह (नाना) की सौ पीढ़ी तथा अपने सहोदरों और माता का उद्धार करते हैं ॥५६॥ गया में पिण्डदान करने वाले केवल पिण्ड-

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गयायां पिण्डदानेन पिण्डदाः पिण्डभोजिनः। समुद्धरन्ति पुंसां च वैष्णवाश्च शतं शतम् ॥५७॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। यमस्तस्मान्महाभीतो वैनतेयादिवोरगः ॥५८॥
पुनन्त्येव हि तीर्थानि गङ्गादीनि च भारते। कृष्णमन्त्रोपासकाश्च स्पर्शमात्रेण वाक्पते ॥५९॥
पापानि पापिनां तीर्थे यावन्ति प्रभवन्ति च। नश्यन्ति तानि सर्वाणि वैष्णवस्पर्शमात्रतः ॥६०॥
कृष्णमन्त्रोपासकानां रजसा पादपद्मयोः। सद्यो मुक्ताः पातकेभ्यः कृत्स्ना पूता वसुंधरा ॥६१॥
वायुश्च पवनो वह्निः सूर्यः सर्वं पुनाति च। एते पूता वैष्णवानां स्पर्शमात्रेण लीलया ॥६२॥
अहं ब्रह्मा च शेषश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम्। एते हृष्टाश्च वाञ्छन्ति वैष्णवानां समागमम् ॥६३॥
फलं कर्मानुरूपेण सर्वेषां भारते भवेत्। न भवेत्तद्वैष्णवे च [1]स्विन्नधान्ये यथाऽङ्कुरम् ॥६४॥
हन्ति तेषां कर्म पूर्वं भक्तानां भक्तवत्सलः। कृपया स्वपदं तेभ्यो ददात्येव कृपानिधिः ॥६५॥
तेजस्विनां च प्रवरं वैष्णवं भृगुनन्दनम्। स चन्द्रो दुर्बलो भीतः शुक्रं च शरणं ययौ ॥६६॥
सुदर्शनो बलिष्ठं च शुक्रं जेतुं न शक्तिमान्। तथाऽपि चोद्धरिष्यामि तारां मन्त्रेण यद्गुरोः ॥६७॥
भज सत्यं परं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्। सुप्रसन्ने भगवति पत्नीं प्राप्स्यसि लीलया ॥६८॥

भोजियों का ही उद्धार करते हैं किन्तु वैष्णवगण सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार करते हैं॥५७॥ केवल मन्त्रग्रहण मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, गरुड़ से सर्प की भाँति उससे यम भी महाभयभीत होता है॥५८॥ हे वाक्पते! भारत में गंगादि तीर्थ नदियाँ स्नान करने पर पुनीत करती हैं, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के मंत्र की उपासना करने वाले (वैष्णव) केवल स्पर्शमात्र से पवित्र करते हैं॥५९॥ तीर्थ में पापियों के जितने पाप उत्पन्न होते हैं, वे सभी पाप वैष्णव के स्पर्शमात्र से नष्ट हो जाते हैं॥६०॥ भगवान् कृष्ण के मन्त्र की उपासना करने वालों के चरण-कमल के रज से यह समस्त पृथ्वी पातकों से तुरन्त मुक्त होकर पवित्र हो जाती है॥६१॥ यद्यपि वायु, पवन, अग्नि और सूर्य सभी को पुनीत करते हैं किन्तु ये सब वैष्णवों के लीलास्पर्श मात्र से पवित्र हो जाते हैं॥६२॥ मैं, ब्रह्मा, शेष, और धर्म जो कर्मों के साक्षी हैं, ये सभी अति हर्षित होकर वैष्णवों के समागम की नित्य अभिलाषा रखते हैं॥६३॥ यद्यपि भारत में सभी को कर्मानुरूप ही फल प्राप्त होता है, किन्तु सिद्ध (पकाये) धान्य में अंकुर न होने की भाँति वैष्णवों को वैसा कर्मफल प्राप्त नहीं होता है॥६४॥ क्योंकि भक्तवत्सल एवं कृपानिधान भगवान् सर्वप्रथम भक्तों के पूर्व जन्म के कर्मों का नाश कर देते हैं, पश्चात् कृपया अपना पद प्रदान करते हैं॥६५॥ वह दुर्बल चन्द्रमा भयभीत होकर तेजस्विजनों में श्रेष्ठ एवं वैष्णव भृगुनन्दन शुक्र की शरण में गया है॥६६॥ यद्यपि (भगवान् का) सुदर्शन चक्र बली शुक्र को जीतने में सशक्त नहीं है, तथापि अपने गुरु (भगवान् कृष्ण) के मंत्र द्वारा मैं तारा का उद्धार करूँगा॥६७॥ भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करो, जो सत्यमूर्ति, परब्रह्म एवं ईश्वर हैं। भगवान् के सुप्रसन्न होने पर तुम्हें पत्नी अनायास प्राप्त हो जायगी॥६८॥ हे भ्रातः! मैं तुम्हें उन्हीं का मन्त्र दे रहा हूँ, जो परम कल्पतरु-रूप है।

---

१ ख. सिद्धा०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मन्त्रं तस्य प्रदास्यामि भ्रातः कल्पतरुं परम् । कोटिजन्माघनिघ्नं च सर्वमङ्गलकारणम् ॥६९॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं नश्वरं जलबिन्दुवत् । शरणं याहि गोविन्दं परमात्मानमीश्वरम् ॥७०॥
तावद्भवेच्छा भोगेच्छा स्त्रीसुखेच्छा नृणामिह । यावद्गुरुमुखाम्भोजान्न प्राप्नोति मनुं हरेः ॥७१॥
संप्राप्य दुर्लभं मन्त्रं वितृष्णो हि भवेन्नरः । इन्द्रत्वममरत्वं च नहि वाञ्छन्ति वैष्णवाः ॥७२॥
नहि वाञ्छन्ति मोक्षं च दास्यभक्तिं विना हरेः । भक्तिनिर्मथनं भक्तो मोक्षं नो वाञ्छति प्रभोः ॥७३॥
ज्ञानं मृत्युंजयत्वं च सर्वसिद्धिं तदीप्सितम् । वाक्सिद्धिं चैव धातृत्वं भक्तानां नहि वाञ्छितम् ॥७४॥
भक्तिं विहाय कृष्णस्य विषयं यो हि वाञ्छति । विषमत्ति सुधां त्यक्त्वा वञ्चितो विष्णुमायया ॥७५॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः । कपिलश्च कुमारश्च नरनारायणावृषी ॥७६॥
स्वायंभुवो मनुश्चैव प्रह्लादश्च पराशरः । भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराः ॥७७॥
बलिश्च बालखिल्याश्च वरुणश्च हुताशनः । वायुः सूर्यश्च गरुडो दक्षो गणपतिः स्वयम् ॥७८॥
एते परा भक्तवराः कृष्णस्य परमात्मनः । ये च तस्य कलाः श्रेष्ठास्ते तद्भक्तिपरायणाः ॥७९॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ कल्पतरुं मनुम् । लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं मुने ॥८०॥
परं पूजाविधानं च स्तोत्रं च कवचं तथा । तत्पुरश्चरणं ध्यानं शुद्धे मन्दाकिनीतटे ॥८१॥
गुरुः संप्राप्य तं मन्त्रं शंकराच्च जगद्गुरोः । वितृष्णो हि भवाब्धौ च बभूव तमुवाच ह ॥८२॥

करोड़ों जन्म का पाप नष्ट करता है तथा समस्त मंगलों का कारण है ॥६९॥ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी जल-विम्ब के समान नश्वर हैं, अतः गोविन्द की शरण में जाओ, जो परमात्मा एवं ईश्वर हैं। मनुष्यों को तभी तक संसारी इच्छा,—भोग की इच्छा और स्त्री-सुख की इच्छा होती है जब तक गुरु के मुख-कमल से भगवान् का मंत्र प्राप्त नहीं कर लेता है। क्योंकि उस दुर्लभ मन्त्र के प्राप्त होने पर मनुष्य को कोई इच्छा ही नहीं होती है ॥७०-७१॥ इसलिए वैष्णव लोग भगवान् की दास्य-भक्ति के बिना इन्द्रत्व, अमरत्व नहीं चाहते हैं और मोक्ष भी नहीं चाहते हैं ॥७२॥ भक्त भगवद्भक्ति का विनाशक मोक्ष भी नहीं चाहता तथा ज्ञान, मृत्युंजयत्व, अभीष्ट सर्व सिद्धियाँ, वाक्सिद्धि और ब्रह्मा होना भी भक्तों को अभीष्ट नहीं है। क्योंकि भगवान् की भक्ति का त्याग कर जो विषय की अभिलाषा करता है वह (मानों) विष्णु की माया से वंचित होने के नाते सुधा त्याग कर विष भक्षण करता है। ब्रह्मा, विष्णु, धर्म, अनन्त कश्यप, कपिल, कुमार, नर-नारायण ऋषि, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, पराशर, भृगु, शुक्र, दुर्वासा, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, बलि, बालखिल्य, वरुण, अग्नि, वायु, सूर्य, गरुड़, दक्ष और गणपति, ये परमात्मा श्रीकृष्ण के श्रेष्ठ भक्त हैं ॥७३-७८॥ एवं जो लोग उनकी श्रेष्ठ कला (अंश) रूप हैं, वे उनकी भक्ति में निरत रहते हैं। हे मुने! इतना कहकर शंकर जी ने भगवान् का कल्पवृक्ष तुल्य मंत्र 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः,' उत्तम पूजाविधान, स्तोत्र और कवच गुरु-पुत्र को प्रदान किया ॥७९-८०॥ हे मुने! शुद्ध मन्दाकिनी-तट पर जगद्गुरु शिव द्वारा पुरश्चरणपूर्वक ध्यान एवं मंत्र प्राप्त कर बृहस्पति ने संसार-सागर से खिन्नता प्रकट करते हुए शिव से कहा ॥८१-८२॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

बृहस्पतिरुवाच

आज्ञां कुरु जगन्नाथ यामि तप्तुं हरेस्तपः। तारा तिष्ठतु तत्रैव न तया मे प्रयोजनम् ॥८३॥
पश्यामि विषतुल्यं च सर्वं नश्वरमीश्वर। श्रीकृष्णं शरणं यामि सत्यं नित्यं च निर्गुणम् ॥८४॥

महादेव उवाच

परग्रस्तां स्त्रियं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने। संभावितस्य दुश्चर्चा मरणादतिरिच्यते ॥८५॥
पुरो गच्छ महाभाग तमेतं नर्मदातटम्। यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्राहं यामि सत्वरम् ॥८६॥
शिवस्य वचनं श्रुत्वा ययौ सुरगुरुः स्वयम्। आययौ च महाभागः शंकरो नर्मदातटम् ॥८७॥
सगणं शंकरं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम्। प्रणेमुर्देवताः सर्वा मनवो मुनयस्तथा ॥८८॥
ननाम शंभुः शिरसा विष्णुं च कमलोद्भवम्। ददतुस्तौ महेशाय [1]प्रेम्णाऽऽलिङ्गनमासनम् ॥८९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्च बृहस्पतिः। प्रणनाम महादेवं विष्णुं च कमलोद्भवम् ॥९०॥
सूर्यं धर्ममनन्तं च नरं मां च मुनीश्वरान्। स्वगुरुं पितरं भक्त्या चावसत्तत्र संसदि ॥९१॥
संचिन्त्य मनसा युक्तिमूचे तत्र च संसदि। स्वयं विष्णुश्च भगवान्ब्रह्माणं चन्द्रशेखरम् ॥९२॥

बृहस्पति बोले—हे जगन्नाथ! मुझे आज्ञा प्रदान करें, मैं भगवान् का तप करने जा रहा हूँ, और अब तारा से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, अतः वह वहीं रहे ॥८३॥ क्योंकि हे ईश्वर! संसार की सभी वस्तुएँ नश्वर होने के नाते मुझे विष के समान दिखाई दे रही हैं। इसीलिए मैं भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जाना चाहता हूँ, जो सत्य, नित्य और निर्गुण हैं ।८४॥

श्री महादेव बोले—हे मुने! शत्रु के अधीन पड़ी हुई स्त्री को त्याग कर तप करने जाना अच्छा नहीं, क्योंकि सम्भावित दुश्चर्चा (अयश) मरण से अधिक दुःखप्रद होती है ॥८५॥ हे महाभाग! इसलिए तुम आगे चलो, मैं भी नर्मदा-तट पर, जहाँ ब्रह्मा आदि सभी देव हैं, शीघ्र ही चल रहा हूँ ॥८६॥ शिव की बातें सुनकर देव-गुरु बृहस्पति नर्मदा-तट की ओर चल पड़े और महाभाग शंकर भी वहाँ पहुँच गये ॥८७॥ अपने गण समेत शिव को वहाँ आये हुए देख कर, जिनके मुख और नेत्र से प्रसन्नता स्पष्ट प्रतीत हो रही थी, समस्त देवता, मनु और मुनियों ने सादर प्रणाम किया ॥८८॥ शिव ने भी विष्णु और ब्रह्मा को शिर से नमस्कार किया। अनन्तर विष्णु ने शिव से प्रेमालिंगन कर उन्हें आसन प्रदान किया ॥८९॥ उसी बीच वहाँ बृहस्पति भी आ गये। उन्होंने महादेव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, धर्म, अनन्त, नर-नारायण, मुनिवृन्द, अपने गुरु और पिता को भक्तिपूर्वक सादर प्रणाम किया, और वहीं बैठ गये ॥९०-९१॥ अनन्तर वहाँ की सभा में भगवान् विष्णु ने मन से भलीभांति युक्ति सोच कर ब्रह्मा और शिव से स्वयं कहा ॥९२॥

---

१ क. ०म्णा मङ्गलमाशिषम्।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

विष्णुरुवाच

युवां च मुनयश्चैव समुद्रपुलिनं द्रुतम् । शुक्रं[1] कविं च मध्यस्थं प्रस्थापयितुमर्हथ ॥९३॥
विग्रहेणैव विषमं भविष्यति न संशयः । मदाशिषा सुरगुरुस्तारां प्राप्स्यति निश्चितम् ॥९४॥
सुरैः स्तुतश्च संतुष्टः शुक्राचार्यो भविष्यति । सुरैः शुक्रो हि न जितः कृष्णचक्रेण रक्षितः ॥९५॥
युवाभ्यां प्रार्थ्यमानोऽहं युवयोः स्तवनेन च । श्वेतद्वीपादागतोऽस्मि परितुष्टः स्तवेन च ॥९६॥
[2]शुक्राश्रमसमीपं तु सर्वा गच्छन्तु देवताः । रिपुर्बलिष्ठः स्तोत्रेण वशीभूत इति श्रुतिः ॥९७॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथस्तत्रैवान्तरधीयत । स्तुतो ब्रह्मादिभिर्देवैः प्रणतैः परिपूजितः ॥९८॥
गते च जगतां नाथे श्वेतद्वीपं च नारद । चिन्तिताश्च सुराः सर्वे विषण्णमनसस्तथा ॥९९॥
मुनीन्देवांश्च संबोध्य ब्रह्मा वै तत्र संसदि । उवाच नीतिसारं तत्संमतं शंकरस्य सः ॥१००॥

ब्रह्मोवाच

मम शंभोश्च धर्मस्य विष्णोर्वा सर्वसाक्षिणः । अस्माकं च समः स्नेहो दैत्ये देवे च पुत्रकाः ॥१०१॥
दैत्यानां च गुरुं शुक्रं प्रपन्नश्च निशाकरः । न जितश्च सुरैः शुक्रः पूजितो दितिनन्दनैः ॥१०२॥

विष्णु बोले—तुम दोनों और मुनिवृन्द मिलकर समुद्रतट पर शुक्राचार्य के यहाँ किसी को मध्यस्थ बनाकर शीघ्र भेजो। क्योंकि युद्ध करने से विषम परिणाम होगा, इसमें संशय नहीं। और मेरे आशीर्वाद से वृहस्पति तारा को निश्चित प्राप्त करेंगे ॥९३-९४॥ इसलिए देवलोग शुक्राचार्य की स्तुति करके उन्हें सन्तुष्ट करें, क्योंकि कृष्ण-चक्रसुदर्शन द्वारा रक्षित होने के नाते शुक्र को देवलोग भी जीत नहीं सकते हैं ॥९५॥ तुम लोगों की प्रार्थना-स्तुति से प्रसन्न होकर मैं श्वेत द्वीप से यहाँ आया हूँ। अतः शुक्र के आश्रम के पास सभी देवता जायें। क्योंकि श्रुति कहती है कि बलवान् शत्रु को उसकी स्तुति द्वारा वशीभूत करना चाहिए ॥९६-९७॥ इतना कहकर जगत् के नाथ भगवान् विष्णु ब्रह्मादि देवों द्वारा प्रणाम, स्तुति तथा अर्चना करने के उपरान्त उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ॥९८॥ हे नारद! जगदीश्वर भगवान् विष्णु के श्वेतद्वीप चले जाने पर सभी देवता खिन्नमन होकर चिन्ता-कुल हो उठे। उसी बीच सभा में मुनियों और देवों को सम्बोधित करते हुए ब्रह्मा ने कहा, जो नीति का सार और शंकर को पसन्द था ॥९९-१००॥

ब्रह्मा बोले—हे पुत्रवृन्द! मेरा, शिव का, धर्म का एवं सबके साक्षी विष्णु का देवों और दैत्यों में समान स्नेह रहा है ॥१०१॥ और दैत्यों के गुरु शुक्र के यहाँ चन्द्रमा रह रहा है, तथा दैत्यगणों से पूजित होने के नाते शुक्र को देवगण कभी जीत नहीं पाये ॥१०२॥ इसलिए हे देवगण! विष्णु की आज्ञानुसार तुम लोग समुद्रतट पर चलो

१क. ०क्रं कंचिच्च म०। २ ख. ०ममसीपर्णं स०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ताराहेतोरहं यामि शुक्रस्य भवनं सुराः । सर्वे समुद्रपुलिनं यान्तु विष्णोर्निदेशतः ॥१०३॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता चागमच्छुक्रसंनिधिम् । प्रययुर्देवता विप्राः समुद्रपुलिनं मुने ॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० श्रीकृष्णोपदिष्टतारोद्धरणोपाय-
ज्ञानं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

ततः परं किं रहस्यं बभूवासुरदेवयोः । श्रोतुमिच्छामि भगवन्परं कौतूहलं मम ॥१॥

नारायण उवाच

ब्रह्मा जगाम निलयं शुक्रस्य च महात्मनः । नानादैत्यगणाकीर्णं रत्नमण्डपभूषितम् ॥२॥
पञ्चाशत्कोटिभिः शिष्यैः परीतं ब्रह्मवादिभिः । सप्तभिः परिखाभिश्च वेष्टितं दुर्गमेव च ॥३॥
रक्षितं रक्षकगणैर्दैत्यैश्च शतकोटिभिः । पद्मरागैर्विरचितैः प्रावारैः परिशोभितम् ॥४॥
ददर्श जगतां धाता सभायां भृगुनन्दनम् । स्तुतं मुनिगणैर्दैत्यै रत्नसिंहासनस्थितम् ॥५॥

और तारा के लिए मैं अकेला शुक्र के भवन में जा रहा हूँ ॥१०३॥ हे मुने ! इतना कहकर जगत् के धाता (ब्रह्मा) शुक्र के पास गये और देवगण एवं ब्राह्मण-वृन्द ने समुद्र-तट की यात्रा की ॥१०४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत श्री कृष्णोपदिष्ट तारा के उद्धार का उपाय ज्ञान नामक साठवाँ अध्याय समाप्त । ॥६०॥

अध्याय ६१

बृहस्पति को तारा की प्राप्ति तथा बुध की उत्पत्ति

नारद बोले—हे भगवन् ! उसके पश्चात् दैत्यों और देवों में क्या हुआ? यह रहस्य सुनने का मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥१॥

नारायण बोले—ब्रह्मा महात्मा शुक्र के भवन गये जो अनेक भाँति के दैत्यों से आच्छन्न एवं रत्नों के मण्डपों से विभूषित था ॥२॥ पचास करोड़ ब्रह्मवेत्ता शिष्य उनके चारों ओर वर्तमान थे और उनका दुर्ग सात परिखाओं (खाइयों) से घिरा था ॥३॥ सौ करोड़ दैत्य रक्षकगण दुर्ग की रक्षा करते थे और वह दुर्ग पद्मराग मणियों की बनी चहारदीवारों से सुशोभित था ॥४॥ उपरान्त जगत् के विधाता ब्रह्मा ने वहाँ भृग-पुत्र शुक्र को देखा जो दैत्यों तथा मुनिगणों द्वारा स्तुत और रत्नसिंहासन पर सुखासीन थे ॥५॥ परब्रह्म, परमात्मा

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्। कोटिसूर्यप्रभं शश्वज्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥६॥
दृष्ट्वा पौत्रं प्रभायुक्तं विधाता हृष्टमानसः। आत्मानं कृतिनं मेने पुत्रं पौत्रं च नारद ॥७॥
दृष्ट्वा पितामहं शुक्रो धातारं जगतां प्रभुम्। उत्थाय सहसा भीतः प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥८॥
आदाय पूजयामास चोपचारांस्तु षोडश। तुष्टाव परया भक्त्या संभ्रमेण यथागमम् ॥९॥
विद्यामन्त्रप्रदातारं दातारं सर्वसंपदाम्। स्वकर्मणां च फलदं सर्वेषां विश्वतो वरम् ॥१०॥
शुक्रस्य स्तवनेनैव संतुष्टो जगतां पतिः। अवरुह्य [1]रथात्तूर्णमवसत्तत्र संसदि ॥११॥
शुक्रेण शिरसो दत्तरत्नसिंहासने वरे। तेजसा ज्वलिते रम्ये निर्मिते विश्वकर्मणा ॥१२॥
शुक्रः प्रणम्य ब्रह्माणं कुमारं सनकं क्रतुम्। वसिष्ठं च मरीचिं च सनन्दं च सनातनम् ॥१३॥
कपिलं वै पञ्चशिखं वोढुमङ्गिरसं मुने। धर्मं मां च नरं भक्त्या प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥१४॥
प्रत्येकं पूजयामास सादरं च यथोचितम्। सिंहासनेषु रम्येषु वासयामास धार्मिकः ॥१५॥
प्रहृष्टवदना सर्वे प्रणेमुर्दितिनन्दनाः। ऋषिसंघाश्च धातारं तुष्टुवुश्च यथागमम् ॥१६॥
सर्वान्संस्तूय स कविरवोचत्संपुटाञ्जलिः। साश्रुनेत्रः सपुलकः प्रणतो विनयान्वितः ॥१७॥

एवं ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का जप कर रहे थे, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा से पूर्ण तथा ब्रह्मतेज से निरन्तर देदीप्यमान थे ॥६॥ हे नारद! इस प्रकार प्रभायुक्त पौत्र को देखकर ब्रह्मा का मन उस समय हर्षमग्न हो गया। वे अपने को और पुत्र-पौत्र को कृतकृत्य समझने लगे ॥७॥ पश्चात् शुक्र जगत् के विधाता एवं प्रभु ब्रह्मा को देखते ही सहसा उठ खड़े हुए और भयभीत होते हुए अंजली बांधकर उन्हें प्रणाम किया ॥८॥ षोडशोपचार मंगाकर सविधि पूजन किया, तथा परमभक्ति से आगमानुसार उनकी स्तुति आरम्भ की, जो विद्या और मन्त्र के प्रदाता, समस्त सम्पत्ति तथा अपने कर्मों के फल देने वाले एवं विश्व में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥९-१०॥ शुक्र की ऐसी स्तुति से जगत्पति ब्रह्मा सन्तुष्ट होकर शीघ्र रथ से उतर पड़े और उनकी सभा को सम्बोधित किया ॥११॥ शुक्र ने उनके बैठने के लिए शिर झुकाकर वह उत्तम सिंहासन प्रदान किया, जो तेज से प्रज्वलित, रम्य और विश्वकर्मा द्वारा सुनिर्मित था ॥१२॥ हे मुने! शुक्र ने ब्रह्मा को प्रणाम करने के उपरान्त कुमार, सनक, क्रतु, वसिष्ठ, मरीचि, सनन्द, सनातन, कपिल, पञ्चशिख, वोढु, अंगिरा, धर्म, मुझे (नारायण) और नर को भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥१३-१४॥ उस धार्मिक ने सादर यथोचित प्रत्येक की पूजा की और उन्हें रत्नसिंहासनों पर बैठाया ॥१५॥ अनन्तर दितिनन्दन और वहाँ के ऋषिसंघ ने प्रसन्नचित्त होकर शास्त्रानुसार ब्रह्मा को प्रणाम किया ॥१६॥ सब का सादर स्वागत करने के अनन्तर कवि (शुक्र) ने अंजली बाँधकर, सजल नेत्र, पुलकायमान शरीर से विनय-विनम्र होकर कहना आरम्भ किया ॥१७॥

१क. ०र्णमुवास स्वात्मजैः सह।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

शुक्र उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । स्वयं विधाता भगवान्साक्षाद्दृष्टः स्वमन्दिरे ॥१८॥
साक्षाद्दृष्टाश्च तत्पुत्रा भगवन्तः सनातनाः । तुष्टः कृष्णोऽद्य मामेव परमात्मा परात्परः ॥१९॥
कृतार्थं कर्तुमीशा मां युष्माकं स्वागतं शिशुम् । स्वात्मारामेषु कुशलं प्रश्नमेवं विडम्बनम् ॥२०॥
पवित्रं कर्तुमीशा मां हेतुरागमनेऽत्र वः । अपरं ब्रूथ किंवाऽपि शास्त नः करवाणि किम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

उद्विग्नश्चिरविच्छेदात्त्वां पौत्रं द्रष्टुमागतः । विच्छेदः पुत्रपौत्राणां मरणादतिरिच्यते ॥२२॥
कुशलं ते मुनिश्रेष्ठ पुत्रयोश्चापि योषितः । कुशलं ते स्वधर्माणां काम्यानां तपसामपि ॥२३॥
दिने दिनेऽपरिच्छन्नं श्रीकृष्णार्चनमीप्सितम् । स्वगुरोः सेवनं नित्यमविच्छिन्नं भवेत्तव ॥२४॥
गुर्विष्टयोः पूजनं च सर्वमङ्गलकारणम् । पापाधिरोगशोकघ्नं पुण्यं हर्षप्रदं शुभम् ॥२५॥
अभीष्टदेवः संतुष्टो गुरौ तुष्टे नृणामिह । इष्टदेवे च संतुष्टे संतुष्टाः सर्वदेवताः ॥२६॥
गुर्विप्रः सुरो रुष्टो येषां पातकिनामिह । तेषां च कुशलं नास्ति विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥२७॥
तुष्टश्च सततं वत्स श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः । सर्वान्तरात्मा भगवांस्तव भक्त्या च निर्गुणः ॥२८॥

शुक्र बोले—आज हमारा जन्म सफल हो गया, हमारा जीवन सुजीवन हो गया, क्योंकि आज अपने भवन में साक्षात् भगवान् ब्रह्मा स्वयं दृष्टिगोचर हुए हैं ॥१८॥ और उनके पुत्र—भगवान् सनातन आदि भी—प्रसन्न चित्त से साक्षात् दर्शन दे रहे हैं। इससे आज परात्पर एवं परमात्मा श्रीकृष्ण मुझ पर अत्यधिक प्रसन्न मालूम हो रहे हैं ॥१९॥ मुझ शिशु को कृतार्थ करने में समर्थ आप लोगों का स्वागत है। अपने आत्मा में रमण करने वालों को कुशल पूछना तो विडम्बना मात्र है ॥२०॥ हमें पवित्र करने के लिए ही आप महानुभावों का यहाँ आगमन हुआ है। हमें बतायें या शासन करें कि मैं क्या करूँ ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे चिरकाल के वियोग के नाते हमें बड़ी उद्विग्नता थी अतः अपने पौत्र (तुम) को देखने के लिए आया हूँ। क्योंकि पुत्र-पौत्र का वियोग मरण से भी अधिक दुःखप्रद होता है ॥२२॥हे मुनिश्रेष्ठ! तुम कुशल से तो हो? तुम्हारे पुत्र, स्त्रियाँ, स्वधर्म तथा काम्य तप कुशलपूर्वक चल रहे हैं न? ॥२३॥ तुम्हारा दिन-प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण का यथेष्ट पूजन और अपने गुरु की नित्य अविच्छिन्न सेवा चलती रहे ॥२४॥ क्योंकि गुरु और इष्टदेव का पूजन करना समस्त मंगलों का कारण होता है, पाप, रोग एवं शोक का नाश करता है और पुण्य, हर्षप्रद तथा शुभ होता है ॥२५॥ गुरु के संतुष्ट होने पर मनुष्यों के इष्टदेव सन्तुष्ट रहते हैं और इष्टदेव के प्रसन्न होने पर समस्त देवगण प्रसन्न होते हैं ॥२६॥ जिन पापियों से गुरु, ब्राह्मण तथा देवता रुष्ट रहते हैं, उनका कुशल नहीं होता है एवं पद-पद पर उनका विघ्न ही होता है ॥२७॥ हे वत्स! तुम्हारी भक्ति से भगवान् श्रीकृष्ण, जो प्रकृति से परे और सभी के अन्तरात्मा एवं निर्गुण हैं, तुम्हारी भक्ति से सतत सन्तुष्ट रहते हैं ॥२८॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तव तुष्टो गुरुरहं विधाता जगतामपि। मयि तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टे तु देवताः॥२९॥
सांप्रतं शृणु मे धीमन्नाऽऽगमनकारणम्। प्रेषितस्य सुराणां च विश्वसंहर्तुरेव च॥३०॥
शिवस्य गुरुपुत्रस्य साध्वीं तारां बृहस्पतेः। अपहृत्य निशानाथस्तवैव शरणागतः॥३१॥
शंभुर्धर्मश्च सूर्यश्च शक्रोऽनन्तश्च पुत्रक। आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पालाश्च दिगीश्वराः॥३२॥
युद्धायाऽऽयान्ति संनद्धास्तिस्रः कोट्यश्च देवताः। नागाः किंपुरुषाश्चैव यक्षराक्षसगुह्यकाः॥३३॥
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः। किराताश्चैव गन्धर्वाः समुद्रपुलिनेऽधुना॥३४॥
तारकामयसंग्रामे मध्यस्थोऽहं सुतैः सह। देहि तारां रणं किंवा त्यज चन्द्रं च कामिनम्॥३५॥

शुक्र उवाच

आगच्छन्तु सुराः सर्वे संनद्धा रणदुर्मदाः। योत्स्ये विना महेशं च सर्वेषां च गुरुं परम्॥३६॥

दैत्या ऊचुः

उभयेषां गुरुः शंभुर्मान्यो वन्द्यश्च सर्वदा। धर्मश्च साक्षी सर्वेषां त्वमेव च पितामह॥३७॥
अन्यांश्च तृणतुल्यांश्च नहि मन्यामहे वयम्। आगच्छन्तु च योत्स्यामो व्रज ब्रूहि जगद्गुरो॥३८॥
कृपया गुरुपुत्रस्य यद्यायाति महेश्वरः। आग्नेयास्त्रं प्रयोक्ष्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे प्रभो॥३९॥

जगत् का विधाता मैं तुम्हारा गुरु हूँ और तुम पर प्रसन्न हूँ, मेरे प्रसन्न होने से भगवान् प्रसन्न हैं और भगवान् के प्रसन्न होने पर सभी देवगण प्रसन्न हैं॥२९॥ हे धीमन्! सम्प्रति मेरे यहाँ आने का कुछ और कारण है, कह रहा हूँ, सुनो। मैं देवगणों और विश्व के संहार करने वाले (शिव) का भेजा हुआ हूँ। शिवजी के गुरुपुत्र बृहस्पति की पतिव्रता पत्नी तारा का अपहरण करके चन्द्रमा तुम्हारी ही शरण में आकर रह रहा है॥३०-३१॥ हे पुत्र! इसी कारण शम्भु, धर्म, सूर्य, इन्द्र, अनन्त, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, दिक्पाल, और दिशाओं के अधीश्वर युद्ध के लिए आ रहे हैं, जिसमें तीन करोड़ देवता, नागवर्ग, किम्पुरुषगण, यक्ष, राक्षस, गुह्यकवर्ग, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, किरात, और गन्धर्वगण अत्यन्त सन्नद्ध होकर इस समय समुद्र के तट पर अवस्थित हैं॥३२-३४॥ इस युद्ध में सनत्कुमार आदि पुत्रों समेत मैं ही मध्यस्थ बनाया गया हूँ, अतः तारा को लौटा दो या युद्ध करो। किन्तु मेरा कहना है कि कामी चन्द्रमा का ही त्याग कर दो॥३५॥

शुक्र बोले—युद्ध के लिए तैयार होने वाले दुर्मदान्ध देवगणों को आने दीजिए, सभी के परमगुरु एक शिव को छोड़कर शेष सभी लोगों से मैं युद्ध करूंगा॥३६॥

दैत्य बोले—शिव जी दोनों (दैत्य-देवगणों) के गुरु, मान्य और सर्वदा वन्दनीय हैं, धर्म (कर्मों के) साक्षी हैं और आप पितामह ही हैं। शेष अन्य देवों को हम लोग तृण के तुल्य भी नहीं गिनते हैं। अतः हे जगद्गुरो! जाओ, उनसे कहो, आवें, हम लोग युद्ध के लिए तैयार हैं॥३७-३८॥ हे प्रभो! यदि शिवभी गुरुपुत्र (बृहस्पति) के ऊपर कृपा करने के नाते आयेंगे, तो सर्वप्रथम आग्नेयास्त्र का प्रयोग करके पश्चात् युद्ध करेंगे॥३९॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्मोवाच

कालाग्निरुद्रः संहर्ता विश्वस्य बलिनां वरः। हे वत्सास्तेन सार्धं च को वा युद्धं करिष्यति ॥४०॥
भद्रकाली जगन्माता खड्गखर्परधारिणी। तया दुर्धर्षया सार्धं को वा युद्धं करिष्यति ॥४१॥
सा सहस्रभुजा देवी मुण्डमालाविभूषणा। योजनायतवक्त्रा च दशयोजनविस्तृता ॥४२॥
सप्ततालप्रमाणाश्च यस्या दन्ता भयानकाः। क्रोशप्रमाणजिह्वा च महालोला भयंकरी ॥४३॥
अतीवरौद्राः संनद्धा भीमाः शंकरकिंकराः। अतिभीमा भैरवाश्च नन्दी चरणकर्कशः ॥४४॥
शिवस्य पार्षदाः सर्वे महाबलपराक्रमाः। वीरभद्रादयः शूराः कोटिसूर्यसमप्रभाः ॥४५॥
सहस्रमूर्ध्नः शेषस्य फणामण्डलभूषणम्। विश्वं सर्षपतुल्यं च को वा योद्धा च तत्समः ॥४६॥
कालाग्निरुद्रः संहर्ता यस्य शंभोश्च किंकराः। शूलिनस्त्रिपुरघ्नस्य ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥४७॥
यस्य पाशुपतास्त्रेण दुर्निवार्येण पुत्रकाः। भस्मीभूतं भवेद्विश्वं दैत्यानां चैव का कथा ॥४८॥
यस्य शूलेन भिन्नश्च शङ्खचूडः प्रतापवान्। सुदामा पार्षदवरः कृष्णस्य परमात्मनः ॥४९॥
त्रिकोटिसूर्यसदृशस्तेजस्वी परमाद्भुतः। राधाकवचकण्ठश्च सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥५०॥
मधुकैटभयोर्हन्ता हिरण्यकशिपोश्च यः। स च विष्णुः समायाति श्वेतद्वीपात्स्वयं प्रभुः ॥५१॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च संसदि। प्रहस्योवाच दैतेयो दानवानामधीश्वरः ॥५२॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! वे कालाग्नि हैं, विश्व के संहर्ता होने के नाते सभी बलवानों में बड़े हैं, इसलिए उनके साथ कौन युद्ध कर सकेगा? ॥४०॥ उनके साथ में रहने वाली जगन्माता भद्रकाली हैं, जो हाथ में खड्ग और खप्पर लिये रहती हैं, उस दुर्द्धर्षा के साथ कौन युद्ध करेगा? ॥४१॥ उस सहस्रभुजा देवी के साथ कौन लड़ेगा, जो मुण्डमाला से विभूषित है तथा जिसका मुख एक योजन लंबा है और दश योजन विस्तृत है। उसके सात ताड़ के प्रमाण भयानक दाँत तथा एक कोश की लपलपाती और भयंकरी जिह्वा है ॥४२-४३॥ अत्यन्त रौद्र और भीषण शंकर के सेवक भी सन्नद्ध हैं, और अति भयंकर भैरव एवं रणकर्कश नन्दी तथा शिवजी के अन्य सभी वीरभद्र आदि पार्षदगण महाबलवान्, पराक्रमी, शूर और करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण हैं। सहस्र शिर वाले शेष भी हैं, जिनके फणा-मण्डल ही भूषण हैं एवं जो विश्व को राई के समान अपने शिर पर रखते हैं। उनके समान कौन योद्धा है? ॥४४-४६॥ हे पुत्र! त्रिपुरहन्ता और ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होने वाले जिस शिव जी के कालाग्नि रुद्र संहर्ता हैं एवं सेवक त्रिशूलधारी हैं, तथा जिनके दुर्निवार पाशुपत अस्त्र से समस्त विश्व भस्म हो सकता है, उनके सामने दैत्यों की क्या गिनती है? ॥४७-४८॥ जिनके शूल से प्रतापी शंखचूड़ छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गया, जो परमात्मा श्रीकृष्ण का सुदामा नामक उत्तम पार्षद और तीन करोड़ सूर्य के समान तेजस्वी, परम अद्भुत, कण्ठ में राधा जी के कवच से भूषित एवं समस्त दैत्यों का अधीश्वर था, वे तथा मधु-कैटभ के निहन्ता और हिरण्यकशिपु को विदीर्ण करने वाले स्वयं प्रभु विष्णु भी श्वेतद्वीप से आ रहे हैं ॥४९–५१॥ इस प्रकार उस सभा में कहकर जगत् के विधाता ब्रह्मा चुप हो गये। अनन्तर दानवों के अधीश्वर दैत्य ने हँसकर कहा ॥५२॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्रह्लाद उवाच

नमस्तुभ्यं जगद्धातः सर्वेषां प्राक्तनेश्वर । सर्वपूज्यः सर्वनाथः किं वक्ष्यामि तवाग्रतः ॥५३॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता मधुकैटभयोश्च यः । सा कला यस्य कृष्णस्य परिपूर्णतमस्य च ॥५४॥
सर्वान्तरात्मनस्तस्य चक्रं नाम सुदर्शनम् । अस्माकं लोकमस्मांश्च शश्वद्रक्ष्यति दुःसहम् ॥५५॥
ततो न बलवाञ्छंभुर्न च पाशुपतं विधे । न च काली न शेषश्च न च रुद्रादयः सुराः ॥५६॥
यस्य लोमसु विश्वानि निखिलानि जगत्पते । सर्वाधारस्य च विभोः स्थूलात्स्थूलतरस्य च ॥५७॥
षोडशांशो भगवतः स चैव हि महान्विराट् । अनन्तो न हि तत्स्थूलो न काली न बृहती ततः ॥५८॥
आगच्छन्तु सुराः सर्वे युद्धं कुर्वन्तु सांप्रतम् । न बिभेमि [1]शरेभ्यश्च न च पाशुपताद्धरात् ॥५९॥
नमस्तुभ्यं भगवते शिवाय शिवरूपिणे । नमोऽनन्ताय साधुभ्यो वैष्णवेभ्यः प्रजापते ॥६०॥
श्रीकृष्णस्य प्रसादेन निर्भयोऽहं निरामयः । न मे स्वात्मबलं ब्रह्मंस्तद्बलं यत्प्रभोर्बलम् ॥६१॥
स्वपापेन मृतस्तातो पुरा वै विष्णुनिन्दया । निर्बन्धाच्छङ्खचूडश्च दर्पाच्च मधुकैटभौ ॥६२॥
त्रिपुरः किंकरोऽस्माकं वीरत्वेन न गण्यते । तथाऽपि प्रेरितस्तेन सरथश्च महेश्वरः ॥६३॥
इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठो विरराम च संसदि । उवाच जगतां धाता पुनरेव च नारद ॥६४॥

प्रह्लाद बोले—हे जगत् के विधाता एवं सभी के प्राचीन अधीश्वर! आप सभी के पूज्य और सभी के स्वामी हैं, अतः आपके सामने मैं क्या कहूँ ॥५३॥ जो हिरण्यकशिपु और मधुकैटभ का हनन करने वाला है, वह जिसकी कला है वह भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम हैं और सभी के अन्तरात्मा हैं। उनका दुःसह सुदर्शन चक्र हमारे लोक और हम लोगों की निरन्तर रक्षा करेगा। हे विधे! उससे बलवान् न शिव हैं, न पाशुपत अस्त्र, न काली, न शेष, और न रुद्र आदि देवता हैं ॥५४-५६॥ हे जगत्पते! जिसके लोम में समस्त विश्व निहित है और जो सभी का आधार, विभु और स्थूल से स्थूलतर है ॥५७॥ उसी भगवान् का सोलहवाँ अंश महान् विराट् है। उसके समान स्थूल न तो अनन्त है और न काली ही उससे बड़ी है ॥५८॥ अब सभी देवगण आयें और युद्ध करें क्योंकि शिवके बाणों और उनके पाशुपत से मैं डरता नहीं ॥५९॥ हे प्रजापते! शिव (कल्याण) रूपी उस भगवान् शिव को नमस्कार है, अनन्त को नमस्कार है, साधु, वैष्णवों को नमस्कार है ॥६०॥ हे प्रभो! भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से मैं निर्भय और स्वस्थ हूँ। मेरा अपना कुछ बल नहीं है, जो कुछ है वह प्रभु का है ॥६१॥ पूर्वकाल में मेरे पिता अपने पाप—विष्णु की निन्दा—करने से मरे। निर्बन्ध (दुराग्रह) के कारण शंखचूड मारा गया और दर्प (अभिमान) के नाते मधुकैटभ का निधन हुआ। त्रिपुर हम लोगों का किंकर (सेवक) था, वीरों में उसकी गणना नहीं है। तथापि उससे उकसाये जाने पर महादेव ने रथ पर बैठ कर उसका संहार किया था ॥६२-६३॥ हे नारद! सभा में दानवश्रेष्ठ प्रह्लाद इतना कहकर चुप हो गये, अनन्तर जगत् के विधाता ब्रह्मा ने पुनः कहना आरम्भ किया ॥६४॥

---

१ क. सुरे० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्मोवाच

विनाशकारणं युद्धमुभयोर्दैत्यदेवयोः । सुप्रीत्याचरणं वत्स सर्वमङ्गलकारणम् ॥६५॥
तारां भिक्षां देहि मह्यं भिक्षुकाय च वेधसे । विमुखे भिक्षुके राजन्गृहस्थः सर्वपापभाक् ॥६६॥

सनत्कुमार उवाच

स्वकीर्तिं रक्ष राजेन्द्र सिंहस्त्वं सुरदैत्ययोः । यस्य भिक्षुर्जगद्धाता तस्य कीर्तेश्च का कथा॥६७॥

सनातन उवाच

न जितस्त्वं सुरेन्द्रैश्च ब्रह्मेशानपुरोगमैः । रक्षितः कृष्णचक्रेण वैष्णवः पुण्यवाञ्छुचिः॥६८॥

सनन्दन उवाच

यस्येष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः । गुरुश्च वैष्णवः शुक्रः स च केन जितो महान्॥६९॥

सनक उवाच

पुण्यवान्न जितः केन जितः पापी स्वपातकैः । पुण्यदीपो न निर्वाति पाषण्डेनैव वायुना॥७०॥

ऋषय ऊचुः

देहि तारां महाभाग चन्द्रं प्राणाधिकं गुरोः । स्वकीर्तिं रक्ष सुचिरं प्रार्थयामः पुनः पुनः॥७१॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! युद्ध देव-दानव दोनों कुल के विनाश का कारण होगा, अतः अति प्रेम से व्यवहार करो, जो समस्त मंगलों का कारण है॥६५॥ हे राजन्! मैं ब्रह्मा होकर तुम्हारे यहाँ भिक्षुक बना हूँ, अतः मुझे भिक्षा रूप में तारा को दे दो। क्योंकि भिक्षुक के विमुख होने पर गृहस्थ को समस्त पाप का भागी होना पड़ता है॥६६॥

सनत्कुमार बोले—हे राजेन्द्र! देव और दैत्य के वंश में तुम सिंह हो, अतः अपनी कीर्ति की रक्षा करो। और जिसके यहाँ (द्वार पर) जगत् के विधाता भिक्षुक हों, उसकी कीर्ति की कौन बात कही जाये॥६७॥

सनातन बोले—ब्रह्मा, शिव आदि देवगण तुम्हें जीत नहीं सके, क्योंकि तुम पुण्यवान् एवं पवित्र वैष्णव हो और इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण के चक्र से सुरक्षित हो॥६८॥

सनन्दन बोले—जिसके इष्टदेव सर्वात्मा श्रीकृष्ण हैं, जो प्रकृति से परे हैं और गुरु वैष्णव शुक्र हैं, उस महान् को कौन जीत सकता है॥६९॥

सनक बोले—पुण्यवान् को कोई नहीं जीत सकता है। पापी अपने पातकों से विजित होता है। क्योंकि पाषण्डरूपी वायु से पुण्यदीप कभी भी नहीं बुझता॥७०॥

ऋषिगण बोले—हे महाभाग! गुरु (बृहस्पति) को तारा और प्राणों से बढ़कर चन्द्रमः दे दो। मैं बार-बार प्रार्थना करता हूँ कि अपनी कीर्ति को अति चिरकाल तक के लिए सुरक्षित रखो॥७१॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्रह्लाद उवाच

स्थिते मदीश्वरे साक्षान्नहि भृत्यो विराजते। कर्तारं ब्रूहि मन्नाथं गुरुं शुक्रं सतां वरम् ॥७२॥
शिष्याणामाधिपत्ये च साधूनां गुरुरीश्वरः। गुरौ समर्पितं पूर्वं[1] सर्वैश्वर्यं मुनीश्वरे ॥७३॥
वयं भृत्याश्च पोष्याश्च स्वगुरोः परिचारकाः। ते च शिष्याः कुशलिनः गुर्वाज्ञां पालयन्ति ये ॥७४॥
प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा चकार प्रार्थनां कविम्। ददौ शुक्रश्च तारां तां चन्द्रं च मलिनं मुने ॥७५॥
दत्त्वा तारां विधुं शुक्रः प्रणनाम विधेः पदे। नमस्कृत्य मुनिभ्यश्च प्रणतः स्वपुरं ययौ ॥७६॥
प्रह्लादः सगणो भक्त्या नमस्कृत्य विधेः पदे। प्रत्येकं वै मुनिगणान्प्रणतः स्वगृहं ययौ ॥७७॥
ब्रह्मा ददर्श तारां च प्रणतां स्वपदे सतीम्। लज्जया नम्रवक्त्रां च रुदतीं गर्विणीं मुने ॥७८॥
चन्द्रं च प्रणतं धाता क्रोडे संस्थाप्य मायया। उवाच मलिनां तारां कातरां च कृपामयः ॥७९॥
तारे त्यज भयं मत्तो भयं किं ते मयि स्थिते। सौभाग्ययुक्ता स्वपतौ भविष्यसि वरेण मे ॥८०॥
दुर्बला बलिना ग्रस्ता निष्कामा न च्युता भवेत्। प्रायश्चित्तेन शुद्धा सा न स्त्री जारेण दुष्यति ॥८१॥
सकामा कामतो जारं भजते स्वसुखेन च। प्रायश्चित्तान्न शुद्धा सा स्वामिना परिवर्जिता ॥८२॥

प्रह्लाद बोले—हम लोगों के अधीश्वर के साक्षात् विद्यमान रहते हुए, कोई सेवक उस पद को सुशोभित नहीं कर सकता है (अर्थात् इसकी स्वीकृति प्रदान नहीं कर सकता)। यह बातें मेरे गुरु एवं स्वामी शुक्र से कहिये, जो सज्जनों में प्रवर हैं। सज्जन शिष्यों के अधिपति गुरु होते हैं, जो ईश्वर के समान होते हैं। मैंने अपना समस्त ऐश्वर्य पूर्वकाल में ही गुरु को सौंप दिया था ॥७२-७३॥ हम लोग अपने गुरु के सेवक एवं पोष्य वर्ग हैं क्योंकि वे ही शिष्य कुशली कहे जाते हैं जो गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं ॥७४॥ हे मुने! प्रह्लाद की ऐसी बातें सुनकर उन्होंने कवि (शुक्र) से प्रार्थना की। अनन्तर शुक्र ने तारा को और पापी चन्द्रमा को उन्हें लौटा दिया ॥७५॥ शुक्र ने तारा और चन्द्रमा को देकर ब्रह्मा का चरणस्पर्श करते हुए उन्हें प्रणाम किया और विनय-विनम्र होकर मुनियों को प्रणाम करके अपने नगर को चले गये ॥७६॥ अपने गण समेत प्रह्लाद ने भी भक्तिपूर्वक ब्रह्मा का चरण स्पर्श करके प्रत्येक मुनिगण को प्रणाम किया और अपने गृह चले गये ॥७७॥ हे मुने! ब्रह्मा ने सती तारा को अपना चरणस्पर्श करते देखा जो लज्जा से नीचे मुख किये, गर्भिणी एवं रोदन कर रही थी ॥७८॥ अनन्तर प्रणाम करते हुए चन्द्रमा को देखकर दयालु ब्रह्मा ने उन्हें उठाया और माया से अपनी गोद में बैठा कर मलिन तथा डरी हुई तारा से कहा ॥७९॥ हे तारे! मुझसे भय न करो और मेरे रहते तुम्हें भय कैसा? मेरे वरदान द्वारा तुम पुनः अपने पति को सौभाग्यशालिनी हो जाओगी ॥८०॥ क्योंकि दुर्बला निष्काम स्त्री किसी बलवान् से ग्रस्त होने पर (स्वधर्म से) च्युत नहीं होती है। वह प्रायश्चित्त से शुद्ध हो जाती है, और जार (व्यभिचारी) द्वारा दूषित नहीं मानी जाती ॥८१॥ जो कामनापूर्वक कामुकी होकर अपने सुख के लिए जार (व्यभिचारी) पुरुष का सेवन करती है, उसकी शुद्धि प्रायश्चित्त से भी नहीं होती है, इसीलिए वह पति-

---

१ क. पूर्णं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कुम्भीपाके पच्यते सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ। अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं स्पर्शनं सर्वपापदम् ८३॥
पापीयस्याश्च तस्याश्च साधुभिः परिवर्जितम् ॥८४॥
कस्य गर्भं वद शुभे गच्छ वत्से गुरोर्गृहम्। त्यज लज्जां महाभागे सर्वं च प्राक्तनाद्भवेत् ॥८५॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तमुवाच सती तदा। चन्द्रस्य गर्भं हे तात बिभर्म्यद्य स्वकर्मणा ॥८६॥
सर्वे मे साक्षिणः सन्ति दुर्बलायाः प्रजापते। यदा जग्राह चन्द्रो मां दयाहीनश्च दुर्मतिः ।८७॥
इत्युक्त्वा तारकादेवी सुषाव कनकप्रभम्। कुमारं सुन्दरं तत्र ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥८८॥
गृहीत्वा तनयं चन्द्रो नत्वा ब्रह्माणमीश्वरम्। जगाम स स्वभवनं ब्रह्मा सिन्धुतटं ययौ ॥८९॥
साध्वीं तारां च गुरवे देवेभ्योऽप्यभयं ददौ। आशिषं शंभुधर्माभ्यां दत्त्वा लोकं ययौ विधिः ॥९०॥
देवा ययुः स्वभवनं स्वगृहं च बृहस्पतिः। भावानुरक्तवनितां प्राप्य संहृष्टमानसः ॥९१॥
तारकागर्भसंभूतः स एव च बुधः स्वयम्। तेजस्वी सद्ग्रहो ब्रह्मंश्चन्द्रस्य तनयो महान् ॥९२॥
स एव नन्दनवने चित्रां संप्राप्य निर्जने। घृताच्या गर्भसंभूतां कुबेरस्य च रेतसा ॥९३॥
दृष्ट्वा च निर्जने रम्यां कन्यां कमललोचनाम्। अतीव यौवनस्थां च बालां षोडशवार्षिकीम्।
गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह विधोः सुतः ॥९४॥

त्यक्ता हो जाती है॥८२॥ तथा चन्द्र-सूर्य के समय तक वह कुम्भीपाक नरक में पकती रहती है। उसका अन्न विष्ठा के तुल्य, जल मूत्र के समान और स्पर्श समस्तपापप्रदायक होता है॥८३॥ अतः उस अत्यन्त पापिनी का अन्न-पान साधुओं को त्याज्य है। हे वत्से! अब यह बताओ कि यह किसका गर्भ है? और तुम बृहस्पति के यहाँ चली जाओ॥८४॥ हे महाभागे! अब लज्जा त्याग दो, क्योंकि सभी कुछ प्राक्तन (जन्मान्तरीय) कर्म के अनुसार ही होता है। ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर उस पतिव्रता ने उनसे कहा—हे तात! यह चन्द्रमा का गर्भ है; जिसका अपने कर्मानुसार मैं भरण-पोषण कर रही हूँ। हे प्रजापते! जिस समय दुष्टबुद्धि एवं निर्दय चन्द्रमा ने मुझ दुर्बला को पकड़ लिया उस समय के सभी लोग मेरे साक्षी हैं। इतना कहकर तारा ने सुवर्ण के समान प्रभापूर्ण एक कुमार उत्पन्न किया॥८५-८७॥ उस सुन्दर कुमार को, जो ब्रह्मतेज से देदीप्यमान था, लेकर चन्द्रमा ने ब्रह्मा को नमस्कार किया और अपने घर चले गये। पश्चात् ब्रह्मा भी बृहस्पति को तारा सौंपकर, देवों को अभय और शिव एवं धर्म को शुभाशिष प्रदान कर अपने लोक चले गये। अनन्तर देवता लोग और बृहस्पति भी अपने-अपने घर गये॥८८-९०॥ अपनी भावानुरागिणी स्त्री को पुनः प्राप्त कर गुरु अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस प्रकार तारा के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले कुमार का नाम बुध हुआ। हे ब्रह्मन्! चन्द्रमा का वह (बुध) पुत्र महान् तेजस्वी एवं उत्तम ग्रह हुआ। उसी बुध ने एक बार निर्जन नन्दन वन में चित्रा को देखकर, जो कुबेर के वीर्य से घृताची अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी तथा रम्य, कमल के समान नेत्रों वाली तथा पूर्ण यौवन सम्पन्न सोलह वर्ष की बाला थी, गान्धर्व विवाह द्वारा उसको अपना लिया॥९१-९४॥ एकान्त में उसके साथ उपभोग कर उन्होंने उसमें

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तस्यामथायं रहसि वीर्याधानं चकार सः। बभूव राजा चित्रायां चैत्रो वै मण्डलेश्वरः॥९५॥
सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं शास्ति वै धार्मिको बली। शतं नद्यो घृतानां च दध्नां नद्यः शतानि च॥९६॥
शतानि नद्यो दुग्धानां मधुनद्यश्च षोडश। दश नद्यश्च तैलानां शर्करालक्षराशयः॥९७॥
मिष्टान्नानां स्वस्तिकानां लक्षराश्यश्च नित्यशः। पञ्चकोटिगवां मांसं सापूपं स्वन्नमेव च॥९८॥
एतेषां च नदीराशीर्भुञ्जते ब्राह्मणा मुने। गवां लक्षं च रत्नानां मणीनां लक्षमेव च॥९९॥
शतलक्षं सुवर्णानां लक्षं वै सूक्ष्मवाससाम्। रत्नानां भूषणं पात्रमतीव सुमनोहरम्॥१००॥
ददौ द्विजातये राजा नित्यं वै जीवितावधि। तस्य चैत्रस्य पुत्रश्च राजाऽधिरथ एव च॥१०१॥
तस्य पुत्रश्च सुरथश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः। महाज्ञानं च संप्राप्य मेधसो मुनिसत्तमात्॥१०२॥
भेजे पुरा विष्णुमायां पुण्यक्षेत्रे च भारते। शरत्काले महापूजां चकार स सरित्तटे॥१०३॥
वैश्येन सार्धं स महाज्ञानिनां मुनिसत्तम। राजा कलिङ्गदेशस्य विराधश्च विशां वरः॥१०४॥
तस्य पुत्रो महायोगी द्रुमिणो ज्ञानिनां वरः। द्रुमिणो वैष्णवः प्राज्ञः पुष्करे दुष्करं तपः॥१०५॥
कृत्वा समाधिं संप्राप ज्ञानिनां वैष्णवाग्रणीः। पुत्रैर्दारैर्निरस्तश्च धनलोभाद्दुरात्मभिः॥१०६॥
स च कोटिसुवर्णं च नित्यं दत्त्वा जलं पपौ। मुक्तिं संप्राप संसेव्य विष्णुमायां सनातनीम्॥१०७॥

गर्भाधान किया, जिससे चित्रा में चैत्र नामक मण्डलेश्वर राजा उत्पन्न हुआ॥९५॥ उस धार्मिक तथा बलवान् (राजा) ने सातों द्वीप वाली पृथिवी पर (एकच्छत्र) शासन किया। उसके शासन-काल में घृत की सौ नदियाँ, दही की सौ नदियाँ, दुग्ध की सौ नदियाँ, मधु (शहद) की सोलह नदियाँ एवं तेल की दश नदियाँ बहती थीं। तथा एक लक्ष शक्कर की राशि और लड्डुओं तथा मिष्टान्नों की नित्य एक लक्षराशि, पाँच करोड़ मांस-राशि, एवं मालपूआ आदि समेत सुन्दर भोजन बनता था। हे मुने! इन नदियों एवं राशियों के उपभोग ब्राह्मण-वृन्द नित्य करते थे। इस भाँति राजा अपने जीवन काल तक नित्य एक लाख गौ, एक लाख रत्न मणि, सौ लाख सुवर्ण, एक लाख सूक्ष्म वस्त्र, रत्नों के आभूषण और अति मनोहर पात्र ब्राह्मणों को दान करता था। अनन्तर उस चैत्र राजा के अधिरथ नामक पुत्र हुआ॥९६-१०१॥ उसके सुरथ नामक चक्रवर्ती राजा बृहच्छ्रवा पुत्र हुआ, जिसने पूर्वकाल में मुनिश्रेष्ठ मेधस् ऋषि से महाज्ञान को प्राप्ति कर पुण्यक्षेत्र भारत में विष्णुमाया (दुर्गा) की उपासना की थी। उस महाज्ञानी ने शारदीय नवरात्र में नदी के तट पर वैश्य के साथ महापूजा सुसम्पन्न की॥१०२-१०३॥ हे मुनिश्रेष्ठ! कलिंग देश का राजा विराध वैश्यों में श्रेष्ठ था। उसका पुत्र द्रुमिण महायोगी एवं ज्ञानिप्रवर हुआ। महाबुद्धिमान् एवं वैष्णव द्रुमिण ने पुष्कर क्षेत्र में महाकठिन तप किया जिससे उसके समाधि-नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जो ज्ञानियों और वैष्णवों में अग्रणी था। उसके दुष्ट पुत्र और स्त्री ने धन के लोभ से उसे घर से निकाल दिया था, जो नित्य करोड़ सुवर्ण-मुद्रा दान कर जल पीता था। उपरान्त उसने सनातनी विष्णुमाया (दुर्गा) की आराधना करके मुक्ति प्राप्त की॥१०४-१०७॥ हे मुने! इस प्रकार उस

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

राजा लेभे मनुत्वं च राज्यं निष्कण्टकं मुने। उवाच मधुरं वाक्यं धाता त्रिजगतां पतिः ॥१०८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० गुरोस्ताराप्राप्ति-बुधोत्पत्त्यादिवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

कथं राजा महाज्ञानं संप्राप मुनिसत्तमात्। वैश्यो मुक्तिं मेधसश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

नारायण उवाच

ध्रुवस्य पौत्रो बलवान्नन्दिरुत्कलनन्दनः। स्वायंभुवमनोर्वंश्यः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥२॥
अक्षौहिणीनां शतकं गृहीत्वा सैन्यमेव च। कोलां च वेष्टयामास सुरथस्य महामतेः ॥३॥
युद्धं बभूव नियतं पूर्णमब्दं च नारद। चिरंजीवी वैष्णवश्च जिगाय सुरथं नृपः ॥४॥
एकाकी सुरथो भीतो नन्दिना च बहिष्कृतः। निशायां हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥५॥
ददर्श तत्र वैश्यं च पुष्पभद्रानदीतटे। तयोर्बभूव संप्रीतिः कृतबान्धवयोर्मुने ॥६॥

राजा ने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया तथा जन्मान्तर में वह मनु हुआ जिसे तीनों लोकों के स्वामी विधाता ने मधुर वाक्य कहा था ॥१०८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति खण्ड में नारद-नारायण-संवादान्तर्गत दुर्गोपाख्यान में गुरु को तारा की प्राप्ति और बुध की उत्पत्ति आदि का वर्णन नामक इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६१॥

अध्याय ६२

सुरथ और वैश्य की मनःकामना-सिद्धि

नारद बोले—राजा सुरथ को मुनिश्रेष्ठ मेधस् द्वारा महाज्ञान की प्राप्ति और वैश्य (समाधि) को मुक्ति की प्राप्ति कैसे हुई थी, मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

श्री नारायण बोले—ध्रुव के पौत्र राजा नन्दि ने जो बलवान्, उत्कल का पुत्र, स्वायम्भुव मनु के वंश में उत्पन्न, सत्यवक्ता और इन्द्रियसंयमी था, अपनी सौ अक्षौहिणी सेना लेकर बुद्धिमान् सुरथ की कोला नगरी को घेर लिया ॥२-३॥ हे नारद! पूरे वर्ष तक नियत रूप से युद्ध होता रहा। अनन्तर चिरजीवी एवं वैष्णव राजा नन्दि ने सुरथ को जीत लिया ॥४॥ एकाकी एवं भयभीत सुरथ नन्दि द्वारा निकाल दिये जाने पर आधी रात के समय घोड़े पर बैठकर घोर वन में चला गया ॥५॥ वहाँ पुष्पभद्रा नदी के तट पर उसे एक वैश्य दिखायी पड़ा। हे मुने! उन दोनों में अतिप्रेम और भाईचारे का दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हुआ ॥६॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

वैश्येन सार्धं नृपतिरगच्छन्मेधसाश्रमम्। पुष्करं दुष्करं पुण्यक्षेत्रं वै भारते सताम्॥७॥
ददर्श तत्र नृपतिर्मुनीन्द्रं तीव्रतेजसम्। शिष्येभ्यश्च प्रवोचन्तं ब्रह्मतत्त्वं सुदुर्लभम्॥८॥
राजा ननाम वैश्यश्च शिरसा मुनिपुंगवम्। मुनिस्तौ पूजयामास ददौ ताभ्यां शुभाशिषम्॥९॥
प्रश्नं चकार कुशलं जातिनाम पृथक्पृथक्। ददौ प्रत्युत्तरं राजा क्रमेण मुनिपुंगवम्॥१०॥

सुरथ उवाच

राजाऽहं सुरथो [1]ब्रह्मंश्चैत्रवंशसमुद्भवः। बहिष्कृतः स्वराज्याच्च नन्दिना बलिनाऽधुना॥११॥
कमुपायं करिष्यामि कथं राज्यं भवेन्मम। तन्मां ब्रूहि महाभाग त्वामेव शरणागतम्॥१२॥
अयं वैश्यः समाधिश्च स्वगृहाच्च बहिष्कृतः। पुत्रैः कलत्रैर्दैवेन धनलोभेन धार्मिकः॥१३॥
ब्राह्मणाय ददौ नित्यं रत्नकोटिं दिने दिने। निषिध्यमानः पुत्रैश्च कलत्रैर्बान्धवैरयम्॥१४॥
कोपान्निराकृतस्तैश्च पुनरन्वेषितः शुचा। अयं गृहं च न ययौ विरक्तो ज्ञानवाञ्छुचिः॥१५॥
पुत्राश्च पितृशोकेन गृहं त्यक्त्वा ययुर्वनम्। दत्त्वा धनानि विप्रेभ्यो विरक्ताः सर्वकर्मसु॥१६॥
सुदुर्लभं हरेर्दास्यं वैश्यस्यास्य च वाञ्छितम्। कथं प्राप्नोति निष्कामस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१७॥

अनन्तर वैश्य को साथ लेकर राजा सुरथ मेधस् मुनि के आश्रम पुष्कर में गये, जो भारत में सज्जनों को कठिनता से प्राप्त होनेवाला पुण्यक्षेत्र है॥७॥ वहाँ राजा ने तीक्ष्ण तेज से युक्त मुनि को देखा, जो शिष्यों को अतिदुर्लभ ब्रह्मतत्त्व बता रहे थे॥८॥ राजा और वैश्य दोनों ने मुनिश्रेष्ठ को शिर से प्रणाम किया तथा मुनि ने भी शुभाशिष प्रदानपूर्वक दोनों का स्वागत किया॥९॥ पृथक्-पृथक् जाति और नाम पूछते हुए उन्होंने उन दोनों से कुशल मंगल पूछा। राजा ने क्रमशः मुनिश्रेष्ठ को उत्तर दिया॥१०॥

सुरथ बोले—हे ब्रह्मन्! मैं चैत्र-वंश में उत्पन्न सुरथ नामक राजा हूँ। सम्प्रति बलवान् राजा नन्दि ने मुझे मेरे राज्य से पृथक् कर दिया है॥११॥ हे महाभाग! मैं क्या उपाय करूँ जिससे मुझे अपना राज्य पुनः प्राप्त हो जाये, मुझे बतायें, इसीलिए मैं आपकी शरण आया हूँ॥१२॥ यह समाधि नामक वैश्य है। दैववश धन के लोभ से पुत्र और स्त्री ने इस धार्मिक को अपने घर से निकाल दिया है॥१३॥ यह प्रतिदिन ब्राह्मणों को करोड़ रत्न का दान देते थे। पुत्रों, स्त्रियों और बन्धुओं ने इन्हें मना किया। अन्त में न मानने पर क्रुद्ध होकर उन लोगों ने इन्हें निकाल दिया। क्रोध शान्त होने पर पुनः उन लोगों ने इनका पता लगाया। किन्तु ज्ञानी और पवित्र-हृदय होने के नाते इन्हें विराग हो गया, जिससे ये पुनः घर नहीं लौट सके॥१४-१५॥ उधर पुत्रलोग पिता के शोक में घर छोड़कर वन चले गये। वहाँ सभी कर्मों से विरक्त होकर उन्होंने ब्राह्मणों को समस्त धन दे डाले॥१६॥ अब इनकी एकमात्र यही अभिलाषा है कि—'किस प्रकार भगवान् की अतिदुर्लभ दास्यभक्ति प्राप्त हो।' इन निष्काम को यह कैसे प्राप्त होगी, मुझे बताने की कृपा करें॥१७॥

१क० नाम चै०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मेधा उवाच

करोति मायया छन्नं विष्णुमाया दुरत्यया। निर्गुणस्य च कृष्णस्य त्रिगुणा विश्वमाज्ञया ॥१८॥
कृपां करोति येषां सा धर्मिणां च कृपामयी। तेभ्यो ददाति कृपया कृष्णभक्तिं सुदुर्लभाम् ॥१९॥
येषां मायाविनां माया न करोति कृपां नृप। मायया तान्निबध्नाति मोहजालेन दुर्गताम् ॥२०॥
नश्वरे नित्यसंसारे भ्रामयेद्बर्बरा सदा। कुर्वती नित्यबुद्धिं च विहाय परमेश्वरम् ॥२१॥
देवमन्यं निषेवन्ते तन्मन्त्रं च जपन्ति च। मिथ्या किंचिन्निमित्तं च कृत्वा मनसि लोभतः ॥२२॥
सप्तजन्मसु संसेव्य देवताश्च हरेः कलाः। तदा प्रकृत्याः कृपया सेवन्ते प्रकृतिं सदा ॥२३॥
सप्तजन्मसु संसेव्य विष्णुमायां कृपामयीम्। शिवे भक्तिं लभन्ते ते ज्ञानानन्दे सनातने ॥२४॥
ज्ञानाधिष्ठातृदेवं च हरेः संसेव्य शंकरम्। अचिराद्विष्णुभक्तिं च प्राप्नुवन्ति महेश्वरात् ॥२५॥
सेवन्ते सगुणं सत्त्वं विष्णुं विषयिणं तदा। सत्त्वज्ञानाच्च पश्यन्ति ज्ञानं वै निर्मलं नराः ॥२६॥
निषेव्य सगुणं विष्णुं सात्त्विका वैष्णवा नराः। लभन्ते निर्गुणे भक्तिं श्रीकृष्णे प्रकृतेः परे ॥२७॥
गृह्णन्ति सन्तस्तद्भक्ता मन्त्रं तस्य निरामयम्। निषेव्य निर्गुणं देवं ते भवन्ति च निर्गुणाः ॥२८॥
असंख्यब्रह्मणां पातं ते च पश्यन्ति वैष्णवाः। दास्यं कुर्वन्ति सततं गोलोके च निरामये ॥२९॥

मेधस् ऋषि बोले—अजेय तथा त्रिगुणात्मक विष्णुमाया निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से समस्त विश्व को आच्छन्न किये (ढके) रहती है॥१८॥ वह कृपामयी जिन धार्मिक जनों पर कृपा करती है, उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण की अतिदुर्लभ भक्ति प्रदान करती है॥१९॥ हे नृप! जिनके ऊपर यह माया कृपा नहीं करती है, उन्हें अपनी माया से (सांसारिक पदार्थों) में बाँधे रहती है, और मोहजाल में फँसाकर उनकी दुर्गति कराती है॥२०॥ इस नश्वर एवं अनित्य संसार में उन्हें यह सदैव भ्रमण कराती है और परमेश्वर से अलग करके संसार में नित्य बद्धि उत्पन्न करा देती है॥२१॥ जिससे वे प्राणी लोभवश मन में कुछ मिथ्या निमित्त बनाकर अन्य देव की उपासना एवं उसका मंत्र जपते हैं॥२२॥ सात जन्मों में भगवान् की कला (अंश) रूप देवों की सेवा करने के उपरान्त प्रकृति (दुर्गा) की कृपा से वे दुर्गा के भक्त होते हैं॥२३॥ पुनः सात जन्मों तक कृपामयी एवं सनातनी विष्णुमाया (दुर्गा) की सेवा करने के बाद भगवान् शिव की भक्ति प्राप्त होती है, जो सनातन एवं ज्ञानानन्द रूप हैं॥२४॥ पुनः ज्ञान के अधिष्ठाता देव भगवान् शंकर की सेवा करने पर, उनके द्वारा भगवान् विष्णु की भक्ति शीघ्र प्राप्त हो जाती है॥२५॥ और सगुण एवं सत्त्व रूप विषयी विष्णु की सेवा करने पर मनुष्यों को सत्त्वज्ञान द्वारा निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है॥२६॥ इस प्रकार सगुण विष्णु की सेवा करने पर सात्त्विक वैष्णव जनों को निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति प्राप्त होती है, जो प्रकृति से परे हैं॥२७॥ उनके भक्त सन्त लोग उनका निरामय (निर्विकार) मंत्र ग्रहण करते हैं और उसके द्वारा निर्गुण देव (भगवान् श्रीकृष्ण) की सेवा कर के स्वयं भी निर्गुण हो जाते हैं॥२८॥ वे वैष्णव लोग निरामय गोलोक में भगवान् की दास्य भक्ति द्वारा सेवा करते हुए असंख्य ब्रह्मा का पतन (पूरी आयु में मरण) देखते हैं॥२९॥ जो श्रेष्ठ मनष्य,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कृष्णभक्तात्कृष्णमन्त्रं यो गृह्णाति नरोत्तमः । पुरुषाणां सहस्रं च स्वपितॄणां समुद्धरेत् ॥३०॥
मातामहानां साहस्रमुद्धरेन्मातरं तथा । दासादिकं समुद्धृत्य गोलोकं स प्रयाति च ॥३१॥
भवार्णवे महाघोरे कर्णधारस्वरूपिणी । दीनान्पारयते नित्यं कृष्णभक्त्या च नौकया ॥३२॥
स्वकर्मबन्धनं छेत्तुं वैष्णवानां च वैष्णवी । तीक्ष्णशस्त्रस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥३३॥
विवेचिका चाऽऽवरणी शक्तेः शक्तिर्द्विधा नृप । पूर्वं ददाति भक्ताय चेतराय परात्परा ॥३४॥
सत्यस्वरूपः श्रीकृष्णस्तस्मात्सर्वं च नश्वरम् । बुद्धिर्विवेचिकेत्येवं वैष्णवानां सतामपि ॥३५॥
नित्यरूपा ममेयं श्रीरिति चाऽऽवरणी च धीः । अवैष्णवानामसतां कर्मभोगभुजामहो ॥३६॥
अहं प्रचेतसः पुत्रः पौत्रश्च ब्रह्मणो नृप । भजामि कृष्णमात्मानं ज्ञानं संप्राप्य शंकरात् ॥३७॥
गच्छ राजन्नदीतीरं भज दुर्गां सनातनीम् । बुद्धिमावरणीं तुभ्यं देवी दास्यति कामिने ॥३८॥
निष्कामाय च वैश्याय वैष्णवाय च वैष्णवी । बुद्धिं विवेचिकां शुद्धां दास्यत्येव कृपामयी ॥३९॥
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो ददौ ताभ्यां कृपानिधिः । पूजाविधानं दुर्गायाः स्तोत्रं च कवचं मनुम् ॥४०॥
वैश्यो मुक्तिं च संप्राप तां निषेव्य कृपामयीम् । राजा राज्यं मनुत्वं च परमैश्वर्यमीप्सितम् ॥४१॥

भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त द्वारा उनका मंत्र ग्रहण करता है, वह अपने पूर्वजों की सहस्र पीढ़ियों के उद्धार समेत मातामह (नाना) की सहस्र पीढ़ियों का तथा माता और भृत्य (नौकर) आदि का उद्धार करता है और अन्त में गोलोक चला जाता है ॥३०-३१॥ वैष्णवी माया महाघोर संसार-सागर में भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति रूपी नौका के द्वारा कर्णधार स्वरूप होकर दीनों को नित्य पार करती है ॥३२॥ एवं परमात्मा श्रीकृष्ण की वैष्णवी माया तीक्ष्ण शस्त्र स्वरूप होकर वैष्णवों के स्वकर्म-बन्धन को काटती है ॥३३॥ हे नृप! शक्ति के विवेचिका और आवरणी नामक—दो भेद हैं। वह सर्वप्रथम भक्त को आवरणी शक्ति प्रदान करती है ॥३४॥ 'भगवान् श्रीकृष्ण सत्य स्वरूप हैं, उनसे पृथक् सभी वस्तुएँ नश्वर हैं' इस प्रकार की विवेचिका (विवेचन करने वाली) बुद्धि भी वह सनातनी देवी वैष्णवों को प्रदान करती है ॥३५॥ और कर्म-भोग भोगने वाले अवैष्णव असज्जनों को, 'मेरी यह लक्ष्मी नित्यस्थायी है' ऐसी आवरणी (मोहात्मक) शक्ति सदैव बनी रहती है, यह आश्चर्य की बात है ॥३६॥ हे नृप! मैं वरुण का पुत्र और ब्रह्मा का पौत्र हूँ। शंकर जी द्वारा ज्ञान प्राप्त कर आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को यहाँ भजता हूँ ॥३७॥ हे राजन्! तुम भी नदी के तीर पर जाकर सनातनी दुर्गा की आराधना करो। तुम्हें कामना है, अतः तुम्हें आवरणी बुद्धि प्राप्त होगी ॥३८॥ और कृपामयी एवं वैष्णवी वह भगवती निष्काम एवं वैष्णव उस वैश्य को विवेचिका (विवेचन करने वाली) शुद्ध बुद्धि प्रदान करेगी ॥३९॥ कृपानिधान मुनिश्रेष्ठ ने इतना कह कर उन दोनों को दुर्गा जी का पूजा-विधान, स्तोत्र, कवच और मंत्र प्रदान किया ॥४०॥ अनन्तर वैश्य ने उस कृपामयी भगवती की सेवा करके मुक्ति प्राप्त की और राजा को यथेच्छ परमैश्वर्य समेत राज्य और मनुत्व (मनु होना)

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इत्येवं कथितं सर्वं दुर्गोपाख्यानमुत्तमम्। सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० सुरथमेधःसं० सुरथवैश्ययो-
रभिलषितसिद्धिर्नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग वद वेदविदां वर। राजा केन प्रकारेण सिषेवे प्रकृतिं पराम् ॥१॥
समाधिर्नाम वैश्यो वा निष्कामं निर्गुणं विभुम्। भेजे केन प्रकारेण प्रकृतेरुपदेशतः ॥२॥
किं वा पूजाविधानं च ध्यानं वा मनुमेव च। किं स्तोत्रं कवचं किं वा ददौ राज्ञे महामुनिः ॥३॥
वैश्याय प्रकृतिस्तस्मै किं वा ज्ञानं ददौ परम्। साक्षाद्बभूव तपसा केन वा प्रकृतिस्तयोः ॥४॥
ज्ञानं संप्राप्य वैश्यश्च किं पदं प्राप दुर्लभम्। गतिर्बभूव राज्ञश्च का वा तां च शृणोम्यहम् ॥५॥

नारायण उवाच

राजा वैश्यश्च संप्राप्य मन्त्रं वै मेधसो मुनेः। स्तोत्रं च कवचं देव्या ध्यानं चैव पुरस्क्रियाम् ॥६॥

प्राप्त हुआ ॥४१॥ इस प्रकार मैंने परमोत्तम दुर्गा जी का उपाख्यान सुना दिया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक और सार रूप है। अब और क्या सुनना चाहते हो ॥६२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में सुरथ-मेधस् के संवाद में सुरथ-वैश्य की अभिलषित सिद्धि का वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥६२॥

अध्याय ६३

दुर्गा और वैश्य का संवाद

नारद बोले—हे नारायण, हे महाभाग, हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! राजा ने किस प्रकार परा प्रकृति (दुर्गा) की आराधना की ॥१॥ समाधि नामक वैश्य ने भी किस प्रकार प्रकृति (दुर्गाजी) के उपदेश द्वारा निष्काम एवं निर्गुण व्यापक ब्रह्म की उपासना की ॥२॥ महामुनि ने राजा को कौन पूजा-विधान, ध्यान, मंत्र, स्तोत्र और कवच प्रदान किया ॥३॥ और दुर्गा ने वैश्य को कौन परमोत्तम ज्ञान प्रदान किया तथा किस उपाय द्वारा दुर्गा ने उन दोनों को साक्षात् दर्शन दिया ॥४॥ पुनः ज्ञान प्राप्त कर उस वैश्य ने कौन दुर्लभ पद प्राप्त किया और राजा को कौन गति प्राप्त हुई (ये सब) मुझे बताने की कृपा करें ॥५॥

श्री नारायण बोले—राजा और वैश्य दोनों ने मेधस् मुनि द्वारा (दुर्गा) देवी का मंत्र, स्तोत्र, कवच, और ध्यान प्राप्त कर पुष्कर क्षेत्र में उनके परम मंत्र का जप किया। तब तीनों काल स्नान-पूजा करने पर एक

---

१ ख. सहसा।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

जजाप परमं मन्त्रं राजा वैश्यश्च पुष्करे। स्नात्वा त्रिकालं वर्षं च ततः सिद्धो बभूव सः॥७॥
साक्षाद्बभूव तत्रैव मूलप्रकृतिरीश्वरी। राज्ञे ददौ राज्यवरं मनुत्वं वाञ्छितं सुखम्॥८॥
ज्ञानं निगूढं वैश्याय ददौ चातिसुदुर्लभम्। यद्दत्तं शूलिने पूर्वं कृष्णेन परमात्मना॥९॥
निराहारमतिक्लिष्टं दृष्ट्वा वैश्यं कृपामयी। रुरोद कृत्वा क्रोडे तमचेष्टं श्वासवर्जितम्॥१०॥
चेतनां कुरु भो वत्सेत्युच्चार्य च पुनः पुनः। चेतनां च ददौ तस्मै स्वयं चैतन्यरूपिणी॥११॥
संप्राप्य चेतनां वैश्यो रुरोद प्रकृतेः पुरः। तमुवाच प्रसन्नाऽसौ कृपयाऽतिकृपामयी॥१२॥

प्रकृतिरुवाच

वरं वृणुष्व हे वत्स यत्ते मनसि वर्तते। ब्रह्मत्वममरत्वं वा ततो वाऽतिसुदुर्लभम्॥१३॥
इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सर्वसिद्धत्वमेव च। तुच्छं तुभ्यं न दास्यामि नश्वरं बालवञ्चनम्॥१४॥

वैश्य उवाच

ब्रह्मत्वममरत्वं वा मातर्मे नहि वाञ्छितम्। ततोऽतिदुर्लभं किंवा न जाने तदभीप्सितम्॥१५॥
त्वय्येव शरणापन्नो देहि यद्वाञ्छितं तव। अनश्वरं सर्वसारं वरं मे दातुमर्हसि॥१६॥

प्रकृतिरुवाच

अदेयं नास्ति मे तुभ्यं दास्यामि मम वाञ्छितम्। यतो यास्यसि गोलोकं पदमेव सुदुर्लभम्॥१७॥

वर्ष में उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई॥ ६—७॥ उसी समय ईश्वरी (दुर्गा) मूल प्रकृति ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। राजा को उत्तम राज्य समेत मनुत्व और अभीष्ट सुख तथा वैश्य को अत्यन्त दुर्लभ निगूढ़ ज्ञान देवी ने प्रदान किया, जो पूर्व समय परमात्मा कृष्ण ने शिव को प्रदान किया था॥८॥ कृपामयी भगवती ने निराहार के कारण अतिक्षीणकाय वैश्य को देखकर अपनी गोद में उसे बैठा लिया और श्वास की गति रुक जाने से उसे चेतनाहीन देखकर—'हे वत्स! चेतना (प्राप्त) करो।' ऐसा बार-बार कहकर वे रुदन करने लगीं। अनन्तर चैतन्य-स्वरूपिणी देवी ने स्वयं उसे चैतन्य प्रदान किया और वैश्य भी चेतना प्राप्त होने पर देवी के सामने रुदन करने लगा। पश्चात् अतिकृपामयी भगवती ने प्रसन्न होकर कृपापूर्वक उससे कहा॥९—१२॥

प्रकृति बोली—हे वत्स! अपना मनोनीत वरदान मांगो। ब्रह्मत्व या अमरत्व चाहते हो या उससे भी अतिदुर्लभ कोई अन्य वस्तु॥१३॥ किन्तु इन्द्रत्व, मनुत्व एवं सर्वसिद्धत्व तो तुच्छ होने के नाते तुम्हें दिया नहीं जायेगा, क्योंकि वह नश्वर होने के नाते बालकों को बहकाने की वस्तु है॥१४॥

वैश्य बोले—हे मातः! ब्रह्मत्व और अमरत्व तो हमें अभीष्ट नहीं है। और उससे अतिदुर्लभ मनोनीत वस्तु क्या है, मैं जानता नहीं। मैं तुम्हारी ही शरणमें प्राप्त हूँ, हमें ऐसा वरदान दो जो अनश्वर एवं समस्त का साररूप हो॥१५-१६॥

प्रकृति बोली—तुम्हारे लिए मुझे अदेय वस्तु कुछ भी नहीं है, अतः मैं अपना अभीष्ट तुम्हें दे रही हूँ, जिससे तुम अतिदुर्लभ गोलोक पद प्राप्त करोगे॥१७॥ हे वत्स! मैं तुम्हें समस्त का सार भाग और देवर्षियों

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सर्वसारं च यज्ज्ञानं सुरर्षीणां सुदुर्लभम्। तद्गृह्यतां महाभाग गच्छ वत्स हरेः पदम्॥१८॥
स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्तनम्। श्रवणं भावनं सेवा कृष्णे सर्वनिवेदनम्॥१९॥
एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्तिलक्षणम्। जन्ममृत्युजराव्याधियमताडनखण्डनम् ॥२०॥
आयुर्हरति लोकानां रविरेव हि संततम्। नवधाभक्तिहीनानामसतां पापिनामपि॥२१॥
भक्तास्तद्गतचित्ताश्च वैष्णवाश्चिरजीविनः। जीवन्मुक्ताश्च निष्पापा जन्मादिपरिवर्जिताः॥२२॥
शिवः शेषश्च धर्मश्च ब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट्। सनत्कुमारः कपिलः सनकश्च सनन्दनः॥२३॥
वोढुः पञ्चशिखो दक्षो नारदश्च सनातनः। भृगुर्मरीचिर्दुर्वासाः कश्यपः पुलहोऽङ्गिराः॥२४॥
मेधावी लोमशः शुक्रो वसिष्ठः क्रतुरेव च। बृहस्पतिः कर्दमश्च शक्तिरत्रिः पराशरः॥२५॥
मार्कण्डेयो बलिश्चैव प्रह्लादश्च गणेश्वरः। यमः सूर्यश्च वरुणो वायुश्चन्द्रो हुताशनः॥२६॥
अकूपार उलूकश्च नाडीजङ्घश्च वायुजः। नरनारायणौ कूर्म इन्द्रद्युम्नो विभीषणः॥२७॥
नवधाभक्तियुक्ताश्च कृष्णस्य परमात्मनः। एते महान्तो धर्मिष्ठा भक्तानां प्रवरास्तथा॥२८॥
ये तद्भक्तास्ते तदंशा जीवन्मुक्ताश्च संततम्। पापापहारास्तीर्थानां पृथिव्याश्च विशां पते॥२९॥
ऊर्ध्वं च सप्त स्वर्गाश्च सप्तद्वीपा वसुंधरा। अधः सप्त च पाताला एतद्ब्रह्माण्डमेव च॥३०॥
एवंविधानां विश्वानां संख्या नास्त्येव पुत्रक। एवं च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥३१॥
देवा देवर्षयश्चैव मनवो मानवादयः। सर्वाश्रमाश्च सर्वत्र सन्ति बद्धाश्च मायया॥३२॥
महाविष्णोर्लोमकूपे सन्ति विश्वानि यस्य च। स षोडशांशः कृष्णस्य चाऽऽत्मनश्च महान्विराट्॥३३॥

का अति दुर्लभ ज्ञान दे रही हूँ जिससे तुम भगवान् के लोक में जाओगे॥१८॥ भगवान् का स्मरण, वन्दन, ध्यान, अर्चन, गुणगान, श्रवण, मनन, सेवा और उन्हें समस्त निवेदन करना, यही वैष्णवों का नव प्रकार का भक्तिलक्षण है, जो जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और यमदण्ड का नाशक है॥१९-२०॥ इस नवधा भक्ति से रहित असज्जनों एवं पापी लोगों की भी आयु का अपहरण सूर्य नित्य किया करते हैं॥२१॥ भक्त वैष्णव लोग, जो भगवान् में तन्मय रहते हैं, चिरायु, जीवन्मुक्त, पापरहित एवं जन्म आदि से शून्य होते हैं॥२२॥ शिव, शेष, धर्म, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट्, सनत्कुमार, कपिल, सनक, सनन्दन, वोढु, पञ्चशिख, दक्ष, नारद, सनातन, भृगु, मरीचि, दुर्वासा, कश्यप, पुलह, अंगिरा, मेधावी, लोमश, शुक्र, वसिष्ठ, बृहस्पति, कर्दम, शक्ति, अत्रि, पराशर, मार्कण्डेय, बलि, प्रह्लाद, गणेश्वर, यम, सूर्य, वरुण, वायु, चन्द्र, अग्नि, अकूपार, उलूक, नाडीजंघ, वायुपुत्र (हनुमान्), नर और नारायण, कूर्म, इन्द्रद्युम्न और विभीषण, ये सब परमात्मा श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति से सम्पन्न हैं, जो महान् धर्मिष्ठ, एवं भक्तप्रवर हैं॥२३-२८॥ हे विशांपते! जो उनके भक्त हैं, वे उनके अंश होने के नाते निरन्तर जीवन्मुक्त और पृथिवी के समस्त तीर्थों के पापापहारी हैं॥२९॥ ऊपर के स्वर्ग आदि सात लोक, मध्य के सातों द्वीप और नीचे के पाताल आदि सातों लोक यहीं (मिलकर) 'ब्रह्माण्ड' कहलाता है॥३०॥ हे पुत्र! ऐसे विश्वों की संख्या नहीं है, और प्रत्येक विश्व में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवता पृथक्-पृथक् रहते हैं॥३१॥ और सभी विश्व के देव, ऋषि, मनु, मानव आदि और सभी आश्रम माया से आवद्ध हैं॥३२॥ जिस महाविष्णु के लोमकूप में समस्त विश्व निहित हैं, वह महाविराट् परमात्मा श्रीकृष्ण का सोलहवाँ अंश है॥३३॥ इसलिए सत्यरूप,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

भज सत्यं परं ब्रह्म नित्यं निर्गुणमच्युतम्। प्रकृतेः परमीशानं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥३४॥
निरीहं च निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम्। निष्कामं निर्विरोधं च नित्यानन्दं सनातनम् ॥३५॥
स्वेच्छामयं सर्वरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम्। तेजः स्वरूपं परमं दातारं सर्वसंपदाम् ॥३६॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यं शिवादीनां च योगिनाम्। सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वेषां सर्वकामदम् ॥३७॥
सर्वाधारं च सर्वज्ञं सर्वानन्दकरं परम्। सर्वधर्मप्रदं सर्वं सर्वज्ञं प्राणरूपिणम् ॥३८॥
सर्वधर्मस्वरूपं च सर्वकारणकारणम्। सुखदं मोक्षदं सारं पररूपं च भक्तिदम् ॥३९॥
दास्यदं धर्मदं चैव सर्वसिद्धिप्रदं सताम्। सर्वं तदतिरिक्तं च नश्वरं कृत्रिमं सदा ॥४०॥
परात्परतरं शुद्धं परिपूर्णतमं शिवम्। यथासुखं गच्छ वत्स भगवन्तमधोक्षजम् ॥४१॥
कृष्णेति द्व्यक्षरं मन्त्रं गृहीत्वा कृष्णदास्यदम्। पुष्करं दुष्करं गत्वा दशलक्षमिमं जप ॥४२॥
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तव। इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ॥४३॥
वैश्यो नत्वा च तां भक्त्या चागमत्पुष्करं मुने। पुष्करे दुस्तरे तप्त्वा स लेभे कृष्णमीश्वरम् ॥
भगवत्याः प्रसादेन कृष्णदासो बभूव सः ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० सुरथसमाधिमेधः सं०
प्रकृतिवैश्यसंवादकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

परब्रह्म, नित्य, निर्गुण, अच्युत, प्रकृति-से परे, ईशान, परमात्मा श्रीकृष्ण को भजो, जो ईश्वर, ईहारहित, आकाररहित, निर्विकार, निरञ्जन, निष्काम, निर्विरोध, नित्यानन्द, सनातन, स्वेच्छामय, सर्वरूप, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीरधारी, तेजःस्वरूप, समस्त सम्पत्ति के प्रदाता, शिव आदि योगियों के लिए भी ध्यान से असाध्य एवं दुराराध्य, सभी के ईश्वर, सबके पूज्य, सब की समस्त कामनायें पूरी करने वाले, सर्वाधार, सर्वज्ञाता, सर्वानन्दकारी, श्रेष्ठ, सभी धर्मों के प्रदायक, सर्वस्वरूप, सर्वज्ञ, प्राणरूप, समस्त धर्मों के स्वरूप, समस्त कारणों के कारण, सुखदायक, मोक्षप्रद, सारभाग, श्रेष्ठरूप भक्ति, दास्य और धर्म के दाता, सज्जनों को सभी सिद्धि देने वाले हैं तथा उनके अतिरिक्त सब वस्तुएँ सदा नश्वर एवं कृत्रिम हैं ॥३४-४०॥ हे वत्स ! भगवान् कृष्ण को आनन्दपूर्वक प्राप्त करो, जो पर से भी अत्यन्त परे, शुद्ध, परिपूर्णतम तथा शिव (कल्याण) रूप हैं॥४१॥ 'कृष्ण' इस दो अक्षर वाले मंत्र को प्राप्त कर, जो भगवान् श्रीकृष्ण की दास्यभक्ति देनेवाला है, दुष्कर पुष्कर तीर्थ में जाकर इसका दशलक्ष जप करो॥४२॥ दशलक्ष जप करने से तुम्हारी मंत्रसिद्धि हो जायगी। इतना कहकर वह भगवती उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गयी॥४३॥ हे मुने! अनन्तर वह वैश्य देवी को नमस्कार करके पुष्कर क्षेत्र में आया और वहाँ दुष्कर तप करके ईश्वर श्रीकृष्ण को प्राप्त किया। भगवती के प्रसाद से वह (वैश्य) भगवान् श्रीकृष्ण का दास हो गया॥४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में सुरथ, समाधि एवं मेधस् के संवाद में प्रकृति और वैश्य का संवाद कथन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

नारायण उवाच

राजा येन क्रमेणैव भेजे तां प्रकृतिं पराम्। तच्छ्रूयतां महाभाग वेदोक्तं क्रममेव च ॥१॥
स्नात्वाऽऽचम्य महाराजः कृत्वा न्यासत्रयं तदा। स्वकराङ्गाङ्गमन्त्राणां भूतशुद्धिं चकार सः ॥२॥
प्राणायामं ततः कृत्वा कृत्वा च स्वाङ्गशोधनम्। ध्यात्वा देवीं च मृन्मय्यां चकाराऽऽवाहनं तदा ॥३॥
पुनर्ध्यात्वा च भक्त्या च पूजयामास भक्तितः। देव्याश्च दक्षिणे भागे संस्थाप्य कमलालयाम् ॥४॥
संपूज्य भक्तिभावेन भक्त्या परमधार्मिकः। देवषट्कं समावाह्य देव्याश्च पुरतो घटे ॥५॥
भक्त्या च पूजयामास विधिपूर्वं च नारद। गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥६॥
देवषट्कं च संपूज्य नमस्कृत्य विचक्षणः। तदा ध्यायेन्महादेवीं ध्यानेनानेन भक्तितः ॥७॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं परं कल्पतरुं मुने। ध्यायेन्नित्यं महादेवीं मूलप्रकृतिरीश्वरीम् ॥८॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां पूज्यां वन्द्यां सनातनीम्। नारायणीं विष्णुमायां वैष्णवीं विष्णुभक्तिदाम् ॥९॥
सर्वस्वरूपां सर्वेशां सर्वाधारां परात्पराम्। सर्वविद्यासर्वमन्त्रसर्वशक्तिस्वरूपिणीम् ॥१०॥
सगुणां निर्गुणां सत्यां वरां स्वेच्छामयीं सतीम्। महाविष्णोश्च जननीं कृष्णस्यार्धाङ्गसंभवाम् ॥११॥
कृष्णप्रियां कृष्णशक्तिं कृष्णबुद्ध्यधिदेवताम्। कृष्णस्तुतां कृष्णपूज्यांकृष्णवन्द्यां कृपामयीम् ॥१२॥

अध्याय ६४

पूजाविधि और बलिदान के पशु का लक्षण कथन

नारायण बोले—हेमहाभाग! राजा ने जिस क्रमानुसार उस देवी की उपासना की, उस वेदोक्त क्रम को मैं बता रहा हूँ, सुनो ॥१॥ स्नान-आचमन करके महाराज ने तीनों न्यास—करन्यास, हृदयन्यास और अंगन्यास—को उनके मंत्रोच्चारण पूर्वक समाप्त कर भूतशुद्धि की ॥२॥ अनन्तर प्राणायाम और अपने अंगों का शोधन करके ध्यान समेत देवी का मिट्टी की मूर्ति में आवाहन किया ॥३॥ पुनः भक्तिपूर्वक ध्यान-पूजन करके उनके दक्षिण भाग में कमला (लक्ष्मी) को स्थापित किया और भक्तिभावना से उनकी पूजा करके उस परम धार्मिक राजा ने देवी के सामने घट में छहों देवों का आवाहन किया ॥४-५॥ हे नारद! भक्तिपूर्वक राजा ने गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और शिवा (पार्वती) की सविधि अर्चना सम्पन्न की ॥६॥ छहों देवों को नमस्कार-पूर्वक अर्चना करके उस बुद्धिमान् राजा ने इसी ध्यान द्वारा भक्तिपूर्वक महादेवी का ध्यान किया ॥७॥ हे मुने! वह ध्यान सामवेदानुसार एवं परम कल्पतरु रूप है—महादेवी का मैं नित्य ध्यान करता हूँ, जो मूलप्रकृति, ईश्वरी, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवादि देवों की पूज्या, वन्दनीया एवं सनातनी, नारायणी, विष्णु की माया, वैष्णवी, विष्णु-भक्तिप्रदा, सबका स्वरूप, सबका आधार, परात्परा, समस्त विद्या, समस्त मन्त्र और समस्त शक्तिस्वरूपिणी, सगुण, निर्गुण, सत्यस्वरूपा, श्रेष्ठा, स्वेच्छामयी, सती, महाविष्णु को उत्पन्न करनेवाली, भगवान् श्रीकृष्ण की आधी देह से उत्पन्न, कृष्ण की प्रिया, उनकी शक्ति, उनकी बुद्धि की अधिदेवता, कृष्ण से स्तुत, उनसे पूजिता, उनकी वन्द्या और

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तप्तकाञ्चनवर्णाभां कोटिसूर्यसमप्रभाम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम् ॥१३॥
दुर्गां शतभुजां देवीं महद्दुर्गतिनाशिनीम्। त्रिलोचनप्रियां साध्वीं त्रिगुणां च त्रिलोचनाम् ॥१४॥
त्रिलोचनप्राणरूपां शुद्धार्धचन्द्रशेखराम्। बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥१५॥
वर्तुलं वामवक्त्रं च शंभोर्मानसमोहिनीम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् ॥१६॥
नासादक्षिणभागेन बिभ्रतीं गजमौक्तिकम्। अमूल्यरत्नं बहुलं बिभ्रतीं श्रवणोपरि॥१७॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिसुशोभिताम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च सुप्रसन्नां सुमङ्गलाम् ॥१८॥
चित्रपत्रावलीरम्यकपोलयुगलोज्ज्वलाम्। रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जिताम् ॥१९॥
रत्नकङ्कणभूषाढ्यां रत्नपाशकशोभिताम्। रत्नाङ्गुलीयनिकरैः कराङ्गुलिसुयोज्ज्वलाम् ॥२०॥
पदाङ्गुलिनखासक्तालक्तारेखासुशोभनाम्। वह्निशुद्धांकाधानां गन्धचन्दनचर्चिताम् ॥२१॥
बिभ्रतीं स्तनयुग्मं च कस्तूरीबिन्दुशोभिताम्। सर्वरूपगुणवतीं गजेन्द्रमन्दगामिनीम् ॥२२॥
अतीव कान्तां शान्तां च नितान्तां योगसिद्धिषु। विधातुश्च विधात्रीं च सर्वधात्रीं च शंकरीम् ॥२३॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यामतीव सुमनोहराम्। कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना ॥२४॥

कृपामयी हैं ॥८-१२॥ तपाये हुए सुवर्ण के समान रूपरंग, करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, मन्दहासयुक्त प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली, सौ भुजा वाली दुर्गा देवी को, जो महादुर्गति की नाशिनी, त्रिलोचन (शिव) की प्रिया, सती, त्रिगुणा, तीन नेत्रवाली, त्रिलोचन (शिव) की प्राणरूप, चन्द्रशेखर की शुद्ध अर्द्धांगिनी, मालती माला से सुशोभित कबरीभार (केशपाश) को धारण करने वाली, गोलाकार सुन्दर मुख, शम्भु की मन-मोहिनी तथा रत्नों के युगल कुण्डलों से विभूषित कपोल वाली हैं ॥१३-१६॥ नासिका के दाहिने भाग में गजमुक्ता से सुशोभित, अमूल्य रत्न के अनेक भूषण कानों में धारण किये हुई, मोतियों की पंक्तियों को निन्दित करनेवाली दाँतों की पंक्तियों से सुशोभित, पके बिम्बाफल के समान ओष्ठवाली, अत्यन्त प्रसन्न, अतिमंगलमयी, चित्र विचित्र पत्रावलियों से युक्त रमणीक युगल कपोल से समुज्ज्वल, रत्नों के केयूर (बहूँटा), वलय (कड़ा) और रत्नों के नूपुरों से विभूषित, रत्नों के कंकण आदि भूषणों से अलंकृत और रत्नों के पाशक (चूड़ामणि) से सुशोभित हैं। एवं रत्नों की अंगूठियों के समूहों से देदीप्यमान हाथ की अंगुलियों वाली, नखों में लगे हुए अलते की रेखा से सुशोभित, अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र पहने, तथा सुगन्धित चन्दन से चर्चित हैं ॥१७-२१॥ कस्तूरी की बिन्दी से विभूषित युगल स्तन धारण किये हुई, सबसे सुन्दर एवं गुणवती, गजेन्द्र की भाँति मन्द-मन्द गमन करने वाली, अतीव कमनीय, शान्तस्वरूप, योगसिद्धि में नितान्त लगी रहने वाली, विधाता (ब्रह्मा) की विधात्री और सबका धारण करने वाली शंकरी (पार्वती) हैं ॥२३॥ शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख वाली, अत्यंत मनोहारिणी, कस्तूरी की बिन्दी के साथ नीचे चन्दन बिन्दु और सिन्दूर-बिन्दी से निरन्तर अंकित भाल के मध्यस्थल से समुज्ज्वल, शरत्कालीन

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सिन्दूरबिन्दुना शश्वद्भालमध्यस्थलोज्ज्वलाम् । शरन्मध्याह्नकमलप्रभामोचनलोचनाम् ॥२५॥
चारुकज्जलरेखाभ्यां सर्वतश्च समुज्ज्वलाम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितविग्रहाम् ॥२६॥
रत्नसिंहासनस्थां च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलाम् । सृष्टौ स्रष्टुः शिल्परूपां दयां पातुश्च पालने ॥२७॥
संहारकाले संहर्तुः परां संहाररूपिणीम् । निशुम्भशुम्भमथिनीं महिषासुरमर्दिनीम् ॥२८॥
पुरा त्रिपुरयुद्धे च संस्तुतां त्रिपुरारिणा । मधुकैटभयोर्युद्धे विष्णुशक्तिस्वरूपिणीम् ॥२९॥
सर्वदैत्यनिहन्त्रीं च रक्तबीजविनाशिनीम् । नृसिंहशक्तिरूपां च हिरण्यकशिपोर्वधे ॥३०॥
वराहशक्तिं वाराहे हिरण्याक्षवधे तथा । परब्रह्मस्वरूपां च सर्वशक्तिं सदा भजे ॥३१॥
इति [1]ध्यात्वा च दुर्गायै पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः । पुनर्ध्यात्वा चैव भक्त्या कुर्यादावाहनं ततः ॥३२॥
प्रकृतेः प्रतिमां धृत्वा मन्त्रमेवं पठेन्नरः । जीवन्यासं ततः कुर्यान्मनुनाऽनेन यत्नतः ॥३३॥
एह्येहि भगवत्यम्ब शिवलोकात्सनातनि । गृहाण मम पूजां च शारदीयां सुरेश्वरि ॥३४॥
इहाऽऽगच्छ जगत्पूज्ये तिष्ठ तिष्ठ महेश्वरि । हे मातरस्यामर्चायां संनिरुद्धा भवाम्बिके ॥३५॥
इहाऽऽगच्छन्तु त्वत्प्राणाश्चाऽऽधिप्राणैः सहाच्युते । इहाऽऽगच्छन्तु त्वरितं तवैव सर्वशक्तयः ॥३६॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं च दुर्गायै वह्निजायान्तमेव च । समुच्चार्योरसि प्राणाः संतिष्ठन्तु सदा शिवे ॥३७॥

मध्याह्न कमल की प्रभा से युक्त नेत्रों वाली, काजल की सुन्दर रेखाओं से चारों ओर समुज्ज्वल, करोड़ों कामदेव के लावण्य को लीलापूर्वक तिरस्कृत करने वाले शरीर वाली, रत्नसिंहासन पर विराजित, उत्तम रत्नों के मुकुटों से देदीप्यमान, स्रष्टा (ब्रह्मा) की सृष्टि में शिल्प (सृष्टि) रूप, पाता (विष्णु) के पालन में दयारूप और संहर्त्ता (शिव) के संहार-काल में महासंहार-रूपिणी निशुम्भ, शुम्भ को मथने वाली एवं महिषासुर का मर्दन करने वाली हैं ॥२४-२८॥ पूर्वकाल में त्रिपुर युद्ध के समय त्रिपुरारि (शिव) द्वारा संस्तुत हैं और मधुकैटभ के युद्ध में विष्णु-शक्तिस्वरूपिणी हैं ॥२९॥ समस्त दैत्यों का हनन करने वाली, रक्तबीज की नाशिनी एवं हिरण्यकशिपु के वध में नृसिंहशक्तिरूप, हिरण्याक्ष-वध में वाराह भगवान् की वाराह शक्तिरूप तथा परब्रह्म स्वरूप समस्त शक्तिवाली (दुर्गा) को मैं सदा भजता हूँ ॥३०-३१॥ इस प्रकार ध्यान कर बुद्धिमान् पुरुष, अपने शिर पर पुष्प रखे, भक्तिपूर्वक पुनः ध्यान करके देवी का आवाहन करे ॥३२॥ अनन्तर देवी की प्रतिमा को पकड़ कर यह मंत्र पढ़ना चाहिए और इसी मंत्र द्वारा उसे सप्रयत्न जीवन्यास भी करना चाहिए ॥३३॥ हे भगवति, हे अम्ब! हे सनातनि, हे सुरेश्वरि, आप शिवलोक से यहां आकर मेरी यह शारदीय पूजा स्वीकार करें ॥३४॥ हे जगत्पूज्ये! महेश्वरि! यहाँ आकर सुखासीन हों। हे मातः! हे अम्बिके! इस पूजन में रुकी रहें ॥३५॥ हे अच्युते! इस पूजन में अधिप्राणों के साथ तुम्हारे प्राण आयें और तुम्हारी सभी शक्तियाँ यहाँ शीघ्र पधारें ॥३६॥ हे सदाशिवे! 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गायै स्वाहा' इस मंत्र का उच्चारण कर कहे—'हे शिवे! मेरे हृदय में प्राण सदा संस्थित हों ॥३७॥ हे चण्डिके! समस्त इन्द्रियों

१ख. ० त्वा स्वशिरसि पु०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सर्वेन्द्रियाधिदेवास्त इहाऽऽगच्छन्तु चण्डिके । ते शक्तयोऽत्राऽऽगच्छन्तु इहाऽऽच्छन्तु ईश्वराः ॥३८॥
इत्यावाह्य महादेवीं परीहारं करोति च । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र तच्छृणुष्व समाहितः ॥३९॥
स्वागतं भगवत्यम्ब शिवलोकाच्छिवप्रिये । प्रसादं कुरु मां भद्रे भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥४०॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम । आगताऽसि यतो दुर्गे माहेश्वरि मदालयम् ॥४१॥
अद्य मे सफलं जन्म सार्थकं जीवनं मम । पूजयामि यतो दुर्गां पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥४२॥
भारते भवतीं पूज्यां दुर्गां यः पूजयेद्बुधः । सोऽन्ते याति च गोलोकं परमैश्वर्यवानिह ॥४३॥
कृत्वा च वैष्णवीपूजां विष्णुलोकं व्रजेत्सुधीः । माहेश्वरीं च संपूज्य शिवलोकं च गच्छति ॥४४॥
सात्त्विकी राजसी चैव त्रिधा पूजा च तामसी । भगवत्याश्च वेदोक्ता चोत्तमा मध्यमाऽधमा ॥४५॥
सात्त्विकी वैष्णवानां च शाक्तादीनां च राजसी । अदीक्षितानामसतामन्येषां तामसी स्मृता ॥४६॥
जीवहत्याविहीना या वरा पूजा तु वैष्णवी । वैष्णवा यान्ति गोलोकं वैष्णवीबलिदानतः ॥४७॥
माहेश्वरी राजसी च बलिदानसमन्विता । शाक्तादयो राजसाश्च कैलासं यान्ति ते तथा ॥४८॥
किरातास्त्रिदिवं यान्ति तामस्या पूजया तया । त्वमेव जगतां माता चतुर्वर्गफलप्रदा
सर्वशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः ॥४९॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्वं च परात्परा । सुखदा मोक्षदा भद्रा कृष्णभक्तिप्रदा सदा ॥५०॥

के अधीश्वरदेव यहाँ आयें । हे चण्डिके ! तुम्हारी शक्तियाँ तथा ईश्वर यहाँ आयें ॥३८॥ हे विप्रेन्द्र ! इस प्रकार महादेवी का आवाहन करके इसी मंत्र से परीहार करना चाहिए, उसे कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥३९॥ हे भगवति ! हे अम्ब ! हे शिवप्रिये ! शिवलोक से आओ, तुम्हारा स्वागत है। हे भद्रे ! मेरे ऊपर कृपा करो। हे भद्रकालि ! तुम्हें नमस्कार है ॥४०॥ हे दुर्गे ! हे माहेश्वरि ! आज हम धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, मेरा जीवन सफल हो गया क्योंकि मेरे गृह में आपका आगमन हुआ है ॥४१॥ आज मेरा जन्म सफल है, मेरा जीवन सार्थक हो गया क्योंकि इस पुण्यक्षेत्र भारत में मैं दुर्गाजी की पूजा कर रहा हूँ ॥४२॥ जो इस भारत में पूज्य दुर्गा जी की अर्चना करता है, वह विद्वान् परम ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर अन्त में गोलोक प्राप्त करता है ॥४३॥ विद्वान् को वैष्णवों की पूजा करने पर विष्णुलोक की प्राप्ति होती है और माहेश्वरी की आराधना करने पर शिवलोक को वह जाता है ॥४४॥ भगवती की वेदोक्त अर्चना सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेद से उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की होती है ॥४५॥ उसमें वैष्णवों की सात्त्विकी, शाक्त आदि लोगों की राजसी और दीक्षाहीन असज्जन एवं अन्य लोगों के लिए तामसी पूजा बतायी गयी है ॥४६॥ जीवहत्या विहीन होने के नाते वैष्णवी पूजा श्रेष्ठ बतायी गयी है, वैष्णवी बलि द्वारा वैष्णवों को गोलोक प्राप्त होता है ॥४७॥ माहेश्वरी की राजसी अर्चना और बलि प्रदान करने से राजस शाक्त आदि कैलास की यात्रा करते हैं और किरातगण तामसी देवी की आराधना द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं । चतुर्वर्ग (धर्म अर्थ , काम और मोक्ष) फल प्रदान करने वाली तुम्हीं जगत् की माता हो ॥४८-४९॥ तुम परमात्मा श्रीकृष्ण की सर्वशक्ति रूप हो, जो जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि का नाश करने वाली, पर से भी श्रेष्ठ, सुख देने वाली, मोक्ष देने वाली, कल्याणरूपा तथा सदा कृष्णभक्तिदायिका हो ॥५०॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अमूल्यरत्नसंकल्पं नानाचित्रविराजितम्। वरं सिंहासनश्रेष्ठं गृह्यतां शंकरप्रिये॥६५॥
अनन्तसूत्रप्रभवमीश्वरेच्छाविनिर्मितम्। ज्वलदग्निविशुद्धं च वसनं गृह्यतां शिवे॥६६॥
अमूल्यरत्नपात्रस्थं निर्मलं जाह्नवीजलम्। पादप्रक्षालनार्थाय दुर्गे देवि प्रगृह्यताम्॥६७॥
सुगन्धामलकीस्निग्धद्रवमेतत्सुदुर्लभम्। सुपक्वं विष्णुतैलं च गृह्यतां परमेश्वरि॥६८॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धिद्रुतचन्दनम्। सुवासितं जगन्मातर्गृह्यतामनुलेपनम्॥६९॥
माध्वीकं रत्नपात्रस्थं सुपवित्रं सुमङ्गलम्। मधुपर्कं महादेवि गृह्यतां प्रीतिपूर्वकम्॥७०॥
सुगन्धमूलचूर्णं च सुगन्धद्रव्यसंयुतम्। सुपवित्रं मङ्गलार्हं देवि गन्धं गृहाण मे॥७१॥
पवित्रं शङ्खपात्रस्थं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्। स्वर्गमन्दाकिनीतोयमर्घ्यं चण्डि गृहाण मे॥७२॥
सुगन्धिपुष्पश्रेष्ठं च पारिजाततरूद्भवम्। नानापुष्पादिमाल्यानि गृह्यतां जगदम्बिके॥७३॥
दिव्यं सिद्धान्नमामान्नं पिष्टकं पायसादिकम्। मिष्टान्नं लड्डुकफलं नैवेद्यं गृह्यतां शिवे॥७४॥
सुवासितं शीततोयं कर्पूरादिसुसंस्कृतम्। मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां शैलकन्यके॥७५॥
गुवाकपर्णचूर्णं च कर्पूरादिसुवासितम्। सर्वभोगवरं रम्यं ताम्बूलं देवि गृह्यताम्॥७६॥
अमूल्यरत्नसारैश्च खचितं चेश्वरेच्छया। सर्वाङ्गशोभनकरं भूषणं देवि गृह्यताम्॥७७॥

भाँति के चित्रों से सुशोभित यह श्रेष्ठ एवं सुन्दर सिंहासन ग्रहण करो॥६५॥ हे शिवे! अनन्त सूत्रों से रचित, ईश्वर की इच्छा से बना हुआ और प्रज्वलित अग्नि की भाँति विशुद्ध इस वस्त्र को अपनाने की कृपा करो॥६६॥ हे दुर्गे देवि! अमूल्य रत्न के पात्र में स्थित एवं निर्मल इस गंगाजल को चरण प्रक्षालन के लिए स्वीकार करो॥६७॥ हे परमेश्वरि! सुगन्ध मिश्रित आँवले के रस से अत्यन्त पकाया हुआ यह अतिदुर्लभ विष्णुतैल स्वीकार करो॥६८॥ हे जगन्मातः! कस्तूरी, कुंकुम से आर्द्र और सुगन्धित चन्दन से सुवासित यह अनुलेपन ग्रहण करो॥६९॥ हे महादेवि! मधु का बना, रत्न के पात्र में स्थित, पवित्र एवं अतिमंगल रूप यह मधुपर्क प्रीतिपूर्वक ग्रहण करो॥७०॥ हे देवि! सुगन्ध के मूल का चूर्ण एवं सुगन्धित द्रव्य से युक्त, अति पवित्र और मंगलमय गन्ध को ग्रहण करो॥७१॥ हे चण्डि! शंखपात्र में स्थित, दूर्वा, पुष्प एवं अक्षतयुक्त स्वर्ग की मन्दाकिनी (गंगा) जल का अर्घ्य ग्रहण करो॥७२॥ हे जगदम्बिके! पारिजात के सुगन्धित तथा उत्तम पुष्प एवं अनेक पुष्पों आदि से बनी हुई मालाओं को स्वीकार करो॥७३॥ हे शिवे! दिव्य सिद्धान्न, कच्चा अन्न, पीठी तथा पायस आदि समेत लड्डू आदि मिष्टान्न नैवेद्य को ग्रहण करो॥७४॥ हे शैलकन्ये! सुवासित और कपूर आदि से सुसंस्कृत यह शीतल जल भक्तिपूर्वक तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥७५॥ हे देवि! सुपारी के पत्ते के चूर्ण से मिश्रित, कर्पूर आदि से सुवासित, सब भोगों में श्रेष्ठ इस रम्य ताम्बूल को ग्रहण करो॥७६॥ हे देवि! ईश्वरेच्छया अमूल्य रत्नों के सारभाग से खचित और सर्वांग को सुशोभित करने वाले इस आभूषण को स्वीकार करो॥७७॥ हे देवि! वृक्ष के गोंद के चूर्ण, सुगन्धित वस्तु

---

१ क. ०माषाद्यं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नारायणि महामाये दुर्गे दुर्गतिनाशिनि । दुर्गेति स्मृतिमात्रेण याति दुर्गं नृणामिह ॥५१॥
इति कृत्वा परीहारं देव्या वामे च साधकैः । त्रिपद्या उपरिष्टात्तु शङ्खं संस्थापयेत्तु सः ॥५२॥
तत्र दत्त्वा जलं पूर्णं दूर्वां पुष्पं च चन्दनम् । धृत्वा दक्षिणहस्तेन मन्त्रमेवं पठेन्नरः ॥५३॥
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् । प्रभूतः शङ्खचूडात्त्वं पुराकल्पे पवित्रकः ॥५४॥
ततोऽर्घ्यपात्रं संस्थाप्य विधिनाऽनेन पण्डितः । दत्त्वा संपूजयेद्देवीमुपचाराणि षोडश ॥५५॥
त्रिकोणमण्डलं कृत्वा सजलेन कुशेन च । कूर्मं शेषं धरित्रीं च पूजयेत्तत्र धार्मिकः ॥५६॥
त्रिपदीं स्थापयेत्तत्र त्रिपद्यां शङ्खमेव च । शङ्खे त्रिभागतोयं च दत्त्वा संपूजयेत्ततः ॥५७॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि चन्द्रभागे च कौशिकि ॥५८॥
स्वर्णरेखे कनखले पारिभद्रे च गण्डकि । श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे पम्पे चम्पे च गोमति ॥५९॥
पद्मावति त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रभे । शतह्रदे चेलगङ्गे जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु ॥६०॥
वह्निं सूर्यं च चन्द्रं च विष्णुं च वरुणं शिवम् । पूजयेत्तत्र तोये च तुलस्या चन्दनेन च ॥६१॥
नैवेद्यानि च सर्वाणि प्रोक्षयेत्तज्जलेन च । प्रत्येकं वै ततो दद्यादुपचारांश्च षोडश ॥६२॥
आसनं वसनं पाद्यं स्नानीयमनुलेपनम् । मधुपर्कं गन्धमर्घ्यं पुष्पं नैवेद्यमीप्सितम् ॥६३॥
पुनराचमनीयं च ताम्बूलं रत्नभूषणम् । धूपं प्रदीपं तल्पं चेत्युपचारास्तु षोडश ॥६४॥

॥५०॥ हे नारायणि ! हे महामाये ! हे दुर्गे ! हे दुर्गतिनाशिनि ! इस प्रकार दुर्गा के स्मरण मात्र से मनुष्यों का दुर्ग (कठिन) दुःख नष्ट हो जाता है ॥५१॥ इस प्रकार साधक को देवी के बाँयें भाग में परीहार करके त्रिपदी (पीतल की बनी हुई तीन पैर की बैठकी) पर शंख स्थापित करना चाहिए, जिसमें दूर्वा, पुष्प और चन्दन समेत जल भरा हो उसे दाहिने हाथ से पकड़ कर यह मंत्र पढ़े—हे शंख ! तुम पुण्यों के पुण्य और मंगलों के मंगल हो । हे पवित्रक ! पूर्व कल्प में तुम शंखचूड़ द्वारा उत्पन्न हुए हो ॥५२-५४॥ पश्चात् पण्डित को चाहिए कि इसी विधि के द्वारा अर्घ्यपात्र स्थापित कर देवी का षोडशोपचार पूजन करें ॥५५॥ एवं कुश-जल समेत त्रिकोण मण्डल बनाकर उसमें कच्छप, शेष और पृथिवी का पूजन धार्मिक को करना चाहिए ॥५६॥ पुनः त्रिपदी (तिपायी) रखकर उस पर शंख रखे, जिसमें तीन भाग जल रखकर अर्चना करे—हे गंगे ! हे यमुने ! हे गोदावरि ! हे सरस्वति ! हे नर्मदे ! हे सिन्धु ! हे कावेरि ! हे चन्द्रभागे ! हे कौशिकी ! हे स्वर्णरेखे ! हे कनखले ! हे पारिभद्रे ! हे गण्डकि ! हे श्वेतगंगे ! हे चन्द्ररेखे ! हे पम्पे ! हे चम्पे ! हे गोमति ! हे पद्मावति ! हे त्रिपर्णाशे ! हे विपाशे ! हे विरजे ! हे प्रभे ! हे शतह्रदे ! हे चेलगंगे ! इस जल में आवास करो ॥५७-६०॥ अनन्तर उस जल में तुलसी और चन्दन द्वारा अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण, शिव की पूजा करे और उसी जल द्वारा सभी नैवेद्य का प्रक्षालन करे ॥६१॥ पुनः प्रत्येक देव की सोलह उपचार से अर्चना करे—आसन, वस्त्र, पाद्य, स्नानीय जल, अनुलेपन, मधुपर्क, गन्ध, अर्घ्य, पुष्प, मनोनीत नैवेद्य, आचमनीय जल, ताम्बूल, रत्नभूषण, धूप, प्रदीप, और शय्या यही सोलह उपचार हैं ॥६२-६४॥ हे शंकरप्रिये ! अमूल्य रत्नों से खचित और अनेक

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अमूल्यरत्नसंकॢप्तं नानाचित्रविराजितम्। वरं सिंहासनश्रेष्ठं गृह्यतां शंकरप्रिये॥६५॥
अनन्तसूत्रप्रभवमीश्वरेच्छाविनिर्मितम्। ज्वलदग्निविशुद्धं च वसनं गृह्यतां शिवे॥६६॥
अमूल्यरत्नपात्रस्थं निर्मलं जाह्नवीजलम्। पादप्रक्षालनार्थाय दुर्गे देवि प्रगृह्यताम्॥६७॥
सुगन्धामलकीस्निग्धद्रवमेतत्सुदुर्लभम्। सुपक्वं विष्णुतैलं च गृह्यतां परमेश्वरि॥६८॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धिद्रुतचन्दनम्। सुवासितं जगन्मातर्गृह्यतामनुलेपनम्॥६९॥
माध्वीकं रत्नपात्रस्थं सुपवित्रं सुमङ्गलम्। मधुपर्कं महादेवि गृह्यतां प्रीतिपूर्वकम्॥७०॥
सुगन्धमूलचूर्णं च सुगन्धद्रव्यसंयुतम्। सुपवित्रं मङ्गलार्हं देवि गन्धं गृहाण मे॥७१॥
पवित्रं शङ्खपात्रस्थं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्। स्वर्गमन्दाकिनीतोयमर्घ्यं चण्डि गृहाण मे॥७२॥
सुगन्धिपुष्पश्रेष्ठं च पारिजाततरूद्भवम्। नानापुष्पादिमाल्यानि गृह्यतां जगदम्बिके॥७३॥
दिव्यं सिद्धान्नमामान्नं[1] पिष्टकं पायसादिकम्। मिष्टान्नं लड्डुकफलं नैवेद्यं गृह्यतां शिवे॥७४॥
सुवासितं शीततोयं कर्पूरादिसुसंस्कृतम्। मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां शैलकन्यके॥७५॥
गुवाकपर्णचूर्णं च कर्पूरादिसुवासितम्। सर्वभोगवरं रम्यं ताम्बूलं देवि गृह्यताम्॥७६॥
अमूल्यरत्नसारैश्च खचितं चेश्वरेच्छया। सर्वाङ्गशोभनकरं भूषणं देवि गृह्यताम्॥७७॥

भाँति के चित्रों से सुशोभित यह श्रेष्ठ एवं सुन्दर सिंहासन ग्रहण करो॥६५॥ हे शिवे! अनन्त सूत्रों से रचित, ईश्वर की इच्छा से बना हुआ और प्रज्वलित अग्नि की भाँति विशुद्ध इस वस्त्र को अपनाने की कृपा करो॥६६॥ हे दुर्गे देवि! अमूल्य रत्न के पात्र में स्थित एवं निर्मल इस गंगाजल को चरण प्रक्षालन के लिए स्वीकार करो॥६७॥ हे परमेश्वरि! सुगन्ध मिश्रित आँवले के रस से अत्यन्त पकाया हुआ यह अतिदुर्लभ विष्णुतैल स्वीकार करो॥६८॥ हे जगन्मातः! कस्तूरी, कुंकुम से आर्द्र और सुगन्धित चन्दन से सुवासित यह अनुलेपन ग्रहण करो॥६९॥ हे महादेवि! मधु का बना, रत्न के पात्र में स्थित, पवित्र एवं अतिमंगल रूप यह मधुपर्क प्रीतिपूर्वक ग्रहण करो॥७०॥ हे देवि! सुगन्ध के मूल का चूर्ण एवं सुगन्धित द्रव्य से युक्त, अति पवित्र और मंगलमय गन्ध को ग्रहण करो॥७१॥ हे चण्डि! शंखपात्र में स्थित, दूर्वा, पुष्प एवं अक्षतयुक्त स्वर्ग की मन्दाकिनी (गंगा) जल का अर्घ्य ग्रहण करो॥७२॥ हे जगदम्बिके! पारिजात के सुगन्धित तथा उत्तम पुष्प एवं अनेक पुष्पों आदि से बनी हुई मालाओं को स्वीकार करो॥७३॥ हे शिवे! दिव्य सिद्धान्न, कच्चा अन्न, पीठी तथा पायस आदि समेत लड्डू आदि मिष्टान्न नैवेद्य को ग्रहण करो॥७४॥ हे शैलकन्ये! सुवासित और कपूर आदि से सुसंस्कृत यह शीतल जल भक्तिपूर्वक तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥७५॥ हे देवि! सुपारी के पत्ते के चूर्ण से मिश्रित, कर्पूर आदि से सुवासित, सब भोगों में श्रेष्ठ इस रम्य ताम्बूल को ग्रहण करो॥७६॥ हे देवि! ईश्वरेच्छया अमूल्य रत्नों के सारभाग से खचित और सर्वांग को सुशोभित करने वाले इस आभूषण को स्वीकार करो॥७७॥ हे देवि! वृक्ष के गोंद के चूर्ण, सुगन्धित वस्तु

---

१ क. ०माषान्नं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नारायणि महामाये दुर्गे दुर्गतिनाशिनि। दुर्गेति स्मृतिमात्रेण याति दुर्गं नृणामिह॥५१॥
इति कृत्वा परीहारं देव्या वामे च साधकैः। त्रिपद्या उपरिष्टात्तु शङ्खं संस्थापयेत्तु सः॥५२॥
तत्र दत्त्वा जलं पूर्णं दूर्वां पुष्पं च चन्दनम्। धृत्वा दक्षिणहस्तेन मन्त्रमेवं पठेन्नरः॥५३॥
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्। प्रभूतः शङ्खचूडात्त्वं पुराकल्पे पवित्रकः॥५४॥
ततोऽर्घ्यपात्रं संस्थाप्य विधिनाऽनेन पण्डितः। दत्त्वा संपूजयेद्देवीमुपचाराणि षोडश॥५५॥
त्रिकोणमण्डलं कृत्वा सजलेन कुशेन च। कूर्मं शेषं धरित्रीं च पूजयेत्तत्र धार्मिकः॥५६॥
त्रिपदीं स्थापयेत्तत्र त्रिपद्यां शङ्खमेव च। शङ्खे त्रिभागतोयं च दत्त्वा संपूजयेत्ततः॥५७॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि चन्द्रभागे च कौशिकि॥५८॥
स्वर्गरेखे कनखले पारिभद्रे च गण्डकि। श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे पम्पे चम्पे च गोमति॥५९॥
पद्मावति त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रभे। शतह्रदे चेलगङ्गे जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु॥६०॥
वह्निं सूर्यं च चन्द्रं च विष्णुं च वरुणं शिवम्। पूजयेत्तत्र तोये च तुलस्या चन्दनेन च॥६१॥
नैवेद्यानि च सर्वाणि प्रोक्षयेत्तज्जलेन च। प्रत्येकं वै ततो दद्यादुपचारांश्च षोडश॥६२॥
आसनं वसनं पाद्यं स्नानीयमनुलेपनम्। मधुपर्कं गन्धमर्घ्यं पुष्पं नैवेद्यमीप्सितम्॥६३॥
पुनराचमनीयं च ताम्बूलं रत्नभूषणम्। धूपं प्रदीपं तल्पं चेत्युपचारास्तु षोडश॥६४॥

॥५०॥ हे नारायणि! हे महामाये! हे दुर्गे! हे दुर्गतिनाशिनि! इस प्रकार दुर्गा के स्मरण मात्र से मनुष्यों का दुर्ग (कठिन) दुःख नष्ट हो जाता है॥५१॥ इस प्रकार साधक को देवी के बाँयें भाग में परीहार करके त्रिपदी (पीतल की बनी हुई तीन पैर की बैठकी) पर शंख स्थापित करना चाहिए, जिसमें दूर्वा, पुष्प और चन्दन समेत जल भरा हो उसे दाहिने हाथ से पकड़ कर यह मंत्र पढ़े—हे शंख! तुम पुण्यों के पुण्य और मंगलों के मंगल हो। हे पवित्रक! पूर्व कल्प में तुम शंखचूड़ द्वारा उत्पन्न हुए हो॥५२-५४॥ पश्चात् पण्डित को चाहिए कि इसी विधि के द्वारा अर्घ्यपात्र स्थापित कर देवी का षोडशोपचार पूजन करें॥५५॥एवं कुश-जल समेत त्रिकोण मण्डल बनाकर उसमें कच्छप, शेष और पृथिवी का पूजन धार्मिक को करना चाहिए॥५६॥ पुनः त्रिपदी (तिपायी) रखकर उस पर शंख रखे, जिसमें तीन भाग जल रखकर अर्चना करे—हे गंगे! हे यमुने! हे गोदावरि! हे सरस्वति! हे नर्मदे! हे सिन्धु! हे कावेरि! हे चन्द्रभागे! हे कौशिकी! हे स्वर्णरेखे! हे कनखले! हे पारिभद्रे! हे गण्डकि! हे श्वेतगंगे! हे चन्द्ररेखे! हे पम्पे! हे चम्पे! हे गोमति! हे पद्मावति! हे त्रिपर्णाशे! हे विपाशे! हे विरजे! हे प्रभे! हे शतह्रदे! हे चेलगंगे! इस जल में आवास करो॥५७-६०॥ अनन्तर उस जल में तुलसी और चन्दन द्वारा अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण, शिव की पूजा करे और उसी जल द्वारा सभी नैवेद्य का प्रक्षालन करे॥६१॥ पुनः प्रत्येक देव की सोलह उपचार से अर्चना करे—आसन, वस्त्र, पाद्य, स्नानीय जल, अनुलेपन, मधुपर्क, गन्ध, अर्घ्य, पुष्प, मनोनीत नैवेद्य, आचमनीय जल, ताम्बूल, रत्नभूषण, धूप, प्रदीप, और शय्या यही सोलह उपचार हैं॥६२-६४॥ हे शंकरप्रिये! अमूल्य रत्नों से खचित और अनेक

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अमूल्यरत्नसंक्लृप्तं नानाचित्रविराजितम्। वरं सिंहासनश्रेष्ठं गृह्यतां शंकरप्रिये॥६५॥
अनन्तसूत्रप्रभवमीश्वरेच्छाविनिर्मितम्। ज्वलदग्निविशुद्धं च वसनं गृह्यतां शिवे॥६६॥
अमूल्यरत्नपात्रस्थं निर्मलं जाह्नवीजलम्। पादप्रक्षालनार्थाय दुर्गे देवि प्रगृह्यताम्॥६७॥
सुगन्धामलकीस्निग्धद्रवमेतत्सुदुर्लभम्। सुपक्वं विष्णुतैलं च गृह्यतां परमेश्वरि॥६८॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धिद्रुतचन्दनम्। सुवासितं जगन्मातर्गृह्यतामनुलेपनम्॥६९॥
माध्वीकं रत्नपात्रस्थं सुपवित्रं सुमङ्गलम्। मधुपर्कं महादेवि गृह्यतां प्रीतिपूर्वकम्॥७०॥
सुगन्धमूलचूर्णं च सुगन्धद्रव्यसंयुतम्। सुपवित्रं मङ्गलार्हं देवि गन्धं गृहाण मे॥७१॥
पवित्रं शङ्खपात्रस्थं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्। स्वर्गमन्दाकिनीतोयमर्घ्यं चण्डि गृहाण मे॥७२॥
सुगन्धिपुष्पश्रेष्ठं च पारिजाततरूद्भवम्। नानापुष्पादिमाल्यानि गृह्यतां जगदम्बिके॥७३॥
दिव्यं सिद्धान्नमामान्नं पिष्टकं पायसादिकम्। मिष्टान्नं लड्डुकफलं नैवेद्यं गृह्यतां शिवे॥७४॥
सुवासितं शीततोयं कर्पूरादिसुसंस्कृतम्। मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां शैलकन्यके॥७५॥
गुवाकपर्णचूर्णं च कर्पूरादिसुवासितम्। सर्वभोगवरं रम्यं ताम्बूलं देवि गृह्यताम्॥७६॥
अमूल्यरत्नसारैश्च खचितं चेश्वरेच्छया। सर्वाङ्गशोभनकरं भूषणं देवि गृह्यताम्॥७७॥

भाँति के चित्रों से सुशोभित यह श्रेष्ठ एवं सुन्दर सिंहासन ग्रहण करो॥६५॥ हे शिवे! अनन्त सूत्रों से रचित, ईश्वर की इच्छा से बना हुआ और प्रज्वलित अग्नि की भाँति विशुद्ध इस वस्त्र को अपनाने की कृपा करो॥६६॥ हे दुर्गे देवि! अमूल्य रत्न के पात्र में स्थित एवं निर्मल इस गंगाजल को चरण प्रक्षालन के लिए स्वीकार करो॥६७॥ हे परमेश्वरि! सुगन्ध मिश्रित आँवले के रस से अत्यन्त पकाया हुआ यह अतिदुर्लभ विष्णुतैल स्वीकार करो। ॥६८॥ हे जगन्मातः! कस्तूरी, कुंकुम से आर्द्र और सुगन्धित चन्दन से सुवासित यह अनुलेपन ग्रहण करो॥६९॥ हे महादेवि! मधु का बना, रत्न के पात्र में स्थित, पवित्र एवं अतिमंगल रूप यह मधुपर्क प्रीतिपूर्वक ग्रहण करो॥७०॥ हे देवि! सुगन्ध के मूल का चूर्ण एवं सुगन्धित द्रव्य से युक्त, अति पवित्र और मंगलमय गन्ध को ग्रहण करो॥७१॥ हे चण्डि! शंखपात्र में स्थित, दूर्वा, पुष्प एवं अक्षतयुक्त स्वर्ग की मन्दाकिनी (गंगा) जल का अर्घ्य ग्रहण करो॥७२॥ हे जगदम्बिके! पारिजात के सुगन्धित तथा उत्तम पुष्प एवं अनेक पुष्पों आदि से बनी हुई मालाओं को स्वीकार करो॥७३॥ हे शिवे! दिव्य सिद्धान्न, कच्चा अन्न, पीठी तथा पायस आदि समेत लड्डू आदि मिष्टान्न नैवेद्य को ग्रहण करो॥७४॥ हे शैलकन्ये! सुवासित और कपूर आदि से सुसंस्कृत यह शीतल जल भक्तिपूर्वक तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥७५॥ हे देवि! सुपारी के पत्ते के चूर्ण से मिश्रित, कर्पूर आदि से सुवासित, सब भोगों में श्रेष्ठ इस रम्य ताम्बूल को ग्रहण करो॥७६॥ हे देवि! ईश्वरेच्छया अमूल्य रत्नों के सारभाग से खचित और सर्वांग को सुशोभित करने वाले इस आभूषण को स्वीकार करो॥७७॥ हे देवि! वृक्ष के गोंद के चूर्ण, सुगन्धित वस्तु

---

१ क. ०भाषाद्यं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तरुनिर्यासचूर्णं च गन्धवस्तुसमन्वितम् । हुताशनशिखाशुद्धं धूपं च देवि गृह्यताम् ॥७८॥
दिव्यरत्नविशेषं च सान्द्रध्वान्तनिवारकम् । सुपवित्रं प्रदीपं च गृह्यतां परमेश्वरि ॥७९॥
रत्नसारगणाकीर्णं दिव्यं पर्यङ्कमुत्तमम् । सूक्ष्मवस्त्रैश्च संस्यूतं देवि तल्पं प्रगृह्यताम् ॥८०॥
एवं संपूज्य तां दुर्गां दद्यात्पुष्पाञ्जलिं मुने । ततोऽष्टनायिकादेवीर्यत्नतः परिपूजयेत् ॥८१॥
उग्रचण्डां प्रचण्डां च चण्डोग्रां चण्डनायिकाम् । अतिचण्डां च चामुण्डां चण्डां चण्डवतीं तथा ॥८२॥
पद्मे चाष्टदले चैताः प्रागादिक्रमतस्तथा । पञ्चोपचारैः संपूज्य भैरवान्मध्यदेशतः ॥८३॥
आदौ महाभैरवं च तथा संहारभैरवम् । असिताङ्गं भैरवं च रुरुभैरवमेव च ॥८४॥
कालभैरवमप्येवं क्रोधभैरवमेव च । ताम्रचूडं चन्द्रचूडमन्ते वै भैरवद्वयम् ॥८५॥
एतान्संपूज्य मध्ये वै नवशक्तीश्च पूजयेत् । तत्र पद्मे चाष्टदले मध्ये वै भक्तिपूर्वकम् ॥८६॥
ब्रह्माणीं वैष्णवीं चैव रौद्रीं माहेश्वरीं तथा । नारसिंहीं च वाराहीमिन्द्राणीं कार्तिकीं[1] तथा ॥८७॥
सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रधानां सर्वमङ्गलाम् । नवशक्तीश्च संपूज्य घटे देवांश्च पूजयेत् ॥८८॥
शंकरं कार्तिकेयं च सूर्यं सोमं हुताशनम् । वायुं च वरुणं चैव देव्याश्चेटीं बटुं तथा ॥८९॥
चतुःषष्टि योगिनीनां संपूज्य विधिपूर्वकम् । यथाशक्ति बलिं दत्त्वा करोति स्तवनं बुधः ॥९०॥
कवचं च गले बध्वा पठित्वा भक्तिपूर्वकम् । ततः कृत्वा परीहारं नमस्कुर्याद्विचक्षणः ॥९१॥

मिश्रित एवं अग्नि की शिखा से शुद्ध इस धूप को ग्रहण करो ॥७८॥ हे परमेश्वरि ! दिव्य एवं रत्न विशेष द्वारा रचित तथा घने अन्धकार का नाशक यह अति पवित्र दीप ग्रहण करें ॥७९॥ हे देवि ! रत्नों के सार भाग से आच्छन्न यह दिव्य परमोत्तम पलंग, जो सूक्ष्म वस्त्रों से सिली हुई है, शय्या के रूप में स्वीकार करो ॥८०॥ हे मुने ! इस भाँति दुर्गा जी की अर्चना करके उन्हें पुष्पाञ्जलि अर्पित करे । पश्चात् आठों नायिकाओं की यत्नपूर्वक अर्चना करे ॥८१॥ उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, अतिचण्डा, चामुण्डा, चण्डा और चण्डवती ये ही आठों नायिकायें हैं। अष्टदल वाले कमल में पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से पञ्चोपचार द्वारा इनकी और मध्य स्थित भैरवों की अर्चा सुसम्पन्न करे ॥८२-८३॥ सर्वप्रथम महाभैरव, संहारभैरव, असित (काले) अंग वाले भैरव, रुरुभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूड भैरव और चन्द्रचूडभैरव की अर्चना करने के उपरान्त उसी अष्टदल कमल के मध्यस्थल में नव शक्तियों की भी भक्तिपूर्वक पूजा करे ॥८४-८६॥ ब्रह्माणी, वैष्णवी, रौद्री, माहेश्वरी, नारसिंही, वाराही, इन्द्राणी, कार्तिकी और सर्वशक्तिस्वरूपा प्रधान सर्वमंगला इन नव शक्तियों की अर्चना करके कलश में देवों की पूजा करे ॥८७-८८॥ शंकर, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण, देवी की चेटी (दासी) बटुक और चौंसठ योगिनियों की सविधान अर्चना करके यथाशक्ति बलिप्रदान करने के उपरान्त विद्वान् को उनकी स्तुति करनी चाहिये । ॥८९-९०॥ कवच को गले में बाँधकर भक्तिपूर्वक उसका पाठ करके परीहार करने के उपरान्त नमस्कार करे ॥९१॥

---

१ क. शक्तिकीं ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

बलिदानविधानं च श्रूयतां मुनिसत्तम। मायातिं महिषं छागं दद्यान्मेषादिकं शुभम्॥९२॥
सहस्रवर्षं सुप्रीता दुर्गा मायातिदानतः। महिषाच्छतवर्षं च दशवर्षं च च्छागलात्॥९३॥
वर्षं मेषेण कूष्माण्डैः पक्षिभिर्हरिणैस्तथा। दशवर्षं कृष्णसारैः सहस्राब्दं च गण्डकैः॥९४॥
कृत्रिमैः पिष्टनिर्माणैः षण्मासं पशुभिस्तथा। मासं सुपक्वादिफलैरक्षतैरिति नारद॥९५॥
यूवकं व्याधिहीनं च सशृङ्गं लक्षणान्वितम्। विशुद्धमविकाराङ्गं सुवर्णं पुष्टमेव च॥९६॥
शिशुना बलिना दातुर्हन्ति पुत्रं च चण्डिका। वृद्धेन वै गुरुजनं कृशेनापीष्टबान्धवान्॥९७॥
धनं चैवाधिकाङ्गेन हीनाङ्गेन प्रजास्तथा। कामिनीं शृङ्गभङ्गेन काणेन भ्रातरं तथा॥९८॥
घुटिकेन भवेन्मृत्युर्विघ्नं स्याच्चित्रमस्तकैः। हन्ति मित्रं ताम्रपृष्ठैर्भ्रष्टश्रीः पुच्छहीनतः॥९९॥
मायातीनां स्वरूपं च श्रूयतां मुनिसत्तम। वक्ष्याम्यथर्ववेदोक्तं फलहानिर्व्यतिक्रमे॥१००॥
पितृमातृविहीनं च युवकं व्याधिवर्जितम्। विवाहितं दीक्षितं च परदारविहीनकम्॥१०१॥
अजारजं विशुद्धं च सच्छूद्रपरिपोषितम्। तद्बन्धुभ्यो धनं दत्त्वा क्रीतं मूल्यातिरेकतः॥१०२॥
स्नापयित्वा च तं कर्ता पूजयेद्वस्त्रचन्दनैः। माल्यैर्धूपैश्च सिन्दूरैर्दधिगोरोचनादिभिः॥१०३॥
तं च वर्षं भ्रामयित्वा भृत्यद्वारेण यत्नतः। वर्षान्ते च समुत्सृज्य दुर्गायै तं निवेदयेत्॥१०४॥

सत्तम ! बलिदान का विधान मैं बता रहा हूँ, सुनो। मायाति (क्रीत मनुष्य), महिष (भैंसे), छाग (बकरे) और भेंड़ आदि की शुभ बलि उन्हें समर्पित करे। क्योंकि मायाति के दान से एक सहस्र वर्ष, महिष के दान से सौ वर्ष, बकरे के दान से दश वर्ष, भेंड़ से एक वर्ष और कूष्माण्ड, पक्षी, तथा हरिण से एक वर्ष, कृष्णसार (मृग) से दश वर्ष, गण्डक (गैंड़े) से सहस्रवर्ष, आटे के कृत्रिम पशु से छह मास, सुन्दर पके फल आदि से एक मास तक दुर्गा देवी अति प्रसन्न रहती हैं। हे नारद ! रोगरहित, युवा, शृंग सहित, लक्षणों से भूषित, विशुद्ध, निर्दोष अंगवाला, सुन्दर वर्ण वाला और हृष्ट-पुष्ट पशु बलिदान के लिए होना चाहिए ॥९२-९६॥ शिशु के बलिदान से चण्डिका यजमान के पुत्र का नाश करती है, उसी भाँति वृद्ध से गुरु जन का, दुर्बल से इष्टबन्धुवर्ग का, अधिक अंग वाले से धन का, हीनांग से प्रजा का, टूटी सींग वाले से स्त्री का और काने से भाई का नाश करती है ॥९७-९८॥ घुटिक (एड़ी के ऊपर की गाँठ) भंग रहने से यजमान की मृत्यु होती है, चित्रमस्तक से कार्य में बाधा, तांबे की भाँति पीठ वाले से मित्र का नाश और पुच्छहीन से श्री नष्ट होती है ॥९९॥ हे मुनिसत्तम ! अब अथर्ववेदोक्त मायाति का स्वरूप बता रहा हूँ, सुनो ! उसके व्यतिक्रम (उलटफेर) में फल की हानि होती है ॥१००॥ पिता-माता से रहित, नीरोग, विवाहित, दीक्षित, परस्त्रीरहित, जारज सन्तान नहीं, विशुद्ध तथा किसी सच्छूद्र द्वारा परिपालित युवक को, उसके बन्धु-वर्गों को धन देकर अत्यधिक मूल्य से क्रय करके ॥१०१-१०२॥ उसे नहलाकर कर्ता वस्त्र-चन्दन, माला-धूप, सिंदूर और दधि-गोरोचन आदि से उसकी पूजा करे और सेवकों के साथ वर्ष भर उसे भ्रमण कराने के उपरान्त वर्ष के अन्त में उसे देवी को बलि चढ़ादे

क.सुखाद्यादिफ०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अष्टमीनवमीसंधौ दद्यान्मायातिमेव च। इत्येवं कथितं सर्वं बलिदानं प्रसङ्गतः ॥१०५॥
बलिं दत्त्वा च स्तुत्वा च धृत्वा च कवचं बुधः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥१०६॥
इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० पूजाविधिबलिपशुलक्षणविशेषो
नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं महाभाग सुधारसपरं वरम्। स्तोत्रं च कवचं पूजाफलं कालं वद प्रभो ॥१॥

नारायण उवाच

आर्द्रायां बोधयेद्देवीं मूलेनैव प्रवेशयेत्। उत्तरेणार्चयित्वा तां श्रवणायां विसर्जयेत् ॥२॥
आर्द्रायुक्तनवम्यां तु कृत्वा देव्याश्च [1]बोधनम्। पूजायाः शतवार्षिक्याः फलमाप्नोति मानवः ॥३॥
मूलायां तु प्रवेशे च नरमेधफलं लभेत्। उत्तरे पूजनं कृत्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥४॥
कृत्वा विसर्जनं देव्याः श्रवणायां च मानवः। लक्ष्मीं च पुत्रपौत्रांश्च लभते नात्र संशयः ॥५॥

॥१०३-१०४॥ अष्टमी-नवमी की सन्धि में मायाति का बलि प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार मैंने प्रसंगानुसार सभी बलिदान बता दिये ॥१०५॥ बलि प्रदान के अनन्तर देवी की स्तुति, कवचधारण, भूमि में दण्डवत् प्रणाम करके ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिए ॥१०६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण के संवादान्तर्गत दुर्गोपाख्यान में पूजाविधि तथा बलिपशु का लक्षण विशेष कथन नामक चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६४॥

अध्याय ६५

ज्ञानकथन

नारद बोले—हे महाभाग! हे प्रभो! सुधारस से भी मधुर एवं श्रेष्ठ स्तोत्र, कवच आदि सभी कुछ सुन लिया, अब पूजा का फल और समय जानना चाहता हूँ ॥१॥

नारायण बोले—आर्द्रा नक्षत्र में देवी का जागरण, मूल में प्रवेश, उत्तरा में अर्चना और श्रवण नक्षत्र में विसर्जन करना चाहिए ॥२॥ आर्द्रा नक्षत्र युक्त नवमी तिथि में देवी का उद्बोधन करने से सौ वर्ष की पूजा का फल मनुष्य को प्राप्त होता है ॥३॥ मूल नक्षत्र में प्रवेश करने से नरमेध का फल प्राप्त होता है ॥ ॥ श्रवण नक्षत्र में देवी का विसर्जन करने से मनुष्य को लक्ष्मी और पुत्र-पौत्र की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं ॥५॥ उनकी

---

१ क. पूजनम्।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

भुवः प्रदक्षिणापुण्यं पूजायां लभते नरः। नक्षत्रयोगाभावे तु पार्वत्याश्चैव नारद ॥६॥
नवम्यां बोधनं कृत्वा पक्षं संपूज्य मानवः। अश्वमेधफलावाप्त्यै दशम्यां च विसर्जयेत् ॥७॥
सप्तम्यां पूजनं कृत्वा बलिं दद्याद्विचक्षणः। अष्टम्यां पूजनं शस्तं बलिदानविवर्जितम् ॥८॥
अष्टम्यां बलिदानेन विपत्तिर्जायते नृणाम्। दद्याद्विचक्षणो भक्त्या नवम्यां विधिवद्बलिम् ॥९॥
बलिदानेन विप्रेन्द्र दुर्गाप्रीतिर्भवेन्नृणाम्। हिंसाजन्यं न पापं च लभते यज्ञकर्मणि ॥१०॥
उत्सर्गकर्ता दाता च च्छेत्ता पोष्टा च रक्षकः। अग्रे पश्चान्निबद्धा च सप्तैतेऽवधकारिणः ॥११॥
यो यं हन्ति स तं हन्ति नेति वेदोक्तमेव च। कुर्वन्ति वैष्णवीं पूजां वैष्णवास्तेन हेतुना ॥१२॥
एवं संपूज्य सुरथः पूर्णं वर्षं च भक्तितः। कवचं च गले बध्वा तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥१३॥
स्तोत्रेण परितुष्टा सा तस्य साक्षाद्बभूव ह। स ददर्श पुरो देवीं ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ॥१४॥
तेजःस्वरूपां परमां सगुणां निर्गुणां वराम्। दृष्ट्वा तां कमनीयां च तेजोमण्डलमध्यतः ॥१५॥
स्वेच्छामयीं कृपारूपां भक्तानुग्रहकारिणीम्। पुनस्तुष्टाव राजेन्द्रो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥१६॥
स्तवेन परितुष्टा सा सस्मिता स्नेहपूर्वकम्। उवाच सत्यं राजेन्द्रं कृपया जगदम्बिका ॥१७॥

पूजा में पृथ्वी की प्रदक्षिणा का पुण्य फल प्राप्त होता है। हे नारद! नक्षत्र-योग के अभाव में नवमी के दिन पार्वती का बोधन करके एक पक्ष पूजन करे और दशमी में विसर्जन करे तो अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥६-७॥ बुद्धिमान् को चाहिए कि सप्तमी में पूजनोपरान्त बलि-प्रदान करे, क्योंकि अष्टमी में केवल पूजन करना ही प्रशस्त बताया गया है बलिदान नहीं। अष्टमी में बलि प्रदान करने से मनुष्यों को विपत्ति प्राप्त होती है अतः विद्वान् को नवमी में भक्तिपूर्वक सविधि बलि प्रदान करना चाहिए ॥८-९॥ हे विप्रेन्द्र! बलि प्रदान करने से दुर्गा जी प्रसन्न होती हैं और यज्ञ-कर्म में बलि करने से हिंसाजनित पाप का भागी भी मनुष्य नहीं होता है ॥१०॥ (बलि प्रदान करने में) बलिपशु का उत्सर्ग (त्याग) करने वाला, उसका दाता, उसका वध करने वाला, उसका पालक, उसका रक्षक, आगे-पीछे से उसे बाँधने वाला, ये सातों वध के भागी नहीं होते हैं ॥११॥ जो जिसका वध करता है, वह उसका वध करने वाला होता है, ऐसा वेद का कथन वहाँ लागू नहीं होता है। इसीलिए वैष्णव लोग वैष्णवी की पूजा करते हैं ॥१२॥ इस प्रकार राजा सुरथ ने पूरे वर्ष तक भक्तिपूर्वक देवी की अर्चना करके गले में कवच धारण किया और परमेश्वरी की स्तुति (आराधना) करना आरम्भ किया ॥१३॥ अनन्तर उस स्तोत्र से प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया और उन्होंने अपने सामने स्थित देवी को ग्रीष्मकालीन सूर्य की भाँति प्रभापूर्ण देखा ॥१४॥ तेजोमण्डल के मध्य में तेजस्स्वरूप, परम सगुणरूप, निर्गुण, श्रेष्ठ, कमनीय, स्वेच्छामयी, कृपारूप और भक्तों पर अनुग्रह करने वाली देवी की राजेन्द्र ने भक्ति से कन्धे झुकाकर पुनः स्तुति की ॥१५-१६॥ उनकी स्तुति से अति प्रसन्न होकर मन्द मुसुकान करती हुई जगदम्बिका ने राजेन्द्र सुरथ से स्नेह और कृपापूर्वक सत्य वचन कहा ॥१७॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्रकृतिरुवाच

साक्षात्संप्राप्य मां राजन्वृणोषि विभवं वरम् । ददामि तुभ्यं विभवं सांप्रतं वाञ्छितं तव ॥१८॥
निर्जित्य सर्वाञ्छत्रूंश्च लब्ध्वा राज्यमकण्टकम् । भविष्यसि महाराज सावर्णिर्मनुरष्टमः ॥१९॥
दास्यामि तुभ्यं ज्ञानं च परिणामे नराधिप । भक्तिं दास्यं च परमे श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥२०॥
वृणोति विभवं यो हि साक्षान्मां प्राप्य मन्दधीः । मायया वञ्चितः सोऽपि विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥२१॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च । नित्यं सत्यं परं ब्रह्म कृष्णं निर्गुणमेव च ॥२२॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामहमाद्या परात्परा । सगुणा निर्गुणा चापि वरा स्वेच्छामयी सदा ॥२३॥
नित्यानित्या सर्वरूपा सर्वकारणकारणम् । बीजरूपा च सर्वेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥२४॥
पुण्ये वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । राधा प्राणाधिकाऽहं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥२५॥
अहं दुर्गा विष्णुमाया बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता । अहं लक्ष्मीश्च वैकुण्ठे स्वयं देवी सरस्वती ॥२६॥
सावित्री वेदमाताऽहं ब्रह्माणी ब्रह्मलोकतः । अहं गङ्गा च तुलसी सर्वाधारा वसुंधरा ॥२७॥
नानाविधाऽहं कलया मायया सर्वयोषितः । साऽहं कृष्णेन संसृष्टा नृप भ्रूभङ्गलीलया ॥२८॥
भ्रूभङ्गलीलया सृष्टो येन पुंसा महान्विराट् । लोम्नां कूपेषु विश्वानि यस्य सन्ति हि नित्यशः ॥२९॥

दुर्गा बोलीं—हे राजन् ! मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त कर यदि तुम ऐश्वर्य के अभिलाषी हो तो इसी समय मैं तुम्हें अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करती हूँ ॥१८॥ हे महाराज ! समस्त शत्रुओं पर विजय और निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति पूर्वक तुम अष्टम सावर्णि मनु भी होगे ॥१९॥ हे नराधिप ! मैं तुम्हें ज्ञान भी प्रदान कर रही हूँ, जिसके परिणामस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण की दास्यभक्ति प्राप्त होगी ॥२०॥ क्योंकि जो मन्दबुद्धि प्राणी मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त कर ऐश्वर्य का अभिलाषी होता है, वह माया द्वारा वञ्चित होकर अमृत को छोड़कर विष भक्षण करता है ॥२१॥ ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सभी वस्तु नश्वर है, भगवान् श्रीकृष्ण ही केवल नित्य सत्य, परब्रह्म और निर्गुण हैं ॥२२॥ इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवों की मैं आद्या, परात्परा, सगुणा, निर्गुणा, उत्तमा और सदा स्वेच्छामयी शक्ति हूँ ॥२३॥ ईश्वरी, मूलप्रकृति, नित्य-अनित्य, समस्त रूप, सम्पूर्ण कारणों का कारण और सभी लोगों का बीजरूप हूँ ॥२४॥ पवित्र वृन्दावन में, गोलोक में तथा रासमण्डल में परमात्मा श्रीकृष्ण की प्राणों से अधिक प्रिया राधिका हूँ ॥२५॥ मैं ही दुर्गा, विष्णुमाया, बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी, वैकुण्ठ की लक्ष्मी, साक्षात् देवी, सरस्वती वेदमाता सावित्री, ब्रह्मलोक की ब्रह्माणी, गंगा, तुलसी और सबका आधार वसुन्धरा (पृथिवी) हूँ ॥२६-२७॥ मैं ही अनेक भाँति की कला और माया द्वारा समस्त स्त्रियों का स्वरूप हूँ । हे नृप ! कृष्ण ने अपनी भ्रूभंगलीला मात्र से ही मेरी रचना की है । क्योंकि जिस पुरुष ने भ्रूभंगलीला मात्र से महाविराट् को उत्पन्न किया, जिसके लोमकूपों में नित्य समस्त विश्व स्थित रहते हैं, वे ही

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

असंख्यानि च तान्येव कृत्रिमाणि च मायया । अनित्ये नित्यबुद्धिं च सर्वे कुर्वन्ति संततम् ॥३०॥
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुंधरा । तदधः सप्त पातालाः स्वर्लोकाश्चैव सप्त च ॥३१॥
एवं विश्वं बहुविधं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । प्रत्येकं सर्वविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३२॥
सर्वेषामीश्वरः कृष्ण इति ज्ञानं परात्परम् । वेदानां च व्रतानां च तीर्थानां तपसां तथा ॥३३॥
देवानां चैव पुण्यानां सारः कृष्ण इति स्मृतः । तद्भक्तिहीनो यो मूढः स च जीवन्मृतो ध्रुवम् ॥३४॥
पवित्राणि च तीर्थानि तद्भक्तस्पर्शवायुना । तन्मन्त्रोपासकश्चैव जीवन्मुक्त इति स्मृतः ॥३५॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् । विना जपेन तपसा विना तीर्थेन पूजया ॥३६॥
मातामहानां शतकं पितॄणां च सहस्रकम् । पुंसामेवं समुद्धृत्य गोलोकं च स गच्छति ॥३७॥
इदं ज्ञानं सारभूतं कथितं ते नराधिप । मन्वन्तरान्ते भोगान्ते भक्तिं दास्यामि ते हरौ ॥३८॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥३९॥
अहं यमनुगृह्णामि तस्मै दास्यामि निर्मलाम् । निश्चलां सुदृढां भक्तिं श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥४०॥
करोमि वञ्चनां यं यं तेभ्यो दास्यामि संपदम् । प्रातः स्वप्नस्वरूपां च मिथ्येति भ्रमरूपिणीम् ॥४१॥
इति ते कथितं ज्ञानं गच्छ वत्स यथासुखम् । इत्युक्त्वा च महादेवी तत्रैवान्तरधीयत ॥४२॥

कृत्रिम और असंख्य हैं और उसी अनित्य को सब लोग निरन्तर नित्य मानते हैं ॥२८-३०॥ सातों सागरों और सातों द्वीपों समेत यह पृथिवी, उसके नीचे के पाताल आदि सात लोक और ऊपर वाले स्वर्ग आदि सात लोक, इस भाँति अनेक प्रकार के विश्व (ब्रह्माण्ड) का निर्माण ब्रह्मा ने किया है। और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देव रहते हैं ॥३१-३२॥ किन्तु सभी के ईश्वर भगवान् श्री कृष्ण हैं, यह परात्पर (अत्यन्त श्रेष्ठ) ज्ञान है। सभी वेद, व्रत, तीर्थ, तप, देव और पुण्य का सारभाग श्री कृष्ण माने गये हैं। इसीलिए जो उनकी भक्ति से विहीन है, वह मूढ़ निश्चित जीवन्मृत है ॥३३-३४॥ उनके भक्त के स्पर्श-वायु द्वारा तीर्थ पवित्र होते हैं और उनके मंत्र की उपासना करने वाला जीवन्मुक्त होता है ॥३५॥ क्योंकि उनके मंत्रग्रहण मात्र से मनुष्य जप, तप, तीर्थ और पूजा के बिना ही नारायण हो जाता है ॥३६॥ वह मातामह (नाना) की सौ पीढ़ियों और पिता की सहस्र पीढ़ियों का उद्धार कर स्वयं गोलोक चला जाता है ॥३७॥ हे नराधिप! समस्त का सारभूत यह ज्ञान मैंने तुम्हें बता दिया और एक मन्वन्तर तक भोग कर चुकने के अन्त में तुम्हें भगवान् की भक्ति प्रदान करूँगी। क्योंकि करोड़ों कल्प के बीत जाने पर भी कर्म बिना उपभोग किये नष्ट नहीं होता है; इसलिए शुभ-अशुभ कर्म का उपभोग अवश्य करना पड़ता है ॥३८-३९॥ मैं जिस पर अनुग्रह करती हूँ, उसे परमात्मा श्रीकृष्ण की निर्मल, निश्चल और अतिदृढ़ भक्ति प्रदान करती हूँ। और जिसकी वञ्चना करती हूँ, उसे सम्पत्ति प्रदान करती हूँ, जो प्रातःकालीन स्वप्न की भाँति मिथ्या और भयावह होती है ॥४०-४१॥ हे वत्स! इस प्रकार तुम्हें ज्ञान बता दिया, अब यथासुख चले जाओ। इतना कहकर महादेवी उसी स्थान पर

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

राजा संप्राप्य राज्यं च नत्वा तां प्रययौ गृहम् । इति ते कथितं वत्स दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० दुर्गासुरथसं० ज्ञानकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं नावशिष्टं किंचिदेव हि निश्चितम् । प्रकृतेः कवचं स्तोत्रं ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥१॥

नारायण उवाच

पुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना । संपूज्य मधुमासे च संप्रीते रासमण्डले ॥२॥
मधुकैटभयोर्युद्धे द्वितीये विष्णुना पुरा । तत्रैव काले सा दुर्गा ब्रह्मणा प्राणसंकटे ॥३॥
चतुर्थे संस्तुता देवी भक्त्या च त्रिपुरारिणा । पुरा त्रिपुरयुद्धे च महाघोरतरे मुने ॥४॥
पञ्चमे संस्तुता देवी वृत्रासुरवधे तथा । शक्रेण सर्वदेवैश्च घोरे च प्राणसंकटे ॥५॥
तदा मुनीन्द्रैर्मनुभिर्मानवैः सुरथादिभिः । संस्तुता पूजिता सा च कल्पे कल्पे परात्परा ॥६॥

अन्तर्हित हो गयी ॥४२॥ राजा भी राज्य प्राप्त कर देवी को नमस्कार करके अपने घर चला गया। हे वत्स! इस प्रकार मैंने दुर्गा जी का परमोत्तम उपाख्यान तुम्हें सुना दिया ॥४३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में प्रकृति-सुरथ-संवाद में ज्ञानकथन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६५॥

अध्याय ६६

दुर्गा का स्तोत्र

नारद बोले—हे मुनिश्रेष्ट! मैंने सब सुन लिया, कुछ भी शेष नहीं है। अब प्रकृति का कवच और स्तोत्र मुझे बताने की कृपा कीजिये ॥१॥

नारायण बोले—पूर्वकाल में गोलोक में परमात्मा श्रीकृष्ण ने प्रकृति की स्तुति की और पुनः चैत्रमास में रासमण्डल में अतिप्रेम से देवी की पूजा की। मधुकैटभ के युद्ध में विष्णु ने और उसी समय ब्रह्मा ने प्राणसंकट उपस्थित होने पर दुर्गा की आराधना की। चौथे समय हे मुने! पूर्वकालीन त्रिपुरासुर के महाघोर युद्ध में त्रिपुरारि (शिव) ने भक्तिपूर्वक दुर्गा देवी की अर्चना की। पांचवीं बार वृत्रासुर के वध में इन्द्र ने घोर प्राणसंकट उपस्थित होने पर देवों समेत देवी की अर्चना की। तब मुनिवृन्द, मनुवृन्द और राजा सुरथ आदि मनुष्यों ने देवी की स्तुति-पूजा की। इस प्रकार प्रत्येक कल्प में वह परात्परा देवी स्तुत और पूजित हुई हैं ॥२-६॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्तोत्रं च श्रूयतां ब्रह्मन्सर्वविघ्नविनाशकम् । सुखदं मोक्षदं सारं भवसंतारकारणम् ॥७॥

श्रीकृष्ण उवाच

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी । त्वमेवाऽऽद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥८॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् । परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या[1] सनातनी ॥९॥
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा । सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥१०॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया । सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥११॥
सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी । सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी ॥१२॥
त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधा स्वयम् । दक्षिणा सर्वदाने च सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥१३॥
निद्रा त्वं च दया त्वं च तृष्णा त्वं चाऽऽत्मनः प्रिया । क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिस्तुष्टिश्च शाश्वती ॥१४॥
श्रद्धा पुष्टिश्च तन्द्रा च लज्जा शोभा प्रभा तथा । सतां संपत्स्वरूपा श्रीर्विपत्तिरसतामिह ॥१५॥
प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा । शश्वत्कर्ममयी शक्तिः सर्वदा सर्वजीविनाम् ॥१६॥
देवेभ्यः स्वपदं दात्री धातुर्धात्री कृपामयी । हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी ॥१७॥
योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम् । सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धयोगिनी ॥१८॥

हे ब्रह्मन् ! अब मैं तुम्हें समस्त विघ्नों का नाशक स्तोत्र बता रहा हूँ, जो सुख और मोक्ष देने वाला, तत्स्वरूप और संसार से पार करने का कारण है, सुनो ॥-७॥

श्रीकृष्ण बोले—तुम्हीं सबकी जननी, मूलप्रकृति एवं ईश्वरी हो। सृष्टि-विधान में तुम्ही आद्या शक्ति तथा स्वेच्छया त्रिगुण स्वरूप वाली हो ॥८॥ कार्य के लिए तुम सगुण हो और वस्तुतः स्वयं निर्गुण हो। तुम परब्रह्म-स्वरूप, सत्य, अनित्य एवं सनातनी हो ॥९॥ तेजःस्वरूप, परमोत्तम, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाली, सबका स्वरूप, सब की अधीश्वरी, सब का आधार, परात्परा, सब का बीज रूप, सब की पूज्या, निराश्रया, सर्वज्ञान-वाली, सर्वतोभद्ररूप और समस्त मंगलों का मंगल हो ॥१०-११॥ समस्त बुद्धि स्वरूप, समस्त शक्ति स्वरूप, समस्त ज्ञान की प्रदायिनी, देवी, सर्वज्ञा और सर्वभाविनी हो ॥१२॥ तुम ही देवों के दान में स्वाहा, पितरों के दान में स्वधा, समस्त दान में दक्षिणा और सबकी शक्ति स्वरूप हो ॥१३॥ निद्रा, दया, तृष्णा, आत्मप्रिया, क्षुधा की शान्ति, शान्ति, ईशा, कान्ति तथा शाश्वत शान्ति हो। श्रद्धा, पुष्टि, तन्द्रा, लज्जा, शोभा, प्रभा और सज्जनों की सम्पत्ति एवं असज्जनों की विपत्ति रूपा हो ॥१४-१५॥ पुण्यवानों की प्रीति, पापियों का कलहबीज तथा समस्त जीवों की निरन्तर कर्ममयी शक्ति हो। देवों को उनके पद देने वाली, ब्रह्मा की कृपामयी धात्री तथा समस्त देवों के हितार्थ समस्त दैत्यों की विनाशिनी हो ॥१६-१७॥ योगियों की योगनिद्रा, योगरूप, योगियों को योग देने वाली, सिद्धिस्वरूप, सिद्धों को सिद्धि देने वाली तथा सिद्धयोगिनी हो ॥१८॥ तुम ब्रह्माणी, माहेश्वरी, विष्णु की

---

१ क. ०त्याऽऽनन्दस्वरूपिणी ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

माहेश्वरी च ब्रह्माणी विष्णुमाया च वैष्णवी। भद्रदा भद्रकाली च सर्वलोकभयंकरी ॥१९॥
ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे। सतां कीर्तिः प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसतां सदा ॥२०॥
महायुद्धे महामारी दुष्टसंहाररूपिणी। रक्षास्वरूपा शिष्टानां[1] मातेव हितकारिणी ॥२१॥
वन्द्या पूज्या स्तुता त्वं च ब्रह्मादीनां च सर्वदा। ब्रह्मण्यरूपा विप्राणां तपस्या च तपस्विनाम् ॥२२॥
विद्या विद्यावतां त्वं च बुद्धिर्बुद्धिमतां सताम्। मेधा स्मृतिस्वरूपा च प्रतिभा प्रतिभावताम् ॥२३॥
राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी। सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा त्वं रक्षारूपा च पालने ॥२४॥
तथाऽन्ते त्वं महामारी विश्वे विश्वैश्च पूजिते। कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी ॥२५॥
दुरत्यया मे माया त्वं यया संमोहितं जगत्। यया मुग्धो हि विद्वांश्च मोक्षमार्गं न पश्यति ॥२६॥
इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गायाः[2] दुर्गनाशनम्। पूजाकाले पठेद्यो हि सिद्धिर्भवति वाञ्छिता ॥२७॥
वन्ध्या च काकवन्ध्या च मृतवत्सा च दुर्भगा। श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ॥२८॥
कारागारे महाघोरे यो बद्धो दृढबन्धने। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥२९॥
यक्ष्मग्रस्तो गलत्कुष्ठी महाशूली महाज्वरी। श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सद्यो रोगात्प्रमुच्यते ॥३०॥
पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्र संशयः ॥३१॥

माया, वैष्णवी, भद्र (कल्याण) प्रदा, भद्रकाली तथा समस्त लोकों के लिए भयंकरी हो ॥१९॥ गाँवों की ग्रामदेवी, घरों की गृहदेवी, सज्जनों की कीर्ति, प्रतिष्ठा और असज्जनों की निन्दा रूप हो ॥२०॥ महायुद्ध में महामारी रूप, दुष्टों का संहार करने वाली, शिष्टों (सज्जनों) की रक्षा रूप और माता की भाँति हितैषिणी हो ॥२१॥ और सदा ब्रह्मा आदि देवों की वन्द्या, पूज्या एवं स्तुत्य हो, ब्राह्मणों का ब्राह्मण्यरूप और तपस्वियों की तपस्या हो। विद्यावानों की विद्या, बुद्धिमानों की बुद्धि, सज्जनों की मेधा और प्रतिभाशालियों की स्मृति तथा प्रतिभा हो ॥२२-२३॥ राजाओं का प्रताप, व्यापारियों का व्यापार, सृष्टि में सृष्टिरूप, पालन में रक्षा रूप तथा अन्त में महामारी हो। विश्व में समस्त लोगों से पूजित हो। कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि और मोहिनी हो ॥२४-२५॥ तुम हमारी दुस्तर माया हो, जिससे सारा जगत् मोहित है और जिससे मुग्ध होकर विद्वान् लोग भी मोक्ष नहीं देखते हैं ॥२६॥ यह अपना बनाया हुआ दुर्गा जी का दुर्गनाशक स्तोत्र पूजा के समय जो पढ़ेगा, उसे अभिलषित सिद्धि मिलेगी ॥२७॥ वन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा एवं दुर्भगा स्त्री एक वर्ष तक इसके सुनने से उत्तम पुत्र को निश्चित प्राप्त करती है ॥२८॥ महाघोर कारागृह (जेल) में जो दृढ़ बन्धनों (हथकड़ी-बेड़ी) से जकड़ा हुआ पड़ा हो, वह एक मास तक इस स्तोत्र के सुनने से निश्चित बन्धन-मुक्त हो जाता है ॥२९॥ यक्ष्मा का रोगी, गलत्कुष्ठ का रोगी, महाशूली तथा महाज्वरग्रस्त व्यक्ति एक वर्ष तक इसे सुनने से तुरन्त रोगमुक्त हो जाता है ॥३०॥ पुत्र, प्रजा और पत्नी से भेद (द्वेष) होने पर एक मास तक इस स्तोत्र के सुनने से वह द्वेष निश्चित नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥३१॥

क. शिष्या। २ क. स्वर्गकारणम्।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले। हिंस्रजन्तुसमीपे च श्रुत्वा स्तोत्रं प्रमुच्यते ॥३२॥
गृहदाहे च दावाग्नौ दस्युसैन्यसमन्विते। स्तोत्रश्रवणमात्रेण लभते नात्र संशयः ॥३३॥
महादरिद्रो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः। विद्यावान्धनवांश्चैव स भवेन्नात्र संशयः ॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० दुर्गास्तोत्रं नाम
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञानविशारद। ब्रह्माण्डमोहनं नाम प्रकृतेः कवचं वद ॥१॥

नारायण उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचं च सुदुर्लभम्। श्रीकृष्णेनैव कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥२॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं धर्माय जाह्नवीतटे। धर्मेण दत्तं मह्यं च कृपया पुष्करे पुरा ॥३॥
त्रिपुरारिश्च बद्धत्वा जघान त्रिपुरं पुरा। मुमोच धाता यद्धृत्वा मधुकैटभयोर्भयम् ॥४॥
जघान रक्तबीजं तं यद्धृत्वा भद्रकालिका। यद्धृत्वा तु महेन्द्रश्च संप्राप कमलालयाम् ॥५॥

राजदरवार, श्मशान, घोर वन, युद्धस्थल और हिंसक जन्तुओं के समीप इसे सुनने से मनुष्य भयमक्त हो जाता है ॥३२॥ गृह के जलते समय, दावाग्नि में और चोरों-डाकुओं की सेनाओं से घिर जाने पर इस स्तोत्र के सुनने मात्र से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥३३॥ महादरिद्र एवं महामूर्ख एक वर्ष तक पाठ करने पर विद्या और धन से सुसम्पन्न हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में दुर्गास्तोत्रकथन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥६६॥

अध्याय ६७

ब्रह्माण्डमोहनकवच

नारद बोले—हे भगवन्! समस्त धर्मो के ज्ञाता! और समस्त ज्ञान में निपुण! प्रकृति का ब्रह्माण्डमोहन नामक कवच बतायें ॥१॥

नारायण बोले—हे वत्स! सुनो, अति दुर्लभ कवच मैं कह रहा हूँ, जिसे पूर्वकाल में भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को कृपया बताया था ॥२॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा ने गंगा-तट पर धर्म से कहा और धर्म ने कृपापूर्वक पुष्कर में मुझसे कहा ॥३॥ जिसे पूर्व समय त्रिपुरारि (शिव) ने धारण कर त्रिपुरासुर का वध किया, जिसे धारण कर ब्रह्मा मधुकैटभ-जनित भय से मुक्त हुए, जिसे धारण कर भद्रकाली ने रक्तबीज का हनन किया ॥४॥ जिसे धारण कर महेन्द्र ने कमला (लक्ष्मी) की प्राप्ति की। जिसे धारण कर महाकाल धार्मिक एवं चिरजीवी

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यद्धृत्वा च महाकालश्चिरजीवी च धार्मिकः। यद्धृत्वा च महाज्ञानी नन्दी सानन्दपूर्वकम् ॥६॥
यद्धृत्वा च महायोद्धा रामः[1] शत्रुभयंकरः। यद्धृत्वा शिवतुल्यश्च दुर्वासा ज्ञानिनां वरः ॥७॥
ॐ दुर्गेति चतुर्थ्यन्तः स्वाहान्तो मे शिरोऽवतु। मन्त्रः षडक्षरोऽयं च भक्तानां कल्पपादपः ॥८॥
विचारो नास्ति वेदेषु ग्रहणेऽस्य मनोर्मुने। मन्त्रग्रहणमात्रेण विष्णुतुल्यो भवेन्नरः ॥९॥
मम वक्त्रं सदा पातु चों दुर्गायै नमोन्ततः। ॐदुर्गे रक्षयति च कण्ठं पातु सदा मम ॥१०॥
ॐ ह्रीं श्रीमिति मन्त्रोऽयं स्कन्धं पातु निरन्तरम्। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति पृष्ठं पातु मे सर्वतः सदा ॥११॥
ह्रीं मे वक्षःस्थलं पातु हस्तं श्रीमिति संततम्। [2]ॐश्रीं ह्रीं क्लीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा ॥१२॥
प्राच्यां मां प्रकृतिः पातुः पातु वह्नौ च चण्डिका। दक्षिणे भद्रकाली च नैर्ऋत्यां च महेश्वरी ॥१३॥
वारुण्यां पातु वाराही वायव्यां सर्वमङ्गला। उत्तरे वैष्णवी पातु तथैशान्यां शिवप्रिया ॥१४॥
जले स्थले चान्तरिक्षे पातु मां जगदम्बिका। इति ते कथितं वत्स कवचं च सुदुर्लभम् ॥१५॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्। गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः ॥१६॥
कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्न संशयः। स्नाने च सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे ॥१७॥

हुए। जिसे धारण कर नन्दी आनन्दपूर्वक महाज्ञानी हो गया ॥५-६॥ जिसे धारण कर राम (परशुराम) शत्रु के लिए भयंकर महायोद्धा हुए और जिसे धारण कर दुर्वासा ज्ञानियों में श्रेष्ठ एवं शिव के तुल्य हुए ॥७॥ 'ओं दुर्गायै स्वाहा' भक्तों के लिए कल्पवृक्ष रूप यह षडक्षर मंत्र मेरे शिर की रक्षा करे। हे मुने! इस मन्त्र ग्रहण के विषय में वेदों में कोई विचार नहीं किया गया है। मन्त्र ग्रहण-मात्र से ही मनुष्य विष्णु के तुल्य हो जाता है ॥८-९॥ 'ओं दुर्गायै नमः' यह मंत्र मेरे मुख की सदा रक्षा करे। ओं दुर्गे मेरे कण्ठ की सदा रक्षा करे ॥१०॥ 'ओं ह्रीं श्रीं' यह मंत्र मेरे कन्धे की निरन्तर रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं' यह मंत्र मेरे पृष्ठ भाग की सदा रक्षा करे ॥११॥ ह्रीं मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे, 'श्रीं' निरन्तर हाथ की रक्षा करे। 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं' यह मंत्र स्वप्न और जागरण अवस्था में सर्वांग की रक्षा करे ॥१२॥ पूर्व की ओर मुझे प्रकृति रक्षित रखे, अग्निकोण की ओर चण्डिका रक्षा करे। दक्षिण की ओर भद्रकाली, नैर्ऋत्य में महेश्वरी, पश्चिम की ओर वाराही रक्षा करे, वायव्य की ओर सर्वमंगला, उत्तर की ओर वैष्णवी रक्षा करे, ईशान की ओर शिवप्रिया रक्षा करे ॥१३-१४॥ तथा जल, स्थल और अन्तरिक्ष (आकाश) में जगदम्बिका मेरी रक्षा करे। हे वत्स! इस प्रकार मैंने अति दुर्लभ कवच तुम्हें बता दिया, इसे जिस किसी को नहीं देना चाहिए और न किसी से कहना ही चाहिए। वस्त्र-अलंकार द्वारा गुरु की सविधान अर्चना करके जो इस कवच को धारण करता है, वह भी विष्णु हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥१५-१६½॥ हे मुने! समस्त तीर्थों की यात्रा और पृथिवी की प्रदक्षिणा करने से जिस फल की प्राप्ति

---

१ क. बाणः। २ क. ऐं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यत्फलं लभते लोकस्तदेतद्धारणान्मुने। पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद्ध्रुवेद्ध्रुवम् ॥१८॥
लोके च सिद्धकवचं नास्त्रं विध्यति संकटे। न तस्य मृत्युर्भवति जले वह्नौ विषे ज्वरे॥१९॥
जीवन्मुक्तो भवेत्सोऽपि सर्वसिद्धेश्वरेश्वरः। यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुतुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥२०॥
कथितं प्रकृतेः खण्डं सुधाखण्डात्परं मुने। या चैव मूलप्रकृतिर्यस्याः पुत्रो गणेश्वरः॥२१॥
कृत्वा कृष्णव्रतं सा च लेभे गणपतिं सुतम्। स्वांशेन कृष्णो भगवान्बभूव च गणेश्वरः॥२२॥
श्रुत्वा च प्रकृतेः खण्डं सुश्राव्यं च सुधोपमम्। भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चनम् ॥२३॥
सवत्सां सुरभिं रम्यां दद्याद्वै भक्तिपूर्वकम्। वासोऽलंकाररत्नैश्च तोषयेद्वाचकं मुने॥२४॥
पुष्पालंकारवसनैरुपहारगणैस्तथा। पुस्तकं पूजयेदेवं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥२५॥
एवं कृत्वा यः शृणोति तस्य विष्णुः प्रसीदति। वर्धते पुत्रपौत्रादिर्यशस्वी तत्प्रसादतः॥२६॥
लक्ष्मीर्वसति तद्गेहे ह्यन्ते गोलोकमाप्नुयात्। लभेत्कृष्णस्य दास्यं स भक्तिं कृष्णे सुनिश्चलाम् ॥२७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० ब्रह्माण्डमोहनकवचं
नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥
समाप्तमिदं श्रीमद्ब्रह्मवैवर्तपुराणस्य द्वितीयं प्रकृतिखण्डम् ॥

●

होती है, वह इसके धारण मात्र से प्राप्त होता है॥१७½॥ पाँच लाख जप करने से यह निश्चित सिद्ध हो जाता है। लोक में कवच सिद्ध हो जाने पर संकट के समय अस्त्र वेध नहीं करता है। जल में अग्नि में, विष से या ज्वर से उसकी मृत्यु नहीं होती है ॥१८-१९॥ वह सर्वसिद्धेश्वर होकर जीवन्मुक्त हो जाता है मनुष्य यदि सिद्धकवच हो जाता है, तो वह निश्चित भगवान् विष्णु के तुल्य होता है॥२०॥ हे मुने! इस प्रकार मैंने सुधाखण्ड से भी उत्तम यह प्रकृतिखण्ड कह कर तुम्हें सुना दिया। जो मूल प्रकृति है एवं जिसके पुत्र गणेश्वर हुए हैं, उसी प्रकृति ने भगवान् श्रीकृष्ण का व्रत सुसम्पन्न कर गणपति को पुत्र रूप में प्राप्त किया है और भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने अंश द्वारा गणेश्वर हुए हैं॥२१-२२॥ इस प्रकार अच्छी तरह सुनाने योग्य और अमृत के समान मधुर प्रकृतिखण्ड का श्रवण कर, ब्राह्मण को दही अन्न भोजन कराये और सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करे॥२३॥ तथा भक्तिपूर्वक सवत्सा गौ भी प्रदान करे। हे मुने! वस्त्र, अलंकार और रत्नों आदि से वाचक को प्रसन्न करे, पुष्प, अलंकार, वस्त्र रूप उपहार भी समर्पित करे। इसी भाँति भक्ति-श्रद्धा समेत पुस्तक की भी पूजा करे॥२४-२५॥ इस प्रकार जो इसका श्रवण करता है, उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसाद से पुत्र-पौत्र समेत उस यशस्वी की वृद्धि होती है, उसके घर लक्ष्मी निवास करती है और और अन्त में वह गोलोक जाकर भगवान् श्रीकृष्ण की अति निश्चल दास्य भक्ति प्राप्त करता है॥२६-२७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में
ब्रह्माण्डमोहनकवचवर्णननामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त॥६७॥

●

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्र तृतीयं गणपतिखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

पार्वती की उत्पत्ति और उनसे कार्तिकेय का जन्म

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

नारद उवाच

श्रुतं प्रकृतिखण्डं तदमृतार्णवमुत्तमम्। सर्वोत्कृष्टमभीष्टं च मूढानां ज्ञानवर्धनम् ॥२॥
अधुना[1] श्रीगणेशस्य खण्डं श्रोतुमिहाऽऽगतः। तज्जन्मचरितं नृणां सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥३॥
कथं जज्ञे सुरश्रेष्ठः पार्वत्या उदरे शुभे। देवी केन प्रकारेण चालभत्तादृशं सुतम् ॥४॥
स चांशः कस्य देवस्य कथं जन्म ललाभ सः। अयोनिसंभवः किंवा किंवाऽसौ योनिसंभवः ॥५॥

गणपतिखण्ड आरम्भ

अध्याय १

नृ-श्रेष्ठ नारायण, वाग्देवी सरस्वती एवं व्यास जी को नमस्कार कर के जय शब्दोच्चारण पूर्वक पुराणादि का कथन (कथन-श्रवण) करना चाहिए ॥१॥

नारद बोले—अमृत-सागर के समान उत्तम प्रकृतिखण्ड मैंने सुन लिया, जो सबसे उत्कृष्ट, अभीष्ट और मूढ़ों का ज्ञानवर्द्धक है। इस समय मैं श्री गणेशखण्ड सुनना चाहता हूँ, क्योंकि उनका जन्म मनुष्यों के समस्त मंगलों का मंगल रूप है। वह सुरश्रेष्ठ पार्वती जी के शुभ उदर से कैसे उत्पन्न हुए ? देवी ने किस उपाय से उस प्रकार का पुत्र प्राप्त किया ? वह किस देव का अंश है, कैसे उन्होंने जन्म ग्रहण किया। वे अयोनिज (योनि से न उत्पन्न

---

१ क. ०ना श्रोतुमिच्छामि गाणेशं खण्डमीश्वर। त०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

किंवा तद्ब्रह्मतेजो वा किं तस्य च पराक्रमः । का तपस्या च किं ज्ञानं किं वा तन्निर्मलं यशः ॥६॥
कथं तस्य पुरः पूजा विश्वेषु निखिलेषु च । स्थिते नारायणे शंभौ जगदीशे च धातरि ॥७॥
पुराणेषु निगूढं च तज्जन्म परिकीर्तितम् । कथं वा गजवक्त्रोऽयमेकदन्तो महोदरः ॥८॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम । सुविस्तीर्णं महाभाग तदतीव मनोहरम् ॥९॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । पापसंतापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१०॥
सर्वमङ्गलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् । सुखदं मोक्षबीजं च [1]पापमूलनिकृन्तनम् ॥११॥
दैत्यार्दितानां देवानां तेजोराशिसमुद्भवा । देवी संहृत्य दैत्यौघान्दक्षकन्या बभूव ह ॥१२॥
सा च नाम्ना सती देवी स्वामिनो निन्दया पुरा । देहं संत्यज्य योगेन जाता शैलप्रियोदरे ॥१३॥
शंकराय ददौ तां च पार्वतीं पर्वतो मुदा । तां गृहीत्वा महादेवो जगाम विजनं वनम् ॥१४॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । स रेमे नर्मदातीरे पुष्पोद्याने तया सह ॥१५॥
सहस्रवर्षपर्यन्तं दैवमानेन नारद । तयोर्बभूव शृङ्गारो विपरीतादिको महान् ॥१६॥

होने वाले) हैं या योनि से उत्पन्न हुए हैं ॥२-५॥ उनका ब्रह्मतेज, उनका पराक्रम, तपस्या, ज्ञान और निर्मल यश कैसा है? समस्त विश्व में जगदीश नारायण, शम्भु और ब्रह्मा के रहते सब से पहले उन्हीं की पूजा क्यों होती है? पुराणों में उनका जन्म अति निगूढ़ बताया गया है। उनके, हाथी का मुख, एक दाँत और महान् उदर कैसे हुए? हे महाभाग! यह अतिविस्तार से बताने की कृपा कीजिये, क्योंकि यह अत्यन्त मनोहर है और इसे सुनने के लिए मुझे महान् कौतूहल हो रहा है ॥६-९॥

नारायण बोले—हे नारद! सुनो, इस परम अद्भुत रहस्य को मैं बता रहा हूँ, जो पापरूपी सन्ताप का अपहरण करने वाला, समस्त विघ्नों का नाशक, समस्तमंगलप्रद, सबका सारभाग, सबको सुनने में मनोहर, सुखदायक, मोक्ष का कारण तथा पापमूल का नाशक है ॥१०-११॥ दैत्यों द्वारा संतप्त देवों की तेजोराशि से प्रकट होकर देवी ने दैत्यों का संहार करने के उपरान्त दक्ष के यहाँ कन्या होकर जन्म ग्रहण किया ॥१२॥ वहाँ उनका नाम सती हुआ। फिर पूर्वकाल में स्वामी (शिव) की निन्दा के कारण उन्होंने योगद्वारा शरीर त्याग कर हिमालय की पत्नी मेना के उदर से जन्म ग्रहण किया ॥१३॥ पर्वतराज हिमवान् ने प्रसन्नतापूर्वक पार्वती शिव को समर्पित कर दी और महादेव उन्हें लेकर निर्जन वन में चले गये ॥१४॥ नर्मदा के तट पर पुष्पवाटिका में रति के उपयुक्त पुष्प-चन्दन-चर्चित शय्या का निर्माण कर शिव पार्वती के साथ रमण करने लगे ॥१५॥ हे नारद! देवों के दिव्य वर्ष से एक सहस्र वर्ष तक वे वहाँ विपरीत आदि महान् शृंगार (रति) करने में जुटे रहे। ॥१६॥ दुर्गा (पार्वती) के अंगों के स्पर्श मात्र से ही शिव काम-मूर्च्छित हो गए

---

१ क. कर्म०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण मदनान्मूर्च्छितः शिवः । मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद्बुबुधे न दिवानिशम् ॥१७॥
हंसकारण्डवाकीर्णे पुंस्कोकिलरुताकुले । नानापुष्पविकासाढ्ये भ्रमरध्वनिगुञ्जिते ॥१८॥
सुगन्धिकुसुमाश्लेषिवायूना सुरभीकृते । अतीव सुखदे रम्ये सर्वजन्तुविवर्जिते ॥१९॥
दृष्ट्वा तयोस्तच्छृङ्गारं चिन्तां प्रापुः सुराः पराम् । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम् ॥२०॥
तं नत्वा कथयामास ब्रह्मा वृत्तान्तमीप्सितम् । संतस्थुर्देवताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिका यथा ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

सहस्रवर्षपर्यन्तं दैवमानेन शंकरः । रतौ रतश्च निश्चेष्टो न योगी विरराम ह ॥२२॥
मैथुनस्य विरामे च दम्पत्योर्जगदीश्वर । किंभूतं भविताऽपत्यं तन्नः कथितुमर्हसि ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

चिन्ता नास्ति जगद्धातः सर्वं भद्रं भविष्यति । मयि ये शरणापन्नास्तेषां दुःखं कुतो विधे ॥२४॥
येनोपायेन तद्वीर्यं भूमौ पतति निश्चितम् । तत्कुरुष्व प्रयत्नेन सार्धं देवगणेन च ॥२५॥
यदा च शंभोर्वीर्यं तत्पार्वत्या उदरे पतेत् । ततोऽपत्यं च भविता सुरासुरविमर्दकम् ॥२६॥
ततः शक्रादयः सर्वे सुरा नारायणाज्ञया । प्रययुर्नर्मदातीरं ययौ ब्रह्मा निजालयम् ॥२७॥

और पार्वती भी शिव के अंगस्पर्श से मूर्च्छित हो गयीं। उस समय उन्हें दिनरात का ज्ञान नहीं रहा ॥१७॥ हंस और कारण्डव (वत्तख) पक्षियों से व्याप्त नर कोकिल की ध्वनि से निनादित, अनेक भाँति के विकसित पुष्पों से सुशोभित, भौंरों के गुंजार से गुंजित एवं सुगन्धित पुष्पों से सम्पृक्त वायु द्वारा सुगन्धित, अति सुखदायक, रमणीय और समस्त जीव-जन्तुओं से शून्य स्थान में उन दोनों का शृंगार-विहार देखकर देवों को बड़ी चिन्ता हुई। वे लोग ब्रह्मा को आगे करके नारायण (विष्णु) के यहाँ गये ॥१८-२०॥ ब्रह्मा ने उन्हें नमस्कार कर अभीष्ट समाचार कह सुनाया और देवता लोग कठपुतलों की भाँति खड़े रहे ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त शंकर रति-क्रीड़ा में लगकर निश्चेष्ट हो गये हैं। वे योगी (मैथुन से) विराम नहीं कर रहे हैं ॥२२॥ हे जगदीश्वर! उन दोनों दम्पति के मैथुन का अवसान होने पर कैसी सन्तान उत्पन्न होगी, मुझे बताने की कृपा करें ॥२३॥

श्री भगवान् बोले—हे जगत् के धाता! हे विधे! इस बात की चिन्ता न करो, सब कुछ अच्छा ही होगा। क्योंकि जो मेरी शरण में आते हैं, उन्हें दुःख कैसे हो सकता है? ॥२४॥ जिस किसी उपाय से शिव का वीर्य्य पृथ्वी पर गिर जाये, वही प्रयत्नपूर्वक देवों को साथ लेकर करो ॥२५॥ क्योंकि शिव का वीर्य यदि पार्वती के उदर में पड़ेगा, तो देवों, और राक्षसों का नाश करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा ॥२६॥ अनन्तर इन्द्र आदि देवगण नारायण की आज्ञा से नर्मदा के तट पर पहुँचे और ब्रह्मा अपने निवास को गये ॥२७॥ वहाँ पर्वतों की घाटी के बाहर ही देवगण अति खिन्न मन और

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तत्रैव पर्वतद्रोणीबहिर्देशे सुराः पराः । विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्भयकातराः ॥२८॥
शक्रः कुबेरमवदत्कुबेरो वरुणं तथा । समीरणं च वरुणो यमं चैव समीरणः ॥२९॥
हुताशनं यमश्चैव भास्करं च हुताशनः । चन्द्रं तथा भास्करश्च त्वीशानं चन्द्र एव च ॥३०॥
एवं देवाः प्रेरयन्ति देवांश्च रतिभञ्जने । हरशृङ्गारभङ्गं च कुर्वित्युक्त्वा परस्परम् ॥३१॥
द्वारि स्थितो वक्त्रशिराः शक्रः प्राह महेश्वरम् ॥३२॥

इन्द्र उवाच

किं करोषि महादेव योगीश्वर नमोऽस्तु ते । जगदीश जगद्बीज भक्तानां भयभञ्जन ॥३३॥
हरिर्जगामेत्युक्त्वा तमाजगाम च भास्करः । उवाच भीतो द्वारस्थो भयार्तो वक्त्रचक्षुषा ॥३४॥

सूर्य उवाच

किं करोषि महादेव जगतां परिपालक । सुरश्रेष्ठ महाभाग पार्वतीश नमोऽस्तु ते ॥३५॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीसूर्यः स जगाम भयात्ततः । आजगाम तथा चन्द्र 'अवोचद्वक्त्रकंधरः ॥३६॥

चन्द्र उवाच

किं करोषि त्रिलोकेश त्रिलोचन नमोऽस्तु ते । स्वात्माराम स्वयंपूर्ण पुण्यश्रवणकीर्तन ॥३७॥

भय से कातर होकर अवस्थित हुए ॥२८॥ पश्चात् इन्द्र ने कुबेर से कहा और कुबेर ने वरुण से, वरुण ने वायु से, वायु ने यम से, यम ने अग्नि से, अग्नि ने सूर्य से, सूर्य ने चन्द्रमा से और चन्द्र ने ईशान से कहा ॥२९-३०॥ इस भाँति देवों ने शंकर की रति भंग करने के लिए आपस में एक-दूसरे से कह रहे थे कि 'तुम शिव की रति-क्रीड़ा भंग करो।' ॥३१॥ इन्द्र ने द्वार पर खड़े होकर शिर दूसरी ओर घुमाये, महेश्वर से कहा ॥३२॥

इन्द्र बोले—हे महादेव ! हे योगीश्वर ! आपको नमस्कार है। हे जगदीश ! हे जगत् के कारण ! हे भक्तों का भय दूर करने वाले ! आप यह क्या कर रहें हैं। इन्द्र इतना कह कर चले गये। पश्चात् भास्कर (सूर्य) ने द्वार पर खड़े होकर भय से पीडित हो नेत्र दूसरी ओर किए कहा—

सूर्य्य बोले—हे महादेव ! हे जगत् का पालन करने वाले ! हे सुरश्रेष्ठ ! हे महाभाग ! हे पार्वती-पते ! आपको नमस्कार है। आप यह क्या कर रहे हैं ? इतना कह कर सूर्य भय वश वहाँ से चले गये। अनन्तर चन्द्रमा आये और कन्धे को दूसरी ओर मोड़कर कहने लगे ॥३३-३६॥

चन्द्र बोले—हे तीनों लोकों के अधीश्वर ! हे त्रिलोचन ! तुम्हें नमस्कार है। हे आत्मा में रमण करने वाले ! हे अपने आप में पूर्ण! हे कानों के लिए पवित्रकारक कीर्तन वाले ! आप यह क्या कर रहे हैं ॥३७॥ इतना

---

१ क. चन्नतकंधरः ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इत्येवमुक्त्वा भीतश्च विरराम निशापतिः । समीरणोऽपि द्वारस्थः संवीक्ष्योवाच सादरम् ॥३८॥

पवन उवाच

किं करोषि जगन्नाथ जगद्बन्धो नमोऽस्तु ते । धर्मार्थकाममोक्षाणां बीजरूप सनातन ॥३९॥
इत्येवं स्तवनं श्रुत्वा योगज्ञानविशारदः । त्यक्तुकामो न तत्याज शृङ्गारं पार्वतीभयात् ॥४०॥
दृष्ट्वा सुरान्भयार्ताँश्च पुनः स्तोतुं समुद्यतान् । विजहौ सुखसंभोगं कण्ठलग्नां च पार्वतीम् ॥४१॥
उत्तिष्ठतो महेशस्य त्रासलज्जायुतस्य च । भूमौ पपात तद्वीर्यं ततः स्कन्दो बभूव ह ॥४२॥
पश्चात्तां कथयिष्यामि कथामतिमनोहराम् । स्कन्दजन्मप्रसङ्गे च सांप्रतं वाञ्छितं शृणु ॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारायण उवाच

त्यक्त्वा रतिं महादेवो ददर्श पुरतः सुरान् । पलायध्वमिति प्राह कृपया पार्वतीभयात् ॥१॥
देवाः पलायिता भीताः पार्वतीशापहेतुना । सर्वब्रह्माण्डसंहर्ता चकम्पे पार्वतीभयात् ॥२॥

कह कर रात्रिपति (चन्द्रमा) भय के मारे चुप हो गए। उपरान्त वायु द्वार पर स्थित होकर सादर कहने लगे ॥३८॥

पवन बोले—हे जगन्नाथ ! हे जगत् के बन्धो ! आपको नमस्कार है आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के बीज एवं सनातन हैं। यह क्या कर रहे हैं ॥३९॥ योग-ज्ञान में निपुण शिव जी इन स्तुतियों को सुन कर शृंगार का त्याग करना चाहते हुए भी पार्वती जी के भय से त्याग न कर सके ॥४०॥ भय से आर्त होते हुए शिव जी ने भी देखा कि देवता लोग पुनः स्तुति करने के लिए उद्यत हो रहे हैं—इसलिए सुख सम्भोग का त्याग कर गले लगी हुई पार्वती का भी त्याग कर दिया ॥४१॥ भय और लज्जा से युक्त महेश्वर के उठते समय उनका वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा जिससे कार्तिकेय का जन्म हुआ ॥४२॥ पश्चात् उस मनोहर कथा को सुनायेंगे, सम्प्रति कार्तिकेय के जन्म के प्रसंग में वांछनीय बातें सुनो ॥४३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

अध्याय २

देवताओं को पार्वती का शाप

नारायण बोले—महादेव ने सुख त्याग कर सामने देवों को देखते ही पार्वती के भय से कृपापूर्वक कहा—'तुम लोग शीघ्र भाग जाओ' ॥१॥ पार्वती के शाप के कारण डरे हुए देवगण भाग निकले और समस्त ब्रह्माण्ड के संहर्ता शिव भी पार्वती के भय से कांपने लगे ॥२॥ दुर्गा ने शय्या से उठकर सामने देवों

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तत्पादुत्थाय सा दुर्गा न च दृष्ट्वा पुरः सुरान् । समुत्थितं कोपवह्निं स्तम्भयामास देहतः ॥३॥
अद्यप्रभृति ते देवा व्यर्थवीर्या भवन्त्विति । शशाप देवी तान्देवानतिरुष्टा बभूव ह ॥४॥
ततः शिवः शिवां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् । रुदतीं नम्रवदनां लिखन्तीं धरणीतलम् ॥५॥
शिवस्तां दुःखितां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् । हस्ते गृहीत्वा देवेशो वासयामास वक्षसि ॥६॥
अतीव भीतः संत्रस्त उवाच मधुरं वचः । ॥७॥

शंकर उवाच

कथं रुष्टा गिरिश्रेष्ठकन्ये धन्ये मनोहरे । मम सौभाग्यरूपे च प्राणाधिष्ठातृदेवते ॥८॥
किं तेऽभीष्टं करिष्यामि वद मां जगदम्बिके । ब्रह्माण्डसंघे निखिले किमसाध्यमिहाऽऽवयोः ॥९॥
अहो निरपराधं मां प्रसन्ना भवसुन्दरि । दैवादज्ञातदोषस्य शान्तिं मे कर्तुमर्हसि ॥१०॥
त्वया युक्तः शिवोऽहं च सर्वेषां शिवदायकः । त्वया विना हीश्वरश्च शवतुल्योऽशिवः सदा ॥११॥
प्रकृतिस्त्वं च बुद्धिस्त्वं शक्तिस्त्वं च क्षमा दया । तुष्टिस्त्वं च तथा पुष्टिः शान्तिस्त्वं क्षान्तिरेव च ॥१२॥
क्षुत्त्वं छाया तथा निद्रा तन्द्रा श्रद्धा सुरेश्वरि । सर्वाधारस्वरूपा त्वं सर्वबीजस्वरूपिणी ॥१३॥
स्मितपूर्वं वद वचः सांप्रतं सरसं शिवे । त्वत्कोपविषसंदग्धं द्रुतं जीवय मां मृतम् ॥१४॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा क्षमायुक्ता च पार्वती । उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता ॥१५॥

को नहीं देखा इसलिए भड़के हुए क्रोधाग्नि को देह में रोक लिया ॥३॥ किन्तु अति रुष्ट होकर देवी ने देवों को शाप दे ही दिया कि—वे देवता आज से निष्फलवीर्य हो जायें (अर्थात् उनके वीर्य से कोई सन्तान न हो) ॥४॥ अनन्तर शिव ने रक्तनेत्र शिवा (पार्वती) को देखा जो क्रोध से नीचे मुख करके रोदन कर रही थीं एवं पृथ्वी पर लिख रही थीं। देवेश्वर शिव ने पार्वती को क्रोध से लाल नेत्र और दुःखी देख कर उनका हाथ पकड़ लिया और अपनी ओर खींच कर उन्हें हृदय से लगा लिया ॥५-६॥ उन्होंने अत्यन्त भयभीत होकर मधुर वचन कहा।

शंकर बोले—हे उत्तम पर्वत की कन्ये! तुम धन्य हो और मन हरण करने वाली हो। तुम मेरा सौभाग्य रूप और मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री हो। हे जगदम्बिके! तुम्हारी क्या इच्छा है? कहो, मैं करने के लिए तैयार हूँ ॥७-८॥ इस समस्त ब्रह्माण्ड-समूह में हम दोनों के लिए असाध्य ही क्या है ॥९॥ अतः हे सुन्दरि! मुझ निरपराध पर प्रसन्न हो जाओ। दैवात् मुझसे अनजाने में अपराध हो गया। उसे क्षमा करो। अहो! तुम से युक्त होने पर ही मैं शिव हूं और सबके लिए कल्याणदायक हूँ ॥१०॥ तुम्हारे बिना मैं सदा शव के समान और अकल्याणकर्ता हूँ। हे सुरेश्वरि! तुम प्रकृति हो, बुद्धि हो एवं शक्ति, क्षमा, दया, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा, छाया, निद्रा, तन्द्रा और श्रद्धा रूप हो ॥११-१२॥ हे शिवे! सब की आधार और सबकी बीजस्वरूप हो। अतः इस समय मन्द मुसुकान समेत सरस वाणी बोलो ॥१३॥ तुम्हारे कोप रूपी विष से जल कर मैं मृतक हो गया हूँ, मुझे शीघ्र जीवित करो ॥१४॥ शङ्कर की ऐसी बातें सुन कर क्षमाशील पार्वती ने व्यथित हृदय से मधुर वचन कहा ॥१५॥

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पार्वत्युवाच

किं त्वाऽहं कथयिष्यामि सर्वज्ञं सर्वरूपिणम् । स्वात्मारामं पूर्णकामं सर्वदेहेष्ववस्थितम् ॥१६॥
कामिनी मानसं काममप्रज्ञं स्वामिनं वदेत् । सर्वेषां हृदयज्ञं च हृदीष्टं कथयामि किम् ॥१७॥
सुगोप्यं सर्वनारीणां लज्जाजननकारणम् । अकथ्यमपि सर्वासां महेश कथयामि ते ॥१८॥
सुखेषु मध्ये स्त्रीणां च विभवेषु सुरेश्वर । सत्पुंसा सह संभोगो निर्जनेषु परं सुखम् ॥१९॥
तद्भङ्गेन च यद्दुःखं तत्समं नास्ति च स्त्रिया । कान्तानां कान्तविच्छेदशोकः परमदारुणः ॥२०॥
कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने । तथा कान्तं विना कान्ता क्षीणा कान्त क्षणे क्षणे ॥२१॥
चिन्ता ज्वरश्च सर्वेषामुपतापश्च वाससाम् । साध्वीनां कान्तविच्छेदस्तुरगानां च मैथुनम् ॥२२॥
रतिभङ्गो दुःखमेकं द्वितीयं वीर्यपातनम् । दुःखातिरेकि दुःखं च तृतीयमनपत्यता ॥२३॥
त्रैलोक्यकान्तं कान्तं त्वां लब्ध्वाऽपि न च मे सुतः । या स्त्री पुत्रविहीना च जीवनं तन्निरर्थकम् ॥२४॥
जन्मान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् । सद्वंशजातपुत्रश्च परत्रेह सुखप्रदः ॥२५॥
सुपुत्रः स्वामिनोंऽशश्च स्वामितुल्यसुखप्रदः । कुपुत्रश्च कुलाङ्गारो मनस्तापाय केवलम् ॥२६॥
स्वामी स्वांशेन स्वस्त्रीणां गर्भे जन्म लभेद्ध्रुवम् । साध्वी स्त्री मातृतुल्या च सततं हितकारिणी ॥२७॥

पार्वती बोलीं— मैं तुमसे क्या कहूँ, तुम सर्वज्ञ, सर्वरूप, आत्मा में रमण करने वाले, पूर्ण काम और सब की देह में अवस्थित रहते हो ॥१६॥ कामिनी अपना मनोभाव अल्पज्ञ पति से कहती है और तुम तो सब के हृदय के जानने वाले हो अतः तुमसे मनोऽभिलाषित क्या कहूँ ॥१७॥ हे महेश ! समस्त स्त्रियों के लिए अतिगोप्य, लज्जा का जनक तथा अकथनीय होने पर भी मैं तुमसे कह रही हूँ ॥१८॥ हे सुरेश्वर ! सब प्रकार के सुख और समस्त ऐश्वर्यों के बीच निर्जन स्थानों में सत्पुरुष के साथ सम्भोग करना ही स्त्रियों का परम सुख है ॥१९॥ और उसके भंग होने के समान अन्य दुःख स्त्रियों को नहीं है क्योंकि स्त्रियों को स्वामी का वियोग-शोक परम दारुण होता है ॥२०॥ हे कान्त ! जिस प्रकार कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा दिन-दिन क्षीण होता है उसी भाँति कान्त के बिना कान्ता भी क्षण-क्षण में क्षीण होती रहती है ॥२१॥ चिन्ता सभी के लिए ज्वररूप दुःख है, वस्त्रों के लिए उपताप (गर्मी) दुःख है, पतिव्रताओं के लिए कान्त-वियोग दुःख है और घोड़ों के लिए मैथुन दुःख है ॥२२॥ रति भंग होना मेरा पहला दुःख है, दूसरा दुःख आपका (भूमि पर) वीर्यपात होना और यह तीसरा महान् दुःख है कि कोई सन्तान नहीं है ॥२३॥ तीनों लोकों के स्वामी आपको पतिरूप में प्राप्त कर के भी मेरे कोई पुत्र नहीं है। जो स्त्री पुत्रहीन होती है, उसका जीवन निरर्थक होता है ॥२४॥ तप और दान करने से उत्पन्न पुण्य जन्मान्तर में सुख देता है और सत्कुल में उत्पन्न हुआ पुत्र लोक-परलोक दोनों में सुख प्रदान करता है ॥२५॥ स्वामी के अंश से उत्पन्न सत्पुत्र स्वामी के समान ही सुख प्रदान करता है और कुपुत्र तो कुल का अंगार रूप है। वह केवल मन को संतप्त ही करता है ॥२६॥ उत्तम स्त्रियों के गर्भ में उनके स्वामी अपने अंश से जन्म ग्रहण करते हैं और पतिव्रता स्त्री माता के समान निरन्तर

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

असाध्वी वैरितुल्या च शश्वत्संतापदायिनी । मुखदुष्टा योनिदुष्टा चासाध्वीति त्रिधा स्मृता ॥२८॥
कमुपायं करिष्यामि वद योगीश्वरेश्वर । उपायसिन्धो तपसां सर्वेषां च फलप्रद ॥२९॥
इत्युक्त्वा पार्वतीदेवी नम्रवक्त्रा बभूव ह । प्रहस्य शंकरो देवो बोधयामास पार्वतीम् ॥३०॥
सत्पुत्रबीजं सुखदं तापनाशनकारणम् । मितं स्निग्धं सुरुचिरं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

महादेव उवाच

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति । उपायतः कार्यसिद्धिर्भवत्येव जगत्त्रये ॥१॥
सर्ववाञ्छितसिद्धेस्तु बीजरूपं सुमङ्गलम् । मनसः प्रीतिजननमुपायं कथयामि ते ॥२॥
हरेराराधनं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने । व्रतं च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यसि ॥३॥
महाकठोरबीजं च वाञ्छाकल्पतरुं परम् । सुखदं पुण्यदं सारं पुत्रदं सर्वसौख्यदम् ॥४॥
नदीनां च यथा गङ्गा देवानां च हरिर्यथा । वैष्णवानां यथाऽहं च देवीनां त्वं यथा प्रिये ॥५॥

हित करने वाली होती है ॥२७॥ और असाध्वी (व्यभिचारिणी) स्त्री शत्रु के समान निरन्तर सन्ताप प्रदान करने वाली होती है। मुख की दुष्टा, योनि-दुष्टा और असाध्वी भेद से कुलटा तीन प्रकार की होती है ॥२८॥ हे योगीश्वरेश्वर! आप उपाय के सागर हैं और सभी तप का फल प्रदान करने वाले हैं, अतः मुझे बताइए ! मैं क्या उपाय करूँ ॥२९॥ इतना कह कर देवी पार्वती ने अपना मुख नीचे कर लिया। अनन्तर शिव हँस कर पार्वती को समझाने लगे ॥३०॥ सत्पुत्र होने का कारण, सुखप्रद, तापनाशक, अल्प, स्नेहमय और अत्यन्त रोचक बातें कहना प्रारम्भ किया ॥३१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

पुत्र-प्राप्त्यर्थ पार्वती को पुण्यक व्रत का उपदेश

श्री महादेव जी बोले—हे पार्वती ! सुनो ! मैं कह रहा हूँ, उससे तुम्हारा कल्याण होगा । तीनों लोकों में उपाय द्वारा ही कार्य-सिद्धि होती है ॥१॥ मैं तुम्हें उपाय बता रहा हूं, जो समस्त मनोरथ सिद्धि का बीज, अति मंगल और मन में प्रीति उत्पन्न करने वाला है ॥२॥ हे वरानने ! भगवान् की आराधना करके तुम एक वर्ष तक पुण्यक नामक व्रत सुसम्पन्न करो। वह महाकठोर बीज रूप, मनोरथ का श्रेष्ठ कल्पवृक्ष, सुखद, पुण्यप्रद, सारभाग, पुत्रदायक और समस्त सौख्य का प्रदाता है ॥३-४॥ हे प्रिये ! जिस प्रकार नदियों में गंगा, देवों में विष्णु, वैष्णवों में मैं, देवियों में तुम, वर्णों में ब्राह्मण, तीर्थों में पुष्कर, पुष्पों में पारिजात, पत्रों में तुलसी, पुण्य

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

[1]वर्णानां च यथा विप्रस्तीर्थानां पुष्करं यथा। पुष्पाणां पारिजातं च पत्राणां तुलसी यथा ॥६॥
यथा पुण्यप्रदानां च तिथिरेकादशी स्मृता। रविवारश्च वाराणां यथा पुण्यप्रदः शिवे ॥७॥
मासानां मार्गशीर्षश्चाप्यृतूनां माधवो यथा। संवत्सरो वत्सराणां युगानां च कृतं यथा ॥८॥
विद्याप्रदश्च पूज्यानां गुरूणां जननी यथा। साध्वी पत्नी यथाऽऽप्तानां विश्वस्तानां मनो यथा ॥९॥
यथा धनानां रत्नं च प्रियाणां च यथा पतिः। यथा पुत्रश्च बन्धूनां वृक्षाणां कल्पपादपः ॥१०॥
फलानां वै चूतफलं वर्षाणां भारतं यथा। वृन्दावनं वनानां चशतरूपा च योषिताम् ॥११॥
यथा काशी पुरीणां च सूर्यस्तेजस्विनां यथा। [2]यथा शशी खगानां च सुन्दराणां च मन्मथः ॥१२॥
शास्त्राणां च यथा वेदाः सिद्धानां कपिलो यथा। हनूमान्वानराणां च क्षेत्राणां ब्राह्मणाननम् ॥१३॥
यशोदानां यथा विद्या कविता च मनोहरा। [3]आकाशो व्यापकानां च ह्यङ्गानां लोचनं यथा ॥१४॥
विभवानां हरिकथा सुखानां हरिचिन्तनम्। स्पर्शानां पुत्रसंस्पर्शो हिंस्राणां च यथा खलः ॥१५॥
पापानां च यथा मिथ्या पापिनां पुंश्चली यथा। पुण्यानां च यथा सत्यं तपसां हरिसेवनम् ॥१६॥
यथा घृतं च गव्यानां यथा ब्रह्मा तपस्विनाम्। अमृतं भक्ष्यवस्तूनां सस्यानां धान्यकं यथा ॥१७॥
पुण्यदानां यथा तोयं शुद्धानां च हुताशनः। सुवर्णं तैजसानां च मिष्टानां प्रियभाषणम् ॥१८॥
गरुडः पक्षिणां चैव हस्तिनामिन्द्रवाहनम्। योगिनां च कुमारश्च देवर्षीणां च नारदः ॥१९॥
गन्धर्वाणां चित्ररथो जीवो बुद्धिमतां यथा। सुकवीनां यथा शुक्रः काव्यानां च पुराणकम् ॥२०॥
स्रोतस्वतां समुद्रश्च यथा पृथ्वी क्षमावताम्। लाभानां च यथा मुक्तिर्हरिभक्तिश्च संपदाम् ॥२१॥

देने वालों में एकादशी तिथि तथा वारों में रविवार पुण्यप्रद है ॥५-७॥ हे शिवे ! मासों में मार्गशीर्ष (अगहन), ऋतुओं में माधव (वसन्त) वत्सरों में संवत्सर, युगों में कृतयुग, पूज्यों में विद्यादाता, गुरुओं में माता, आप्त लोगों में पतिव्रता पत्नी, विश्वस्तों में मन, धनों में रत्न, प्रिय लोगों में पति, बन्धुओं में पुत्र, वृक्षों में कल्पवृक्ष, फलों में आम, वर्षों में भारतवर्ष, वनों में वृन्दावन, स्त्रियों में शतरूपा, पुरियों में काशी, तेजस्वियों में सूर्य, आकाश-चारियों में चन्द्रमा, सुन्दरों में कामदेव, शास्त्रों में वेद, सिद्धों में कपिल, वानरों में हनूमान्, क्षेत्रों में ब्राह्मणमुख, यशदायकों में विद्या और मनोहर कविता, व्यापकों में आकाश, अंगों में नेत्र, ऐश्वर्यों में भगवान् की कथा, सुखों में भगवान् का चिन्तन करना, स्पर्शों में पुत्र-स्पर्श, हिंसकों में खल (दुष्ट), पापों में मिथ्या, पापियों में पुंश्चली, पुण्यों में सत्य, तपों में हरि-सेवा, गव्यों में घी, तपस्वियों में ब्रह्मा, भक्ष्य वस्तुओं में अमृत, सस्यों में धान्य, पुण्य देनेवालों में जल, शुद्धों में अग्नि, तैजस पदार्थों में सुवर्ण, मीठी वस्तुओं में प्रिय भाषण, पक्षियों में गरुड़, हाथियों में ऐरावत, योगियों में कुमार, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ, बुद्धिमानों में जीव (बृहस्पति), उत्तम कवियों में शुक्र, काव्यों में पुराण, स्रोतों में समुद्र, क्षमाशीलों में पृथिवी, लाभों में मुक्ति, सम्पदाओं में हरिभक्ति, पवित्रों में वैष्णव, वर्णों (अक्षरों) में ओंकार, मन्त्रों में विष्णुमन्त्र, बीजों में

---

१ क. आश्रमाणां यथा भिक्षुस्ती०। २ ख. थेयन्दुः सुखदानां च। ३ क. आत्मा कालो व्या०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पवित्राणां वैष्णवाश्च वर्णानां प्रणवो यथा। विष्णुमन्त्रश्च मन्त्राणां बीजानां प्रकृतिर्यथा ॥२२॥
विदुषां च यथा वाणी गायत्री छन्दसां यथा। यथा कुबेरो यक्षाणां सर्पाणां वासुकिर्यथा ॥२३॥
यथा पिता ते शैलानां गवां च सुरभिर्यथा। वेदानां सामवेदश्च तृणानां च यथा कुशः ॥२४॥
सुखदानां यथा लक्ष्मीर्मनो वै शीघ्रगामिनाम्। अक्षराणामकारश्च यथा तातो हितैषिणाम् ॥२५॥
शालग्रामश्च मूर्तीनां पशूनां विष्णुपञ्जरः। चतुष्पदानां पञ्चास्यो मानवो जीविनां यथा ॥२६॥
यथा स्वान्तं चेन्द्रियाणां मन्दाग्निश्च रुजां यथा। बलिनां च यथा शक्तिरहं शक्तिमतां यथा ॥२७॥
महान्विराट् च स्थूलानां सूक्ष्माणां परमाणुकः। यथेन्द्र आदितेयानां दैत्यानां च बलिर्यथा ॥२८॥
यथा दधीचिर्दातॄणां प्रह्लादश्चैव साधुषु। ब्रह्मास्त्रं च यथाऽस्त्राणां चक्राणां च सुदर्शनम् ॥२९॥
नृणां राजा रामचन्द्रो धन्विनां लक्ष्मणो यथा। सर्वाधारः सर्वसेव्यः सर्वबीजं च सर्वदः
सर्वसारो यथा कृष्णो व्रतानां पुण्यकं यथा ॥३०॥
व्रतं कुरु महाभागे त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। सर्वश्रेष्ठश्च पुत्रस्ते व्रतादेव भविष्यति ॥३१॥
व्रताराध्यश्च वै कृष्णः सर्वेषां वाञ्छितप्रदः। जनो यत्सेवनान्मुक्तः पितृभिः कोटिभिः सह ॥३२॥
हरिमन्त्रं गृहीत्वा च हरिसेवां करोति यः। भारते जन्म सफलं स्वात्मनः स करोति च ॥३३॥
उद्धृत्य कोटिपुरुषान्वैकुण्ठं याति निश्चितम्। श्रीकृष्णपार्षदो भूत्वा सुखं तत्रैव मोदते ॥३४॥
सहोदरान्स्वभृत्यांश्च स्वबन्धून्सहचारिणः। स्वस्त्रियश्च समुद्धृत्य भक्तो याति हरेः पदम् ॥३५॥

प्रकृति, विद्वानों में सरस्वती, छन्दों में गायत्री, यक्षों में कुवेर, सर्पों में वासुकि नाग, पर्वतों में तुम्हारे पिता हिमवान्, गौओं में सुरभि, वेदों में सामवेद, तृणों में कुश, सुख देनेवालों में लक्ष्मी, शीघ्रगामियों में मन, अक्षरों में अकार, हितैषियों में पिता, मूर्तियों में शालग्राम, आयुधों में सुदर्शन चक्र, चार पैर वालों में सिंह, जीवों में मानव, इन्द्रियों में अन्तःकरण, रोगों में मन्दाग्नि, बलवानों में शक्ति, शक्तिमानों में मैं, स्थूलों में महाविराट्, सूक्ष्मों में परमाणु, अदिति-पुत्रों (देवों) में इन्द्र, दैत्यों में बलि, दाताओं में दधीचि, साधुओं में प्रह्लाद, अस्त्रों में ब्रह्मास्त्र, चक्रों में सुदर्शन, मनुष्यों में राजा रामचन्द्र, धनुर्धारियों में लक्ष्मण और समस्त के आधार, सब के सेव्य, सब के बीज, सब कुछ देनेवाले और सबके निचोड़ श्रीकृष्ण, (जैसे सर्वश्रेष्ठ) हैं उसी भाँति व्रतों में पुण्यक व्रत है ॥८-३०॥ हे महाभागे! इस व्रत को सुसम्पन्न करो, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है। इस व्रत के प्रभाव से तुम्हें श्रेष्ठपुत्र की प्राप्ति होगी ॥३१॥ इस व्रत में आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्ण हैं जो सभी को मनोरथ प्रदान करते हैं और जिनकी सेवा करके मनुष्य अपनी करोड़ों पीढ़ियों समेत मुक्त हो जाता है ॥३२॥ भारत देश में जो भगवान् का मंत्र ग्रहण कर उनकी सेवा करता है, वह अपना जन्म सफल करता है ॥३३॥ और अपनी करोड़ों पीढ़ियों का उद्धार करके निश्चित रूप से वैकुण्ठ जाता है, वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का पार्षद होकर आनन्द जीवन व्यतीत करता है ॥३४॥ सहोदरों (सगे भाइयों), अपने सेवक-वर्ग, बन्धुवर्ग, सहचारीगण एवं अपनी स्त्रियों का उद्धार करके भक्त भगवान् के लोक में चला जाता है ॥३५॥ हे गिरिजे! इसलिए भगवान् का अति दुर्लभ मन्त्र ग्रहण

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तस्माद्गृहाण गिरजे हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम्। जप मन्त्रं व्रते तत्र पितॄणां मुक्तिकारणम् ॥३६॥
इत्युक्त्वा शंकरो देवो गत्वा गिरिजया सह। शीघ्रं च जाह्नवीतीरं हरेर्मन्त्रं मनोहरम् ॥३७॥
तस्यै ददौ च संप्रीत्या कवचं स्तोत्रसंयुतम्। पूजाविधाननियमं कथयामास तां मुने ॥३८॥
इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारायण उवाच

श्रुत्वा व्रतविधानं च दुर्गा संहृष्टमानसा। सर्वं व्रतविधानं च संप्रष्टुमुपचक्रमे ॥१॥

पार्वत्युवाच

सर्वं व्रतविधानं मां वद वेदविदां वर। हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो परात्पर ॥२॥
कानि व्रतोपयुक्तानि द्रव्याणि च फलानि च। समयं नियमं भक्ष्यं विधानं तत्फलं प्रभो ॥३॥
देहि मह्यं विनीतायै नियुक्तं सत्पुरोहितम्। पुष्पोपहारान्विप्रांश्च द्रव्याहरणकिंकरान् ॥४॥
अन्यानि चोपयुक्तानि मयाऽज्ञातानि यानि च। संनियोजय तत्सर्वं स्त्रीणां स्वामी च सर्वदः ॥५॥
पिता कौमारकाले च सदा पालनकारकः। भर्ता मध्ये सुतः शेषे त्रिधाऽवस्था सुयोषिताम् ॥६॥

कर उस व्रत में इसका जप करो, जो पितरों को मुक्त करता है। इतना कह शंकर जी ने गिरिजा के साथ शीघ्र गंगा-तट पर जाकर उन्हें भगवान् का मनोहर मंत्र प्रदान किया, और हे मुने ! सप्रेम कवच, स्तोत्र एवं पूजा-विधान का नियम भी बताया ॥३६-३८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

पुण्यक नामक व्रत का विधान

नारायण बोले—व्रत-विधान सुनने पर दुर्गा जी का चित्त अति प्रसन्न हो गया, उन्होंने सभी व्रत-विधान पूछना आरम्भ किया ॥१॥

पार्वती बोली—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! हे नाथ ! हे करुणासिन्धो ! हे दीनबन्धो ! आप परे से भी परे हैं, अतः आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि—इस व्रत के उपयुक्त कौन द्रव्य, हैं ? फल क्या हैं ? उसके समय, नियम, भक्ष्य, विधान और फल क्या हैं ? हे प्रभो ! मुझ विनीता को एक उत्तम पुरोहित, पुष्प लाने वाले ब्राह्मणों और द्रव्यों को जुटाने वाले सेवकों का वर्ग दीजिये ॥२-४॥ और अन्य जो कुछ इस व्रत के उपयुक्त हों, जिन्हें मैं नहीं जानती हूँ, वह सब प्रबन्ध कर दें क्योंकि स्त्रियों के लिए स्वामी सब कुछ प्रदान करता है ॥५॥ कुमारावस्था में स्त्री की रक्षा पिता करता है, मध्य काल में (युवती होने पर) भर्ता और शेष वृद्धावस्था में पुत्र रक्षक होता है, इस प्रकार उत्तम स्त्रियों की तीन अवस्थायें होती हैं ॥६॥ पिता प्राणोपम अपनी पुत्री को उत्तम पति के हाथ

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तातोऽशोकः प्राणतुल्यां दत्त्वा सत्स्वामिने सुताम्। स्वामी निवृत्तिमाप्नोति संन्यस्य स्वसुते प्रियाम् ॥७॥
बन्धुत्रययुता या स्त्री सा च भाग्यवती परा। किंचिद्विहीना मध्या च सर्वहीनाऽधमा भुवि ॥८॥
एतेषां च समीपस्था प्रशंस्या सा जगत्त्रये। निन्दिताऽन्येषु संन्यस्ता सर्वमेतच्छ्रुतौ श्रुतम् ॥९॥
सर्वात्मा भगवांस्त्वं च सर्वसाक्षी च सर्ववित्। देहि मह्यं पुत्रवरं स्वात्मनिर्वृतिहेतुकम् ॥१०॥
स्वात्मबोधानुमानेन महात्मनि निवेदितम्। सर्वान्तराभिप्रायज्ञं[1] भवन्तं बोधयामि किम् ॥११॥
इत्युक्त्वा पार्वती प्रीत्या पपात स्वामिनः पदे। कृपासिन्धुश्च भगवान्प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१२॥

महादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विधानं नियमं फलम्। फलानि चैव द्रव्याणि व्रतयोग्यानि यानि च ॥१३॥
विप्राणां शतकं शुद्धं फलपुष्पोपहारकम्। किंकराणां च शतकं द्रव्याहरणकारकम् ॥१४॥
दासीनां शतकं लक्षं नियुक्तं च पुरोहितम्। सर्वव्रतविधानज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥१५॥
प्रवरं हरिभक्तानां सर्वज्ञं ज्ञानिनां वरम्। सनत्कुमारं मत्तुल्यं गृहाण व्रतहेतवे ॥१६॥
देवि शुद्धे च काले च परं नियमपूर्वकम्। माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतारम्भः शुभः प्रिये ॥१७॥
गात्रं सुनिर्मलं कृत्वा शिरः संस्कारपूर्वकम्। उपोष्य पूर्वदिवसे वस्त्रं संशोध्य यत्नतः ॥१८॥

सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है और स्वामी पुत्र को अपनी पत्नी सौंप कर निवृत्त होता है ॥७॥ इस प्रकार जो स्त्री इन तीन बन्धुओं से युक्त रहती है वह उत्तम भाग्यवती होती है, कुछ कमी वाली मध्यम प्रकार की भाग्यवती है और तीनों से हीन स्त्री पृथ्वी पर अधमा कही जाती है ॥८॥ इन तीनों (बन्धुओं) के समीप रहने वाली स्त्री तीनों लोकों में प्रशंसा का पात्र होती है और इनसे अन्य को सौंपी जाने वाली निन्दित होती है, यह सब वेद में सुना गया है ॥९॥ आप सब के आत्मा, भगवान्, सब के साक्षी और सब के वेत्ता हैं, अतः मुझे अपने सुख के लिए उत्तम पुत्र देने की कृपा करें ॥१०॥ अपने ज्ञान के अनुसार मैंने (आप) महानुभाव से निवेदन कर दिया है और सभी के आन्तरिक अभिप्राय को जानने वाले आपको मैं क्या बता सकती हूँ ॥११॥ इतना कह कर पार्वती अत्यन्त प्रेम से पति के चरण पर गिर पड़ीं, अनन्तर कृपासागर भगवान् महादेव ने कहना आरम्भ किया ॥१२॥

महादेव बोले—हे देवि! मैं (उस व्रत का) विधान, नियम, फल तथा व्रत के योग्य (भक्ष्य) फल और द्रव्य बता रहा हूँ, सुनो ॥१३॥ सौ शुद्ध ब्राह्मण फल-पुष्प-चयन के लिए चाहिए और द्रव्य आदि लाने के लिए सौ सेवक ॥१४॥ एक करोड़ दासियाँ तथा ऐसा पुरोहित नियुक्त होना चाहिए, जो समस्त व्रत-विधान के ज्ञाता, वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान्, हरिभक्तों में श्रेष्ठ, और ज्ञानियों में सर्वज्ञ हो। अतः व्रत के लिए मेरे तुल्य सनत्कुमार को पुरोहित बनाओ ॥१५-१६॥ हे देवि! हे प्रिये! शुद्ध समय में अति नियम पूर्वक इसका आरम्भ होना चाहिए। इस व्रत के आरम्भ के लिए माघ-शुक्ल-त्रयोदशी शुभ मुहूर्त है ॥१७॥ शिर के

१ख. ज्ञं बोधज्ञं बो०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अरुणोदयवेलायां तत्पादुत्थाय सुव्रती। मुखप्रक्षालनं कृत्वा स्नात्वा वै निर्मले जले ॥१९॥
आचम्य यत्नपूतो हि हरिस्मरणपूर्वकम्। दत्त्वाऽर्घ्यं हरये भक्त्या गृहमागत्य सत्वरम् ॥२०॥
धौते च वाससी धृत्वा ह्युपविश्याऽऽसने[1] शुचौ। आचम्य तिलकं धृत्वा समाप्य स्वाह्निकं पुनः ॥२१॥
घटं संस्थाप्य विधिवत्स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। पुरोहितस्य वरणं पुरः कृत्वा प्रयत्नतः ॥२२॥
संकल्प्य वेदविहितं व्रतमेतत्समाचरेत्। व्रते द्रव्याणि नित्यानि चोपचारास्तु षोडश।
देयानि नित्यं देवेशि कृष्णाय परमात्मने ॥२३॥
आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। स्नानीयं मधुपर्कं च वस्त्राण्याभरणानि च ॥२४॥
सुगन्धिपुष्पधूपं च दीपनैवेद्यचन्दनम्। यज्ञसूत्रं च ताम्बूलं कर्पूरादिसुवासितम् ॥२५॥
द्रव्याण्येतानि पूजायाश्चाङ्गरूपाणि सुन्दरि। देवि किंचिद्विहीनेन चाङ्गहानिः प्रजायते ॥२६॥
अङ्गहीनं च यत्कर्म चाङ्गहीनो यथा नरः। अङ्गहीने च कार्ये च फलहानिः प्रजायते ॥२७॥
अष्टोत्तरशतं पुष्पं पारिजातस्य विष्णवे। देयं प्रतिदिनं दुर्गे स्वात्मनो रूपहेतवे ॥२८॥
श्वेतचम्पकपुष्पाणां लक्षमक्षतमीप्सितम्। प्रदेयं हरये भक्त्या वर्णसौन्दर्यहेतवे ॥२९॥
सहस्रपत्रपद्मानामक्षतं लक्षकं तथा। भक्त्या देयं च हरये मुखसौन्दर्यहेतवे ॥३०॥
अमूल्यरत्नरचितं दर्पणानां सहस्रकम्। देयं नारायणायैव नेत्रयोर्दीप्तिहेतवे ॥३१॥

संस्कार समेत शरीर को निर्मल और वस्त्र को शुद्ध करके पहले दिन उपवास करे ॥१८॥ पुनः दूसरे दिन अरुणोदयवेला में शय्या से उठकर उत्तम व्रती को चाहिए कि (दातून आदि से) मुख शुद्ध कर निर्मल जल में स्नान, आचमन, सप्रयत्न हरिस्मरण एवं भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्घ्य दान कर के शीघ्र घर आवे और दो निर्मल वस्त्र धारण कर पवित्र आसन पर बैठे। आचमन, तिलक (चन्दन) और नित्य कर्म समाप्त करे। तत्पश्चात् पहले प्रयत्नपूर्वक पुरोहित का वरण करके स्वस्ति वाचन पूर्वक कलश स्थापन करे। फिर वेदानुसार संकल्प के साथ व्रत सुसम्पन्न करे, जिसमें नित्य सोलहो उपचार से पूजन किया जाता है। हे देवेशि ! ये सभी वस्तुएँ परमात्मा श्रीकृष्ण को नित्य समर्पित की जाती हैं। आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, मधुपर्क, वस्त्र, आभूषण, सुगन्धित पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, यज्ञसूत्र (जनेऊ) और कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल ॥१९-२५॥ हे सुन्दरि ! इतने द्रव्य पूजा के अंग हैं। हे देवि ! पूजा के अंगभूत द्रव्यों (वस्तुओं) की कुछ कमी होने पर अंग-हानि होती है ॥२६॥ और अंगहीन कर्म अंगहीन पुरुष की भाँति ही होता है। अंगहीन कार्य में फल की हानि होती है ॥२७॥ हे दुर्गे ! अपने रूप के निमित्त पारिजात का एक-सौ आठ पुष्प भगवान् विष्णु को प्रतिदिन समर्पित करना चाहिए ॥२८॥ और रंग-सौंदर्य के लिए श्वेत चम्पा का एक लाख अक्षत पुष्प भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु को अर्पित करना चाहिए ॥२९॥ मुख-सौन्दर्य के निमित्त सहस्र पत्र वाले कमल का एक लाख अक्षत पुष्प भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करना चाहिए ॥३०॥ नेत्र की दीप्ति के लिए अमूल्य रत्नों का बना एक सहस्र दर्पण नारायण को अर्पित करे ॥३१॥ हे देवेशि ! नेत्र-सौन्दर्य के निमित्त

१क. ०ने कुशे। २क. ०व भालसौन्दर्यहे०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नीलोत्पलानां लक्षं च देयं कृष्णाय भक्तितः। व्रताङ्गभूतं देवेशि चक्षुषो रूपहेतवे ॥३२॥
हिमालयोद्भवं लक्षं रुचिरं श्वेतचामरम्। प्रदेयं केशवायैव केशसौन्दर्यहेतवे ॥३३॥
अमूल्यरत्नरचितं पुटकानां सहस्रकम्। प्रदेयं गोपिकेशाय नासासौन्दर्यहेतवे ॥३४॥
बन्धूकपुष्पलक्षं च देयं राधेश्वराय च। [1]सौम्यौष्ठाधरयोश्चैवं [2]वर्णसौन्दर्यहेतवे ॥३५॥
मुक्ताफलानां लक्षं च दन्तसौन्दर्यहेतवे। देयं गोलोकनाथाय शैलजे भक्तिपूर्वकम् ॥३६॥
रत्नगेन्दुकलक्षं च गण्डसौन्दर्यहेतवे। महेश्वराय दातव्यं व्रते शैलेन्द्रकन्यके ॥३७॥
रत्नपाशकलक्षं च देयं ब्रह्मेश्वराय च। ओष्ठाधःस्थलरूपाय व्रती प्राणेशि भक्तितः ॥३८॥
कर्णभूषणलक्षं च रत्नसारविनिर्मितम्। देयं सर्वेश्वरायैव कर्णसौन्दर्यहेतवे ।३९॥
माध्वीककलशानां च लक्षं रत्नविनिर्मितम्। देयं विश्वेश्वरायैव स्वरसौन्दर्यहेतवे ॥४०॥
सुधापूर्णं च कुम्भानां सहस्रं रत्ननिर्मितम्। देयं कृष्णाय देवेशि वाक्यसौन्दर्यहेतवे ॥४१॥
रत्नप्रदीपलक्षं च गोपवेषविधायिने। देयं किशोरवेषाय दृष्टिसौन्दर्यहेतवे ॥४२॥
धत्तूरकुसुमाकारं रत्नपात्रसहस्रकम्। देयं गोरक्षकायैव गलसौन्दर्यहेतवे ॥४३॥
सद्रत्नसाररचितं पद्मनालसहस्रकम्। देयं [3]चण्डकपालाय बाहुसौन्दर्यहेतवे ॥४४॥

भगवान् कृष्ण को एक लाख नीलकमल भक्ति समेत देना चाहिए, यह व्रत का अंगभूत है ॥३२॥ केश के सौन्दर्य के निमित्त हिमालय में उत्पन्न एवं रुचिर श्वेत चामर एक लाख की संख्या में भगवान् केशव को अर्पित करे ॥३३॥ नासिका-सौन्दर्य के लिए अमूल्य रत्नों का सुरचित एक सहस्र पुटक (डिब्बे) गोपिकाओं के ईश भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित करे ॥३४॥ सौम्य ओठों के वर्ण की सुन्दरता के निमित्त राधेश्वर भगवान् को एक लाख बन्धूक (दुपहरिया) पुष्प अर्पित करे ॥३५॥ हे शैलजे ! दाँतों के सुन्दर होने के लिए एक लाख मोती गोलोकनाथ भगवान् को भक्तिपूर्वक समर्पित करना चाहिए ॥३६॥ हे शैलेन्द्रकन्यके ! कपोल-सौन्दर्य के निमित्त एक लाख रत्नों के गेंद इस व्रत में महेश्वर को अर्पित करना चाहिए ॥३७॥ हे प्राणेशि ! ओंठ के निचले भाग के सुन्दर होने के लिए रत्नों के एक लाख पाशक भक्तिपूर्वक ब्रह्मेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) को व्रती प्रदान करे ॥३८॥ कर्ण-सौन्दर्य के लिए रत्नों के सार भाग के बने एक लाख कान के भूषण सर्वेश्वर को अर्पित करना चाहिए ॥३९॥ स्वर-सौन्दर्य के निमित्त माध्वीक (महुवे के आसव) से भरे रत्नों के बने एक लाख कलश विश्वेश्वर को समर्पित करना चाहिए ॥४०॥ हे देवेशि ! वाक्य की सुन्दरता के लिए रत्नों के सुनिर्मित एक सहस्र सुधापूर्ण कलश भगवान् कृष्ण को समर्पित करना चाहिए ॥४१॥ आँखों की सुन्दरता के निमित्त एक लाख रत्नों के प्रदीप गोपवेशधारी बालमुकुन्द भगवान् को समर्पित करे ॥४२॥ गले के सौन्दर्य के निमित्त धतूर पुष्प के समान बने रत्नों के एक सहस्र पात्र गोरक्षक भगवान् को प्रदान करे ॥४३॥ बाहु की सुन्दरता के लिए उत्तम रत्नों के सार भाग से रचित एक सहस्र कमलनाल चण्डकपाल को अर्पित करना चाहिए ॥४४॥ हे नारायणि ! हाथ की सुन्दरता के निमित्त एक लाख

१क. स्पष्टौष्ठा० । २क. बहुसौ० । ३क. तन्तुक० क. स्वर्णक० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

लक्षं च रक्तपद्मानां करसौन्दर्यहेतवे। देयं गोपाङ्गनेशाय नारायणि हरिव्रते ॥४५॥
अङ्गुलीयकलक्षं च रत्नसारविनिर्मितम्। अङ्गुलीनां च रूपार्थं देयं देवेश्वराय च ॥४६॥
मणीन्द्रसारलक्षं च श्वेतवर्णं मनोहरम्। देयं मुनीन्द्रनाथाय नखसौन्दर्यहेतवे ॥४७॥
सद्रत्नसारहाराणां लक्षं चातिमनोहरम्। देयं मदनमोहाय वक्षःसौंदर्यहेतवे ॥४८॥
सुपक्वश्रीफलानां च लक्षं च सुमनोहरम्। देयं सिद्धेन्द्रनाथाय स्तनसौन्दर्यहेतवे ॥४९॥
सद्रत्नवर्तुलाकारपत्रलक्षं मनोहरम्। देयं पद्मालयेशाय देहसौन्दर्यहेतवे ॥५०॥
सद्रत्नसाररचितं नाभीनां च सहस्रकम्। प्रदेयं पद्मनाभाय नाभिसौन्दर्यहेतवे ॥५१॥
सद्रत्नसाररचितं रथचक्रसहस्रकम्। नितम्बसौन्दर्यार्थं च देयं वै चक्रपाणये ॥५२॥
[3]सुवर्णरम्भास्तम्भानां लक्षं च सुमनोहरम्। प्रदेयं श्रीनिवासाय श्रोणिसौन्दर्यहेतवे ॥५३॥
शतपत्रस्थलाब्जानां लक्षमम्लानमक्षतम्[4]। प्रदेयं पद्मनेत्राय पादसौन्दर्यहेतवे ॥५४॥
सुवर्णरचितानां च खञ्जनानां सहस्रकम्। गतिसौन्दर्यहेत्वर्थं देयं लक्ष्मीश्वराय च ॥५५॥
राजहंससहस्रं च गजेन्द्राणां सहस्रकम्। सुवर्णरचितं देयं हरये गतिहेतवे ॥५६॥
सुवर्णच्छत्रलक्षं च देयं नारायणाय च। विचित्रं रत्नसारेण मूर्धसौन्दर्यहेतवे ॥५७॥

रक्तकमल भगवान् के इस व्रत में गोपांगनाओं के ईश भगवान् कृष्ण को सादर समर्पित करे ॥४५॥ अंगुलियों के सौन्दर्य के लिए रत्नों के सार भाग से सुनिर्मित एक लाख अंगूठियाँ देवेश्वर को प्रदान करना चाहिए ॥४६॥ नखों के सौन्दर्य के लिए उत्तम मणियाँ जो श्वेत वर्ण और मनोहर हों, एक लाख की संख्या में मुनीन्द्रनाथ (भगवान्) को समर्पित करे ॥४७॥ वक्षःस्थल के सौन्दर्य निमित्त उत्तम रत्नों के सारभाग के बने मनोहर एक लाख हार मदनमोहन भगवान् को समर्पित करने चाहिए ॥४८॥ स्तन-सौन्दर्य के लिए अत्यन्त पके और अति मनोहर एक लाख श्रीफल (बेल) सिद्धेन्द्रनाथ (भगवान्) को प्रदान करे ॥४९॥ देह-सौन्दर्य के लिए उत्तम रत्नों के गोलाकार और अति मनोहर एक लाख पत्र कमलालय के अधीश्वर (भगवान्) को सादर समर्पित करे ॥५०॥ नाभि की सुन्दरता के लिए उत्तम रत्नों के सारभाग से बनी एक सहस्र नाभि पद्मनाभ (भगवान्) को समर्पित करनी चाहिए ॥५१॥ नितम्ब-सौन्दर्य के लिए उत्तम रत्नों के सारभाग से बने एक सहस्र रथचक्र चक्रपाणि भगवान् को प्रदान करने चाहिए ॥५२॥ जघन-सौन्दर्य के लिए सुवर्ण के बने अति मनोहर एक लाख कदली-स्तम्भ श्रीनिवास (भगवान्) को प्रदान करना चाहिए ॥५३॥ चरण-सौन्दर्य के निमित्त एक लाख निर्मल और अक्षत स्थलकमल कमलनेत्र भगवान् को समर्पित करना चाहिए ॥५४॥ गति (चाल) की सुन्दरता के निमित्त सुवर्णरचित एक सहस्र खंजन (पक्षी) लक्ष्मीश्वर भगवान् को सादर अर्पित करे ॥५५॥ गति (चाल) के लिए सुवर्ण रचित एक सहस्र राजहंस और एक सहस्र गजेन्द्र भगवान् को समर्पित करे ॥५६॥ मूर्धा (शिर) के सौन्दर्य के निमित्त सुवर्ण के एक लाख छत्र, जो उत्तम रत्नों के सार भाग से चित्र-विचित्र बने हों,

---

१. क. सौन्दर्येना० । २ क. ०रत्ननाभा० । ३ क. ०रत्नस्त० । ४ क. मस्तकम् ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मालतीनां च कुसुममक्षतं लक्षमीश्वरि। देयं वृन्दावनेशाय हास्यसौन्दर्यहेतवे ॥५८॥
अमूल्यरत्नलक्षं च देयं नारायणाय वै। सुव्रते व्रतपूर्णार्थं शीलसौन्दर्यहेतवे ॥५९॥
स्वच्छस्फटिकसंकाशं मणीन्द्रश्रेष्ठलक्षकम्। देयं मुनीन्द्रनाथाय मनःसौन्दर्यहेतवे ॥६०॥
प्रवालसारसंकाशं मणिसारसहस्रकम्। देयं कृष्णाय भक्त्या च प्रियरागविवृद्धये ॥६१॥
माणिक्यसारलक्षं च देयं कृष्णाय यत्नतः। जन्मनः कोटिपर्यन्तं स्वामिसौभाग्यहेतवे ॥६२॥
कूष्माण्डं नारिकेलं च जम्बीरं श्रीफलं तथा। फलान्येतानि देयानि हरये पुत्रहेतवे ॥६३॥
रत्नेन्द्रसारलक्षं च देयं कृष्णाय यत्नतः। असंख्यजन्मपर्यन्तं स्वामिनो धनवृद्धये ॥६४॥
वाद्यं नानाप्रकारं च कांस्यतालादिकं परम्। व्रते संपत्तिवृद्धयर्थं श्रीहरिं श्रावयेद्व्रती ॥६५॥
पायसं पिष्टकं सर्पिः शर्कराक्तं मनोहरम्। प्रदेयं हरये भक्त्या स्वामिनो भोगवृद्धये ॥६६॥
सुगन्धिपुष्पमालानां लक्षलक्षतमीप्सितम्। प्रदेयं हरये भक्त्या हरिभक्तिविवृद्धये ॥६७॥
नैवेद्यानि च देयानि स्वादूनि मधुराणि च। श्रीकृष्णप्रीतिप्राप्त्यर्थं दुर्गे नानाविधानि च ॥६८॥
नानाविधानि पुष्पाणि तुलसीसंयुतानि च। श्रीकृष्णप्रीतये भक्त्या व्रते देयानि सुव्रते ॥६९॥
ब्राह्मणानां सहस्रं च प्रत्यहं भोजयेद्व्रती। स्वात्मनः सस्यवृद्धयर्थं व्रते जन्मनि जन्मनि ॥७०॥
पुष्पाञ्जलिशतं देयं नित्यं पूर्णं च पूजने। प्रणामशतकं देवि कर्तव्यं भक्तिवृद्धये ॥७१॥

नारायण को अर्पित करने चाहिए ॥५७॥ हे ईश्वरि! हास्य-सौन्दर्य के लिए मालती के एक लाख अक्षत पुष्प वृन्दावन के ईश को प्रदान करे ॥५८॥ हे सुव्रते! शील-सौन्दर्य के लिए और व्रत-परिपूरणार्थ एक लाख अमूल्य रत्न नारायण को समर्पित करने चाहिए ॥५९॥ मन के सौन्दर्य के निमित्त स्वच्छ स्फटिक के समान एक लाख श्रेष्ठ मणि मुनीन्द्रनाथ को प्रदान करने चाहिए ॥६०॥ प्रियानुराग-वृद्धि के निमित्त प्रवाल (मूंगा) के सार-भाग के समान मणियों का एक सहस्र सारभाग भगवान् कृष्ण को देना चाहिए ॥६१॥ करोड़ों जन्म पर्यन्त स्वामी (पति) का सौभाग्य प्राप्त रहे, इसके लिए एक लाख उत्तम माणिक्य भगवान् श्रीकृष्ण को भक्तिपूर्वक सप्रयत्न अर्पित करे ॥६२॥ पुत्र की कामना से कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) नारियल, जम्बीर (नीबू) और श्रीफल (बेल) इतने फल भगवान् को समर्पित करे ॥६३॥ असंख्य जन्म पर्यन्त स्वामी के धन-वृद्ध्यर्थ रत्नेन्द्र का एक लाख सारभाग श्रीकृष्ण को सप्रयत्न अर्पित करना चाहिए ॥६४॥ व्रत में सम्पत्ति के वृद्ध्यर्थ व्रती को चाहिए कि अनेक भाँति के मजीरा, ताल आदि वाद्य भगवान् श्री हरि को सुनाये ॥६५॥ स्वामी के भोग-वृद्ध्यर्थ घृत-शक्कर मिश्रित मनोहर खीर, पिष्टक (पूआ और बड़ा) भक्तिपूर्वक भगवान् को समर्पित करे ॥६६॥ भगवान् की भक्ति-वृद्धि के निमित्त सुगन्धित पुष्पों की अक्षत एक लाख माला भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करे ॥६७॥ हे दुर्गे! भगवान् श्रीकृष्ण की प्रीति-प्राप्त्यर्थ अनेक भाँति के सुस्वादु और मधुर नैवेद्य भगवान् को समर्पित करना चाहिए ॥६८॥ हे सुव्रते! इस व्रत में भगवान् श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए तुलसी पत्र समेत अनेक भाँति के पुष्प, भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करे ॥६९॥ जन्म-जन्मान्तर में अपनी सस्य-वृद्धि के निमित्त एक सहस्र ब्राह्मणों को व्रती प्रतिदिन भोजन कराये ॥७०॥ हे देवि! इस पूजन में परि-पूरणार्थ नित्य सौ पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिए और भक्ति-वृद्धि के निमित्त सौ बार प्रणाम करना चाहिए ॥७१॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

षण्मासांश्च हविष्यान्नं मासान्पञ्च फलादिकम्। हविः पक्षं जलं पक्षं व्रते भक्षेच्च सुव्रते ॥७२॥
रत्नप्रदीपशतकं वह्नि दद्याद्दिवानिशम्। रात्रौ कुशासनं कृत्वा नित्यं जागरणं व्रते ॥७३॥
ज्ञानवृद्धिर्जागरणे सुबुद्धिर्मूलभोजने। लोभमोहकामक्रोधभयशोकविवादकम् ॥७४॥
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। संकल्पोऽध्यवसायश्च [1]क्रियानिर्वृत्तिरित्यपि ॥७५॥
[2]विविधं मैथुनं त्याज्यं व्रतिना व्रतशुद्धये। कलहश्च परित्याज्यो व्रते क्रीडाविवृद्धये ॥७६॥
संपूर्णे च व्रते देवि प्रतिष्ठा तदनन्तरम्। त्रिशतं वै षष्टयधिकं रल्लकं वस्त्रसंयुतम् ॥७७॥
सभोज्यं सोपवीतं च सोपहारं ददात्वयम्। त्रिशतं वै षष्टयधिकसहस्रं विप्रभोजनम् ॥७८॥
[3]त्रिशतं वै षष्टयधिकं सहस्रं तिलहोमकम्। त्रिशतं वै षष्टयधिकं सहस्रं स्वर्णमेव च ॥७९॥
देया व्रतसमाप्तौ च दक्षिणा विधिबोधिता। अन्यां समाप्तिदिवसे कथयिष्यामि दक्षिणाम् ॥८०॥
एतद्व्रतफलं देवि दृढा भक्तिर्हरौ भवेत्। हरितुल्यो भवेत्पुत्रो विख्यातो भुवनत्रये ॥८१॥
सौन्दर्यं स्वामिसौभाग्यमैश्वर्यं विपुलं धनम्। सर्ववाञ्छितसिद्धीनां बीजं जन्मनि जन्मनि ॥८२॥
इत्येवं कथितं देवि व्रतं कुरु महेश्वरि। पुत्रस्ते भविता साध्वीत्युक्त्वा स विरराम ह ॥८३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रतविधानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

इस व्रत में व्रती को छह मास तक हविष्यान्न, पाँच मास तक फल आदि, एक पक्ष हवि का भक्षण और फिर एक पक्ष तक केवल जल पी कर रहना चाहिए ॥७२॥ व्रत में रत्नों के सौ दीपक दिन-रात जलाना चाहिए और रात्रि में कुशासन पर समासीन होकर नित्य जागरण करना चाहिए ॥७३॥ जागरण में ज्ञान की वृद्धि होती है और कन्द- मूल भोजन करने से सुबुद्धि होती है। लोभ, मोह, काम क्रोध, भय, शोक और विवाद का त्याग करना चाहिए। हे देवि ! व्रत-शुद्धि के निमित्त इस व्रत में व्रती को (कामविषयक) स्मरण, कीर्तन, केलि (क्रीडा), प्रेक्षण (आँखें गड़ा कर देखना), गुह्य भाषण, संकल्प (उसकी प्राप्ति के लिए दृढ़ इच्छा), अध्यवसाय (प्रयत्न) और क्रिया निर्वृत्ति (संभोग) एवं विविध प्रकार के मैथुन तथा कलह का त्याग करना चाहिए। व्रत के सम्पूर्ण हो जाने पर अनन्तर प्रतिष्ठा करनी चाहिए। तीन सौ साठ कम्बल, वस्त्र, भोजन, यज्ञोपवीत एवं उपहार समेत दान करे। तीन सौ साठ सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥७४-७८॥ तीन सौ साठ सहस्र तिल की आहुति और तीन सौ साठ सहस्र सुवर्ण व्रत की समाप्ति में दक्षिणा प्रदान करना चाहिए, ऐसा ब्रह्मा ने बताया है। हे देवि ! समाप्ति के दिन दी जाने वाली अन्य दक्षिणा को भी बताऊँगा ॥७९-८०॥इस प्रकार सुसम्पन्न करने से इस व्रत का यह फल होता है कि भगवान् में दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है। भगवान् के समान तीनों लोकों में विख्यात पुत्र होता है तथा सौन्दर्य, स्वामी-सौभाग्य, ऐश्वर्य एवं विपुल धन की प्राप्ति होती है। प्रत्येक जन्म में सभी अभिलषित सिद्धियों की प्राप्ति होती रहती है। हे महेश्वरि ! देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें व्रत बता दिया, इसे सुसम्पन्न करो। हे साध्वि ! तुम्हारे अवश्य पुत्र होगा। इतना कह कर शिव जी चुप हो गये ॥८१-८३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में पुण्यक-व्रत-विधान नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

---

१ ०यानिष्पत्तिरेव च। २ ख० स्वप्नमैथुनकं. त्या०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नारायण उवाच

श्रुत्वा व्रतविधानं च दुर्गा संहृष्टमानसा। पुनः प्रपच्छ कान्तं सा दिव्यां व्रतकथां शुभाम्॥१॥

पार्वत्युवाच

किमद्भुतं व्रतं नाथ विधानं फलमस्य च। अधिकां तत्कथां ब्रूहि व्रतं केन प्रकाशितम्॥२॥

महादेव उवाच

शतरूपा मनोः पत्नी पुत्रदुःखेन दुःखिता। ब्रह्मणः स्थानमागत्य सा ब्रह्माणमुवाच ह॥३॥

शतरूपोवाच

ब्रह्मन्केन प्रकारेण वन्ध्यायाश्च सुतो भवेत्। तन्मे ब्रूहि जगद्धातः सृष्टिकारणकारण॥४॥
तज्जन्म निष्फलं ब्रह्मन्नैश्वर्यं धनमेव च। किंचिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणाम्॥५॥
तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखावहम्। सुखदो मोक्षदः प्रीतिदाता पुत्रश्च पुत्रिणाम्॥६॥
पुत्री पुत्रमुखं दृष्ट्वा चाश्वमेधशतोद्भवम्। फलं पुंनामनरकत्राणहेतुं लभेद्ध्रुवम्॥७॥
पुत्रोत्पत्तेरुपायं वै वद मां तापसंयुताम्। तदा भद्रं न चेद्दुर्त्रा सह यास्यामि काननम्॥८॥

अध्याय ५

पुण्यक व्रत का माहात्म्य-कथन

नारायण बोले—व्रत का विधान सुन कर दुर्गा जी का मन प्रफुल्लित हो गया, फिर उन्होंने उस दिव्य एवं शुभ व्रत-कथा को अपने कान्त (शिव जी) से पूछा॥१॥

पार्वती बोलीं—हे नाथ! यह कैसा अद्भुत व्रत है। इसका विधान, फल, अधिक कथा और किसने इसे प्रकाशित किया, वह मुझे बताने की कृपा करें॥२॥

महादेव बोले—एक बार मनु की पत्नी शतरूपा ने पुत्र (न होने रूप) दुःख से दुःखी हो ब्रह्मा के स्थान में आकर उनसे कहा॥३॥

शतरूपा बोलीं—हे ब्रह्मन्! आप समस्त संसार के धाता एवं सृष्टि-कारणों के कारण हैं, अतः आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि—किस उपाय द्वारा वन्ध्या स्त्री को भी पुत्र उत्पन्न हो सकता है॥४॥ क्योंकि हे ब्रह्मन्! जिस गृहस्थ के घर पुत्र नहीं है उसका जन्म निष्फल है, ऐश्वर्य और धन भी व्यर्थ है और उसके घर की कुछ शोभा भी नहीं होती है॥५॥ तप और दान द्वारा उत्पन्न पुण्य दूसरे जन्म में सुखप्रद होता है, और पुत्र पुत्रवानों को सुख, मोक्ष तथा प्रीति प्रदान करता है॥६॥ पुं नामक नरक से बचाने के कारण पुत्र का मुख देखने पर पुत्रवान् व्यक्ति सौ अश्वमेध यज्ञों का फल निश्चित प्राप्त करता है॥७॥ इसलिए मुझ संतप्त दुःखिया को आप

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गृहाण राज्यमैश्वर्यं धनं पृथ्वीं प्रजावहाम्। किमेतेनाऽवयोस्तात विना पुत्रैरपुत्रिणोः ॥९॥
अपुत्रिणो मुखं द्रष्टुं विद्वान्नोत्सहतेऽशिवम्। मुखं दर्शयितुं लज्जां समवाप्नोत्यपुत्रकः ॥१०॥
अथवा गरलं भुक्त्वा प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्। अपुत्रपौत्रमशिवं गृहं स्यात्स्त्रीविहीनकम् ॥११॥
इत्येवमुक्त्वा सा साक्षाद्ब्रह्मणोऽग्रे रुरोद ह। कृपानिधिश्च तां दृष्ट्वा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्से प्रवक्ष्यामि पुत्रोपायं सुखावहम्। सर्वैश्वर्यादिबीजं च सर्ववाञ्छाप्रदं शुभम् ॥१३॥
माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतमेतत्सुपुण्यकम्। कर्तव्यं शुद्धकाले च कृष्णमाराध्य सर्वदम् ॥१४॥
संवत्सरं च कर्तव्यं सर्वविघ्नविनाशनम्। द्रव्याणि वेदैरुक्तानि व्रते देयानि सुव्रते ॥१५॥
व्रतं च काण्वशाखोक्तं सर्ववाञ्छितसिद्धिदम्। कृत्वा पुत्रं लभ शुभे विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥१६॥
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा कृत्वा व्रतमुत्तमम्। प्रियव्रतोत्तानपादौ लेभे पुत्रौ मनोहरौ ॥१७॥
व्रतं कृत्वा देवहूतिर्लेभे सिद्धेश्वरं[1] सुतम्। नारायणांशं कपिलं पुण्यकं[1] सिद्धिदं शुभम् ॥१८॥
अरुन्धतीदं कृत्वा तु लेभे[2] शक्तिसुतं शुभा। शक्तिकान्ता व्रतं कृत्वा सुतं लेभे पराशरम् ॥१९॥

पुत्र-उत्पन्न होने का उपाय बतायें। अन्यथा स्वामी के साथ मैं वन चली जाऊँगी ॥८॥ आप राज्य, ऐश्वर्य, धन एवं प्रजापूर्ण पृथ्वी ले लीजिए। क्योंकि हे तात! जब हम लोग निपूत ही रहेंगे तो यह सब लेकर क्या करेंगे ॥९॥ विद्वान् लोग पुत्रहीन का मुख अमंगल होने के नाते कभी नहीं देखना चाहते और वह अपुत्री भी अपना मुख दिखाने में लज्जा का अनुभव करता है ॥१०॥ अथवा मैं विष भक्षण कर अग्नि में पैठ जाऊँगी। क्योंकि पुत्र-पौत्र एवं स्त्रीहीन गृह अमंगल रूप है ॥११॥ इतना कह कर वह ब्रह्मा के सामने रोने लगीं। अनन्तर कृपानिधान ब्रह्मा ने उसकी ओर देख कर कहना आरम्भ किया ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्से! मैं तुम्हें पुत्र उत्पन्न होने का सुखप्रद उपाय बता रहा हूँ, जो समस्त ऐश्वर्य प्राप्ति का कारण, समस्त मनोरथ सिद्ध करनेवाला एवं शुभ है ॥१३॥ माघ-शुक्ल-त्रयोदशी में सुपुण्यक नामक व्रत होता है। शुद्ध काल में सर्वदाता भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना पूर्वक वह व्रत सुसम्पन्न करना चाहिए ॥१४॥ हे सुव्रते! समस्त विघ्नों का नाश करने वाला वह व्रत पूर्ण वर्ष भर करे और वेद में कही वस्तुएँ उस व्रत में दान करे ॥१५॥ हे शुभे! इस प्रकार काण्व शाखा के अनुसार समस्त मनोरथ को सिद्ध करने वाले उस व्रत को सुसम्पन्न कर भगवान् विष्णु के समान पराक्रमी पुत्र प्राप्त करो ॥१६॥ ब्रह्मा की बातें सुनकर उसने उस व्रत को सुसम्पन्न किया, जिससे उसे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो मनोहर पुत्र प्राप्त हुए ॥१७॥ देवहूति ने सिद्धि-दायक तथा पवित्र पुण्यक व्रत करके सिद्धों के ईश्वर, तथा नारायण के अंश से संभूत कपिल नामक पुत्र प्राप्त किया, ॥१८॥ अरुन्धती ने इसे सुसम्पन्न कर शक्ति नामक पुत्र प्राप्त किया और शक्ति की कान्ता ने इसे सम्पन्न कर पराशर नामक पुत्र लाभ किया ॥१९॥ अदिति ने इस व्रत के द्वारा वामनावतार पुत्र और देवों की

---

१ ख. पुण्यदं शु० । २ क. सिद्धेश्वरं सुतम्।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अदितिश्च व्रतं कृत्वा लेभे वामनकं सुतम्। शची जयन्तं पुत्रं च लेभे कृत्वेदमीश्वरी ॥२०॥
उत्तानपादपत्नीदं कृत्वा लेभे ध्रुवं सुतम्। कुबेरजाया कृत्वेदं लेभे च नलकूबरम् ॥२१॥
सूर्यपत्नी मनुं लेभे कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्। अत्रिपत्नी सुतं चन्द्रं लेभे कृत्वेदमुत्तमम् ॥२२॥
लेभे चाङ्गिरसः पत्नी कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्। बृहस्पतिं सुरगुरुं पुत्रमस्य प्रभावतः ॥२३॥
भृगोर्भार्या व्रतं कृत्वा लेभे दैत्यगुरुं सुतम्। शुक्रं नारायणांशं च सर्वतेजस्विनां वरम् ॥२४॥
इत्येवं कथितं देवि व्रतानां व्रतमुत्तमम्। त्वमेवं कुरु कल्याणि हिमालयसुते शुभे ॥२५॥
साध्यं राजेन्द्रपत्नीनां देवीनां च सुखावहम्। व्रतमेतन्महासाध्वि साध्वीनां प्राणतः प्रियम् ॥२६॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण स्वयं गोपाङ्गनेश्वरः। ईश्वरः सर्वभूतानां तव पुत्रो भुविष्यति ॥२७॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च नारद। व्रतं चकार सा देवी प्रहृष्टा शंकराज्ञया ॥२८॥
इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। सुखदं मोक्षदं सारं गणेशजनिकारणम् ॥२९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रतकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

ईश्वरी इन्द्राणी ने इसके द्वारा जयन्त नामक पुत्र को प्राप्त किया ॥२०॥ उत्तानपाद की पत्नी ने इस व्रत को समाप्त कर ध्रुव नामक पुत्र लाभ किया, कुवेर की पत्नी ने इस व्रत को करके नल-कूवर नामक दो पुत्र लाभ किये और सूर्य की पत्नी संज्ञा ने इस व्रत को सुसम्पन्न कर मनु पुत्र प्राप्त किया एवं अत्रि की पत्नी (अनसूया) ने चन्द्रमा नामक उत्तम पुत्र प्राप्त किया ॥२१-२२॥ अंगिरा की पत्नी ने इस उत्तम व्रत को सम्पन्न कर बृहस्पति नामक पुत्र प्राप्त किया, जो देवों के गुरु हैं ॥२३॥ भृगु की पत्नी ने इसी व्रत के प्रभाव से शुक्र नामक पुत्र प्राप्त किया, जो दैत्यों के गुरु, नारायण के अंश एवं समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ हैं ॥२४॥ हे देवि! समस्त व्रतों में परमोत्तम व्रत मैंने इस प्रकार तुम्हें बता दिया। अतः हे कल्याणि! हे हिमालय-सुते! शुभे! तुम भी इस प्रकार सम्पन्न करो ॥२५॥ हे महासाध्वि! महारानियों के लिए यह व्रत साध्य है, देवियों के लिए सुखप्रद तथा पतिव्रताओं को प्राणों से भी अधिक प्रिय है ॥२६॥ इस व्रत के प्रभाव वश गोपांगनाओं के अधीश्वर भगवान् कृष्ण, जो समस्त भूतों के अधीश्वर हैं, स्वयं तुम्हारे पुत्र होंगे ॥२७॥ हे नारद! इतना कहकर शिवजी चुप हो गये। अनन्तर देवी ने शंकर जी की आज्ञा शिरोधार्य कर अत्यन्त प्रसन्नता से इस व्रत को सुसम्पन्न किया ॥२८॥ इस भाँति मैंने सब कुछ सुना दिया जो सुख, मोक्षप्रद एवं गणेश जन्म का कारण है, और अब क्या सुनना चाहते हो ॥२९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में पुण्यक व्रत कथन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ षष्ठोऽध्यायः

शौनक उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः। किं पप्रच्छ पुनः साधो तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥१॥

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः। व्रतारम्भविधानं च संप्रष्टुमुपचक्रमे ॥२॥

नारद उवाच

कृतं केन प्रकारेण व्रतमेतच्छुभावहम्। तन्मे ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ पार्वत्या भर्तुराज्ञया ॥३॥
ललाभ जन्म [1]गोपीशः कृते सुव्रतया व्रते। ब्रह्मन्केन प्रकारेण तन्नः शंसितुमर्हसि ॥४॥

नारायण उवाच

कथयित्वा कथां दिव्यां विधानं च व्रतस्य च। स्वयं विधाता तपसां जगाम तपसे शिवः ॥५॥
हरेराराधनव्यग्रो मूर्तिभेदधरो हरिः। हरिभावनशीलश्च हरिध्यानपरायणः ॥६॥
परमानन्दपूर्णश्च ज्ञानानन्दः सनातनः। दिवानिशं न जानाति हरिमन्त्रं बहिः स्मरन् ॥७॥

अध्याय ६

पुण्यकव्रत के लिए आज्ञा-ग्रहण

शौनक बोले—हे साधो! हे तपोधन! नारायण की बातें सुनकर प्रसन्न चित्त नारद ने पुनः क्या प्रश्न किया, वह मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

सूत बोले—नारायण की बातें सुनकर नारद जी प्रसन्नचित्त होकर व्रत का आरम्भ-विधान पूछने लगे ॥२॥

नारद बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! पति की आज्ञा शिरोधार्य कर पार्वती ने इस शुभप्रद व्रत को किस प्रकार सुसम्पन्न किया, वह मुझे बताने की कृपा करें ॥३॥ हे ब्रह्मन्! उत्तम व्रत को सम्पन्न करने वाली पार्वती जी द्वारा इस व्रत के पूर्ण होने पर भूतेश भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके यहाँ किस प्रकार जन्म ग्रहण किया, यह कृपया मुझे बतायें ॥४॥

नारायण बोले—तप के विधाता शिव ने स्वयं इस व्रत की दिव्य कथा और विधान कहकर तप के लिए प्रस्थान किया ॥५॥ क्योंकि भगवान् की आराधना के लिए वे सदैव व्यग्र रहा करते हैं, भगवान् का रूपान्तर धारण करने के नाते वे हरि हैं, हरि की सतत भावना बनाये रखना उनका शील (स्वभाव) है। इसीलिए भगवान् के ध्यान में तन्मय रहते हैं ॥६॥ वे परमानन्द से पूर्ण, ज्ञानानन्द और सनातन हैं, भगवान् के मन्त्र-जप में संलग्न

---

१ क. भूतेशः।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्रहृष्टमनसा देवी पार्वती भर्तुराज्ञया। किंकरान्प्रेरयामास विप्रांश्च व्रतहेतवे॥८॥
आनीय सर्वद्रव्याणि व्रते योग्यानि यानि च। व्रतं कर्तुं समारेभे शुभदा सा शुभे क्षणे॥९॥
सनत्कुमारो भगवानाजगाम विधेः सुतः। मूर्तिमांस्तेजसां राशिः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥१०॥
ब्रह्मा जगाम हृष्टश्च ब्रह्मलोकात्सभार्यकः। अतित्रस्तो हि भगवानाजगाम सुरेश्वरः॥११॥
विष्णुः क्षीरोदशायी च सलक्ष्मीकश्चतुर्भुजः। भगवाञ्जगतां पाता शास्ता भर्ता सपार्षदः॥१२॥
वनमालाधरः श्यामो भूषितो रत्नभूषणैः। तथा संभृतसंभारो रत्नयानेन नारद॥१३॥
सनकश्च सनन्दश्च कपिलश्च सनातनः। आसुरिश्च क्रतुर्हंसो वोढुः पञ्चशिखोऽरुणिः॥१४॥
यतिश्च सुमतिश्चैव वसिष्ठश्च सहानुगः। पुलहश्च पुलस्त्यश्चाप्यत्रिश्च भृगुरङ्गिराः॥१५॥
अगस्त्यश्च प्रचेताश्च दुर्वासाश्च्यवनस्तथा। मरीचिः कश्यपः कण्वो जरत्कारुश्च गौतमः॥१६॥
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तः सौभरिस्तथा। जाबालिर्जमदग्निश्च जैगीषव्यश्च देवलः॥१७॥
[1]गोकामुखो वक्रथः पारिभद्रः पराशरः। विश्वामित्रो वामदेव ऋष्यश्रृङ्गो विभाण्डकः॥१८॥
मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च [2]पुष्करो लोमशस्तथा। कौत्सो वत्सश्च दक्षश्च [3]बालाग्निरघमर्षणः॥१९॥
कात्यायनः कणादश्च पाणिनिः शाकटायनः। शङ्कुरापिशलिश्चैव शाकल्यः शङ्ख एव च॥२०॥
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयो मुने। आवां च धर्मपुत्रौ च नरनारायणौ समौ॥२१॥

रहने के कारण उन्हें बाहर दिन-रात्रि का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता है॥७॥ प्रसन्नचित्त पार्वती ने पति की आज्ञा से इस व्रत के निमित्त सेवकों और ब्राह्मणों को प्रेरित किया॥८॥ शुभदायिनी पार्वती ने व्रत की समस्त योग्य वस्तुओं के आ जाने पर शुभ मुहूर्त में इस व्रत को आरम्भ किया॥९॥ ब्रह्मा के पुत्र भगवान् सनत्कुमार का वहाँ आगमन हुआ, जो प्रज्वलित ब्रह्मतेज से मूर्तिमान् तेज की राशि मालूम हो रहे थे॥१०॥ ब्रह्मा भी प्रसन्न होकर ब्रह्मलोक से पत्नी समेत वहाँ आये और अति त्रस्त देवेश्वर भगवान् भी आये॥११॥ तथा क्षीरसागर में शयन करनेवाले चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णु भी, जो जगत् के पालक एवं शासनकर्ता हैं, लक्ष्मी तथा पार्षदों समेत रत्नयान द्वारा वहाँ पधारे। वे वनमाला धारण किये, श्यामवर्ण, रत्नभूषणों से भूषित एवं समस्त-सामग्री-सम्पन्न थे॥१२-१३॥ हे नारद! अनन्तर सनक, सनन्द, कपिल, सनातन, आसुरि, क्रतु, हंस, वोढु, पञ्चशिख, अरुणि, यति, सुमति, शिष्य समेत वशिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, भृगु, अंगिरा, अगस्त्य, प्रचेता, दुर्वासा, च्यवन, मरीचि, कश्यप, कण्व, जरत्कारु, गौतम, बृहस्पति, उतथ्य, संवर्त, सौभरि, जाबालि, जमदग्नि, जैगीषव्य, देवल, गोकामुख, वक्रथ, पारिभद्र, पराशर, विश्वामित्र, वामदेव, ऋष्यश्रृंग, विभाण्डक, मार्कण्डेय, मृकुण्डु, पुष्कर, लोमश, कौत्स, वत्स, दक्ष, बालाग्नि, अघमर्षण, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, शाकटायन, शंकु, आपिशलि, साकल्य और शंख आये॥१४-२०॥ हे मुने! इनके अतिरिक्त और भी अनेक मुनिगण अपने-अपने शिष्यों समेत वहाँ आये। धर्मपुत्र और हम दोनों—नरनारायण भी गये॥२१॥ तथा दिक्पाल, देवगण, यक्ष, गन्धर्व,

---

१ क. °मुखश्चक्रकरः पा° । २ क. प्रस्कण्वो । ३ क. काला० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दिक्पालाश्च तथा देवा यक्षगन्धर्वकिन्नराः। आजग्मुः पर्वताः सर्वे सगणाः पार्वतीव्रते ॥२२॥
हिमालयः शैलराजः सापत्यश्च सभार्यकः। सगणः सानुगश्चैव रत्नभूषणभूषितः ॥२३॥
तथा संभृतसंभारो नानाद्रव्यसमन्वितः। मणिमाणिक्यरत्नानि व्रते योग्यानि यानि च ॥२४॥
नानाप्रकारवस्तूनि जगत्यां दुर्लभानि च। लक्षं च गजरत्नानामश्वरत्नं त्रिलक्षकम् ॥२५॥
दशलक्षं गवां रत्नं शतलक्षं सुवर्णकम्। रुचकानां हीरकाणां स्पर्शानां च तथैव च ॥२६॥
मुक्तानां च चतुर्लक्षं कौस्तुभानां सहस्रकम्। सुस्वादुनानाद्रव्याणां लक्षभाराणि कौतुकी ॥
अनन्तरत्नप्रभव आजगाम सुताव्रते ॥२७॥
ब्राह्मणा मनवः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा। संन्यासिनो भिक्षुकाश्च बन्दिनः पार्वतीव्रते ॥२८॥
विद्याधरी नर्तकी च नर्तकाप्सरसां गणाः। नानाविधा वाद्यभाण्डा आजग्मुः शिवमन्दिरम् ॥२९॥
कैलासराजमार्गं च चन्दनेन सुसंस्कृतम्। आम्रपल्लवसूत्राढ्यं कदलीस्तम्भशोभितम् ॥३०॥
दूर्वाधान्यफलैः पर्णलाजपुष्पैर्विभूषितम्। निर्मितं पद्मरागेण ददृशुस्ते गणा मुदा ॥३१॥
उच्चैः सिंहासनेष्वेते पूजिताः शंकरेण च। कैलासवासिनः सर्वे परमानन्दसंयुताः ॥३२॥
दानाध्यक्षः शुनाशीरः कुबेरः कोशरक्षकः। आदेष्टा च स्वयं सूर्यः परिवेष्टा जलाधिपः ॥३३॥
दध्नां नद्यः सहस्राणि दुग्धानां च तथैव च। सहस्राणि घृतानां च गुडानां च शतानि च ॥३४॥
माध्वीकानां सहस्राणि तैलानां च शतानि च। लक्षाणि चैव तक्राणां बभूवुः पार्वतीव्रते ॥३५॥
पीयूषाणां च कुम्भानि शतलक्षाणि नारद। मिष्टान्नानां शर्कराणां बभूवुर्लक्षराशयः।

किन्नर और गण समेत समस्त पर्वत भी पार्वती के उस व्रत में आये ॥२२॥ पर्वतराज हिमालय ने स्त्री-बच्चे, गणों और सेवकों समेत रत्नों के भूषणों से भूषित होकर वहाँ आगमन किया, जो विपुल सामग्री—अनेक भाँति के द्रव्य, मणि, माणिक्य, रत्न, व्रत के योग्य अनेक भाँति की जगत्-दुर्लभ वस्तुएँ, एक लाख गजेन्द्र, तीन लाख उत्तम घोड़े, दश लाख गौएँ, सौ लाख रत्न, उतना ही सुवर्ण, रुचक (सोने के सिक्के), हीरा, स्पर्श मणि, चार लाख मोती, सहस्र कौस्तुभमणि और सुस्वादु अनेक भाँति के द्रव्यों का एक लाख भार लाये थे। इस प्रकार अपनी पुत्रीके व्रत में अनन्त रत्नों के उद्गम स्थान हिमालय कुतूहल से पधारे थे ॥२३-२७॥ पार्वती के उस व्रत में ब्राह्मण-वृन्द, मनुगण, सिद्ध, नाग, विद्याधर, संन्यासी, भिक्षुक एवं बन्दीगण आये ॥२८॥ नर्तकी विद्याधरी, नर्तक गण, अप्सराओं के गण और अनेक भाँति के बाजे बजाने वाले शिव के घर आये ॥२९॥ उस समय कैलास का राजमार्ग चन्दन से सुसंस्कृत, सूत्र में बंधे आम के पल्लव और कदली स्तम्भ से सुशोभित तथा दूर्वा, धान्यफलों, पत्तों, लावे तथा पुष्पों से विभूषित था, जो पद्मरागमणि से बनाया गया था। अभ्यागत वर्ग उसे बड़ी प्रसन्नता से देख रहे थे ॥३०-३१॥ शंकर जी ने उचित पूजन कर सबको ऊँचे सिंहासनों पर बैठाया, उस समय समस्त कैलासवासी परमानन्द-मग्न थे ॥३२॥ उस व्रत में इन्द्र दानाध्यक्ष, कुबेर कोषाध्यक्ष, सूर्य आदेश देने वाले, वरुण परोसने वाले, दही की सहस्र नदियाँ, दुग्ध की सहस्र नदियाँ, घृत की सहस्र नदियाँ, गुड की सौ, आसवों की सहस्र, तेलों की सौ और मट्ठे की एक लाख नदियाँ थीं ॥३३-३५॥ हे नारद! सौ लाख अमृत के कलश तथा मिष्टान्न और शक्करों की एक लाख

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यवगोधूमचूर्णानां घृताक्तानां च नारद ॥३६॥
स्वस्तिकानां च पूपानां बभूवुर्लक्षराशयः। गुडसंस्कृतलाजानां बभूवुः कोटिराशयः॥३७॥
शालीनां पृथुकानां च राशीनां दशकोटयः। वरतण्डुलराशीनां मुने संख्या न विद्यते॥३८॥
स्वर्णरौप्यप्रवालानां मणीनां च महामुने। बभूवुः पर्वतास्तत्र कैलासे पार्वतीव्रते॥३९॥
पायसं पिष्टकं चैव शाल्यन्नं सुमनोहरम्। चकार लक्ष्मीः पाकं च व्यञ्जनं घृतसंस्कृतम्॥४०॥
बुभुजे देवर्षिगणैः शिवो नारायणेन च। बभूवुर्लक्षविप्राश्च परिवेषणकारकाः॥४१॥
ताम्बूलं च ददौ तेभ्यः कर्पूरादिसुवासितम्। रत्नसिंहासनस्थेभ्यो विप्रलक्षाः सुदक्षकाः॥४२॥
रत्नसिंहासनस्थं च विष्णुं क्षीरोदशायिनम्। सेव्यमानं पार्षदैश्च सस्मितैः श्वेतचामरैः॥४३॥
ऋषिभिः स्तूयमानं च सिद्धैर्देवगणैस्तथा। विद्याधरीणां नृत्यानि पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥४४॥
गन्धर्वाणां च संगीतं श्रुतवन्तं मनोहरम्। पप्रच्छ शंकरो ब्रह्मन्ब्रह्मेशं प्रीतिपूर्वकम्॥४५॥
ब्रह्मणा प्रेरितो युक्तं व्रतं कर्तव्यमीप्सितम्। देवर्षिगणपूर्णायां सभायां संपुटाञ्जलिः॥४६॥

महादेव उवाच

मदीयं वचनं नाथ श्रीनिवास शृणु प्रभो। तपःस्वरूप तपसां कर्मणां च फलप्रद॥४७॥
व्रतानां जपयज्ञानां पूजानां सर्वपूजित। सर्वेषां बीजरूपेण वाञ्छाकल्पतरो हरे॥४८॥

राशियाँ थीं। हे नारद! जवा और गेहूँ के आटे की भी उतनी ही राशियाँ थीं। घी में तर पूओं और मलपूओं की एक लाख राशि, गुड़ पाक लावे की करोड़ राशियाँ थीं॥३६-३७॥ चिउड़े और जड़हन चावलों की दश करोड़ राशियाँ थीं। हे मुने? उत्तम चावलों की राशियों की तो संख्या ही नहीं थी॥३८॥ हे महामुने! पार्वती के व्रत में कैलास पर सोने, चाँदी, प्रवाल (मूंगे) और मणियों के पर्वत ही थे॥३९॥ खीर, पीठी, मनोहर चावल के भात और घी में बघारी गई तरकारियों का पाक स्वयं लक्ष्मी ने किया॥४०॥ भगवान् नारायण और देवर्षिगणों समेत शिव भोजन कर रहे थे। एक लाख ब्राह्मण उसमें परोसने का कार्य कर रहे थे॥४१॥ एक लाख अति चतुर ब्राह्मणगण रत्नसिंहासनों पर सुखासीन अतिथियों को कपूर आदि से सुवासित ताम्बूल प्रदान से सम्मानित कर रहे थे॥४२॥ हे ब्रह्मन्! क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु रत्न-सिंहासन पर सुशोभित हो रहे थे। मन्द मुसुकान करते हुए पार्षदगण श्वेत चामर द्वारा उनकी सेवा कर रहे थे। ऋषिगण, सिद्ध वर्ग और देवगण स्तुति कर रहे थे। प्रसन्नचित्त भगवान् मन्द-मन्द मुसुकाते हुए विद्याधरियों का नृत्य और गन्धर्वों के मनोहर संगीत सुन रहे थे। उसी समय शिव ने, जो ब्रह्मा से प्रेरित, अभीष्ट व्रत को पूर्ण कराने में तत्पर और देवों ऋषियों आदि गणों से भरी सभा में हाथ जोड़े खड़े थे, ब्रह्मेश विष्णु से सप्रेम पूछा,॥४३-४६॥

महादेव बोले—हे नाथ! हे श्रीनिवास! हे प्रभो! तपःस्वरूप, तथा तप और कर्मों के फल प्रदान करने वाले! मेरी प्रार्थना सुनने की कृपा करें॥४७॥ व्रतों, जप-यज्ञों और पूजनों में सबसे पूजित! हे हरे! सभी के बीजरूप और अभीष्ट सिद्धि के कल्पतरु! हे ब्रह्मन्! पार्वती जी को पुत्र की

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दिक्पालाश्च तथा देवा यक्षगन्धर्वकिन्नराः। आजग्मुः पर्वताः सर्वे सगणाः पार्वतीव्रते ॥२२॥
हिमालयः शैलराजः सापत्यश्च सभार्यकः। सगणः सानुगश्चैव रत्नभूषणभूषितः ॥२३॥
तथा संभृतसंभारो नानाद्रव्यसमन्वितः। मणिमाणिक्यरत्नानि व्रते योग्यानि यानि च ॥२४॥
नानाप्रकारवस्तूनि जगत्यां दुर्लभानि च। लक्षं च गजरत्नानामश्वरत्नं त्रिलक्षकम् ॥२५॥
दशलक्षं गवां रत्नं शतलक्षं सुवर्णकम्। रुचकानां हीरकाणां स्पर्शानां च तथैव च ॥२६॥
मुक्तानां च चतुर्लक्षं कौस्तुभानां सहस्रकम्। सुस्वादुनानाद्रव्याणां लक्षभाराणि कौतुकी ॥
अनन्तरत्नप्रभव आजगाम सुताव्रते ॥२७॥
ब्राह्मणा मनवः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा। संन्यासिनो भिक्षुकाश्च बन्दिनः पार्वतीव्रते ॥२८॥
विद्याधरी नर्तकी च नर्तकाप्सरसां गणाः। नानाविधा वाद्यभाण्डा आजग्मुः शिवमन्दिरम् ॥२९॥
कैलासराजमार्गं च चन्दनेन सुसंस्कृतम्। आम्रपल्लवसूत्राढ्यं कदलीस्तम्भशोभितम् ॥३०॥
दूर्वाधान्यफलैः पर्णलाजपुष्पैर्विभूषितम्। निर्मितं पद्मरागेण ददृशुस्ते गणा मुदा ॥३१॥
उच्चैः सिंहासनेष्वेते पूजिताः शंकरेण च। कैलासवासिनः सर्वे परमानन्दसंयुताः ॥३२॥
दानाध्यक्षः शुनाशीरः कुबेरः कोशरक्षकः। आदेष्टा च स्वयं सूर्यः परिवेष्टा जलाधिपः ॥३३॥
दध्नां नद्यः सहस्राणि दुग्धानां च तथैव च। सहस्राणि घृतानां च गुडानां च शतानि च ॥३४॥
माध्वीकानां सहस्राणि तैलानां च शतानि च। लक्षाणि चैव तक्राणां बभूवुः पार्वतीव्रते ॥३५॥
पीयूषाणां च कुम्भानि शतलक्षाणि नारद। मिष्टान्नानां शर्कराणां बभूवुर्लक्षराशयः।

किन्नर और गण समेत समस्त पर्वत भी पार्वती के उस व्रत में आये ॥२२॥ पर्वतराज हिमालय ने स्त्री-बच्चे, गणों और सेवकों समेत रत्नों के भूषणों से भूषित होकर वहाँ आगमन किया, जो विपुल सामग्री—अनेक भाँति के द्रव्य, मणि, माणिक्य, रत्न, व्रत के योग्य अनेक भाँति की जगत्-दुर्लभ वस्तुएँ, एक लाख गजेन्द्र, तीन लाख उत्तम घोड़े, दश लाख गौएँ, सौ लाख रत्न, उतना ही सुवर्ण, रुचक (सोने के सिक्के), हीरा, स्पर्श मणि, चार लाख मोती, सहस्र कौस्तुभमणि और सुस्वादु अनेक भाँति के द्रव्यों का एक लाख भार लाये थे। इस प्रकार अपनी पुत्री के व्रत में अनन्त रत्नों के उद्गम स्थान हिमालय कुतूहल से पधारे थे ॥२३-२७॥ पार्वती के उस व्रत में ब्राह्मण-वृन्द, मनुगण, सिद्ध, नाग, विद्याधर, संन्यासी, भिक्षुक एवं बन्दीगण आये ॥२८॥ नर्तकी विद्याधरी, नर्तक गण, अप्सराओं के गण और अनेक भाँति के बाजे बजाने वाले शिव के घर आये ॥२९॥ उस समय कैलास का राजमार्ग चन्दन से सुसंस्कृत, सूत्र में बंधे आम के पल्लव और कदली स्तम्भ से सुशोभित तथा दूर्वा, धान्यफलों, पत्तों, लावे तथा पुष्पों से विभूषित था, जो पद्मरागमणि से बनाया गया था। अभ्यागत वर्ग उसे बड़ी प्रसन्नता से देख रहे थे ॥३०-३१॥ शंकर जी ने उचित पूजन कर सबको ऊँचे सिंहासनों पर बैठाया, उस समय समस्त कैलासवासी परमानन्द-मग्न थे ॥३२॥ उस व्रत में इन्द्र दानाध्यक्ष, कुबेर कोषाध्यक्ष, सूर्य आदेश देने वाले, वरुण परोसने वाले, दही की सहस्र नदियाँ, दुग्ध की सहस्र नदियाँ, घृत की सहस्र नदियाँ, गुड की सौ, आसवों की सहस्र, तेलों की सौ और मट्ठे की एक लाख नदियाँ थीं ॥३३-३५॥ हे नारद! सौ लाख अमृत के कलश तथा मिष्टान्न और शक्करों की एक लाख

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यवगोधूमचूर्णानां घृताक्तानां च नारद ॥३६॥
स्वस्तिकानां च पूपानां बभूवुर्लक्षराशयः। गुडसंस्कृतलाजानां बभूवुः कोटिराशयः॥३७॥
शालीनां पृथुकानां च राशीनां दशकोटयः। वरतण्डुलराशीनां मुने संख्या न विद्यते॥३८॥
स्वर्णरौप्यप्रवालानां मणीनां च महामुने। बभूवुः पर्वतास्तत्र कैलासे पार्वतीव्रते॥३९॥
पायसं पिष्टकं चैव शाल्यन्नं सुमनोहरम्। चकार लक्ष्मीः पाकं च व्यञ्जनं घृतसंस्कृतम्॥४०॥
बुभुजे देवर्षिगणैः शिवो नारायणेन च। बभूवुर्लक्षविप्राश्च परिवेषणकारकाः॥४१॥
ताम्बूलं च ददौ तेभ्यः कर्पूरादिसुवासितम्। रत्नसिंहासनस्थेभ्यो विप्रलक्षाः सुदक्षकाः॥४२॥
रत्नसिंहासनस्थं च विष्णुं क्षीरोदशायिनम्। सेव्यमानं पार्षदैश्च सस्मितैः श्वेतचामरैः॥४३॥
ऋषिभिः स्तूयमानं च सिद्धैर्देवगणैस्तथा। विद्याधरीणां नृत्यानि पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥४४॥
गन्धर्वाणां च संगीतं श्रुतवन्तं मनोहरम्। पप्रच्छ शंकरो ब्रह्मन्ब्रह्मेशं प्रीतिपूर्वकम्॥४५॥
ब्रह्मणा प्रेरितो युक्तं व्रतं कर्तव्यमीप्सितम्। देवर्षिगणपूर्णायां सभायां संपुटाञ्जलिः॥४६॥

महादेव उवाच

मदीयं वचनं नाथ श्रीनिवास शृणु प्रभो। तपःस्वरूप तपसां कर्मणां च फलप्रद॥४७॥
व्रतानां जपयज्ञानां पूजानां सर्वपूजित। सर्वेषां बीजरूपेण वाञ्छाकल्पतरो हरे॥४८॥

राशियाँ थीं। हे नारद! जवा और गेहूँ के आटे की भी उतनी ही राशियाँ थीं। घी में तर पूओं और मलपूओं की एक लाख राशि, गुड़ पाक लावे की करोड़ राशियाँ थीं॥३६-३७॥ चिउड़े और जड़हन चावलों की दश करोड़ राशियाँ थीं। हे मुने? उत्तम चावलों की राशियों की तो संख्या ही नहीं थी॥३८॥ हे महामुने! पार्वती के व्रत में कैलास पर सोने, चाँदी, प्रवाल (मूंगे) और मणियों के पर्वत ही थे॥३९॥ खीर, पीठी, मनोहर चावल के भात और घी में बघारी गई तरकारियों का पाक स्वयं लक्ष्मी ने किया॥४०॥ भगवान् नारायण और देवर्षिगणों समेत शिव भोजन कर रहे थे। एक लाख ब्राह्मण उसमें परोसने का कार्य कर रहे थे॥४१॥ एक लाख अति चतुर ब्राह्मणगण रत्नसिंहासनों पर सुखासीन अतिथियों को कपूर आदि से सुवासित ताम्बूल प्रदान से सम्मानित कर रहे थे॥४२॥ हे ब्रह्मन्! क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु रत्न-सिंहासन पर सुशोभित हो रहे थे। मन्द मुसुकान करते हुए पार्षदगण श्वेत चामर द्वारा उनकी सेवा कर रहे थे। ऋषिगण, सिद्ध वर्ग और देवगण स्तुति कर रहे थे। प्रसन्नचित्त भगवान् मन्द-मन्द मुसुकाते हुए विद्याधरियों का नृत्य और गन्धर्वों के मनोहर संगीत सुन रहे थे। उसी समय शिव ने, जो ब्रह्मा से प्रेरित, अभीष्ट व्रत को पूर्ण कराने में तत्पर और देवों ऋषियों आदि गणों से भरी सभा में हाथ जोड़े खड़े थे, ब्रह्मेश विष्णु से सप्रेम पूछा,॥४३-४६॥

महादेव बोले—हे नाथ! हे श्रीनिवास! हे प्रभो! तपःस्वरूप, तथा तप और कर्मों के फल प्रदान करने वाले! मेरी प्रार्थना सुनने की कृपा करें॥४७॥ व्रतों, जप-यज्ञों और पूजनों में सबसे पूजित! हे हरे! सभी के बीजरूप और अभीष्ट सिद्धि के कल्पतरु! हे ब्रह्मन्! पार्वती जी को पुत्र की

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सुपुण्यकव्रतं कर्तुं ब्रह्मन्निच्छति पार्वती। पुत्रार्थिनी सा शोकार्ता हृदयेन विदूयता ॥४९॥
रतिभङ्गे कृते देवैर्व्यर्थवीर्यशुचार्दिता। प्रबोधिता मया साध्वी विविधैर्वचनामृतैः ॥५०॥
सत्पुत्रं स्वामिसौभाग्यं सुव्रता याचते व्रते। ताभ्यां विना न संतुष्टा स्वप्राणांस्त्यक्तुमिच्छति ॥५१॥
पुरा त्यक्त्वा स्वदेहं च पितृयज्ञे च मानिनी। मन्निन्दया हिमवति पुनर्जन्म ललाभ सा ॥५२॥
सर्वं जानासि वृत्तान्तं सर्वज्ञं त्वां वदामि किम्। काऽऽज्ञा तां वद तत्त्वज्ञ परिणामशुभप्रदाम् ॥५३॥
दुर्निवार्यश्च सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापलः। दुस्त्याज्यं योगिभिः सिद्धैरस्माभिश्च तपस्विभिः ॥५४॥
जितेन्द्रियैर्जितक्रोधैः स्त्रीरूपं मोहकारणम्। सर्वमायाकरण्डं च कामवर्धनकारणम् ॥५५॥
ब्रह्मास्त्रं कामदेवस्य दुर्भेद्यं जयकारणम्। सुनिर्मितं च विधिना सर्वाद्यं विधिपूर्वकम् ॥५६॥
मोक्षद्वारकपाटं च हरिभक्तिनिरोधनम्। संसारबन्धनस्तम्भरज्जुरूपमकृन्तनम् ॥५७॥
वैराग्यनाशबीजं च शश्वद्रागविवर्धनम्। पत्तनं साहसानां च दोषाणामालयं सदा ॥५८॥
अप्रत्ययानां क्षेत्रं च स्वयं कपटमूर्तिमत्। अहंकाराश्रयं शश्वद्विषकुम्भं सुधामुखम् ॥५९॥
सर्वैरसाध्यमानं च दुराराध्यं च सर्वदा। स्वकार्यसाध्याचाराढ्यं कलहाङ्कुरकारणम् ॥६०॥
सर्वं निवेदितं नाथ कर्तव्यं वक्तुमर्हसि। कार्यं सर्वं परामर्शे परिणामसुखावहम् ॥६१॥

कामना है, इसी कारण हार्दिक दुःख से वे शोकग्रस्त होकर पुण्यक व्रत करना चाहती हैं ॥४८-४९॥ देवों द्वारा रति भंग होने पर वीर्य व्यर्थ हो गया था, जिससे वे अधिक चिन्तित हुईं। अनन्तर मैंने उस पतिव्रता को अनेक भाँति के अमृत-मय वचनों द्वारा समझा कर शान्त किया ॥५०॥ इस व्रत में वह सुव्रता स्वामिसौभाग्य रूप सत्पुत्र की याचना कर रही है, इन दोनों के बिना वह सन्तुष्ट नहीं हो सकती, वह अपना प्राण त्याग करने पर तैयार है ॥५१॥ पूर्व काल में उस मानिनी ने मेरी निन्दा के कारण अपने पिता के यज्ञ में अपनी देह त्यागकर हिमालय के यहाँ पुनः जन्म धारण किया था ॥५२॥ हे तत्त्वज्ञ ! आप सर्वज्ञ हैं। अतः समस्त वृत्तान्त जानते हैं, मैं आपसे क्या कहूँ। क्या आज्ञा है ? परिणाम में शुभप्रद उस आज्ञा को कहने की कृपा कीजिये ॥५३॥ क्योंकि हे सर्वेश ! स्त्रियों का स्वभाव दुर्निवार और चपल होता है। और स्त्रियों का रूप हम योगियों, सिद्धों, तपस्वियों, जितेन्द्रियों और क्रोधजयी लोगों के लिए भी दुस्त्यज है। स्त्री-रूप मोह का कारण, समस्त माया का करण्ड (सन्दूक), और काम-वृद्धि का कारण है ॥५४-५५॥ ब्रह्मा ने सर्वप्रथम कामदेव के विजयार्थ इस दुर्भेद्य ब्रह्मास्त्र का विधिपूर्वक निर्माण किया ॥५६॥ वह मोक्ष-द्वार का कपाट (किंवाड़), भगवान् की भक्ति का निरोधक, संसारबन्धन के स्तम्भ की अकाट्य रस्सी रूप, वैराग्य के नाश का कारण, निरन्तर राग-(मोह) वर्द्धक, साहसों का नगर, दोषों का घर, अविश्वास का क्षेत्र, स्वयं मूर्तिमान् कपट, अहंकार का आश्रय, निरन्तर अमृतमुख विष का कलश, सभी लोगों से असाध्य, सदा दुराराध्य, अपने कार्य साधने में निपुण एवं कलह रूप अंकुर का बीज है ॥५७-६०॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने सब कुछ कह दिया। अब आप मेरा कर्तव्य कहने की कृपा करें, जो परामर्श में करणीय और परिणाम में सुखप्रद हो ॥६१॥

---

१ क० वैषां स्त्री०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा भगवान्निरीक्ष्य ब्रह्मणो मुखम्। विरराम सभामध्ये स्तुत्वा च कमलापतिम् ॥६२॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः। हितं[1] च नीतिवचनं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥६३॥

विष्णुरुवाच

सुपुण्यकव्रतं सारं सतीसंतानहेतवे। स्वामिसौभाग्यबीजं च पत्नी ते कर्तुमिच्छति ॥६४॥
सर्वासाध्यं दुराराध्यं सर्वकामफलप्रदम्। सुखदं सुखसारं च मोक्षदं पार्वतीश्वर ॥६५॥
सर्वेश्वरो व्रतपरो व्ताराध्यो गुणात्परः। गोलोकनाथो भगवान्पूर्णब्रह्म सनातनः ॥६६॥
आत्मा साक्षिस्वरूपश्च ज्योतीरूपः सनातनः। निराश्रयश्च निर्लिप्तो निरुपाधिर्निरामयः ॥६७॥
भक्तप्राणश्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः। दुराराध्यो हि योऽन्येषां भक्तानामतिसाधकः ॥६८॥
भक्त्यधीनो हि भगवान्सर्वसिद्धो हि निष्कलः। ते यस्य च कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६९॥
महान्विराडयदंशश्च निर्लिप्तः प्रकृतेः परः। [2]अव्ययो निग्रहश्चोग्रो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥७०॥
उग्रग्रहो ग्रहाणां च ग्रहनिग्रहकारकः। त्रिकोटिजन्ममध्ये[3] च न साध्यो भवता विना ॥७१॥
लब्ध्वा हि भारते जन्म हरिभक्तिं लभेन्नरः। सेवनं क्षुद्रदेवानां कृत्वा सप्तसु जन्मसु ॥
सूर्यमन्त्रमवाप्नोति केवलं स तदाशिषा ॥७२॥

नारायण बोले—सभा मध्य में भगवान् शंकर ने इतना कह कर ब्रह्मा के मुख की ओर देखा और कमलापति भगवान् की स्तुति करके मौन धारण कर लिया। शंकर जी की बातें सुनकर भगवान् जगदीश्वर ने हंसकर कहना आरम्भ किया, जो हितकर और नीति-सम्मत था ॥६२-६३॥

विष्णु बोले—तुम्हारी पत्नी सती संतान की कामना से सुपुण्यक नामक व्रत करना चाहती है, जो सार रूप और स्वामी के सौभाग्य का बीज रूप है ॥६४॥ हे पार्वतीश्वर! वह व्रत सब के लिए असाध्य, दुःख से आराधना करने योग्य, समस्त कामनाओं के फलों का प्रदाता, सुखप्रद, सुख का सार रूप और मोक्षप्रद है ॥६५॥ भगवान् कृष्ण सबके ईश्वर, व्रतपरायण, व्रत के द्वारा आराधनीय, गुणसे परे, गोलोकनाथ, पूर्ण ब्रह्म, सनातन, आत्मा, साक्षिस्वरूप, ज्योतिरूप, सनातन, निराश्रय, निर्लिप्त, उपाधि रहित, निरामय, भक्तों के प्राण, भक्तों के अधीश्वर और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं। जो अन्य के लिए दुराराध्य हैं, वह भक्तों के लिए अति साध्य हैं ॥६६-६८॥ भगवान् भक्ति के अधीन रहते हैं, वे सर्वसिद्ध एवं निष्कल हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर जिस पुरुष की कला रूप हैं, महाविराट् जिस का अंश है, वह निर्लिप्त, प्रकृति से परे, अव्यय (एक समान रहने वाला), निग्रह, उग्र, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीरधारी, ग्रहों में उग्र ग्रह और ग्रहों का निग्रह करनेवाला है वह आपके बिना तीन करोड़ जन्मों में भी सिद्ध होने वाला नहीं है ॥६९-७१॥ भारत देश में जन्म धारण करने से मनुष्य भगवान् की भक्ति प्राप्त करता है। सात जन्मों तक छोटे-छोटे देवों की सेवा करने से उनके आशीर्वाद द्वारा वह केवल सूर्य का मन्त्र प्राप्त करता है ॥७२॥ भारत में तीन जन्मों तक सूर्य मन्त्र की आराधना करने पर मनुष्य

---

१ ख. तं मितं च क०।२ क. °व्यग्रो नि°। ३ क. °न्मसाध्यश्च न साध्यो भारतं वि०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सूर्यमन्त्रं समाराध्य त्रिषु जन्मसु भारते। प्राप्नोति शैवं मन्त्रं च सर्वदं मानवो मुदा ॥७३॥
संसेव्य परया भक्त्या त्वामेवं सप्तजन्मसु। प्राप्नोति मायामन्त्रं च त्वत्पादाब्जप्रसादतः ॥७४॥
शतजन्मसु चाऽऽराध्य मायां नारायणीं पराम्। नारायणकलां सेव्यां समवाप्नोति मानवः ॥७५॥
कलां निषेव्य वर्षेऽत्र पुण्यक्षेत्रे सुदुर्लभे। कृष्णभक्तिमवाप्नोति भक्तसंसर्गहैतुकीम् ॥७६॥
संप्राप्य भक्तिं निष्पक्वां भ्रामंभ्रामं च भारते। प्राप्नोति परिपक्वां च भक्तिं भक्तनिषेवया ॥७७॥
तदा भक्तप्रसादेन देवानामाशिषा शिव। श्रीकृष्णमन्त्रं प्राप्नोति निर्वाणफलदं परम् ॥७८॥
कृष्णव्रतं कृष्णमन्त्रं सर्वकामफलप्रदम्। कृष्णतुल्यो भवेदुक्तश्चिरं कृष्णनिषेवया ॥७९॥
महति प्रलये पातः सर्वेषां वै सुनिश्चितम्। न पातः कृष्णभक्तानां साधूनामविनाशिनाम् ॥८०॥
अविनाशिनि गोलोके मोदन्ते कृष्णकिंकराः। हसन्ति ते सुनिश्चिन्ता देवान्ब्रह्मादिकाञ्छिव ॥८१॥
त्वं संहर्ता च सर्वेषां न भक्तानां महेश्वर। माया मोहयते सर्वान्भक्तान्न कृपया मम ॥८२॥
माया नारायणी माता सर्वेषां कृष्णभक्तिदा। न कृष्णभक्तिं प्राप्नोति विना मायानिषेवणम् ॥८३॥
सा च नारायणी माया मूलप्रकृतिरीश्वरी। कृष्णप्रिया कृष्णभक्ता कृष्णतुल्याऽविनाशिनी ॥८४॥
सा च तेजः स्वरूपा च स्वेच्छाविग्रहधारिणी। आविर्भूता च देवानां तेजसाऽसुरनिग्रहे ॥८५॥

भगवान् शिव का सर्वप्रद मंत्र सहर्ष प्राप्त करता है ॥७३॥ सात जन्मों तक परा भक्ति द्वारा तुम्हारी सेवा करने पर उसे तुम्हारे चरण-कमल की कृपा से माया-मन्त्र प्राप्त होता है। सौ जन्मों तक परा नारायणी माया की आराधना करने पर मानव सेवनीया नारायण-कला प्राप्त करता है ॥७४-७५॥ इस अति दुर्लभ एवं पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में कला की सेवा करने पर उसे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति प्राप्त होती है, जो भक्तों के संसर्ग से ही उत्पन्न होती है ॥७६॥ अपरिपक्व भक्ति प्राप्त कर भारत में घूम-घूम कर भक्त भक्तों की सेवा द्वारा परिपक्व भक्ति प्राप्त करता है ॥७७॥ हे शिव ! उस समय भक्त की कृपा और देवों के आशीर्वाद से उसे भगवान् श्रीकृष्ण का निर्वाण फल प्रदान करने वाला मन्त्र प्राप्त होता है ॥७८॥ कृष्ण का व्रत और कृष्ण का मंत्र सकलकामनादायक है। चिरकाल तक श्रीकृष्ण की सेवा कर के भक्त भगवान् कृष्ण के तुल्य हो जाता है ॥७९॥ महा-प्रलय में सभी लोगों का निपात होना निश्चित रहता है किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त साधुओं का पात नहीं होता है, वे अविनाशी होते हैं ॥८०॥ हे शिव ! उस अनश्वर गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के सेवक (पार्षद) वर्ग आनन्द विभोर रहते हैं और सुनिश्चिन्त रहने के कारण वे ब्रह्मा आदि देवों का उपहास करते हैं ॥८१॥ हे महेश्वर ! तुम सब का संहार करते हो किन्तु भक्तों का कभी नहीं करते। माया सभी को मोहित करती है किन्तु मेरी कृपा से भक्तों को मोहित नहीं करती है ॥८२॥ नारायणी माया सभी की माता है, वह कृष्ण की भक्ति प्रदान करती है, क्योंकि विना माया की सेवा किये भगवान् कृष्ण की भक्ति प्राप्त नहीं होती है ॥८३॥ वही नारायणी माया मूल प्रकृति एवं ईश्वरी कही जाती है, जो भगवान् कृष्ण की प्रिया, उनकी भक्ता और उनके समान अविनाशिनी है ॥८४॥ वह तेजःस्वरूप और अपनी इच्छा से शरीर धारण करती है। असुरों के युद्ध में वह देवों के तेज द्वारा उत्पन्न हुई थी ॥८५॥ दैत्यवृन्दों के संहार करने के अनन्तर देवी ने भारत में दक्ष के अनेक जन्म के तप के कारण उनकी

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

निहत्य दैत्यसंघांश्च दक्षपत्न्यां च भारते। ललाभ दक्षतपसा जन्म चानेकजन्मनः ॥८६॥
त्यक्त्वा देहं पितुर्यज्ञे सा सती तव निन्दया। जगाम देवी गोलोकं कृष्णशक्तिः सनातनी ॥८७॥
गृहीत्वा विग्रहं तस्या गुणरूपाश्रयं परम्। भ्रामंभ्रामं भारते त्वं विषण्णोऽभूः पुरा हर ॥८८॥
प्रबोधितो मया त्वं च श्रीशैलेषु सरित्तटे। ललाभ जन्म सा शैलकान्तायामचिरेण च ॥८९॥
करोतु पुण्यकं साध्वी सुव्रता सुव्रतं शिवा। राजसूयसहस्राणां पुण्यं शंकर पुण्यके ॥९०॥
राजसूयसहस्राणां व्रते यत्र धनव्ययः। न साध्यं सर्वसाध्वीनां व्रतमेतत्त्रिलोचन ॥९१॥
स्वयं गोलोकनाथश्च पुण्यकस्य प्रभावतः। पार्वतीगर्भजातश्च तव पुत्रो भविष्यति ॥९२॥
स्वयं देवगणानां स यस्मादीशः कृपानिधिः। गणेश इति विख्यातो भविष्यति जगत्त्रये ॥९३॥
यस्य स्मरणमात्रेण विघ्ननाशो भवेद्ध्रुवम्। जगतां हेतुनाऽनेन विघ्ननिघ्नाभिधो विभुः ॥९४॥
नानाविधानि द्रव्याणि यस्माद्देयानि पुण्यके। भुक्त्वा लम्बोदरत्वं च तेन लम्बोदरः स्मृतः ॥९५॥
शनिदृष्ट्या शिरश्छेदाद्गजवक्त्रेण योजितः। गजाननः शिशुस्तेन सर्वेषां सर्वसिद्धिदः ॥९६॥
दन्तभङ्गः परशुना पर्शुरामस्य वै यतः। हेतुना तेन विख्यातश्चैकदन्ताभिधः शिशुः ॥९७॥
पूज्यश्च सर्वदेवानामस्माकं जगतां विभुः। सर्वाग्रे पूजनं तस्य भविता मद्वरेण वै ॥९८॥

पत्नी में जन्म ग्रहण किया था ॥८६॥ अनन्तर उस सती ने अपने पिता के यज्ञ में तुम्हारी निन्दा होने के कारण अपनी देह का त्याग कर दिया और वह कृष्ण की शक्ति सनातनी देवी गोलोक चली गयी ॥८७॥ हे हर! पहले तुम गुण और रूप का परम आश्रयभूत सती का शरीर लेकर खिन्न मन से भारत में चारों ओर भ्रमण करते रहे ॥८८॥ पश्चात् श्री शैल पर नदी के किनारे मैंने तुम्हें (समझा-बुझाकर) प्रबुद्ध किया। पुनः अल्पकाल में ही उस देवी ने हिमालय-पत्नी मेना में जन्म ग्रहण किया ॥८९॥ अतः हे शंकर! वह साध्वी एवं सुव्रता शिवा (पार्वती) पुण्यक नामक सुव्रत अवश्य सुसम्पन्न करे, क्योंकि पुण्यक सम्पन्न करने में सहस्रों राजसूय यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है ॥९०॥ हे त्रिलोचन! जिस व्रत के सुसम्पन्न करने में सहस्रों राजसूय के समान धन का व्यय हो, वह व्रत सभी पतिव्रताओं के लिए साध्य नहीं है ॥९१॥ इस पुण्यक व्रत के प्रभाववश, पार्वती के गर्भ से स्वयं श्रीकृष्ण तुम्हारे पुत्र होंगे ॥९२॥ वह कृपानिधान स्वयं देवगणों का ईश होने के नाते तीनों लोकों में 'गणेश' नाम से विख्यात होगा ॥९३॥ जिसके स्मरण मात्र से विघ्नों का निश्चित नाश होगा, उस कारण समस्त जगत् में उस विभु का 'विघ्नेश्वर' नाम होगा ॥९४॥ इस पुण्यक व्रत में अनेक भाँति की वस्तुओं का दान होगा और उसके भक्षण से उसका पेट बढ़ जायगा, इसलिए वह 'लम्बोदर' भी कहलायेगा ॥९५॥ शनि के देखने मात्र से उसका शिर कट जायगा और गज (हाथी) का मुख उसके धड़ पर जोड़ दिया जायेगा। इसलिए उस बच्चे को 'गजानन' कहेंगे जो सभी को सिद्धि प्रदान करेगा ॥९६॥ परशुराम के फरसा द्वारा उसका एक दाँत टूट जायेगा इस कारण वह शिशु 'एकदन्त' नाम से प्रख्यात होगा ॥९७॥ यह हम सभी देवों और सारे जगत् का पूज्य होगा और मेरे वरदान द्वारा उस विभु का सब से पहले पूजन होगा ॥९८॥ मनुष्य

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पूजासु सर्वदेवानामग्रे संपूज्य तं जनः। पूजाफलमवाप्नोति निर्विघ्नेन वृथाऽन्यथा ॥९९॥
गणेशं च दिनेशं च विष्णुं शम्भुं हुताशनम्। दुर्गामेतान्संनिषेव्य पूजयेद्देवतान्तरम् ॥१००॥
गणेशपूजने विघ्नं निर्मूलं जगतां भवेत्। निर्व्याधिः सूर्यपूजायां शुचिः श्रीविष्णुपूजने ॥१०१॥
मोक्षश्च पापनाशश्च यशश्चैश्वर्यमुत्तमम्। तत्त्वज्ञानं सुतत्त्वानां बीजं शंकरपूजनात् ॥१०२॥
स्वबुद्धिशुद्धिजननं कीर्तितं वह्निपूजनम्। विधिसंस्कृतवह्नेस्तु पूजातो ज्ञानतो मृतिः ॥१०३॥
दाता भोक्ता च भवति शंकराग्निनिषेवणात्। हरिभक्तिपदं चैव परं दुर्गार्चनं शिवम् ॥१०४॥
विपरीतं त्रिजगतामेतेषां पूजनं विना। एवं क्रमो महादेव कल्पे कल्पेऽस्ति निश्चितम् ॥१०५॥
एते शश्वद्विद्यमाना नित्याः सृष्टिपरायणाः। आविर्भावतिरोभावौ चैतेषामीश्वरेच्छया ॥१०६॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र विरराम सभातले। प्रहृष्टा देवता विप्राः पार्वत्या सह शंकरः ॥१०७॥
इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० पुण्यकव्रताज्ञाग्रहणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सभी देवों के पूजन में सब से पहले उसकी पूजा कर के, पूजा का फल प्राप्त निर्विघ्न करेंगे अन्यथा व्यर्थ हो जायेगा ॥९९॥ इसीलिए गणेश, दिनेश, विष्णु, शम्भु, अग्नि और दुर्गा, इन देवों की अर्चना के उपरान्त ही अन्य देवों की अर्चना करनी चाहिए ॥१००॥ गणेश के पूजन से जगत् का सारा विघ्न नष्ट हो जाता है, सूर्य की पूजा से नीरोग, श्री विष्णु के पूजन से पवित्रता और शंकर के पूजन से मोक्ष, पाप-नाश, कीर्ति, परमोत्तम ऐश्वर्य, तत्वज्ञान और सुन्दर तत्त्वों का बीज प्राप्त होता है ॥१०१-१०२॥ अग्नि पूजन से अपनी बुद्धि शुद्ध होती है ऐसा कहा गया है। विधिपूर्वक संस्कृत अग्नि के पूजन से ज्ञान-मृत्यु प्राप्त होती है ॥१०३॥ शिव और अग्नि की सेवा करने से मनुष्य दाता एवं भोगी होता है और मंगलमय दुर्गार्चन भगवान् की भक्ति प्रदान करता है ॥१०४॥ तीनों लोकों में इन देवों के पूजन बिना अन्य का पूजन करना विपरीत होगा। हे महादेव! प्रत्येक कल्प में इसी प्रकार का क्रम निश्चित है ॥१०५॥ ये सृष्टिपरायण देव हैं, अतः निरन्तर विद्यमान रहते हैं, भगवान् की इच्छा से इनका आविर्भाव (प्रकट होना) और तिरोभाव (अन्तर्हित होना) हुआ करता है ॥१०६॥ उस सभा में इतना कह कर भगवान् श्री हरि चुप हो गए और इसे सुन कर देवगण, ब्राह्मणवृन्द और पार्वती समेत शंकर जी अति प्रसन्न हुए ॥१०७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
पुण्यक व्रत के लिये आज्ञा-ग्रहण नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

१ख. सुवृत्तीनां।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ सप्तमोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरेराज्ञां समादाय हरः संहृष्टमानसः। उवाच पार्वतीं प्रीत्या हरिसंलापमङ्गलम् ॥१॥
शिवाज्ञां च समादाय शिवा संहृष्टमानसा। वाद्यं च वादयामास मङ्गलं मङ्गलव्रते ॥२॥
सुस्नाता सुदती शुद्धा बिभ्रती धौतवाससी। संस्थाप्य रत्नकलशं शुक्लधान्योपरि स्थिरम् ॥३॥
आम्रपल्लवसंयुक्तं फलाक्षतसुशोभितम्। चन्द्रनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् ॥४॥
रत्नासनस्था रत्नाढ्या रत्नोद्भवसुता सती। रत्नसिंहासनस्थांश्च संपूज्य मुनिपुंगवान् ॥५॥
रत्नसिंहासनस्थं च संपूज्य सुपुरोहितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीरत्नभूषणभूषितम् ॥६॥
संस्थाप्य पुरतो भक्त्या दिक्पालान्रत्नभूषितान्। देवान्नरांश्च नागांश्च समर्च्य विधिबोधितम् ॥७॥
समर्च्य परया भक्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितान् ॥८॥
वह्निशुद्धैः सुवस्त्रैश्च सद्रत्नैर्भूषणैस्तथा। पूजाद्रव्यैश्च विविधैः पूजितान्पुण्यके मुने ॥९॥
समारेभे व्रतं देवी स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। आवाह्याभीष्टदेवं तं श्रीकृष्णं मङ्गले घटे ॥१०॥
भक्त्या ददौ क्रमेणैव चोपचारांस्तु षोडश। यानि व्रते विधेयानि देयानि विविधानि च ॥११॥
प्रददौ तानि सर्वाणि प्रत्येकं फलदानि च। व्रतोक्तमुपहारं च दुर्लभं भुवनत्रये ॥१२॥

अध्याय ७

पार्वतीकृत व्रत का विधान तथा श्रीकृष्णस्तोत्र

नारायण बोले—भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर महादेव ने अतिहर्षित होकर भगवान् की सभी मांगलिक बातें सप्रेम पार्वती से बता दीं ॥१॥ पार्वती ने शिवकी आज्ञा से हर्षमग्न होकर उस मंगलव्रत में मांगलिक वाद्य बजवाना आरम्भ किया ॥२॥ सुन्दर दाँतों वाली पार्वती ने उत्तम स्नान से शुद्ध होकर दो उत्तम वस्त्र धारण किये और शुक्ल धान्य पर रत्न का दृढ़ कलश स्थापित किया, जो आम के पल्लव से युक्त, फल, अक्षत से सुशोभित, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से विराजमान था ॥३-४॥ रत्नों के उद्भवस्थान हिमालय की पुत्री सती पार्वती ने रत्नों से भूषित होकर रत्नसिंहासन को भूषित किया। अनन्तर रत्नसिंहासनों पर सुखासीन मुनिपुंगवों की अर्चना करके रत्नसिंहासनासीन पुरोहित का चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और रत्नों के आभूषणों से पूजन किया, फिर दिक्पालों को रत्नभूषित कर भक्तिपूर्वक सामने स्थापित किया तथा देवों, मनुष्यों और नागों की सविधि पूजा की ॥५-७॥ पश्चात् पराभक्ति से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की चन्दन, अगरु, कस्तूरी और कुंकुम द्वारा अर्चना की ॥८॥ हे मुने! इस प्रकार अग्नि की भाँति शुद्ध उत्तम वस्त्रों, उत्तम रत्नों के भूषणों तथा अनेक भाँति की पूजन-सामग्रियों से सभी की पूजा करने के उपरान्त देवी ने स्वस्तिवाचनपूर्वक व्रतानुष्ठान आरम्भ किया उस मंगल-कलश में अभीष्ट देव भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करके भक्तिपूर्वक क्रमशः सोलहों उपचार से उनकी अर्चना की। उस व्रत में विविध भाँति की जितनी वस्तुएँ दी जानी चाहिये थीं, उन्होंने प्रत्येक को वे समस्त वस्तुएँ प्रदान कीं ॥९-११½॥ एवं पतिव्रता पार्वती ने व्रतोपयुक्त, तीनों लोकों

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तच्च सर्वं ददौ भक्त्या सुव्रते सुव्रता सती। दत्त्वा द्रव्याणि सर्वाणि वेदमन्त्रेण सा सती ॥१३॥
होमं च कारयामास त्रिलक्षं तिलसर्पिषाः। ब्राह्मणान्भोजयामास पूजयित्वाऽतिथींस्तथा ॥१४॥
भोजयामास सा देवी सुव्रते सुव्रता सती। प्रत्यहं सविधानं च चक्रे सा पूर्णवत्सरम् ॥१५॥
समाप्तिदिवसे विप्रस्तामुवाच पुरोहितः। सुव्रते सुव्रते मह्यं देहि त्वं पतिदक्षिणाम् ॥१६॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा विलप्य सुरसंसदि। मूर्च्छां प्राप महामाया मायामोहितचेतसा ॥१७॥
तां च ते मूर्च्छितां दृष्ट्वा प्रहस्य मुनिपुंगवाः। शंकरं प्रेषयामासुर्ब्रह्मा विष्णुश्च नारद ॥१८॥
संप्रार्थितः सभासद्भिः शिवां बोधयितुं तदा। शिवः समुद्यमं चक्रे प्रवक्तुं वदतां वरः ॥१९॥

महादेव उवाच

उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते भविष्यति न संशयः। सांप्रतं चेतनं कृत्वा मदीयं वचनं शृणु ॥२०॥
शिवः शिवां तामित्युक्त्वा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाम्। वक्षसि स्थापयामास कारयामास चेतनाम् ॥२१॥
हितं सत्यं मितं सर्वं परिणामसुखावहम्। यशस्करं च फलदं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२२॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यद्वेदेन निरूपितम्। सर्वसंमतमिष्टं च धर्मार्थं धर्मसंसदि ॥२३॥
सर्वेषां कर्मणां देवि सारभूता च दक्षिणा। यशोदा फलदा नित्यं धर्मिष्ठे धर्मकर्मणि ॥२४॥

के जितने दुर्लभ उपहार थे वे उस व्रत में भक्तिपूर्वक सभी को पूर्णरूपेण समर्पित किये सभी द्रव्यों के दान के अनन्तर सती पार्वती ने वेदमन्त्रों द्वारा तिल, घी की तीन लाख आहुतियाँ अग्नि को समर्पित कीं। उस सुव्रत में सुव्रता पार्वती ने ब्राह्मण-भोजन के अनन्तर अतिथियों का पूजन करके उन्हें भोजन कराया। इस प्रकार उन्होंने पूरे वर्ष तक प्रतिदिन सविधान व्रत किया ॥१२-१५॥ समाप्ति के दिन ब्राह्मण पुरोहित ने उनसे कहा— हे सुव्रते! इस सुन्दर व्रत में मुझे दक्षिणारूप में अपना पति प्रदान करो ॥१६॥ उनकी ऐसी बातें सुनकर पार्वती विलाप करने लगीं, अनन्तर महामाया पार्वती माया-मोहित चित्त होने से मूर्च्छित हो गयीं ॥१७॥ हे नारद! उन्हें मूर्च्छित देखकर मुनिपुंगवों ने हँसकर एवं ब्रह्मा विष्णु ने भी शंकर को उनके पास भेजा ॥१८॥ उस समय सभी समासद लोग पार्वती को उद्बुद्ध करने के लिए शंकर की प्रार्थना करने लगे। तब वक्ताओं में श्रेष्ठ शिव ने समझाने का प्रयत्न किया ॥१९॥

महादेव बोले—हे भद्रे! उठो! तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा। इस समय चैतन्य होकर हमारी बातें सुनो ॥२०॥ शिव ने पार्वती से, जिनके कण्ठ, होंठ और तालू सूख गये थे, इतना कहकर उन्हें अपने वक्षःस्थल से लगा लिया और सचेत करने लगे ॥२१॥ हितकर, सत्य, अल्प, परिणाम में सुखप्रद, यशस्कर एवं फलदायक वचन उन्होंने कहना प्रारम्भ किया ॥२२॥ हे देवि! इस विषय में वेद ने धर्म-सभा में जो कुछ कहा है, वह सर्व-सम्मत, इष्ट (प्रिय) एवं धर्मार्थ है, उसे बता रहा हूँ, सुनो ॥२३॥ हे देवि! दक्षिणा सभी कर्मों का सार भाग है, वह धर्म-कर्म में नित्य यश एवं फल देने वाली है ॥२४॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दैवं वा पैतृकं वाऽपि नित्यं नैमित्तिकं प्रिये। यत्कर्म दक्षिणाहीनं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥२५॥
दाता च कर्मणा तेन कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम्। देहान्ते दैन्यमाप्नोति शत्रुणा परिपीडितः ॥२६॥
दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्कालं तु न दीयते। तन्मुहूर्ते व्यतीते तु दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥२७॥
चतुर्गुणा दिनातीते पक्षे शतगुणा भवेत्। मासे पञ्चशतघ्ना स्यात्षण्मासे तच्चतुर्गुणा ॥२८॥
संवत्सरे व्यतीते तु कर्म तन्निष्फलं भवेत्। दाता च नरकं याति यावद्वर्षसहस्रकम्[1] ॥२९॥
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं क्षयमाप्नोति पातकात्। धर्मो नष्टो भवेत्तस्य धर्महीने च कर्मणि ॥३०॥

विष्णुरुवाच

रक्षस्व धर्मं धर्मिष्ठे धर्मज्ञे धर्मकर्मणि। सर्वेषां च भवेद्रक्षा स्वधर्मपरिपालने ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

यश्च केन निमित्तेन न धर्मं परिरक्षति। धर्मे नष्टे च धर्मज्ञे तस्य[2] कर्ता विनश्यति ॥३२॥

धर्म उवाच

मां रक्ष यत्नतः साध्वि प्रदाय पतिदक्षिणाम्। मयि स्थिते महासाध्वि सर्वं भद्रं भविष्यति ॥३३॥

देवा ऊचुः

धर्मं रक्ष महासाध्वि कुरु पूर्णं व्रतं सति। वयं तव व्रते पूर्णे कुर्मस्त्वां पूर्णमानसाम् ॥३४॥

हे प्रिये! देवों और पितरों के सभी नित्य-नैमित्तिक कर्मों में जो कर्म दक्षिणाहीन होता है वह निष्फल होता है और उस कर्म के कारण दाता कालसूत्र नामक नरक में निश्चित पड़ता है तथा अन्त में दीनहीन होकर शत्रु द्वारा पीड़ित होता है। इसलिए उस समय यदि ब्राह्मण को दक्षिणा न दी गयी, तो उस मुहूर्त के बीत जाने पर दक्षिणा दुगुनी हो जाती है। दिन व्यतीत होने पर चौगुनी, पक्ष बीतने पर सौगुनी, मास में पाँच सौ गुनी, छह मास में उसकी चौगुनी और वर्ष बीतने पर वह कर्म निष्फल हो जाता है औरसहस्र वर्ष पर्यन्त दाता नरक में निवास करता है तथा उस पातक द्वारा पुत्र-पौत्र, धन और ऐश्वर्य हो जाता है धर्मविहीन कर्म में उसका धर्म नष्ट हो जाता है ॥२५ ३०॥

विष्णु बोले—हे धर्मिष्ठे! इस धर्म-कर्म में अपने धर्म की रक्षा करो, क्योंकि अपने धर्म का पालन करने से सब की रक्षा होती है ॥३१॥

ब्रह्मा बोले—हे धर्मज्ञे! किसी कारणवश जो अपने धर्म की रक्षा नहीं करता है, वह कर्ता धर्म के नष्ट होने पर स्वयं भी नष्ट हो जाता है ॥३२॥

धर्म बोले—हे साध्वि! पति को दक्षिणा में प्रदान कर मेरी रक्षा सप्रयत्न करो। हे महासाध्वि! मेरे रहने पर सब कल्याण ही होगा ॥३३॥

देवगण बोले—हे महासाध्वि! धर्म की रक्षा करो के अपना और व्रत पूरा करो। तुम्हारे व्रत के पूर्ण हो जाने पर हम लोग तुम्हें सफलमनोरथ करेंगे ॥३४॥

---

१ क. ०र्षशतं शुभे। २. क. ०स्य सर्वं वि०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मुनय ऊचुः

कृत्वा साध्वि पूर्णहोमं देहि विप्राय दक्षिणाम्। स्थितेष्वस्मासु भुवि ते किमभद्रं भविष्यति ॥३५॥

सनत्कुमार उवाच

शिवे शिवं देहि मह्यं न चेद्व्रतफलं त्यज। सुचिरं संचितस्यापि स्वात्मनस्तपसः फलम् ॥३६॥
कर्मण्यदक्षिणे साध्वि यागस्याहं तु तत्फलम्। प्राप्स्यामि यजमानस्य संपूर्णं कर्मणः फलम् ॥३७॥

पार्वत्युवाच

किं कर्मणा मे देवेशाः किं मे दक्षिणया मुने। किं पुत्रेण च धर्मेण यत्र भर्ता च दक्षिणा ॥३८॥
वृक्षार्चने फलं किं वै यदि भूमिर्न चार्च्यते। गते च कारणे कार्यं कुतः सस्यं कुतः फलम् ॥३९॥
प्राणास्त्यक्ताः स्वेच्छया चेद्देहैः स्यात्किं प्रयोजनम्। दृष्टिशक्तिविहीनेन चक्षुषा किं प्रयोजनम् ॥४०॥
शतपुत्रसमः स्वामी साध्वीनां च सुरेश्वराः। यदि भर्ता व्रते देयं किं व्रतेन सुतेन वा ॥४१॥
भर्तुरंशश्च तनयः केवलं भर्तृमूलकः। यत्र मूलं भवेद्भ्रष्टं तद्वाणिज्यं च निष्फलम् ॥४२॥

विष्णुरुवाच

पुत्रादपि परः स्वामी धर्मश्च स्वामिनः परः। नष्टे धर्मे च धर्मिष्ठे स्वामिना किं सुतेन वा ॥४३॥

मुनिवृन्द बोले—हे साध्वि ! हवन पूरा कर ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करो हे। धर्मज्ञे ! भूतल पर हम लोगों के रहते तुम्हारा क्या अमंगल होगा ? ॥३५॥

सनत्कुमार बोले—हे शिवे ! शिव को मुझे सौंप दो, अन्यथा व्रत का फल और अपने चिर काल से संचित किये हुए तप का फल परित्याग करो ॥३६॥ हे साध्वि ! कर्म के दक्षिणाहीन होने पर इस याग का फल और यजमान के सम्पूर्ण कर्म का फल मुझे प्राप्त होगा ॥३७॥

पार्वती बोलीं—हे देवेश ! एवं हे मुने ! मुझे कर्म और धर्म से क्या प्रयोजन है तथा पुत्र और धर्म लेकर क्या करूँगी जहाँ पति ही दक्षिणा में जा रहा है ॥३८॥ क्योंकि यदि भूमि की अर्चना न हो तो वृक्ष की अर्चना से क्या फल हो सकता है—कारण ही नहीं है तो कार्य सस्य और फल की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? ॥३९॥ यदि प्राण स्वेच्छा से चले गये तो देह से क्या प्रयोजन। देखने की शक्ति से हीन नेत्र किस काम आ सकता है ? ॥४०॥ हे सुरेश्वरो ! पतिव्रता स्त्रियों के लिए स्वामी सौ पुत्रों के समान होता है। यदि व्रत में पति ही देय है तो व्रत और पुत्र से क्या प्रयोजन है ? ॥४१॥ पुत्र भर्ता का अंश होता है और उसका कारण स्वामी ही होता है। जहाँ मूलधन नष्ट हो जाता है वहाँ उसका व्यापार भी निष्फल हो जाता है ॥४२॥

विष्णु बोले—स्वामी पुत्र से बढ़कर अवश्य होता है किन्तु धर्म स्वामी से भी उत्तम है, अतः धर्म के नष्ट हो जाने पर स्वामी या पुत्र दोनों से क्या प्रयोजन ? ॥४३॥

---

१. ख धर्मज्ञे कि०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्मोवाच

स्वामिनश्च परो धर्मो धर्मात्सत्यं च सुव्रते। सत्यं संकल्पितं कर्म न तु भ्रष्टं कुरु व्रतम् ॥४४॥

पार्वत्युवाच

निरूपितश्च वेदेषु स्वशब्दो धनवाचकः। तद्यस्यास्तीति स स्वामी वेदज्ञ शृणु मद्वचः ॥४५॥
तस्य दाता सदा स्वामी न च स्वं स्वामितां लभेत्। अहोऽव्यवस्था भवतां वेदज्ञानामबोधतः[1] ॥४६॥

धर्म उवाच

पत्नी विनाऽन्यं स्वं साध्वि स्वामिनं दातुमक्षमा। दम्पती ध्रुवमेकाङ्गौ द्वयोर्दाने द्वकौ समौ ॥४७॥

पार्वत्युवाच

पिता ददाति जामात्रे स च गृह्णाति तत्सुताम्। न श्रुतं विपरीतं च श्रुतौ श्रुतिपरायणाः ॥४८॥

देवा ऊचुः

बुद्धिस्वरूपा त्वं दुर्गे बुद्धिमन्तो वयं त्वया। वेदज्ञे वेदवादेषु के वा त्वां जेतुमीश्वराः ॥४९॥
निरूपिता पुण्यके तु व्रते स्वामी च दक्षिणा। श्रुतौ श्रुतो यः स धर्मो विपरीतो ह्यधर्मकः ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रते! स्वामी से बढ़ कर धर्म और धर्म से बढ़कर सत्य होता है। तुम्हारा यह व्रत सत्य संकल्पित कर्म है, अतः इसे भ्रष्ट न करो ॥४४॥

पार्वती बोलीं—हे वेदज्ञ! मेरी बातें सुनो। वेदों में स्वशब्द धन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अतः वह जिसका है वह स्वामी है ॥४५॥ उस (धन) का दाता सदा स्वामी होता है, किन्तु धन स्वामित्व को प्राप्त नहीं करता। अतः आप वेदज्ञानियों की अव्यवस्था पर, जो अज्ञान द्वारा की गयी है, आश्चर्य हो रहा है ॥४६॥

धर्म बोले—हे साध्वि! पत्नी अन्य धन को छोड़ कर स्वामी देने में असमर्थ रहती है, क्योंकि दम्पति (स्त्री पुरुष मिलकर) निश्चित एक अंग होते हैं अतः दोनों के दान में दोनों समान हैं ॥४७॥

पार्वती बोलीं—हे श्रुतिपरायणवृन्द! पिता जामाता (दामाद) को दान देता है और वह उसकी पुत्री को ग्रहण करता है, वेद में इसके विपरीत कुछ नहीं सुना गया है ॥४८॥

देववृन्द बोले—हे दुर्गे! हे वेदज्ञे! तुम बुद्धिस्वरूप हो और हम लोग तुम्हारे द्वारा बुद्धिमान् हैं, अतः वेद के वाद-विवाद में तुम्हें जीतने में कौन समर्थ हो सकता है ॥४९॥ इस पुण्यकव्रत में स्वामी ही दक्षिणा रूप में देने को कहा गया है इसलिए वेद में जो सुना गया है वह धर्म है और उससे विपरीत अधर्म ॥५०॥

---

१ क. ० ज्ञानमबोधताम्।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पार्वत्युवाच

केवलं वेदमाश्रित्य कः करोति विनिर्णयम्। बलवाँल्लौकिको वेदाल्लोकाचारं च कस्त्यजेत् ॥५१॥
वेदे प्रकृतिपुंसोश्च गरीयान्पुरुषो ध्रुवम्। निबोधत सुराः प्राज्ञा बालाऽहं कथयामि किम् ॥५२॥

बृहस्पतिरुवाच

न पुमांसं विना सृष्टिर्न साध्वि प्रकृतिं विना। श्रीकृष्णश्च द्वयोः स्रष्टा समौ प्रकृतिपूरुषौ ॥५३॥

पार्वत्युवाच

[1]सर्वस्रष्टा च यः कृष्णः सोंऽशेन सगुणः पुमान्। पुमान्गरीयान्प्रकृतेस्तथैव न ततश्च सा ॥५४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा मुनयस्तत्र संसदि। रत्नेन्द्रसाररचितमाकाशे ददृशू रथम् ॥५५॥
पार्षदैः संपरिवृतं सर्वैः श्यामैश्चतुर्भुजैः। वनमालापरिवृतै रत्नभूषणभूषितैः ॥५६॥
अवरुह्य ततो[2] यानादाजगाम सभातलम्। तुष्टुवुस्तं सुरेन्द्रास्ते देवं वैकुण्ठवासिनम् ॥५७॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरमीशं चतुर्भुजम्। लक्ष्मीसरस्वतीकान्तं शान्तं तं सुमनोहरम् ॥५८॥
सुखदृश्यमभक्तानामदृश्यं कोटिजन्मभिः। कोटिकन्दर्पलावण्यं कोटिचन्द्रसमप्रभम् ॥५९॥
अमूल्यरत्नरचितचारुभूषणभूषितम्। सेव्यं ब्रह्मादिदेवैश्च सेवकैः सततं स्तुतम् ॥६०॥

पार्वती बोलीं—केवल वेद के ही आधार पर कौन निर्णय कर सकता है, क्योंकि वेद से लोकाचार बलवान् होता है, इसलिए उसका त्याग कौन कर सकता है ॥५१॥ वेद में प्रकृति-पुरुष में पुरुष को ही श्रेष्ठ बताया गया है। हे प्राज्ञ सुरगण! सुनिए, मैं बाला क्या कह सकती हूँ ॥५२॥

बृहस्पति बोले—हे साध्वि! न पुरुष के बिना सृष्टि हो सकती है और न प्रकृति (स्त्री) के बिना सृष्टि हो सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण ही दोनों के स्रष्टा हैं और प्रकृति-पुरुष दोनों समान हैं ॥५३॥

पार्वती बोलीं—सबका सर्जन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने अंश से सगुण पुरुष होते हैं, इसलिए प्रकृति से पुरुष श्रेष्ठ होता है और उसी प्रकार पुरुष से प्रकृति श्रेष्ठ नहीं होती ॥५४॥ इसी बीच देवों और मुनियों ने उसी सभा में आकाश में रत्नेन्द्रों के सारभाग से सुरचित एक उत्तम रथ देखा, जो श्याम वर्ण, वनमाला एवं रत्नों के भूषणों से भूषित और चार भुजाओं वाले पार्षदों से आच्छन्न था। अनन्तर उस रथ से उतर कर प्रसन्नमुख नारायण सभा में आये ॥५५-५६½॥ उन सुरवरों ने उस वैकुण्ठवासी भगवान् की स्तुति करना आरम्भ किया, जो शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये, सबके ईश, चार भुजाओं से सुशोभित, लक्ष्मी-सरस्वती के पति, शान्तस्वरूप, अति मनोहर, देखनेमात्र से सुख देने वाले, अभक्तों को करोड़ों जन्मों में भी न दिखायी देने वाले, करोड़ों काम के समान सुन्दर, करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभा से पूर्ण, अमूल्य रत्नों के सुन्दर आभूषणों से भूषित, ब्रह्मा आदि देवों से सुसेव्य और सेवकों द्वारा निरन्तर स्तुत हो रहे थे ॥५७-६०॥ उनकी कान्ति से चारों ओर आच्छन्न

---

१ क. यः कृष्णः प्रकृतेः स्रष्टा सो० । २ ख. मुदा।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तद्भासा संपरिच्छन्नैर्वेष्टितं च सुरर्षिभिः। वासयामास तं ते च रत्नसिंहासने वरे ॥६१॥
तं प्रणेमुश्च शिरसा ब्रह्मशक्तिशिवादयः। संपुटाञ्जलयः सर्वे पुलकाङ्गाश्रुलोचनाः ॥६२॥
सस्मितस्तांश्च पप्रच्छ सर्वं मधुरया गिरा। प्रबोधितः सुबोधज्ञः प्रववर्तमुपचक्रमे ॥६३॥

नारायण उवाच

सह बुद्ध्या बुद्धिमन्तो न वक्तुमुचितं सुराः। सर्वे शक्त्या यया विश्वे शक्तिमन्तो हि जीविनः ॥६४॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं जगत्। सत्यं सत्यं विना मां च मया शक्तिः प्रकाशिता ॥६५॥
आविर्भूता च सा मत्तः सृष्टौ देवी मदिच्छया। तिरोहिता च साऽशेषे सृष्टिसंहरणे मयि ॥६६॥
प्रकृतिः सृष्टिकर्त्री च सर्वेषां जननी परा। मम तुल्या च मन्माया तेन नारायणी स्मृता ॥६७॥
सुचिरं तपसा तप्तं शंभुना ध्यायता च माम्। तेन तस्मै मया दत्ता तपसां फलरूपिणी ॥६८॥
व्रतं च लोकशिक्षार्थमस्या न स्वार्थमेव च। स्वयं व्रतानां तपसां फलदात्री जगत्त्रये ॥६९॥
मायया मोहिताः सर्वे किमस्या वास्तवं व्रतम्। साध्यमस्या व्रतफलं कल्पे कल्पे पुनः पुनः ॥७०॥
सुरेश्वरा मदंशाश्च ब्रह्मशक्तिमहेश्वराः। कलाः कलांशरूपाश्च जीविनश्च सुरादयः ॥७१॥
मृदा विना घटं कर्तुं कुलालश्च यथाऽक्षमः। विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः ॥७२॥
विना शक्त्या तथाऽहं च स्वसृष्टिं कर्तुमक्षमः। शक्तिप्रधाना सृष्टिश्च सर्वदर्शनसंमता ॥७३॥

देवगण उन्हें घेरे हुए थे। अनन्तर ब्रह्मा, शक्ति और शिव आदि देवों ने उन्हें उत्तम रत्न सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया और शिर से प्रणाम करने लगे। उस समय, सब हाथ जोड़े सजल नयन होकर पुलकायमान हो रहे थे। मन्द मुसुकान करते हुए भगवान् ने मधुर वाणी द्वारा उन देवों से सब पूछ लिया। वृत्तान्त जानने पर उत्तम बोध के ज्ञाता भगवान् ने कहना आरम्भ किया ॥६१-६३॥

नारायण बोले—बुद्धि (स्वरूपिणी पार्वती) के साथ बुद्धिमान् देवों का वाद-विवाद करना उचित नहीं है, क्योंकि समस्त विश्व में उसी शक्ति द्वारा सभी लोग सशक्त और जीवित हैं। इसीलिए ब्रह्मा आदि से लेकर तृणपर्यन्त समस्त जगत प्राकृतिक कहा जाता है। यह बात सत्य एवं दृढ़ सत्य है कि—मैंने पुरुष के बिना शक्ति को प्रकाशित किया है ॥६४-६५॥ सृष्टि में वह देवी मेरी इच्छा से मेरे द्वारा प्रकट होती है और सम्पूर्ण सृष्टि का संहार होने पर मुझ में अन्तर्हित हो जाती है ॥६६॥ प्रकृति सृष्टि करने के नाते सभी लोगों की श्रेष्ठ जननी है। यह मेरी माया मेरे समान है, अतः इसे 'नारायणी' कहते हैं ॥६७॥ मेरा ध्यान करते हुए शम्भु ने चिरकाल तक तप किया था, इसी लिए मैंने उनके तप के फलस्वरूप यह उन्हें सौंप दी थी ॥६८॥ यह (सुपुण्यक) व्रत इन्होंने लोक-शिक्षार्थ सम्पन्न किया है, इसमें इनका कुछ स्वार्थ नहीं है, क्योंकि तीनों लोकों में व्रतों और तपस्याओं के फल यह स्वयं प्रदान करती है ॥६९॥ तुम सभी लोग माया से मोहित हो गये हो, नहीं तो इनका यह वास्तविक व्रत है क्या? प्रत्येक कल्प में इस व्रत का फल इन्हें बार-बार प्राप्त होता रहता है ॥७०॥ देवेश्वर ब्रह्मा, शक्ति और महेश्वर मेरे अंश हैं और जीव देवादिगण कला एवं कलांशरूप हैं ॥७१॥ जिस प्रकार बिना मिट्टी के घड़ा बनाने में कुम्हार असमर्थ होता है, बिना सुवर्ण के सुनार कुण्डल बनाने में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार बिना शक्ति के मैं सृष्टि करने में असमर्थ रहता

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अहमात्मा हि निर्लिप्तोऽदृश्यः साक्षी च देहिनाम्। देहाः प्राकृतिकाः सर्वे नश्वराःपाञ्चभौतिकाः ॥७४॥
अहं नित्यः शरीरी च भानुविग्रहविग्रहः। सर्वाधारा सा प्रकृतिः सर्वात्माऽहं जगत्सु च ॥७५॥
अहमात्मा मनो ब्रह्मा ज्ञानरूपो महेश्वरः। पञ्चप्राणाः स्वयं विष्णुर्बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी ॥७६॥
[1]मेधानिद्रादयश्चैताः सर्वाश्च प्रकृतेः कलाः। सा च शैलेन्द्रकन्यैषा त्विति वेदे निरूपितम् ॥७७॥
अहं गोलोकनाथश्च वैकुण्ठेशः सनातनः। गोपीगोपैः परिवृतस्तत्रैव द्विभुजः स्वयम् ॥
चतुर्भुजोऽत्र देवेशो लक्ष्मीशः पार्षदैर्वृतः ॥७८॥
ऊर्ध्वं परश्च वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनात्। ममाऽऽश्रयश्च गोलोको यत्राहं[2] गोपिकापतिः ॥७९॥
व्रताराध्यः स द्विभुजः स च तत्फलदायकः। यद्रूपं चिन्तयेद्यो हि तच्च तत्फलदायकः ॥८०॥
व्रतं पूर्णं कुरु शिवे शिवं दत्त्वा च दक्षिणाम्। पुनः समुचितं मूल्यं दत्त्वा नाथं ग्रहीष्यसि ॥८१॥
विष्णुदेहा यथा गावो विष्णुदेहस्तथा शिवः। द्विजाय दत्त्वा गोमूल्यं गृहाण स्वामिनं शुभे ॥८२॥
यज्ञपत्नीं यथा दातुं क्षमः स्वामी सदैव तु। तथा सा स्वामिनं दातुमीश्वरीति श्रुतेर्मतम् ॥८३॥
इत्युक्त्वा स सभामध्ये तत्रैवान्तरधीयत। हृष्टास्ते सा च संहृष्टा दक्षिणां दातुमुद्यता ॥८४॥
कृत्वा शिवा पूर्णहोमं सा शिवं दक्षिणां ददौ। स्वस्तीत्युक्त्वा च जग्राह कुमारो देवसंसदि ॥८५॥

हूँ। सृष्टि में शक्ति प्रधान है, ऐसा समस्त दर्शन शास्त्रों का मत है ॥७२-७३॥ मैं निर्लिप्त, अदृश्य और समस्त देहधारी जीवों का साक्षी आत्मा हूँ। सभी देह प्राकृतिक, नश्वर एवं पाँच भूतों से निर्मित हैं ॥७४॥ सूर्य के समान प्रकाशमान शरीर वाला मैं नित्य हूँ। जगत में प्रकृति सबकी आधारस्वरूपा है और मैं सबका आत्मा हूँ ॥७५॥ मैं आत्मा हूँ, ब्रह्मा मन हैं, महेश्वर ज्ञानरूप हैं, स्वयं विष्णु पाँचों प्राण स्वरूप हैं, ईश्वरी प्रकृति बुद्धिरूप और मेधा तथा निद्रा आदि ये सब प्रकृति की कलायें हैं। यह प्रकृति हिमालय की कन्या है, ऐसा वेद में बताया गया है ॥७६-७७॥ मैं गोलोक का अधीश्वर, वैकुण्ठ का स्वामी, सनातन और गोप-गोपियों से आवृत रहकर वहाँ स्वयं दो भुजाएँ धारण करता हूँ तथा यहाँ चार भुजाएँ धारण करके देवों का अधीश्वर, लक्ष्मी का स्वामी एवं पार्षदों से घिरा हुआ हूँ ॥७८॥ वैकुण्ठ से पचास करोड़ योजन ऊपर गोलोक में मेरा स्थान है जहाँ मैं गोपिकाओं का पति, व्रत का आराध्य देव एवं दो भुजाओं से भूषित रहकर व्रतों का फल देता हूँ। जो जिस रूप का चिन्तन करता है, उसे वह फल प्रदान करता हूँ ॥७९-८०॥ अतः हे शिवे! शिव को दक्षिणा में देकर तुम अपना व्रत पूरा करो और फिर उचित मूल्य देकर अपना स्वामी ग्रहण करो ॥८१॥ क्योंकि हे शुभे! विष्णु की देह जैसे गौएँ हैं वैसे ही विष्णु की देह शिव भी हैं, इसलिए ब्राह्मण को गो मूल्य देकर अपना पति लौटा लो ॥८२॥ जिस प्रकार स्वामी यज्ञ-पत्नी (दक्षिणा) देने में समर्थ होता है उसी भाँति वह भी स्वामी का दान करने में समर्थ है, ऐसा वेद का मत है ॥८३॥ इतना कह कर नारायण भगवान् सभा के मध्य में वहीं अन्तर्हित हो गये। देवों आदि सभासदों को बड़ा हर्ष हुआ और पार्वती अत्यन्त सन्तुष्ट होकर दक्षिणा देने के लिए तैयार हो गयीं ॥८४॥ देवों की सभा में शिवा ने पूर्णाहुति करके शिव को दक्षिणा में दे दिया और 'स्वस्ति' कह कर कुमार ने ग्रहण कर लिया ॥८५॥ उस

---

१ क. शक्ति०। २ क. कमलाप०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

उवाच दुर्गा संत्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका। कृताञ्जलिपुटा विप्रं हृदयेन विदूयता ॥८६॥

पार्वत्युवाच

गोमूल्यं मत्पतिसममिति वेदे निरूपितम्। गवां लक्षं प्रयच्छामि देहि मत्स्वामिनं द्विज ॥८७॥
तदा दास्यामि विप्रेभ्यो दानानि विविधानि च। आत्महीनो हि देहश्च कर्म किं कर्तुमीश्वरः ॥८८॥

सनत्कुमार उवाच

गवां लक्षेण मे देवि[1] विप्रस्य किं प्रयोजनम्। [2]दत्तस्यामूल्यरत्नस्य गवां प्रत्यर्पणेन च ॥८९॥
स्वस्य स्वस्य स्वयं दाता लोकः सर्वो जगत्त्रये। कर्तुरेवेप्सितं कर्म भवेत्किं वा परेच्छया ॥९०॥
दिगम्बरं पुरः कृत्वा भ्रमिष्यामि जगत्त्रयम्। बालकानां बालिकानां समूहस्मितकारणम् ॥९१॥
इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो गृहीत्वा शंकरं मुने। संनिधौ वासयामास तेजस्वी देवसंसदि ॥९२॥
दृष्ट्वा शिवं गृह्यमाणं कुमारेण च पार्वती। समुद्यता तनुं त्यक्तुं शुष्ककण्ठौष्ठतालुका ॥९३॥
विचिन्त्य मनसा साध्वीत्येवमेव दुरत्ययम्। न दृष्टोऽभीष्टदेवश्च न च प्राप्तं फलं व्रते ॥९४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवाः पार्वतीसहितास्तदा। सद्यो ददृशुराकाशे तेजसां निकरं परम् ॥९५॥
कोटिसूर्यप्रभोर्ध्वं च प्रज्वलन्तं दिशो दश। कैलासशैलं पुरतः सर्वदेवादिभिर्युतम् ॥९६॥

समय दुर्गा के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये; संत्रस्त होकर हाथ जोड़े एवं हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई उन्होंने कहा ॥८६॥

पार्वती बोलीं—हे द्विज ! गो रूप मूल्य हमारे पति के समान है, ऐसा वेद में कहा गया है। इसलिए मैं आपको एक लाख गौएँ दे रही हूँ, मेरे स्वामी को लौटा दीजिए ॥८७॥ तब मैं ब्राह्मणों को अनेक भाँति के दान प्रदान करूँगी। अन्यथा आत्मरहित देह क्या कर्म करने में कभी समर्थ हो सकती है? ॥८८॥

सनत्कुमार बोले—हे देवि ! मुझ ब्राह्मण को लाख गौओं की आवश्यकता नहीं है—दिये हुए अमूल्य रत्न को गौओं से बदलना नहीं चाहता ॥८९॥ तीनों लोकों में सभी लोग अपने-अपने धन के दाता स्वयं होते हैं (अन्य नहीं) और करने वाले का अभिलषित कर्म क्या कहीं दूसरे की इच्छा से सम्पन्न होता है? ॥९०॥ मैं दिगम्बर (शिव) को आगे किये तीनों लोकों में भ्रमण करूँगा, जो बालक-बालिकाओं के हास्य का एक कारण होगा ॥९१॥ हे मुने ! तेजस्वी ब्रह्मपुत्र (सनत्कुमार) ने उस देवसभा में इतना कहकर शिव को अपने समीप बैठा लिया ॥९२॥ पार्वती ने शिव को पकड़ते हुए कुमार को देखकर अपना शरीर त्यागना निश्चित कर लिया। उनके कण्ठ, होंठ और तालू सूख गये ॥९३॥ उस पतिव्रता ने मन से सोचा कि यह कैसी कठिन बात हुई कि—इस व्रत में न अभीष्ट देव (भगवान् श्रीकृष्ण) ही दिखाई पड़े और न फल ही प्राप्त हुआ ॥९४॥ इसी बीच देवों के साथ उन्होंने आकाश में तेजों का समूह देखा, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा से उत्कृष्ट तथा दसों दिशाओं को प्रज्वलित कर रहा था। वह कैलाशपर्वत

---

१ ख. वल्गुना। २ क. ददाति विद्वोऽमूल्यं च गवां प्रत्यर्पणेन कः।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सर्वाश्रयं गणाच्छन्नं विस्तीर्णं मण्डलाकृतिम्। तच्च दृष्ट्वा भगवतस्तुष्टुवुस्ते क्रमेण च ॥९७॥

विष्णुरुवाच

ब्रह्माण्डानि च सर्वाणि यल्लोमविवरेषु च। सोऽयं ते षोडशांशश्च के वयं यो महाविराट् ॥९८॥

ब्रह्मोवाच

वेदोपयुक्तं दृश्यं यत्प्रत्यक्षं द्रष्टुमीश्वर। स्तोतुं तद्वर्णितुमहं शक्तः किं स्तौमि तत्परः ॥९९॥

महादेव उवाच

ज्ञानाधिष्ठातृदेवोऽहं स्तौमि ज्ञानपरं च किम्। सर्वानिर्वचनीयं तं त्वां च स्वेच्छामयं विभुम् ॥१००॥

धर्म उवाच

अदृश्यमवतारेषु यद्दृश्यं सर्वजन्तुभिः। किं स्तौमि तेजोरूपं तद्भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१०१॥

देवा ऊचुः

के वयं त्वत्कलांशाश्च किं वा त्वां स्तोतुमीश्वराः। स्तोतुं न शक्ता वेदाद्यं न च शक्ता सरस्वती ॥१०२॥

मुनय ऊचुः

वेदान्पठित्वा विद्वांसो वयं किं वेदकारणम्। स्तोतुमीशा न वाणी च त्वां वाङ्मनसयोःपरम् ॥१०३॥

के सामने समस्त देवों से युक्त, सबके आश्रय रूप, गणों से आच्छन्न, विस्तीर्ण और मण्डलाकार था। भगवान् के उस रूप को देखकर दे ता क्रमशः स्तुति करने लगे ॥९५-९७॥

विष्णु बोले—जिसके लोम-छिद्रों में समस्त ब्रह्माण्ड सुस्थित हैं, वह महाविराट् तुम्हारा सोलहवाँ अंश है, तो हम लोगों की क्या गणना है? ॥९८॥

ब्रह्मा बोले—हे ईश्वर! वेद में कहे हुए दृश्य पदार्थ को, जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है, उसी की स्तुति और वर्णन करने में मैं समर्थ हूँ। और जो उससे परे है उसकी क्या स्तुति करूँ? ॥९९॥

महादेव बोले—मैं ज्ञान का अधिष्ठातृ देव हूँ, किन्तु जो ज्ञान से परे, सबसे अनिर्वचनीय, स्वेच्छामय एवं विभु (व्यापक) हैं उनकी क्या स्तुति करूँ? ॥१००॥

धर्म बोले—जिस अदृश्य को अवतार होने पर ही समस्त जीव जन्तु देख सकते हैं, उस तेजःस्वरूप और भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले (देव) की क्या स्तुति करूँ? ॥१०१॥

देवगण बोले—जिनकी स्तुति करने में वेद समर्थ नहीं हैं, सरस्वती भी असमर्थ हैं, उनकी स्तुति करने में आप के कलांश रूप हम लोग समर्थ कैसे हो सकते हैं? ॥१०२॥

मुनिगण बोले—जो वेद के मूल कारण हैं, वाणी-मन से परे हैं और जिनकी स्तुति करने में सरस्वती भी असमर्थ हैं, उनकी स्तुति केवल वेद पढ़ने के नाते हम लोग कैसे कर सकते हैं? ॥१०३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सरस्वत्युवाच

वागधिष्ठातृदेवीं मां वदन्ते वेदवादिनः। किंचिन्न शक्ता त्वां स्तोतुमहो वाङ्मनसोः परम् ॥१०४॥

सावित्र्युवाच

वेदप्रसूरहं नाथ सृष्टा त्वत्कलया पुरा। किं स्तौमि स्त्रीस्वभावेन सर्वकारणकारणम् ॥१०५॥

लक्ष्मीरुवाच

त्वदंशविष्णुकान्ताऽहं जगत्पोषणकारिणी। किं स्तौमि त्वत्कलासृष्टा जगतां बीजकारणम् ॥१०६॥

हिमालय उवाच

हसन्ति सन्तो मां नाथ कर्मणा स्थावरं परम्। स्तोतुं समुद्यतं क्षुद्रः किं स्तौमि स्तोतुमक्षमः ॥१०७॥
क्रमेण सर्वे तं स्तुत्वा देवा विररमुर्मुने। देव्यश्च मुनयः सर्वे पार्वती स्तोतुमुद्यता ॥१०८॥
धौतवस्त्रा जटाभारं बिभ्रती सुव्रता व्रते। प्रेरिता परमात्मानं व्रताराध्यं शिवेन च ॥१०९॥
ज्वलदग्निशिखारूपा तेजोमूर्तिमती सती। तपसां फलदा माता जगतां सर्वकर्मणाम् ॥११०॥

पार्वत्युवाच

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी। के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारकाः ॥१११॥

सरस्वती बोलीं—यद्यपि वेदवादी लोग मुझे वागधिष्ठात्री देवी कहते हैं, किन्तु मैं किञ्चिन्मात्र भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ, क्योंकि आप वाणी और मन से परे हैं ॥१०४॥

सावित्री बोलीं—हे नाथ! मैं वेद-जननी अवश्य हूँ, पूर्वकाल में आपकी कला द्वारा मेरी सृष्टि हुई है, किन्तु स्त्रीस्वभाव वश मैं समस्त कारणों के भी कारण आपकी स्तुति कैसे कर सकती हूँ ? ॥१०५॥

लक्ष्मी बोलीं—मैं आपके अंश से उत्पन्न विष्णु की प्रिया हूँ, सारे जगत् का पालन-पोषण करती हूँ, किन्तु आपकी कला द्वारा मेरा जन्म हुआ है अतः मैं आप की क्या स्तुति कर सकती हूँ जो जगत् के बीज कारण हैं ? ॥१०६॥

हिमालय बोले—हे नाथ! परम स्थावर होने के नाते मेरा सन्त लोग उपहास करते हैं। मैं क्षुद्र हूँ, स्तुति करने के लिए तैयार हूँ किन्तु असमर्थतावश क्या स्तुति करूँ ? ॥१०७॥

हे मुने! इस प्रकार देवगण, देवियों और मुनियों के क्रमशः स्तुति करके चुप हो जाने पर पार्वती स्तुति करने के लिए तैयार हो गयीं, जो उस व्रत में धौत वस्त्र धारण किये, जटाभार से भूषित, सुव्रता, शिव जी द्वारा व्रत के आराध्य देव परमात्मा श्रीकृष्ण की स्तुति के लिए प्रेरित, प्रज्वलित अग्नि की शिखा स्वरूप, मूर्तिमान् तेजोरूप, सती, तप और समस्त कर्मों के फल देने वाली तथा जगज्जननी थीं ॥१०८–११०॥

पार्वती बोलीं—हे कृष्ण! आप मुझे जानते हैं किन्तु मैं आपको जानने में असमर्थ हूँ। वेद जानने वाले, समस्त वेद या वेदकर्ता क्या आपको जानते हैं (अर्थात् कभी नहीं जान सकते) ॥१११॥ जब तुम्हारे अंश तुम्हें नहीं

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

त्वदंशास्त्वां न जानन्ति कथं ज्ञास्यन्ति ते कलाः। त्वं चापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वराः ॥११२॥
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽव्यक्तः स्थूलात्स्थूलतमो महान्। विश्वस्त्वं विश्वरूपश्च विश्वबीजं सनातनः ॥११३॥
कार्यं त्वं कारणं त्वं च कारणानां च कारणम्। तेजःस्वरूपो भगवान्निर्विकारो निराश्रयः ॥११४॥
निर्लिप्तो निर्गुणः साक्षी स्वात्मारामः परात्परः। प्रकृतीशो विराड्बीजं विराड्रूपस्त्वमेव च ॥११५॥
सगुणस्त्वं प्राकृतिकः कलया सृष्टिहेतवे। प्रकृतिस्त्वं पुमांस्त्वं च त्वदन्यो न क्वचिद्भवेत् ॥११६॥
जीवस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मनः प्रतिबिम्बकम्। कर्म त्वं कर्मबीजं त्वं कर्मणां फलदायकः ॥११७॥
ध्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वदीयमशरीरि यत्। केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥११८॥
वैष्णवाश्चैव साकारं कमनीयं मनोहरम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥११९॥
द्विभुजं कमनीयं च किशोरं [1]श्यामसुन्दरम्। शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥१२०॥
एवं तेजस्विनं भक्ताः सेवन्ते संततं मुदा। ध्यायन्ति योगिनो यत्तत्कुतस्तेजस्विनं विना ॥१२१॥
तत्तेजो बिभ्रतां देव देवानां तेजसा पुरा। आविर्भूता सुराणां च वधाय ब्रह्मणा स्तुता ॥१२२॥
नित्या तेजःस्वरूपाऽहं धृत्वा वै विग्रहं विभो। स्त्रीरूपं कमनीयं च विधाय समुपस्थिता ॥१२३॥
मायया तव मायाऽहं मोहयित्वाऽसुरान्पुरा। निहत्य सर्वाञ्छैलेन्द्रमगमं तं हिमालयम् ॥१२४॥

जानते हैं तो कलाएँ कैसे जान सकती हैं? तत्त्व तो तुम्हीं जानते हो क्या अन्य लोग भी जानने में समर्थ हो सकते हैं? (अर्थात् कभी नहीं) ॥११२॥ क्योंकि तुम सूक्ष्म से सूक्ष्म, अव्यक्त (अस्पष्ट), स्थूल से महान् स्थूलतम हो, तुम विश्व हो, विश्व रूप हो, विश्वबीज और सनातन हो ॥११३॥ तुम्हीं कार्य रूप हो, तुम्हीं कारण रूप हो, कारणों के कारण हो, तेजःस्वरूप, भगवान्, निर्विकार, निराश्रय, निर्लिप्त, निर्गुण, साक्षी, अपने आत्मा में रमण करने वाले, परात्पर, प्रकृति के अधीश्वर, विराट्-कारण और तुम्हीं विराट्रूप हो, तुम कला द्वारा सृष्टि रचना के लिए प्राकृतिक एवं सगुण हो। तुम्हीं प्रकृति हो, तुम्हीं पुरुष हो, क्योंकि तुम से अन्य कहीं कुछ है ही नहीं। तुम्हीं जीव, साक्षी के भोगी, अपने आत्मा के प्रतिबिम्ब, कर्म और कर्म के बीज तथा कर्मों के फल प्रदान करने वाले हो। योगी गण तुम्हारे अशरीरी तेज का ध्यान करते हैं। कुछ लोग चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णु का ध्यान करते हैं, जो शान्त, लक्ष्मी के कान्त और मनोहर हैं। वैष्णव लोग उसी साकार, कमनीय (सुन्दर), मनोहर तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म और पीताम्बर धारी परमदेव की उपासना करते हैं ॥११४-११९॥ दो भुजाओं से सुशोभित, कमनीय, किशोर, श्यामसुन्दर, शान्त, गोपिकाओं के कान्त, रत्नों के भूषणों से विभूषित एवं तेजस्वी की भक्तगण हर्ष से निरन्तर सेवा करते हैं। और योगी लोग जिसका ध्यान करते हैं वह तेजस्वी आपके अतिरिक्त दूसरा कौन हो सकता है? ॥१२०-१२१॥ हे देव! उसी (आपके) तेज को धारण करने वाले देवोंके तेज द्वारा मैं पूर्वकाल में असुरों के वधार्थ ब्रह्मा के स्तुति करने पर आविर्भूत हुई थी। हे विभो! मैं नित्य एवं तेजःस्वरूप हूँ, उस समय मैं शरीर धारण करके रमणीय रमणी रूप बनाकर वहाँ उपस्थित हुई ॥१२२-१२३॥ अनन्तर तुम्हारी माया स्वरूपा मैंने उन असुरों को माया द्वारा मोहित करके मार डाला और फिर हिमालय पर चली गई ॥१२४॥

---

१. कामं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ततोऽहं संस्तुता देवैस्तारकाक्षेण पीडितैः। अभवं दक्षजायायां शिवस्त्री पूर्वजन्मनि ॥१२५॥
त्यक्त्वा देहं दक्षयज्ञे शिवाऽहं शिवनिन्दया। अभवं शैलजायायां [1]शैलाधीशस्य कर्मणा ॥१२६॥
अनेकतपसा प्राप्तः शिवश्चात्रापि जन्मनि। पाणिं जग्राह मे योगी प्रार्थितो ब्रह्मणा विभुः ॥१२७॥
शृङ्गारजं च तत्तेजो नालभं देवमायया। स्तौमि त्वामेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता ॥१२८॥
व्रते भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि सांप्रतम्। देवेन विहिता वेदे साङ्गे स्वस्वामिदक्षिणा ॥१२९॥
श्रुत्वा सर्वं कृपासिन्धो कृपां मे कर्तुमर्हसि। इत्युक्त्वा पार्वती तत्र विरराम च नारद ॥१३०॥
भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः। सत्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥१३१॥
संवत्सरं हविष्याशी हरिमभ्यर्च्य भक्तितः। सुपुण्यकव्रतफलं लभते नात्र संशयः ॥१३२॥
कृष्णस्तोत्रमिदं ब्रह्मन्सर्वसंपत्तिवर्धनम्। सुखदं मोक्षदं सारं स्वामिसौभाग्यवर्धनम् ॥१३३॥
सर्वसौन्दर्यबीजं च यशोराशिविवर्धनम्। हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिसुखप्रदम् ॥ ॥१३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रते पतिदाने पार्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

पश्चात् तारकासुर से पीड़ित होने पर देवों ने स्तुति की जिससे मैं पूर्व जन्म में दक्ष की पत्नी में जन्म ग्रहण कर शिव की पत्नी हुई ॥१२५॥ मैं शिवा हूँ अतः दक्ष के यज्ञ में शिव-निन्दा के कारण देह त्यागकर पर्वतराज हिमालय के कर्मवश उनकी पत्नी मेना से प्रकट हुई ॥१२६॥ इस जन्म में भी विप्र एवं योगी शिव ने, अनेक तपस्याएँ करने तथा ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर मेरा पाणिग्रहण किया ॥१२७॥ किन्तु हे ईश! (शिव के साथ विहार करते समय) देव माया से वञ्चित होने के नाते उनके शृंगार जन्य तेज (वीर्य) को प्राप्त न कर सकी। इसी कारण पुत्र-दुःख से दुःखी होकर मैं आप की स्तुति कर रही हूँ ॥१२८॥ इस व्रत में मैं सम्प्रति आप के समान पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ और देवों ने सांग वेद में अपने स्वामी की ही दक्षिणा निरूपित की ॥१२९॥ अतः हे कृपासिन्धो! आप सब कुछ सुनकर मेरे ऊपर कृपा करें। हे नारद! इतना कह कर पार्वती चुप हो गयीं ॥१३०॥ भारत में पार्वती द्वारा किये गये इस स्तोत्र को जो सुसंयत होकर श्रवण करेगा, उसे विष्णु के समान पराक्रमी सत्पुत्र की अवश्य प्राप्ति होगी ॥१३१॥ पूरे वर्ष भर हविष्य का भोजन और भक्तिपूर्वक भगवान् की अर्चना करने पर वह मनुष्य इस सुपुण्यक व्रत का फल अवश्य प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥१३२॥ हे ब्रह्मन्! कृष्ण का यह स्तोत्र ; समस्त सम्पत्तियों का वर्द्धक, सुख और मोक्ष का दायक, सार रूप, स्वामी का सौभाग्यवर्द्धक, समस्त सौन्दर्य का कारण, कीर्ति-राशि की वृद्धि करने वाला, हरिभक्ति तत्त्वज्ञान बुद्धि एवं सुख देने वाला भी है ॥१३३-१३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत पुण्यक व्रत के प्रसङ्ग में पतिदान के अवसर पर पार्वती कृत श्रीकृष्ण-स्तोत्र कथन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

१क. शैलजा च स्वक०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथाष्टमोऽध्यायः

नारायण उवाच

पार्वत्याः स्तवनं श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः। स्वरूपं दर्शयामास सर्वादृश्यं सुदुर्लभम् ॥१॥
स्तुत्वा देवी ध्यानपरा कृष्णसंलग्नमानसा। ददर्श तेजसां मध्ये स्वरूपं सर्वमोहनम् ॥२॥
सद्रत्नसाररचिते हीरकेण परिष्कृते। युक्ते माणिक्यमालाभी रत्नपूर्णे मनोरमे ॥३॥
पीतांशुकं वह्निशुद्धं वरं वंशकरं परम्। वनमालागलं श्यामं रत्नभूषणभूषितम् ॥४॥
किशोरवयसं चित्रवेषं वै चन्दनाङ्कितम्। चारुस्मितास्यमीड्यं तच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ॥५॥
मालतीमाल्यसंयुक्तं केकिपिच्छावचूडकम्। गोपाङ्गनापरिवृतं राधावक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥६॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम्। अतीव हृष्टं सर्वेष्टं भक्तानुग्रहकारकम् ॥७॥
दृष्ट्वा रूपं रूपवती पुत्रं तदनुरूपकम्। मनसा वरयामास वरं संप्राप्य तत्क्षणम् ॥८॥
वरं दत्त्वा वरेशस्तु यद्यन्मनसि वाञ्छितम्। दत्त्वाऽभीष्टं सुरेभ्यश्च तत्तेजोऽन्तरधीयत ॥९॥
कुमारं बोधयित्वा तु देवा देव्यै दिगम्बरम्। ददुर्निरुपमं तत्र प्रहृष्टायै कृपान्विताः ॥१०॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ दुर्गा रत्नानि विविधानि च। सुवर्णानि च भिक्षुभ्यो बन्दिभ्यो विश्ववन्दिता ॥११॥

अध्याय ८

गणेशजन्म का वर्णन

नारायण बोले—पार्वती की ऐसी स्तुति सुनकर करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने स्वरूप का दर्शन दिया, जो सबके लिए अदृश्य और अति दुर्लभ है ॥१॥ श्रीकृष्ण में अपना चित्त लगाये हुई ध्यानपरायण देवी (पार्वती) ने तेज के मध्य सब को मोहित करनेवाला स्वरूप देखा, जो उत्तम रत्न के सार भाग से रचित और हीरे जड़े हुए, रत्नपूर्ण, मनोरम, माणिक्य-माला से सुशोभित, अग्नि-विशुद्ध पीताम्बर धारण किये, उत्तम, परम वंश कारक, गले में वनमाला से भूषित, श्यामल, रत्नों के भूषणों से सुशोभित, किशोरावस्था वाला, विचित्रवेष, चन्दन-चर्चित, सुन्दर मन्द मुसुकान युक्त मुख, जिससे शारदीय चन्द्रमा तिरस्कृत हो रहा था, मालती माला पहने, (मुकुट में) मोरपंख की चूडा बनाये, गोपिकाओं से घिरे, राधा को वक्षःस्थल में लगाने से उज्ज्वल, करोड़ों काम के लावण्य की शोभा का धाम, मनोहर, अतिहर्षित, सभी के अभीष्ट और भक्तों पर अनुग्रह करने वाला था ॥२-७॥ रूपवती पार्वती ने उस रूप को देख कर उन्हीं के अनुरूप पुत्र की अभिलाषा मन से प्रकट की और उसी क्षण उन्हें वरदान भी प्राप्त हो गया ॥८॥ वरेश भगवान् श्रीकृष्ण, जो तेजःस्वरूप थे, देवताओं का भी मनोरथ पूरा करके वहीं अन्तर्हित हो गये ॥९॥ सनत्कुमार को समझाकर कृपालु देवों ने अति हर्षित पार्वती को निरुपम शिव लौटा दिया। अनन्तर विश्ववन्दिता दुर्गा ने ब्राह्मणों को विविध-भाँति के रत्न तथा भिक्षुकों और बन्दियों को सुवर्ण प्रदान किया। ब्राह्मणों, देवों और पर्वतों को भोजन कराया तथा परमोत्तम उप-

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्राह्मणान्भोजयामास देवान्वै पर्वतांस्तथा। शंकरं पूजयामास चोपहारैरनुत्तमैः ॥१२॥
दुन्दुभिं वादयामास कारयामास मङ्गलम्। संगीतं गाययामास हरिसंबन्धि सुन्दरम् ॥१३॥
व्रतं समाप्य सा दुर्गा दत्त्वा दानानि सस्मिता। सर्वांश्च भोजयित्वा तु बुभुजे स्वामिना सह ॥१४॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। क्रमात्प्रदाय सर्वेभ्यो बुभुजे तेन कौतुकात् ॥१५॥
पयःफेननिभां शय्यां रम्यां सद्रत्नमञ्चके। पुष्पचन्दनसंयुतां कस्तूरीकुङ्कुमान्विताम्।
रहसि स्वामिना सार्धं सुष्वाप परमेश्वरी ॥१६॥
कैलासस्यैकदेशे च रम्ये चन्दनकानने। सुगन्धिकुसुमाढ्येन वायुना सुरभीकृते ॥१७॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुताश्रये। व्यहार्षीत्सा सुरसिका तत्र तेन सहाम्बिका ॥१८॥
रेतःपतनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया। विधाय विप्ररूपं तदाजगाम रतेर्गृहम् ॥१९॥
जटाबन्तं विना तैलं कुचैलं भिक्षुकं मुने। अतीव शुक्लदशनं तृष्णया परिपीडितम् ॥२०॥
अतीव कृशगात्रं च बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्। बहुकाकुस्वरं दीनं दैन्यात्कुत्सितमूर्तिमत् ॥२१॥
आजुहाव महादेवमतिवृद्धोऽन्नयाचकः। दण्डावलम्बनं कृत्वा रतिद्वारेऽतिदुर्बलः ॥२२॥

हारों द्वारा शंकर जी की पूजा की ॥१०-१२॥ नगाड़ा बजवाया, मंगल कराया एवं भगवत्सम्बन्धी सुन्दर संगीत गान कराया ॥१३॥ इस प्रकार व्रत समाप्त करके और दान देने के उपरान्त दुर्गा ने मन्द मुसकान करती हुई सबको भोजन कराया। अनन्तर स्वयं भी स्वामी शिव के साथ भोजन किया ॥१४॥ कपूर आदि से सुवासित एवं परम रम्य ताम्बूल क्रमशः सबको देकर उसी कौतुक से स्वयं भी खाया ॥१५॥ पश्चात् परमेश्वरी ने उत्तम रत्न के बने पलंग पर दूध के फेन के समान उज्ज्वल, रमणीक, पुष्प-चन्दन से युक्त और कस्तूरी-कुंकुम से समन्वित शय्या पर पति के साथ एकान्त में शयन किया ॥१६॥ फिर कैलाश के एक भाग में रमणीक चन्दनवन में, जो सुगन्धित पुष्पों से सम्पन्न वायु से सुगन्धित, भौरों की ध्वनियों से गुंजित और नर कोकिल के सुन्दर-वाणी बोलने का एकमात्र आश्रय था; सुरसिका अम्बिका शिव के साथ विहार करने लगीं ॥१७-१८॥ किन्तु वीर्य स्खलित होने के समय वे विष्णु विष्णुमाया के द्वारा ब्राह्मण का वेष बना कर उनके रतिगृह के द्वार पर आ पहुँचे ॥१९॥ हे मुने! उनका रूप भिक्षुक ब्राह्मण का था, जो बिना तेल के जटा भार लिये, फटे-पुराने वस्त्र एवं अत्यन्त शुक्ल दाँत वाले तथा तृष्णा (प्यास) से अति पीड़ित थे ॥२०॥ वे क्षीणकाय, अति उज्ज्वल तिलक धारी, शोकाकुल स्वर वाले और दैन्य से कुत्सित मूर्तिमान् लग रहे थे ॥२१॥ अन्न की याचना करने वाले एवं अति दुर्बल उस अतिवृद्ध ने डंडे के सहारे रतिगृह के दरवाजे पर पहुँच कर महादेव जी को बुलाया ॥२२॥

---

१ क. रत्ननिर्मिताम्।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्राह्मण उवाच

किं [1]करोषि महादेव रक्ष मां शरणागतम्। सप्तरात्रिव्रतेऽतीते पारणाकाङ्क्षिणं क्षुधा ॥२३॥
किं [1]करोषि महादेव हे तात करुणानिधे। पश्य वृद्धं जराग्रस्तं तृषया परिपीडितम् ॥२४॥
मातरुत्तिष्ठ मेऽन्नं त्वं प्रयच्छाद्य शिवं जलम्। अनन्तरत्नोद्भवजे रक्ष मां शरणागतम् ॥२५॥
मातर्मातर्जगन्मातरेहि नाहं जगद्बहिः। सीदामि तृषया कस्मात्स्थितायामात्ममातरि ॥२६॥
इति काकुस्वरं श्रुत्वा शिवस्योत्तिष्ठतो मुने। पपात वीर्यं शय्यायां न योनौ प्रकृतेस्तदा ॥२७॥
उत्तस्थौ पार्वती त्रस्ता सूक्ष्मवस्त्रं पिधाय च। आजगाम [2]बहिर्द्वारं पार्वत्या सह शंकरः ॥२८॥
ददर्श ब्राह्मणं दीनं जरया परिपीडितम्। वृद्धं लुलितगात्रं च बिभ्रतं दण्डमानतम् ॥२९॥
तपस्विनमशान्तं च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम्। कुर्वन्तं परया भक्त्या प्रणामं स्तवनं तयोः ॥३०॥
श्रुत्वा तद्वचनं तत्र नीलकण्ठः सुधोपमम्। उवाच परया [3]प्रीत्या प्रसन्नस्तं प्रहस्य च ॥३१॥

शंकर उवाच

गृहं ते कुत्र विप्रर्षे वद वेदविदां वर। किं नाम भवतः क्षिप्रं ज्ञातुमिच्छामि सांप्रतम् ॥३२॥

पार्वत्युवाच

आगतोऽसि कुतो विप्र मम भाग्यादुपस्थितः। अद्य मे सफलं जन्म ब्राह्मणो मद्गृहेऽतिथिः ॥३३॥

ब्राह्मण बोले—हे महादेव! क्या कर रहे हो? मुझ शरणागत की रक्षा करो। मैं सात रात वाला व्रत करके क्षुधा से पीड़ित होकर भोजन करना चाहता हूँ ॥२३॥ हे महादेव; हे तात! हे करुणानिधे! क्या कर रहे हो? वृद्धावस्था से ग्रस्त एवं प्यास से अत्यन्त पीड़ित मुझ वृद्ध की ओर देखो ॥२४॥ हे मातः! उठो! तुम मुझे कल्याणप्रद जल और अन्न प्रदान करो। हे अनन्तरत्नों के उद्भव-स्थान हिमालय की पुत्री! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा करो ॥२५॥ हे मातः! हे मातः! हे जगन्मातः! आओ। मैं संसार से बाहर नहीं हूँ। अपनी माता के रहते हुए भी मैं तृष्णा से अति पीड़ित हो रहा हूँ ॥२६॥ हे मुने! इस प्रकार के शोकाकुल शब्द सुनने पर शिव के उठते समय उनका वीर्य शय्या पर ही गिर गया प्रकृति दुर्गा के गर्भ में नहीं ॥२७॥ अनन्तर त्रस्त होकर पार्वती भी सूक्ष्म वस्त्र पहन कर शंकर के साथ दरवाजे पर आयीं ॥२८॥ शिव ने ब्राह्मण को देखा, जो दीन, बुढ़ापे से दुःखी, वृद्ध, हिलती-डुलती देह वाला, तपस्वी, अशान्त, झुके दण्ड धारण करने वाला, सूखा कण्ठ, ओंठ एवं तालू वाला था और उन दोनों की परा भक्ति के साथ प्रणाम व स्तुति कर रहा था ॥२९-३०॥ नीलकंठ (शिव) ने उसकी अमृतोपम वाणी सुनकर बड़े प्रेम से हँसकर उससे कहा ॥३१॥

शंकर बोले—हे विप्रर्षे! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! तुम्हारा घर कहां है? और आप का नाम क्या है, मैं शीघ्र जानना चाहता हूँ ॥३२॥

पार्वती बोलीं—हे विप्र! मेरे भाग्य से तुम यहाँ आये हो, कहाँ से आ रहे हो? आज मेरा जन्म सफल

---

१ क. ०रोमि। २ क. ०रोमि। ३ क. रतिद्वा०। ४ क. भक्त्या प्र०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अतिथिः पूजितो येन त्रिजगत्तेन पूजितम्। तत्रैवाधिष्ठिता देवा ब्राह्मणा गुरवो द्विज ॥३४॥
तीर्थान्यतिथिपादेषु शश्वत्तिष्ठन्ति निश्चितम्। तत्पादधौततोयेन मिश्रितानि लभेद्गृही ॥३५॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। अतिथिः पूजितो येन स्वात्मशक्त्या यथोचितम् ॥३६॥
महादानानि सर्वाणि कृतानि तेन भूतले। अतिथिः पूजितो येन भारते भक्तिपूर्वकम् ॥३७॥
नानाप्रकारपुण्यानि वेदोक्तानि च यानि वै। तानि वैऽतिथिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३८॥
अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्तते। पितृदेवाग्नयः पश्चाद्गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥३९॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। तानि सर्वाणि[1] लभते नाभ्यर्च्यातिथिमीप्सितम् ॥४०॥

ब्राह्मण उवाच

जानासि वेदान्वेदज्ञे वेदोक्तं कुरु पूजनम्। क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो मातर्वचनं च श्रुतौ श्रुतम् ॥४१॥
व्याधियुक्तो निराहारो यदा वाऽनशनव्रती। मनोरथेनोपहारं भोक्तुमिच्छति मानवः ॥४२॥

पार्वत्युवाच

भोक्तुमिच्छसि किं विप्र त्रैलोक्ये यत्सुदुर्लभम्। दास्यामि भोक्तुं त्वामद्य मज्जन्म सफलं कुरु ॥४३॥

हो गया। मेरे घर ब्राह्मण, अतिथि रूप में पधारे हैं ॥३३॥ हे द्विज! क्योंकि जिसने अतिथि की पूजा की; उसने तीनों लोकों की पूजा की। देव, ब्राह्मण और गुरु लोग वहीं निवास करते हैं ॥३४॥ अतिथि के चरणों में तीर्थगण निश्चित निवास करते हैं। गृहस्थ उनके चरण-प्रक्षालित जल मिश्रित तीर्थों को प्राप्त करता है ॥३५॥ अतः जिसने अपनी शक्ति के अनुसार अतिथि की यथोचित अर्चना की है वह समस्त तीर्थों में स्नान और समस्त यज्ञों में दीक्षित हो चुका ॥३६॥ वह पृथिवी पर सभी महादान कर चुका जिसने भारत में भक्तिपूर्वक अतिथि की पूजा की ॥३७॥ वेद में कहे हुए अनेक भाँति के जितने पुण्य हैं, वे और अन्य भी अतिथि-सेवा के सोलहवें भाग के समान भी नहीं हैं ॥३८॥ इसलिए अतिथि जिसके घर से बिना पूजित हुए चला जाता है, उसके पितर, देव, अग्नि और पश्चात् गुरु भी अपूजित ही रहकर चले जाते हैं ॥३९॥ अभीष्ट अतिथि का पूजन न करने पर ब्रह्महत्या आदि सभी पापों का भागी होना पड़ता है ॥४०॥

ब्राह्मण बोला—हे वेदज्ञे! तुम वेदों को जानती हो, अतः वेदानुसार पूजन करो। हे मातः! मैं क्षुधा और तृषा (प्यास) से अतिपीड़ित हो रहा हूँ। मैंने वेदों में यह सुना है कि—रोगी, भूखा और अनशन का व्रती मनुष्य मनचाहा भोजन करना चाहता है ॥४१-४२॥

पार्वती बोलीं—हे विप्र! तुम क्या खाना चाहते हो? तीनों लोकों में जो अति दुर्लभ हो, वही भोजन तुम्हें कराऊँगी, मेरा जन्म सुफल करो ॥४३॥

---

१ क. ०णि नश्यन्ते नाभ्यर्च्यातिथिपूजनात्।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्राह्मण उवाच

व्रते सुव्रतया सर्वमुपहारं समाहृतम्। नानाविधं मिष्टमिष्टं भोक्तुं श्रुत्वा समागतः ॥४४॥
सुव्रते तव पुत्रोऽहमग्रे मां पूजयिष्यसि। दत्त्वा मिष्टानि वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च ॥४५॥
ताताः पञ्चविधाः प्रोक्ता मातरो विविधाः स्मृताः। पुत्रः पञ्चविधः साध्वि कथितो वेदवादिभिः ॥४६॥
विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः। कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः ॥४७॥
गुरुपत्नी गर्भधात्री स्तनदात्री पितुःस्वसा। स्वसा मातुः सपत्नी च पुत्रभार्याऽन्नदायिका ॥४८॥
भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः। धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति ॥४९॥
क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो मातर्वृद्धोऽहं शरणागतः। सांप्रतं तव वन्ध्याया अनाथः पुत्र एव च ॥५०॥
पिष्टकं परमान्नं च सुपक्वानि फलानि च। नानाविधानि पिष्टानि कालदेशोद्भवानि च ॥५१॥
पक्वान्नं स्वस्तिकं क्षीरमिक्षुमिक्षुविकारजम्। घृतं दधि च शाल्यन्नं घृतपक्वं च व्यञ्जनम् ॥५२॥
लड्डुकानि तिलानां च मिष्टान्नैः सगुडानि च। समाज्ञातानि वस्तूनि सुधया तुल्यकानि च ॥५३॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। जलं सुनिर्मलं स्वादु द्रव्याण्येतानि वासितम् ॥५४॥
द्रव्याणि यानि भुक्त्वा मे चारु लम्बोदरं भवेत्। अनन्तरत्नोद्भवजे तानि मह्यं प्रदास्यसि ॥५५॥
स्वामी ते त्रिजगत्कर्ता प्रदाता सर्वसंपदाम्। महालक्ष्मीस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ॥५६॥

ब्राह्मण बोला—हे सुव्रते! मैंने सुना है कि—इस व्रत में उत्तम व्रत वाली आपने सभी प्रकार का भोजन एकत्रित किया है, अतः अनेक भाँति के मिष्टान्न भोजन करने आया हूँ ॥४४॥ हे सुव्रते! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, तीनों लोकों में अतिदुर्लभ मिष्टान्न देकर सर्वप्रथम मेरा पूजन करो ॥४५॥ हे साध्वि! पिता पाँच प्रकार के बताये गये हैं, मातायें अनेक होती हैं और पुत्र पाँच प्रकार के होते हैं, वेदवादियों ने ऐसा कहा है ॥४६॥ विद्या देने वाला, अन्न-दाता, भय-रक्षक, जन्मदाता, और कन्यादाता, वेदानुसार मनुष्यों के ये पाँच प्रकार के पिता होते हैं ॥४७॥ गुरुपत्नी, गर्भ में धारण करने वाली, स्तन पिलाने वाली, पिता की भगिनी, माता की भगिनी सपत्नी (सौतेली मां) पुत्र की स्त्री, और भोजन देने वाली मनुष्यों की मातायें होती हैं ॥४८॥ सेवक, शिष्य, पोष्य अपने वीर्य से उत्पन्न और शरणागत ये पाँच पुत्र कहलाते हैं, जिनमें चार धर्मपुत्र कहलाते हैं और अपने वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र धन का भागी होता है ॥४९॥ हे मातः! मैं क्षुधा-तृषा से पीड़ित, वृद्ध और तुम्हारा शरणागत हूँ, इस समय तुम वन्ध्या का अनाथ पुत्र हूँ ॥५०॥ पूड़ी, खीर, पके फल, आटे के बने हुए नाना प्रकार के पदार्थ, कालदेशानुसार उत्पन्न हुई वस्तुएँ, पक्वान्न, स्वस्तिक, दूध, ऊख के रस और उससे बने पदार्थ, घृत, दही, साठी चावल का भात, घृतपक्व व्यञ्जन, तिलों के लड्डू, गुड़ों के मिष्टान्न, और जिन्हें मैं नहीं जानता, वे अमृतोपम वस्तुएँ भी तथा कर्पूरादि से सुवासित उत्तम रम्य ताम्बूल, निर्मल एवं सुस्वादु जल तथा हे शैलेजे!, मुझे ये सभी वस्तुएँ और अन्य वस्तुएँ भी प्रदान करो, जिन्हें खाकर मैं सुन्दर लम्बोदर हो जाऊँ ॥५१–५५॥तुम्हारा स्वामी तीनों लोकों का कर्ता और समस्त सम्पत्ति का प्रदाता है और तुम समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने वाली महालक्ष्मी हो ॥५६॥ रमणीय रत्नसिंहासन, अमूल्य रत्नों के भूषण, अतिदुर्लभ अग्नि-

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रत्नसिंहासनं रम्यममूल्यं रत्नभूषणम्। वह्निशुद्धांशुकं चारु प्रदास्यसि सुदुर्लभम् ॥५७॥
सुदुर्लभं हरेर्मन्त्रं हरौ भक्तिं दृढां सति। हरिप्रिया हरेः शक्तिस्त्वमेव सर्वदा स्थिता ॥५८॥
ज्ञानं मृत्युंजयं नाम दातृशक्तिं सुखप्रदाम्। सर्वसिद्धिं च किं मातरदेयं स्वसुताय च ॥५९॥
मनः सुनिर्मलं कृत्वा धर्मे तपसि संततम्। श्रेष्ठे सर्वं करिष्यामि न कामे जन्महेतुके ॥६०॥
स्वकामात्कुरुते कर्म कर्मणो भोग एव च। भोगौ शुभाशुभौ ज्ञेयौ तौ हेतू सुखदुःखयोः ॥६१॥
दुःखं न कस्माद्भवति सुखं वा जगदम्बिके। सर्वं स्वकर्मणो भोगस्तेन तद्विरतो बुधः ॥६२॥
कर्म निर्मूलयन्त्येव सन्तो हि सततं मुदा। हरिभावनबुद्ध्या तत्तपसा भक्तसङ्गतः ॥६३॥
इन्द्रियद्रव्यसंयोगसुखं विध्वंसनावधि। हरिसंलापरूपं च सुखं तत्सार्वकालिकम् ॥६४॥
हरिस्मरणशीलानां नाऽऽयुर्याति सतां सति। न तेषामीश्वरः कालो न च मृत्युंजयो ध्रुवम् ॥६५॥
चिरं जीवन्ति ते भक्ता भारते चिरजीविनः। सर्वसिद्धिं च विज्ञाय स्वच्छन्दं सर्वगामिनः ॥६६॥
जातिस्मरा हरेर्भक्ता जानते कोटिजन्मनः। कथयन्ति कथां जन्म लभन्ते स्वेच्छया मुदा ॥६७॥
परं पुनन्ति ते पूतास्तीर्थानि स्वीयलीलया। पुण्यक्षेत्रेऽत्र सेवायै परार्थं च भ्रमन्ति ते ॥६८॥
वैष्णवानां पदस्पर्शात्सद्यः पूता वसुंधरा। कालं गोदोहमात्रं तु तीर्थे यत्र वसन्ति ते ॥६९॥
गुरोरास्याद्विष्णुमन्त्रः श्रुतौ यस्य प्रविश्यति। तं वैष्णवं तीर्थपूतं प्रवदन्ति पुराविदः ॥७०॥

विशुद्ध वस्त्र, अति दुर्लभ भगवान् का मंत्र और हरि की दृढ़भक्ति देने की कृपा करो, क्योंकि तुम भगवान् की प्रिया और उनकी शक्ति होकर सदा स्थित रहती हो ॥५७-५८॥ मृत्युञ्जयज्ञान, सुख देने वाली दातृशक्ति तथा सब सिद्धियाँ दो और, हे माता !, अपने पुत्र के लिए क्या अदेय है ? हे श्रेष्ठे ! धर्म एवं तप में अपने मन को अतिस्वच्छ करके मैं सब कुछ करूँगा, परन्तु जन्म देनेवाली कामनाओं के वश में नहीं होऊँगा ॥५९-६०॥ अपनी कामना के अनुसार कर्म किया जाता है और कर्मफल भोग किया जाता है और भोग शुभ अशुभ (भला-बुरा) दो प्रकार के होते हैं, जो सुख और दुःख के हेतु हैं ॥६१॥ हे जगदम्बिके ! न किसी से दुःख होता है और न किसी से सुख, अपने कर्मों का सब भोग है। इसीलिए पण्डित उससे (कामना से) विरत (उदासीन) रहते हैं ॥६२॥ भगवान् में प्रेम करने वाली बुद्धि, तप और भक्तों के संसर्ग से सन्त महात्मा निरन्तर प्रसन्नचित्त होकर कर्म का निर्मूलन ही करते रहते हैं ॥६३॥ क्योंकि इन्द्रियों और उनके विषयों के संयोग से उत्पन्न सुख नश्वर होता है और भगवान् के कीर्तन रूप सुख सभी कालों में विद्यमान रहता है ॥६४॥ हे सती ! भगवान् का भजन करने वाले सज्जनों की आयु नष्ट नहीं होती है। काल उन पर अधिकार नहीं कर सकता है और न मृत्युञ्जय ही कर सकते हैं ॥६५॥ भारत में वे भक्तलोग चिरजीवी होते हैं और समस्त सिद्धि प्राप्त कर वे स्वतंत्रतापूर्वक सब स्थानों में आते-जाते हैं ॥६६॥ भगवान् के भक्तों को पिछले जन्मों का स्मरण बना रहता है, इसीलिए वे करोड़ों जन्मों की बातें जानते हैं, उनकी कथा कहते रहते हैं और प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छया जन्म ग्रहण करते हैं ॥६७॥ वे अति पुनीत होते हैं और अपनी लीला से तीर्थों को पवित्र करते हैं। इस पुण्य क्षेत्र में वे दूसरे की सेवा के लिए भ्रमण किया करते हैं ॥६८॥ जिस तीर्थ में वैष्णवगण गोदोहन काल तक ठहर जाते हैं उनके चरण-स्पर्श होने से यह पृथ्वी तुरन्त पवित्र हो जाती है ॥६९॥ क्योंकि गुरु के मुख

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पुरुषाणां शतं पूर्वमुद्धरन्ति शतं परम्। लीलया भारते भक्त्या सोदरान्मातरं तथा ॥७१॥
मातामहानां पुरुषान्दश पूर्वान्दशापरान्। मातुः प्रसूमुद्धरन्ति दारुणाद्यमताडनात् ॥७२॥
भक्तदर्शनमाश्लेषं मानवाः प्राप्नुवन्ति ये। ते स्नाताः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षिताः ॥७३॥
न लिप्ताः पातकैर्भक्ताः संततं हरिमानसाः। यथाऽग्नयः सर्वभक्ष्या यथा द्रव्येषु वायवः ॥७४॥
त्रिकोटिजन्मनामन्ते प्राप्नोति जन्म मानवम्। प्राप्नोति भक्तसङ्गं स मानुषे कोटिजन्मतः ॥७५॥
भक्तसङ्गाद्भवेद्भक्तेरङ्कुरो जीविनः सति। अभक्तदर्शनादेव स च प्राप्नोति शुष्कताम् ॥७६॥
पुनः प्रफुल्लतां याति वैष्णवालापमात्रतः। अङ्कुरश्चाविनाशी च वर्धते प्रतिजन्मनि ॥७७॥
तत्तरोर्वर्धमानस्य हरिदास्यं फलं सति। परिणामे भक्तिपाके पार्षदश्च भवेद्धरेः ॥७८॥
महति प्रलये नाशो न भवेत्तस्य निश्चितम्। सर्वसृष्टेश्च संहारे ब्रह्मलोकस्य वेधसः ॥७९॥
तस्मान्नारायणे भक्तिं देहि मामम्बिके सदा। न भवेद्विष्णुभक्तिश्च विष्णुमाये त्वया विना ॥८०॥
तद्व्रतं लोकशिक्षार्थं तत्तपस्तव पूजनम्। सर्वेषां फलदात्री त्वं नित्यरूपा सनातनी ॥८१॥
गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवाऽऽत्मजः। त्वत्क्रोडमागतः क्षिप्रमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥८२॥

से भगवान् विष्णु का मन्त्र जिसके कर्ण-विवर में प्रविष्ट होता है, उसे पुरावेत्ताओं ने तीर्थ के समान पवित्र वैष्णव कहा है ॥७०॥ भारत में भक्त लोग अपने पूर्वजों की सौ पीढ़ियों और भावी सौ पीढ़ियों का उद्धार अनायास करते हैं, उसी भाँति सोदर भ्राता, माता तथा मातामह (नाना) कुल की पूर्व और पर की दश-दश पीढ़ियों समेत नानी का भीषण यमताड़न से उद्धार करते हैं ॥७१-७२॥ जो मानव भक्त का दर्शन और आलिंगन करते हैं वे मानो समस्त तीर्थों की यात्रा और सभी यज्ञों में दीक्षित हो चुके ॥७३॥ हरि का निरन्तर ध्यान करने वाले भक्त कभी पातकों से लिप्त नहीं होते हैं जैसे सर्वभक्षी अग्नि और द्रव्यों (पृथिवी, जल, तेज आदि) में वायु किसी से लिप्त नहीं होते ॥७४॥ तीन करोड़ जन्मों के पश्चात् मानव-जन्म प्राप्त होता है और करोड़ों जन्मों में मानव को भक्तों का सत्संग मिलता है ॥७५॥ हे सती ! भक्तों के सत्संग से भक्ति का अंकुर उत्पन्न होता है, जो अभक्तों के दर्शन से सूख जाता है ॥७६॥ पर पुनः वह वैष्णवों के साथ वार्तालाप होने पर प्रफुल्लित हो जाता है क्योंकि वह अंकुर अनश्वर होता है और प्रत्येक जन्म में वृद्धि प्राप्त करता है ॥७७॥ हे सती ! उस वृक्ष के बड़े होने पर उसमें भगवान् का दास्य रूप फल लगता है और परिणाम में भक्ति के पकने (दृढ़ होने) पर वह भगवान् का पार्षद हो जाता है ॥७८॥ फिर महान् प्रलय में भी जबकि ब्रह्मा समेत ब्रह्मलोक आदि समस्त सृष्टि का संहार हो जाता है, उसका नाश नहीं होता है, यह सुनिश्चित है ॥७९॥ हे अम्बिके ! इसलिए हमें भगवान् की भक्ति सदा देने की कृपा करो। हे विष्णुमाये ! विना तुम्हारी कृपा के भगवान् की भक्ति नहीं होती है ॥८०॥ तुम्हारा अपना व्रत, अपना तप और पूजन करना लोक शिक्षार्थ होता है, क्योंकि तुम सभी लोगों को फल प्रदान करने वाली, नित्यरूपा और सनातनी हो ॥८१॥ प्रत्येक कल्प में भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे गणेश रूप पुत्र होते हैं और वे शीघ्र ही (पुत्र बनकर) तुम्हारी गोद में आ रहे हैं, यह कह कर ब्राह्मण अन्तर्हित हो गया ॥८२॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कृत्वाऽन्तर्धानमीशश्च बालरूपं विधाय सः। जगाम पार्वतीतल्पं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम् ॥८३॥
तल्पस्थे शिववीर्ये च मिश्रितः स बभूव ह। ददर्श गेहशिखरं प्रसूते बालके यथा ॥८४॥
शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः। सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्धकः ॥८५॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः। मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ॥८६॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके। ओष्ठाधरपुटं बिभ्रत्पक्वबिम्बविनिन्दकम् ॥८७॥
कपालं च कपोलं च परमं सुमनोहरम्। नासाग्रं रुचिरं बिभ्रद्वैन्द्रचञ्चुविनिन्दकम् ॥८८॥
त्रैलोक्ये वै निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम्। शयानः शयने रम्ये प्रेरयन्हस्तपादकम् ॥८९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरौ तिरोहिते शर्वाणी दुर्गा शंकरस्तदा। ब्राह्मणान्वेषणं कृत्वा बभ्राम परितो मुने ॥१॥

पार्वत्युवाच

अये विप्रेन्द्रातिवृद्ध क्व गतोऽसि क्षुधातुरः। हे तात दर्शनं देहि प्राणान्वै रक्ष मे विभो ॥२॥

इतना कहकर वे अन्तर्हित हो गये ॥८२॥ भगवान् ने अन्तर्धान होकर अपना बाल रूप बनाया और मन्दिर के भीतर स्थित पार्वती की शय्या पर शिव के वीर्य में मिश्रित हो गये और प्रसूत बालक की भाँति ऊपर मन्दिर-कलश की ओर देखने लगे ॥८३-८४॥ वे शुद्ध चम्पा के समान वर्ण वाले, करोड़ों चन्द्रमा की भाँति कान्ति वाले, सभी लोगों के देखने में सुखप्रद और नेत्र-ज्योति के वर्द्धक, अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले, काम को भी मोहित करने वाले तथा शारदीय चन्द्रमा से भी श्रेष्ठ मुख वाले थे। उनके, रम्य कमल को निन्दित करने वाले युगलनयन, पके बिम्बाफल को तिरस्कृत करने वाला अधरबिम्ब, परम मनोहर कपोल और कपाल तथा तोते की चोंच को तिरस्कृत करने वाली नाक थी। इस भाँति निरुपम समस्त अंगों को धारण किये वे सुन्दर शय्या पर पड़े-पड़े अपने हाथों और पैरों को चला रहे थे ॥८६-८९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में गणेशोत्पत्ति-वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

अध्याय ९

बाल गणेश का दर्शन

नारायण बोले—हे मुने! भगवान् के अन्तर्हित होने पर पार्वती दुर्गा और शंकर ने ब्राह्मण की खोज में चारों ओर भ्रमण करना आरम्भ किया ॥१॥

पार्वती बोलीं—हे अतिवृद्ध विप्रेन्द्र! तुम बहुत भूखे थे, कहाँ चले गये हो? हे तात! हे विभो! मुझे दर्शन देकर मेरे प्राणों की रक्षा करो ॥२॥ हे शिव! शीघ्र उठो और ब्राह्मण की खोज करो। क्षण मात्र ही

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

शिव शीघ्र समुत्तिष्ठ ब्राह्मणान्वेषणं कुरु। क्षणमुन्मनसोरेष गतः प्रत्यक्षमावयोः ॥३॥
अगृहीत्वा गृहात्पूजां गृहिणोऽतिथिरीश्वरः। यदि याति क्षुधार्तश्च तस्य किं जीवनं वृथा ॥४॥
पितरस्तन्न गृह्णन्ति पिण्डदानं च तर्पणम्। तस्याऽऽहुतिं न गृह्णाति वह्निः पुष्पं जलं सुराः ॥५॥
हव्यं पुष्पं जलं द्रव्यमशुचेश्च सुरासमम्। अमेध्यसदृशः पिण्डः स्पर्शनं पुण्यनाशनम् ॥६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। कैवल्ययुक्ता सा दुर्गा तां शुश्राव शुचाऽऽतुरा ॥७॥
शान्ता भव जगन्मातः स्वसुतं पश्य मन्दिरे। कृष्णं गोलोकनाथं तं परिपूर्णतमं परम् ॥८॥
सुपुण्यकव्रततरोः फलरूपं सनातनम्। यत्तेजो योगिनः शश्वद्ध्यायन्ति संततं मुदा ॥९॥
ध्यायन्ति वैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः। यस्य पूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पे च पूजनम् ॥१०॥
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति। पुण्यराशिस्वरूपं च स्वसुतं पश्य मन्दिरे ॥११॥
कल्पे कल्पे ध्यायसि यं ज्योतीरूपं सनातनम्। पश्य त्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१२॥
तव वाञ्छापूर्णबीजं तपःकल्पतरोः फलम्। सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम् ॥१३॥
नायं विप्रः क्षुधार्तश्च विप्ररूपी जनार्दनः। किंवा विलापं कुरुषे क्व वा वृद्धः क्व चातिथिः ॥
सरस्वती त्वेवमुक्त्वा विरराम च नारद ॥१४॥
त्रस्ता श्रुत्वाऽऽकाशवाणीं जगाम स्वालयं सती। ददर्श बालं पर्यङ्के शयानं सस्मितं मुदा ॥१५॥

उन्मन रहते हुए दोनों के वे प्रत्यक्ष हुए थे ॥३॥ हे ईश्वर! किसी गृहस्थ के घर से बिना पूजा (सम्मान) ग्रहण किये अतिथि यदि भूखा और प्यासा चला जाता है, तो उस (गृहस्थ) का व्यर्थ जीवन किस काम का होता है ॥४॥ क्योंकि पितर लोग उसके हाथ का पिण्डदान और तर्पण, अग्नि उसकी दी हुई आहुति और देवगण उसके हाथ का पुष्प एवं जल नहीं ग्रहण करते हैं ॥५॥ उसका हव्य, पुष्प, जल और द्रव्य मद्य की भाँति अशुद्ध हो जाता है, पिण्ड अपवित्र की भाँति रहता है, और उसका स्पर्श करने से पुण्य-नाश होता है ॥६॥ इसी बीच आकाश वाणी हुई, जिसे कैवल्य (पद) युक्ता दुर्गा ने, जो शोकाकुल हो रही थीं, सुना ॥७॥ हे जगन्मातः! शान्त हो जाओ, भवन में जाकर अपने पुत्र का दर्शन करो, जो गोलोकनाथ, परिपूर्णतम परमोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप है ॥८॥ वह सुपुण्यक नामक व्रत वृक्ष का सनातन फल रूप है, जिस के तेज का योगी लोग प्रसन्न चित्त से निरन्तर ध्यान करते रहते हैं ॥९॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि वैष्णव देवगण प्रत्येक कल्प में सभी देवों के पहले जिसकी पूजा करते हैं ॥१०॥ जिसके स्मरण मात्र से समस्त विघ्नों का नाश हो जाता है, पुण्य राशि स्वरूप उस अपने पुत्र को मन्दिर में जाकर देखो ॥११॥ प्रत्येक कल्प में तुम जिस सनातन ज्योतिरूप का ध्यान करती हो, उसी मुक्ति देने वाले पुत्र को देखो, जो भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण किये हुए हैं ॥१२॥ वह तुम्हारी अभिलाषा-पूर्ति का बीज एवं तपरूपी कल्पवृक्ष का फल है। अपने उस सुन्दर पुत्र को देखो, जो करोड़ों काम को विनिन्दित कर रहा है ॥१३॥ वह भूखा-प्यासा ब्राह्मण नहीं था, ब्राह्मण वेष में भगवान् जनार्दन थे। अतः क्यों विलाप कर रही हो? कहाँ वह वृद्ध रहा और कहाँ वह अतिथि है। हे नारद! इतना कहकर वह वाणी सरस्वती चुप हो गयीं ॥१४॥ भयभीत दुर्गा ने आकाशवाणी सुनकर अपने भवन में जाकर पलंग पर लेटे और मुसकराते हुए बालक को देखा ॥१५॥ वह गृह-कलश की ओर ताक रहा था,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पश्यन्तं गेहशिखरं शतचन्द्रसमप्रभम् । स्वप्रभापटलेनैव द्योतयन्तं महीतलम् ॥१६॥
कुर्वन्तं भ्रमणं तल्पे पश्यन्तं स्वेच्छया मुदा। उमेति शब्दं कुर्वन्तं रुदन्तं तं स्तनार्थिनम् ॥१७॥
दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं त्रस्ता शंकरसंनिधिम्। गत्वा सोवाच गिरिशं सर्वमङ्गलमङ्गला ॥१८॥

पार्वत्युवाच

गृहमागच्छ सर्वेश तपसां फलदायकम्। कल्पे कल्पे ध्यायसि यं तं पश्याऽऽगत्य मन्दिरे ॥१९॥
शीघ्रं पुत्रमुखं पश्य पुण्यबीजं महोत्सवम् । पुंनामनरकत्राणं कारणं भवतारणम् ॥२०॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । पुत्रसंदर्शनस्यास्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२१॥
सर्वदानेन यत्पुण्यं क्ष्माप्रदक्षिणतश्च यत्। पुत्रदर्शनपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२२॥
सर्वैस्तपोभिर्यत्पुण्यं यदेवानशनैर्व्रतैः। सत्पुत्रोद्भवपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२३॥
यद्विप्रभोजनैः पुण्यं यदेव सुरसेवनैः। सत्पुत्रप्राप्तिपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२४॥
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा शिवः संहृष्टमानसः। अजगाम स्वभवनं क्षिप्रं वै कान्तया सह ॥२५॥
ददर्श तल्पे स्वसुतं तप्तकाञ्चनसंनिभम् । हृदयस्थं च यद्रूपं तदेवातिमनोहरम् ॥२६॥
दुर्गा तल्पात्समादाय कृत्वा वक्षसि तं सुतम्। चुचुम्बाऽऽनन्दजलधौ निमग्ना सेत्युवाचतम् ॥२७॥

सैकड़ों चन्द्रमा के समान उसकी कान्ति थी और अपने कान्ति-समूह से पृथ्वीतल को प्रकाशित कर रहा था ॥१६॥ उस शय्या पर इधर-उधर लोट-पोट कर प्रसन्नचित्त से स्वेच्छया देख रहा था तथा दुग्ध-पान के लिए रोदन करते हुए उमा शब्द कह रहा था ॥१७॥ समस्त मंगलों का मंगल करने वाली गौरी बालक का ऐसा अद्भुत रूप देखकर तुरन्त शंकर के पास गयीं और कहने लगीं ॥१८॥

पार्वती बोलीं—हे सर्वेश ! घर चलो और प्रत्येक कल्प में जिस तप-फल-दाता का नित्य ध्यान करते हो उसको मन्दिर में चल कर देखो ॥१९॥ शीघ्र पुत्र का मुख देखो, जो पुण्य का कारण, महान् उत्सव रूप, पुंनाम नरक से बचाने का एकमात्र कारण और संसार से तारने वाला है ॥२०॥ समस्त तीर्थों का स्नान, समस्त यज्ञों की दीक्षा ग्रहण करना इस पुत्रदर्शन की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है ॥२१॥ समस्त दान तथा समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वह पुत्र-दर्शन-पुण्य की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है ॥२२॥ समस्त तप और व्रतोपवास द्वारा जितने पुण्य की प्राप्ति होती है, वह उत्तम पुत्र के जन्म-पुण्य की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होती है ॥२३॥ ब्राह्मण-भोजन और देवों की सेवा द्वारा जो पुण्य प्राप्त होता है वह उत्तम पुत्र की प्राप्तिरूप पुण्य की सोलहवीं कला के समान नहीं होता है ॥२४॥ पार्वती की बातें सुनकर शंकर का चित्त अति प्रसन्न हो गया, अनन्तर अपनी कान्ता के साथ शीघ्र वे अपने भवन में आये और शय्या पर तपाये सुवर्ण की भाँति गौरवर्ण अपने पुत्र को देखा, जो हृदयस्थित रूप से भी अति मनोहर था। ॥२५-२६॥ दुर्गा ने शय्या से पुत्र को उठाकर अपनी गोद में ले लिया और आनन्द-सागर में निमग्न होकर उसका चुम्बन किया, अनन्तर उससे कहा—

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

संप्राप्तामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम्। यथा मनो दरिद्रस्य सहसा प्राप्य सद्धनम् ॥२८॥
कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा। मानसं परिपूर्णं च बभूव च तथा मम ॥२९॥
सुचिरं गतमायान्तमेकपुत्रा यथा सुतम्। दृष्ट्वा तुष्टा यथा वत्स तथाऽहमपि सांप्रतम् ॥३०॥
सद्रत्नं सुचिरं भ्रष्टं प्राप्य हृष्टो यथा जनः। अनावृष्टौ सुवृष्टिं च संप्राप्याहं तथा सुतम् ॥३१॥
यथा सुचिरमन्धानां स्थितानां च निराश्रये। चक्षुः सुनिर्मलं प्राप्य मनः पूर्णं तथैव मे ॥३२॥
दुस्तरे सागरे घोरे पतितस्य च संकटे। अनौकस्य प्राप्य नौकां मनः पूर्णं तथा मम ॥३३॥
तृष्णया शुष्ककण्ठानां सुचिराच्च सुशीतलम्। सुवासितं जलं प्राप्य मनः पूर्णं तथा मम ॥३४॥
दावाग्निपतितानां च स्थितानां च निराश्रये। निरग्निमाश्रयं प्राप्य मनः पूर्णं तथा मम ॥३५॥
चिरं बुभुक्षितानां च व्रतोपोषणकारिणाम्। सदन्नं पुरतो दृष्ट्वा मनः० ॥३६॥
इत्युक्त्वा पार्वती तत्र क्रोडे कृत्वा स्वबालकम्। प्रीत्या स्तनं ददौ तस्मै परमानन्दमानसा ॥३७॥
क्रोडे चकार भगवान्बालकं हृष्टमानसः। चुचुम्ब गण्डे वेदोक्तं युयुजे चाऽऽशिषं मुदा ॥३८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० बालगणेशदर्शनं
नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

जिस प्रकार दरिद्र का मन सहसा उत्तम धन प्राप्त करके प्रफुल्लित होता है, उसी भाँति मैंने अमूल्य रत्न के रूप में तुम्हें प्राप्त किया है, तुम्हीं पूर्ण सनातन हो ॥२७-२८॥ जिस प्रकार चिरकाल तक परदेश में रहकर आये हुए पति को पाकर स्त्री का मन आनन्द से भर जाता है, उसी प्रकार मेरा मन भी आनन्द से परिपूर्ण हो रहा है ॥२९॥ जिस प्रकार एक पुत्र वाली स्त्री चिरकाल से गये हुए अपने पुत्र के आने पर उसे देखकर सन्तुष्ट हो जाती है उसी प्रकार इस समय मैं भी सन्तुष्ट हो रही हूँ ॥३०॥ चिरकाल का खोया हुआ उत्तमरत्न पाकर और अनावृष्टि के बाद सुवृष्टि होने पर मनुष्य जैसे हर्षित होता है, वैसे ही पुत्र पाकर मैं हर्षित हो रही हूँ ॥३१॥ चिरकाल के आश्रयहीन अन्धे को निर्मल नेत्र प्राप्त होने की भाँति मेरा मन पूर्ण प्रसन्न हो गया है ॥३२॥ घोर दुस्तर सागर में गिरे हुए नौकाहीन पुरुष को संकटकाल में तुरन्त नौका मिल जाने की भाँति मेरा मन पूर्ण प्रसन्न हो गया है ॥३३॥ प्यास से चिरकाल से सूखे हुए कण्ठ वाले मनुष्य को अतिशीतल और सुवासित जल प्राप्त होने पर जिस प्रकार उसका मन पूर्ण प्रसन्न हो जाता है उसी प्रकार मेरा मन प्रसन्न हो रहा है ॥३४॥ दावाग्नि में पड़े हुए आश्रयहीन पुरुष को अग्निरहित उत्तम स्थान प्राप्त होने पर जैसे उसका मन पूर्ण आनन्दमग्न हो जाता है वैसे ही मेरा मन आनन्दमग्न हो रहा है ॥३५॥ व्रत में उपवास करने वाले पुरुष को, जो चिरकाल से अति क्षुधापीड़ित हो रहा हो, सामने उत्तम भोजन देखकर जिस प्रकार आनन्द होता है उसी भाँति मेरा मन आनन्द से पूर्ण है ॥३६॥ इतना कहकर पार्वती ने अपने बच्चे को गोदी में रखकर परमानन्दमग्न चित्त से उसे स्तनपान कराया। अनन्तर शिव ने भी उसे गोद में रखकर अतिप्रसन्नता से उसका कपोल चुम्बन किया और वेदोक्त आशीर्वाद प्रदान किया ॥३७-३८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में बाल-गणेश-दर्शन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दशमोऽध्यायः

तौ दम्पती बहिर्गत्वा पुत्रमङ्गलहेतवे। विविधानि च रत्नानि द्विजेभ्यो ददतुर्मुदा ॥१॥
बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च दानानि विविधानि च। नानाविधानि वाद्यानि वादयामास शंकरः ॥२॥
हिमालयश्च रत्नानां ददौ लक्षं द्विजातये। सहस्रं च गजेन्द्राणामश्वानां च त्रिलक्षकम् ॥३॥
दशलक्षं गवां चैव पञ्चलक्षं सुवर्णकम्। मुक्तामाणिक्यरत्नानि मणिश्रेष्ठानि यानि च ॥४॥
अन्यान्यपि च दानानि वस्त्राण्याभरणानि च। सर्वाण्यमूल्यरत्नानि क्षीरोदोत्पत्तिकानि च ॥५॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ विष्णुः कौस्तुभं कौतुकान्वितः। ब्रह्मा विशिष्टदानानि विप्राणां वाञ्छितानि च ॥
सुदुर्लभानि सृष्टौ च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥६॥
धर्मः सूर्यश्च शक्रश्च देवाश्च मुनयस्तथा। गन्धर्वाः पर्वता देव्यो ददुर्दानं क्रमेण च ॥७॥
तापसानां सहस्राणि रुचकानां शतानि च। शतानि गन्धसाराणां मणीन्द्राणां च नारद ॥८॥
माणिक्यानां सहस्राणि रत्नानां च शतानि च। शतानि कौस्तुभानां च हीरकाणां शतानि च ॥
हरिद्वर्णमणीन्द्राणां सहस्राणि मुदाऽन्विताः ॥९॥
गवां रत्नानि लक्षाणि गजरत्नसहस्रकम्। अमूल्यान्यश्वरत्नानि श्वेतवर्णानि कौतुकात् ॥१०॥
शतलक्षं सुवर्णानां वह्निशुद्धांशुकानि च। ब्राह्मणेभ्यो ददौ ब्रह्मा तत्र क्षीरोदधिर्मुदा ॥११॥
हारं चामूल्यरत्नानां त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। अतीव निर्मलं सारं सूर्यभानुविनिन्दकम् ॥१२॥
परिष्कृतं च माणिक्यैर्हीरकैश्च विराजितम्। रम्यं कौस्तुभमध्यस्थं ददौ देवी सरस्वती ॥१३॥

अध्याय १०

गणेश-जन्मोत्सव

नारायण बोले—उन दोनों दम्पति ने बाहर दरवाजे पर पुत्र के मंगलार्थ ब्राह्मणों को अनेक भाँति के रत्न प्रदान किये ॥१॥ बन्दीगण और भिक्षुकों को भी अनेक भाँति के दान दिये और शंकर ने अनेक प्रकार के बाजे बजवाये ॥२॥ हिमालय ने एक लाख रत्न ब्राह्मणों को दान दिये तथा एक सहस्र गजेन्द्र, तीन लाख घोड़े, दस लाख गौएँ, पाँच लाख सुवर्ण, मोती, माणिक्य, रत्न, अन्य श्रेष्ठ मणियाँ, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, क्षीरसागर से उत्पन्न अमूल्य रत्न तथा अन्य प्रकार के दान प्रदान किये। विष्णु ने कौतुकवश कौस्तुभ का दान ब्राह्मणों को अर्पित किया। ब्रह्मा ने सुप्रसन्न होकर ब्राह्मणों को उनके अभिलषित विशिष्ट दान से सन्तुष्ट किया, जो उनकी सृष्टि में अति दुर्लभ था ॥३-६॥ इसी प्रकार धर्म, सूर्य और इन्द्र आदि देव, मुनिवृन्द, गन्धर्वगण, पर्वत एवं देवियों ने क्रमशः ब्राह्मणों को दान प्रदान किया ॥७॥ एक सहस्र माणिक्य, सौ रत्न, सौ कौस्तुभ मणि, सौ हीरे, एक सहस्र नीलमणि, एक लाख गौएँ, एक लाख रत्न, एक सहस्र उत्तम गज, श्वेत वर्ण के अमूल्य घोड़े, सौ लाख सुवर्ण, अग्निविशुद्ध वस्त्र ब्राह्मणों को ब्रह्मा ने प्रदान किये। क्षीरसागर ने अमूल्य रत्नों का हार, जो तीनों लोकों में दुर्लभ, अतिनिर्मल, ठोस सूर्य-किरण को तिरस्कृत करनेवाला, परिष्कृत, माणिक्य और हीरों से सुशोभित, रम्य एवं मध्य भाग में कौस्तुभ मणि से विभूषित था

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

त्रैलोक्यसारं हारं च सद्रत्नगणनिर्मितम्। भूषणानि च सर्वाणि सावित्री च ददौ मुदा ॥१४॥
लक्षं सुवर्णलोष्टानां धनानि विविधानि च। शतान्यमूल्यरत्नानां कुबेरश्च ददौ मुदा ॥१५॥
दानानि दत्त्वा विप्रेभ्यस्ते सर्वे ददृशुः शिशुम्। परमानन्दसंयुक्ताः शिवपुत्रोत्सवे मुने ॥१६॥
भारं वोढुमशक्ताश्च ब्राह्मणा बन्दिस्तथा। स्थायंस्थायं च गच्छन्तो धनानि पथि कातराः ॥१७॥
कथयन्ति कथाः सर्वे विश्रान्ताः पूर्वदायिनाम्। वृद्धाः शृण्वन्ति मुदिता युवानो भिक्षुका मुने ॥१८॥
विष्णुः प्रमुदितस्तत्र वादयामास दुन्दुभिम्। संगीतं गापयामास कारयामास नर्तनम् ॥१९॥
वेदांश्च पाठयामास पुराणानि च नारद। मुनीन्द्रानानयामास पूजयामास तान्मुदा ॥२०॥
आशिषं दापयामास कारयामास मङ्गलम्। सार्धं देवैश्च देवीभिर्ददौ तस्मै शुभाशिषः ॥२१॥

विष्णुरुवाच

शिवेन तुल्यं ज्ञानं ते परमायुश्च बालक। पराक्रमे मया तुल्यः सर्वसिद्धीश्वरो भव ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

यशसा ते जगत्पूर्णं सर्वपूज्यो भवाचिरम्। सर्वेषां पुरतः पूजा भवत्वतिसुदुर्लभा ॥२३॥

धर्म उवाच

मया तुल्यः सुधर्मिष्ठो भवान्भवतु दुर्लभः। सर्वज्ञश्च दयायुक्तो हरिभक्तो हरेः समः ॥२४॥

सरस्वती देवी ने ऐसा हार प्रदान किया, जो तीनों लोकों का सारभाग तथा, उत्तम रत्नों से सुरचित था। सावित्री ने प्रेम से समस्त आभूषण अर्पित किये ॥८-१४॥ कुबेर ने प्रसन्न होकर एक लाख सुवर्ण की ईंटें, अनेक भाँति के धन और सौ अमूल्य रत्न दान किये ॥१५॥ हे मुने! शिव के पुत्रोत्सव में इस प्रकार ब्राह्मणों को दान देने के उपरान्त उन सब ने परमानन्द मग्न होकर बच्चे का दर्शन किया ॥१६॥ उस समय ब्राह्मणगण और बन्दी वृन्द दान के धन से बोझिल होने के नाते मार्ग में कातर होकर धीरे-धीरे चल रहे थे ॥१७॥ हे मुने! वे लोग विश्राम करते हुए पूर्वदाताओं की कथा भी कर रहे थे, जिसे वृद्ध, युवा सभी भिक्षुक आदि सप्रेम सुन रहे थे ॥१८॥ हे नारद! विष्णु ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजवाये, संगीत और नाच कराया, वेदों और पुराणों का पाठ कराया, मुनीन्द्रों को बुलाकर प्रसन्नतापूर्वक उनकी अर्चना की और उनके द्वारा बच्चे को मंगल आशीर्वाद दिलवाया। उनके साथ देवों और देवियों ने भी शुभाशीर्वाद प्रदान किया ॥१९-२१॥

विष्णु बोले—हे बालक! शिव के समान तुम्हारा ज्ञान और परमायु हो, मेरे समान पराक्रम हो और समस्त सिद्धियों के अधीश्वर हो जाओ ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे यश से समस्त जगत् आच्छन्न हो, शीघ्र ही सबके पूज्य बनो और सभी लोगों के पहले तुम्हारी अति दुर्लभ पूजा हो ॥२३॥

धर्म बोले—मेरे समान आप दुर्लभ धर्मात्मा हों, सर्वज्ञ, दयालु, हरिभक्त और भगवान् के समान हों ॥२४॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

महादेव उवाच

दाता भव मया तुल्यो हरिभक्तश्च बुद्धिमान्। विद्यावान्पुण्यवाञ्छान्तो दान्तश्च प्राणवल्लभ ॥२५॥

लक्ष्मीरुवाच

मम स्थितिश्च गेहे ते देहे भवतु शाश्वती। पतिव्रता मया तुल्या शान्ता कान्ता मनोहरा ॥२६॥

सरस्वत्युवाच

मया तुल्या सुकविता धारणाशक्तिरेव च। स्मृतिर्विवेचनाशक्तिर्भवत्वतितरां सुत ॥२७॥

सावित्र्युवाच

वत्साहं वेदजननी वेदज्ञानी भवाचिरम्। मन्मन्त्रजपशीलश्च प्रवरो वेदवादिनाम् ॥२८॥

हिमालय उवाच

श्रीकृष्णे ते मतिः शश्वद्भक्तिर्भवतु शाश्वती। श्रीकृष्णतुल्यो गुणवान्भव कृष्णपरायणः ॥२९॥

मेनकोवाच

समुद्रतुल्यो गाम्भीर्ये कामतुल्यश्च रूपवान्। श्रीयुक्तः श्रीपतिसमो धर्मे धर्मसमो भव ॥३०॥

वसुंधरोवाच

क्षमाशीलो मया तुल्यः शरण्यः सर्वरत्नवान्। निर्विघ्नो विघ्ननिघ्नश्च भव वत्स शुभाश्रयः ॥३१॥

महादेव बोले—हे प्राणप्रिय ! मेरे समान दाता, हरिभक्त, बुद्धिमान्, विद्यावान्, पुण्यवान्, शान्त और दमनशील हो ॥२५॥

लक्ष्मी बोलीं—तुम्हारे देह-गेह में मेरी निरन्तर स्थिति रहेगी, मेरे ही समान पतिव्रता, मनोहर और शान्ता स्त्री तुम्हें मिलेगी ॥२६॥

सरस्वती बोलीं—हे सुत ! मेरे समान उत्तम कविता, अत्यन्त धारणा-शक्ति, स्मरण-शक्ति और विवेचन-शक्ति हो ॥२७॥

सावित्री बोलीं—हे वत्स ! मैं वेदमाता हूँ, तुम शीघ्र वेदज्ञानी हो, मेरा मंत्र जप करने का स्वभाव और वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हो ॥२८॥

हिमालय बोले—भगवान् श्रीकृष्ण में तुम्हारी मति अतिशय निरन्तर लगी रहे, उनकी शाश्वती भक्ति तुम्हें प्राप्त हो, उनके समान गुणवान् हो और कृष्णपरायण हो ॥२९॥

मेनका बोली—समुद्र के तुल्य गम्भीर, काम के समान रूपवान्, विष्णु के समान श्रीयुक्त और धर्म के समान धार्मिक हो ॥३०॥

वसुन्धरा बोली—हे वत्स ! मेरे समान क्षमाशील, शरणप्रद, समस्तरत्नयुक्त, विघ्नरहित, विघ्नविनाशक और शुभसदन हो ॥३१॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पार्वत्युवाच

ततुल्यो महायोगी सिद्धः सिद्धिप्रदः शुभः। मृत्युंजयश्च भगवान्भवत्वतिविशारदः ॥३२॥
ऋषयो मुनयः सिद्धा सर्वे युयुजुराशिषः। ब्राह्मणा बन्दिनश्चैव युयुजुः सर्वमङ्गलम् ॥३३॥
सर्वं ते कथितं वत्स सर्वमङ्गलमङ्गलम्। गणेशजन्मकथनं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥३४॥
इमं सुमङ्गलाध्यायं यः शृणोति सुसंयतः। सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलालयः ॥३५॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम्। कृपणो लभते सत्त्वं शश्वत्संपत्प्रदायि च ॥३६॥
भार्यार्थी लभते भार्यां प्रजार्थी लभते प्रजाम्। आरोग्यं लभते रोगी सौभाग्यं दुर्भगा लभेत् ॥३७॥
भ्रष्टपुत्रं नष्टधनं प्रोषितं च प्रियं लभेत्। शोकाविष्टः सदाऽऽनन्दं लभते नात्र संशयः ॥३८॥
यत्पुण्यं लभते मर्त्यो गणेशाख्यानकश्रुतौ। तत्फलं लभते नूनमध्यायश्रवणान्मुने ॥३९॥
अयं च मङ्गलाध्यायो यस्य गेहे च तिष्ठति। सदा मङ्गलसंयुक्तः स भवेन्नात्र संशयः ॥४०॥
यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः। सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशोद्भवमङ्गलं
नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

पार्वती बोलीं—पिता के समान महायोगी, सिद्ध, सिद्धिदायक, शुभ, ऐश्वर्य सम्पन्न मृत्युञ्जय तथा अतिविशारद हों। अनन्तर ऋषियों, मुनियों और सिद्धों ने शुभाशिष प्रदान किया। ब्राह्मणों और बन्दियों ने समस्त मंगल प्रदान किया ॥३२-३३॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने गणेश-जन्म तुम्हें सुना दिया, जो समस्त मंगलों का मंगल और समस्त विघ्नों का विनाशक है ॥३४॥ इस मंगलाध्याय का जो संयमपूर्वक श्रवण करता है, वह समस्त मंगलों से युक्त एवं मंगलों का आश्रय होता है ॥३५॥ पुत्रहीन को पुत्र, निर्धन को धन तथा कृपण को सत्त्व की प्राप्ति होती है और निरन्तर सम्पत्ति भी। स्त्री चाहने वाले को स्त्री, प्रजार्थी को प्रजा, रोगी को आरोग्य, अभागे को सौभाग्य प्राप्त होता है ॥३६-३७॥ उसी प्रकार खोये हुए पुत्र की प्राप्ति, नष्ट धन की प्राप्ति और प्रवासी प्रिय की प्राप्ति होती है। शोकाकुल को सदा आनन्द प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥३८॥ हे मुने! गणेश जी के आख्यान के सुनने से मनुष्य को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है वह पुण्य इस अध्याय के सुनने से भी निश्चय प्राप्त होता है ॥३९॥ और यह मंगलाध्याय जिसके घर में विराजमान रहता है वह सदा मंगलयुक्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥४०॥ यात्रा के समय और पुण्य दिवस में सावधान होकर जो इसे सुनता है, वह श्रीगणेश की कृपा से सब अभीष्ट प्राप्त करता है ॥४१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
गणेशोद्भवमंगल नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथैकादशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिस्तमाशिषं कृत्वा रत्नसिंहासने वरे। देवैश्च मुनिभिः सार्धमवसत्तत्र संसदि ॥१॥
दक्षिणे शंकरस्तस्य वामे ब्रह्मा प्रजापतिः। पुरतो जगतां साक्षी धर्मो धर्मवतां वरः ॥२॥
तथा धर्मसमीपे च सूर्यः शक्रः कलानिधिः। देवाश्च मुनयो ब्रह्मन्नूषुः शैलाः सुखासने ॥३॥
ननर्त नर्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिंनराः। श्रुतिसारं श्रुतिसुखं तुष्टुवुः श्रुतयो हरिम् ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र द्रष्टुं शंकरनन्दनम्। आजगाम महायोगी सूर्यपुत्रः शनैश्चरः ॥५॥
अत्यन्तनम्रवदन ईषन्मुद्रितलोचनः। अन्तर्बहिः स्मरन्कृष्णं कृष्णैकगतमानसः ॥६॥
तपःफलाशी[1] तेजस्वी ज्वलदग्निशिखोपमः। अतीव सुन्दरः श्यामः पीताम्बरधरो वरः ॥७॥
प्रणम्य विष्णुं ब्रह्माणं शिवं धर्मं रविं सुरान्। मुनीन्द्रान्बालकं द्रष्टुं जगाम तदनुज्ञया ॥८॥
प्रधानद्वारमासाद्य शिवतुल्यपराक्रमम्। द्वाःस्थं वै शूलहस्तं च विशालाक्षमुवाच ह ॥९॥

अध्याय ११

शनैश्चर के साथ पार्वती का कथोपकथन

नारायण बोले—उस बालक को शुभाशिष प्रदान करके भगवान् विष्णु देवों और मुनियों समेत सभा-मध्य में उत्तम रत्न-सिंहासन पर विराजमान हुए ॥१॥ उनके दाहिने भाग में शंकर, बायें भाग में प्रजापति ब्रह्मा, सामने जगत् के साक्षी एवं धार्मिकों में सर्वश्रेष्ठ धर्म स्थित हुए ॥२॥ हे ब्रह्मन्! धर्म के समीप सूर्य, इन्द्र, कलानिधि (चन्द्र), देव, मुनि और पर्वतगण उस स्थान पर सुखासीन हुए ॥३॥ नृत्य करने वालों की श्रेणी (अप्सरायें) नृत्य करने लगी, गन्धर्व और किन्नर गान करने लगे और श्रुतियाँ वेद के तत्त्व भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगीं, जो सुनने में अति मधुर लग रही थी ॥४॥ इसी बीच शंकर-नन्दन (गणेश) को देखने के लिए सूर्य के पुत्र महायोगी शनैश्चर आये ॥५॥ वे अत्यन्त नीचे मुख किये, नेत्र को थोड़ा मूंदे हुए एवं भगवान् कृष्ण में दत्तचित्त होकर बाहर-भीतर सभी ओर कृष्ण का स्मरण कर रहे थे ॥६॥ वे तपःफल का उपभोग करने वाले तेजस्वी, प्रज्वलित अग्नि की शिखा के समान, अति सुन्दर श्याम वर्ण और पीताम्बर से भूषित थे ॥७॥ विष्णु, ब्रह्मा, शिव, धर्म, सूर्य आदि देवों और मुनियों को प्रणाम कर शनि उनकी आज्ञा से बालक के दर्शनार्थ गये ॥८॥ प्रधान दरवाजे पर पहुँचकर द्वारपाल विशालाक्ष से, जो शिव के समान पराक्रमी और हाथ में शूल लिये था, शनि ने कहा ॥९॥

---

१ क ०लानि संयम्य ज्व०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

शनैश्चर उवाच

शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शंकरकिंकर। विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः ॥१०॥
आज्ञां देहि च मां गन्तुं पार्वतीसंनिधिं बुध। पुनर्यामि शिशुं दृष्ट्वा विषयासक्तमानसः ॥११॥

विशालाक्ष उवाच

आज्ञावहो न देवानां नाहं शंकरकिंकरः। मार्गं दातुं न शक्तोऽहं विना मन्मातुराज्ञया ॥१२॥
इत्युक्त्वाऽभ्यन्तरभ्येत्य प्रेरितः स शिवाज्ञया। ददौ मार्गं ग्रहेशाय विशालाक्षो मुदा ततः ॥१३॥
शनिरभ्यन्तरं गत्वा चाननन्नम्रकंधरः। रत्नसिंहासनस्थां च पार्वतीं सस्मितां मुदा ॥१४॥
सखिभिः पञ्चभिः शश्वत्सेवितां श्वेतचामरैः। सखिदत्तं च ताम्बूलमुपभुज्य सुवासितम् ॥१५॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्। पश्यन्तीं नर्तकीनृत्यं पुत्रं धृत्वा च वक्षसि ॥१६॥
नतं सूर्यसुतं दृष्ट्वा दुर्गा संभाष्य सत्वरम्। शुभाशिषं ददौ तस्मै पृष्ट्वा तन्मङ्गलं शुभम् ॥१७॥

पार्वत्युवाच

कथमानम्रवक्त्रस्त्वं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम्। किं न पश्यसि मां साधो बालकं वा ग्रहेश्वर ॥१८॥

शनिरुवाच

सर्वे स्वकर्मणा साध्वि भुञ्जते तपसः फलम्। शुभाशुभं च यत्कर्म कोटिकल्पैर्न लुप्यते ॥१९॥

शनैश्चर बोले—हे शंकर के सेवक! शिव जी की आज्ञा और विष्णु आदि देवों और मुनियों के अनुरोध से मैं बालक के दर्शनार्थ जा रहा हूँ ॥१०॥ अतः हे विद्वान्! पार्वती के समीप जाने के लिए मुझे आज्ञा प्रदान करो! मैं बच्चे को देखकर पुनः लौट आऊँगा क्योंकि मेरा चित्त सदैव विषयों में ही लगा रहता है ॥११॥

विशालाक्ष बोले—मैं देवताओं का आज्ञाकारी नहीं हूँ और न शंकर का भृत्य हूँ। बिना अपनी माता की आज्ञा लिये मार्ग देने में असमर्थ हूँ ॥१२॥ इतना कहकर वह भीतर चला गया और पार्वती जी की आज्ञा लेकर विशालाक्ष ने हर्ष से शनि को आगे जाने दिया ॥१३॥ भीतर जाकर शनि ने कन्धा झुकाये, मुसकराती हुई पार्वती को, जो रत्नसिंहासन पर सुशोभित थीं, नमस्कार किया ॥१४॥ पाँच सखियाँ श्वेत चामर डुलाती हुई, पार्वती की निरन्तर सेवा कर रही थीं। और पार्वती जी सखी के दिये हुए सुवासित पान चबा रही थीं तथा जो अग्निशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित और रत्नों के भूषणों से भूषित होकर गोद में बालक लिए अप्सराओं का नृत्य देख रही थीं ॥१५-१६॥ सूर्य-पुत्र शनि को नीचे मुख किये देखकर दुर्गा ने बड़ी शीघ्रता से कहा—और शुभाशीर्वाद देकर उससे कुशल-मंगल पूछा ॥१७॥

पार्वती बोलीं—हे साधो! हे ग्रहेश्वर! तुम नीचे मुख क्यों किये हो, मैं सुनना चाहती हूँ। मेरे पुत्र की ओर तुम क्यों नहीं देखते हो? ॥१८॥

शनि बोले—हे साध्वि! सभी लोग अपने-अपने कर्मों के फल भोगते हैं। जो शुभ-अशुभ कर्म किया हुआ रहता है, वह करोड़ों कल्प व्यतीत होने पर भी लुप्त नहीं होता है ॥१९॥ कर्मवश जीव ब्रह्मा, इन्द्र और सूर्य के भवन में जन्म

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कर्मणा जायते जन्तुर्ब्रह्मेन्द्रार्यममन्दिरे। कर्मणा नरगेहेषु पश्वादिषु च कर्मणा॥२०॥
कर्मणा नरकं याति वैकुण्ठं याति कर्मणा। स्वकर्मणा च राजेन्द्रो भृत्यश्चापि स्वकर्मणा॥२१॥
कर्मणा सुन्दरः शश्वद्व्याधियुक्तः स्वकर्मणा। कर्मणा विषयी मातर्निर्लिप्तश्च स्वकर्मणा॥२२॥
कर्मणा धनवाँल्लोको दैन्ययुक्तः स्वकर्मणा। कर्मणा सत्कुटुम्बी च कर्मणा बन्धुकण्टकः॥२३॥
सुभार्यश्च सुपुत्रश्च सुखी शश्वत्स्वकर्मणा। अपुत्रकश्च कुस्त्रीको निस्त्रीकश्च स्वकर्मणा॥२४॥
इतिहासं चातिगोप्यं शृणु शंकरवल्लभे। अकथ्यं जननीपार्श्वे लज्जाजननकारणम्॥२५॥
आ बाल्यात्कृष्णभक्तोऽहं कृष्णध्यानैकमानसः। तपस्यासु रतः शश्वद्विषयेऽपि रतः सदा॥२६॥
पिता ददौ विवाहे तु कन्यां चित्ररथस्य च। अतितेजस्विनी शश्वत्तपस्यासु रता सती॥२७॥
एकदा सा त्वृतुस्नाता सुवेषं स्वं विधाय च। रत्नालंकारसंयुक्ता मुनिमानसमोहिनी॥२८॥
हरेः पादं ध्यायमानं मां मां पश्येत्युवाच ह। मत्समीपं समागत्य सस्मिता लोललोचना॥२९॥
शशाप मामपश्यन्तमृतुनाशाच्च कोपतः। बाह्यज्ञानविहीनं च ध्यानसंलग्नमानसम्॥३०॥
न दृष्टाऽहं त्वया येन न कृतं ह्यृतुरक्षणम्। त्वया दृष्टं च यद्वस्तु मूढ सर्वं विनश्यति॥३१॥

ग्रहण करता है, कर्म द्वारा मनुष्यों के घर और कर्म के ही कारण पश्वादि योनियों में जाता है॥२०॥ कर्म से नरकगामी होता है और कर्म से ही वैकुण्ठ जाता है। अपने ही कर्म से महाराज और अपने ही कर्म के कारण भृत्य (सेवक) होता है॥२१॥ कर्म से सुन्दर और अपने ही कर्मवश रोगी तथा हे मातः! कर्म से ही विषयी और अपने ही कर्म से निर्लिप्त होता है॥२२॥ कर्म से लोग धनवान् होते हैं और अपने कर्म के कारण ही दीन होते हैं। कर्म से उत्तम परिवार और कर्म से ही काँटे के समान बन्धु वाला होता है॥२३॥ अपने ही कर्म से निरन्तर उत्तम स्त्री और उत्तम पुत्र की प्राप्ति होती है तथा स्वयं सुखी रहता है। अपने ही कर्म से निपूत, दुष्टा स्त्री वाला अथवा स्त्रीरहित होता है॥२४॥ हे शंकरवल्लभे! एक अति गुप्त इतिहास सुनो, जो लज्जाजनक होने के कारण माता के सामने कहने योग्य नहीं है॥२५॥ मैं बाल्यावस्था से ही भगवान् कृष्ण का भक्त हूँ, उन्हीं के एकमात्र ध्यान में चित्त को लगाये रहता हूँ, उन्हीं के जप में निरन्तर लगा रहता हूँ और विषयों में भी सदा रत रहता हूँ। पिता ने चित्ररथ की कन्या के साथ विवाह कर दिया जो अति तेजपूर्ण और तपस्या में सदैव लगी रहती है॥२६-२७॥ एक बार ऋतुस्नान करके उसने अपना उत्तम वेष बनाया। रत्नों के आभूषणों से विभूषित होकर वह मुनियों के चित्त को मोहित करने वाली बन गयी॥२८॥ मन्द-मन्द हँसती हुई वह चञ्चलनयना मेरे समीप आई और मुझसे बोली कि मुझे देखो। उस समय मेरा मन ध्यान में संलग्न था और मैं बाह्य ज्ञान से विहीन था। इस लिए उसकी ओर न देखते हुए मुझे उसने ऋतु-स्नान व्यर्थ हो जाने के कारण क्रोध से शाप दे दिया—हे मूढ़! तुमने इस समय मुझे देखा तक नहीं और मेरे ऋतुकाल की रक्षा नहीं की (अर्थात् उपभोग नहीं किया), इसलिए जो वस्तु तुम देखोगे वह सब नष्ट हो जायगी॥२९-३१॥ पश्चात् ध्यान से विरत होकर मैंने उस पतिव्रता को

---

१ ख. पश्यन्ती मदमोहिता।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अहं च विरतो ध्यानात्तोषयंस्तां तदा सतीम्। शापं मोक्तुं न शक्ता सा पश्चात्तापमवाप ह ॥३२॥
तेन मातर्न पश्यामि किंचिद्वस्तु स्वचक्षुषा। ततः[1] प्रकृतिनम्रास्यः प्राणिहिंसाभयादहम् ॥३३॥
शनैश्चरवचः श्रुत्वा चाहसत्पार्वती मुने। उच्चैः प्रजहसुः सर्वा नर्तकीकिंनरीगणाः ॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शनिपार्वतीसं० शनेरधोदृष्टौ कारणकथनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

नारायण उवाच

दुर्गा तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार हरिमीश्वरम्। ईश्वरेच्छावशीभूतं जगदेवेत्युवाच ह ॥१॥
सा च देवी दैववशात् शनिं प्रोवाच कौतुकात्। पश्य मां मच्छिशुमिति निषेकः केन वार्यते ॥२॥
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा शनिर्मेने हृदा स्वयम् पश्यामि किं न पश्यामि पार्वतीसुतमित्यहो ॥३॥
यदि बालो मया दृष्टस्तस्य विघ्नो भवेद् ध्रुवम्। अन्यथा सुप्रशस्तं च पुरतः स्वात्मरक्षणम् ॥४॥

सन्तुष्ट किया किन्तु वह शापमुक्त करने में असमर्थ थी, इसीलिए केवल पश्चात्ताप का अनुभव किया ॥३२॥ हे मातः! इसी कारण मैं कोई वस्तु अपनी आँखों से नहीं देखता हूँ। और कहीं प्राणियों की हिंसा न हो जाये इस भय से मैंने सदैव नीचे मुख करने का स्वभाव ही बना लिया है ॥३३॥ हे मुने! शनैश्चर की ऐसी बातें सुनकर पार्वती हँस पड़ीं और वहाँ नृत्य करने वाली किन्नरियाँ भी ठहाका मारकर हँसने लगीं ॥३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद के प्रकरण में शनि-पार्वती-संवाद में शनि की अधोदृष्टि का कारण वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

अध्याय १२

शनि के देखने से गणेश का शिरःपतन तथा विष्णु के द्वारा शिरोयोजन

नारायण बोले—दुर्गा ने उसकी बातें सुन कर भगवान् का स्मरण किया और कहा कि समस्त संसार ईश्वर की इच्छा के वशीभूत है ॥१॥ अनन्तर दैवसंयोग से कौतुकवश देवी पार्वती ने शनि से कहा—मुझे और मेरे बालक को तुम देखो। जन्मोत्सव को कौन रोकता है ॥२॥ पार्वती की बात सुन कर शनि ने अपने मन में विचार किया कि—पार्वती-पुत्र का मैं दर्शन करूँ या न करूँ। क्योंकि यदि मैं बच्चे को देखता हूँ, तो निश्चित ही उसका विघ्न हो जायगा और नहीं तो उनके सामने अपनी आत्मरक्षा अत्यन्त प्रशस्त हो जाएगी ॥३-४॥

---

१ क. ०तः प्रभृति।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इत्येवमुक्त्वा धर्मिष्ठो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम्। बालं द्रष्टुं मनश्चक्रे न तु तन्मातरं शनिः ॥५॥
विषण्णमानसः पूर्वं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः। सव्यलोचनकोणेन ददर्श च शिशोर्मुखम् ॥६॥
शनेश्च दृष्टिमात्रेण चिच्छिदे मस्तकं मुने। चक्षुर्निमीलयामास तस्थौ नम्राननः शनिः ॥७॥
तस्थौ च पार्वतीक्रोडे तत्सर्वाङ्गं सलोहितम्। विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम् ॥८॥
मूर्च्छां संप्राप सा देवी विलप्य च भृशं मुहुः। मृतेव च पृथिव्यां तु कृत्वा वक्षसि बालकम् ॥९॥
विस्मितास्ते सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा। देव्यश्च शैला गन्धर्वाः सर्वे कैलासवासिनः ॥१०॥
तान्सर्वान्मूर्च्छितान्दृष्ट्वैवाऽऽरुह्य गरुडं हरिः। जगाम पुष्पभद्रां स चोत्तरस्यां दिशि स्थिताम् ११॥
पुष्पभद्रानदीतीरे ह्यपश्यत्काननं स्थितम्। गजेन्द्रं निद्रितं तत्र शयानं हस्तिनीयुतम् ॥१२॥
तथोदक्छिरसं रम्यं मूर्च्छितं सुरतश्रमात्। परितः शावकान्कृत्वा परमानन्दमानसम् ॥१३॥
शीघ्रं सुदर्शनेनैव चिच्छिदे तच्छिरो मुदा। स्थापयामास गरुडे रुधिराक्तं मनोहरम् ॥१४॥
गजच्छिन्नाङ्गविक्षेपात्प्रबोधं प्राप्य हस्तिनी। शावकान्बोधयामास चाशुभं वदती तदा ॥१५॥
रुरोद शावकैः सार्धं सा विलप्य शुचाऽऽतुरा। तुष्टाव कमलाकान्तं शान्तं सस्मितमीश्वरम् ॥१६॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम्। गरुडस्थं जगत्कान्तं भ्रामयन्तं सुदर्शनम् ॥१७॥

ऐसा सोच कर धर्मात्मा शनि ने धर्म को साक्षी बना कर बालक को देखने के लिए निश्चय किया न कि उसकी माता को ॥५॥ उनका मन पहले से ही खिन्न हो गया था और उनके कण्ठ, ओंठ, तालू सूखने लगे थे। अतः दाहिनी आँख के कोने से उन्होंने बच्चे का मुख देखा ॥६॥ हे मुने! शनि के देखते ही (बच्चे का) मस्तक कट गया और शनि आँखें बन्द कर नीचे मुख किये वहीं ठहर गये ॥७॥ पार्वती की गोद में बच्चे का सर्वांग (शिर विहीन धड़) रक्त से लोहित हो गया और वह (कटा हुआ) शिर गोलोक में जा कर भगवान् कृष्ण में प्रविष्ट हो गया ॥८॥ बार-बार अत्यन्त विलाप करके बालक को गोद में लेकर वह देवी मूर्च्छित होकर पृथिवी पर मृतक के समान गिर पड़ी ॥९॥ देव लोग आश्चर्यचकित होकर चित्र की पुतली की भाँति अवाक् रह गए और वहाँ उपस्थित अन्य देवियाँ, पर्वतगण, गन्धर्व एवं समस्त कैलास-निवासी वैसे हो गये ॥१०॥ उपरांत सभी लोगों को मूर्च्छित देखकर विष्णु गरुड़ पर बैठ कर उत्तर दिशा में स्थित पुष्पभद्रा नदी के तट पर गये ॥११॥ वहाँ पुष्पभद्रा नदी के तट पर पहुँच कर उन्होंने जंगल में हथिनियों के साथ शयन किये गजेन्द्र को देखा, जो सुरत के श्रम से श्रान्त होकर उत्तर शिर किए परमानन्द से सो रहा था और अपने चारों ओर बच्चों को लेटाये था ॥१२-१३॥ भगवान् ने प्रसन्न होकर सुदर्शन चक्र द्वारा उसका शिर काट कर गरुड़ पर रख लिया, जो रुधिर से तर और मनोहर था ॥१४॥ गज के मस्तक कटने से हथिनी जाग्रत हो गयी और अमंगल कहती हुई बच्चों को जगाने लगी। अनन्तर शोकाकुल होकर बच्चों समेत रोदन-विलाप करने लगी और कमलाकान्त भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगी, जो शान्त, स्मितभाव से युक्त, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये, पीताम्बर से विभूषित, गरुड पर स्थित, समस्त जगत् के कान्त एवं सुदर्शन चक्र घुमा रहे थे ॥१५-१७॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

निषेकं खण्डितुं शक्तं निषेकजनकं विभुम्। निषेकभोगदातारं भोगनिस्तारकारणम्॥१८॥
प्रभुस्तत्स्तवनात्तुष्टस्तस्यै विप्र वरं ददौ। मुण्डात्तुण्डं पृथक्कृत्य युयुजेऽन्यगजस्य च॥१९॥
जीवयामास तं तत्र ब्रह्मज्ञानेन सर्ववित्। सर्वाङ्गे योजयामास गजस्य चरणाम्बुजम्॥२०॥
त्वं जीवाऽकल्पपर्यन्तं परिवारैः समं गज। इत्युक्त्वा च मनोयायी कैलासं ह्याजगाम सः॥२१॥
आहृत्य[1] पार्वतीहस्ताद्बालं कृत्वा स्ववक्षसि। रुचिरं तच्छिरः सम्यग्योजयामास बालके॥२२॥
ब्रह्मस्वरूपो भगवान्ब्रह्मज्ञानेन लीलया। जीवयामास तं शीघ्रं हुंकारोच्चारणेन च॥२३॥
पार्वतीं बोधयित्वा तु कृत्वा क्रोडे च तं शिशुम्। बोधयामास तां कृष्ण आध्यात्मिकविबोधनैः॥२४॥

विष्णुरुवाच

ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं फलं भुञ्जन्ते स्वकर्मणः। जगद्बुद्धिस्वरूपाऽसि त्वं न जानासि किं शिवे॥२५॥
कल्पकोटिशतं भोगो जीविनां तत्स्वकर्मणा। उपस्थितो भवेन्नित्यं प्रतियोनौ शुभाशुभः॥२६॥
इन्द्रः स्वकर्मणा कीटयोनौ जन्म लभेत्सति। कीटश्चापि भवेदिन्द्रः पूर्वकर्मफलेन वै॥२७॥
सिंहोऽपि मक्षिकां हन्तुमक्षमः प्राक्तनं विना। मशको हस्तिनं हन्तुं क्षमः स्वप्राक्तनेन च॥२८॥
सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम्। सुकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः॥२९॥

वे जन्म को खण्डित करने में समर्थ, जन्म के जनक, विभु, जन्म-भोग देने वाले और भोगों से निस्तार करने के एकमात्र कारण हैं॥१८॥ हे विप्र! प्रभु विष्णु ने उसकी स्तुति से संतुष्ट होकर उसे वर प्रदान किया और गज का मस्तक उसके धड़ पर रख कर ब्रह्मज्ञान द्वारा उसे जीवित कर दिया। तथा सर्ववेत्ता भगवान् ने गज के सर्वांग में अपने चरण-कमल का स्पर्श कराया और कहा—'हे गज! अपने परिवारों समेत एक कल्प तक तुम जीवित रहो।' इतना कह कर मन की भाँति (वेग से) चलने वाले भगवान् कैलास आ गये॥१९-२१॥ उन्होंने पार्वती के हाथ से बालक लेकर अपनी गोद में रख लिया तथा सुन्दर गज-मस्तक बालक के धड़ से जोड़ दिया॥२२॥ ब्रह्मस्वरूप भगवान् ने ब्रह्मज्ञान द्वारा लीला की भाँति 'हुँकार' उच्चारण करके उसे शीघ्र जीवित कर दिया॥२३॥ अनन्तर कृष्ण ने पार्वती को समझा-बुझा कर उनकी गोद में बालक रख दिया और आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा उन्हें प्रबोधित किया॥२४॥

विष्णु बोले—ब्रह्मा से लेकर कीड़े पर्यन्त सभी अपने कर्मों के फल भोगते हैं और तुम तो बुद्धि स्वरूप हो। हे शिवे! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि—जीवों को अपने कर्म के कारण ही सौ करोड़ कल्पों का भोग प्राप्त होता है और शुभाशुभ कर्म द्वारा ही उन्हें प्रत्येक योनि में नित्य आना-जाना पड़ता है॥२५-२६॥ इन्द्र अपने कर्म वश कीट योनि में उत्पन्न होते हैं और कीट भी पूर्व किए कर्म फलों द्वारा इन्द्र हो जाता है॥२७॥ सिंह भी जन्मान्तरीय कर्म बिना मक्खी को मारने में अशक्त रहता है और कर्मवश मच्छर भी हाथी को मारने में समर्थ हो जाता है॥२८॥ इसलिए सुख, दुःख, भय, शोक और आनन्द कर्मों के फल हैं। सुकर्म का फल सुख-हर्ष है इससे अन्य पाप के फल हैं॥२९॥

१क. आगत्य पार्वतीस्थानं बोधयित्वा तु तं शिशुम्। बो०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इहैव कर्मणो भोगः परत्र च शुभाशुभः। कर्मोपार्जनयोग्यं च पुण्यक्षेत्रं च भारतम् ॥३०॥
कर्मणः फलदाता च विधाता च विधेरपि। मृत्योर्मृत्युः कालकालो निषेकस्य निषेककृत् ॥३१॥
संहर्तुरपि संहर्ता पातुः पाता परात्परः। गोलोकनाथः श्रीकृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥३२॥
वयं यस्य कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। महाविराड्यदंशश्च यल्लोमविवरे जगत् ॥३३॥
कलांशाः केऽपि तद्दुर्गे कलांशांशाश्च केचन। चराचरं जगत्सर्वं तत्र तस्थौ विनायकः ॥३४॥
श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा परितुष्टा च पार्वती। स्तनं ददौ च शिशवे तं प्रणम्य गदाधरम् ॥३५॥
तुष्टाव पार्वती तुष्टा प्रेरिता शंकरेण च। कृताञ्जलिपुटा भक्त्या विष्णुं तं कमलापतिम् ॥३६॥
आशिषं युयुजे विष्णुः शिशुं च शिशुमातरम्। ददौ गले बालकस्य कौस्तुभं च स्वभूषणम् ॥३७॥
ब्रह्मा ददौ स्वमुकुटं धर्मो वै रत्नभूषणम्। क्रमेण देव्यो रत्नानि ददुः सर्वे यथोचितम् ॥३८॥
तुष्टाव तं महादेवश्चात्यन्तं हृष्टमानसः । देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः सर्वयोषितः ॥३९॥
दृष्ट्वा शिवः शिवा चैव बालकं मृतजीवितम्। ब्राह्मणेभ्यो ददौ तत्र कोटिरत्नानि नारद ॥४०॥
अश्वानां च गजानां च सहस्राणि शतानि च। बन्दिभ्यः प्रददौ तत्र बालके मृतजीविते ॥४१॥
हिमालयश्च संतुष्टो हृष्टा देवाश्च तत्र वै। ददुर्दानानि विप्रेभ्यो बन्दिभ्यः सर्वयोषितः ॥४२॥
ब्राह्मणान्भोजयामास कारयामास मङ्गलम्। वेदांश्च पाठयामास पुराणानि रमापतिः ॥४३॥

शुभाशुभ कर्मों द्वारा इस लोक और परलोक में भोग प्राप्त होता है और कर्म करने के योग्य पुण्य क्षेत्र भारत है ॥३०॥ कर्मों के फल देने वाले, ब्रह्मा के भी ब्रह्मा, मृत्यु के भी मृत्यु, काल के भी काल और निषेक का भी निषेक करने वाले तथा संहर्ता के संहारक और रक्षा करने वाले के भी रक्षक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो परिपूर्णतम, गोलोकनाथ एवं परे से भी परे हैं ॥३१-३२॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और हम लोग उनकी कला हैं, महाविराट् उनके अंश हैं और उनके लोम-विवरों में विश्व स्थित है ॥३३॥ हे दुर्गे ! कुछ लोग उनकी कला के अंश हैं, कुछ लोग कलांश के अंश हैं। इस प्रकार चराचर समस्त जगत् और विनायक उनमें स्थित हैं ॥३४॥ श्री विष्णु भगवान् की ऐसी बातें सुन कर पार्वती अति प्रसन्न हुईं और गदाधर भगवान् को प्रणाम कर बच्चे को दूध पिलाने लगीं ॥३५॥ शंकर की प्रेरणा वश पार्वती ने अति प्रसन्न होकर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े, कमलापति भगवान् विष्णु की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर विष्णु ने बालक और उसकी माता, दोनों को शुभाशीर्वाद प्रदान किया तथा अपना कौस्तुभ आभूषण बालक के गले में पहना दिया ॥३६-३७॥ उसी प्रकार ब्रह्मा ने अपना मुकुट, धर्म ने रत्नाभूषण और देवियों ने क्रमशः यथोचित रत्न प्रदान किये ॥३८॥ अनन्तर महादेव ने अति हर्षित होकर भगवान् की स्तुति की। उसी भाँति देवगण, मुनि, पर्वत, गन्धर्व और सभी स्त्रियों ने स्तवन किया ॥३९॥ हे नारद ! शिव और शिवा ने बालक को जीवित देख कर ब्राह्मणों को करोड़ों रत्न प्रदान किये ॥४०॥ बालक के जीवित होने पर बन्दियों को एक सहस्र अश्व और सौ गजेन्द्र प्रदान किये ॥४१॥ संतुष्ट होकर हिमालय तथा प्रसन्नचित्त देवों और स्त्रियों ने बन्दियों एवं ब्राह्मणों को अनेक दान प्रदान किये ॥४२॥ रमापति विष्णु ने बच्चे के जीवित होने पर ब्राह्मणों को भोजन, मंगल और वेदों और पुराणों के पाठ कराये ॥४३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

शनिं संलज्जितं दृष्ट्वा पार्वती कोपशालिनी। शशाप च सभामध्येऽप्यङ्गहीनो भवेति च ॥४४॥
दृष्ट्वा शप्तं शनिं सूर्यः कश्यपश्च यमस्तथा। तेऽतिरुष्टाः समुत्तस्थुर्गामुकाः शंकरालयात् ॥४५॥
रक्ताक्षास्ते रक्तमखाः कोपप्रस्फुरिताधराः। तां धर्मसाक्षिणं कृत्वा विष्णुं संशप्तुमुद्यताः ॥४६॥
ब्रह्मा तान्बोधयामास विष्णुना प्रेरितः सुरैः। रक्तास्यां पार्वतीं चैव कोपप्रस्फुरिताधराम् ॥४७॥
ब्रह्मागमूचुस्ते तत्र क्रमेण समयोचितम्। भीरवो देवताः सर्वे मुनयः पर्वतास्तथा ॥४८॥

कश्यप उवाच

दुर्दृष्टोऽयं प्राक्तनेन पत्नीशापेन सर्वदा। बालं ददर्श यत्नेन तस्य वै मातुराज्ञया ॥४९॥

सूर्य उवाच

तं धर्मं साक्षिणं कृत्वा सूनोर्वै मातुराज्ञया। मत्पुत्रोऽतिप्रयत्नेन ह्यपश्यत्पार्वतीसुतम् ॥५०॥
यया निरपराधेन मत्पुत्रं सा शशाप ह। तत्पुत्रस्याङ्गभङ्गश्च भविष्यति न संशयः ॥५१॥

यम उवाच

प्रदाय स्वयमाज्ञां च शशापेयं स्वयं कथम्। वयं शपामः को ऽधर्मो जिघांसोश्च विहिंसने ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

शशाप पार्वती रुष्टा स्त्रीस्वभावाच्च चापलात्। सर्वेषां वचनेनैव क्षन्तुमर्हन्तु साधवः ॥५३॥

उस समय शनि को अति लज्जित देख कर पार्वती क्रुद्ध हो गयीं और उस सभामध्य में ही शाप दिया—तुम अंगहीन हो जाओ ॥४४॥ शनि को शाप देते देखकर सूर्य, कश्यप और यम ने अत्यन्त रुष्ट होकर शंकर के गृह से यात्रा की तैयारी कर दी ॥४५॥ क्रोध से उनके नेत्र और मुख रक्तवर्ण हो गए, होंठ फड़कने लगे धर्म को साक्षी बना कर इन लोगों ने पार्वती और विष्णु को शाप देना चाहा ॥४६॥ अनन्तर विष्णु और देवों द्वारा प्रेरित होने पर ब्रह्मा ने सूर्य आदि देवों और पार्वती को समझाया, जिनका मुख रक्तवर्ण हो गया था और कोप से अधर फड़क रहा था ॥४७॥ उन लोगों ने क्रमशः ब्रह्मा से सामयिक बातें कहीं कि—देवता, सभी मुनिगण और पर्वत भीरु होते हैं ॥४८॥

कश्यप बोले—यह पत्नी-शाप द्वारा पहले से ही अशुभ दृष्टि वाला हो गया है किन्तु बालक को इसने उसकी माता की आज्ञा होने पर ही यत्न से देखा ॥४९॥

श्री सूर्य बोले—इसने धर्म को साक्षी बना कर और बालक की माता की आज्ञा होने पर अति प्रयत्न से बच्चे को देखा है ॥५०॥ किन्तु फिर भी इन्होंने निरपराध मेरे पुत्र को शाप दे दिया है, अतः उनके पुत्र का भी अंग भंग हो जायगा, इसमें संशय नहीं ॥५१॥

यम बोले—इन्होंने स्वयं आज्ञा प्रदान कर के स्वयं क्यों शाप दिया? इस पर हम लोग यदि शाप देते हैं तो अधर्म क्या है? क्योंकि हनन करने वाले की हिंसा करना अधर्म नहीं है? ॥५२॥

ब्रह्मा बोले—पार्वती ने रुष्ट होकर और स्त्री-स्वभाव-चपलता के कारण शाप दिया है, किन्तु साधु लोग क्षमाशील होते हैं, अतः आप लोग सभी लोगों के कहने से क्षमा कर दें ॥५३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दुर्गे दत्त्वा त्वमाज्ञां च पुत्रदर्शनहेतवे। कथं शपसि निर्दोषमतिथिं त्वद्गृहागतम् ॥५४॥
इत्युक्त्वा शनिमादाय बोधयित्वा च पार्वतीम्। तां तं समर्पणं चक्रे शापमोचनहेतवे ॥५५॥
बभूव पार्वती तुष्टा ब्रह्मणो वचनान्मुने। शान्ता बभूवुस्ते तत्र दिनेशयमकश्यपाः ॥५६॥
उवाच पार्वती तत्र संतुष्टा[1] तं शनैश्चरम्। प्रसादिता शिवेनैव ब्रह्मणा परिसेविता ॥५७॥

पार्वत्युवाच

ग्रहराजो भव शने मद्वरेण हरिप्रियः। चिरजीवी च योगीन्द्रो हरिभक्तस्य का विपत् ॥५८॥
अद्यप्रभृति निर्विघ्ना हरौ भक्तिर्दृढाऽस्तु ते। शापोऽमोघस्ततो मेऽद्य किंचित्खञ्जो भविष्यसि ॥५९॥
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा बालं धृत्वा[2] च वक्षसि। उवास योषितां मध्ये तस्मै दत्त्वा शुभाशिषः ॥६०॥
शनिर्जगाम देवानां समीपं हृष्टमानसः। प्रणम्य भक्त्या तां ब्रह्मन्नम्बिकां जगदम्बिकाम् ॥६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शनिकृतगणेशदर्शनतज्जातगणेशशिरः-पतनविष्णुकृतगणेशशिरोयोजनशनिशापादिकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

(पुनः दुर्गा से कहा—) हे दुर्गे! पुत्र का दर्शन करने के लिए तुम्हीं ने आज्ञा प्रदान की थी, तो घर में आये हुए निर्दोष अतिथि को क्यों शाप दे रही हो ॥५४॥ इतना कहकर ब्रह्मा ने पार्वती को समझाने के अनन्तर शापमुक्त होने के लिए शनि को उन्हें सौंप दिया ॥५५॥ हे मुने! ब्रह्मा की बात सुन कर पार्वती प्रसन्न हो गयीं और सूर्य, यम, कश्यप भी शान्त हो गए ॥५६॥ अनन्तर सुप्रसन्न होकर शिव द्वारा प्रसन्न और ब्रह्मा द्वारा सुसेवित पार्वती ने शनैश्चर से कहा ॥५७॥

पार्वती बोलीं—हे शनि! मेरे वरदान द्वारा तुम ग्रहों का राजा, भगवान् का प्रिय, चिरजीवी और योगीन्द्र होगे। हरिभक्तों को कोई संकट नहीं होता है। आज से भगवान् में तुम्हारी निर्विघ्न और दृढ़ भक्ति होगी। मेरा शाप व्यर्थ नहीं होता है, अतः कुछ खञ्जपाद (लंगड़े) रहोगे ॥५८-५९॥ सुप्रसन्ना पार्वती ने इतना कह कर उसे शुभाशीर्वाद प्रदान कर बालक को अपनी गोद में रख लिया और स्त्रियों के बीच बैठ गयीं ॥६०॥ हे ब्रह्मन्! शनि ने भी हर्षित होकर जगज्जननी पार्वती को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और देवों के पास चले आये ॥६१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में शनिकृत गणेश-दर्शन, उससे गणेश-शिर का पतन, पुनः विष्णु द्वारा गणेश के शिर जोड़ने और शनि के शाप आदि का कथन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

---

१ क. ०तुष्टं तं। २ क. कृत्वा।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

त्रयोदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ विष्णुः शुभे काले देवैश्च मुनिभिः सह । पूजयामास तं बालमुपहारैरनुत्तमैः ॥१॥
सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम । सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम् ॥२॥
वनमालां ददौ तस्मै ब्रह्मज्ञानं च मुक्तिदम् । सर्वसिद्धि प्रदायैव चकाराऽऽत्मसमं हरिः ॥३॥
ददौ द्रव्याणि चारूणि चोपचारांश्च षोडश । नामभिः[1] स्तवनं चक्रे मुनिभिश्च समं सुरैः ॥४॥
विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः । लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः ॥५॥
एतान्यष्टौ च नामानि सर्वसिद्धिप्रदानि च । आशिषं दापयामास चाऽऽनयामास तान्मुनीन् ॥६॥
सिद्धासनं ददौ धर्मस्तस्मै ब्रह्मा कमण्डलुम् । शंकरो योगपट्टं च तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम् ॥७॥
रत्नसिंहासनं शक्रः सूर्यश्च मणिकुण्डले । माणिक्यमालां चन्द्रश्च कुबेरश्च किरीटकम् ॥८॥
वह्निशुद्धं च वसनं ददौ तस्मै हुताशनः । रत्नच्छत्रं च वरुणो वायू रत्नाङ्गुलीयकम् ॥९॥
क्षीरोदोद्भवसद्रत्नरचितं वलयं वरम् । मञ्जीरं चापि केयूरं ददौ पद्मालया मुने ॥१०॥
कण्ठभूषां च सावित्री भारती हारमुज्ज्वलम् । क्रमेण सर्वदेवाश्च देव्यश्च यौतुकं ददुः ॥११॥
मुनयः पर्वताश्चैव रत्नानि विविधानि च । वसुंधरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषकम् ॥१२॥

अध्याय १३

गणेश की पूजा, स्तुति और कवच

नारायण बोले—विष्णु ने शुभ मुहूर्त में देवों और मुनियों को साथ लेकर परमोत्तम उपहारों द्वारा उस बालक की अर्चना की और कहा—हे सुरोत्तम! सब से पहले मैंने तुम्हारी पूजा की है अतः हे वत्स! तुम सब के पूज्य एवं योगिराज होगे ॥१-२॥ भगवान् ने वनमाला, मुक्तिप्रद ब्रह्मज्ञान और समस्त सिद्धियाँ देकर उसे अपने समान बना दिया ॥३॥ सुन्दर द्रव्य और सोलहों उपचार अर्पित कर पश्चात् देवों और मुनियों समेत उनकी नाम-स्तुति करना आरम्भ किया—विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक, ये तुम्हारे आठ नाम समस्त सिद्धिप्रदायक हैं। फिर मुनियों को वहाँ बुलवा कर उनसे आशीर्वाद दिलवाया ॥४-६॥ धर्म ने उस बालक को सिद्धासन दिया, ब्रह्मा ने कमण्डलु, शंकर ने योग वस्त्र समेत अति दुर्लभ तत्त्वज्ञान प्रदान किया ॥७॥ इन्द्र ने रत्नसिंहासन, सूर्य ने मणि के युगल कुण्डल, चन्द्र ने माणिक्य-माला, कुबेर ने किरीट, अग्नि ने अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र, वरुण ने रत्न का छत्र और वायु ने रत्नों की अंगूठी अर्पित की। हे मुने! लक्ष्मी ने क्षीर-सागर से उत्पन्न रत्नों का बना कड़ा, उत्तम नूपुर और केयूर (बहूँटा) प्रदान किया ॥८-१०॥ सावित्री ने कण्ठा, भारती ने उज्ज्वल हार तथा समस्त देवता एवं देवियों ने क्रमशः उपहार प्रदान किया ॥११॥ मुनियों और पर्वतों ने अनेक भाँति के रत्न और वसुन्धरा ने उन्हें सवारी के लिए मूषक (चूहा)

---

१. तन्नामकरणं च० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

क्रमेण देवा देव्यश्च मुनयः पर्वतादयः । गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मनवो मानवास्तथा ॥१३॥
नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि मधुराणि च । पूजां चक्रुश्च ते सर्वे क्रमाद्वै भक्तिपूर्वकम् ॥१४॥
पार्वती जगतां माता स्मेराननसरोरुहा । रत्नसिंहासने पुत्रं वासयामास नारद ॥१५॥
सर्वतीर्थोदकै रत्नकलशावर्जितैस्तु तैः । स्नापयामास वेदोक्तमन्त्रेण मुनिभिः सह ॥१६॥
अग्निशुद्धे च वसने ददौ तस्मै सती मुदा । गोदावर्युदकैः पाद्यमर्घ्यं गङ्गोदकेन च ॥१७॥
दूर्वाभिरक्षतापुष्पैश्चन्दनेन समन्वितम् । पुष्करोदकमानीय पुनराचमनीयकम् ॥१८॥
मधुपर्कं रत्नपात्रैरासवं शर्करान्वितम् । स्नानीयं विष्णुतैलं च स्ववैद्याभ्यां विनिर्मितम् ॥१९॥
अमूल्यरत्नरचितचारुभूषाकदम्बकम् । पारिजातप्रसूनानामन्येषां शतकानि च ॥२०॥
मालतीचम्पकादीनां पुष्पाणि विविधानि च । पूजार्हाणि च पत्राणि तुलसी[1]सहितानि च ॥२१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानि च सादरम् । रत्नप्रदीपनिकरं धूपं च परितो ददौ ॥२२॥
नैवेद्यं तत्प्रियं चैव तिललड्डुकपर्वतान् । यवगोधूमचूर्णानां लड्डुकानां च पर्वतान् ॥२३॥
पक्वान्नानां पर्वतांश्च सुस्वादुसुमनोहरान् । पर्वतान्स्वस्तिकानां च सुस्वादुशर्करान्वितान् ॥२४॥
गुडाक्तानां च लाजानां पृथुकानां च पर्वतान् । शाल्यन्नानां पिष्टकानां पर्वतान्व्यञ्जनैः सह ।२५॥
पयोभृत्कलशानां च लक्षाणि प्रददौ मुदा । लक्षाणि दधिपूर्णानां कलशानां च पूजने ॥२६॥
मधुभृत्कलशानां च त्रिलक्षाणि च सुन्दरी । सर्पिःसुवर्णकुम्भानां पञ्च लक्षाणि सादरम् ॥२७॥

प्रदान किया ॥१२॥ क्रमशः सभी देवों, देवियों, मुनियों, पर्वतों, गन्धर्वों, किन्नरों, यक्षों, मनुओं और मानवों ने अनेक प्रकार के स्वादिष्ठ और मधुर उपहार देकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की ॥१३-१४॥ हे नारद! मन्दहास युक्त मुख-कमल वाली जगत्-माता पार्वती ने रत्नसिंहासन पर अपने पुत्र को सुखासीन कर दिया ॥१५॥ अनन्तर मुनियों ने रत्न-कलशों में भरे हुए समस्त तीर्थों के जल से वेद-मंत्र उच्चारण करते हुए उन्हें स्नान कराया। सती ने प्रसन्न होकर अग्नि-विशुद्ध दो वस्त्र प्रदान किये—पुनः गोदावरी के जल का पाद्य एवं गंगोदक का अर्घ्य जो दूर्वा, अक्षत पुष्प एवं चन्दन युक्त था, अर्पित किया। पुष्कर का जल मंगाकर पुनः आचमन और रत्न के पात्र में मधुपर्क और शक्कर मिश्रित आसव प्रदान किया। अश्विनीकुमारों ने उनके स्नानार्थ विष्णु-तैल का निर्माण किया। ॥१६-१९॥ पश्चात् अमूल्य रत्नों के सुरचित अनेक उत्तम भूषण, सौ पारिजात पुष्प, मालती और चम्पा आदि अनेक भाँति के पुष्प समेत पूजा के योग्य पत्र, तुलसीदल तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं कुंकुम अनेक लोगों ने उन्हें सादर अर्पित किये। अनेक रत्न-प्रदीप समेत चारों ओर धूप, उनका प्रिय नैवेद्य—तिल-लड्डू के पर्वत, यव तथा गेहूँ के आटे के लड्डुओं के पर्वत, सुस्वादु एवं मनोहर पक्वान्न के पर्वत, अति स्वादिष्ठ शक्कर समेत स्वस्तिक के पर्वत, गुड़ मिश्रित धान के लावा के पर्वत, चिउरा के पर्वत, व्यंजनों समेत शालि-अन्न तथा पिष्टकों के पर्वतों समेत दूध भरे एक लाख कलश प्रदान किये उनके पूजन में एक लाख दही भरे कलश और तीन लाख मधु भरे कलश सुन्दरी ने अर्पित किये। एवं घी के पाँच लाख सुवर्ण-कलश भी सादर प्रदान किये ॥२०-२७॥ अनार, श्रीफल समेत असंख्य अन्य फल, खजूर, कैथा, जामुन, आम, कटहल, केला और

---

१ क. ०वर्जिता० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दाडिमानां श्रीफलानामसंख्यानि फलानि च । खर्जूराणां कपित्थानां जम्बूनां विविधानि च ॥२८॥
आम्राणां पनसानां च कदलीनां च नारद । फलानि नारिकेलानामसंख्यानि ददौ मुदा ॥२९॥
अन्यानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च । ददौ तानि महाभाग स्वादूनि मधुराणि च ॥३०॥
स्वच्छं सुनिर्मलं चैव कर्पूरादिसुवासितम् । गङ्गाजलं च पानार्थं पुनराचमनीयकम् ॥३१॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । सुवर्णपात्रशतकं भक्ष्यपूर्णं च नारद ॥३२॥
शैलेश्वरी शैलराजः शैलजः शैलराजजः । शैलराजप्रियामात्याः पुपूजुः शैलजात्मजम् ॥३३॥
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं गणेशाय ब्रह्मरूपाय चारवे । सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः ॥३४॥
इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वा द्रव्याणि भक्तितः । सर्वे प्रमुदितास्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३५॥
द्वात्रिंशदक्षरो मालामन्त्रोऽयं सर्वकामदः । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदः सर्वसिद्धिदः ॥३६॥
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिणः । मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारते ॥३७॥
विघ्नानि च पलायन्ते तन्नामस्मरणेन च । महावाग्मी महासिद्धिः [1]सर्वसिद्धिसमन्वितः ॥३८॥
वाक्पतिर्गुरुतां याति तस्य साक्षात्सुनिश्चितम् । महाकवीन्द्रो गुणवान्विदुषां च गुरोर्गुरुः ॥३९॥
संपूज्यानेन मन्त्रेण देवा आनन्दसंप्लुताः । नानाविधानि वाद्यानि वादयामासुरुत्सवे ॥४०॥
ब्राह्मणान्भोजयामासुः कारयामासुरुत्सवम् । ददुर्दानानि तेभ्यश्च वन्दिभ्यश्च विशेषतः ॥४१॥

नारियल के असंख्य फल तथा हे नारद ! देश काल के अनुसार अन्य असंख्य पके फल, जो अति मधुर एवं सुस्वादु थे, उन्हें हर्ष से अर्पित किये ॥२८-३०॥ स्वच्छ निर्मल तथा कर्पूरादि से सुवासित गंगाजल का आचमन उन्हें प्रदान किया ॥३१॥ हे नारद ! कर्पूरादि से सुवासित, उत्तम एवं रम्य ताम्बूल और भोजन भरे सौ सुवर्ण-पात्र से हिमालय, उनकी पत्नी, पुत्र तथा प्रिय मंत्रियों ने पार्वती-पुत्र की पूजा की ॥३२-३३॥ 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं गणेशाय ब्रह्मरूपाय चारवे सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः।' इसी मंत्र द्वारा हर्षमग्न ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवों ने भक्तिपूर्वक उन्हें सभी वस्तुएँ समर्पित कीं। बत्तीस अक्षर का यह माला-मंत्र समस्त कामनाओं समेत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलप्रद एवं समस्तसिद्धिदायक है ॥३४-३६॥ पाँच लाख जप करने से यह मंत्र सिद्ध हो जाता है और जिसको यह मंत्र सिद्ध हो जाता है वह भारत में विष्णु के समान होता है ॥३७॥ उसके नामस्मरण मात्र से विघ्न भाग जाते हैं तथा वह स्वयं महावाग्मी, महासिद्ध तथा समस्त सिद्धियों से युक्त होता है ॥३८॥ वह निश्चित ही बृहस्पति के तुल्य हो जाता है तथा कविसम्राट्, गुणी और विद्वानों के गुरु का गुरु होता है ॥३९॥ देवगण उस उत्सव में इसी मंत्र द्वारा उनकी पूजा करके आनन्दमग्न हो कर अनेक भाँति के बाजे बजाने लगे ॥४०॥ ब्राह्मणों को भोजन कराया, उत्सव किया तथा ब्राह्मणों और वन्दियों को विशेषतया दान समर्पित किया ॥४१॥

---

१ क ०र्वं संपत्स० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नारायण उवाच

अथ विष्णुः सभामध्ये तं संपूज्य गणेश्वरम् । तुष्टाव परया भक्त्या सर्वविघ्नविनाशकम् ॥४२॥

विष्णुरुवाच

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । नैव वर्णयितुं शक्तोऽस्म्यनुरूपमनीहकम् ॥४३॥
प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम् । सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम् ॥४४॥
अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरूपिणम् । वायुतुल्यं च निर्लिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षिणम् ॥४५॥
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे । कर्णधारस्वरूपं च भक्तानुग्रहकारकम् ॥४६॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम् । सिद्धं सिद्धिस्वरूपं च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम् ॥४७॥
ध्यानातिरिक्तं ध्येयं च ध्यानासाध्यं च धार्मिकम् । धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्माधर्मफलप्रदम् ॥४८॥
बीजं संसारवृक्षाणामङ्कुरं च तदाश्रयम् । स्त्रीपुंनपुंसकानां च रूपमेतदतीन्द्रियम् ॥४९॥
सर्वाद्यमग्रपूज्यं च सर्वपूज्यं गुणार्णवम् । स्वेच्छया सगुणं ब्रह्म निर्गुणं स्वेच्छया पुनः ॥५०॥
स्वयं प्रकृतिरूपं च प्राकृतं प्रकृतेः परम् । त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनैरपि ॥५१॥
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः । सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ ॥५२॥
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥५३॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा मुनीशसुरसंसदि । सुरेशश्च सुरैः सार्धं विरराम रमापतिः ॥५४॥

नारायण बोले—अनन्तर विष्णु ने समामध्य समस्त विघ्नों के नाशक गणेश्वर की अर्चना करके परा-भक्ति से उनकी स्तुति करना आरम्भ किया ॥४२॥

विष्णु बोले—हे ईश ! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, तुम ब्रह्मज्योति और सनातन हो, अतः मैं तुम्हारा वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि तुम इच्छारहित हो ॥४३॥ समस्त देवों में श्रेष्ठ, सिद्धों और योगियों के गुरु, समस्त के स्वरूप, सब के अधीश्वर, ज्ञानराशि के स्वरूप, अव्यक्त, अविनाशी, नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप, वायु के समान निर्लिप्त, सब के साक्षी एवं संसार-सागर को पार करने के लिए मायारूपी जहाज में तुम अति दुर्लभ कर्णधार स्वरूप होकर भक्तों पर कृपा करने वाले हो ॥४४-४६॥ उत्तम, वरेण्य, वरप्रद, वरदों के भी अधीश्वर, सिद्ध, सिद्धिस्वरूप, सिद्धिप्रद, सिद्धि के साधन, ध्यान से परे, ध्येय, ध्यान से असाध्य, धार्मिक, धर्मस्वरूप, धर्मज्ञाता, धर्म-अधर्म के फलदायक, संसार रूपी वृक्ष के बीज और उसके आश्रय अंकुर, स्त्री, पुरुष एवं नपुंसकों के रूप, अतीन्द्रिय (इन्द्रियों से दिखायी न देने वाले), सभी के आद्य, सब से पहले पूज्य, सब के पूज्य, गुणसागर, स्वेच्छया सगुण ब्रह्म, पुनः स्वेच्छया निर्गुण ब्रह्म, स्वयं प्रकृति रूप, प्राकृत तथा प्रकृति से परे हो। इसीलिए अनन्त भी अपने सहस्र मुखों द्वारा तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं ॥४७-५१॥ उसी प्रकार पाँच मुख वाले (शिव); चार मुख वाले ब्रह्मा, सरस्वती और मैं तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ। चारों वेद भी समर्थ नहीं हैं तो वेदवादियों की बात ही क्या ॥५२-५३॥ इस प्रकार देवों के अधीश्वर रमापति विष्णु मुनीन्द्रों और देवों की सभा में देवों के साथ उनकी स्तुति कर के चुप हो गये ॥५४॥ हे मुने !

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इदं विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यः पठेत् । सायं प्रातश्च मध्याह्ने भक्तियुक्तः समाहितः ॥५५॥
तद्विघ्ननाशं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने । वर्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकः सदा ॥५६॥
यात्राकाले पठित्वा यो याति तद्भक्तिपूर्वकम् । तस्य सर्वाभीष्टसिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥५७॥
तेन दृष्टं च दुःस्वप्नं सुस्वप्नमपजायते । कदाऽपि न भवेत्तस्य ग्रहपीडा च दारुणा ॥५८॥
भवेद्विनाशः शत्रूणां बन्धूनां च विवर्धनम् । शश्वद्विघ्नविनाशश्च शश्वत्सम्पद्विवर्धनम् ॥५९॥
स्थिरा भवेद्गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्धनम् । सर्वैश्वर्यमिह प्राप्य ह्यन्ते विष्णुपदं लभेत् ॥६०॥
फलं चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद्भुवेद्ध्रुवम् । महतां सर्वदानानां तद्गणेशप्रसादतः ॥६१॥

नारद उवाच

श्रुतं स्तोत्रं गणेशस्य पूजनं च मनोहरम् । कवचं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं भवतारणम् ॥६२॥

नारायण उवाच

पूजायां सुनिवृत्तायां सभामध्ये शनैश्चरः । उवाच विष्णुं सर्वेषां तारकं जगतां गुरुम् ॥६३॥

शनैश्चर उवाच

सर्वदुःखविनाशाय पापप्रशमनाय च । कवचं विघ्ननिघ्नस्य वद वेदविदां वर ॥६४॥
बभूव नो विवादश्च शक्त्या वै मायया सह । तद्विघ्नप्रशमार्थं च कवचं धारयाम्यहम् ॥६५॥

भगवान् विष्णु कृत गणेश के इस स्तोत्र का जो प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल भक्तिपूर्वक एवं संयत होकर पाठ करता है, उसके विघ्नों का नाश स्वयं विघ्नेश निरन्तर करते हैं। उसके समस्त कल्याणों की वृद्धि होती है तथा वहस दैव कल्याण उत्पन्न करता है ॥५५-५७॥ यात्राकाल में जो इसका भक्तिपूर्वक पाठ करके जाता है उसके सम्पूर्ण अभीष्ट (मनोरथ) सिद्ध होते हैं, इसमें संशय नहीं ॥५७॥ उसका देखा अशुभ स्वप्न शुभ स्वप्न हो जाता है और दारुण ग्रहपीड़ा उसे कभी नहीं होती है ॥५८॥ शत्रु-नाश, बान्धव-वृद्धि निरन्तर विघ्न-विनाश और निरन्तर सम्पत्ति की वृद्धि होती है ॥५९॥ गृह में लक्ष्मी का अविचल निवास होता है, पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है और वह इस लोक में समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति करके अन्त में विष्णुलोक प्राप्त करता है ॥६०॥ तीर्थों, यज्ञों और बड़े-बड़े समस्त दानों के जो फल होते हैं, वे सभी फल गणेश की कृपा से उसे सुनिश्चित प्राप्त होते हैं ॥६१॥

नारद बोले—गणेश जी का स्तोत्र और मनोहर पूजन हमने सुन लिया है, अब इस समय उनका संसार से तारने वाला कवच सुनना चाहता हूँ ॥६२॥

नारायण बोले—पूजन सुसम्पन्न होने के उपरांत सभामध्य में शनि ने सभी को तारने वाले और जगत् के गुरु विष्णु से कहा ॥६३॥

शनैश्चर बोले—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! विघ्न-विनाशन (गणेश) का कवच बताने की कृपा करें, जो समस्त दुःखों का नाशक और पाप को निर्मूल करने वाला है ॥६४॥ शक्ति माया के साथ हमारा बहुत बड़ा विवाद हो चुका है, इसलिए उस विघ्न के विनाशार्थ मैं कवच धारण करना चाहता हूँ ॥६५॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

विष्णु उवाच

विनायकस्य कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। सुगोप्यं च पुराणेषु दुर्लभं चाऽऽगमेषु च॥६६॥
उक्तं कौथुमशाखायां सामवेदे मनोहरम्। कवचं विघ्ननाथस्य सर्वविघ्नहरं परम्॥६७॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च सूर्यज। एवंभूतं च कवचं न देयं प्राणसंकटे॥६८॥
आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छया यस्य मायया। नित्योऽयमेकदन्तश्च कवचं चास्य वत्सक॥६९॥
पूजाऽस्य नित्या स्तोत्रं च कल्पे कल्पेऽस्ति संततम्। अस्य[1] वै जन्मनः पूर्वं मुनयश्च सिषेविरे॥७०॥
यथा मदवतारेषु जन्म विग्रहधारणम्। तथा गणेश्वरस्यापि जन्म शैलसतोदरे॥७१॥
यद्धृत्वा मुनयः सर्वे जीवन्मुक्ताश्च भारते। निःशङ्काश्च सुराः सर्वे शत्रुपक्षविमर्दकाः॥७२॥
कवचं बिभ्रतां मृत्युर्न भिया याति संनिधिम्। नाऽऽयर्व्ययो नाशुभं च ब्रह्माण्डे न पराजयः॥७३॥
दशलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्। यो भवेत्सिद्धकवचो मृत्युं जेतुं स च क्षमः॥७४॥
सुसिद्धकवचो वाग्मी चिरंजीवी महीतले। सर्वत्र विजयी पूज्यो भवेद्ग्रहणमात्रतः॥७५॥
मालामन्त्रमिमं पुण्यं कवचं मङ्गलं शुभम्। बिभ्रतां सर्वपापानि प्रणश्यन्ति सुनिश्चितम्॥७६॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः। डाकिनीयोगिनीयक्षवेताला भैरवादयः॥७७॥

श्री विष्णु बोले—विनायक का कवच तीनों लोकों में अति दुर्लभ है, वह पुराणों में अति गोप्य और शास्त्रों में भी दुर्लभ है॥६६॥ विघ्नेश्वर (गणेश) का कवच, जो समस्त विघ्नों का नाशक एवं परमोत्तम है, सामवेद की कौथुमीशाखा में मनोहर ढंग से कहा गया है॥६७॥ हे (सूर्य-पुत्र)! राज्य दिया जा सकता है, शिर दिया जा सकता है और प्राण भी दिये जा सकते हैं किन्तु प्राण संकट उपस्थित होने पर भी ऐसा कवच नहीं दिया जा सकता है॥६८॥ हे वत्स! जिनकी माया से अविर्भाव और तिरोभाव हुआ करते हैं, वे एकदन्त (गणेश) नित्य हैं, उन्हीं का यह कवच है॥६९॥ इनकी नित्य पूजा और स्तोत्र प्रत्येक कल्प में निरन्तर होते रहते हैं, इनके जन्म होने से पूर्व भी मुनिगण इनकी सेवा करते रहते हैं॥७०॥ जिस प्रकार मैं अपने अवतार में जन्म और शरीर धारण करता हूँ, उसी भाँति पार्वती के उदर से गणेश ने भी जन्म ग्रहण किया है॥७१॥ भारत में मुनिगण उनका कवच धारण कर जीवन्मुक्त हो जाते हैं और देवगण निःशंक होकर शत्रुओं का दलन करते हैं॥७२॥ कवच धारण करने वालों के समीप मृत्यु भयवश नहीं जाती है तथा उसकी आयु का व्यय, अशुभ और ब्रह्माण्ड में पराजय नहीं होता है॥७३॥ दश लाख जप करने से यह कवच सिद्ध हो जाता है और जिसे कवच सिद्ध हो जाता है, वह मृत्यु को भी जीतने में समर्थ होता है॥७४॥ कवच के सिद्ध होने पर वह पुरुष महासत्यवक्ता, चिरकालजीवी एवं पृथ्वीमण्डल में सर्वत्र विजयी होता है तथा केवल कवच के ग्रहण मात्र से पूज्य होता है॥७५॥ इस मालामन्त्र और पुण्य, मंगल एवं शुभ कवच के धारण करने वाले के समस्त पाप निश्चित नष्ट हो जाते हैं॥७६॥ भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी, यक्ष, वेताल, भैरव आदि, बालग्रह, ग्रह,

---

१ क. यस्यास्य ज०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

बालग्रहा ग्रहाश्चैव क्षेत्रपालादयस्तथा। वर्मणः शब्दमात्रेण पलायन्ते च भीरवः ॥७८॥
आधयो व्याधयश्चैव शोकाश्चैव भयावहाः। न यान्ति संनिधिं तेषां गरुडस्य यथोरगाः ॥७९॥
ऋजवे गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत्। खलाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥८०॥
संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री[1] देवो लम्बोदरः स्वयम् ॥८१॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। सर्वेषां कवचानां च सारभूतमिदं मुने ॥८२॥
ओं[2] गं हुं श्री गणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम्। द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटं मे सदाऽवतु ॥८३॥
ओं ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति वै सततं पातु लोचनम्। तारकां पातु विघ्नेशः सततं धरणीतले ॥८४॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीमिति परं संततं पातु नासिकाम्। ओं गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम ॥८५॥
दन्तांश्च तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः। ओं लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु ॥८६॥
ओं क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदाऽवतु। ओं श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु ॥८७॥
ओं ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु। ओं क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलं परम् ॥८८॥
करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननाशकृत्। प्राच्यां लम्बोदरः पातु चाऽऽग्नेय्यां विघ्ननायकः ॥८९॥
दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यां तु गजाननः। पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शंकरात्मजः ॥९०॥
कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च। ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः ॥९१॥

क्षेत्रपाल आदि तथा भीरु आदि जैसे उसके शब्दमात्र से पलायन कर जाते हैं ॥७७-७८॥ जैसे गरुड की सन्निधि में सर्प नहीं जाते वैसे आधि, व्याधि और भयावह शोक उसके समीप नहीं जाते हैं ॥७९॥ इसलिए सरल एवं गुरुभक्त शिष्य को यह कवच देना चाहिए किन्तु दुष्ट और पर-शिष्य को देने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥८०॥ संसारमोहन इस कवच के प्रजापति ऋषि, वृहती छन्द, स्वयं लम्बोदर देवता हैं तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है ॥८१-८२॥ हे मुने ! यह कवच सभी कवचों का सार भाग है। 'ओं गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा' यह मेरे मस्तक की रक्षा करे, बत्तीस अक्षर वाला मंत्र मेरे ललाट की सदा रक्षा करे ॥८३॥ 'ओं ह्रीं क्लीं श्रीं गं' मेरे नेत्र की सतत रक्षा करे। इस भूतल पर विघ्नेश मेरी पुतली की सतत रक्षा करें ॥८४॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं' यह निरन्तर नासिका की रक्षा करे। 'ओं गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा' यह मेरे अधर की रक्षा करे। सोलह अक्षर वाला मंत्र मेरे दाँत, तालु और जिह्वा की रक्षा करे ॥८५॥ 'ओं लं श्रीं लम्बोदराय स्वाहा' यह सदा कपोल की रक्षा करे ॥८६॥ 'ओं क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा' यह कान की रक्षा करे 'ओं श्रीं गं गजाननाय स्वाहा' सदा कंधे की रक्षा करे 'ओं ह्रीं विनायकाय स्वाहा' यह सदा पीठ की रक्षा करे ॥८७॥ 'ओं क्लीं ह्रीं' यह ठठरी और वक्षःस्थल की सदा रक्षा करे। ॥८८॥ विघ्ननाश करने वाला (मंत्र) हाथ, पैर और सर्वांग सदा की रक्षा करे। पूर्व दिशा में लम्बोदर रक्षा करें, अग्नि दिशा में विघ्ननायक, दक्षिण में विघ्नेश, नैर्ऋत्य में गजानन, पश्चिम में पार्वतीपुत्र, वायव्य में शंकरात्मज, उत्तर में परिपूर्णतम श्रीकृष्ण के अंश, ईशान में एकदन्त, ऊपर हेरम्ब, नीचे गणाधिप, चारों ओर सर्वपूज्य तथा स्वप्न और

---

१. ख. वृहती। २. क. ओं गो गं श्री०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः । स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः ॥९२॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥९३॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले । वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज ॥९४॥
मया दत्तं च तुभ्यं च यस्मै कस्मै न दास्यसि । परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसंकटतारणम् ॥९५॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥९६॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥९७॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छंकरात्मजम् । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥९८॥
दत्त्वेदं सूर्यपुत्राय विरराम सुरेश्वरः । परमानन्दसंयुक्ता देवास्तस्थुः समीपतः ॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशपूजास्तवकवचकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

नारायण उवाच

देवास्तस्यां सभायां ते सर्वे संहृष्टमानसाः । गन्धर्वा मुनयः शैलाः पश्यन्तः सुमहोत्सवम् ॥१॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा । उवाच विष्णुं प्रणता देवेशं तत्र संसदि ॥२॥

जागरण में योगियों के गुरु मेरी रक्षा करें ॥८९-९२॥ हे वत्स ! इस संसारमोहन नामक परम अद्भुत कवच को मैंने तुम्हें बता दिया है, जो समस्त मन्त्रसमुदाय रूप शरीर धारण किए हुए है ॥९३॥ हे दिनकरात्मज ! पूर्व काल में भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक में वृन्दावन के रासमण्डल में मुझ विनीत को यह कवच प्रदान किया था और आज मैंने तुम्हें प्रदान किया है, अतः इसे जिस किसी को न दे देना। यह परमोत्तम, श्रेष्ठ, सब का पूज्य और समस्त संकट से बचाने वाला है ॥९४-९५॥ गुरु की सविधि अर्चना करके जो यह कवच कण्ठ में या दाहिनी भुजा में धारण करता है वह विष्णु है, इसमें संशय नहीं ॥९६॥ हे ग्रहेन्द्र ! सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ इस कवच की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥९७॥ पुनः इस कवच को बिना जाने जो शंकर-पुत्र गणेश की आराधना करता है, उसके सौ लाख जप करने पर भी मंत्र सिद्धिदायक नहीं होता है ॥९८॥ देवाधीश्वर भगवान् सूर्य-पुत्र शनि को यह संसारमोहन नामक कवच देकर चुप हो गए और देवगण भी परमानन्दमग्न होकर वहीं स्थित हो गए ॥९९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायणसंवाद में गणेश की पूजा, स्तुति और कवच वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

अध्याय १४

कार्तिकेय का जन्म-कथन

नारायण बोले—सभी सभासद—देवता, गन्धर्व, मुनि और पर्वतगण जो उस महोत्सव को देख रहे थे, अत्यन्त प्रसन्नचित्त थे ॥१॥ इसी बीच मन्द हास करती हुई कमल-वदना दुर्गा ने उस सभा में देवेश विष्णु से विनय-विनम्र होकर कहा ॥२॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पार्वत्युवाच

त्वं पाता सर्वजगतां नाथ नाहं जगद्बहिः। कथं मत्स्वामिनो वीर्यममोघं रक्षितं प्रभो॥३॥
रतिभङ्गे कृते देवैर्ब्रह्मणा प्रेरितैस्त्वया। भूमौ निपतितं वीर्यं केन देवेन वै हृतम्॥४॥
सर्वे देवास्त्वत्पुरतस्तदन्विष्यन्तु सादरम्। अराजकं कथं युक्तं तिष्ठति त्वयि राजनि॥५॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः। उवाच देववर्गे च मुनिवर्गे च तिष्ठति ॥६॥

विष्णुरुवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम्। शिवस्यामोघवीर्यं यत्तत्पुरा केन निर्हृतम्॥७॥
सभामानयत क्षिप्रं न चेद्दण्डमिहार्हथ। स किंराजा न शास्ता यः प्रजाबाध्यश्च पाक्षिकः॥८॥
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम्। ऊचुः सर्वे शिवावाक्यैस्त्रासिताः पुरतो हरेः॥९॥

ब्रह्मोवाच

तद्वीर्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते। स वञ्चितो भवत्वत्र पुण्याहे पुण्यकर्मणि॥१०॥

महादेव उवाच

मद्वीर्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते। स वञ्चितो भवत्वत्र सेवने पूजने तव॥११॥

पार्वती बोलीं—हे नाथ! तुम समस्त जगत् के रक्षक हो और मैं भी इस जगत् से बाहर नहीं हूँ। अतः हे प्रभो! मेरे स्वामी का वह अमोघ वीर्य कहाँ सुरक्षित है (बताने की कृपा करें)॥३॥ तुम्हारी प्रेरणा से देवों और ब्रह्मा द्वारा मेरे रतिभंग किये जाने पर उनका वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा था, पता नहीं किस देव ने उसका अपहरण कर लिया॥४॥ (हमारे) सभी देवगण आपके सामने ही उसकी खोज करें—क्योंकि आप ऐसे राजा के अधिकार में ऐसी अराजकता उचित नहीं है॥५॥ पार्वती की ऐसी बात सुन कर जगदीश्वर भगवान् ने हँस कर देवों और मुनियों के समक्ष कहा॥६॥

विष्णु बोले—हे देवगण! मेरी बात सुनो! तुम लोगों ने पार्वती की बात तो सुन ली। पूर्वकाल में शिव के अमोघ वीर्य का किसने अपहरण किया?॥७॥ उसे इस सभा में शीघ्र उपस्थित करो अन्यथा दण्ड के भागी बनोगे। क्योंकि जो शासन ठीक से न करे, प्रजा पीड़ित हो या पक्षपात करे, वह निन्दनीय राजा है॥८॥ भगवान् विष्णु की बात सुनकर सभी ने आपस में विचार-परामर्श किया और पार्वती की बात से त्रस्त होकर उन लोगों ने भगवान् के सामने कहना आरम्भ किया॥९॥

ब्रह्मा बोले—इस पुण्य क्षेत्र भारत में तुम्हारे वीर्य का जिसने अपसरण किया है, वह पुण्य दिवस के पुण्य कर्म से वंचित रह जाये॥१०॥

महादेव बोले—इस पुण्य भूमि भारत में मेरे वीर्य का जिसने अपहरण किया है, वह तुम्हारी सेवा-पूजा से वंचित रहे॥११॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यम उवाच

स वञ्चितो भवत्वत्र शरणागतरक्षणे । एकादशीव्रते चैव तद्वीर्यं येन निर्हृतम् ॥१२॥

इन्द्र उवाच

तद्वीर्यं निर्हृतं येन पापिनां पापमोचने । भवत्वत्र यशो लुप्तं तत्पुण्यं कर्म संततम् ॥१३॥

वरुण उवाच

भवत्वत्र कलौ जन्म[1] वर्षे स्याद्भारते हरे । शूद्रयाजकपत्न्याश्च गर्भे तद्येन निर्हृतम् ॥१४॥

कुबेर उवाच

न्यासहारी स भवतु विश्वासघ्नश्च मित्रहा । सत्यघ्नश्च कृतघ्नश्च तद्वीर्यं येन निर्हृतम् ॥१५॥

ईशान उवाच

परद्रव्यापहारी च स भवत्वत्र भारते । नरघाती गुरुद्रोही तद्वीर्यं येन निर्हृतम् ॥१६॥

रुद्रा ऊचुः

ते मिथ्यावादिनः सन्तु भारते पारदारिकाः । गुरुनिन्दारताः शश्वत्तद्वीर्यं यैश्च निर्हृतम् ॥१७॥

कामदेव उवाच

कृत्वा प्रतिज्ञां यो मूढो न संपालयते भ्रमात् । भाजनं तस्य पापस्य स भवेद्येन तद्धृतम् ॥१८॥

यम बोले—उस वीर्य का अपहरण जिसने किया है, वह शरणागत की रक्षा और एकादशी व्रत से वंचित रह जाये ॥१२॥

इन्द्र बोले—उस वीर्य का जिसने अपहरण किया है, वह पापियों को पाप मुक्त करने में असमर्थ रहे और उसका यश एवं पुण्य कर्म निरन्तर लुप्त होता रहे ॥१३॥

वरुण बोले—हे हरे ! जिसने उसका अपहरण किया है, वह भारतवर्ष में कलि के समय शूद्र को यज्ञ कराने वाले की पत्नी के गर्भ से जन्म ग्रहण करे ॥१४॥

कुंवेर बोले—उस वीर्य का जिसने अपहरण किया है, वह न्यास (धरोहर) का अपहर्त्ता, विश्वासघाती, मित्रहन्ता, सत्यहन्ता एवं कृतघ्न हो ॥१५॥

ईशान बोले—जिसने उस वीर्य का अपहरण किया है वह इस भारत में परधन का अपहारी, नरघाती और गुरुद्रोही हो ॥१६॥

रुद्रगण बोले—उस वीर्य का जिन लोगों ने अपहरण किया है, वे भारत में झूठ बोलने वाले, परस्त्री-लम्पट और गुरु की निन्दा में रत रहें ॥१७॥

कामदेव बोले—जिसने उस (वीर्य) का अपहरण किया है, वह जो मूढ़ भ्रमवश प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता है, उसके पाप का भागी हो ॥१८॥

---

१ क. ०न्म संन्यासो वा भवान्तरे ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्वर्वैद्यावूचतुः

मातुःपितुर्गुरोश्चैव स्त्रीपुत्राणां च पोषणे । भवेतां वञ्चितौ तौ च याभ्यां वीर्यं च तद्धृतम् ॥१९॥

सर्वे देवा ऊचुः

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारो भवन्त्वत्र च भारते । अपुत्रिणो दरिद्राश्च यैश्च वीर्यं हि तद्धृतम् ॥२०॥

देवपत्न्य ऊचुः

ता निन्दन्तु स्वभर्तारं गच्छन्तु परपूरुषम् । सन्तु बुद्धिविहीनाश्च याभिर्वीर्यं हि तद्धृतम् ॥२१॥
देवानां वचनं श्रुत्वा देवीनां च हरिः स्वयम् । कर्मणां साक्षिणं धर्मं सूर्यं चन्द्रं हुताशनम् ॥२२॥
पवनं पृथिवीं तोयं संध्ये रात्रिदिवं मुने । उवाच जगतां कर्ता पाता शास्ता जगत्त्रये ॥२३॥

विष्णुरुवाच

देवैर्न निर्हृतं वीर्यं तदेतत्केन निर्हृतम् । तदमोघं भगवतो महेशस्य जगद्गुरोः ॥२४॥
यूयं च साक्षिणो विश्वे सततं सर्वकर्मणाम् । युष्माभिर्निर्हृतं किंवा किं भूतं वक्तुमर्हथ ॥२५॥
ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कम्पिताश्च ते । परस्परं समालोच्य क्रमेणोचुः पुरो हरेः ॥२६॥

धर्म उवाच

रतेरुत्तिष्ठतो वीर्यं पपात वसुधातले । मया ज्ञातममोघं तच्छंकरस्य प्रकोपतः ॥२७॥

स्वर्वैद्य (अश्विनीकुमार) बोले—जिन्होंने वीर्य का अपहरण किया है, वे माता, पिता, गुरु, स्त्री और पुत्र के पालन-पोषण से वंचित रह जायें ॥१९॥

देवगण बोले—जिन्होंने उस वीर्य का अपहरण किया है, वे भारत में झूठी गवाही देने वाले, निपूत और दरिद्र हों ॥२०॥

देवपत्नियाँ बोलीं—जिन स्त्रियों ने उस वीर्य का हरण किया है, वे अपने पति की निन्दा करने वाली एवं परपुरुषगामिनी हों और सदैव बुद्धिहीना हों ॥२१॥ हे मुने ! देवों और देवियों की ऐसी बातें सुन कर जगत् के कर्ता और तीनों लोकों के शासक एवं रक्षक भगवान् विष्णु ने स्वयं कर्मों के साक्षी धर्म, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल, दोनों संध्याओं, दिन और रात्रि से कहा ॥२२-२३॥

विष्णु बोले—जगद्गुरु एवं भगवान् महेश्वर के अमोघ वीर्य का अपहरण यदि देवों ने नहीं किया है तो किसने उसका अपहरण किया है ? समस्त विश्व में तुम्ही लोग कर्मों के निरन्तर साक्षी हो, अतः तुम्हीं लोगों ने उसका अपहरण किया है या उसका क्या हुआ, बताओ ॥२४-२५॥ उस समय सभा में ईश्वर की ऐसी बातें सुन कर वे लोग काँपने लगे और आपस में परामर्श कर के भगवान् के सामने क्रमशः कहना आरम्भ किया ॥२६॥

धर्म बोले—सुरत के समय क्रुद्ध शंकर के उठते ही उनका वह अमोघ वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा यह मैं जानता हूँ ॥२७॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

क्षितिरुवाच

वीर्यं वोढुमशक्ताऽहं तद्ब्रह्मौ न्यक्षिपं पुरा। अतीव दुर्वहं ब्रह्मन्नबलां क्षन्तुमर्हसि ॥२८॥

अग्निरुवाच

वीर्यं वोढुमशक्तोऽहं न्यक्षिपं शरकानने। दुर्बलस्य जगन्नाथ किं यशः किं च पौरुषम् ॥२९॥

वायुरुवाच

शरेषु पतितं वीर्यं सद्यो बालो बभूव ह। अतीव सुन्दरो विष्णो स्वर्णरेखानदीतटे ॥३०॥

सूर्य उवाच

रुदन्तं बालकं दृष्ट्वाऽगमस्तस्ताचलं प्रति। प्रेरितः कालचक्रेण निशि संस्थातुमक्षमः ॥३१॥

चन्द्र उवाच

रुदन्तं बालकं प्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः। जगाम स्वालयं विष्णो गच्छन्बदरिकाश्रमात् ॥३२॥

जलमुवाच

अमुं रुदन्तमानीय स्तनं दत्त्वा स्तनार्थिने। वर्धयामासुरीशस्य तं ताः सूर्याधिकप्रभम् ॥३३॥

संध्ये ऊचतुः

अधुना कृत्तिकानां च षण्णां तत्पोष्यपुत्रकः। तन्नाम चक्रुस्ताः प्रेम्णा कार्तिकेय इति स्वयम् ॥३४॥

क्षिति बोली—हे ब्रह्मन्! उस अत्यन्त दुर्वह वीर्य का वहन करने में मैं असमर्थ थी, इस लिए उसे मैंने पहले ही अग्नि में डाल दिया। आप मुझ अबला को क्षमा करें ॥२८॥

अग्नि बोले—हे जगन्नाथ! उस वीर्य को वहन करने में मैं भी असमर्थ होकर उसे शर (सरपत) के जंगल में छोड़ दिया, क्योंकि दुर्बल पुरुष का यश और पौरुष क्या है? (अर्थात् कुछ नहीं) ॥२९॥

वायु बोले—हे विष्णो! शरों (सरपतों) में गिरा हुआ वीर्य तुरन्त बालक रूप हो गया, जो अत्यन्त सुन्दर एवं स्वर्णरेखा नदी के तट पर विराजमान हुआ ॥३०॥

सूर्य बोले—मैंने रोदन करते हुए उस बालक को देखा और अस्ताचल चला गया क्योंकि कालचक्र से प्रेरित होने के नाते रात्रि में मैं स्थित नहीं रह सकता ॥३१॥

चन्द्र बोले—हे विष्णो! बदरिकाश्रम से जाती हुई कृत्तिकाओं ने उस रोदन करते हुए बालक को लेकर अपने घर को प्रस्थान किया ॥३२॥

जल बोले—(शिव के) उस रोदन करते बालक को, जो दुग्ध-पान के लिए मचल रहा था और सूर्य से अधिक प्रभापूर्ण था, कृत्तिकाओं ने दुग्धपान कराया और वे पालन-पोषण करने लगीं ॥३३॥

संध्याएँ बोलीं—इस समय वह पुत्र छह कृत्तिकाओं का पोष्य हुआ है और प्रेमवश उन लोगों ने उसका 'कार्तिकेय' नामकरण भी स्वयं किया है ॥३४॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रात्रिरुवाच

न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम् । प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पोष्टा तस्य पुत्रकः ॥३५॥

दिनमुवाच

यानि यानि च वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च । प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासरेव तम् ॥३६॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संतुष्टो मधुसूदनः । ते सर्वे हरिमित्यूचुः सभायां हृष्टमानसाः ॥३७॥
पुत्रस्य वार्तां संप्राप्य पार्वती हृष्टमानसा । कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौ बहुधनानि च ॥३८॥
ददौ सर्वाणि विप्रेभ्यो वासांसि विविधानि च ॥३९॥
लक्ष्मीः सरस्वती मेना सावित्री सर्वयोषितः । विष्णुश्च सर्वदेवाश्च ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धनम् ॥४०॥

इति० श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० कार्तिकेयजन्मकथनं
नाम चतुदशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

पुत्रस्य वार्तां संप्राप्य पार्वत्या सह शंकरः । प्रेरितो विष्णुना देवैर्मुनिभिः पर्वतैर्मुने ॥१॥

रात्रि बोली—वे कृत्तिकाएँ उस बालक को अपनी आँखों के सामने से कभी अलग नहीं करती हैं। वह प्राणों से भी अधिक प्रेमपात्र है। जो पालन करता है, उसी का पुत्र होता है ॥३५॥

दिन बोला—तीनों लोकों में जो अति स्वादिष्ठ एवं दुर्लभ पदार्थ हैं, वे ही उस बच्चे को उन्होंने भोजन कराये ॥३६॥

इस प्रकार सभा में सुप्रसन्न होकर उन लोगों ने भगवान् से कहा और उनकी बातें सुनकर भगवान् मधुसूदन भी अति प्रसन्न हुए ॥३७॥ पुत्र की वार्ता सुनकर पार्वती अति हर्षित हुईं और उन्होंने ब्राह्मणों को पुनः करोड़ों रत्न और बहुत धन प्रदान किये। सभी ब्राह्मणों को अनेक भाँति के वस्त्र भी दिये ॥३८-३९॥ अनन्तर लक्ष्मी, सरस्वती, मेना, सावित्री आदि समस्त स्त्रियों तथा समस्त देवों समेत विष्णु ने ब्राह्मणों को धन दान दिया ॥४०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
कार्तिकेय-जन्म-कथन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

अध्याय १५

नन्दकेश्वर और कार्तिकेय का संवाद

नारायण बोले—हे मुने! पार्वती समेत शिव ने पुत्र का समाचार जानने के उपरान्त भगवान् विष्णु, देवों, मुनियों और पर्वतों द्वारा प्रेरित होकर महाबली एवं पराक्रमी दूतों को (उसे लाने के लिए) भेजा। जिनमें

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दूतान्प्रस्थापयामास महाबलपराक्रमान्। वीरभद्रं विशालाक्षं शङ्कुकर्णं[1] कबन्धकम् ॥२॥
नन्दीश्वरं[2] महाकालं वज्रदन्तं [3]भगन्दरम्। गोधामुखं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥३॥
लक्षं च क्षेत्रपालानां भूतानां च त्रिलक्षकम्। वेतालानां चतुर्लक्षं यक्षाणां पञ्चलक्षकम् ॥४॥
कूष्माण्डानां चतुर्लक्षं त्रिलक्षं ब्रह्मरक्षसाम्। डाकिनीनां चतुर्लक्षं योगिनीनां त्रिलक्षकम् ॥५॥
रुद्रांश्च भैरवांश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान्। [4]अन्यांश्च विकृताकारानसंख्यानपि नारद ॥६॥
ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रास्त्रपाणयः। कृत्तिकानां च भवनं वेष्टयामासुरुज्ज्वलम् ॥७॥
दृष्ट्वा तान्कृत्तिकाः सर्वा[5] भयविह्वलमानसाः। कार्तिकं कथयामासुर्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥८॥

कृत्तिका ऊचुः

वत्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम्। न जानीमो वयं कस्य करालानि च बालक ॥९॥

कार्तिकेय उवाच

भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वो मयि स्थिते। दुर्निवार्यः कर्मपाको मातरः केन वार्यते ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सेनानीर्नन्दिकेश्वरः। पुरतः कार्तिकेयस्य तिष्ठंस्तासामुवाच ह ॥११॥

नन्दिकेश्वर उवाच

भ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातुश्चपि शुभावहम्। प्रेषितस्य सुरेन्द्रस्य संहर्तुः शंकरस्य च ॥१२॥

वीरभद्र, विशालाक्ष, शंकुकर्ण, कवन्धक, नंदीश्वर, महाकाल, वज्रदन्त, भगन्दर, गोधामुख, प्रज्वलित अग्नि-शिखा के समान दधिमुख, एक लाख क्षेत्रपाल, तीन लाख भूतगण, चार लाख वेताल, पांच लाख यक्ष, चार लाख कूष्माण्ड, तीन लाख ब्रह्मराक्षस, तीन लाख डाकिनियाँ और तीन लाख योगिनियाँ थीं ॥१-५॥ हे नारद! शिव के समान पराक्रमी रुद्रगण, भैरवगण और अन्य विकृत आकार वाले असंख्य गण थे ॥६॥ शिव के इन दूतों ने हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर कृत्तिकाओं के उज्ज्वल भवन को चारों ओर से घेर लिया ॥७॥ अनन्तर सभी कृत्तिकाओं के चित्त इन दूतों को देखकर आकुल हो गये। वे ब्रह्मतेज से देदीप्यमान कार्तिकेय से कहने लगीं ॥८॥

कृत्तिकाएँ बोलीं—हे वत्स! हे बालक! असंख्य सेनाओं ने आकर गृह को चारों ओर से घेर लिया है, हम लोग नहीं जानतीं कि—ये भयंकर सेनायें किसकी हैं ॥९॥

कार्तिकेय बोले—हे मंगलमयी! भय मत करो, मेरे रहते तुम्हें भय क्या है? हे माताओ! इस दुर्निवार कर्मफल को कौन रोक सकता है? ॥१०॥ इसी बीच सेनानायक नन्दिकेश्वर ने उनके समक्ष कार्तिकेय से कहा ॥११॥

नन्दिकेश्वर बोले– हे भ्रातः! माता जी का शुभ सन्देश मुझसे सुनो तथा प्रेषित सुरेन्द्र एवं संहर्ता

---

१ क. करक्रमम्। २ क. ०कायं व०। ३ क. भलन्दनम्। ४ क. भूतानां च पिशाचानामसं०। ५ क. ०र्वान्म०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः। सभायां ते वसन्तश्च गणेशोत्सवमङ्गले ॥१३॥
शैलेप्रन्द्रकन्या तं विष्णुं जगतां परिपालकम्। संबोध्य कथयामास तवान्वेषणकारणम् ॥१४॥
पप्रच्छ देवान्विष्णुस्तान्क्रमेणाऽऽवाप्तिहेतवे। प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकं च यथोचितम् ॥१५॥
त्वमत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम्। सर्वे धर्मादयो देवा धर्माधर्मस्य साक्षिणः ॥१६॥
या बभूव रहः क्रीडा पार्वतीशिवयोः पुरा। दृष्टस्य च सुरैः शंभोर्वीर्यं भूमौ पपात ह ॥१७॥
भूमिस्तदक्षिपद्वह्नौ वह्निश्च शरकानने। ततो लब्धः कृत्तिकाभिरमूभिर्गच्छ सांप्रतम् ॥१८॥
तवाभिषेकं विष्णुश्च करिष्यति सुरैः सह। शस्त्रं लब्ध्वाऽखिलं देव तारकं संहनिष्यसि ॥१९॥
पुत्रस्त्वं विश्वसंहर्तुस्त्वां गोप्तुं न क्षमा इमाः। नाग्निं गोप्तुं यथा शक्तः शुष्कवृक्षः स्वकोटरे ॥२०॥
दीप्तिमांस्त्वं च विश्वेषु तासां गेहे न शोभसे। यथा पतन्महाकूपे द्विजराजो न राजते ॥२१॥
करोषि जगदालोकं नाच्छन्नोऽस्यङ्गतेजसा। यथा सूर्यः कराच्छन्नो न भवेत्पूरुषस्य च ॥२२॥
विष्णुस्त्वं च जगद्व्यापी नाऽऽसां व्याप्योऽसि शांभव। यथा न केषां व्याप्यं च तत्सर्वं व्यापकं नभः ॥२३॥
योगीन्द्रो नानुलिप्तस्त्वं भोगी च परिपोषणे। नैव लिप्तो यथाऽऽत्मा च कर्मभोगेषु जीविनाम् ॥२४॥
विश्वाधारस्त्वमीशश्च नामृते संभवेत्स्थितिः। सागरस्य यथा नद्यां सरितामाश्रयस्य च ॥२५॥

शिव का भी (संदेश सुनो)। कैलाश पर्वत पर ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि देवगण सभा में स्थित होकर गणेश जी का मंगलोत्सव मना रहे थे। इसी बीच शैलराज की पुत्री पार्वती ने समस्त जगत् के पालन करने वाले भगवान् विष्णु को सम्बोधित कर तुम्हारे खोजने के विषय में कहा ॥१२-१४॥ अनन्तर विष्णु ने तुम्हारी प्राप्ति के लिए क्रमशः सभी देवों से पूछा और उन लोगों ने एक-एक करके यथोचित उत्तर भी प्रदान किया ॥१५॥ धर्माधर्म के साक्षी सभी धर्म आदि देवों ने ईश्वर से बताया कि तुम इसी कृत्तिकाओं के स्थान में रह रहे हो। पूर्वकाल में शिव-पार्वती का जो एकान्तवास हुआ था, उसमें शिव जी का वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा था, जिसे सभी देवों ने देखा था। पृथ्वी ने उसे अग्नि में डाल दिया और अग्नि ने सरपत के जंगल में। उसी स्थान से कृत्तिकाओं ने तुम्हें प्राप्त किया, अतः तुम अभी चलो। हे देव! समस्त देवों समेत भगवान् विष्णु तुम्हारा अभिषेक करेंगे और समस्त शस्त्र प्राप्त होने पर आप तारकासुर का वध करेंगे। तुम समस्त विश्व के संहर्ता भगवान् शिव के पुत्र हो। ये सब तुम्हें छिपाने में उसी भाँति असमर्थ हैं जैसे सूखा वृक्ष अपने कोटर में स्थित अग्नि को ॥१६-२०॥। समस्त विश्व में तुम देदीप्यमान हो, जिस प्रकार महाकूप में गिरे हुए चन्द्रमा की शोभा नहीं होती है, उसी भाँति इन (कृत्तिकाओं) के घर में रहने से तुम्हारी शोभा नहीं हो रही है ॥२१॥ तुम अपने अंगतेज से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित कर रहे हो, किन्तु इन लोगों के तेज से उसी प्रकार आच्छन्न नहीं हो, जैसे पुरुष के हाथ से सूर्य नहीं ढके जा सकते। ॥२२॥ हे शम्भुपुत्र! तुम समस्त जगत् में व्याप्त रहने वाले विष्णु हो, जिस प्रकार आकाश किसी (एक का) व्याप्त न होकर समस्त का व्यापक है, उसी भाँति तुम इन लोगों के व्याप्य नहीं हो ॥२३॥ तुम योगिराज हो और भलीभाँति पोषण करने में भोगी हो, किन्तु इसमें लिप्त नहीं हो, जैसे जीवों के कर्मभोगों में आत्मा नहीं लिप्त होता है ॥२४॥ तुम समस्त विश्व के आधार और अधीश्वर हो। जिस प्रकार सरिताओं के आश्रयभूत सागर की स्थिति नदी में नहीं हो सकती है, उसी प्रकार तुम्हारी स्थिति अमृत में सम्भव नहीं है ॥२५॥ जिस प्रकार गरुड़

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नहि सर्वेश्वरावासः संभवेत्कृत्तिकालये । गरुडस्य यथा वासः क्षुद्रे च चटकोदरे ॥२६॥
त्वां च देवा न जानन्ति भक्तानुग्रहविग्रहम् । गुणानां तेजसां राशिं यथाऽऽत्मानमयोगिनः ॥२७॥
त्वामनिर्वचनीयं च कथं जानन्ति कृत्तिकाः । यथा परां हरेर्भक्तिमभक्ता मूढचेतसः ॥२८॥
भ्रातर्यं यं न जानन्ति ते तं कुर्वन्त्यनादरम् । नाऽऽद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकावासं च पङ्कजम् ॥२९॥

कार्तिकेय उवाच

भ्रातः सर्वं विजानामि ज्ञानं त्रैकालिकं च यत् । ज्ञानी त्वं का प्रशंसा ते यतो मृत्युंजयाश्रितः ॥३०॥
कर्मणा जन्म येषां वा यासु यासु च योनिषु । तासु ते निर्वृतिं भ्रातर्नाऽऽप्नुवन्ति च संततम् ॥३१॥
ये यत्र सन्ति सन्तो वा मूढा वा कर्मभोगतः । तेऽपि तं बहु मन्यन्ते मोहिता विष्णुमायया ॥३२॥
सांप्रतं जगतां माता विष्णुमाया सनातनी । सर्वाद्या सर्वरूपा च सर्वदा सर्वमङ्गला ॥३३॥
शैलेन्द्रपत्नी गर्भे सा चालभज्जन्म भारते । दारुणं च तपस्तप्त्वा संप्राप च्छंकरं पतिम् ॥३४॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव कृत्रिमम् । सर्वे कृष्णोद्भवाः काले विलीनास्तत्र केवलम् ॥३५॥

का निवास क्षुद्र चटक (गौरइया) पक्षी के उदर में नहीं हो सकता है, उसी भाँति सर्वाधीश्वर का आवास कृत्तिकाओं के घर में असम्भव है ॥२६॥ तुम भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करते हो, गुणों और तेजों की राशि हो, तुम्हें देवगण उसी भाँति नहीं जानते हैं, जैसे योग न साधने वाले आत्मा को ॥२७॥ तुम अनिर्वचनीय को कृतिकाएँ किस प्रकार जानती हैं, जैसे भक्ति न करने वाले अज्ञानी मनुष्य भगवान् की पराभक्ति को (नहीं जानते हैं) ॥२८॥ अतः हे भ्रातः ! जो जिसे नहीं जानते हैं वे उसका अनादर करते हैं जैसे एक जगह रह कर भी मेढक कमल का आदर नहीं करते ॥२९॥

कार्तिकेय बोले—हे भ्रातः ! मैं तीनों काल का सम्पूर्ण ज्ञान रखता हूँ। और तुम भी मृत्युञ्जय (शिव) के आश्रित रहने के नाते ज्ञानी हो, इसलिए तुम्हारी क्या प्रशंसा की जाये ॥३०॥ हे भ्रातः ! कर्मवश जिनका जिन-जिन योनियों में जन्म हुआ है, वे निरन्तर उनसे छुटकारा नहीं पाते हैं ॥३१॥ क्योंकि कर्मभोगानुसार महात्मा या मूर्ख कोई भी जिस योनि का शरीर धारण करता है वह विष्णु की माया से मोहित होने के नाते उसी को बहुत सम्मानित समझता है ॥३२॥ सम्प्रति जगत् की माता पार्वती, जो भगवान् विष्णु की माया, सनातनी, सर्वाद्या, सर्वरूपा, सर्वदा सर्वमंगला हैं, भारत में शैलराज (हिमालय) की पत्नी (मैना) के गर्भ से प्रकट हुई हैं, और भीषण तप करके शिव को पतिरूप में प्राप्त किया है ॥३३-३४॥ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी मिथ्या और कृत्रिम हैं। सभी भगवान् श्रीकृष्ण से उत्पन्न होकर अन्त में उन्हीं में विलीन हो जाते हैं ॥३५॥ प्रत्येक कल्प में जगज्जननी पार्वती

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कल्पे कल्पे जगन्माता माता मे प्रतिजन्मनि। यज्जन्मसायया बद्धो नित्यः सृष्टिविधावहम् ॥३६॥
प्रकृतेरुद्भवाः सर्वा जगत्यां सर्वयोषितः। काश्चिदंशाः कलाः काश्चित्कलांशांशेन काश्चन ॥३७॥
कृत्तिका ज्ञानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतेः कलाः। स्तन्येनाऽऽभिर्वर्धितोऽहमुपहारेण संततम् ॥३८॥
तासामहं पोष्यपुत्रो मदम्बाः पोषणादिमाः। तस्याश्च प्रकृतेः पुत्रो गतस्त्वत्स्वामिवीर्यतः ॥३९॥
न गर्भजोऽहं शैलेन्द्रकन्याया नन्दिकेश्वर। सा च मे धर्मतो माता तथेमा सर्वसंमताः ॥४०॥
स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया। अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यकाः ॥४१॥
सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा ॥४२॥
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः ॥४३॥
इमाश्च सर्वसिद्धिज्ञाः परमैश्वर्यसंयुताः। न क्षुद्रा ब्रह्मणः कन्यास्त्रिषु लोकेषु पूजिताः ॥४४॥
विष्णुना प्रेरितस्त्वं च शंभोः पुत्रसमो महान्। गच्छ यामि त्वया सार्धं द्रक्ष्यामि सुरसंचयम् ॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० नन्दिकार्तिकेयसंवादो नाम
पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

प्रति जन्म में मेरी माता होती हैं और मैं सृष्टि के समय माया द्वारा नित्य आवद्ध होकर उन्हीं से जन्म ग्रहण करता हूँ। ॥३६॥ सारे जगत् की समस्त स्त्रियाँ प्रकृति से ही उत्पन्न हुई हैं, यह सत्य है—कोई प्रकृति का अंश, कोई कला और कोई कला का अंशांश भाग हैं॥३७॥ ज्ञानवती एवं योगिनी कृत्तिकाएँ भी प्रकृति की कलाएँ हैं, जिन्होंने अपने स्तन-दुग्ध का उपहार देकर मेरा सम्वर्द्धन किया है॥३८॥ मैं उनका योग्य पुत्र हूँ और वे मेरी माताएँ हैं। तुम्हारे स्वामी के वीर्य द्वारा मैं उत्पन्न हुआ हूँ, अतः प्रकृति (पार्वती) का भी पुत्र हूँ, किन्तु हे नन्दिकेश्वर! शैलेन्द्र-कन्या (पार्वती) का मैं गर्भजन्य पुत्र नहीं हूँ। वह हमारी धर्म की माता हैं। उसी प्रकार ये भी मेरी सर्वसम्मत माताएँ हैं॥३९-४०॥ क्योंकि स्तन का दूध पिलाने वाली, गर्भ धारण कर उत्पन्न करने वाली, भोजन देने वाली, गुरु की पत्नी, अभीष्ट देव की पत्नी, पिता की पत्नी (माता), कन्या, गर्भिणी कन्या, भगिनी, पुत्र की पत्नी (बहू), स्त्री की माता (सास), माता की माता (नानी), पिता की माता (दादी), सहोदर की पत्नी, माता और पिता की भगिनी और मातुलानी (मामी), ये सोलह प्रकार की स्त्रियाँ मनुष्यों की वेदविहित माता होती हैं॥४१-४३॥ इसलिए सम्पूर्ण सिद्धियों को जाननेवाली एवं परमैश्वर्यसम्पन्न ये ब्रह्मा की कन्यायें क्षुद्र नहीं हैं। इनकी तीनों लोकों में पूजा होती है॥४४॥ तुम भी शिव के महान् पुत्र के समान हो और भगवान् विष्णु के भेजे हुए हो, अतः चलो, तुम्हारे साथ मैं भी चलकर देव-समूह का दर्शन करूँगा॥४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में नन्दि-कार्तिकेय-संवाद-कथन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥१५॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

षोडशोऽध्यायः

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा तं शीघ्रं बोधयित्वा च कृत्तिकाः। उवाच नीतियुक्तं च वचनं शंकरात्मजः ॥१॥

कार्तिकेय उवाच

यास्यामि शंकरस्थानं द्रक्ष्यामि सुरसंचयम्। मातरं बन्धुवर्गांश्चाप्याऽऽज्ञां मे दत्त मातरः ॥२॥
दैवाधीनं जगत्सर्वं जन्म कर्म शुभाशुभम्। संयोगश्च वियोगश्च न च दैवात्परं बलम् ॥३॥
कृष्णायत्तं च तद्दैवं स च दैवात्परस्ततः। भजन्ति सततं सन्तः परमात्मनमीश्वरम् ॥४॥
दैवं वर्धयितुं शक्तः क्षयं कर्तुं स्वलीलया। न दैवबद्धस्तद्भक्तश्चाविनाशीति निर्णयः ॥५॥
तस्माद्भजत गोविन्दं मोहं त्यजत दुःखदम्। सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युभयापहम् ॥६॥
परमानन्दजनकं मोहजालनिकृन्तनम्। शश्वद्भजन्ति यत्सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७॥
कोऽहं भवाब्धौ युष्माकं का वा यूयं ममाम्बिकाः। तत्कर्मस्रोतसां सर्वं पुञ्जीभूतं च फेनवत् ॥८॥
संश्लेषं वा वियोगं वा सर्वमीश्वरचिन्तया। ब्रह्माण्डमीश्वराधीनं न स्वतन्त्रं विदुर्बुधाः ॥९॥
जलबुद्बुदवत्सर्वमनित्यं च जगत्त्रयम्। मायामनित्ये कुर्वन्ति मायया मूढचेतसः ॥१०॥

अध्याय १६

कार्तिकेय का आगमन

नारायण बोले—शिव के पुत्र कुमार ने इतना उन (नन्दिकेश्वर) से कहकर शीघ्र कृत्तिकाओं को भी समझाया और पुनः उन लोगों से नीतियुक्त वचन कहना आरम्भ किया ॥१॥

कार्तिकेय बोले—हे माताओ! मैं देवों को देखने के लिए शंकर जी के यहाँ (कैलाश) जा रहा हूँ, वहाँ माता जी एवं बन्धु-वर्गों का दर्शन करूँगा, अतः आज्ञा देने की कृपा करें ॥२॥ (कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि) समस्त जगत् जन्म, शुभाशुभ कर्म और संयोग-वियोग सभी कुछ दैव (भाग्य) के अधीन रहता है, अतः दैवबल से बढ़कर कोई दूसरा बल नहीं है ॥३॥ और वह दैव भगवान् श्रीकृष्ण के अधीन है क्योंकि वे दैव से भी परे हैं। इसीलिए उस परमात्मा ईश्वर को सन्त लोग सदैव भजते हैं ॥४॥ वह लीला की भाँति दैव को बढ़ा सकता है और नष्ट कर सकता है। उसका भक्त दैव के अधीन नहीं रहता है, अविनाशी होता है, ऐसा सभी का निर्णय है ॥५॥ इसलिए दुःखदायी मोह का त्याग कर गोविन्द को भजो, जो सुखदायक, मोक्षप्रद, सारभूत, जन्म, मृत्यु एवं भय के नाशक, परमानन्द के जनक तथा मोहजाल को काटने वाले हैं और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि जिनका निरन्तर भजन करते रहते हैं ॥६-७॥ क्योंकि इस संसार-सागर में तुम लोगों का मैं कौन हूँ और तुम लोग हमारी कौन हो! सब कर्मों की धाराओं के पूंजीभूत फेन के समान हैं ॥८॥ (सभी का) संयोग-वियोग आदि सब कुछ ईश्वर के अधीन है, यहाँ तक कि समस्त ब्रह्माण्ड भी ईश्वर के अधीन है, स्वतंत्र नहीं है, ऐसा विद्वानों का कहना है ॥९॥ जल के बुल्ले की भाँति तीनों जगत् अनित्य (नश्वर) हैं। इस नश्वर जगत् में मायामोहित चित्त वाले ही माया का कार्य करते हैं ॥१०॥ किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण में दत्त-

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सन्तस्तत्र न लिप्यन्ते वायुवत्कृष्णचेतसः। तस्मान्मोहं परित्यज्य चाऽज्ञप्तिं दत्त मातरः ॥११॥
इत्येवमुक्त्वा ता नत्वा सार्धं शंकरपार्षदैः। यात्रां चकार भगवान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम्। विश्वकर्मकृतं रम्यं हीरकेण विराजितम् ॥१३॥
सद्रत्नसाररचितं माणिक्येन विराजितम्। पारिजातप्रसूनानां मालाजालैश्च शोभितम् ॥१४॥
मणीन्द्रदर्पणैः श्वेतचामरैरतिदीपितम्। क्रीडार्हमन्दिरैरम्यैश्चित्रितैश्चित्रितं वरम् ॥१५॥
शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम्। प्रस्थापितं च पार्वत्या वेष्टितं पार्षदैर्वरैः ॥१६॥
तमारुहन्तं यानं ता हृदयेन विदूयता। सहसा चेतनां प्राप्य मुक्तकेश्यः शुचाऽऽतुराः ॥१७॥
दृष्ट्वा च स्वपुरः स्कन्दं स्तम्भिताश्चातिशोकतः। उन्मत्ता इव तत्रैव वक्तुमारेभिरे भिया ॥१८॥

कृत्तिका ऊचुः

किं कुर्मः क्व च यास्यामो वयं वत्स त्वदाश्रयाः। विहायास्मान्क्व यासि त्वं नायं धर्मस्तवाधुना ॥१९॥
स्नेहेन वर्धितोऽस्माभिः पुत्रोऽस्माकं स्वधर्मतः। नायं धर्मो मातृवर्गाननुरक्तः सुतस्त्यजेत् ॥२०॥
इत्युक्त्वा कृत्तिकाः सर्वाः कृत्वा वक्षसि तं सुतम्। पुनर्मूर्च्छामवापुस्ताः सुतविच्छेददारुणम् ॥२१॥
कुमारो बोधयित्वा ता अध्यात्मवचनेन वै। ताभिश्च पार्षदैः सार्धमारुरोह रथं मुने ॥२२॥

चित्त वाले सज्जन लोग इसमें वायु की भाँति रहकर लिप्त नहीं होते हैं। इसलिए हे माताओ! मोह छोड़कर मुझे आज्ञा प्रदान करो ॥११॥ इस भाँति उन्हें समझा-बुझाकर एवं उन्हें नमस्कार करके भगवान् कुमार ने श्री हरि का स्मरण करते हुए शंकर-पार्षदों के साथ यात्रा आरम्भ की ॥१२॥ इसी बीच उन्हें वहाँ एक उत्तम रथ दिखायी पड़ा, जो विश्वकर्मा द्वारा सुरचित, रम्य, हीरा जड़ित, उत्तम रत्नों के सारभाग से निर्मित, माणिक्य से सुशोभित और पारिजात के पुष्पों की मालाओं से सुशोभित था ॥१३-१४॥ उसमें उत्तम मणियों के दर्पण सुसज्जित थे तथा वह श्वेत चामरों से अति दीपित और रम्य एवं चित्रविचित्र क्रीड़ा मन्दिरों से चित्रित होने के नाते अत्युत्तम था ॥१५॥ वह अतिविस्तृत था। उसमें सौ पहिये (चक्के) लगे थे। वह मन की भाँति चलने वाला और मनोहर था। उसे पार्वती जी ने अनेक उत्तम पार्षदों समेत भेजा था ॥१६॥ उनके रथ पर बैठते समय कृत्तिकाओं को महान् हार्दिक दुःख हुआ। वे सहसा चेतना प्राप्त कर केश खोले एवं शोक से उद्विग्न हो गईं ॥१७॥ अति शोक के कारण स्तम्भित-सी होकर वे कृतिकाएँ अपने सामने स्कन्द को देखते ही पागल-सी हो गयीं और भय से कहने लगीं ॥१८॥

कृतिकाएँ बोलीं—हे वत्स! हम तुम्हारे आश्रित होकर अब क्या करें, कहाँ जायें, तुम हमें छोड़ कर कहाँ जा रहे हो? इस समय तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है ॥१९॥ हम लोगों ने तुम्हें अतिस्नेह से पाला-पोसा है। अपने धर्म के अनुसार तुम हमारे पुत्र हो। यह धर्म नहीं है कि पुत्र इस प्रकार निष्ठुर होकर मातृवर्ग का त्याग करे ॥२०॥ इतना कहकर वे कृतिकाएं पुत्र को अपने वक्षःस्थल (गोद) से लगाकर पुनः मूर्च्छित हो गयीं, क्योंकि पुत्र-वियोग अति भीषण होता है ॥२१॥ हे मुने! अनन्तर कुमार ने उन्हें अध्यात्म सम्बन्धी बातों से आश्वासन दिया और स्वयं कृत्तिकाओं समेत पार्षदों के साथ रथ पर बैठ गये ॥२२॥ हे मुने! (यात्रा के समय)

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पूर्णकुम्भं द्विजं वेश्यां शुक्लधान्यानि दर्पणम्। दध्याज्यं मधु लाजांश्च पुष्पं दूर्वाक्षतान्सितान् ॥२३॥
वृषं गजेन्द्रं तुरगं ज्वलदग्निं सुवर्णकम्। पूर्णं च परिपक्वानि फलानि विविधानि च ॥२४॥
पतिपुत्रवतीं नारीं प्रदीपं मणिमुत्तमम्। मुक्तां प्रसूनमालां च सद्योमांसं च चन्दनम् ॥२५॥
ददर्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि पुरो मुने। शृगालं नकुलं कुम्भं शवं वामे शुभावहम् ॥२६॥
राजहंसं मयूरं च खञ्जनं च शकं पिकम्। पारावतं शङ्खचिल्लं चक्रवाकं च मङ्गलम् ॥२७॥
कृष्णसारं च सुरभिं चमरीं श्वेतचामरम्। धेनुं च वत्ससंयुक्तां पताकां दक्षिणे शुभाम् ॥२८॥
नानाप्रकारवाद्यं चाप्यशौषीन्मङ्गलध्वनिम्। [1]मनोहरं च संगीतं घण्टाशङ्खध्वनिं तथा ॥२९॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा मङ्गलं स ह्यगमत्तातमन्दिरम्। क्षणेनाऽऽनन्दयुक्तश्च मनोयायिरथेन च ॥३०॥
कुमारः प्राप्य कैलासं न्यग्रोधाक्षयमूलके। क्षणं तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह ॥३१॥
पार्वती मङ्गलं कृत्वा राजमार्गं मनोहरम्। पद्मरागैरिन्द्रनीलैः संस्कृतं परितः पुरम् ॥३२॥
रम्भास्तम्भसमूहैश्च पट्टसूत्रांशुकैस्तथा। श्रीखण्डपल्लवैर्युक्तं पूर्णकुम्भैः सुशोभितम् ॥३३॥
पूर्णकुम्भजलैर्व्याप्तं सिक्तं चन्दनवारिभिः। असंख्यरत्नदीपैश्च मणिराजैर्विराजितम् ॥३४॥
नटनर्तकवेश्यानामुत्सवैः संकुलं सदा। वन्दिभिर्विप्रवर्गैश्च दूर्वापुष्पकरैर्युतम् ॥३५॥
पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिश्च समन्वितम्। लक्ष्मीं सरस्वतीं गङ्गां सावित्रीं तुलसीं रतिम् ॥३६॥

(जल) पूर्ण कलश, ब्राह्मण, वेश्या, शुक्ल धान्य (चावल), दर्पण, दही, घी, मधु, लावा, पुष्प, दूर्वा, श्वेत अक्षत, बैल, गजराज, अश्व, प्रज्वलित अग्नि, सुवर्ण, पूरे पके अनेक प्रकार के फल, पतिपुत्रवती स्त्री, प्रदीप, उत्तम मणि, मोती, पुष्पमाला, तुरन्त का (ताजा) मांस और चन्दन इन मांगलिक वस्तुओं को सामने देखा। इसी प्रकार स्यार (गीदड़), नेवला, घड़ा और शव को वाम भाग में देखा, जो शुभ होता है ॥२३-२६॥ राजहंस, मोर, खञ्जन पक्षी, तोता, कोकिल, कबूतर, शंख, गीध, चकवा, कृष्णसार (मृग), सुरभी और चंवरी गौ, श्वेतचामर, वत्स समेत धेनु एवं पताका को दाहिनी ओर देखा ॥२७-२८॥ मंगल ध्वनि करने वाले अनेक प्रकार के वाद्य, मनोर संगीत, तथा घंटा और शंख की ध्वनि सुनकर एवं मंगल का दर्शन करने के उपरान्त कुमार आनन्द युक्त होते हुए मनोवेग रथ द्वारा अपने पिता के भवन को चले ॥२९-३०॥ कैलाश पर पहुँचकर कृत्तिकाओं और उत्तम पार्षदों के साथ रथ से उतरे और क्षणभर अक्षयवट के नीचे ठहरे ॥३१॥ पार्वती ने मंगल करके मनोहर राजमार्ग को पद्मराग मणि, इन्द्रनीलमणि से चारों ओर से संस्कृत, अनेक कदलीस्तम्भों, रेशमी वस्त्रों और श्रीखण्ड के पल्लवों से युक्त पूर्ण कलशों से सुशोभित और जलपूर्ण कलशों से व्याप्त, चन्दन मिश्रित जल से सिक्त तथा मणिराजों एवं असंख्य दीपकों से विराजमान किया। नगर नटों, नर्तकों तथा वेश्याओं के उत्सवों से व्याप्त हो गया। वहाँ हाथों में दूब तथा फूल लिए बन्दियों एवं ब्राह्मणों का वर्ग, पतिपुत्रवती नारियाँ एवं पतिव्रतायें थीं। तब पार्वती लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, तुलसी, रति, अरुन्धती,

---

१ क. हरिशब्दस्य सं०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अरुन्धतीमहल्यां च दितिं तारां मनोरमाम्। अदितिं शतरूपां च शचीं संध्यां च रोहिणीम् ॥३७॥
अनसूयां तथा स्वाहां संज्ञां वरुणकामिनीम्। आकूतिं च प्रसूतिं च देवहूतिं च मेनकाम् ॥३८॥
तामेकपाटलामेकपर्णां मैनाककामिनीम्। वसुंधरां च मनसां पुरस्कृत्य समाययौ ॥३९॥
रम्भा तिलोत्तमा मेना घृताची मोहिनी शुभा। उर्वशी रत्नमाला च सुशीला ललिता कला ॥४०॥
कदम्बमाला सुरसा वनमाला च सुन्दरी। एताश्चान्याश्च बहवो विप्रेन्द्राप्सरसां गणाः ॥४१॥
संगीतनर्तनपराः सस्मिता वेषसंयुताः। करतालकराः सर्वा जग्मुरानन्दपूर्वकम् ॥४२॥
देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः किन्नरास्तथा। सर्वे ययुः प्रमुदिताः कुमारस्यानुमज्जने ॥४३॥
नानाप्रकारवाद्यैश्च रुद्रैर्वा पार्षदैः सह। भैरवैः क्षेत्रपालैश्च ययौ सार्धं महेश्वरः ॥४४॥
अथ शक्तिधरो हृष्टो दृष्ट्वाऽऽरात्पार्वतीं तदा। अवरुह्य रथात्तूर्णं शिरसा प्रणनाम ह ॥४५॥
तं पद्माप्रमुखं देवीगणं च मुनिकामिनीः। शिवं च परया भक्त्या सर्वान्संभाष्य यत्नतः ॥४६॥
कार्तिकेयं शिवा दृष्ट्वा क्रोडे कृत्वा चुचुम्ब च। शंकरश्च सुराः शैला देव्यो वै शैलयोषितः ॥४७॥
पार्वतीप्रमुखा देव्यस्तथा देवश्च शंकरः। शैलाश्च मुनयः सर्वे ददुस्तस्मै शुभाशिषः ॥४८॥
कुमारः सगणैः सार्धमागत्य च शिवालयम्। ददर्श तं सभामध्ये विष्णुं क्षीरोदशायिनम् ॥४९॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। धर्मब्रह्मेन्द्रचन्द्रार्कवह्निवाय्वादिभिर्युतम् ॥५०॥

अहल्या, दिति, सुन्दरी तारा, अदिति, शतरूपा, इन्द्राणी, सन्ध्या, रोहिणी, अनसूया, स्वाहा, संज्ञा, वरुण-स्त्री, आकूति, प्रसूति, देवहूति, मेनका, मैनाक की एक पाटला एवं एकपर्णा स्त्री, वसुन्धरा और मनसा को आगे करके वहाँ आयीं ॥३२-३९॥ हे विप्रेन्द्र ! रम्भा, तिलोत्तमा, मेना, घृताची, शुभमूर्ति मोहिनी, उर्वशी, रत्नमाला, सुशीला, ललिता, कला, कदम्बमाला, सुरसा और सुन्दरी वनमाला तथा अन्य अनेक अप्सराओं के समूह उत्तम वेष बनाए मन्दहास करते हुए नृत्यगान कर रहे थे। सभी लोग हाथ में करताल लिए गाते-बजाते आनन्द पूर्वक जा रहे थे ॥४०-४२॥ सभी देवगण, मुनिवृन्द, पर्वतगण, गन्धर्वसमूह, किन्नरगण अति हर्षित होकर कुमार की अगवानी के लिए जा रहे थे ॥४३॥ विभिन्न प्रकार के वाद्य समेत रुद्रगण, पार्षद, भैरवगण एवं क्षेत्रपालों को साथ लिए शिव जी भी चल पड़े ॥४४॥

अनन्तर शक्तिधर कुमार पार्वती को अपने समीप देखकर अति हर्षित हुए और रथ से शीघ्र उतरकर उन्हें शिर से प्रणाम किया तथा पद्मा (लक्ष्मी) आदि देवियों, मुनि की पत्नियों एवं शिव को पराभक्ति से प्रणाम करके संभाषण किया ॥४५-४६॥ पार्वती ने कार्तिकेय को देखकर उन्हें गोद में ले लिया और स्नेहवश उनका चुम्बन करने लगीं। उस समय शंकर, देवगण, पर्वतगण, देवियों, पर्वतपत्नियों पार्वती प्रमुख देवी-वृन्द, देव, शैलगण एवं मुनियों ने कुमार को शुभाशीर्वाद दिया ॥४७-४८॥ पश्चात् गणोंके साथ कुमार शिवालय में आये और सभा के मध्य क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु को उन्होंने देखा, जो रत्नसिंहासन पर सुखासीन, रत्नों के भूषणों से भूषित, धर्म, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु आदि से आवृत, मुसकराते हुए,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्[1] । स्तुतं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैः सेवितं श्वेतचामरैः ॥५१॥
तं दृष्ट्वा जगतां नाथं भक्तिनम्रात्मकंधरः । पुलकान्वितसर्वाङ्गः शिरसा प्रणनाम ह ॥५२॥
विधिं धर्मं च देवांश्च मुनीन्द्रांश्च मुदाऽन्वितान् । प्रणनाम पृथक्तत्र प्राप तेभ्यः शुभाशिषः ॥५३॥
पृथक्संभाष्य सर्वांश्चाप्युवास कनकासने । ददौ धनानि विप्रेभ्यः पार्वत्या सह शंकरः ॥५४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारना० कार्तिकेयागमनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ विष्णुर्जगत्कान्तो हृष्टः कृत्वा शुभेक्षणम् । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास षण्मुखम् ॥१॥
नानाविधानि वाद्यानि कांस्यतालादिकानि च । नानाविधानि यन्त्राणि वादयामास कौतुकात् ॥२॥
वेदमन्त्राभिषिक्तैश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः । सद्रत्नकुम्भशतकैः स्नापयामास तं मुदा ॥३॥
सद्रत्नसारखचितं किरीटं मङ्गलाङ्गदे । अमूल्यरत्नखचितभूषणानि बहूनि च ॥४॥
वह्निशुद्धांशुके दिव्ये क्षीरोदार्णवसंभवम् । कौस्तुभं वनमालां च तस्मै चक्रं ददौ मुदा ॥५॥

प्रसन्नमुख, भक्तों पर कृपा करने वाले, मुनिश्रेष्ठों और देवेन्द्रों से स्तुत तथा श्वेत चामरों से सुशोभित थे ॥४९-५१॥ जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु को देखकर कुमार ने भक्ति से अपना कन्धा झुका लिया और समस्त शरीर में पुलयकायमान होकर उन्हें शिर से प्रणाम किया ॥५२॥ पश्चात् ब्रह्मा, धर्म, देवों और मुनियों को प्रणाम किया और उनसे पृथक्-पृथक् शुभाशीर्वाद प्राप्त किया ॥५३॥ तथा सभी लोगों से पृथक्-पृथक् बात-चीत करके सुवर्ण के सिंहासन पर विराजमान हुए। और शिव-पार्वती ने ब्राह्मणों को धन प्रदान किया ॥५४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में कार्तिकेय-आगमन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १७

कार्तिकेय का सेनापति के पद पर अभिषेक

नारायण बोले—जगत्पति भगवान् विष्णु ने हर्षित होकर शुभ मुहूर्त में छह मुख वाले कार्तिकेय को उत्तम रत्नसिंहासन पर सुखासीन किया ॥१॥ कौतुक वश विभिन्न प्रकार के कांस्यताल आदि वाद्य और अनेक प्रकार के यन्त्र वाद्य बजवाना प्रारम्भ किया ॥२॥ वेदमंत्रों के उच्चारण पूर्वक समस्त तीर्थों के जल भरे उत्तम रत्नों के सैकड़ों कलशों से हर्षपूर्वक उनका अभिषेक (स्नान) कराया ॥३॥ उत्तम रत्नों के सारभाग से खचित किरीट, मंगलमय केयूर और अमूल्य रत्नों के अनेक भूषण, अग्निविशुद्ध दो दिव्य वस्त्र, क्षीरसागर से उत्पन्न कौस्तुभमणि,

---

१ क. ०हविग्रहम् ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्मा ददौ यज्ञसूत्रं वेदा वै वेदमातरम्। संध्यामन्त्रं कृष्णमन्त्रं स्तोत्रं च कवचं हरेः ॥६॥
कमण्डलुं च ब्रह्मास्त्रं विद्यां वै वैरिमर्दिनीम्। धर्मो धर्ममतिं दिव्यां सर्वजीवे दयां ददौ ॥७॥
परं मृत्युंजयं ज्ञानं सर्वशास्त्रावबोधनम्। शश्वत्सुखप्रदं तत्त्वज्ञानं च सुमनोहरम् ॥८॥
योगतत्त्वं सिद्धितत्त्वं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्। शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं धनुः ॥९॥
संहारास्त्रविनिक्षेपं तत्संहारं ददौ शिवः। श्वेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ तस्मै जलेश्वरः ॥१०॥
गजेन्द्रं च हयेन्द्रं च सुधाकुम्भं सुधानिधिः। मनोयायिरथं सूर्यः संनाहं च मनोरमम् ॥११॥
यमदण्डं यमश्चैव महाशक्तिं हुताशनः। नानाशस्त्राण्युपायानि सर्वे देवा ददुर्मुदा ॥१२॥
कामशास्त्रं कामदेवो ददौ तस्मै मुदाऽन्वितः। क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टे रत्ननूपुरे ॥१३॥
सावित्री सिद्धिविद्यां च सर्वास्ताः कौतुकाद्ददुः। हिमालयो मयूरं च वाहनार्थं च मुकुटम् ॥१४॥
लक्ष्मीश्च परमैश्वर्यं भारती हारमुत्तमम्। पार्वती सस्मिता हृष्टा परमानन्दमानसा ॥१५॥
महाविद्यां सुशीलां च विद्यां मेधां दयां स्मृतिम्। बुद्धिं सुनिर्मलां शान्तिं तुष्टिं पुष्टिं क्षमां धृतिम् ॥१६॥
सुदृढां च हरौ भक्तिं हरिदास्यं ददौ मुदा। प्रजापतिर्देवसेनां रत्नभूषणभूषिताम् ॥१७॥
सुविनीतां सुशीलां च सुन्दरीं सुमनोहराम्। ददौ तस्मै वेदमन्त्रैर्विवाहविधिना स्वयम् ॥१८॥
यां वदन्ति महाषष्ठीं पण्डिताः शिशुपालिकाम्। अभिषिच्य कुमारं च सर्वे देवा ययुर्गृहम् ॥१९॥

वनमाला और चक्र प्रदान किये ॥४-५॥ ब्रह्मा ने यज्ञोपवीत, वेदों ने वेदमाता गायत्री, सन्ध्यामन्त्र, कृष्णमन्त्र, भगवान् का स्तोत्र, कवच, कमण्डलु, ब्रह्मास्त्र तथा वैरिनाशिनी विद्या, एवं धर्म ने दिव्य धर्मबुद्धि और समस्त जीवों के हितार्थ दया प्रदान की ॥६-७॥ शिव ने उत्तम मृत्युञ्जय ज्ञान, सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान, निरन्तर सुखप्रद एवं मनोहर तत्त्वज्ञान, योगतत्त्व, सिद्धितत्त्व, अति दुर्लभ ब्रह्मज्ञान, शूल, पिनाक (धनुष), परशु (फरसा) शक्ति, पाशुपत धनुष, संहार अस्त्र का चलाना और उसका संहार करना, जलाधीश वरुण ने श्वेतच्छत्र और रत्न की माला, गजराज और उत्तम अश्व दिये। सुधानिधि चन्द्रमा ने अमृत-कलश, सूर्य ने मन की भाँति चलने वाला रथ और मनोरम सन्नाह (कवच). यम ने यमदण्ड, अग्नि ने महाशक्ति तथा देवों ने अनेक भाँति के शस्त्र उपहार प्रदान किये ॥८-१२॥ कामदेव ने प्रसन्न होकर कामशास्त्र, तथा क्षीरसागर ने अमूल्य रत्न समेत विशिष्ट रत्नों के नूपुर अर्पित किये ॥१३॥ सवित्री ने सिद्धिविद्या और अन्य देवियों ने कौतुकवश सभी विद्यायें दीं। हिमालय ने सवारी के लिये मयूर तथा मुकुट दिये। लक्ष्मी ने परम ऐश्वर्य और सरस्वती ने उत्तम हार दिया। पार्वती ने हर्षित होकर मन्द मुसुकान करती हुई परमानन्दभाव से महाविद्या, सुशीला, विद्या, मेधा, दया, स्मृति, अतिनिर्मल बुद्धि, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, धृति तथा हरिदास्य समेत भगवान् की सुदृढ़ भक्ति दी। प्रजापति ने रत्नों के भूषणों से भूषित, अति विनीत, सुशील एवं अति मनोहारिणी सुन्दरी देवसेना को वेदमन्त्रों के उच्चारण और विवाह विधि से उन्हें स्वयं प्रदान किया, जिसे पण्डितगण बच्चों को पालने वाली महाषष्ठी कहते हैं। इस प्रकार कुमार का अभिषेक करके सभी देवों ने अपने-अपने गृहों को प्रस्थान किया ॥१४-१९॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मुनयश्चैव गन्धर्वाः प्रणम्य जगदीश्वरान् । नारायणं च ब्रह्माणं धर्मं तुष्टाव शंकरः ॥२०॥
प्रणनाम हरिं तात धर्मंमालिङ्ग्य नारद । प्रीत्या ययौ च शैलेन्द्रः सगणः शंकरार्चितः ॥२१॥
ये ये तत्राऽऽगताः सर्वे ययुरानन्दपूर्वकम् । परमानन्दसंयुक्तो देव्या सह महेश्वरः ॥२२॥
कालान्तरे च तान्सर्वान्पुनरानीय शंकरः । पुष्टिं ददौ विवाहेन गणेशाय महात्मने ॥२३॥
सुताभ्यां सगणैः सार्धं पार्वती हृष्टमानसा । सिषेवे स्वामिनः पादपद्मं सा सर्वकामदम् ॥२४॥
इत्येवं कथितं सर्वं कुमारस्याभिषेचनम् । विवाहः पूजनं तस्य गणेशस्य विवाहकम् ॥२५॥
पार्वतीपुत्रलाभश्च देवानां च समागमः । का ते मनसि वाञ्छाऽस्ति किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० कुमारगणेशविवाहकुमाराभिषेक-कथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । पृच्छामि त्वामहं किंचिदतिसंदेहवान्यतः ॥१॥
सुतस्य त्रिदशेशस्य शंकरस्य महात्मनः । विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नमीश्वरस्य कथं प्रभो ॥२॥
परिपूर्णतमः श्रीमान्परमात्मा परात्परः । गोलोकनाथः स्वांशेन पार्वतीतनयः स्वयम् ॥३॥

हे तात नारद, शंकर ने नारायण, ब्रह्मा और धर्म की स्तुति तथा धर्म का आलिंगन करके भगवान् को प्रणाम किया। अनन्तर शंकर से सम्मानित होकर शैलराज हिमालय अपने गणों समेत सप्रेम चले गये। इस प्रकार जो लोग जहाँ से आये थे, आनन्द पूर्वक वहाँ चले गये। पार्वती समेत शिव भी परमानन्दमग्न हुए। कुछ काल के उपरान्त शिव ने पुनः उन लोगों को निमन्त्रित कर सबके समक्ष महात्मा गणेश का पुष्टि के साथ विवाह संस्कार सम्पन्न कराकर वह उन्हें सौंप दी ॥२०-२३॥ तदनन्तर पार्वती अपने दोनों पुत्रों और गणों समेत अति प्रसन्न मन से स्वामी शंकर के चरणकमल की सेवा करने लगीं, जो समस्त कामनाओं का दायक है॥२४॥ इस भाँति मैंने कुमार का अभिषेक, विवाह एवं पूजन और गणेश का विवाह पार्वती का पुत्र-लाभ और देवों का समागम तुम्हें बता दिया। अब तुम्हारे मन में क्या इच्छा है और पुनः क्या सुनना चाहते हो॥२५-२६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में कुमार-गणेश-विवाह और कुमार का अभिषेक कथन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

अध्याय १८

शिव को कश्यप का शाप

नारद बोले—हे नारायण ! हे महाभाग ! हे वेद-वेदांगों के पारगामी विद्वान् ! मैं आप से कुछ पूछना चाहता हूँ क्योंकि मुझे सन्देह हो गया है॥१॥ हे प्रभो ! देवाधीश्वर भगवान् शंकर के पुत्र विघ्ननाशक (गणेश) को विघ्न कैसे हुआ, वे तो ईश्वर हैं और परिपूर्णतम श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण, जो परमात्मा, परात्पर और गोलोक के नाथ हैं, अपने अंश से स्वयं पार्वती के पुत्र हुए हैं॥२-३॥ हे विभो ! यह आश्चर्य है कि ग्रह की

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अहो भगवतस्तस्य मस्तकच्छेदनं विभो । ग्रहदृष्ट्या ग्रहेशस्य कथं मे वक्तुमर्हसि ॥४॥

नारायण उवाच

सावधानं शृणु ब्रह्मन्निितिहासं पुरातनम् । विघ्नेशस्य बभूवेदं विघ्नं येन च नारद ॥५॥
एकदा शंकरः सूर्यं जघान परमक्रुधा । सुमालिमालिहन्तारं शूलेन भक्तवत्सलः ॥६॥
श्रीसूर्योऽमोघशूलेनाशनितुल्येन तेजसा । जहौ स चेतनां सद्यो रथाच्च निपपात ह ॥७॥
ददर्श कश्यपः पुत्रं मृतमुत्तानलोचनम् । कृत्वा वक्षसि तं शोकाद्विललाप भृशं मुहुः ॥८॥
हाहाकारं सुराश्चक्रुर्विलेपुर्भयकातराः । अन्धीभूतं जगत्सर्वं बभूव तमसाऽऽवृतम् ॥९॥
निष्प्रभं तनयं दृष्ट्वा चाशपत्कश्यपः शिवम् । तपस्वी ब्रह्मणः पौत्रः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥१०॥
मत्पुत्रस्य यथा वक्षश्छिन्नं शूलेन तेऽद्य वै । त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नं भविष्यति न संशयः ॥११॥
शिवश्च गलितक्रोधः क्षणेनैवाऽशुतोषकः । ब्रह्मज्ञानेन तं सूर्यं जीवयामास तत्क्षणात् ॥१२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशश्च त्रिगुणात्मकः । सूर्यश्च चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ पितुः पुरः ॥१३॥
ननाम पितरं भक्त्या शंकरं भक्तवत्सलम् । विज्ञाय शंभोः शापं च कश्यपं स चुकोप ह ॥१४॥
विषयान्नैव जग्राह कोपेनैवमुवाच ह । विषयांश्च परित्यज्य भजे श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥१५॥
सर्वं तुच्छमनित्यं च नश्वरं चेश्वरं विना । विहाय मङ्गलं सत्यं विद्वान्नेच्छेदमङ्गलम् ॥१६॥

दृष्टि (देखने) से ग्रहाधीश्वर भगवान् का भी मस्तकच्छेद हो जाये, यह कैसे हुआ ? मुझे बताने की कृपा करें ॥४॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन् ! हे नारद ! मैं तुम्हें यह पुराना इतिहास बता रहा हूँ कि विघ्नेश्वर (गणेश) को विघ्न कैसे हुआ, सावधान होकर सुनो ॥५॥

एक बार शिव ने परम क्रोध के कारण त्रिशूल से सूर्य को मार डाला, जो सुमाली और माली राक्षसों को मार रहे थे ॥६॥ वज्र के समान तेजस्वी एवं अमोघ (अव्यर्थ) उस शूल के प्रहार से मूच्छित होकर सूर्यदेव चेतनाहीन हो गये और रथ से गिर पड़े ॥७॥ अनन्तर कश्यप ने अपने पुत्र (सूर्य) को, जो ऊपर आँख किये मृतक हो गये थे, देखकर अपनी गोद में उठा लिया और शोक से बार-बार विलाप करने लगे ॥८॥ देवों ने हाहाकार किया तथा भयभीत होकर विलाप भी किया। उस समय सारा जगत् तिमिराच्छन्न होने के नाते अन्धकारमय हो गया था ॥९॥ तपस्वी ब्रह्मा के पौत्र और ब्रह्मतेज से प्रदीप्त—कश्यप ने अपने पुत्र को प्रभाहीन देखकर शिव को शाप दिया कि आज तुमने शूल द्वारा जिस प्रकार मेरे पुत्र का वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न किया है, ऐसे ही तुम्हारे पुत्र का भी शिर छिन्न-भिन्न हो जायगा, इसमें संशय नहीं ॥१०-११॥ क्षणमात्र में क्रोध निकल जाने पर आशुतोष भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और ब्रह्मज्ञान द्वारा उसी समय सूर्य को जीवित कर दिया ॥१२॥ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर के अंशभूत सूर्य, जो त्रिगुण स्वरूप हैं, चेतना प्राप्त होने पर पिता के सामने उठ कर बैठ गये ॥१३॥ सूर्य ने पिता और भक्तवत्सल शंकर को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और शिव का शाप जानकर अपने पिता पर क्रोध प्रकट किया ॥१४॥ विषयों का ग्रहण नहीं किया और क्रोध से इस प्रकार कहा कि मैं विषयों को त्यागकर भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करूँगा क्योंकि बिना ईश्वर के सब कुछ तुच्छ, अनित्य और नश्वर है। विद्वान् लोग मंगल सत्य का त्याग कर अमंगल नहीं चाहते ॥१५-१६॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

देवैश्च प्रेरितो ब्रह्मा समागत्य ससंभ्रमः । बोधयित्वा रविं तत्र युयोज विषयेष्वजः ॥१७॥
तस्मै दत्वाऽऽशिषः शंभुर्ब्रह्मा च स्वालयं मुदा । जगाम कश्यपश्चैव स्वराशिं रविरेव च ॥१८॥
अथ माली सुमाली च व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । श्वित्रौ गलितसर्वाङ्गौ शक्तिहीनौ हतप्रभौ ॥१९॥
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा युवां च भजतां रविम् । सूर्यकोपेन गलितौ युवामेवं हतप्रभौ ॥२०॥
सूर्यस्य कवचं स्तोत्रं सर्वं पूजाविधिं विधिः । जगाम कथयित्वा तौ ब्रह्मलोकं सनातनः ॥२१॥
ततस्तौ पुष्करं गत्वा सिषेवाते रविं मुने । स्नात्वा त्रिकालं भक्त्या च जपन्तौ मन्त्रमुत्तमम् ॥२२॥
ततः सूर्याद्वरं प्राप्य निजरूपौ बभूवतुः । इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० विघ्नेशविघ्नकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

किं स्तोत्रं कवचं नाथ ब्रह्मणा लोकसाक्षिणा । दानवाभ्यां पुरा दत्तं सूर्यस्य परमात्मनः ॥१॥
किं वा पूजाविधानं वा कं मन्त्रं व्याधिनाशनम् । सर्वं चास्य महाभाग तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥२॥

इसी बीच देवों से प्रेरित होकर ब्रह्मा सहसा वहाँ आ गये और सूर्य को भलीभाँति उद्‌बुद्ध करके उन्हें पुनः विषयों में संलग्न किया ॥१७॥ पश्चात् शम्भु और ब्रह्मा सूर्य को शुभाशीर्वाद प्रदान कर अपने-अपने लोक में चले गये, कश्यप भी चले गये और सूर्य ने भी अपनी राशि पर प्रस्थान किया ॥१८॥ अनन्तर माली, सुमाली दोनों व्याधिपीड़ित हुए। उनको श्वेतकुष्ठ तथा सर्वांग में गलित कुष्ठ हो गया तथा वे शक्तिहीन होकर कान्तिहीन हो गये ॥१९॥ उन्हें ब्रह्मा ने स्वयं कहा—'तुम दोनों सूर्य की आराधना करो, सूर्य के कोप के कारण तुम दोनों गलित तथा हतप्रभ हुए हो ॥२०॥ पश्चात् सनातन ब्रह्मा ने सूर्य का कवच, स्तोत्र एवं पूजा विधान उन्हें बताकर अपने लोक को प्रस्थान किया और वे दोनों पुष्कर जाकर तीनों काल स्नान और भक्तिपूर्वक उत्तम मंत्र के जप के द्वारा सूर्य की आराधना करने लगे। अनन्तर सूर्य से वरदान प्राप्त कर उन दोनों ने पुनः अपना रूप प्राप्त किया। इस भाँति मैंने सब कुछ सुना दिया है और अब क्या सुनना चाहते हो ॥२१-२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में विघ्नेश का विघ्न-कथन नामक अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

अध्याय १९

सूर्य का पूजन और स्तोत्र

नारद बोले—हे नाथ ! पूर्वकाल में लोकसाक्षी ब्रह्मा ने दोनों दानवों को परमात्मा सूर्य का कौन स्तोत्र एवं कवच प्रदान किया था ॥१॥ हे महाभाग ! उनके पूजा का विधान क्या है, रोगनाशक मंत्र कौन है, यह सब कुछ मुझे बताने की कृपा करें ॥२॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

एकोनविंशोऽध्यायः

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान्करुणानिधिः । स्तोत्रं च कवचं मन्त्रमूचे तत्पूजनक्रमम् ॥३॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि सूर्यपूजाविधेः क्रमम् । स्तोत्रं च कवचं सर्वं पापव्याधिविमोचकम् ॥४॥
सुमालिमालिनौ दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । विधिं सस्मरतुः स्तोतुं शिवमन्त्रप्रदायकम् ॥५॥
ब्रह्मा गत्वा च वैकुण्ठं पप्रच्छ कमलापतिम् । शिवं तत्रैव संपश्यन्वसन्तं हरिसंनिधौ ॥६॥

ब्रह्मोवाच

सुमालिमालिनौ दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । क उपायो वद हरे तयोर्व्याधिविनाशने ॥७॥

विष्णुरुवाच

कृत्वा सूर्यस्य सेवां च पुष्करे पूर्णवत्सरम् । व्याधिहन्तुर्मदंशस्य तौ च मुक्तौ भविष्यतः ॥८॥

शंकर उवाच

सूर्यस्तोत्रं च कवचं मन्त्रं कल्पतरुं परम् । देहि ताभ्यां जगत्कान्त व्याधिहन्तुर्महात्मनः ॥९॥
आवां संपत्प्रदातारौ सर्वदाता हरिः स्वयम् । व्याधिहन्ता दिनकरो यस्य यो विषयो विधे ॥१०॥

सूत बोले—करुणानिधान भगवान् ने नारद की बातें सुनकर सूर्य का स्तोत्र, कवच, मन्त्र और उनकी पूजा का क्रम बताना आरम्भ किया ॥३॥

नारायण बोले—हे नारद ! मैं तुम्हें सूर्य की पूजा का विधान, स्तोत्र और समस्त पापों से मुक्त करने वाला कवच बता रहा हूँ, सुनो ॥४॥

जब सुमाली और माली नामक दैत्य रोग-पीड़ित हो गये तब उन लोगों ने स्तुति करने के हेतु शिवमन्त्र-प्रदाता ब्रह्मा का स्मरण किया ॥५॥ अनन्तर ब्रह्मा ने वैकुण्ठ जाकर, वहीं विष्णु के समीप उपस्थित शिव को देखते हुए, कमलापति विष्णु से पूछा ॥६॥

ब्रह्मा बोले—हे हरे ! सुमाली और माली नामक दैत्य व्याधि-पीड़ित हो गये हैं, उनके रोगमुक्त होने के लिए कोई उपाय बताने की कृपा करें ॥७॥

विष्णु बोले—पुष्कर क्षेत्र में पूरे वर्ष तक सूर्य की, जो मेरे अंश से उत्पन्न एवं व्याधिनाशक हैं, सेवा करने से वे रोगमुक्त हो जायँगे ॥८॥

शंकर बोले—हे जगत्कान्त ! व्याधिनाश करने वाले महात्मा सूर्य का स्तोत्र, कवच और कल्पतरु जैसा श्रेष्ठ मन्त्र उन्हें प्रदान करने की कृपा करें ॥९॥ हे विधे ! हम दोनों केवल सम्पत्ति प्रदान करते हैं किन्तु सब कुछ प्रदान करने वाले स्वयं हरि हैं और व्याधि का नाश केवल सूर्य करते हैं क्योंकि जिसका जो विषय है, उसे वह सम्पन्न करता

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तयोरनुमतिं प्राप्य ययौ दैत्यगृहं विधिः । तदा प्रणम्य तं दृष्ट्वा तस्मै ददतुरासनम् ॥११॥
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा रोगग्रस्तौ दयानिधिः । स्तब्धावाहाररहितौ पूयदुर्गन्धसंयुतौ ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

गृहीत्वा कवचं स्तोत्रं मन्त्रं पूजाविधिक्रमम् । गत्वा हि पुष्करं वत्सौ भजथः प्रणतौ रविम् ॥१३॥

तावूचतुः

भजावः केन विधिना केन मन्त्रेण वा विधे । किं स्तोत्रं कवचं किं वा तदावाभ्यां वदाधुना ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

कृत्वा त्रिकालं स्नानं च मन्त्रेणानेन भास्करम् । संसेव्य भास्करं भक्त्या नीरुजौ च भविष्यथः ॥१५॥
ॐ ह्रीं नमो भगवते सूर्याय परमात्मने । स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण सावधानं दिवाकरम् ॥१६॥
संपूज्य दत्त्वा भक्त्या वै चोपहारांस्तु षोडश । एवं संवत्सरं यावद्ध्रुवं मुक्तौ भविष्यथः ॥१७॥
अपूर्वं कवचं तस्य युवाभ्यां प्रददाम्यहम् । यद्दत्तं गुरुणा पूर्वमिन्द्राय प्रीतिपूर्वकम् ॥१८॥
तत्सहस्रभगाङ्गाय शापेन गौतमस्य च । अहल्याहरणेनैव पापयुक्ताय संकटे ॥१९॥

है ॥१०॥ अनन्तर उन दोनों की अनुमति प्राप्त कर ब्रह्मा दैत्यों के घर गये और दैत्यों ने उन्हें देखते ही प्रणाम कर आसन प्रदान किया ॥११॥ दयानिधि ब्रह्मा ने स्वयं उन रोग-पीड़ितों से, जो स्तब्ध, आहार-रहित और पीव की दुर्गन्ध से युक्त थे, कहा ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स ! यह कवच, स्तोत्र, मंत्र और पूजाविधान का क्रम ग्रहण कर तुम लोग पुष्कर क्षेत्र चले जाओ और वहाँ सूर्य का नमस्कार पूर्वक भजन करो ॥१३॥

वे दोनों बोले—हे विधे ! किस विधान और किस मंत्र द्वारा हम उनकी सेवा करेंगे और उनका स्तोत्र क्या है ? कवच क्या है ? सम्प्रति बताने की कृपा करें ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—वहाँ जाकर तीनों काल में स्नान करके इस मंत्र द्वारा भक्तिपूर्वक भास्कर की सेवा करने से तुम रोगमुक्त हो जाओगे ॥१५॥ 'ओं ह्रीं भगवते सूर्याय परमात्मने स्वाहा' इस मंत्र से सावधान होकर भक्तिपूर्वक दिवाकर का षोडशोपचार पूजन करो। इस भाँति पूरे वर्ष तक उनकी सेवा करने से निश्चित ही रोगमुक्त हो जाओगे ॥१६-१७॥ मैं तुम्हें उनका अपूर्व कवच प्रदान कर रहा हूँ, जिसे पूर्व काल में बृहस्पति ने बड़े प्रेम से इन्द्र को प्रदान किया था ॥१८॥ जिस समय गौतम के शाप द्वारा इन्द्र के सहस्र भग हो गये थे और जो (इन्द्र) अहल्या के अपहरण द्वारा पापयुक्त एवं संकटग्रस्त हो गये थे, उनसे बृहस्पति ने कहा ॥१९॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

बृहस्पतिरुवाच

इन्द्र शृणु प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम्। यद्धृत्वा मुनयः पूता जीवन्मुक्ताश्च भारते ॥२०॥
कवचं बिभ्रतो व्याधिर्न भियाऽऽयाति संनिधिम्। यथा दृष्ट्वा वैनतेयं पलायन्ते भुजंगमाः ॥२१॥
शुद्धाय गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत्। खलाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥२२॥
जगद्विलक्षणस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो दिनकरः स्वयम् ॥२३॥
व्याधिप्रणाशे सौन्दर्ये विनियोगः प्रकीर्तितः। सद्यो रोगहरं सारं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४॥
ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा मे पातु मस्तकम्। अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कपालं मे सदाऽवतु ॥२५॥
ॐ ह्रीं[1] ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा मे पातु नासिकाम्। चक्षुर्मे पातु सूर्यश्च तारकं च विकर्तनः ॥२६॥
भास्करो मेऽधरं पातु दन्तान्दिनकरः सदा। प्रचण्डः पातु गण्डं मे मार्तण्डः कर्णमेव च ॥
मिहिरश्च सदा स्कन्धे जङ्घे पूषा सदाऽवतु ॥२७॥
वक्षः पातु रविः शश्वन्नाभिं सूर्यः स्वयं सदा। कङ्कालं मे सदा पातु सर्वदेवनमस्कृतः ॥२८॥
कर्णौ पातु सदा ब्रघ्नः पातु पादौ प्रभाकरः। विभाकरो मे सर्वाङ्गं पातु संततमीश्वरः ॥२९॥
इति ते कथितं वत्स कवचं सुमनोहरम्। जगद्विलक्षणं नाम त्रिजगत्सु सुदुर्लभम् ॥३०॥
पुरा दत्तं च मनवे पुलस्त्येन तु पुष्करे। मया दत्तं च तुभ्यं तद्यस्मै कस्मै न देहि भोः ॥३१॥

बृहस्पति बोले—हे इन्द्र! मैं तुम्हें परम अद्भुत कवच बता रहा हूँ, जिसे धारण कर मुनिगण भारत में जीवन्मुक्त हो गये हैं ॥२०॥ गरुड़ को देखकर जिस प्रकार सर्पगण पलायन कर जाते हैं उसी भाँति कवचधारी के समीप रोग भयभीत होकर नहीं जाता है ॥२१॥ इसलिए शुद्ध और गुरुभक्त शिष्य को इसे बताना चाहिए, क्योंकि यह खल और पर-शिष्य को देने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥२२॥ इस जगद्विलक्षण कवच का प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, दिनकर देवता और रोगनाशपूर्वक सौन्दर्य प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है ॥२३॥ वह तुरन्त रोग का हरण करने वाला, सारभाग और समस्त पापों का नाशक है। ओं क्लीं ह्रीं श्रीं श्री सूर्याय स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे। अष्टादश अक्षर का मंत्र मेरे कपाल की सदा रक्षा करे। ओं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा' मेरी नासिका की रक्षा करे, सूर्य मेरे नेत्र की रक्षा करें, विकर्त्तन तारका की रक्षा करें, भास्कर मेरे अधर की रक्षा करें, दिनकर सदा दाँतों की रक्षा करें प्रचण्ड मेरे कपोल की रक्षा करें, मार्त्तण्ड कान की रक्षा करें, मिहिर दोनों कंधे, और पूषा जंघे की रक्षा करें ॥२४-२७॥ रवि वक्षःस्थल की रक्षा करें, स्वयं सूर्य निरन्तर नाभि की रक्षा करें, सर्वदेव-नमस्कृत सदा मेरी ठठरी की रक्षा करें, ब्रघ्न सदा कानों की रक्षा करें, प्रभाकर चरणों की रक्षा करें और ईश्वर विभाकर मेरे सर्वांग की निरन्तर रक्षा करें ॥२८-२९॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने जगद्विलक्षण नामक कवच, जो अति मनोहर और तीनों लोकों में अति दुर्लभ है, तुम्हें बता दिया ॥३०॥ पूर्वकाल में पुष्कर क्षेत्र में पुलस्त्य ने यही मनु को दिया था और मैं तुम्हें दे रहा हूँ, अतः इसे जिस-किसी को मत देना ॥३१॥

---

१ क. ह्रीं क्लीं श्रीं सू०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

व्याधितो मुच्यसे त्वं च कवचस्य प्रसादतः। भवानरोगी श्रीमांश्च भविष्यति न संशयः ॥३२॥
लक्षवर्षहविष्येण यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते नूनं कवचस्यास्य धारणात् ॥३३॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो मूढो भास्करं यजेत्। दशलक्षप्रजप्तोऽपि मन्त्रसिद्धिर्न जायते ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

धृत्वेदं कवचं वत्सौ कृत्वा च स्तवनं रवेः। युवां व्याधिविनिर्मुक्तौ निश्चितं तु भविष्यथः ॥३५॥
स्तवनं सामवेदोक्तं सूर्यस्य व्याधिमोचनम्। सर्वपापहरं सारं धनारोग्यकरं परम् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

तं ब्रह्म परमं धाम ज्योतीरूपं सनातनम्। त्वामहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम् ॥३७॥
त्रैलोक्यलोचनं लोकनाथं पापविमोचनम्। तपसां फलदातारं दुःखदं पापिनां सदा ॥३८॥
कर्मानुरूपफलदं कर्मबीजं दयानिधिम्। कर्मरूपं क्रियारूपमरूपं कर्मबीजकम् ॥३९॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशं च त्रिगुणात्मकम्। व्याधिदं व्याधिहन्तारं शोकमोहभयापहम् ॥
सुखदं मोक्षदं सारं भक्तिदं सर्वकामदम् ॥४०॥
सर्वेश्वरं सर्वरूपं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्। प्रत्यक्षं सर्वलोकानामप्रत्यक्षं मनोहरम् ॥४१॥
शश्वद्रसहरं पश्चाद्रसदं सर्वसिद्धिदम्। सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं सिद्धानां परमं गुरुम् ॥४२॥
स्तवराजमिमं प्रोक्तं गुह्याद्गुह्यतरं परम्। त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं व्याधिभ्यः स प्रमुच्यते ॥४३॥

इस कवच के प्रसाद से तुम रोगमुक्त और श्रीमान् हो जाओगे, इसमें संशय नहीं ॥३२॥ एक लाख वर्ष तक हविष्य भक्षण करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह इस कवच के धारण मात्र से निश्चय प्राप्त होता है ॥३३॥ जो मूर्ख इस कवच को विना जाने भास्कर की पूजा-आराधना करता है, दश लाख जप करने पर भी उसकी मंत्रसिद्धि नहीं होती है ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! इस कवच को धारण कर सूर्य की स्तुति करने से तुम लोग निश्चित रोगमुक्त हो जाओगे। सामवेदानुसार सूर्य का व्याधिमोचन नामक स्तोत्र है, जो समस्त पापहारी, समस्त का सारभाग, एवं धन-आरोग्यकारी है ॥३५-३६॥

ब्रह्मा बोले—उस परमधाम ब्रह्म की, जो ज्योतिरूप, सनातन और भक्तों पर अनुग्रह करने वाला है, स्तुति करना चाहता हूँ ॥३७॥ वे तीनों लोकों के नेत्र, लोकपति, पाप से मुक्त करने वाले, तप के फल देने वाले और पापियों को सदा दुःख देने वाले हैं ॥३८॥ कर्मों के अनुरूप फल प्रदायक, कर्म के बीज, दया-निधान, कर्मरूप, क्रियारूप, अरूप, कर्मों के बीज, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर के अंश, त्रिगुणस्वरूप, व्याधिप्रद, व्याधिहन्ता, शोक, मोह तथा भय के नाशक, सुखदायक, मोक्षप्रद, सारभाग, भक्तिप्रद, समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाले सर्वेश्वर सर्वरूप, समस्त कर्मों के साक्षी, सभी लोगों के लिए प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, मनोहर, निरन्तर रसहरण करने वाले, पश्चात् रसप्रदायक, सम्पूर्णसिद्धिदाता, सिद्धिस्वरूप, सिद्धेश एवं सिद्धों के परम गुरु हैं ॥३९-४२॥ मैंने गुह्य से गुह्यतर यह स्तवराज तुम्हें बता दिया। तीनों संध्याओं में जो नित्य इसका पाठ करेगा वह व्याधियों से मुक्त रहेगा ॥४३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

बृहस्पतिरुवाच

इन्द्र शृणु प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम्। यद्धृत्वा मुनयः पूता जीवन्मुक्ताश्च भारते ॥२०॥
कवचं बिभ्रतो व्याधिर्न भियाऽऽयाति संनिधिम्। यथा दृष्ट्वा वैनतेयं पलायन्ते भुजंगमाः ॥२१॥
शुद्धाय गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत्। खलाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥२२॥
जगद्विलक्षणस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो दिनकरः स्वयम् ॥२३॥
व्याधिप्रणाशे सौन्दर्ये विनियोगः प्रकीर्तितः। सद्यो रोगहरं सारं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४॥
ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा मे पातु मस्तकम्। अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कपालं मे सदाऽवतु ॥२५॥
ॐ ह्रीं[1] ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा मे पातु नासिकाम्। चक्षुर्मे पातु सूर्यश्च तारकं च विकर्तनः ॥२६॥
भास्करो मेऽधरं पातु दन्तान्दिनकरः सदा। प्रचण्डः पातु गण्डं मे मार्तण्डः कर्णमेव च ॥
मिहिरश्च सदा स्कन्धे जङ्घे पूषा सदाऽवतु ॥२७॥
वक्षः पातु रविः शश्वन्नाभिं सूर्यः स्वयं सदा। कङ्कालं मे सदा पातु सर्वदेवनमस्कृतः ॥२८॥
कर्णौ पातु सदा ब्रध्नः पातु पादौ प्रभाकरः। विभाकरो मे सर्वाङ्गं पातु संततमीश्वरः ॥२९॥
इति ते कथितं वत्स कवचं सुमनोहरम्। जगद्विलक्षणं नाम त्रिजगत्सु सुदुर्लभम् ॥३०॥
पुरा दत्तं च मनवे पुलस्त्येन तु पुष्करे। मया दत्तं च तुभ्यं तद्यस्मै कस्मै न देहि भोः ॥३१॥

बृहस्पति बोले—हे इन्द्र! मैं तुम्हें परम अद्भुत कवच बता रहा हूँ, जिसे धारण कर मुनिगण भारत में जीवन्मुक्त हो गये हैं ॥२०॥ गरुड़ को देखकर जिस प्रकार सर्पगण पलायन कर जाते हैं उसी भाँति कवचधारी के समीप रोग भयभीत होकर नहीं जाता है ॥२१॥ इसलिए शुद्ध और गुरुभक्त शिष्य को इसे बताना चाहिए, क्योंकि यह खल और पर-शिष्य को देने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥२२॥ इस जगद्विलक्षण कवच का प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, दिनकर देवता और रोगनाशपूर्वक सौन्दर्य प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है ॥२३॥ वह तुरन्त रोग का हरण करने वाला, सारभाग और समस्त पापों का नाशक है। ओं क्लीं ह्रीं श्रीं श्री सूर्याय स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे। अष्टादश अक्षर का मंत्र मेरे कपाल की सदा रक्षा करे। ओं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं सूर्याय स्वाहा' मेरी नासिका की रक्षा करे, सूर्य मेरे नेत्र की रक्षा करें, विकर्त्तन तारका की रक्षा करें, भास्कर मेरे अधर की रक्षा करें, दिनकर सदा दाँतों की रक्षा करें प्रचण्ड मेरे कपोल की रक्षा करें, मार्त्तण्ड कान की रक्षा करें, मिहिर दोनों कंधे, और पूषा जंघे की रक्षा करें ॥२४-२७॥ रवि वक्षःस्थल की रक्षा करें, स्वयं सूर्य निरन्तर नाभि की रक्षा करें, सर्वदेव-नमस्कृत सदा मेरी ठठरी की रक्षा करें, ब्रध्न सदा कानों की रक्षा करें, प्रभाकर चरणों की रक्षा करें और ईश्वर विभाकर मेरे सर्वांग की निरन्तर रक्षा करें ॥२८-२९॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने जगद्विलक्षण नामक कवच, जो अति मनोहर और तीनों लोकों में अति दुर्लभ है, तुम्हें बता दिया ॥३०॥ पूर्वकाल में पुष्कर क्षेत्र में पुलस्त्य ने यही मनु को दिया था और मैं तुम्हें दे रहा हूँ, अतः इसे जिस-किसी को मत देना ॥३१॥

---

१ क. ह्रीं क्लीं श्रीं सू०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

व्याधितो मुच्यसे त्वं च कवचस्य प्रसादतः। भवानरोगी श्रीमांश्च भविष्यति न संशयः ॥३२॥
लक्षवर्षहविष्येण यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते नूनं कवचस्यास्य धारणात् ॥३३॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो मूढो भास्करं यजेत्। दशलक्षप्रजप्तोऽपि मन्त्रसिद्धिर्न जायते ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

धृत्वेदं कवचं वत्सौ कृत्वा च स्तवनं रवेः। युवां व्याधिविनिर्मुक्तौ निश्चितं तु भविष्यथः ॥३५॥
स्तवनं सामवेदोक्तं सूर्यस्य व्याधिमोचनम्। सर्वपापहरं सारं धनारोग्यकरं परम् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

तं ब्रह्म परमं धाम ज्योतीरूपं सनातनम्। त्वामहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम् ॥३७॥
त्रैलोक्यलोचनं लोकनाथं पापविमोचनम्। तपसां फलदातारं दुःखदं पापिनां सदा ॥३८॥
कर्मानुरूपफलदं कर्मबीजं दयानिधिम्। कर्मरूपं क्रियारूपमरूपं कर्मबीजकम् ॥३९॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशं च त्रिगुणात्मकम्। व्याधिदं व्याधिहन्तारं शोकमोहभयापहम् ॥
सुखदं मोक्षदं सारं भक्तिदं सर्वकामदम् ॥४०॥
सर्वेश्वरं सर्वरूपं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्। प्रत्यक्षं सर्वलोकानामप्रत्यक्षं मनोहरम् ॥४१॥
शश्वद्रसहरं पश्चाद्रसदं सर्वसिद्धिदम्। सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं सिद्धानां परमं गुरुम् ॥४२॥
स्तवराजमिमं प्रोक्तं गुह्याद्गुह्यतरं परम्। त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं व्याधिभ्यः स प्रमुच्यते ॥४३॥

इस कवच के प्रसाद से तुम रोगमुक्त और श्रीमान् हो जाओगे, इसमें संशय नहीं ॥३२॥ एक लाख वर्ष तक हविष्य भक्षण करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह इस कवच के धारण मात्र से निश्चय प्राप्त होता है ॥३३॥ जो मूर्ख इस कवच को बिना जाने भास्कर की पूजा-आराधना करता है, दश लाख जप करने पर भी उसकी मंत्रसिद्धि नहीं होती है ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! इस कवच को धारण कर सूर्य की स्तुति करने से तुम लोग निश्चित रोगमुक्त हो जाओगे। सामवेदानुसार सूर्य का व्याधिमोचन नामक स्तोत्र है, जो समस्त पापहारी, समस्त का सारभाग, एवं धन-आरोग्यकारी है ॥३५-३६॥

ब्रह्मा बोले—उस परमधाम ब्रह्म की, जो ज्योतिरूप, सनातन और भक्तों पर अनुग्रह करने वाला है, स्तुति करना चाहता हूँ ॥३७॥ वे तीनों लोकों के नेत्र, लोकपति, पाप से मुक्त करने वाले, तप के फल देने वाले और पापियों को सदा दुःख देने वाले हैं ॥३८॥ कर्मों के अनुरूप फल प्रदायक, कर्म के बीज, दया-निधान, कर्मरूप, क्रियारूप, अरूप, कर्मों के बीज, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर के अंश, त्रिगुणस्वरूप, व्याधिप्रद, व्याधिहन्ता, शोक, मोह तथा भय के नाशक, सुखदायक, मोक्षप्रद, सारभाग, भक्तिप्रद, समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाले सर्वेश्वर सर्वरूप, समस्त कर्मों के साक्षी, सभी लोगों के लिए प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, मनोहर, निरन्तर रसहरण करने वाले, पश्चात् रसप्रदायक, सम्पूर्णसिद्धिदाता, सिद्धिस्वरूप, सिद्धेश एवं सिद्धों के परम गुरु हैं ॥३९-४२॥ मैंने गुह्य से गुह्यतर यह स्तवराज तुम्हें बता दिया। तीनों संध्याओं में जो नित्य इसका पाठ करेगा वह व्याधियों से मुक्त रहेगा ॥४३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

आन्ध्यं कुष्ठं च दारिद्र्यं रोगः शोको भयं कलिः। तस्य नश्यति विश्वेश श्रीसूर्यकृपया ध्रुवम् ॥४४॥
महाकुष्ठी च गलितो चक्षुर्हीनो महाव्रणी। यक्ष्मग्रस्तो महाशूली नानाव्याधियुतोऽपि वा ॥४५॥
मासं कृत्वा हविष्यान्नं श्रुत्वाऽतो मुच्यते ध्रुवम्। स्नानं च सर्वतीर्थानां लभते नात्र संशयः ॥४६॥
पुष्करं गच्छतं शीघ्रं भास्करं भजतं सुतौ। इत्येवमुक्त्वा स विधिर्जगाम स्वालयं मुदा ॥४७॥
तौ निषेव्य दिनेशं तं नीरुजौ संबभूवतुः। इत्येवं कथितं वत्स किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४८॥
सर्वविघ्नहरं सारं विघ्नेशं विघ्ननाशनम्। स्तोत्रेणानेन तं स्तुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥४९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० विघ्नकारणकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

हरेरंशसमुत्पन्नो हरितुल्यो भवान्धिया। तेजसा विक्रमेणैव मत्प्रश्नं श्रोतुमर्हसि ॥१॥
विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नं श्रुतं तत्परमाद्भुतम्। तद्विघ्नकारणं चैव विश्वकारणवक्त्रतः ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि स्वात्मसंदेहभञ्जनम्। त्रैलोक्यनाथतनये गजास्ययोजनार्थकम् ॥३॥

उसका अन्धापन, कुष्ठ, दरिद्रता, रोग, शोक, भय और कलि आदि विश्वेश्वर (श्री सूर्य) की कृपा से निश्चित नष्ट हो जाएँगे ॥४४॥ महाकुष्ठी, गलित रोगी, अन्धा, महाव्रणी (घाव वाले), यक्ष्मा (तपेदिक) से पीड़ित, महाशूल का रोगी तथा अनेक भाँति के रोगों से युक्त भी एक मास तक हविष्यान्न-भक्षण और इसके श्रवण करने से निश्चित रोग-मुक्त हो जाएगा और समस्त तीर्थों के स्नान का फल भी उसे प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं ॥४५-४६॥ इसलिए हे पुत्रो! तुमलोग शीघ्र पुष्कर को जाओ और भास्कर की आराधना करो। इतना कहकर ब्रह्मा सुप्रसन्न मन से अपने लोक को चले गये ॥४७॥ हे वत्स! इस प्रकार वे दोनों दिनेश्वर सूर्य की आराधना करके नीरोग हो गये, यह कथा मैंने तुम्हें सुना दी, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥४८॥ समस्त विघ्नों के नाशक, सार भाग, विघ्नेश तथा विघ्ननाशक उन सूर्य की इस स्तोत्र द्वारा स्तुति करने पर अवश्य रोगमुक्त हो जाता है ॥४९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में विघ्नकारण-कथन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

अध्याय २०

गणेश को गजमुख जोड़ने का कारण

नारद बोले—आप भगवान् के अंश से उत्पन्न एवं बुद्धि, तेज और विक्रम में उन्हीं के समान हैं, अतः मेरा प्रश्न सुनने की कृपा करें ॥१॥ मैंने विघ्ननाशक (गणेश) की परमाद्भुत विघ्नकथा सुन ली और विश्व के कारण (भगवान्) के मुख से उस विघ्न का कारण भी सुन लिया है। तीनों लोकों के स्वामी शंकर के पुत्र को (गणेश के धड़ पर) जो हाथी का मुख जोड़ा गया है, मुझे सन्देह है। अतः उसके निवारणार्थ मैं इस समय वही सुनना

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्थितेष्वन्येषु बहुषु जन्तुष्वब्जभुवः पते। सुप्राणिनां सुरूपेषु नानारूपेषु रूपिणाम् ॥४॥

नारायण उवाच

गजास्ययोजनायाश्च कारणं शृणु नारद। गोप्यं सर्वपुराणेषु वेदेषु च सुदुर्लभम् ॥५॥
तारणं सर्वदुःखानां कारणं सर्वसंपदाम्। हारणं विपदां चैव रहस्यं पापमोचनम् ॥६॥
महालक्ष्म्याश्च चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम्। सुखदं मोक्षदं चैव चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥७॥
शृणु तात प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। रहस्यं पाद्मकल्पस्य पुरा तातमुखाच्छ्रुतम् ॥८॥
एकदैव महेन्द्रश्च पुष्पभद्रां नदीं ययौ। महासंपन्मदोन्मत्तः कामी राजश्रियाऽन्वितः ॥९॥
ततीरेऽतिरहःस्थाने पुष्पोद्याने मनोहरे। अतीव दुर्गमेऽरण्ये सर्वजन्तुविवर्जिते ॥१०॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रवे। सुगन्धिपुष्पसंश्लिष्टवायुना सुरभीकृते ॥११॥
ददर्श रम्भां तत्रैव चन्द्रलोकात्समागताम्। सुरतश्रमविश्रान्तिकामुकीं कामकामुकीम् ॥१२॥
इच्छन्तीमीप्सितां क्रीडां गच्छन्तीं मदनाश्रमम्। एकाकिनीमुन्मनस्कां मन्मथोद्गतमानसाम् ॥१३॥
सुश्रोणीं सुदतीं श्यामां बिम्बाधरसरोरुहाम्। बृहन्नितम्बभारार्तां मत्तवारणगामिनीम् ॥१४॥

चाहता हूँ। हे ब्रह्मपते ! अन्य अनेक जीव-जन्तुओं और अनेक भाँति के उत्तम प्राणियों के विभिन्न प्रकार के सुन्दर रूपों के रहते हाथी का ही मुख उनके धड़ पर क्यों जोड़ा गया ॥२-४॥

नारायण बोले—हे नारद ! हाथी का मुख, जो (उनके धड़ पर) जोड़ा गया है, वह रहस्यमय है, समस्त पुराणों और वेदों में अतिदुर्लभ है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥५॥ वह समस्त दुःखों से पार करने वाला, समस्त सम्पत्तियों का कारण, विपत्तिनाशक, रहस्यमय एवं पाप से मुक्त करने वाला है। महालक्ष्मी का भी चरित, समस्त मंगलों का मंगल, सुखदायक, मोक्षप्रद और चारों वर्ग (धर्म अर्थ, काम एवं मोक्ष) का फल देने-वाला है। हे तात ! मैं तुम्हें पाद्मकल्प का एक प्राचीन इतिहास सुना रहा हूँ, जो रहस्यमय है और जिसे पूर्वकाल में मैंने पिता के मुख से सुना था ॥६-८॥

एक बार महेन्द्र ने पुष्पभद्रा नदी की यात्रा की। वे उस समय महालक्ष्मी के मद से उन्मत्त, राज-लक्ष्मी-सम्पन्न एवं कामी थे ॥९॥ उस नदी के तीर पर एकान्त स्थान में फुलवारी थी, जो मनोहर और अति दुर्गम जंगल में थी तथा जहाँ कोई जीवजन्तु नहीं रहता था ॥१०॥ वहाँ भौरों की गुञ्जार एवं कोकिलकण्ठ की मधुरध्वनि सुनायी पड़ती थी। सुगन्धित पुष्पों से मिली हुई वायु द्वारा वह उद्यान अतिसुगन्धित था। उन्होंने वहीं रम्भा को देखा, जो चन्द्रलोक से सुरत-श्रम को दूर करने के लिए आयी थी और कामुकी थी ॥११-१२॥ अपनी यथेच्छ क्रीड़ा के लिए वह कामदेव के गृह जा रही थी। (इसलिए) वह अकेली, उन्मन तथा कामपीड़ित चित्त वाली थी। ॥१३॥ उसका सुन्दर श्रोणीभाग था, सुन्दर दाँतों की पंक्तियाँ थीं एवं वह स्वयं श्यामा (सोलह वर्ष की युवती) थी। उसके खिले कमल की भाँति अधर-बिम्ब थे और वह बृहत् नितम्ब के भार को सम्हालने में दुःखी हो रही थी तथा मतवाले हाथी की भाँति मन्दगति से चल रही थी ॥१४॥ मन्दहास भरेमन उसका मुख शारदीय चन्द्रमा के समान था। वह तीखी

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सस्मितास्यशरच्चन्द्रां सुकटाक्षं च बिभ्रतीम् । बिभ्रतीं कबरीं रम्यां मालतीमाल्यशोभिताम् ॥१५॥
वह्निशुद्धांशुकधरां रत्नभूषणभूषिताम् । कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरं बिभ्रतीं मुदा ॥१६॥
नीलोत्पलदलश्यामकज्जलोज्ज्वललोचनाम् । मणिकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजिताम् ॥१७॥
अत्युन्नतं सुकठिनं पत्रराजिविराजितम् । सुखदं रसिकानां च स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम् ॥१८॥
सर्वसौभाग्यवेषाढ्यां सुभगां सुरतोत्सुकाम् । प्राणाधिकां च देवानां स्वच्छां स्वच्छन्दगामिनीम् ॥१९॥
वरामप्सरसां रम्यामतीव स्थिरयौवनाम् । गुणरूपवतीं शान्तां मुनिमानसमोहिनीम् ॥२०॥
दृष्ट्वा तामतिवेषाढ्यां तत्कटाक्षेण पीडितः । इन्द्रोऽतीन्द्रियचापल्यात्प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२१॥

इन्द्र उवाच

क्व गच्छसि वरारोहे क्व गताऽसि मनोहरे। मया दृष्टा हि सुचिरात्कल्याणि सुभगेऽधुना ॥२२॥
तवान्वेषणकर्ताऽहं श्रुत्वा वाचिकवक्त्रतः । त्वय्यासक्तमनाश्चास्मि नान्यां वै गणयामि च ॥२३॥
सुवासितजलार्थी यः किमिच्छेत्यङ्कुलं जलम् । पङ्कं नेच्छेच्चन्दनार्थी पङ्कजार्थी न चोत्पलम् ॥२४॥
सुधार्थी न सुरामिच्छेद्दुग्धार्थी नाऽऽविलं जलम्। सुगन्धिपुष्पशायी यो ह्यास्त्रतल्पं न चेच्छति ॥२५॥
स्वर्गी च नरकं नेच्छेत्सुभोगी दुष्टभोजनम् । पण्डितैः सह संवासी नेच्छेत्स्त्रीसंनिधिं नरः ॥
विहाय रत्नाभरणं कोऽपीच्छेल्लोहभूषणम् ॥२६॥

आँखों की कोर से देखने वाली, सुन्दर केशपाश वाली, रमणीय और मालती माला से सुशोभित थी ॥१५॥ वह अग्निविशुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित, रत्नों के भूषणों से भूषित, कस्तूरी बिन्दी समेत सिन्दूर की बिंदी धारण किये, नील कमल दल की भाँति श्यामल और कजरारे उज्ज्वल नेत्र वाली, मणि के युगल कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थल वाली तथा अति उन्नत एवं सुकठिन स्तन युगलों से विराजमान थी। जो स्तनद्वय पत्रराजि (कामकला) से सुशोभित एवं रसिकों के लिए सुखप्रद था। ऐसी सुन्दरी को देखकर, जो समस्त शोभास्वरूप, उत्तम वेष की रचना से युक्त, सुभग, सुरत के लिए उत्सुक, देवों की प्राणप्यारी, स्वच्छ, स्वच्छन्द विचरने वाली, अप्सराओं में श्रेष्ठ, अतीव रम्या, स्थायी यौवन वाली, गुणरूप भूषित, शान्त एवं मुनिजनों के चित्त को मोहित करने वाली थी, इन्द्र उसके कटाक्ष से मर्माहत हो गये और इन्द्रियों की चपलतावश उन्होंने उससे कहना भी आरम्भ किया ॥१६-२१॥

इन्द्र बोले—हे वरारोहे! कहाँ जा रही हो। हे मनोहरे! कहाँ गयी थी। हे कल्याणि, हे सुभगे! मैंने बहुत दिनों पर आज तुम्हें देखा है ॥२२॥ मैं तुम्हारी ही खोज कर रहा हूँ। मैं दूत के मुख से तुम्हारे विषय में सुन चुका हूँ, इसीलिए मेरा मन तुम्हीं में आसक्त है अन्य और किसी को नहीं चाहता ॥२३॥ क्योंकि सुवासित जल चाहने वाला क्या कभी पंकिल (गँदले-जल) की इच्छा करता है? (नहीं) और चन्दन चाहने वाला कीचड़ नहीं चाहता, तथा पंकज (कमल) चाहने वाला उत्पल (कुँई) नहीं चाहता ॥२४॥ अमृत का इच्छुक, सुरा (मद्य) नहीं चाहता, दुग्ध का इच्छुक मटमैला जल नहीं चाता। सुगन्धित पुष्पों पर शयन करने वाला अस्त्र की शय्या नहीं चाहता ॥२५॥ उसी भाँति स्वर्ग का इच्छुक नरक नहीं चाहता, उत्तम भोगी दुष्ट भोजन की रुचि नहीं करता, पण्डितों के साथ रहने वाला स्त्रियों का सम्पर्क नहीं चाहता। भला रत्नों के आभूषण त्याग कर

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

त्वां नाऽऽश्लिष्य महाविज्ञांको मूढो गन्तुमिच्छति । विहाय गङ्गां को विज्ञो नदीमन्यां च वाञ्छति॥२७॥
इन्द्रियैश्चेन्द्रियरतिं वर्धयन्तीं पदे पदे । वरं प्रार्थयितारश्च प्राणिनश्च सुखार्थिनः॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा मघवानवरुह्य गजेश्वरात् । कामयुक्तश्च पुरतस्तस्थौ तस्याश्च नारद॥२९॥
श्रुत्वा तद्वचनं रम्भा महाशृङ्गारलोलुपा । जहासाऽऽनम्रवदना पुलकाञ्चितविग्रहा॥३०॥
स्मेराननकटाक्षेण स्तनोर्वोर्दर्शनेन च । [1]नर्मोक्तिगर्भवाक्येन चाहरत्तस्य चेतनाम्॥३१॥
मितं सारं सुमधुरं सुस्निग्धं कोमलं प्रियम् । पुरुषायत्तबीजं च प्रवक्तुमुपचक्रमे॥३२॥

रम्भोवाच

यास्यामि वाञ्छितं यत्र प्रश्नेन तव किं फलम् । नाहं संतोषजननी धूर्तानां दुष्टमित्रता॥३३॥
यथा मधुकरो लोभात्सर्वपुष्पासवं लभेत् । स्वादु यत्रातिरिक्तं स तत्र तिष्ठति संततम्॥३४॥
तथैव कामुकी लोके भ्रमेद्भ्रमरवत्सदा । चाञ्चल्यात्स हि कास्वेव वायुवद्रसमाहरेत्॥३५॥
सुपुमानङ्गवत्स्त्रीणां यथा शाखाश्च शाखिषु । कामुकी काकवल्लोलः फलं भुक्त्वा प्रयाति च॥३६॥
स्वकार्यमुद्धरेद्यावत्तावद्वासप्रयोजनम् । स्थितिः कार्यानुरोधेन यथा काष्ठे हुताशनः॥३७॥

लोहे का भूषण कौन चाहेगा ? ॥२६॥ तुम महानिपुण का आलिंगन न करके कौन मूर्ख जाना चाहेगा ? क्योंकि कौन बुद्धिमान् गंगा को त्याग कर अन्य नदी की इच्छा करता है ? तुम सुख चाहने वाले तथा प्रार्थना करने वाले प्राणी की पग-पग पर अपनी इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियरति बढ़ाती हो॥२७-२८॥ हे नारद ! इतना कहकर भगवान् महेन्द्र गजराज से उतर कर काम-भावना से उसके सामने खड़े हो गये॥२९॥ महाशृंगार का लोभ करने वाली रम्भा उनकी बातें सुनकर नीचे मुख किये हँस पड़ी। उस समय उसके शरीर में रोमाञ्च हो रहा था॥३०॥ हँसमुख कटाक्ष से तथा स्तनों और जाँघों को दिखाकर एवं परिहास की बातों से उनके मन को अपने अधीन कर लिया॥३१॥ और मित (अल्प) सार (तत्त्व), अति मधुर, सुस्निग्ध, कोमल प्रिय एवं पुरुषों को अपने अधीन करने वाली बातें भी कहना आरम्भ किया॥३२॥

रम्भा बोली—जहाँ की इच्छा है, वहाँ जाऊँगी। तुम्हें पूछने से क्या लाभ ? मैं तुम्हारे संतोष का कार्य नहीं कर सकती हूँ, क्योंकि धूर्तों की मित्रता अच्छी नहीं होती है॥३३॥ जिस प्रकार भौंरा लोभवश सभी पुष्पों के रस को लेता है किन्तु जहाँ सबसे अधिक स्वाद मिलता है, वहीं निरन्तर रहता है॥३४॥ उसी प्रकार कामुकी स्त्रियाँ भी भौंरे की भाँति सदैव लोक में विचरण करती रहती हैं। किन्तु वह (पुरुष) अपनी चञ्चलतावश वायु की भाँति किन्हीं का रस (आनन्द) लेता है॥३५॥ वृक्षों में शाखा की भाँति सुन्दर पुरुष भी सुन्दरियों के अंगस्वरूप होते हैं। कामुकी स्त्री कौवे के समान चपल होती है—फल (रस) का उपभोग किया और चलती बनी॥३६॥ जब तक अपना कार्य रहता है तभी तक निवास का प्रयोजन रहता है। क्योंकि काष्ठ (लकड़ी) में स्थित अग्नि की भाँति वह भी कार्यानुरोधवश ही स्थित रहती है ॥३७॥ तालाब में जब तक जल रहता है, उसके जीव-जन्तु तभी तक वहाँ रहते हैं और

---

१ क. कामान्याहुतिवा० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यावत्तडागे तोयानि तावद्यादांसि तेषु च। शोषारम्भे च तोयानि (नां) यान्ति स्थानान्तरं पुनः ॥३८॥
त्वं देवानामीश्वरोऽसि कामिनीनां च वाञ्छितः। पुमांसं रसिकं शश्वद्वाञ्छन्ति रसिकाः सुखात् ॥३९॥
युवानं रसिकं शान्तं सुवेषं सुन्दरं प्रियम्। गुणिनं धनिनं स्वच्छं कान्तमिच्छति कामिनी ॥४०॥
दुःशीलं रोगिणं वृद्धं रतिशक्तिवियोजितम्। अदातारमविज्ञं च नैव वाञ्छन्ति योषितः ॥४१॥
कामूढा न च वाञ्छन्ति त्वामेवं गुणसागरम्। तवाऽऽज्ञाकारिणीं दासीं गृहाणात्र यथा सुखम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा सस्मिता सा च तं ययौ वक्रचक्षुषा। कामाग्निदग्धा विगलल्लज्जा तस्थौ समीपतः ॥४३॥
ज्ञात्वा भावं स्मरार्तायाः स्मरशास्त्रविशारदः। गृहीत्वा तां पुष्पतल्पे विजहार तया सह ॥४४॥
चुचुम्ब रहसि प्रौढां नग्नां च सुभगां वराम्। पक्वबिम्बाधरौष्ठीं च सुदत्या चुम्बितस्तया ॥४५॥
नानाप्रकारशृङ्गारान्विपरीतादिकान्मुने। चकार कामी तत्रैव शृङ्गारो मूर्तिमानिव ॥४६॥
तौ कामाहितचित्तौ नो बुबुधाते दिवानिशम्। अन्योन्यगतचित्तौ च कामार्तौ ज्ञानवर्जितौ ॥४७॥
स च कृत्वा स्थले क्रीडां तया सह सुरेश्वरः। ययौ जलविहारार्थं पुष्पभद्रानदीजलम् ॥४८॥
स चकार जलक्रीडां तया सह मुदा क्षणम्। जलात्स्थले स्थलात्तोये विजहार पुनः पुनः ॥४९॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन वर्त्मना मुनिपुंगवः। सशिष्यो याति दुर्वासा वैकुण्ठाच्छंकरालयम् ॥५०॥

जब जल सूखने लगता है तो वे दूसरे स्थान पर चले जाते हैं ॥३८॥ तुम देवताओं के अधीश्वर हो, कामिनियों के मनचाहे मनोरथ हो और रसीली स्त्रियाँ रसिक पुरुष को ही सुख के लिए निरन्तर चाहती हैं। कामिनी स्त्री युवा, रसिक, शान्त, उत्तम वेष-भूषा वाला, सुन्दर, प्रिय, गुणी, धनी और स्वच्छ कान्त चाहती है। दुष्ट स्वभाव वाले, वृद्ध, रति-शक्तिहीन, अदाता और मूर्ख को स्त्रियाँ कभी नहीं चाहतीं ॥३९-४१॥ इसलिए कौन ऐसी मूर्खा होगी, जो तुम्हारे ऐसे गुणसागर को न चाहती हो। मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करने वाली दासी हूँ, तुम्हें जिस प्रकार सुख मिले, दासी से सेवा ले सकते हो ॥४२॥ इतना कहकर उसने मन्द मुसुकाती हुई अपनी तिर्छी आंखों से उन्हें देखा। वह उस समय कामाग्नि से जल रही थी और उसी कारण निर्लज्ज भी हो रही थी। वह उनके समीप अवस्थित हुई ॥४३॥ कामशास्त्र के निपुण विद्वान् इन्द्र ने उस कामपीड़ित का भाव समझ कर उसे पकड़ लिया और पुष्प-शय्या पर उसके साथ विहार करने लगे ॥४४॥ एकान्त स्थान में नग्न, श्रेष्ठ सुन्दरी तथा पके बिम्बाफल के समान अधर और सुन्दर दाँतों की पंक्तियों वाली उस प्रौढ़ा का चुम्बन किया और वह भी उन्हें चूमने लगी ॥४५॥ हे मुने! विपरीतादि अनेक प्रकारके शृंगार रस के उपभोग से वे बहुत सुखी हुए, जो स्वयं मूर्तिमान् शृंगार की भाँति दिखायी देते थे ॥४६॥ वे दोनों सुरत-क्रीड़ा में इतने निमग्न थे कि उन्हें दिनरात का ज्ञान नहीं रह गया था, वे कामपीड़ित होकर एक दूसरे को सदैव चाहते थे उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया था ॥४७॥ सुरेश्वर इन्द्र उसके साथ स्थल पर क्रीड़ा करके पुनः जलविहार करने के लिए पुष्पभद्रानदी में प्रविष्ट हो गये ॥४८॥ उन्होंने अतिप्रसन्न हो कर उसके साथ जलविहार किया और पुनः जल से निकलकर स्थल पर तथा स्थल से जाकर जल में उसके साथ बार-बार रतिक्रीड़ा करने लगे ॥४९॥ इसी बीच मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा अपने शिष्यों समेत उसी मार्ग से, वैकुण्ठ से कैलास जा रहे थे ॥५०॥ उस समय मुनीन्द्र दुर्वासा को देखकर देवराज इन्द्र एकदम

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तं च दृष्ट्वा मुनीन्द्रं च देवेन्द्रः स्तब्धमानसः। ननामाऽऽगत्य सहसा ददौ तस्मै स चाऽऽशिषः ॥५१॥
पारिजातप्रसूनं यद्दत्तं नारायणेन वै। तच्च दत्तं महेन्द्राय मुनीन्द्रेण महात्मना ॥५२॥
दत्त्वा पुष्पं महाभागस्तमुवाच कृपानिधिः। माहात्म्यं तस्य यत्किंचिदपूर्वं मुनिसत्तमः ॥५३॥

दुर्वासा उवाच

सर्वविघ्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम्। मूर्ध्नीदं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः ॥५४॥
पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत्। तच्छायेव महालक्ष्मीर्न जहाति कदाऽपि तम् ॥५५॥
ज्ञानेन तेजसा बुद्ध्या विक्रमेण बलेन च। सर्वदेवाधिकः श्रीमान्हरितुल्यपराक्रमः ॥५६॥
भक्त्या मूर्ध्नि न गृह्णाति योऽहंकारेण पामरः। नैवेद्यं च हरेरेव स भ्रष्टश्रीः स्वजातिभिः ॥५७॥
इत्युक्त्वा शंकरांशश्च ह्यगमच्छंकरालयम्। ततस रम्भान्तिके तिष्ठञ्चिक्षेप गजमस्तके ॥५८॥
तेन भ्रष्टश्रियं दृष्ट्वा सा जगाम सुरालयम्। पुंश्चली योग्यमिच्छन्ती नापरं चञ्चलाऽधमा ॥५९॥
देवराजं परित्यज्य गजराजो महाबली। प्रविवेश महारण्यं तं निक्षिप्य स्वतेजसा ॥६०॥
तत्रैव करिणीं प्राप्य मत्तः संबुभुजे बलात्। साऽतो बभूव वशगा योषिज्जातिः सुखार्थिनी ॥६१॥
तयोर्बभूवापत्यानां निवहस्तत्र कानने। हरिस्तन्मस्तकं छित्त्वा योजयामास बालके ॥६२॥

स्तब्धचित्त हो गये। पुनः सहसा आकर उन्हें प्रणाम किया और मुनि ने उन्हें शुभाशिष प्रदान किया ॥५१॥ महात्मा दुर्वासा ने पारिजात पुष्प महेन्द्र को दे दिया, जिसे नारायण ने उन्हें दिया था ॥५२॥ महाभाग एवं कृपा-निधान मुनिश्रेष्ठ ने पुष्प देकर उसका कुछ माहात्म्य भी उन्हें बतलाया, जो अपूर्व था ॥५३॥

दुर्वासा बोले—हे देवेन्द्र! भगवान् का दिया हुआ यह सर्वविघ्ननाशक पुष्प जिसके शिरस्थान पर रहेगा, चारों ओर से उसी का जय होगा ॥५४॥ सब लोगों के पहले उसकी पूजा होगी और वह देवों में अग्रणी होगा। तथा उसकी छाया की भाँति महालक्ष्मी उसका त्याग कभी नहीं करेंगी ॥५५॥ ज्ञान, तेज, बुद्धि, विक्रम, बल में वह सभी देवों से अधिक, श्रीमान् एवं विष्णु के समान पराक्रमी होगा ॥५६॥ जो पामर (नीच) अहंकार वश भगवान् के इस नैवेद्य-पुष्प को भक्तिपूर्वक शिर पर धारण न करेगा, वह अपनी जाति से भ्रष्ट होकर श्रीहीन हो जायगा ॥५७॥ इतना कहकर दुर्वासा शंकर के घर चले गये। अनन्तर रंभा के समीप रहते इन्द्र ने उस माला को गजराज के मस्तक पर फेंक दिया, जिससे वे तुरन्त श्रीहत हो गये और उस अवस्था में उन्हें देखकर रम्भा भी स्वर्ग चली गयी, क्योंकि वह पुंश्चली, चञ्चल और अधम होने के नाते अपने समान ही पुरुष को चाहती थी, अन्य को नहीं ॥५८-५९॥ महाबली गजराज ने भी देवराज इन्द्र का त्याग कर महारण्य में प्रवेश किया और मदमत्त होने के नाते अपने तेज द्वारा उन्हें गिराकर वह किसी हथिनी के साथ बलात् उपभोग करने लगा। स्त्री जाति की होने से वह सुखार्थिनी हथिनी उस गजराज के वशीभूत हो गयी। उस जंगल में उन दोनों की संतानों का समूह हो गया। भगवान् ने उसी गजराज का मस्तक काट कर उस बालक (गणेश) के धड़ पर जोड़

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इत्येवं कथितं वत्स किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। गजास्ययोजनायाश्च कारणं पापनाशनम् ॥६३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणपतेर्गजास्ययोजनाहेतुकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

ते देवा ब्रह्मशापेन निःश्रीकाः केन वा प्रभो। बभूवुस्तद्रहस्यं च गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥१॥
कथं वा प्रापुरेते तां कमलां जगतां प्रसूम्। किं चकार महेन्द्रश्च तद्ब्रूवान्वक्तुमर्हसि ॥२॥

नारायण उवाच

गजेन्द्रेण पराभूतो रम्भया च सुनन्दधीः। भ्रष्टश्रीर्दैन्ययुक्तश्च स जगामामरावतीम् ॥३॥
तां ददर्श निरानन्दो निरानन्दां पुरीं मुने। दैन्यग्रस्तां बन्धुहीनां वैरिवर्गैः समाकुलाम् ॥४॥
इति श्रुत्वा दूतमुखाज्जगाम गुरुमन्दिरम्। तेन देवगणैः सार्धं जगाम ब्रह्मणः सभाम् ॥५॥
गत्वा ननाम तं शक्रः सुरैः सार्धं तथा गुरुः। तुष्टाव वेदवाक्यैश्च स्तोत्रेणापि च संयतः ॥६॥
प्रवृत्तिं कथयामास वाक्पतिस्तं प्रजापतिम्। श्रुत्वा ब्रह्मा नम्रवक्त्रः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥७॥

दिया ॥६०-६२॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें गजमुख जोड़ने की पापनाशिनी कथा सुना दी और क्या सुनना चाहते हो॥६३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में गणपति के गजमुख जोड़ने का हेतु कथन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

अध्याय २१

इन्द्र को पुनः लक्ष्मी की प्राप्ति

नारद बोले—हे प्रभो! किस ब्रह्म-शाप द्वारा देवता लोग श्रीहीन हो गये, यह गोपनीय और अतिदुर्लभ रहस्य बताने की कृपा करें तथा यह भी कहने का अनुग्रह करें कि इन्द्र आदि देवों को जगज्जननी लक्ष्मी किस प्रकार प्राप्त हुईं और उसके पश्चात् इन्द्र ने क्या किया ॥१-२॥

नारायण बोले—महामूर्ख इन्द्र गजराज और रम्भा द्वारा अपमानित होने पर श्रीहत एवं दीन-हीन होकर अमरावती पुरी चले गये ॥३॥ हे मुने! वहाँ पहुँचने पर दुःखी इन्द्र ने पुरी को भी आनन्द-रहित, दीनता से घिरी, बन्धुविहीन और शत्रुओं से आच्छन्न देखा ॥४॥ दूत के मुख से भी वही उपर्युक्त बातें सुनकर उसे साथ लिए इन्द्र गुरु (बृहस्पति) के घर गये और वहाँ से बृहस्पति एवं देवों के साथ ब्रह्मा की सभा में गये ॥५॥ इन्द्र और बृहस्पति ने देवों समेत वहाँ उन्हें नमस्कार किया और संयत भाव से वेदवाक्य एवं स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति की ॥६॥ अनन्तर बृहस्पति ने ब्रह्मा से समस्त समाचार कह सुनाया, जिसे सुनकर ब्रह्मा ने नीचे मुख करके कहना आरम्भ किया ॥७॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्मोवाच

वत्प्रपौत्रोऽसि देवेन्द्र शश्वद्राजश्रिया ज्वलन् । लक्ष्मीसमः शचीभर्ता परस्त्रीलोलुपः सदा ॥८॥
गौतमस्याभिशापेन भगाङ्कः सुरसंसदि । पुनर्लज्जाविहीनस्त्वं परस्त्रीरतिलोलुपः ॥९॥
यः परस्त्रीषु निरतस्तस्य श्रीर्वा कुतो यशः । स च निन्द्यः पापयुक्तः शश्वत्सर्वसभासु च ॥१०॥
नैवेद्यं श्रीहरेरेव दत्तं दुर्वाससा च ते । गजमूर्ध्नि त्वया न्यस्तं रम्भयाऽऽहृतचेतसा ॥११॥
क्व सा रम्भा सर्वभोग्या क्वाधुना त्वं श्रिया हृतः । सर्वसौख्यप्रदात्री त्वां गता त्यक्त्वा क्षणेन सा ॥१२॥
वेश्या सश्रीकमिच्छन्ती निःश्रीकं न च चञ्चला । नवं नवं प्रार्थयन्ती परिनिन्द्य पुरातनम् ॥१३॥
यद्गतं तद्गतं वत्स निष्पन्नं न निवर्तते । भज नारायणं भक्त्या पद्मायाः प्राप्तिहेतवे ॥१४॥
इत्युक्त्वा तं जगत्स्रष्टा स्तोत्रं च कवचं ददौ । नारायणस्य मन्त्रं च नारायणपरायणः ॥१५॥
स तैः सार्धं च गुरुणा ह्यजपन्मन्त्रमीप्सितम् । गृहीत्वा कवचं तेन पर्यष्टौत्पुष्करे हरिम् ॥१६॥
वर्षमेकं निराहारो भारते पुण्यदे शुभे । सिषेवे कमलाकान्तं कमलाप्राप्तिहेतवे ॥१७॥
आविर्भूय हरिस्तस्मै वाञ्छितं च वरं ददौ । लक्ष्मीस्तोत्रं च कवचं मन्त्रमैश्वर्यवर्धनम् ॥१८॥

ब्रह्मा बोले—हे देवेन्द्र ! तुम मेरे प्रपौत्र (परपोता) हो, निरन्तर राजश्री से विभूषित रहते हो और लक्ष्मी के समान शची के तुम पति हो, किन्तु फिर भी दूसरे की स्त्री के लिए सदा लालायित रहते हो ॥८॥ देवसभा में गौतम जी के शाप देने से तुम्हारे सर्वांग में भग ही भग हो गया था, किन्तु फिर भी तुम निर्लज्ज को परायी स्त्री के उपभोग का लोभ बना ही रहा ॥९॥ जो परायी स्त्रियों में सदा आसक्त रहता है, उसे लक्ष्मी और यश की प्राप्ति कहाँ से हो सकती है ? वह निरन्तर पापी और सभी सभाओं (समाजों) में निन्दा का पात्र होता है ॥१०॥ दुर्वासा जी ने तुम्हें भगवान् के प्रसाद रूप में माला दी थी, जिसे तुमने रम्भा द्वारा अपहृतचित्त होने के कारण हाथी के मस्तक पर डाल दिया ॥११॥ अब सर्वभोग्या रम्भा कहाँ है और श्रीहृत तुम कहाँ हो ? समस्त सुख देने वाली वह रम्भा तुम्हें क्षणमात्र में छोड़ कर चली गयी ॥१२॥ वेश्याएँ चञ्चल स्वभाव की होती हैं—वे श्रीसम्पन्न को ही चाहती हैं, श्रीहीन को नहीं। वे पुराने को छोड़कर नित्य नये-नये को ढूँढ़ती हैं ॥१३॥

हे वत्स ! जो हुआ-सो हुआ, जो गया वह लौटेगा नहीं अतः लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए अब भक्तिपूर्वक नारायण की सेवा करो। इतना कहकर नारायण-परायण ब्रह्मा ने जगत्स्रष्टा भगवान् का स्तोत्र, कवच और मन्त्र उन्हें दिया ॥१४-१५॥ देवों को साथ लिए बृहस्पति ने उस अभीष्ट मंत्र का जप किया और कवच ग्रहण कर इन्द्र ने पुष्कर क्षेत्र में भगवान् की स्तुति आरम्भ की ॥१६॥ भारत के उस शुभ एवं पुण्यप्रद स्थान में उन्होंने एक वर्ष तक निराहार रहकर कमला की प्राप्ति के लिए कमलाकान्त भगवान् की सेवा की ॥१७॥ अनन्तर भगवान् ने प्रकट होकर उन्हें अभिलषित वरदान, लक्ष्मी-स्तोत्र, कवच और ऐश्वर्यवर्द्धक मन्त्र प्रदान किया ॥१८॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दत्त्वा जगाम वैकुण्ठमिन्द्रः क्षीरोदमेव च। गृहीत्वा कवचं स्तुत्वा प्राप पद्मालयां मुने ॥१९॥
सुरेश्वरोऽरिं जित्वा वै ह्यलभच्चामरावतीम्। प्रत्येकं च सुराः सर्वे स्वालयं प्रापुरीप्सितम् ॥२०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शक्रलक्ष्मीप्राप्तिर्नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ। महालक्ष्म्याश्च लक्ष्मीशस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥१॥

नारायण उवाच

पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरराम सुरेश्वरः। आविर्बभूव तत्रैव क्लिष्टं दृष्ट्वा हरिः स्वयम् ॥२॥
तमुवाच हृषीकेशो वरं वृणु यथेप्सितम्। स च वव्रे वरं लक्ष्मीमीशस्तस्मै ददौ मुदा ॥३॥
वरं दत्त्वा हृषीकेशः प्रवक्तुमुपचक्रमे। हितं सत्यं च सारं च परिणामसुखावहम् ॥४॥

मधुसूदन उवाच

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम्। परमैश्वर्यजनकं सर्वशत्रुविमर्दनम् ॥५॥

हे मुने! देकर भगवान् वैकुण्ठ चले गये और इन्द्र ने क्षीरसागर में पहुँचकर कवच धारण किया तथा स्तुति के द्वारा लक्ष्मी की प्राप्ति की ॥१९॥ इन्द्र ने शत्रु को जीतकर अमरावती पुरी और प्रत्येक देव ने अपने-अपने अभीष्ट स्थान की प्राप्ति की ॥२०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में इन्द्र की लक्ष्मी-प्राप्ति कथन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

अध्याय २२

लक्ष्मी का स्तोत्र और कवच

नारद बोले—हे तपोधन! लक्ष्मी के अधीश्वर भगवान् विष्णु ने वहाँ प्रकट होकर उन्हें महालक्ष्मी का कौन स्तोत्र और कवच प्रदान किया, बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण बोले—इन्द्र पुष्कर क्षेत्र में भगवान् की तपस्या कर रहे थे—उन्हें अति दुःखी देखकर भगवान् स्वयं वहाँ प्रकट हो गये ॥२॥ भगवान् हृषीकेश ने उनसे कहा—यथेच्छ वरदान मांगो। उन्होंने लक्ष्मी की याचना की। भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रदान किया ॥३॥ वर प्रदान करके भगवान् हृषीकेश ने उनसे कुछ कहना भी आरम्भ किया, जो हित, सत्य, सारभाग और परिणाम में सुखदप्रद था ॥४॥

मधुसूदन बोले—हे शक्र! इस कवच को ग्रहण करो, जो समस्त दुःखों का नाशक, परम ऐश्वर्यप्रद एवं सम्पूर्ण शत्रुओं का मर्दन करने वाला है ॥५॥ समस्त जगत् के जलमग्न होने पर मैंने पहले समय में इसे ब्रह्मा

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्मणे च पुरा दत्तं विष्टपे च जलप्लुते। यद्धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्ययुतो विधिः ॥६॥
बभवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यतः। सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः ॥७॥
पङ्क्तिश्छन्दश्च सा देवी स्वयं पद्मालया वरा। सिद्धैश्वर्यसुखेष्वेव विनियोगः प्रकीर्तितः ॥८॥
यद्धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी [1]भवेत्। मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया ॥९॥
नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचने। केशान्केशवकान्ता च कपालं कमलालया ॥१०॥
जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं स्कन्धं संपत्प्रदा सदा। ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥११॥
ॐ ह्रीं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु। पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मं च [2]ते नमः ॥१२॥
ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः पादौ पातु मे संततं चिरम्। ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम् ॥१३॥
ॐ श्रीं [3]महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्गं पातु मे सदा। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः ॥१४॥
इति ते कथितं वत्स सर्वसंपत्करं परम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१५॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयी भवेत् ॥१६॥
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन। तस्य च्छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि ॥१७॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं स मन्दधीः। शतलक्षप्रजापेऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥१८॥

को दिया, जिसे धारण कर ब्रह्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से सम्पन्न होकर संसार में श्रेष्ठ हो गये ॥६॥ सभी मनुगण समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न हो गये। सकल ऐश्वर्य्य के प्रदायक इस कवच के ब्रह्मा ऋषि, पंक्ति छन्द तथा स्वयं कमला श्रेष्ठ देवता हैं और सिद्धि, ऐश्वर्य्य तथा सुख के लिए इसका विनियोग होता है। इस कवच को धारण कर लोग सर्वत्र विजयी होते हैं। पद्मा मेरे मस्तक की रक्षा करें, हरिप्रिया कण्ठ की रक्षा करें, लक्ष्मी मेरी नासिका की रक्षा करें, कमला दोनों नेत्रों की रक्षा करें, केशवकान्ता केशों की, कमलालया कपाल की जगत्प्रसू युगल गण्डस्थल की और सम्पत्प्रदा दोनों कन्धों की सदा रक्षा करें। 'ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' सदा पीठ की 'ओं ह्रीं श्रीं पद्मालया स्वाहा' सदा वक्षःस्थल की और श्री मेरे कंकाल तथा दोनों बाहुओं की रक्षा करें, तुम्हें नमस्कार है ॥७-१२॥ 'ओं ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः' निरन्तर मेरे चरण की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा' नितम्ब की और 'ओं श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरे सर्वांग की रक्षा करें। 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरी चारों ओर से रक्षा करे ॥१३-१४॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें अद्भुत कवच सुना दिया, जो समस्त सम्पत्ति समेत सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य प्रदान करता है ॥१५॥ सविधि गुरु की अर्चना करके जो इस कवच को कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है। महालक्ष्मी उसके घर का त्याग कभी नहीं करती हैं और प्रत्येक जन्म में छाया की भाँति उसके साथ रहती हैं ॥१६-१७॥ किन्तु जो मूर्ख बिना कवच जाने लक्ष्मी की आराधना करेगा, उसके लिए, लाख जप करने पर भी मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होगा ॥१८॥

---

१ क. सुखी। २ क. च श्रीं नः। ३ क. ह्रीं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

द्वाविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

दत्त्वा तस्मै च कवचं मन्त्रं वै षोडशाक्षरम् । संतुष्टश्च जगन्नाथो जगतां हितकारणम् ॥१९॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै स्वाहा । ददौ तस्मै च कृपया चेन्द्राय च महामुने ॥२०॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं गोपनीयं सुदुर्लभम् । सिद्धैर्मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम् ॥२१॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२२॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम् । कस्तूरीबिन्दुमध्यस्थं सिन्दूरं भूषणं तथा ॥२३॥
अमूल्यरत्नरचितकुण्डलोज्ज्वलभूषणम् । बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यशोभितम् ॥२४॥
सहस्रदलपद्मस्थां स्वस्थां च सुमनोहराम् । शान्तां च श्रीहरेः कान्तां तां भजेज्जगतां प्रसूम् ॥२५॥
ध्यानेनानेन देवेन्द्र ध्यात्वा लक्ष्मीं मनोहराम् । भक्त्या संपूज्य तस्यै च चोपचारांस्तु षोडश ॥२६॥
स्तुत्वाऽनेन स्तवेनैव वक्ष्यमाणेन वासव । नत्वा वरं गृहीत्वा च लभिष्यसि च निर्वृतिम् ॥२७॥
स्तवनं शृणु देवेन्द्र महालक्ष्म्याः सुखप्रदम् । कथयामि सुगोप्यं च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२८॥

नारायण उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि न [1]क्षमाः स्तोतुमीश्वराः । बुद्धेरगोचरां सूक्ष्मां तेजोरूपां सनातनीम्
अत्यनिर्वचनीयां च को वा निर्वक्तुमीश्वरः ॥२९॥

नारायण बोले—हे महामुने ! भगवान् जगन्नाथ ने इन्द्र को कवच देकर कृपया पुनः प्रसन्नतावश उन्हें षोडशाक्षर (सोलह अक्षरों वाला) मन्त्र भी प्रदान किया, जो समस्त जगत् का हितरक्षक है—'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै स्वाहा' इस मंत्र के साथ उन्होंने सामवेदोक्त ध्यान भी बताया, जो गोपनीय, अतिदुर्लभ, सिद्धों और मुनिवरों से दुष्प्राप्य तथा निश्चित ही सिद्धि का दायक एवं शुभ है ॥१९-२१॥ श्वेत चम्पा के समान रूपरंग वाली, चन्द्रमा की भाँति प्रभा (कान्ति) वाली, अग्निविशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित, रत्नों के भूषणों से भूषित, मन्दहास समेत प्रसन्नतापूर्ण मुख वाली, भक्तों पर कृपा करने वाली, सहस्रदल वाले कमल पर आसीन, स्वस्थ, अति मनोहर, शान्त, श्रीहरि की प्रिया तथा जगत् की माता की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥२२-२५॥ देवेन्द्र ! इसी ध्यान द्वारा मनोहारिणी लक्ष्मी का ध्यान करके भक्तिपूर्वक षोडशोपचार से उनकी पूजा करनी चाहिए। हे वासव ! इसी स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति और नमस्कार करने से तुम्हें वरदान प्राप्त होगा तथा सुख मिलेगा। हे देवेन्द्र ! मैं तुम्हें महालक्ष्मी का वह सुखप्रद स्तोत्र बता रहा हूँ, जो तीनों लोकों में अतिगोप्य और दुर्लभ है, सुनो ॥२६-२८॥

नारायण बोले—हे देवि ! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, यद्यपि ईश्वर भी तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं क्योंकि तुम बुद्धि से अगोचर, सूक्ष्म, तेजोरूप, सनातनी, और अत्यंत अनिर्वचनीय हो अतः तुम्हारी निरुक्ति कौन कर सकता है ? ॥२९॥

---

१ क. श्रीं महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वा० । २ क. क्षमः स्तोतुमीश्वरीम् ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्वेच्छामयीं निराकारां भक्तानुग्रहविग्रहाम् । स्तौमि वाऽमनसोः पारां किंवाऽहं जगदम्बिके ॥३०॥
परां चतुर्णां वेदानां पारबीजं भवार्णवे । [1]सर्वसस्याधिदेवीं च सर्वासामपि संपदाम् ॥३१॥
[2]योगिनां चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनां तथा । वेदानां वै वेदविदां जननीं वर्णयामि किम् ॥३२॥
यया विना जगत्सर्वमबीजं[3] निष्फलं ध्रुवम् । यथा स्तनंधयानां च विना मात्रा सुखं भवेत् ॥३३॥
प्रसीद जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान् । वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः ॥३४॥
नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः । ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः ॥३५॥
हरिभक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः । सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्यै नमो नमः ॥३६॥
कुपुत्राः कुत्रचित्सन्ति न कुत्रापि कुमातरः । कुत्र माता पुत्रदोषं तं विहाय च गच्छति ॥३७॥
स्तनंधयेभ्य इव मे हे मातर्देहि दर्शनम् । कृपां कुरु कृपासिन्धो त्वमस्मान्भक्तवत्सले ॥३८॥
इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम् । सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं संपदः प्रदम् ॥३९॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् । महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन ॥४०॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तं च तत्रैवान्तरधीयत । देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्धं तदाज्ञया ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० लक्ष्मीस्तवकवचपूजाकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

किन्तु हे जगदम्बिके ! स्वेच्छामयी, निराकार, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाली और वाणी-मन से परे तुम्हारीस्तुति मैं क्या कर सकता हूँ ? चारों वेदों से परे, संसार सागर को पार करने की एकमात्र कारण, सभी प्रकार के सस्यों और समस्त सम्पदाओं की अधीश्वरी, योगी, योग, ज्ञान, ज्ञानी, वेद और वेदवेत्ताओं की तुम जननी हो, तुम्हारा मैं क्या वर्णन करूँ ॥३०-३२॥ क्योंकि जिसके बिना सारा जगत् निर्बीज एवं निष्फल रहता है जैसे बिना माता के दुधमुंहे बच्चों को सुख नहीं मिलता है ॥३३॥ तुम जगत् की माता हो, प्रसन्न हो जाओ, हम कातरों की रक्षा करो, हम लोग तुम्हारे चरण-कमल के शरणागत हैं ॥३४॥ शक्तिस्वरूप जगन्माता को बार-बार नमस्कार है, ज्ञान देने वाली, बुद्धि देने वाली और सब कुछ देने वाली को नमस्कार है ॥३५॥ भगवान् की भक्ति देने वाली, मुक्ति देने वाली को नमस्कार है। सर्वज्ञान रखने वाली एवं सब कुछ देने वाली महालक्ष्मी को बार-बार नमस्कार है ॥३६॥ कुपुत्र कहीं हैं भी, किन्तु कुमाता कहीं नहीं होती हैं और क्या अपराधी पुत्र को छोड़कर माता कहीं चली जाती है ? ॥३७॥ अतः हे मातः ! दुधमुँहे बच्चे की भाँति मुझे भी तुम दर्शन देने की कृपा करो। हे कृपा-सिन्धो ! हे भक्तवत्सले ! तुम हम पर कृपा करो ॥३८॥ हे वत्स ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पद्मा का शुभावह स्तोत्र बता दिया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक सार, शुभप्रद और सम्पत्तिप्रदायक है ॥३९॥ इस प्रकार इस महापुण्य स्तोत्र का जो पूजाकाल में पाठ करता है, उसके घर को महालक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती हैं ॥४०॥ इतना कहकर श्री भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और उनकी आज्ञा से इन्द्रदेव भी देवों के साथ क्षीरसागर चले गये ॥४१॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में लक्ष्मी का स्तव, कवच तथा पूजा कथन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

---

१ क. सर्वेशस्या०। २ क. गोपीनां चैव गोपानां ज्ञा०। ३ क. मवस्तु।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

इन्द्रश्च गुरुणा सार्धं सुरैः संहृष्टमानसः। जगाम शीघ्रं पद्मायै तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥१॥
कवचं च गले बद्ध्वा सद्रत्नगुटिकान्वितम्। मनसा स्तवनं दिव्यं स्मारं स्मारं पुनः पुनः ॥२॥
ते सर्वे भक्तियुक्ताश्च तुष्टुवुः कमलालयाम्। साश्रुनेत्राश्च दीनाश्च भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥३॥
सा तेषां स्तवनं श्रुत्वा सद्यः साक्षाद्बभूव ह। सहस्रदलपद्मस्था शतचन्द्रसमप्रभा ॥४॥
जगद्व्याप्तं सुप्रभया जगन्मात्रा यया मुने। तानुवाच जगद्धात्री हितं सारं यथोचितम् ॥५॥

महालक्ष्मीरुवाच

वत्सा नेच्छामि वो गेहान्गन्तुं नैवं क्षमाऽधुना। भ्रष्टान्दृष्ट्वा ब्रह्मशापाद्बिभेमि ब्रह्मशापतः ॥६॥
प्राणा मे ब्राह्मणाः सर्वे शश्वत्पुत्राधिकं प्रियाः। विप्रदत्तं च यत्किंचिदुपजीव्यं सदैव च ॥७॥
विप्रा ब्रुवन्तु मां तुष्टा यास्यामि भवदाज्ञया। न मे पूजां ध्रुवं कर्तुं क्षमास्ते च तपस्विनः ॥८॥
गुरुभिर्ब्राह्मणैर्देवैर्भिक्षुभिर्वैष्णवैस्तथा। [1]यदभाव्यं भवेद्दैवात्ते शप्ताः सन्ति तैः सदा ॥९॥

अध्याय २३

लक्ष्मी के निवास योग्य स्थानों का वर्णन

नारायण बोले—इन्द्र अति प्रसन्न होकर गुरु बृहस्पति और देवों के साथ लक्ष्मी को लाने के लिए क्षीरसागर के तट पर गये। वहाँ उत्तम रत्न की गुटिका में कवच रखकर उसे गले में बांधे हुए वे मन से बार-बार दिव्य स्तोत्र का स्मरण करने लगे ॥१-२॥ इस भाँति सभी लोगों ने, जो वहाँ उस समय सजलनेत्र, दीन और भक्ति से कन्धे झुकाये खड़े थे, भक्तिपूर्वक कमला की स्तुति की ॥३॥ अनन्तर उन लोगों की स्तुति सुनकर लक्ष्मी साक्षात् प्रकट हो गयीं जो सहस्र दल वाले कमल पर स्थित और सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण थीं ॥३॥ हे मुने! जिसकी उत्तम प्रभा से सारा जगत् व्याप्त था, उस जगत् की धात्री ने उन देवों से कहना आरम्भ किया, जो हितकर, सारभाग और यथोचित था ॥४-५॥

महालक्ष्मी बोलीं—हे वत्स! मैं तुम लोगों के यहाँ जाना नहीं चाहती। इस समय मैं तुम्हारे घर जाने में असमर्थ हूँ। क्योंकि ब्राह्मण-शाप से भ्रष्ट लोगों को देखकर मैं बहुत भयभीत होती हूँ। ब्राह्मण ही मेरे प्राण हैं और वे निरन्तर मुझे पुत्र से अधिक प्रिय हैं इसलिए ब्राह्मण जो कुछ दे देते हैं वही मेरे जीवन का सहारा रहता है ॥६-७॥ यदि सुप्रसन्न होकर ब्राह्मण आज्ञा प्रदान कर दें तो मैं चल सकती हूँ। अन्यथा मेरी पूजा करने के लिए वे बेचारे अब भी असमर्थ हैं ॥८॥ दैव संयोग से जिसका दुर्भाग्य उपस्थित होता है, उसे गुरु, ब्राह्मण, देव, संन्यासी और वैष्णव द्वारा शाप प्राप्त होता है ॥९॥ यद्यपि भगवान् नारायण समस्त के कारण, सर्वाधीश्वर

---

१ ख. यद्यभाव्यं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नारायणश्च भगवान्बिभेति ब्रह्मशापतः। सर्वबीजं च भगवान्सर्वेशश्च सनातनः॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्ब्राह्मणा हृष्टमानसाः। आजग्मुः सस्मिताः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा॥११॥
अङ्गिराश्च प्रचेताश्च क्रतुश्च [1]भृगुरेव च। पुलहश्च पुलस्त्यश्च मरीचिश्चात्रिरेव च॥१२॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवान्साक्षान्नारायणात्मकः॥१३॥
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा। दुर्वासाः कश्यपोऽगस्त्यो गौतमः कण्व एव च॥१४॥
और्वः कात्यायनश्चैव कणादः पाणिनिस्तथा। मार्कण्डेयो लोमशश्च वसिष्ठो भगवान्स्वयम्॥१५॥
ब्राह्मणा विविधैर्द्रव्यैः पूजयामासुरीश्वरीम्। देवाश्चारण्यनैवेद्यैरुपहारेण भक्तितः॥१६॥
स्तुत्वा मुनीन्द्रास्तां भक्त्या चक्रुराराधनं मुदा। आगच्छ देवभवनं मर्त्यं च जगदम्बिके॥१७॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा तानुवाच जगत्प्रसूः। परितुष्टा गामुकी च निर्भया ब्राह्मणाज्ञया॥१८॥

महालक्ष्मीरुवाच

गृहान्यास्यामि देवानां युष्माकं चाऽऽज्ञया द्विजाः। येषां गेहं न गच्छामि शृणुध्वं भारतेषु च॥१९॥
स्थिरा पुण्यवतां गेहे सुनीतिपथवेदिनाम्। गृहस्थानां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान्॥२०॥
यं यं रुष्टो गुरुर्देवो माता तातश्च बान्धवाः। अतिथिः पितृलोकश्च यामि तस्य न मन्दिरम्॥२१॥
मिथ्यावादी च यः [2]शश्वदनध्यायी च यः सदा। सत्त्वहीनश्च दुःशीलो न गेहं तस्य याम्यहम्॥२२॥

एवं सनातन हैं, तथापि ब्राह्मण-शाप से वे भी बहुत भयभीत रहते हैं॥१०॥ हे ब्रह्मन्! उसी बीच अति हर्षित होकर ब्राह्मणों का वृन्द आ गया, जो मन्द हास समेत ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हो रहा था॥११॥ उनमें अंगिरा, प्रचेता, क्रतु, भृगु, पुलह, पुलस्त्य, मरीचि, अत्रि, सनक, सनन्दन, सनातन, भगवान् सनत्कुमार, साक्षात् नारायणात्मक कपिल, आसुरि, वोढु, पञ्चशिख, दुर्वासा, कश्यप, अगस्त्य, गौतम, कण्व, और्व, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, मार्कण्डेय, लोमश और स्वयं भगवान् वशिष्ठ थे॥१२-१५॥ उपरान्त ब्राह्मणों ने अनेक भाँति के उपहार से ईश्वरी लक्ष्मी की अर्चना की और देवों ने भी वन्य नैवेद्य और उपहार उन्हें भक्तिपूर्वक समर्पित किये। मुनीन्द्रों ने भक्तिपूर्वक स्तुति-आराधना की और सुप्रसन्न होकर कहा—'हे जगदम्बिके! देवों के घर और मनुष्यों के यहाँ आने की कृपा करो।' उनकी ऐसी बातें सुनकर जगज्जननी महालक्ष्मी ने ब्राह्मणों की आज्ञा से निर्भय एवं अति प्रसन्न होकर भूमण्डल में आने के विचार से उन ब्राह्मणों से कहा॥१६-१८॥

महालक्ष्मी बोलीं—हे द्विजवृन्द! तुम लोगों की आज्ञा से मैं देवों के घर जा रही हूँ। किन्तु भारत में जिन लोगों के यहाँ मैं नहीं जाऊँगी, वह तुम्हें बता रही हूँ, सुनो॥१९॥

पुण्यवानों के घर मैं सुस्थिर होकर निवास करूँगी और उत्तम नीति-मार्ग से चलने वाले गृहस्थ एवं राजाओं के यहाँ रहकर पुत्र की भाँति उनका पालन करूँगी॥२०॥ किन्तु गुरु, देवता, माता-पिता, बन्धुगण, अतिथि और पितर लोग जिस पर रुष्ट रहेंगे उसके घर कभी नहीं जाऊँगी॥२१॥ जो निरन्तर मिथ्या भाषण करता है, जो कभी अध्ययन नहीं करता, सत्त्वहीन और दुष्ट स्वभाव का है, उसके घर नहीं जाती हूँ॥२२॥ सत्य-

---

१ क. ०गुनन्दनः। २ क. ०श्वन्नास्तीति वाचकः सदा।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सत्यहीनः स्थाप्यहारी मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः। विश्वासघ्नः कृतघ्नो यो यामि तस्य न मन्दिरम् ॥२३॥
चिन्ताग्रस्तो भयग्रस्तः शत्रुग्रस्तोऽतिपातकी। ऋणग्रस्तोऽतिकृपणो न गेहं यामि पापिनाम् ॥२४॥
दीक्षाहीनश्च शोकार्तो मन्दधीः स्त्रीजितः सदा। न यास्यपि कदा गेहं पुंश्चल्याः पतिपुत्रयोः ॥२५॥
पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं यो भुङ्क्ते कामदः सदा। शूद्रान्नभोजी तद्याजी तद्गेहं नैव यास्यहम् ॥२६॥
यो दुर्वाक्कलहाविष्टः कलिः शश्वद्यदालये। स्त्री प्रधाना गृहे यस्य यामि तस्य न मन्दिरम् ॥२७॥
यत्र नास्ति हरेः पूजा तदीयगुणकीर्तनम्। नोत्सुकस्तत्प्रशंसायां यामि० ॥२८॥
[1]कन्यान्नवेदविक्रेता नरघाती च हिंसकः। नरकागारसदृशं यामि० ॥२९॥
मातरं पितरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरोः[2] सुताम्। अनाथां भगिनीं कन्यामनन्याश्रयबान्धवान् ॥३०॥
कार्पण्याद्यो न पुष्णाति संचयं कुरुते सदा। तद्गेहान्नरकागारान्यामि तान्न मुनीश्वराः ॥३१॥
दशनं वसनं यस्य समलं रूक्षमस्तकम्। विकृतौ ग्रासहासौ[3] च यामि तस्य न मन्दिरम् ॥३२॥
मूत्रं पुरीषमुत्सृज्य यस्तत्पश्यति मन्दधीः। यः शेते स्निग्धपादेन यामि० ॥३३॥
अधौतपादशायी यो नग्नः शेतेऽतिनिद्रितः। संध्याशायी दिवाशायी यामि० ॥३४॥

रहित, धरोहर के अपहर्ता, झूठी गवाही देने वाले, विश्वासघाती और कृतघ्न के घर नहीं जाती हूँ ॥२३॥ चिन्ता-ग्रस्त, भयभीत, शत्रु से घिरे, अतिपापी, ऋणी एवं अतिकृपण इन पापियों के यहाँ नहीं जाती हूँ ॥२४॥ दीक्षाहीन, शोकाकुल, मूर्ख, स्त्रीपराजित एवं पुंश्चली स्त्री के पति-पुत्र के यहाँ नहीं जाती हूँ ॥२५॥ जो सदा पुंश्चली का अन्न खाता है, जो पति-पुत्रहीना विधवा का अन्न खाता है, जो शूद्रान्न खाता है और जो शूद्र को यज्ञ कराता है, उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ॥२६॥ जो कठोर वचन बोलता है, झगड़ालू है, जिसके यहाँ कलि का निरन्तर निवास रहता है और जिसके घर में स्त्री प्रधान है उसके घर नहीं जाती हूँ ॥२७॥ जहाँ भगवान् की पूजा, उनके नाम-गुण का कीर्तन और उनकी प्रशंसा करने में लोग उत्सुक नहीं रहते हैं उसके घर नहीं जाती हूँ ॥२८॥ कन्या, अन्न, एवं वेद का विक्रेता, नरघाती तथा हिंसक के और नरककुण्ड के समान घर में मैं नहीं जाती हूँ ॥२९॥ हे मुनीश्वरवृन्द! माता, पिता, स्त्री, गुरुपत्नी, गुरु की, पुत्री अनाथ भगिनी, कन्या एवं आश्रयहीन बान्धवों का जो कृपणतावश पालन-पोषण नहीं करता है केवल धन-सञ्चय ही करता रहता है, उसके नरकागार समान घरों में मैं नहीं जाती हूँ ॥३०-३१॥ जिसके दाँत-वस्त्र मैले रहते हैं, मस्तक रूखा रहता है, खाते समय और हँसते समय जिसका मुख विकृत हो जाता है, उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३२॥ जो मूर्ख मलमूत्र का त्याग कर उसे पुनः देखता है, और जो गीले पैर शयन करता है, उसके यहाँ मैं नहीं जाती हूँ ॥३३॥ बिना चरण धोये शयन करने वाले और नग्न होकर अत्यन्त शयन करने वाले तथा सन्ध्या समय एवं दिन में शयन करने वाले के घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३४॥

---

१ क. ०न्यात्मवे०। २ ख. गुरुं सुतम्। ३. क. ज्ञान०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मूर्ध्नि तैलं पुरो दत्त्वा योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत् । ददाति पश्चाद्गात्रे वा यामि० ॥३५॥
दत्त्वा तैलं मूर्ध्नि गात्रे विण्मूत्रं समुत्सृजेत् । प्रणमेदाहरेत्पुष्पं यामि० ॥३६॥
तृणं छिनत्ति नखरैर्नखरैर्विलिखेन्महीम् । गात्रे पादे मलो यस्य यामि० ॥३७॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं सुरस्य च । यो हरेज्ज्ञानशीलश्च[1] यामि० ॥३८॥
यत्कर्म दक्षिणाहीनं कुरुते मूढधीः शठः । स पापी पुण्यहीनश्च यामि० ॥३९॥
मन्त्रविद्योपजीवी च ग्रामयाजी चिकित्सकः । सूपकृद्देवलश्चैव यामि० ॥४०॥
विवाहं धर्मकार्यं वा यो निहन्ति च कोपतः । दिवा मैथुनकारी यो यामि० ॥४१॥
इत्युक्त्वा सा महालक्ष्मीरन्तर्धानं जगाम ह । ददौ दृष्टिं च देवानां गृहे मर्त्ये च नारद ॥४२॥
तां प्रणम्य सुराः सर्वे मुनयश्च सुहृदन्विताः । प्रजग्मुः स्वालयं शीघ्रं शत्रुत्यक्तं सुहृद्युतम् ॥४३॥
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे तभूवुः पुष्पवृष्टयः । प्रापुर्देवाः स्वराज्यं च निश्चलां कमलां मुने ॥४४॥
इत्येवं कथितं वत्स लक्ष्मीचरितमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणपतेर्गजास्यत्वकारणलक्ष्मीब्राह्मण-विरोधादिलक्ष्मीचरित्रकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

जो पहले शिर में तेल लगाकर पश्चात् अन्य अंगों का तेल से मर्दन करते हैं या समस्त शरीर में तेल लगाते हैं उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३५॥ जो शिर या शरीर में तेल लगाकर मूत्र-मल का त्याग करता है तथा प्रणाम करता हैं और पुष्प तोड़ता है, मैं उसके घर नहीं जाती हूँ ॥३६॥ नखों से तृण तोड़ने और भूमि में नख द्वारा रेखा करने तथा जिसका शरीर और चरण मैला-कुचैला रहता है, उसके घर नहीं जाती हूँ ॥३७॥ जो ज्ञानशील होकर अपनी या (दूसरे) की दी हुई ब्राह्मण-वृत्ति (जीविका) का तथा देव-सम्पत्ति का अपहरण करता है, उसके घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३८॥ जो मूर्खबुद्धि शठ दक्षिणाहीन कर्म करता है, उस पुण्यहीन पापी के घर मैं नहीं जाती हूँ ॥३९॥ मंत्रविद्या से जीविका निर्वाह करने वाले, गांव-गाव यज्ञ कराने वाले, वैद्य, भण्डारी, और मन्दिर के पुजारी के घर नहीं जाती हूँ ॥४०॥ जो क्रुद्ध होकर विवाह के कार्य या अन्य धार्मिक कार्य को नष्ट कर देता है, उसके घर और दिन में मैथुन करने वाले के घर मैं नहीं जाती हूं ॥४१॥ हे नारद! इतना कहकर महालक्ष्मी अन्तर्हित हो गयीं और देवों तथा मनुष्यों के घर पर दृष्टि डालने लगीं ॥४२॥ अनन्तर उन्हें प्रणाम करके सभी देवों और महर्षियों ने सुप्रसन्न होकर अपने अपने घरों को शीघ्र प्रस्थान किया, जो उस समय शत्रुओं से रहित एवं मित्र-वर्गों से युक्त था ॥४३॥ हे मुने! देवों ने अपना राज्य और निश्चल लक्ष्मी की प्राप्ति करके स्वर्ग में नगाड़े बजवाये और पुष्पों की वर्षा की ॥४४॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने लक्ष्मी का उत्तम चरित तुम्हें सुना दिया, जो सुखद, मोक्षदायक एवं सारभाग है। अब और क्या सुनना चाहते हो ॥४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में गणपति के गजमुख होने का कारण और लक्ष्मी-ब्राह्मण-विरोधादिरूप लक्ष्मी-चरित-कथन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

---

१ क, ०नहीनश्च।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

चतुर्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग हरेरंशसमुद्भव । सर्वं श्रुतं त्वत्प्रसादाद्गणेशचरितं शुभम् ॥१॥
दन्तद्वययुतं वक्त्रं गजराजस्य बालके । विष्णुना योजितं ब्रह्मन्नेकदन्तः कथं शिशुः ॥२॥
कुतो गतोऽस्य दन्तोऽन्यस्तद्भवान्वक्तुमर्हति । सर्वेश्वरस्त्वं सर्वज्ञः कृपावान्भक्तवत्सलः ॥३॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्मेराननसरोरुहः । एकदन्तस्य चरितं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥४॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । एकदन्तस्य चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥५॥
एकदा कार्तवीर्यश्च जगाम मृगयां मुने । मृगान्निहत्य बहुलान्परिश्रान्तो बभूव सः ॥६॥
निशामुखे दिनेऽतीते तत्र तस्थौ वने नृपः । जमदग्न्याश्रमाभ्याशे चोपोष्यानीकसंयुतः ॥७॥
प्रातः सरोवरे राजा स्नातः शुचिरलंकृतः । दत्तात्रयेण दत्तं च ह्यजपद्भक्तितो मनुम् ॥८॥
मुनिर्ददर्श राजानं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम् । प्रीत्याऽऽदरेण मृदुलं पप्रच्छ कुशलं मुनिः ॥९॥

अध्याय २४

गणेश के एकदान्त होने का कारण

नारद बोले—हे नारायण, हे महाभाग ! आप भगवान् के अंश से उत्पन्न हैं आप की कृपा से गणेश जी का समस्त शुभ चरित मैंने सुन लिया ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! गजराज के दो दाँतों से युक्त मुख को, भगवान् ने बालक (गणेश) के धड़ पर जोड़ा था, किन्तु वह बालक एकदन्त कैसे हो गया, उसका दूसरा दाँत कहाँ चला गया (क्या हो गया) बताने की कृपा करें, क्योंकि आप सर्वेश्वर, समस्त के ज्ञाता, कृपालु और भक्तवत्सल हैं ॥२-३॥

सूत बोले—नारद की ऐसी बात सुनकर मुसकराते हुए मुखकमल वाले भगवान् ने एकदन्त का चरित कहना आरम्भ किया ॥४॥

नारायण बोले—हे नारद ! मैं तुम्हें एकदन्त का चरित सुना रहा हूँ, जो प्राचीन इतिहास है और समस्त मंगलों का मंगल है ॥५॥

हे मुने ! एक बार राजा कार्तवीर्य मृगया (शिकार) खेलने के लिए गये। वहाँ अनेक मृगों का शिकार करने से वे बहुत श्रान्त हो गये और दिन भी समाप्त हो गया। सायंकाल देखकर राजा जंगल में वहीं सेना समेत ठहर गये, जहाँ समीप ही जमदग्नि का आश्रम था, किन्तु न जानने के कारण राजा को उस रात्रि उपवास करना पड़ा ॥६-७॥ प्रातःकाल सरोवर में राजा ने स्नान किया, तब पवित्र होकर अलंकार धारण किया और दत्तात्रेय के द्वारा प्राप्त मंत्र का भक्तिपूर्वक जप किया ॥८॥ अनन्तर मुनि ने राजा को देखा कि इनके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये हैं, उन्होंने सादर प्रेमपूर्वक कोमलवाणी से उनका कुशल-समाचार

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ननाम संभ्रमाद्राजा मुनिं सूर्यसमप्रभम्। स च तस्मै ददौ प्रीत्या प्रणताय शुभाशिषः ॥१०॥
वृत्तान्तं कथयामास राजा चानशनादिकम् । संभ्रमेणैव मुनिना त्रस्तो राजा निमन्त्रितः ॥११॥
विज्ञाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्वालयं मुदा। एतद्वृत्तं कामधेनुं कथयामास भीतवत् ॥१२॥
उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते। जगद्भोजयितुं शक्तस्त्वं मया को नृपो मुने ॥१३॥
राजभोजनयोग्यार्हं यद्यद्द्रव्यं प्रयाचसे। सर्वं तुभ्यं प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१४॥
सौवर्णानि च रौप्याणि पात्राणि विविधानि च। भोजनार्हाण्यसंख्यानि पाकपात्राणि यानि च ॥१५॥
शुद्धरत्नविकाराणि पानपात्राणि यानि च। पात्राणि स्वादुपूर्णानि प्रददौ मुनये च सा ॥१६॥
नानाविधानि स्वादूनि परिपक्वफलानि च। पनसाम्रश्रीफलानि नारिकेलादिकानि च ॥१७॥
राशीभूतान्यसंख्यानि स्वादुलड्डुकराशयः । यवगोधूमचूर्णानां भक्ष्याणि विविधानि च ॥१८॥
पक्वान्नानां पर्वतांश्च परमान्नस्य कन्दरान् । दुग्धानां च घृतानां च नदीर्दध्नां ददौ मुदा ॥१९॥
शर्कराणां तथा राशि मोदकानां च पर्वतान्। पृथुकानां सुशीलानां पर्वतान्प्रददौ मुदा ॥२०॥
ताम्बूलं च ददौ पूर्णं कर्पूरादिसुवासितम्। नृपयोग्यं कौतुकाच्च सुन्दरं वस्त्रभूषणम् ॥२१॥
मुनिः संभृतसंभारो दत्त्वा द्रव्यं मनोहरम् । भोजयामास राजानं ससैन्यमपि लीलया ॥२२॥

पूछा ॥९॥ राजा ने भी सहसा मुनि को नमस्कार किया, जो सूर्य के समान कान्तिपूर्ण थे, और मुनि ने विनय-विनम्र राजा को सप्रेम शुभाशिष प्रदान किया ॥१०॥ अनन्तर राजा ने अपना रात्रि का अनशन आदि सभी वृत्तान्त उनसे कहा, जिससे मुनि ने राजा को त्रस्त देखकर तुरन्त अपने यहां निमन्त्रित किया ॥११॥ मुनिश्रेष्ठ राजा से कहकर प्रसन्नता से अपने कुटीर में आये और भयभीत की भाँति उन्होंने सारा वृत्तान्त कामधेनु से कह सुनाया ॥१२॥ उसने भयभीत मुनि से कहा—हे मुने! मेरे रहते तुम्हें भय क्या है ? तुम मेरे द्वारा समस्त संसार को भोजन कराने में समर्थ हो, एक राजा की क्या बात है ॥१३॥ राजभोजन के योग्य जिस-जिस वस्तु की याचना करोगे, मैं उन सभी वस्तुओं को तुम्हें दूँगी, जो तीनों लोकों में अतिदुर्लभ हैं ॥१४॥ सोने-चांदी के विभिन्न प्रकार के भोजनपात्र, असंख्य पाक-पात्र, शुद्ध रत्न के बने पान-पात्र तथा अन्य स्वादु वस्तु से पूर्ण पात्रों को उसने प्रदान किया। अनेक भाँति के पके और स्वादिष्ठ फल, कटहल, आम, श्रीफल, नारियल आदि सुस्वादु लड्डुओं की अनेक राशियां, जवा-गेहूँ के आटे के बने विविध भक्ष्य पदार्थ, पकवानों के पर्वत, परामान्नों की कन्दरायें दूध, दही और घी की नदियाँ प्रदान कीं। शक्करों की राशियाँ, लड्डुओं के पर्वत तथा उत्तम साठीधान के चिपिटान्न (चिउरा) के पर्वत प्रदान किये। कर्पूरादि सुवासित ताम्बूल समर्पित किया। इस प्रकार महान् सम्भार से युक्त होकर मुनि ने राजा को कौतुक वश उसके योग्य सुन्दर वस्त्र, आभूषण एवं उत्तम द्रव्य देकर सेना समेत उन्हें भोजन कराया ॥१५-२२॥

---

१ क. लक्ष्मीसमां ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

चतुर्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग हरेरंशसमुद्भव । सर्वं श्रुतं त्वत्प्रसादाद्गणेशचरितं शुभम् ॥१॥
दन्तद्वययुतं वक्त्रं गजराजस्य बालके । विष्णुना योजितं ब्रह्मन्नेकदन्तः कथं शिशुः ॥२॥
कुतो गतोऽस्य दन्तोऽन्यस्तद्भवान्वक्तुमर्हति । सर्वेश्वरस्त्वं सर्वज्ञः कृपावान्भक्तवत्सलः ॥३॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्मेराननसरोरुहः । एकदन्तस्य चरितं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥४॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । एकदन्तस्य चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥५॥
एकदा कार्तवीर्यश्च जगाम मृगयां मुने । मृगान्निहत्य बहुलान्परिश्रान्तो बभूव सः ॥६॥
निशामुखे दिनेऽतीते तत्र तस्थौ वने नृपः । जमदग्न्याश्रमाभ्याशे चोपोष्यानीकसंयुतः ॥७॥
प्रातः सरोवरे राजा स्नातः शुचिरलंकृतः । दत्तात्रयेण दत्तं च ह्यजपद्भक्तितो मनुम् ॥८॥
मुनिर्ददर्श राजानं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम् । प्रीत्याऽऽदरेण मृदुलं पप्रच्छ कुशलं मुनिः ॥९॥

अध्याय २४

गणेश के एकदान्त होने का कारण

नारद बोले—हे नारायण, हे महाभाग ! आप भगवान् के अंश से उत्पन्न हैं आप की कृपा से गणेश जी का समस्त शुभ चरित मैंने सुन लिया ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! गजराज के दो दाँतों से युक्त मुख को, भगवान् ने बालक (गणेश) के धड़ पर जोड़ा था, किन्तु वह बालक एकदन्त कैसे हो गया, उसका दूसरा दाँत कहाँ चला गया (क्या हो गया) बताने की कृपा करें, क्योंकि आप सर्वेश्वर, समस्त के ज्ञाता, कृपालु और भक्तवत्सल हैं ॥२-३॥

सूत बोले—नारद की ऐसी बात सुनकर मुसकराते हुए मुखकमल वाले भगवान् ने एकदन्त का चरित कहना आरम्भ किया ॥४॥

नारायण बोले—हे नारद ! मैं तुम्हें एकदन्त का चरित सुना रहा हूँ, जो प्राचीन इतिहास है और समस्त मंगलों का मंगल है ॥५॥

हे मुने ! एक बार राजा कार्तवीर्य मृगया (शिकार) खेलने के लिए गये। वहाँ अनेक मृगों का शिकार करने से वे बहुत श्रान्त हो गये और दिन भी समाप्त हो गया। सायंकाल देखकर राजा जंगल में वहीं सेना समेत ठहर गये, जहाँ समीप ही जमदग्नि का आश्रम था, किन्तु न जानने के कारण राजा को उस रात्रि उपवास करना पड़ा ॥६-७॥ प्रातःकाल सरोवर में राजा ने स्नान किया, तब पवित्र होकर अलंकार धारण किया और दत्तात्रेय के द्वारा प्राप्त मंत्र का भक्तिपूर्वक जप किया ॥८॥ अनन्तर मुनि ने राजा को देखा कि इनके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये हैं, उन्होंने सादर प्रेमपूर्वक कोमलवाणी से उनका कुशल-समाचार

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ननाम संभ्रमाद्राजा मुनिं सूर्यसमप्रभम्। स च तस्मै ददौ प्रीत्या प्रणताय शुभाशिषः ॥१०॥
वृत्तान्तं कथयामास राजा चानशनादिकम् । संभ्रमेणैव मुनिना त्रस्तो राजा निमन्त्रितः ॥११॥
विज्ञाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्वालयं मुदा। एतद्वृत्तं कामधेनुं कथयामास भीतवत् ॥१२॥
उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते। जगद्भोजयितुं शक्तस्त्वं मया को नृपो मुने ॥१३॥
राजभोजनयोग्यार्हं यद्यद्द्रव्यं प्रयाचसे। सर्वं तुभ्यं प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१४॥
सौवर्णानि च रौप्याणि पात्राणि विविधानि च। भोजनार्हाण्यसंख्यानि पाकपात्राणि यानि च ॥१५॥
शुद्धरत्नविकाराणि पानपात्राणि यानि च। पात्राणि स्वादुपूर्णानि प्रददौ मुनये च सा ॥१६॥
नानाविधानि स्वादूनि परिपक्वफलानि च। पनसाम्रश्रीफलानि नारिकेलादिकानि च ॥१७॥
राशीभूतान्यसंख्यानि स्वादुलड्डुकराशयः । यवगोधूमचूर्णानां भक्ष्याणि विविधानि च ॥१८॥
पक्वान्नानां पर्वतांश्च परमान्नस्य कन्दरान् । दुग्धानां च घृतानां च नदीर्दध्नां ददौ मुदा ॥१९॥
शर्कराणां तथा राशि मोदकानां च पर्वतान्। पृथुकानां सुशीलानां पर्वतान्प्रददौ मुदा ॥२०॥
ताम्बूलं च ददौ पूर्णं कर्पूरादिसुवासितम्। नृपयोग्यं कौतुकाच्च सुन्दरं वस्त्रभूषणम् ॥२१॥
मुनिः संभृतसंभारो दत्त्वा द्रव्यं मनोहरम् । भोजयामास राजानं ससैन्यमपि लीलया ॥२२॥

पूछा ॥९॥ राजा ने भी सहसा मुनि को नमस्कार किया, जो सूर्य के समान कान्तिपूर्ण थे, और मुनि ने विनय-विनम्र राजा को सप्रेम शुभाशिष प्रदान किया ॥१०॥ अनन्तर राजा ने अपना रात्रि का अनशन आदि सभी वृत्तान्त उनसे कहा, जिससे मुनि ने राजा को त्रस्त देखकर तुरन्त अपने यहां निमन्त्रित किया ॥११॥ मुनिश्रेष्ठ राजा से कहकर प्रसन्नता से अपने कुटीर में आये और भयभीत की भाँति उन्होंने सारा वृत्तान्त कामधेनु से कह सुनाया ॥१२॥ उसने भयभीत मुनि से कहा—हे मुने! मेरे रहते तुम्हें भय क्या है ? तुम मेरे द्वारा समस्त संसार को भोजन कराने में समर्थ हो, एक राजा की क्या बात है ॥१३॥ राजभोजन के योग्य जिस-जिस वस्तु की याचना करोगे, मैं उन सभी वस्तुओं को तुम्हें दूंगी, जो तीनों लोकों में अतिदुर्लभ हैं ॥१४॥ सोने-चांदी के विभिन्न प्रकार के भोजनपात्र, असंख्य पाक-पात्र, शुद्ध रत्न के बने पान-पात्र तथा अन्य स्वादु वस्तु से पूर्ण पात्रों को उसने प्रदान किया। अनेक भाँति के पके और स्वादिष्ठ फल, कटहल, आम, श्रीफल, नारियल आदि सुस्वादु लड्डुओं की अनेक राशियां, जवा-गेहूँ के आटे के बने विविध भक्ष्य पदार्थ, पकवानों के पर्वत, परामान्नों की कन्दरायें दूध, दही और घी की नदियाँ प्रदान कीं। शक्करों की राशियाँ, लड्डुओं के पर्वत तथा उत्तम साठीधान के चिपिटान्न (चिउरा) के पर्वत प्रदान किये। कर्पूरादि सुवासित ताम्बूल समर्पित किया। इस प्रकार महान् सम्भार से युक्त होकर मुनि ने राजा को कौतुक वश उसके योग्य सुन्दर वस्त्र, आभूषण एवं उत्तम द्रव्य देकर सेना समेत उन्हें भोजन कराया ॥१५-२२॥

---

१ क. लक्ष्मीसमां।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यद्यत्सुदुर्लभं वस्तु परिपूर्णं नृपेश्वरः । जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा पात्राण्युवाच ह ॥२३॥

राजोवाच

द्रव्याण्येतानि सचिव दुर्लभान्यश्रुतानि च । ममासाध्यानि सहसा क्वऽऽगतान्यवलोकय ॥२४॥
नृपाज्ञया च सचिवः सर्वं दृष्ट्वा मुनेर्गृहम् । राजानं कथयामास वृत्तान्तं महदद्भुतम् ॥२५॥

सचिव उवाच

दृष्टं सर्वं महाराज निबोध मुनिमन्दिरम् । वह्निकुण्डं यज्ञकाष्ठकुशपुष्पफलान्वितम् ॥२६॥
कृष्णचर्मस्रुवस्रुग्भिः शिष्यसंघैश्च संकुलम् । तैजसाधारसस्यादिसर्वसंपद्विवर्जितम् ॥२७॥
वृक्षचर्मपरीधाना दृष्टाः सर्वे जटाधराः । गृहैकदेशे दृष्टा सा कपिलैका मनोहरा ॥
चार्वङ्गी चन्द्रवर्णाभा रक्तपङ्कजलोचना ॥२८॥
ज्वलन्ती तेजसा तत्र पूर्णचन्द्रसमप्रभा । सर्वसंपद्गुणाधारा साक्षादिव हरिप्रिया ॥२९॥
इत्येवं बोधितो राजा दुर्बुद्धिः सचिवाज्ञया । मुनिं ययाचे तां धेनुं निबद्धः कालपाशतः ॥३०॥
किं वा पुण्यं च का बुद्धि कः कालः सर्वतो बली । पुण्यवान्बुद्धिमान्दैवाद्राजेन्द्रोऽयाचत द्विजम् ॥३१॥
पुण्यात्प्रजायते कर्म पुण्यरूपं च भारते । पापात्प्रजायते कर्म पापरूपं भयावहम् ॥३२॥
पुण्यात्कृत्वा स्वर्गभोगं जन्म पुण्यस्थले नृणाम् । पापाद्भुक्त्वा च नरकं कुत्सितं जन्म जीविनाम् ॥३३॥

राजा को वहाँ अति दुर्लभ वस्तुएँ पूर्ण रूप से प्राप्त हुईं। पात्रों को देखकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ और बोला ॥२३॥

राजा ने कहा—हे सचिव! ये वस्तुएँ जो दुर्लभ ही नहीं, अपितु अश्रुत भी हैं, मेरे लिए असाध्य हैं। देखो! ये सहसा कहाँ से आ गयीं ॥२४॥ मंत्री ने राजा की आज्ञा से मुनि का सारा घर देखा और राजा से महान् अद्भुत समाचार कह सुनाया ॥२५॥

सचिव बोला—हे महाराज! सुनिये! मैंने मुनि का समस्त घर—अग्नि कुण्ड, यज्ञ-काष्ठ, कुश, फूल, फल, काले मृग के चर्म, स्रुव तथा शिष्य वृन्द से व्याप्त, अन्याधार (वेदी), सस्य आदि से युक्त तथा सकल सम्पत्ति से रहित देखा ॥२६-२७॥ सभी लोग वृक्ष की छाल पहने, जटाधारी एवं तपस्वी हैं। घर में एक ओर एक मनोहर कपिला गौ बँधी देखी जो सुन्दर अंगों वाली, चन्द्रमा के समान कांति वाली, रक्त कमल की भाँति नेत्रों वाली एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रभा से समन्वित है। वह तेज से जल रही है और भगवान् की प्रेयसी साक्षात् लक्ष्मी की भाँति वह समस्त सम्पत्ति और गुणों का आधार है ॥२८-२९॥ इस प्रकार उस दुर्बुद्धि राजा को मंत्री ने सब कुछ बता दिया। पश्चात् उस राजा ने कालपाश से आबद्ध होकर मुनि से उसी गौ की याचना की। क्या पुण्य, क्या बुद्धि और सबसे बली काल क्या! दैवसंयोगवश पुण्यवान् और बुद्धिमान् होते हुए भी उस महाराज ने ब्राह्मण से याचना की। भारत में पुण्य द्वारा पुण्य कर्म की उत्पत्ति होती है और पाप द्वारा भीषण पाप कर्म की। पुण्य करने से मनुष्यों को स्वर्ग का भोग प्राप्त होता है और पुण्य स्थान में जन्म होता है। उसी भाँति पाप करने से प्राणियों को नरक-भोग और निन्दित जन्म प्राप्त होते हैं ॥३०-३३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

जीविनां निष्कृतिर्नास्ति स्थिते कर्मणि नारद। तेन कुर्वन्ति सन्तश्च संततं कर्मणः क्षयम् ॥३४॥
सा विद्या तत्तपो ज्ञानं स गुरुः स च बान्धवः। सा माता स पिता पुत्रस्तत्क्षयं कारयेत्तु यः ॥३५॥
जीविनां दारुणो रोगः कर्मभोगः शुभाशुभः। भक्तिवैद्यस्तं निहन्ति कृष्णभक्तिरसायनात् ॥३६॥
माया ददाति तां भक्तिं प्रतिजन्मनि सेविता। परितुष्टा जगद्धात्री भक्तेभ्यो बुद्धिदायिनी ॥३७॥
परा परमभक्ताय माया यस्मै ददाति च। मायां तस्मै मोहयितुं न विवेकं कदाचन ॥३८॥
मायाविमोहितो राजा मुनिमानीय यत्नतः। उवाच विनयाद्भक्त्या कृताञ्जलिपुटो मुदा ॥३९॥

राजोवाच

देहि भिक्षां कल्पतरो कामधेनुं च कामदाम्। मह्यं भक्ताय भक्तेश भक्तानुग्रहकारक ॥४०॥
युष्मद्विधानां दातृणामदेयं नास्ति भारते। दधीचिर्देवताभ्यश्च ददौ स्वास्थि पुरा श्रुतम् ॥४१॥
भ्रूभङ्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन। समूहं कामधेनूनां स्रष्टुं शक्तोऽसि भारते ॥४२॥

मुनिरुवाच

अहो व्यतिक्रमं राजन्ब्रवीषि शठ वञ्चक। दानं दास्यामि विप्रोऽहं क्षत्रियाय[1] कथं नृप ॥४३॥
कृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना। कामधेनुरियं यज्ञे न देया प्राणतः प्रिया ॥४४॥

हे नारद! इस प्रकार कर्म में फँसे रहने पर जीवों का निकलना कठिन हो जाता है। इसीलिए सन्त लोग निरन्तर कर्म का क्षय करते रहते हैं, क्योंकि वही विद्या है, वही तप है, वही ज्ञान है, वही गुरु है, वही बान्धव है, वही माता-पिता और वही पुत्र है, जो कर्म के नाश होने में सहयोग प्रदान करे। जीवों के लिए शुभाशुभ कर्मों का भोग भीषण रोग है। अतः भक्त वैद्य भगवान् कृष्ण की भक्ति रूपी रसायन द्वारा उसी कर्म का नाश करता है। प्रत्येक जन्म में सेवा करने पर माया (दुर्गा) ही भक्ति प्रदान करती है और वही जगत् की धात्री अति सन्तुष्ट होने पर भक्तों को बुद्धि देती है। एवं वही परा माया जिस परम भक्त को मोहित करने के लिए माया प्रदान करती है, उसे विवेक कभी नहीं देती। इसीलिए मायामोहित होकर राजा ने मुनि के समीप आकर भक्तिपूर्वक विनय से हाथ जोड़कर यत्न से कहा ॥३४-३९॥

राजा बोला—हे कल्पतरो! मेरी कामनाओं को सफल करने वाली यह कामधेनु मुझे भिक्षा रूप में देने की कृपा करो। हे भक्तेश! आप भक्तों पर अनुग्रह करते हैं और मैं आप का भक्त हूँ ॥४०॥ भारत में आप के समान दाताओं के लिए कोई वस्तु अदेय नहीं है; क्योंकि यह सुना जाता है कि दधीचि ने पूर्वकाल में देवों को अपनी अस्थि प्रदान की थी। हे तपोधन! आप तपोराशि हैं, भारत में आप भौंह टेढ़ी करने की लीला मात्र से कामधेनुओं का समूह सर्जन करने में समर्थ हैं ॥४१-४२॥

मुनि बोले—हे राजन्! यह बड़ा व्यतिक्रम (उलटा) है, तुम शठ और ठग की भाँति कह रहे हो। हे नृप! भला मैं ब्राह्मण होकर क्षत्रिय को दान कैसे दे सकूंगा ॥४३॥ गोलोक में परमात्मा कृष्ण ने यज्ञ में यह प्राणों से भी अधिक प्रिय कामधेनु ब्रह्मा को दी थी। यह देने योग्य नहीं है ॥४४॥ हे

---

१ क. • य नृपाधम।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्मणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप। मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी मम ॥४५॥
गोलोकजा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये । लीलामात्रात्कथमहं कपिलां स्रष्टुमीश्वरः ॥४६॥
नाहं रे हालिको मूढ स्तुत्या नोत्थापितो बुधः। क्षणेन भस्मसात्कर्तुं क्षमोऽहमतिथिं विना ॥४७॥
गृहं गच्छ गृहं गच्छ मे कोपं नैव वर्धय। पुत्रदारादिकं पश्य दैवबाधित पामर ॥४८॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप स नराधिपः। नत्वा मुनिं सैन्यमध्यं प्रययौ विधिबाधितः ॥४९॥
गत्वा सैन्यसकाशं स कोपप्रस्फुरिताधरः। किंकरान्प्रेषयामास धेनुमानयितुं बलात् ॥५०॥
कपिलासंनिधिं गत्वा रुरोद मुनिपुंगवः। कथयामास वृत्तान्तं शोकेन हतचेतनः ॥५१॥
रुदन्तं ब्राह्मणं दृष्टा सुरभिस्तमुवाच ह। साक्षाल्लक्ष्मीस्वरूपा सा भक्तानुग्रहकारिका ॥५२॥

सुरभिरुवाच

इन्द्रो वा हालिको वाऽपि वस्तु स्वं दातुमीश्वरः। शास्ता पालयिता दाता स्ववस्तूनां च संततम् ॥५३॥
स्वेच्छया चेन्नृपेन्द्राय मां ददासि तपोधन। तेन सार्धं गमिष्यामि स्वेच्छया च तवाऽऽज्ञया ॥५४॥
अथवा न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात्। मत्तो दत्तेन सैन्येन दूरी कुरु नृपं द्विषम् ॥५५॥
कथं रोदिषि सर्वज्ञ मायामोहितचेतनः । संयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो न चाऽऽत्मनः ॥५६॥

भूमिपालक ! पुनः ब्रह्मा ने अपने प्रिय पुत्र भृगु को दिया और भृगु ने इस कपिला को मुझे दिया है, इसलिए यह हमारी पैतृक सम्पत्ति है ॥४५॥ गोलोक में उत्पन्न होने वाली यह कामधेनु तीनों लोकों में अति दुर्लभ है अतः ऐसी कपिला की सृष्टि मैं लीलामात्र से कैसे कर सकता हूँ ॥४६॥ रे मूढ़ ! मैं हलवाहा नहीं हूँ और स्तुति (प्रशंसा) करने से पण्डित लोग कभी उमंग में नहीं आते हैं। हां, यदि तुम अतिथि न होते तो मैं क्षणमात्र में भस्म कर सकता था ॥४७॥ इसलिए तुम घर जाओ (फिर कहता हूँ) घर चले जाओ। मेरे क्रोध को न बढ़ाओ। हे पामर (नीच) ! तू दैव (दुर्भाग्य) का मारा है अतः घर जाकर स्त्री-पुत्र को देख ॥४८॥ मुनि की ऐसी बातें सुनकर राजा क्रुद्ध हो गया और दैवदुर्भाग्य वश मुनि को नमस्कार करके सेनाओं के पास चला गया ॥४९॥ वहाँ पहुँचने पर उसके होंठ क्रोध से फड़कने लगे। उसने बलात् गौ लाने के लिए अपने सेवकों को भेजा ॥५०॥ उधर मुनिश्रेष्ठ (जमदग्नि) ने गौ के पास जाकर रोदन किया और शोकाकुल होकर सभी वृत्तान्त उससे कह सुनाया ॥५१॥ ब्राह्मण को रोदन करते देखकर साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप एवं भक्तों पर अनुग्रह करने वाली सुरभी ने उनसे कहा ॥५२॥

सुरभी बोली—इन्द्र हों या हलवाहा हो, वह अपनी वस्तु देने के लिए अधिकारी है अतः अपनी वस्तु का वह शासन, पालन, दान निरन्तर कर सकता है। अतः हे तपोधन ! यदि तुम अपनी इच्छा से मुझे महाराज को सौंप रहे हो, तो तुम्हारी आज्ञावश मैं स्वेच्छया उसके साथ जाने को तैयार हूँ ॥५३-५४॥ किन्तु, यदि तुम नहीं देना चाहते हो तो मैं तुम्हारे घर से कभी नहीं जाऊँगी। मेरी दी हुई सेनाओं द्वारा उस शत्रु राजा को दूर भगा दो ॥५५॥ हे सर्वज्ञ ! तुम रोदन क्यों करते हो ? तुम्हारा चित्त मायामोहित हो गया है क्योंकि (किसी का) संयोग-वियोग

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

त्वं वा को मे तवाहं का संबन्धः कालयोजितः । यावदेव हि संबन्धो ममत्वं तावदेव हि ॥५७॥
मनो जानाति यद्द्रव्यमात्मीयं चेति केवलम् । दुःखं च तस्य विच्छेदाद्यावत्स्वत्वं च तत्र वै ॥५८॥
इत्युक्त्वा कामधेनुश्च सुषाव विविधानि च । शस्त्राण्यस्त्राणि सैन्यानि सूर्यतुल्यप्रभाणि च ॥५९॥
निर्गताः कपिलावक्त्रात्त्रिकोट्यः खड्गधारिणाम् । विनिःसृता नासिकायाः शूलिनः पञ्चकोटयः ॥६०॥
विनिःसृता लोचनाभ्यां शतकोटिधनुर्धराः । कपालान्निःसृता वीरास्त्रिकोट्यो दण्डधारिणाम् ॥६१॥
वक्षःस्थलान्निःसृताश्च त्रिकोट्यः शक्तिधारिणाम् । शतकोट्यो गदाहस्ताः पृष्ठदेशाद्विनिर्गताः ॥६२॥
विनिःसृताः पादतलाद्वाद्यभाण्डाः सहस्रशः । जङ्घादेशान्निःसृताश्च त्रिकोट्यो राजपुत्रकाः ॥६३॥
विनिर्गता गुह्यदेशात्त्रिकोटिम्लेच्छजातयः । दत्त्वा सैन्यानि कपिला मुनये चाभयं ददौ ॥६४॥
युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न याहीत्युवाच ह । मुनिः संभृतसंभारैर्हर्षयुक्तो बभूव ह ॥६५॥
नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृपं सर्वमुवाच ह । कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम् ॥६६॥
तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्तः कातरमानसः । दूतान्संप्रेष्य सैन्यानि चाऽऽजहार स्वदेशतः ॥६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० एकदन्तत्वहेतुप्रश्नप्रसङ्गे
जमदग्निकार्तवीर्ययुद्धारम्भवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

समय आने पर होता है, अपने वश से नहीं। तुम मेरे कौन हो और मैं तुम्हारी कौन हूँ। किन्तु कालवश हमारा तुम्हारा सम्बन्ध स्थापित हो गया है क्योंकि जब तक सम्बन्ध रहता है ममत्व भी तभी तक रहता है ॥५६-५७॥ मन जिस वस्तु को जानता है कि यह मेरी है और जब तक उस पर अपना स्वत्व रखता है तभी तक उसे उसके वियोग का दुःख होता है ॥५८॥ इतना कहकर उस कामधेनु ने विभिन्न प्रकार के शस्त्र अस्त्र और सूर्य के समान कान्ति-पूर्ण सेनायें उत्पन्न कीं ॥५९॥ अनन्तर उस कपिला गौ के मुख से तीन करोड़ खड्गधारी, नासिका से पाँच करोड़ शूलधारी, आँखों से सौ करोड़ धनुर्धारी, कपाल से तीन करोड़ दण्डधारी वीर, वक्षःस्थल से तीन करोड़ शक्तिधारी, पृष्ठभाग से सौ करोड़ गदाधारी, तलवे से सहस्रों वाद्य बजाने वाले, जंघाओं से तीन करोड़ राजपुत्र और गुह्य स्थान से तीन करोड़ म्लेच्छ जाति वाले सैनिक निकले। इस भाँति उस कपिला गौ ने सेनाओं को समर्पित कर मुनि को अभय प्रदान किया और कहा—ये सेनायें वहाँ जाकर युद्ध करेंगी, तुम मत जाना। इस प्रकार सम्भार से युक्त होने पर मुनि को महान् हर्ष हुआ और राजा के भेजे हुए दूतों ने लौटकर राजा से यह सब कपिला-सेना का वृत्तान्त कह सुनाया। जिससे अपनी पराजय की सम्भावना सुनकर वह राजा घबराया और दूतों को भेजकर अपने देश से और अधिक सेनाओं को बुलाया ॥६०-६७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में एकदन्त के प्रश्न-प्रसंग में जमदग्नि-कार्तवीर्य्य-युद्धारम्भ-वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिं स्मरन्कार्तवीर्यो हृदयेन विदूयता। दूतं प्रस्थापयामास कुपितो मुनिसंनिधिम् ॥१॥
युद्धं देहि मुनिश्रेष्ठ किंवा धेनुं च वाञ्छिताम्। मह्यं भृत्यायातिथये सुविचार्य यथोचितम् ॥२॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। हितं सत्यं नीतिसारं सर्वं दूतमुवाच ह ॥३॥

मुनिरुवाच

दृष्टो नृपो निराहारः समानीतो मया गृहम्। विविधं च यथाशक्त्या भोजितश्च यथोचितम् ॥४॥
कपिलां याचते राजा मम प्राणाधिकां बलात्। तां दातुमक्षमो दूत युद्धं दास्यामि निश्चितम् ॥५॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा दूतः सर्वमुवाच ह। नृपेन्द्रं च सभामध्ये संनाहैः संयुतं भिया ॥६॥
मुनिश्च कपिलामाह साम्प्रतं किं करोम्यहम्। कर्णधारं विना नौका तथा सैन्यं विना मया ॥७॥
कपिला च ददौ तस्मै शस्त्राणि विविधानि च। युद्धशास्त्रोपदेशं च संधानं चौषयोगिकम् ॥८॥
जयो भवतु ते विप्र युद्धे जेष्यसि निश्चितम्। तव मृत्युर्न भविता सत्यमस्त्रं विना मुने ॥९॥

अध्याय २५

जमदग्नि और कार्तवीर्यार्जुन के युद्ध का वर्णन

नारायण बोले—राजा कार्तवीर्य ने हार्दिक दुःख में भगवान् का स्मरण करते हुए क्रोधवश मुनि के समीप अपना दूत भेजा ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ! मैं आपका सेवक हूँ एवं अतिथि हूँ, अतः भली भाँति विचार द्वारा निश्चित करके मुझे युद्ध या अभिलषित धेनु जो उचित हो, देने की कृपा करें ॥२॥ दूत की बातें सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने हँसकर दूत से कहा, जो हितकर, सत्य और नीति का सार भाग था ॥३॥

मुनि बोले—मैं राजा को उपवास किये देख कर अपने घर लाया और यथाशक्ति विविध प्रकार का यथोचित भोजन कराया ॥४॥ हे दूत! अब वही राजा बलात् मेरी कपिला गौ माँग रहा है, जो मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। इसलिए मैं उसे देने में असमर्थ हूँ, युद्ध ही करूँगा, यही मेरा निश्चय है ॥५॥ मुनि की बातें सुनकर दूत ने सभा में कवचयुक्त राजा से डरते हुए सब कुछ कह दिया ॥६॥ अनन्तर मुनि ने उस गौ से कहा—'सम्प्रति मैं क्या करूँ? क्योंकि कर्णधार (नाव चलाने वाला मल्लाह) बिना नौका की भाँति मेरे बिना सेना की स्थिति है ॥७॥ कपिला ने उन्हें विविध भाँति के शस्त्र तथा बाण आदि रखने-चलाने की कला और युद्धशास्त्र का उपदेश भी प्रदान किया ॥८॥ (और कहा) हे विप्र! युद्ध में तुम्हारी विजय निश्चित होगी। हे मुने! सत्य अस्त्र बिना तुम्हारी मृत्यु सम्भव नहीं है ॥९॥ ब्राह्मण का युद्ध ऐसे राजा के साथ, जो दत्तात्रेय

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नृपेण सार्धं ते युद्धमयुक्तं ब्राह्मणस्य च। दत्तात्रेयस्य शिष्येण व्यर्थं वै शक्तिधारिणा॥
इत्युक्त्वा कपिला ब्रह्मन्विरराम मनस्विनी ॥१०॥
मुनिर्मनस्वी सैन्यं च सज्जीकृत्य ततो मुने। गृहीत्वा सर्वसैन्यं च स जगाम रणाजिरम्॥११॥
राजा जगाम युद्धाय ननाम मुनिपुंगवम्। उभयोः सैन्ययोर्युद्धं बभूव बहुदुष्करम्॥१२॥
राजसैन्यं जितं सर्वं कपिलासेनया बलात्। विचित्रं च रथं राज्ञो बभञ्जे लीलया रणे॥१३॥
धनुश्चिच्छेद संनाहं सा सेना कापिली मुदा। नृपेन्द्रः कापिलेयानि जेतुं सैन्यानि चाक्षमः॥१४॥
सैन्यान्वितं शस्त्रवृष्ट्या न्यस्तशस्त्रं चकार सा। शरवृष्ट्या शस्त्रवृष्ट्या राजा मूर्च्छामवाप ह॥१५॥
किंचिच्छिष्टं बलं राज्ञः किंचिदेव पलायितम्। मुनीन्द्रो मूर्च्छितं दृष्ट्वा नृपेन्द्रमतिथिं मुने॥१६॥
कृपानिधिश्च कृपया तत्सैन्यं संजहार च। गत्वा सैन्यं विलीनं च कपिलायां च कृत्रिमम्॥१७॥
नृपाय मुनिना शीघ्रं दत्ताश्चरणरेणवः। आशीर्वादं प्रदत्तं च जयोऽस्त्विति कृपालुना॥१८॥
कमण्डलुजलं प्रोक्ष्य जीवयामास तं नृपम्। स राजा चेतनां प्राप्य समुत्थाय रणाजिरात्॥१९॥
मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिः। मुनिः शुभाशिषं दत्त्वा राजानं त्वालिलिङ्ग सः॥२०॥
पुलस्तं स्नापयित्वा च भोजयामास यत्नतः। नवनीतं हि हृदयं ब्राह्मणानां तु संततम्॥२१॥

का शिष्य और शक्तिधारी है, अनुचित एवं व्यर्थ है। हे ब्रह्मन्! इतना कहकर वह मनस्विनी गौ चुप हो गयी ॥१०॥ पश्चात् मनस्वी मुनि ने सेना को तैयार कर उसके साथ रणक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया॥११॥ राजा ने भी युद्धस्थल में पहुँचकर मुनिश्रेष्ठ जमदग्नि को नमस्कार किया। अनन्तर दोनों की सेनाओं में भीषण युद्ध आरम्भ हो गया॥१२॥ कपिला की सेनाओं ने राज-सेनाओं को बलात् पराजित कर दिया और रणस्थल में राजा के विचित्र रथ को लीला पूर्वक तोड़-फोड़ डाला॥१३॥ उसका कवच काट दिया; राजेन्द्र उस कापिली (कपिला की) सेना को जीतने में समर्थ न हो सका॥१४॥ उस (सेना) ने शस्त्र वर्षा द्वारा सैन्य युक्त राजा को शस्त्ररहित कर दिया। बाणवर्षा और शस्त्र वर्षा द्वारा राजा मूर्च्छित हो गया॥१५॥ हे मुने! राजा की कुछ सेना शेष रह गई और कुछ भाग निकली। कृपानिधान मुनि ने उस अतिथि राजा को मूर्च्छित देखकर कृपया उसकी पलायन करने वाली सेना को बुला दिया और मुनि की कृत्रिम सेना कपिला में अन्तर्हित हो गयी॥१६-१७॥ उपरांत मुनि ने राजा को शीघ्र अपना चरण-रज प्रदान किया। उस कृपालु ने शुभाशिष भी दिया कि—'तुम्हारी जय हो'। इतना कहकर कमण्डलु के जल से सिंचन कर उन्हें जीवित कर दिया॥१८॥ चेतना प्राप्त होने पर राजा ने रणस्थल से बाहर निकल कर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ा, शिर से मुनिवर्य को नमस्कार किया और मुनि ने भी शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए राजा का आलिंगन किया तथा स्नान कराकर यत्न से उसे भोजन कराया क्योंकि ब्राह्मणों का हृदय सदा नवनीत (मक्खन) के समान (कोमल) होता है॥१९-२१॥

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अन्येषां क्षुरधाराभमसाध्यं दारुणं सदा। उवाच तं मुनिश्रेष्ठो गृहं गच्छ धराधिप॥ ॥२२॥

राजोवाच

रणं देहि महाबाहो धेनुं किंवा मयेप्सिताम् ॥२३॥

इति श्री ब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निकार्तवीर्यार्जुनयुद्धवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

हरिं स्मरन्मुनिश्रेष्ठो वाक्यं श्रुत्वा च भूभृतः। हितं सत्यं नीतिसारं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१॥

मुनिरुवाच

गृहं गच्छ महाभाग रक्ष धर्मं सनातनम्। सर्वसंपत्तिस्थिरा शश्वत्स्थिते धर्मे सुनिश्चितम् ॥२॥
त्वां च दृष्ट्वा निराहारं समानीय गृहं नृप। तव पूजामकरवं यथाशक्ति विधानतः ॥३॥
सांप्रतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा पादरेणुं शुभाशिषम्। अददां चेतयांचक्रे वक्तुमेवोचितं न च ॥४॥
नृपस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य मुनिपुंगवम्। रथमन्यं त्वारुरोह युद्धं देहीत्युवाच ह ॥५॥

अन्य लोगों का हृदय क्षुर (स्तुरे) की धार के समान सदा असाध्य एवं भीषण होता है। (अनन्तर) मुनिवर्य ने कहा—हे राजन्! अब तुम अपने घर चले जाओ ॥२२॥

राजा बोला—हे महाबाहो! (मैं घर नहीं जाऊँगा) मुझे युद्ध दीजिये या मेरी मनचाही धेनु (गौ) देने की कृपा करें ॥२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में जमदग्नि-कार्तवीर्यार्जुनयुद्धवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

अध्याय २६

ब्रह्मा द्वारा उक्त युद्ध का शमन

नारायण बोले—मुनिश्रेष्ठ ने भगवान् का स्मरण करते हुए, राजा की कही हुई बातों को सुनकर उसे उत्तर देना आरम्भ किया, जो हित, सत्य और नीति का सार भाग था ॥१॥

मुनि बोले—हे महाभाग! अपने घर जाओ और सनातन धर्म की रक्षा करो। क्योंकि धर्म में निरन्तर स्थित रहने पर समस्त सम्पत्ति सुस्थिर रहती है यह सुनिश्चित है ॥२॥ हे नृप! तुम्हें भूखा देखकर मैं अपने घर लाया और सविधान एवं यथाशक्ति तुम्हारा सम्मान किया ॥३॥ इस समय भी तुम्हें मूर्च्छित देखकर मैंने अपने चरण-रज समेत शुभाशीर्वाद प्रदान किया, जिससे तुम्हें चेतना प्राप्त हुई और यह कहना उचित भी नहीं है ॥४॥ मुनि की बातें सुनकर राजा ने मुनिवर्य को प्रणाम किया और अन्य रथ पर

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मुनिः कृत्वा च संनाहं तं योद्धुमुपचक्रमे। राजा तं युयुधे तत्र कोपेन हृतचेतनः ॥६॥
कपिलादत्तशस्त्रेण न्यस्तशस्त्रं चकार तम्। कपिलादत्तया शक्त्या पुनर्मूर्च्छामवाप च ॥७॥
पुनश्च चेतनां प्राप्य राजा राजीवलोचनः। मुनिना युयुधे तत्र कोपेन पुनरेव च ॥८॥
आग्नेयं योजयामास समरे नृपपुंगवः। मुनिर्निर्वापयामास वारुणेन च लीलया ॥९॥
नृपेन्द्रो वारुणास्त्रं च चिक्षेप समरे मुनौ। वायव्यास्त्रेण स मुनिः शमयामास लीलया ॥१०॥
वायव्यास्त्रं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप समरे तदा। गान्धर्वेण मुनिश्रेष्ठः शमयामास तत्क्षणम् ॥११॥
नागास्त्रं च नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप रणमूर्धनि। गारुडेन मुनिश्रेष्ठो निजघान क्षणान्मुने ॥१२॥
माहेश्वरं महास्त्रं च शतसूर्यसमप्रभम्। चिक्षेप नृपतिश्रेष्ठो द्योतयन्तं दिशो दश ॥१३॥
वैष्णवास्त्रेण दिव्येन त्रिलोकव्यापकेन च। मुनिर्निर्वापयामास बहुयत्नेन नारद ॥१४॥
मुनिर्नारायणास्त्रं च चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। शस्त्रं त्यक्त्वा[1] महाराजो नमाम शरणं ययौ ॥१५॥
ऊर्ध्वं च भ्रमणं कृत्वा क्षणं दीप्त्वा दिशो दश। प्रलयाग्निसमं तत्र स्वयमन्तरधीयत ॥१६॥
जृम्भणास्त्रं च स मुनिश्चिक्षेप रणमूर्धनि। निद्रां प्राप्तेन राजा सुष्वाप च मृतो यथा ॥१७॥
दृष्ट्वा नृपं निद्रितं तं चार्धचन्द्रेण तत्क्षणम्। चिच्छेद सारथिं यानं धनुर्बाणं मुनिस्तदा ॥१८॥

चढ़कर उनसे कहा—मुझे युद्ध दीजिये ॥५॥ अनन्तर मुनि ने कवच धारण कर उनसे युद्ध करना आरम्भ किया तथा राजा ने भी अति क्रुद्ध होकर उनसे घोर युद्ध किया ॥६॥ मुनि ने कपिला (गौ) के दिये हुए शस्त्र द्वारा राजा को शस्त्ररहित कर दिया और कपिला की दी हुई शक्ति द्वारा राजा पुनः मूर्च्छित हो गया ॥७॥ तदुपरांत चेतना प्राप्त होने पर कमल के समान नेत्र वाले राजा ने क्रुद्ध होकर मुनि के साथ भीषण युद्ध किया। इस श्रेष्ठ नृपति ने युद्धस्थल में मुनि के ऊपर आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, मुनि ने उसे वारुणास्त्र द्वारा लीलापूर्वक समाप्त कर दिया ॥८-९॥ नृपेन्द्र ने रणांगण में मुनि के ऊपर वारुणास्त्र का प्रयोग किया, मुनि ने वायव्यास्त्र द्वारा लीला से उसे शान्त कर दिया ॥१०॥ राजा ने मुनि के ऊपर वायव्यास्त्र का प्रयोग किया, मुनिवर्य ने उसी क्षण गान्धर्वास्त्र द्वारा उसे विफल कर दिया ॥११॥ राजा ने रणक्षेत्र में मुनि के ऊपर नागास्त्र का प्रयोग किया, मुनि-श्रेष्ठ ने क्षणमात्र में उसे गारुड़ास्त्र द्वारा नष्ट कर दिया ॥१२॥ हे नारद! राजा ने मुनि के ऊपर माहेश्वर-अस्त्र का प्रयोग किया, जो सबसे महान्, सैकड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण और दशो दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था। मुनि ने दिव्य वैष्णवास्त्र द्वारा, जो तीनों लोकों में व्यापक था, अतिप्रयत्न से उसे शान्त कर दिया ॥१३-१४॥ अनन्तर मुनि ने राजा के ऊपर नारायणास्त्र का मंत्रपूर्वक प्रयोग किया, महाराज ने शस्त्र त्यागकर उसे नमस्कार किया और उसकी शरण में गये, जिससे वह उसी क्षण दशों दिशाओं में प्रलय-अग्नि के समान ऊपर भ्रमण कर उसी स्थान में स्वयं अन्तर्हित हो गया ॥१५-१६॥ मुनि ने उसी समय रणस्थल में जृंभणास्त्र का प्रयोग किया, जिससे राजा को निद्रा आ गयी और वे मृतक की भाँति सो गये ॥१७॥ मुनि ने राजा को निद्रा-मग्न देखकर उसी क्षण अर्द्धचन्द्राकार अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे राजा का सारथी, रथ और धनुष-बाण कट गये

---

१ ख. दृष्ट्वा।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मुकुटं च क्षुरप्रेण च्छत्रं संनाहमेव च। अस्त्रं तूणं वाजिगणं विविधेन च भूभृतः ॥१९॥
मुनिस्तत्सचिवान्सर्वान्नागास्त्रेणैव लीलया। निबध्य स्थापयामास प्रहस्य समरस्थले ॥२०॥
मुनिस्तं बोधयामास सुमन्त्रेणैव लीलया। निबद्धसर्वामात्यानां दर्शयामास भूभिपम् ॥२१॥
दर्शयित्वा नृपं तांश्च मोचयामास तत्क्षणम्। नृपेन्द्रमाशिषं कृत्वा गृहं गच्छेत्युवाच ह ॥२२॥
राजा कोपात्समुत्थाय शूलमुद्यम्य यत्नतः। चिक्षेप तं मुनिश्रेष्ठं मुनिः शक्त्या जघान तम् ॥२३॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य रणस्थलम्। सुप्रीतिं जनयामास सुनीत्या च परस्परम् ॥२४॥
मुनिर्ननाम ब्रह्माणं तुष्टाव च रणस्थले। राजा नत्वा विधिं चर्षिं स्वपुरं प्रययौ तदा ॥२५॥
मुनिर्ययौ स्वाश्रमं च स्वलोकं कमलोद्भवः। इत्येवं कथितं किंचिदपरं कथयामि ते ॥२६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निकार्तवीर्ययुद्धोपशमवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिं स्मृत्वा गृहं गत्वा राजा विस्मितमानसः। आजगाम महारण्ये जमदग्न्याश्रमं पुनः ॥१॥

॥१८॥ अनेक प्रकार के वाण से राजा के मकुट, छत्र, कवच, अस्त्र, तरकस और घोड़ों को भी बेध डाला ॥१९॥ मुनि ने उस समर-भूमि में हँसते-हँसते नागास्त्र द्वारा लीला से उनके मंत्रियों को बांध लिया और सुमन्त्र द्वारा शीघ्र राजा को चैतन्य कर उनके बंधे हुए सभी मंत्रियों को उन्हें दिखाया। ॥२०-२१॥ उपरांत राजा को दिखाकर उन्हें उसी समय मुक्त कर दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम घर चले जाओ ॥२२॥ क्रुद्ध होकर राजा ने उठकर प्रयत्न से शूल का प्रयोग किया, जिसे मुनि ने शक्ति द्वारा नष्ट कर दिया ॥२३॥ इसी बीच ब्रह्मा ने वहाँ रणक्षेत्र में आकर उत्तम नीति द्वारा समझा-बुझाकर दोनों में प्रीति-भाव उत्पन्न किया ॥२४॥ मुनि ने उस युद्धस्थल में सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा को नमस्कार किया, और राजा उस समय ब्रह्मा एवं उन ऋषि को नमस्कार करके अपने नगर चला गया, मुनि अपने आश्रम पर गये और ब्रह्मा भी अपने लोक को चले गये। इतना तो मैंने तुम्हें बता दिया और अब आगे भी कह रहा हूँ, सुनो ॥२५-२६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में जमदग्नि और कार्तवीर्य का युद्धोपशमन-वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

अध्याय २७

जमदग्नि-विनाश और परशुराम की प्रतिज्ञा

नारायण बोले—भगवान् का स्मरण करके मन में आश्चर्य करता हुआ राजा अपने घर चला गया। अनन्तर वह पुनः उस महान् जंगल में जमदग्नि के आश्रम में आया ॥१॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रथानां च चतुर्लक्षं रथिनां दशलक्षकम् । अश्वेन्द्राणां गजेन्द्राणां पदातीनामसंख्यकम् ॥२॥
राजेन्द्राणां सहस्रं च महाबलपराक्रमम् । महासमृद्धियुक्तश्च त्रैलोक्यं जेतुमीश्वरः ॥३॥
सर्वतो वेष्टयामास जमदग्न्याश्रमं मुने। रथस्थो वर्मयुक्तश्च कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम् ॥४॥
सैन्यशब्दैर्वाद्यशब्दैर्महाकोलाहलैर्मुने। जमदग्न्याश्रमस्थाश्च मूर्च्छामापुर्भयेन च ॥५॥
कुटीं प्रविश्य बलवान्गृहीत्वा कपिलां शुभाम्। पुरं गन्तुं मनश्चक्रे दुर्बुद्धिरसदाशयः ॥६॥
समुत्तस्थौ मुनिश्रेष्ठो गृहीत्वा सशरं धनुः। एकाकी मुक्तगात्रश्च धेनुं नत्वा हरिं स्मरन् ॥७॥
आश्रमस्थाञ्जनान्सर्वानाश्वास्य च यत्नतः। आजगाम रणस्थानं निःशङ्को नृपतेः पुरः ॥८॥
निर्ममे शरजालं च स मुनिर्मन्त्रपूर्वकम्। आच्छादयत्स्वाश्रमं तैर्मानवं वर्मणा यथा ॥९॥
अपरं शरजालं च निर्ममे मुनिपुंगवः। तैरेवाऽऽवरणं चक्रे सर्वसैन्यं यथाक्रमम् ॥१०॥
मुनिना शरजालेन सर्वसैन्यं समावृतम्। तानि सर्वाणि गुप्तानि यथा पत्राणि पञ्जरे ॥११॥
राजा दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठमवरुह्य रथात्पुरः। सार्धं नृपेन्द्रैर्भक्त्या च प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥१२॥
नत्वाऽऽरुरोह यानं स मुनेः प्राप्य शुभाशिषः। आरुह्य च नृपश्रेष्ठः स्वयानं हृष्टमानसः ॥१३॥

उसके साथ चार लाख रथ, दश लाख रथ वाले सैनिक और बड़े-बड़े अश्व (घोड़े), हाथी एवं पैदल सैनिक असंख्य थे ॥२॥ एक सहस्र अन्य राजा लोग थे, जो महाबली एवं महापराक्रमी थे। इस प्रकार महासमृद्धियुक्त होकर वह राजा वहाँ आया, जो तीनों लोकों को जीतने में समर्थ था ॥३॥ उसने जमदग्नि का आश्रम चारों ओर से घेर लिया और स्वयं कार्तवीर्य्यार्जुन कवच पहनकर रथ पर अवस्थित था ॥४॥ हे मुने! उसकी सेनाओं के शब्दों, वाद्यों की भीषण ध्वनियों एवं महाकोलाहल से जमदग्नि-आश्रम के सभी लोग भय से मूर्च्छित हो गये ॥५॥ बलवान् राजा ने कुटी में प्रविष्ट होकर उस शुभमूर्ति कपिला को पकड़ लिया और दुर्बुद्धि एवं नीच विचार वाला राजा, उसे लेकर अपने घर की ओर जाने का विचार करने लगा ॥६॥ अनन्तर धनुष-बाण लेकर एकाकी (अकेले) और खुले शरीर वाले मुनिवर्य धेनु को नमस्कार करके भगवान् का स्मरण करते हुए आश्रम-वासियों को बड़े यत्न से आश्वासन प्रदान कर रणक्षेत्र में राजा के सामने निःशंक पहुँच गये ॥७-८॥ मुनि ने वहाँ पहुँचकर यत्नपूर्वक बाणों का जाल-सा बना दिया। कवच पहने हुए मनुष्य के समान उसी जाल से अपने आश्रम को आच्छादित कर दिया ॥९॥ मुनिवर्य ने उसी समय एक दूसरे शर-जाल का निर्माण किया और उसी द्वारा राजा की समस्त सेनाओं को क्रमशः आवृत कर दिया ॥१०॥ इस प्रकार मुनि-निर्मित बाणों के जाल में राजा की समस्त सेनाएँ आच्छादित होकर पिंजड़े में पक्षी की भाँति गुप्त हो गईं ॥११॥ अनन्तर राजा मुनिश्रेष्ठ को देखकर रथ से उतर पड़ा और अपने सहायक राजाओं के साथ हाथ जोड़े भक्ति-पूर्वक उन्हें प्रणाम करने लगा ॥१२॥ मुनि का शुभाशीर्वाद प्राप्त होने पर राजा अत्यन्त हर्षित होकर अपने रथ पर बैठा और सहायक राजाओं के साथ अस्त्र, शस्त्र, गदा एवं शक्ति का प्रयोग किया, किन्तु मुनिवर्य

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नृपैः सार्धं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप मुनिपुंगवे। अस्त्रं शस्त्रं गदां शक्तिं जघान क्रीडया मुनिः ॥१४॥
मुनिश्चिक्षेप दिव्यास्त्रं चिच्छिदे लीलया नृपः। शूलं चिक्षेप नृपतिस्तं जघानतदा मुनिः ॥१५॥
अपरं शरजालं च निर्ममे मुनिपुंगवः। शस्त्रौघैर्दुर्निवार्यैश्च खण्डं खण्डं चकार सः ॥१६॥
निबद्धाः शरजालेन न च शक्ताः पलायितुम्। जृम्भणास्त्रेण मुनिना ते च सर्वे विजृम्भिताः ॥१७॥
हस्त्यश्वरथपादातसहितं सर्वसैन्यकम्। राजानं निद्रितं दृष्ट्वा न जघान मुनीश्वरः ॥१८॥
गृहीत्वा कपिलां हृष्टो रुदन्तीं शोकमूर्च्छिताम्। बोधयित्वा पुरः कृत्वा स्वाश्रमं गन्तुमुद्यतः ॥१९॥
एतस्मिन्नन्तरे राजा चेतनां प्राप्य नारद। निवारयामास मुनिं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥२०॥
जगाम कपिला त्रस्ता स्वस्थानं च रणाजिरात्। मुनिश्च तस्थौ निःशङ्को गृहीत्वा सशरं धनुः ॥२१॥
ब्रह्मास्त्रं च नृपश्रेष्ठः स चिक्षेप मुनौ तदा। ब्रह्मास्त्रेण मुनीन्द्रस्य सद्यो निर्वीर्यतां गतम् ॥२२॥
दिव्यास्त्रेण मुनिश्रेष्ठो नृपस्य सशरं धनुः। रथं च सारथिं चैव चिच्छिदे वर्म दुर्वहम् ॥२३॥
अथ राजा महाक्रुद्धो ददर्श स्वसमीपतः। दत्तेन दत्तां शक्तिं तामेकपुरुषघातिनीम् ॥२४॥
जग्राह नत्वा दत्तं तं स नत्वा शक्तिमुल्बणाम्। चूर्णयामास तत्रैव शतसूर्यसमप्रभाम् ॥२५॥

ने खेल-खेल में सबको नष्ट कर दिया। मुनि ने भी अपने दिव्य शस्त्र का प्रयोग किया। राजा ने भी उसे लीला से काट दिया राजा ने शूल का प्रयोग किया, मुनि ने उसे काट दिया और अपने बाणों द्वारा एक अन्य शर-जाल-सा निर्माण किया। किन्तु राजा ने अपने दुर्निवार शस्त्रों द्वारा उसके खण्ड-खण्ड कर दिये ॥१३-१६॥ शर-जाल में जो बँध गये थे, वे किसी प्रकार कहीं भाग न सके। पश्चात् अपने जृंभणास्त्र द्वारा मुनि ने हाथी, घोड़े, रथ समेत पैदल आदि सभी सैनिकों को गाढ़-निद्रा में मग्न कर दिया। राजा को निद्रित देखकर मुनिवर्य ने उसको मारा नहीं ॥१७-१८॥ प्रसन्नतावश केवल कपिला (गौ) को, जो रोती हुई मूर्च्छित हो गई थी, प्रबुद्ध किया और (उसे) लेकर अपने आश्रम की ओर प्रस्थान किया ॥१९॥ हे नारद! इसी बीच राजा को चेतना प्राप्त हो गयी, जिससे धनुष-बाण लेकर उसने मुनि को गौ ले जाने से रोक दिया ॥२०॥ किन्तु त्रस्त होने पर भी वह गौ रणस्थल से अपने स्थान को चली गयी और धनुष-बाण लेकर मुनि निःशंक होकर उसी स्थान पर गये ॥२१॥ राजा ने मुनि के ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, मुनिवर्य ने भी अपने ब्रह्मास्त्र द्वारा उसे उसी क्षण विफल कर दिया ॥२२॥ अनन्तर मुनि ने अपने दिव्यास्त्रों द्वारा राजा के धनुष-बाण, रथ और सारथि समेत भीषण कवच को भी छिन्न-भिन्न कर दिया ॥२३॥ इससे राजा अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने समीप रखी हुई उस शक्ति की ओर देखा, जो एक पुरुष का अवश्य संहार करती थी और दत्तात्रेय द्वारा प्राप्त हुई थी ॥२४॥ राजा ने प्रथम दत्तात्रेय को मानसिक नमस्कार किया और अनन्तर उस भीषण शक्ति को। उपरान्त सैकड़ों सूर्य के समान प्रभावाली उस शक्ति को ग्रहण कर राजा उसी स्थान पर उसे घुमाने लगा ॥२५॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यत्तेजः सर्वदेवानां तेजो नारायणस्य च। शंभोश्च ब्रह्मणश्चैव मायायाश्चैव नारद ॥२६॥
तत्रैवाऽऽवाहयामास स योगी मन्त्रपूर्वकम्। तेजसा द्योतयामास गगनं च दिशो दश ॥२७॥
दृष्ट्वा क्षिपन्तीं तां देवा हाहाकारेण चुक्रुशुः। आकाशस्थाश्च समरं पश्यन्तो दुःखिता हृदा ॥२८॥
चिक्षेप तां चूर्णयित्वा कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्। सद्यः पपात सा शक्तिर्ज्वलन्ती मुनिवक्षसि ॥२९॥
विदार्योरो मुनेः शक्तिर्जगाम हरिसंनिधिम्। दत्ताय हरिणा दत्ता[1] शस्त्रास्त्रनिधये तदा ॥३०॥
मूर्च्छां संप्राप्य स मुनिः प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम्। तेजोऽम्बरे भ्रमित्वा च ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥३१॥
युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद कपिला मुहुः। हे तात तातेत्युच्चार्य गोलोकं सा जगाम ह ॥३२॥
सर्वं सा कथयामास गोलोके कृष्णमीश्वरम्। रत्नसिंहासनस्थं तं गोपैर्गोपीभिरावृतम् ॥३३॥
कृष्णेन ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवे पुरा। सा प्रीत्या पुष्करे ब्रह्मन्भृगुणा जमदग्नये ॥३४॥
नत्वा च कामधेनूनां समूहं सा जगाम ह। तदश्रुबिन्दुना मर्त्ये रत्नसंघो बभूव ह ॥३५॥
अथ राजा तं निहत्य बोधयित्वा स्वसैन्यकम्। प्रायश्चित्तं विनिर्वर्त्य जगाम स्वपुरं मुदा ॥३६॥
प्राणनाथं मृतं श्रुत्वा जगाम रेणुका सती। मुनिं वक्षसि संस्थाप्य क्षणं मूर्च्छामवाप सा ॥३७॥

हे नारद! समस्त देवों का तेज, नारायण का तेज और शिव, ब्रह्मा एवं माया का तेज उस योगी ने उसमें मंत्रपूर्वक आवाहित किया, जिससे दशों दिशाओं में आकाश उसके तेज से प्रदीप्त हो उठा ॥२६-२७॥ राजा को मुनिके ऊपर उस शक्ति का प्रयोग करते हुए देखकर देवता लोग दुःखितहृदय होकर ऊँचे स्वर से हाहाकार मचाने लगे, जो उस युद्धको देखने के लिए वहाँ आकाश में खड़े थे ॥२८॥ कार्तवीर्यार्जुन ने स्वयं उसे बड़े वेग से घुमाकर छोड़ा था, वह शक्ति प्रदीप्त होती हुई उसी क्षण मुनि के वक्षःस्थल पर जा गिरी ॥२९॥ मुनि के हृदय को विदीर्ण करती हुई वह शक्ति भगवान् के समीप चली गयी, जिसे भगवान् ने शस्त्रास्त्र के निधान दत्तात्रेय को दिया था ॥३०॥ मुनि को उसी समय मूर्च्छा आ गयी और उनके प्राण निकल गये। तेज आकाश में भ्रमण करते हुए ब्रह्मलोक चला गया ॥३१॥ युद्ध में मुनि को मृतक देखकर वह कपिला गौ बार-बार रोदन करने लगी और हे तात! हे तात! कहती हुई वह गोलोक चली गयी ॥३२॥ गोलोक में पहुँच कर उसने भगवान् श्रीकृष्ण से समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जो वहाँ रत्नसिंहासन पर सुखासीन और गोप-गोपियों से घिरे हुए थे ॥३३॥ हे ब्रह्मन्! सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्ण ने वह गौ ब्रह्मा को दी थी। ब्रह्मा ने भृगु को और भृगु ने प्रेम वश पुष्कर में जमदग्नि को दी थी ॥३४॥ उपरांत कामधेनुओं के समूह को नमस्कार करके वह चली गयी। उसके अश्रुविन्दु द्वारा मर्त्यलोक में रत्न समूह उत्पन्न हुआ ॥३५॥ इसके पश्चात् राजा ने उन (जमदग्नि) को मारकर अपने सैनिकों को बता कर प्रायश्चित्त किया और अपने नगर चला गया। ३६॥ अपने प्राणनाथ को मृतक सुनकर सती रेणुका वहाँ पहुँची और मुनि को अपने अंक में लेकर क्षणमात्र मूर्च्छित हो गयीं ॥३७॥

---

१ ०त्ता दत्तेनैव नृपाय सा।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ततः सा चेतनां प्राप्य न रुरोद पतिव्रता। एहि वत्स भृगो राम राम रामेत्यवाच ह ॥३८॥
आजगाम भृगुस्तूर्णं क्षणाद्वै पुष्करादहो। ननाम मातरं भक्त्या मनोयायी च योगवित् ॥३९॥
दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकार्तां जननीं सतीम्। आकर्ण्य रणवृत्तान्तं प्रयान्तीं कपिलां शुभा[1] ॥४०॥
विललाप भृशं तत्र हे तात जननीति च। चितां चकार योगीन्द्रश्चन्दनैराज्यसंयुताम् ॥४१॥
रेणुका रामसादाय तूर्णं कृत्वा स्ववक्षसि। चुचुम्ब गण्डे शिरसि रुरोदोच्चैर्भृशं मुने ॥४२॥
राम राम महाबाहो क्व यामि त्वां विहाय च। वत्स वत्सेति कृत्वैवं विललाप भृशं मुहुः ॥४३॥
मत्प्राणाधिक हे वत्स मदीयं वचनं शृण। पित्रोः शेषक्रियां कृत्वा याया युद्धं न पुत्रक ॥४४॥
गृहे तिष्ठ सुखं वत्स तपस्यां कुरु शाश्वतीम्। समरं[2] नैव सुखदं दारुणैः क्षत्रियैः सह ॥४५॥
मातुर्वचनमश्रुत्वा प्रतिज्ञां तां चकार ह। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि ध्रुवं महीम् ॥४६॥
कार्तवीर्यं हनिष्यामि लीलया क्षत्रियाधमम्। पितॄंश्च तर्पयिष्यामि क्षत्रियक्षतजैस्तथा ॥४७॥
इत्युदीर्य पुरो मातुर्विललाप मुहुर्मुहुः। हितं तथ्यं नीतिसारं बोधयामास मातरम् ॥४८॥

अनन्तर चेतना प्राप्त होने पर उस पतिव्रता ने रोदन नहीं किया, प्रत्युत हे राम, हे राम, हे वत्स! हे मृगो! कह कर परशुराम को बुलाने लगी ॥३८॥ मनोवेग के समान चलने वाले एवं योगवेत्ता परशुराम उसी समय पुष्कर से आ पहुँचे और उन्होंने भक्तिपूर्वक अपनी माता को नमस्कार किया ॥३९॥ पश्चात् राम ने अपने पिता को मृतक देखा, माता को शोकविह्वल और शोकाकुल कपिला को गोलोक जाते हुए देखा एवं युद्ध का समस्त वृत्तान्त सुना। हे तात! हे जननी! ऐसा कहकर उन्होंने भी बार-बार विलाप किया। अनन्तर उस योगिराज ने घृतप्लुत चन्दन काष्ठ की चिता बनायी ॥४०-४१॥ रेणुका ने राम को शीघ्र अपने हृदय से लगाकर उनके कपोल एवं शिर का चुम्बन किया और अत्यन्त ऊँचे स्वर से वह बार-बार रोदन करने लगी। ॥४२॥ राम! हे राम! हे महाबाहो! मैं तुम्हें छोड़कर अब कहाँ जाऊँ तथा हे वत्स! हे वत्स! ऐसा बार-बार कहती हुई अति विलाप करने लगीं ॥४३॥ हे वत्स! तुम मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, अतः मेरी बातें सुनो। हे पुत्र! माता-पिता की अन्त्येष्टिक्रिया करने के उपरांत युद्ध में न जाना ॥४४॥ हे वत्स! सुखपूर्वक घर में रहो, निरन्तर तपस्या करो, किन्तु भीषण क्षत्रियों के साथ युद्ध न करना, क्योंकि वह कभी भी सुखप्रद नहीं होता है ॥४५॥ परशुराम ने माता की बात पर ध्यान न देकर ऐसी प्रतिज्ञा की कि 'मैं निश्चित ही पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियशून्य कर दूंगा, और उस अधम क्षत्रिय कार्तवीर्य्य का लीला पूर्वक वध करूँगा तथा उसी क्षत्रिय के रक्त से मैं अपने पितरों का तर्पण करूँगा।' अपनी माता के सामने ऐसी प्रतिज्ञा करके परशुराम पुनः विलाप करने लगे। अनन्तर उन्होंने अपनी माता से कहना आरम्भ किया, जो हितकर, सत्य और नीति का सार भाग था ॥४६-४८॥

---

१ क० शुभाम्। २ रं ते नैव शुभ्रं दा०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

राम उवाच

पितुः शासनहन्तारं पितुर्वधविधायकम्। यो न हन्ति महामूढो रौरवं स व्रजेद्ध्रुवम्॥४९॥
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः॥५०॥
सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुजल्पकः। एकादशैते पापिष्ठा वधार्हा वेदसंमताः॥५१॥
द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति। वपनं ताडनं चैव वधमाहुर्मनीषिणः॥५२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाऽऽजगाम भृगुः स्वयम्। अतित्रस्तो मनस्वी च हृदयेन विदूयता॥५३॥
दृष्ट्वा तं रेणुकारामौ विनतौ संबभूवतुः। स तावुवाच वेदोक्तं परलोकहिताय च॥५४॥

भृगुरुवाच

मद्वंशजातो ज्ञानी त्वं कथं विलपसे सुत। जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारे च चराचरम्॥५५॥
सत्यसारं सत्यबीजं कृष्णं चिन्तय पुत्रक। यद्गतं तद्गतं वत्स गतं नैवाऽऽगमिष्यति॥५६॥
यद्भवेत्तद्भवत्येव भविता यद्भविष्यति। पूर्वार्जितं स्वीयकर्मफलं केन निवार्यते॥५७॥
भूतं भव्यं भविष्यं च यत्कृष्णेन निरूपितम्। निरूपितं यत्तत्कर्म केन वत्स निवार्यते॥५८॥
मायाबीजं मायिनां च शरीरं पाञ्चभौतिकम्। संकेतपूर्वकं नाम प्रातःस्वप्नसमं सुत॥५९॥

राम बोले—पिता की आज्ञा भंग करने वाले और पिता का वध करने वाले का हनन जो नहीं करता है, वह महामूढ़ निश्चित रौरव नरक जाता है॥४९॥ अग्नि लगाने वाले, विष देने वाले, हाथ में हथियार रखने वाले, धन का अपहर्त्ता, क्षेत्र (खेत) और पत्नी का अपहरण करने वाला पिता एवं बन्धुओं की हिंसा करने वाला, सतत आलस्य करने वाला, निन्दक, कटुवादी—ये ग्यारहों महान् पापी होते हैं। वेद के मत से ये वध करने के योग्य होते हैं॥५०-५१॥ धन ले लेना, स्थान से निकाल देना, मुण्डन करा देना या ताड़ना देना (बेंत आदि मारना) यही ब्राह्मणोंका विद्वानों ने वध बतलाया है॥५२॥ इस बीच वहाँ भृगु स्वयं आ गये। वे अत्यन्त दुःखी मनस्वी हार्दिक दुःख प्रकट करने लगे। उन्होंने रेणुका और राम को विनय-विनम्र देखकर उनसे कुछ कहना आरम्भ किया, जो वेदसम्मत और परलोक के लिए हितकर था॥५३-५४॥

भृगु बोले—हे सुत! तुम मेरे वंश में उत्पन्न हो और ज्ञानी हो, विलाप क्यों कर रहे हो? क्योंकि संसार में समस्त चर-अचर जल के बुल्ले के समान (नश्वर) हैं॥५५॥ हे पुत्र! भगवान् श्रीकृष्ण का चिन्तन करो, जो सत्यसार और सत्यबीज रूप है। हे वत्स! जो गया, सो गया, जो चला गया वह पुनः नहीं आयेगा॥५६॥ जो होनहार रहता है, वह होकर रहता है, क्योंकि अपने जन्मान्तरीय कर्म फल को (भोगने से) कौन रोक सकता है॥५७॥ हे वत्स! भगवान् कृष्ण ने जिस भूत, वर्तमान और भविष्य का निर्माण कर दिया है और जिस कर्म का निरूपण कर दिया है, उसे कौन रोक सकता है॥५८॥ हे सुत! यह पाँच भूतों (पृथिवी, जल, तेज, आकाश और वायु) का बना शरीर मायावियों का मायाबीज है। प्रातःकाल के स्वप्न की भाँति केवल इसका एक संकेत मात्र नाम रहता है॥५९॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

क्षुधा[1] निद्रा दया शान्तिः क्षमा कान्त्यादयस्तथा। यान्ति प्राणा मनो ज्ञानं प्रयाते परमात्मनि ॥६०॥
बुद्धिश्च शक्तयः सर्वा राजेन्द्रमिव किंकराः। सर्वे तमनुगच्छन्ति तं कृष्णं भज यत्नतः ॥६१॥
के वा केषां च पितरः के वा केषां सुताः सुत। कर्मभिः प्रेरिताः सर्वे भवाब्धौ दुस्तरे परम् ॥६२॥
ज्ञानिनो मा रुदन्त्येव मा रोदीः पुत्र साम्प्रतम्। रोदनाश्रुप्रपतनान्मृतानां नरकं ध्रुवम् ॥६३॥
संकेताख्योच्चारणेन यद्रुदन्ति च बान्धवाः। शतवर्षं रुदित्वा तं प्राप्नुवन्ति न निश्चितम् ॥६४॥
पार्थिवांशं च पृथिवी गृह्णात्यस्थित्वगादिकम्। तोयांशं च तथा तोयं शून्यांशं गगनं तथा ॥६५॥
वाय्वंशं च तथा वायुस्तेजस्तेजांशकं तथा। सर्वे विलीनाः सर्वेषु को वाऽऽयास्यति रोदनात् ॥६६॥
नामश्रुतियशःकर्मकथामात्रावशेषितः। वेदोक्तं चैव यत्कर्म कुरु तत्पारलौकिकम् ॥६७॥
स च बन्धुः सुपुत्रश्च परलोकहिताय यः। भृगोस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकं तत्याज तत्क्षणम् ॥
रेणुका च महासाध्वी तं वक्तुमुपचक्रमे ॥६८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० जमदग्निसंहारपरशुराम-
प्रतिज्ञादिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

इससे परमात्मा (आत्मा) के शरीरसे निकल जाने पर क्षुधा, निद्रा, दया, शान्ति, क्षमा, कान्ति आदि और मन एवं ज्ञान समेत प्राण भी (शरीर से) चले जाते हैं॥६०॥ उसकी बुद्धि तथा समस्त शक्तियाँ भी, राजा के पीछे सेवक की भाँति, पीछे लगी चली जाती हैं, इसलिए प्रयत्नपूर्वक कृष्ण को भजो॥६१॥ हे सुत! कौन किनके पिता हैं और कौन किनके पुत्र। केवल कर्मवश प्रेरित होकर सभी लोग इस दुष्पार संसार-सागर में आकर पड़े हैं॥६२॥ हे पुत्र! ज्ञानी इस प्रकार रोदन नहीं करते हैं, अतः इस समय रोदन न करो। क्योंकि रोदन करने से आँसू गिरते हैं जिससे मृतक का निश्चित नरकवास होता है॥६३॥ जिस सांकेतिक नाम का उच्चारण करके बन्धुवर्ग रोदन करते हैं, उसे सौ वर्ष रोदन करने पर भी नहीं पा सकते हैं, यह निश्चित है। क्योंकि शरीर का पार्थिव अंश हड्डी, त्वचा आदि पृथिवी ग्रहण कर लेती है और उसी भाँति जलांश को जल, शून्यांश को आकाश, वायुअंश को वायु और तेज अंश को तेज ग्रहण कर लेता है॥६४-६६॥ इस प्रकार सब में सब विलीन हो जाते हैं तो रोदन करने से कौन आयेगा। अनन्तर उसके नाम, यश, कर्म की कथा मात्र शेष रह जाती है। अतः वेदोक्त कर्मों को परलोक के लिए अवश्य करो॥६७॥ क्योंकि जो परलोक का हितैषी होता है वही पुत्र और बन्धु है। भृगु की ऐसी बातें सुनकर महासती रेणुका ने उसी क्षण शोक त्याग दिया और उनसे कहने लगी॥६८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में जमदग्नि-संहार और परशुराम-प्रतिज्ञा आदि वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

---

१ क. क्षुन्निद्रातृड्द०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

रेणुकोवाच

ब्रह्मन्ननुगमिष्यामि प्राणनाथस्य सांप्रतम्। ऋतोश्चतुर्थदिवसे मृतोऽयं चाद्य मानदः॥१॥
कर्तव्या का व्यवस्थाऽत्र वद वेदविदां वर। त्वमागतो मे सहसा पुण्येन कतिजन्मनाम्॥२॥

भृगुरुवाच

अहो पुण्यवतो भर्तुरनुगच्छ महासति। चतुर्थदिवसं शुद्धं स्वामिनः सर्वकर्मसु॥३॥
शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि न शुद्धा दैवपित्र्ययोः। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽह्नि विशुध्यति॥४॥
व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात्। तद्वत्स्वामिनमादाय साध्वी स्वर्गं प्रयाति च॥५॥
मोदते स्वामिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश। अत ऊर्ध्वं कर्मभोगं भुङ्क्ष्व साध्वि शुभाशुभम्॥६॥
स पुत्रो भक्तिदाता यः सा च स्त्री याऽनुगच्छति। स बन्धुर्दानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत्॥७॥
सोऽभीष्टदेवो यो रक्षेत्स राजा पालयेत्प्रजाः। स च स्वामी प्रियां धर्ममतिं दातुमिहेश्वरः॥८॥
स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः। एते प्रशंस्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम्॥९॥

अध्याय २८

रेणुका बोली—हे ब्रह्मन्! मैं अब अपने प्राणनाथ (स्वामी) का अनुगमन करना चाहती हूँ, किन्तु मेरे ऋतु-धर्म का आज चौथा दिन है, जिसमें मेरे मानदाता ने प्राण त्याग किया है॥१॥ हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! मेरे अनेक जन्मों के पुण्य प्रभाव वश तुम आ गये हो, तो यह अवश्य बताने की कृपा करो कि मुझे इस अवस्था में क्या व्यवस्था करनी चाहिए॥२॥

भृगु बोले—हे महासति! तुम अपने पुण्यवान् पति का अनुगमन अवश्य करो, क्योंकि स्त्री चौथे दिन अपने पति के समस्त कार्यों के लिए शुद्ध है॥३॥ किन्तु स्त्री चौथे दिन केवल पति के लिए शुद्ध होती है, न कि देवकार्य और पितर कार्यों के लिए। देव एवं पितर कार्यों के लिए वह पाँचवें दिन शुद्ध होती है॥४॥ सँपेरा (साँप पकड़ने वाला) जिस प्रकार बिल से सर्प को बलात् पकड़ लेता है, उसी भाँति स्त्री भी पति को लेकर स्वर्ग चली जाती है॥५॥ हे साध्वि! वहां स्वामी के साथ चौदहों इन्द्रों के समय तक आनन्द-मग्न रहती है। इसके उपरांत तुम भी अपने शुभाशुभ कर्मों का भोग प्राप्त करो॥६॥ पुत्र वही है, जो भक्तिप्रदाता हो और स्त्री वही है, जो पति का अनुगमन करे। बन्धु वही है जो दान दे और शिष्य वही है, जो गुरु का सम्मान-प्रार्थना करे॥७॥ इष्टदेव वही है, जो रक्षा करे। राजा वही है, जो प्रजाओं का पालन करे। स्वामी वही है, जो अपनी प्रिया (स्त्री) को धर्म में लगाने में समर्थ हो सके॥८॥ और गुरु वही है जो धर्म देते हुए भगवान् की भक्ति प्रदान करे। क्योंकि वेदों और पुराणों में ये निश्चित रूप से प्रशंसनीय माने गये हैं॥९॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रेणुकोवाच

गन्तुं स्वस्वामिना सार्धं का शक्ता भारते मुने। का वाऽप्यशक्ता नारीषु तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥१०॥

भृगुरुवाच

बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा। रजस्वला च कुलटा गलितव्याधिसंयुता ॥११॥
पतिसेवा विहीना या ह्यभक्ता कटुभाषिणी। एता गच्छन्ति चेद्दैवान्न कान्तं प्राप्नुवन्ति ताः ॥१२॥
संस्कृताग्निं पुरो दत्त्वा चितासु शयितं पतिम्। कान्तास्तमनुगच्छन्ति कान्ताश्चेत्प्राप्नुवन्ति ताः ॥१३॥
अनुगच्छन्ति याः कान्तं तमेव प्राप्नुवन्ति ताः। सार्धं कृत्वा पुण्यभोगं दिवि जन्मनि जन्मनि ॥१४॥
इयं ते कथिता साध्वि व्यवस्था गृहिणां ध्रुवम्। तीर्थे ज्ञानमृतानां च वैष्णवानां गतिं शृणु ॥१५॥
या साध्वी वैष्णवं कान्तं यत्र यत्रानुगच्छति। प्रयाति स्वामिना सार्धं वैकुण्ठे हरिसंनिधिम् ॥१६॥
विशेषे नास्ति भक्तानां तीर्थे वाऽन्यत्र नारद। मरणेन फलं तुल्यं मुक्तानां कृष्णभाविताम् ॥१७॥
तयोः पातो नास्ति तस्मान्महति प्रलये सति। नारायणं तं भजेत पुमांस्त्री कमलालयाम् ॥१८॥
तीर्थे ज्ञानमृतश्चापि वैकुण्ठं याति निश्चितम्। सभार्यो मोदते तत्र यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥१९॥
इत्युक्त्वा रेणुकां तत्र जामदग्न्यमुवाच ह। वेदोक्तं वचनं [1]सर्वं स भृगुः समयोचितम् ॥२०॥

रेणुका बोली—हे मुने! हे तपोधन! भारत में स्त्रियों में कौन-सी स्त्री अपने पति का अनुगमन करने में समर्थ होती है और कौन असमर्थ रहती है यह मुझे बताने की कृपा करें ॥१०॥

भृगु बोले—छोटे-बच्चे वाली, गर्भिणी, अनुत्पन्न रजोधर्म वाली, रजस्वला, कुलटा, गलित कुष्ठ की रोगिणी, पति की सेवा न करने वाली, अभक्ता और कटुवादिनी स्त्री, ये दैव संयोग से यदि अनुगमन करें भी तो पति को नहीं प्राप्त करती हैं ॥११-१२॥ चिता पर पति को शयन कराकर और उसमें सामने संस्काराग्नि लगाने के उपरांत जो स्त्रियाँ पति का अनुगमन करती हैं, वह यदि पति की प्रेयसी हैं, तो अवश्य उसे प्राप्त करती हैं ॥१३॥ क्योंकि जो स्त्रियां पति का अनुगमन करती हैं वे पुनः उसी पति को प्राप्त होती हैं और स्वर्ग में तथा प्रत्येक जन्म में पति के साथ पुण्य का उपभोग करती हैं ॥१४॥ हे साध्वि! इस प्रकार मैंने तुम्हें गृहस्थों की निश्चित व्यवस्था बता दी; अब तीर्थ में ज्ञान पूर्वक मरने वाले वैष्णवों की गति बता रहा हूँ, सुनो ॥१५॥ जो स्त्री पतिव्रता होती है तो उसका वैष्णव पति जहाँ-जहाँ जाता है, वह अवश्य जाती है और पति के साथ वैकुण्ठ में भगवान् के समीप पहुँचती है ॥१६॥ किन्तु हे नारद! भक्तों के तीर्थ या अन्य स्थान में प्राणत्याग करने में कोई विशेषता नहीं होती है। क्योंकि भगवान् कृष्ण के प्रेमी भक्त मुक्त रहते हैं अतः उनके (कहीं भी) मरने में समान फल है। महाप्रलय में भी उनका पतन नहीं होता है। इस लिए पुरुष और स्त्री को नारायण और कमलालया (लक्ष्मी) की सेवा करनी चाहिए ॥१७-१८॥ तीर्थ में ज्ञान पूर्वक मरने पर वह निश्चित वैकुण्ठ जाता है और सौ ब्रह्मा के समय तक वहाँ स्त्री समेत आनन्द का उपभोग करता है ॥१९॥ भृगु ने रेणुका से इस प्रकार कहकर जामदग्न्य (परशुराम) से भी कहना आरम्भ किया, जो वेदसम्मत और सामयिक था ॥२०॥ (उन्होंने कहा)—हे भृगो! हे वत्स! यहाँ

---

१ क. सत्यं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

एहि वत्स महाभाग त्यज शोकममङ्गलम्। उत्तानं कुरु तातं च दक्षिणाशिरसं भृगो॥२१॥
वस्त्रं यज्ञोपवीतं च नूतनं परिधापय। अनश्रुनयनो भूत्वा संतिष्ठन्दक्षिणामुखः॥२२॥
अरणीसंभवाग्निं च गृहाण प्रीतिपूर्वकम्। पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्वेषां स्मरणं कुरु॥२३॥
गयादीनि च तीर्थानि ये च पुण्याः शिलोच्चयाः। कुरुक्षेत्रं च गङ्गां च यमुनां च सरिद्वराम्॥२४॥
कौशिकीं चन्द्रभागां च सर्वपापप्रणाशिनीम्। गण्डकीमथ काशीं च पनसां सरयूं तथा॥२५॥
पुष्पभद्रां च भद्रां च नर्मदां च सरस्वतीम्। गोदावरीं च कावेरीं स्वर्णरेखां च पुष्करम्॥२६॥
रैवतं च वराहं च श्रीशैलं गन्धमादनम्। हिमालयं च कैलासं सुमेरुं रत्नपर्वतम्॥२७॥
वाराणसीं प्रयागं च पुण्यं वृन्दावनं वनम्। हरिद्वारं च बदरीं स्मारंस्मारं पुनः पुनः॥२८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीसुगन्धिकुसुमं तथा। प्रदाय वाससाऽऽच्छाद्य स्थापयैनं चितोपरि॥२९॥
कर्णाक्षिनासिकास्ये त्वं शलाकां च हिरण्मयीम्। कृत्वा निर्मन्थनं तात विप्रेभ्यो देहि सादरम्॥३०॥
सतिलं ताम्रपात्रं च धेनुं च रजतं तथा। सदक्षिणं सुवर्णं च दत्त्वाऽग्निं देह्यकातरः॥३१॥
ॐ कृत्वा दुष्कृतं कर्म जानता वाऽप्यजानता। मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम्॥३२॥
धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम्। दह सर्वाणि गात्राणि दिव्यांल्लोकान्स गच्छतु॥३३॥
इमं मन्त्रं पठित्वा तु तातं कृत्वा प्रदक्षिणम्। मन्त्रेणानेन देह्यग्निं जनकाय हरिं स्मरन्॥३४॥
ॐ अस्मत्कुले त्वं जातोऽसि त्वदीयो जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति वद सांप्रतम्॥३५॥

आओ! हे महाभाग! यह अमंगल शोक छोड़ दो और अपने (मृतक) पिता को दक्षिण दिशा की ओर शिर करके उतान शयन कराओ और नवीन वस्त्र एवं यज्ञोपवीत पहनाओ किन्तु उस समय अश्रुपात न होने पाये और दक्षिणाभिमुख रहो॥२१-२२॥ प्रेम पूर्वक अरणी से उत्पन्न अग्नि ग्रहण करो और पृथिवी के समस्त तीर्थों का स्मरण करो॥२३॥ गया आदि तीर्थों और पुण्य पर्वतों—कुरुक्षेत्र, गंगा, नदीश्रेष्ठ यमुना, कौशिकी, समस्त पाप-नाशिनी चन्द्रभागा, गण्डकी, काशी, पनसा, सरयू, पुष्पभद्रा, भद्रा, नर्मदा, सरस्वती, गोदावरी, कावेरी, स्वर्णरेखा, पुष्कर, रैवत, वराह, श्रीशैल, गन्धमादन, हिमालय, कैलास, रत्नपर्वत सुमेरु, वाराणसी, प्रयाग, पुण्य वृन्दावन, हरिद्वार और बदरिकाश्रम का बार-बार स्मरण करो॥२४-२८॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और सुगन्धित पुष्प वहाँ चिता के ऊपर रखकर उन्हें वस्त्र से आच्छादित करो॥२९॥ हे तात! कान, आँख, नाक और मुख में सुवर्ण की शलाका से निर्मन्थन करके ब्राह्मण को सादर समर्पित करो॥३०॥ तिलसमेत ताम्रपात्र, धेनु, रजत (चांदी) और दक्षिणा समेत सुवर्ण प्रदान करके निर्भयता पूर्वक अग्नि लगाओ और कहो कि ओं ज्ञानपूर्वक या अज्ञान वश पाप-पुण्य कर्म करके मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हुआ (अर्थात् उसके शारीरिक पांचों भूत अपने-अपने तत्त्वों में विलीन हो गये)॥३१-३२॥ अब धर्माधर्म युक्त और लोभ-मोह से आच्छन्न इस (व्यक्ति के) शरीर के समस्त अंगों को जला दो, जिससे यह दिव्य लोक चला जाये॥३३॥ इस मंत्र को पढ़ते हुए पिता की प्रदक्षिणा करो और भगवान् का स्मरण करते हुए इसी मन्त्र द्वारा पिता का अग्नि संस्कार करो॥३४॥ और यह भी कहो कि—ओं हमारे कुल में तुम उत्पन्न हुए हो, और पुनः तुम्हारा होकर उत्पन्न हो। यह स्वर्गलोक चले

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अग्निं देहि शिरःस्थाने हे भृगो भ्रातृभिः सह। तच्चकार भृगुः सर्वं सगोत्रैराज्ञया भृगोः ॥३६॥
अथ पुत्रं रेणुका सा कृत्वा तत्र स्ववक्षसि। उवाच किंचिद्वचनं परिणामसुखावहम् ॥३७॥
अविरोधो भवाब्धौ च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। विरोधो नाशबीजं च सर्वोपद्रवकारणम् ॥३८॥
अकर्तव्यो विरोधो वै दारुणैः क्षत्रियैः सह। प्रतिज्ञा चैषा कर्तव्या मदीयं वचनं शृणु ॥३९॥
आलोच्य ब्रह्मणा सार्धं भृगुणा दिव्यमन्त्रिणा। यथोचितं च कर्तव्यं सद्भिरालोचनं शुभम् ॥४०॥
इत्युक्त्वा तं परित्यज्य कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि। सा सुष्वाप चितायां च पश्यन्ती तं हरिस्मृतिः ॥४१॥
वह्निं ददौ चितायां च स रामो भ्रातृभिः सह। भ्रातृभिः पितृशिष्यैश्च सार्धं सविललाप च ॥४२॥
राम रामेति रामेति वाक्यमुच्चार्य सा सती। पुरस्ताज्जामदग्न्यस्य भस्मीभूता बभूव सा ॥४३॥
भर्तुर्नाम समाकर्ण्य तत्राऽऽजग्मुर्हरेश्चराः। रथस्थाः श्यामवर्णाश्च सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥४४॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः। किरीटिनः कुण्डलिनः पीतकौशेयवाससः ॥४५॥
रथे कृत्वा रेणुकां तां गत्वा ते ब्रह्मणः पदम्। जमदग्निं समादाय प्रजग्मुर्हरिसंनिधिम् ॥४६॥
तौ दम्पती च वैकुण्ठे तस्थतुर्हरिसंनिधौ। कृत्वा दास्यं हरेः शश्वत्सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥४७॥
अथ रामो ब्राह्मणैश्च भृगुणा सह नारद। पित्रोः शेषक्रियां कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥४८॥
गोभूहिरण्यवासांसि दिव्यशय्यां मनोरमाम्। सुवर्णाधारसहितां जलमन्नं च चन्दनम् ॥४९॥

जायँ, स्वाहा ॥३५॥ हे मृगो! भ्राताओं के साथ तुम उनके शिरोभाग में अग्नि लगाओ। इस प्रकार भृगु की आज्ञा से परशुराम ने सगोत्रियों के साथ सम्पन्न किया ॥३६॥ अनन्तर रेणुका ने वहाँ पुनः राम को अपने अंक से लगाती हुई उनसे कुछ परिणाम में सुखप्रद वचन कहा ॥३७॥ (किसी से) विरोध न करना संसार-सागर में समस्त मंगलों का मंगल है और विरोध करना नाश का बीज एवं समस्त उपद्रवों का कारण है ॥३८॥ अतः भीषण क्षत्रियों के साथ विरोध न करना ऐसी प्रतिज्ञा करो और मेरी बात सुनो ॥३९॥ ब्रह्मा एवं दिव्य मंत्री भृगु के साथ मन्त्रणा (सलाह) करके यथोचित कार्य करना, क्योंकि सज्जनों से किया गया परामर्श शुभ होता है ॥४०॥ इतना कहकर उसे छोड़ कर पति को गोद में लेकर भगवान् का चिन्तन कर उन्हें देखती हुई चिता पर लेट गई ॥४१॥ अनन्तर राम ने भ्राताओं समेत चिता में अग्नि लगाया और भ्राताओं एवं पिता के शिष्य-वर्गों समेत विलाप करने लगे ॥४२॥ सती रेणुका हे राम, हे राम! ऐसा कहती हुई परशुराम के सामने (जलकर) भस्म हो गयी ॥४३॥ स्वामी का नाम सुनते ही भगवान् के दूत-गण रथ पर बैठे वहाँ तुरन्त पहुँच गये, जो श्यामवर्ण, सुन्दर चार भुजाएँ, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये, वनमाला पहने, किरीट, कुण्डल एवं पीताम्बर धारी थे ॥४४-४५॥ उन लोगों ने रेणुका और जमदग्नि को रथ पर बैठा कर ब्रह्मलोक होते हुए उन्हें भगवान् के समीप पहुँचा दिया ॥४६॥ इस प्रकार वे दम्पती वैकुण्ठ में भगवान् के समीप रह कर समस्त मंगलों की मंगल भगवान् की दास्यभक्ति निरन्तर करने लगे ॥४७॥ हे नारद! इसके पश्चात् राम ने भृगु एवं ब्राह्मणों समेत माता-पिता की शेष अन्त्येष्टि क्रिया सुसम्पन्न कर ब्राह्मणों को धन प्रदान किया—गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, दिव्य एवं सुवर्णाधारसमेत उत्तम शय्या, जल, अन्न, चन्दन, रत्नदीप,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रत्नदीपं रौप्यशैलं सुवर्णासनमुत्तमम् । सुवर्णाधारसहितं ताम्बूलं च सुवासितम् ॥५०॥
छत्रं च पादुके चैव फलं माल्यं मनोहरम् । फलं मूलादिकं चैव मिष्टान्नं च मनोहरम् ॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा ब्रह्मलोकं जगाम सः ॥५१॥
ददर्श ब्रह्मलोकं स शातकुम्भविनिर्मितम् । स्वर्णप्राकारसंयुक्तं स्वर्णस्तम्भैर्विभूषितम् ॥५२॥
ददर्श तत्र ब्रह्माणं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ॥५३॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च ऋषीन्द्रैः परिवेष्टितम् । विद्याधरीणां नृत्यं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥५४॥
संगीतमुपशृण्वन्तं गीयमानं च गायकैः । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् ॥५५॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम् । धातारं सर्वजगतां कर्तारं चेश्वरं परम् ॥५६॥
परिपूर्णतमं ब्रह्म जपन्तं कृष्णमीश्वरम् । गुह्ययोगं प्रवोचन्तं पृच्छन्तं शिष्यमण्डलम् ॥५७॥
दृष्ट्वा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगुः पुरः । उच्चैश्च रोदनं कृत्वा स्ववृत्तान्तमुवाच ह ॥५८॥

भृगुरुवाच

ब्रह्मंस्त्वद्वंशजोऽहं जमदग्निसुतो विधे । पितामहस्त्वमस्माकं सर्वज्ञं कथयामि किम् ॥५९॥
मृगयामागतं भूपं पिता मे चोपवासिनम् । पारणां कारयामास कपिलादत्तवस्तुभिः ॥६०॥
स राजा [1]कपिलालोभात्कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम् । घातयामास मत्तातमित्युक्त्वोच्चै रुरोद सः ॥६१॥

चाँदी-पर्वत, सुवर्णाधार समेत उत्तम सुवर्णासन, सुवासित ताम्बूल, छत्र, सुन्दर खड़ाऊँ, फल, सुन्दर माला, फलमूल तथा मनोहर मिष्टान्न प्रदान किया। इस प्रकार ब्राह्मणों को धनदान देकर स्वयं ब्रह्मलोक चले गये ॥४८-५१॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्रह्मलोक देखा, जो सुवर्ण-रचित, सुवर्ण की चहारदीवारी से युक्त और सुवर्ण के स्तम्भों से सुशोभित था ॥५२॥ वहाँ ब्रह्मा को देखा, जो ब्रह्मतेज से देदीप्यमान और रत्नसिंहासन पर सुखासीन होकर रत्नों के भूषणों से विभूषित थे ॥५३॥ सिद्धों, मुनियों और ऋषियों में श्रेष्ठों से घिरे मन्द मुसुकान करते हुए, विद्याधरियों का नृत्य देख रहे थे ॥५४॥ गायक लोगों के गाने-बजाने सुन रहे थे। तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से भूषित थे। तप फल एवं समस्त सम्पत्ति के दाता, समस्त जगत् के धाता-कर्त्ता, परमेश्वर, परिपूर्णतम परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण का नाम जप रहे थे तथा शिष्यमण्डल के पूछने पर उन्हें गुह्य योग बता रहे थे ॥५५-५७॥ ऐसे ब्रह्मा को देख कर भृगु (परशुराम) उनके सामने खड़ हो गये और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया, अनन्तर ऊँचे स्वर से रोदन करते हुए अपना समस्त वृत्तान्त उनसे बतलाया ॥५८॥

भृगु बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! तुम्हारे वंश में हम उत्पन्न हुए हैं और जमदग्नि के पुत्र हैं। तुम हमारे पितामह हो और सर्वज्ञाता हो, मैं तुमसे क्या कहूँ ॥५९॥ मृगया (शिकार) खेलने के लिए आये हुए राजा को मेरे पिता ने भूखा देखकर कपिला की दी हुई वस्तुओं से उसे भोजन कराया ॥६०॥ अनन्तर उस राजा कार्तवीर्य्यार्जुन ने वही कपिला ले लेने के लोभ से स्वयं मेरे पिता को मार डाला। इतना कह कर उन्होंने अत्युच्च

---

१ क. मोहा० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

निरुध्य बाष्पं स पुनरुवाच करुणानिधिः । माता मेऽनुगता साध्वी मां विहाय जगद्गुरो ॥६२॥
अधुनाऽहमनाथश्च त्वं मे माता पिता गुरुः । कर्ता पालयिता दाता पाहि मां शरणागतम् ॥६३॥
आगतोऽहं तव सभां प्रमातुर्मातुराज्ञया । उपायेन जगन्नाथ मद्वैरिहननं कुरु ॥६४॥
स राजा स च धर्मिष्ठः स दयालुर्यशस्करः । स पूज्यः स स्थिरश्रीश्च यो दीनं परिपालयेत् ॥६५॥
धनिदीनौ समं दृष्ट्वा यः प्रजां न च पालयेत् । [1]तद्गेहाद्याति रुष्टा श्रीः स भवेद्भ्रष्टराज्यकः ॥६६॥
श्रुत्वा विप्रबटोर्वचनं करुणासागरो विधिः । दत्त्वा शुभाशिषं तस्मै वासयामास वक्षसि ॥६७॥
श्रुत्वा भृगोः प्रतिज्ञां च विस्मितश्चतुराननः । अतीव दुष्करां घोरां बहुजीवविघातिनीम् ॥६८॥
कर्मणा तद्भवेत्सर्वमिति कृत्वा तु मानसे । उवाच जामदग्न्यं तं परिणामसुखावहम् ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

प्रतिज्ञा दुष्करा वत्स बहुजीवविघातिनी । सृष्टिरेषा भगवतः संभवेदीश्वरेच्छया ॥७०॥
सृष्टिः सृष्टा मया पुत्र क्लेशेनैवेश्वराज्ञया । सृष्टिलुप्तौ प्रतिज्ञा ते दारुणाऽकरुणा परा ॥७१॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छसि मेदिनीम् । एकक्षत्रियदोषेण तज्जातिं हन्तुमिच्छसि ॥७२॥

स्वर से रोदन किया ॥६१॥ करुणानिधान परशुराम ने किसी प्रकार आँसुओं को रोककर पुनः कहना आरम्भ किया—हे जगद्गुरो! मेरी सती माता भी मुझे छोड़कर उन्हीं के साथ चली गयीं ॥६२॥ इस समय मैं अनाथ हूँ, अतः तुम्हीं मेरे पिता, माता एवं गुरु हो। तथा कर्ता, पालन करने वाले एवं दाता हो, मुझ शरणागत की रक्षा करो ॥६३॥ मैं पूजनीय माता की आज्ञा से तुम्हारी सभा में आया हूँ, अतः हे जगन्नाथ! (किसी भी) उपाय से मेरे वैरी का हनन करो ॥६४॥ क्योंकि वही राजा, धर्मात्मा, दयालु, यशस्वी, पूज्य एवं अचललक्ष्मी से सम्पन्न है, जो दीनों का भलीभाँति पालन करे ॥६५॥ जो धनी एवं दीन को समान समझकर पालन नहीं करता है, उसके घर से रुष्ट होकर श्री चली जाती हैं और वह राज्यच्युत हो जाता है ॥६६॥ करुणासागर ब्रह्मा ने उस ब्राह्मण-बालक की बातें सुनकर उसे शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए अपने हृदय से लगा लिया ॥६७॥ परशुराम की उस प्रतिज्ञा को, जो अत्यन्त दुष्कर, भीषण एवं असंख्य जीवों का नाश करने वाली थी, सुनकर चतुरानन आश्चर्य-चकित हो गये ॥६८॥ कर्म से सब कुछ हो सकता है ऐसा अपने मन में विचार कर उन्होंने जामदग्न्य से कहना आरम्भ किया, जो परिणाम में अतिसुखप्रद था ॥६९॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! यह तुम्हारी प्रतिज्ञा बहुत दुष्कर है, इसमें अनेक जीवों की हिंसा होगी। यह सृष्टि भगवान् ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न होती है ॥७०॥ हे पुत्र! ईश्वर की आज्ञावश मैंने इस सृष्टि का बड़े दुःख से सर्जन किया है और तुम्हारी प्रतिज्ञा अति भीषण एवं निर्दयतापूर्ण है इससे सृष्टि ही लुप्त हो जायगी ॥७१॥ इस पृथिवी को इक्कीस बार बिना राजा का करना चाहते हो, एक क्षत्रिय के अपराधवश उसकी जाति ही मिटाना चाहते हो ॥७२॥ भगवान् की की हुई यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के भेद से चार प्रकार की सृष्टि नित्य उत्पन्न

---

१ ख. तद्देहा०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्मक्षत्रियविट्छूद्रैर्नित्या सृष्टिश्चतुर्विधैः। आविर्भूता तिरोभूता हरेरेव पुनः पुनः ॥७३॥
अन्यथा त्वत्प्रतिज्ञा च भविता प्राक्तनेन ते। बह्वायासेन ते कार्यसिद्धिर्भवितुमर्हति[1] ॥७४॥
शिवलोकं गच्छ वत्स शंकरं शरणं व्रज। पृथिव्यां बहवो भूपाः सन्ति शंकरकिंकराः ॥७५॥
विनाऽऽज्ञया महेशस्य को वा तान्हन्तुमीश्वरः। बिभ्रतः कवचं दिव्यं शक्तेर्वै शंकरस्य च ॥७६॥
उपायं कुरु यत्नेन जयबीजं शुभावहम्। उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ॥७७॥
श्रीकृष्णमन्त्रकवचग्रहणं कुरु शंकरात्। दुर्लभं वैष्णवं तेजः शैवं शाक्तं विजेष्यति ॥७८॥
गुरुस्ते जगतां नाथः शिवो जन्मनि जन्मनि। मन्त्रो मत्तो न युक्तस्ते यो युक्तः स भवेद्विधिः ॥७९॥
कर्मणा लभ्यते मन्त्रः कर्मणा लभ्यते गुरुः। स्वयमेवोपतिष्ठन्ते ये येषां तेषु ते ध्रुवम् ॥८०॥
त्रैलोक्यविजयं नाम गृहीत्वा कवचं वरम्। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं भृगो ॥८१॥
दिव्यं पाशुपतं तुभ्यं दाता दास्यति शंकरः। तेन दत्तेन शस्त्रेण[2] क्षत्रसंघं विजेष्यसि ॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भृगोर्ब्रह्मलोकगमने
ब्रह्मोक्तोपायवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

और विनष्ट होती रहती है ॥७३॥ तुम्हारे जन्मान्तरीय संस्कार वश यह प्रतिज्ञा सफल नहीं हो सकती; हाँ, बहुत प्रयत्न करने पर तो कार्य-सिद्धि हो सकती है ॥७४॥ अतः हे वत्स! शिवलोक में शंकर की शरण में जाओ। क्योंकि पृथ्वी पर शंकर के भक्त अनेक राजा हैं, शंकर और दुर्गा का दिव्य कवच धारण करते हुए उन्हें बिना महेश्वर की आज्ञा के कौन मार सकता है? प्रयत्नपूर्वक उपाय करो जो जय का कारण एवं शुभावह हो। क्योंकि सभी उपक्रम उपाय द्वारा ही आरम्भ करने पर सफल होते हैं ॥७५-७७॥ शंकर से भगवान् श्रीकृष्ण का मन्त्र, कवच एवं दुर्लभ वैष्णव तेज प्राप्त करो, जिससे शैव एवं शाक्त तेज पर विजय प्राप्त कर सको ॥७८॥ जगत् के स्वामी शंकर तुम्हारे जन्म-जन्म के गुरु हैं अतः मेरा मंत्र तुम्हारे लिए युक्त नहीं है और जो युक्त है वह उपाय मैंने तुम्हें बता दिया ॥७९॥ क्योंकि कर्म से मन्त्र प्राप्त होता है और कर्म से ही गुरु प्राप्त होते हैं। अतः जो जिनके हैं वे निश्चित ही उनको मिल जाते हैं ॥८०॥ हे भृगो! तुम उनसे त्रैलोक्यविजय नामक श्रेष्ठ कवच प्राप्त करके इक्कीस बार इस पृथिवी को अवश्य भूपरहित कर सकोगे ॥८१॥ दाता शिव तुम्हें अपना पाशुपत दिव्य अस्त्र प्रदन करेंगे और उन्हीं के दिये मंत्र द्वारा तुम क्षत्रिय-समूहों को जीतोगे ॥८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में भृगु का ब्रह्मलोक-गमन तथा ब्रह्मोक्त उपाय वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

१क. ०र्भवतु शाश्वती। २ख. मन्त्रेण।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः।

नारायण उवाच

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रणम्य च जगद्गुरुम् । स्फीतस्तस्माद्वरं प्राप्य शिवलोकं जगाम सः ॥१॥
लक्षयोजनमूर्ध्वं च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम् । अनिर्वाच्यसुशोभाढ्यं वाय्वाधारं मनोहरम् ॥२॥
वैकुण्ठं दक्षिणे यस्य गौरीलोकश्च वामतः । यदधो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकात्परः स्मृतः ॥३॥
तेषामूर्ध्वं च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः । अत ऊर्ध्वं न लोकश्च सर्वोपरि च स स्मृतः ॥४॥
मनोयायी स योगीन्द्रः शिवलोकं ददर्श ह । उपमानोपमेयाभ्यां रहितं महदद्भुतम् ॥५॥
योगीन्द्राणां वरेण्यैश्च सिद्धविद्याविशारदैः । कोटिकल्पतपःपूतैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम् ॥६॥
वेष्टितं कल्पवृक्षाणां समूहैर्वाञ्छितप्रदैः । समूहैः कामधेनूनामसंख्यानां विराजितम् ॥७॥
पारिजाततरूणां च वनराजिविराजितम् । मधुलुब्धमधूम्राणां मधुरध्वनिमोहितम् ॥८॥
नवपल्लवसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम् । योगेन योगिनां सृष्टं स्वेच्छया शंकरेण च ॥९॥
शिल्पिनां गुरुणा स्वप्ने न दृष्टं विश्वकर्मणा । जन्तुभिर्वेष्टितं ब्रह्मन्योगदुष्टैर्निरामयैः ॥१०॥
सरोवरशतैर्दिव्यैः पद्मराजीविराजितैः । पुष्पोद्यानायुतैर्युक्तं सदा चातिसुशोभितम् ॥११॥
मणीन्द्रसाररचितैः शोभितैर्मणिवेदिभिः । राजमार्गशतैर्दिव्यैः[1] सर्वतः परिभूषितम् ॥१२॥

अध्याय २९

नारायण बोले—ब्रह्मा की बातें सुनकर उन्होंने जगद्गुरु (ब्रह्मा) को नमस्कार किया और उनसे वरदान प्राप्त कर उत्साहपूर्वक शिवलोक को प्रस्थान किया ॥१॥ जो ब्रह्मलोक से एक लाख योजन ऊपर और ब्रह्मलोक से विलक्षण, अकथनीय शोभा से विभूषित, वायु का आधार एवं मनोहर है ॥२॥ उसके दक्षिण में वैकुण्ठ, बायें गौरी-लोक, नीचे ध्रुवलोक और स्वयं समस्त लोकों से परे है ॥३॥ इन सभी लोकों के ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर गोलोक है। उसके ऊपर कोई लोक नहीं है, सबसे ऊपर वही है, ऐसा बताया गया है ॥४॥ मन के समान वेग से चलने वाले योगिराज परशुराम ने वहाँ पहुँच कर शिवलोक देखा, जो उपमान, उपमेय से रहित, महान् अद्भुत, उत्तम योगिराज एवं सिद्धविद्यानिपुण तथा करोड़ों कल्पों तक तप करके पवित्र होने वाले पुण्यात्माओं से सुसेवित था ॥५-६॥ मनोरथ सिद्ध करने वाले कल्पवृक्षों के समूह से घिरा, असंख्य काम-धेनुओं के समूह से सुशोभित, पारिजात वृक्षों की वन-पंक्तियों से विभूषित, मधु के लोभी भ्रमरों की मधुर ध्वनि से मोहित, नये पल्लवों से युक्त, नर कोयलों की कूक से ध्वनित और योगियों के योग से तथा शंकर की स्वेच्छा से निर्मित था। ऐसा निर्माण शिल्पियों के गुरु विश्वकर्मा ने स्वप्न में भी नहीं देखा था। ब्रह्मन्! शिवलोक योगदुष्ट स्वस्थ जन्तुओं से घिरा हुआ था ॥७-१०॥ कमलपंक्तियों से शोभित सैकड़ों दिव्य सरोवरों एवं पुष्पों की वाटिकाओं से सदा युक्त होने के नाते अति सुशोभित था ॥११॥ उत्तम मणियों के सारभाग की सुरचित वेदियों से अलंकृत, सैकड़ों दिव्य राजमार्ग (सड़कों) से चारों ओर सुभूषित और उत्तम मणियों के सारभाग से सुनिर्मित सैकड़ों गृहों से युक्त

१क. ०व्यैरभ्यन्तरविभू०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मणीन्द्रसारनिर्माणशतकोटिगृहैर्युतम् । नानाचित्रविचित्राढ्यैर्मणीन्द्रकलशोज्ज्वलैः ॥१३॥
तन्मध्यदेशे रम्ये च ददर्श शंकरालयम् । मणीन्द्रसाररचितप्राकारं सुमनोहरम् ॥१४॥
अत्यूर्ध्वमम्बरस्पर्शि क्षीरनीरनिभं परम् । षोडशद्वारसंयुक्तं शोभितं शतमन्दिरैः ॥१५॥
अमूल्यरत्नरचितै रत्नसोपानभूषितैः । रत्नस्तम्भकपाटैश्च हीरकेण परिष्कृतैः ॥१६॥
माणिक्यजालमालाभिः सद्रत्नकलशोज्ज्वलैः । [1]नानाविचित्रचित्रेण चित्रितैः सुमनोहरैः ॥१७॥
आलयस्य पुरस्तत्र सिंहद्वारं ददर्श सः । रत्नेन्द्रसारखचितकपाटैश्च विराजितम् ॥१८॥
शोभितं वेदिकाभिश्च बाह्याभ्यन्तरतः सदा । रचिताभिः पद्मरागैर्महामरकतैर्गृहम् ॥१९॥
नानाप्रकारचित्रेण चित्रितं सुमनोहरम् । करालरूपावद्राक्षीद्द्वारपालौ भयंकरौ ॥२०॥
महाकरालदन्तास्यौ विकृतौ रक्तलोचनौ । दग्धशैलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ ॥२१॥
विभूतिभूषिताङ्गौ च व्याघ्रचर्माम्बरौ वरौ । पिङ्गलाक्षौ विशालाक्षौ जटिलौ च त्रिलोचनौ ॥२२॥
त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलन्तौ ब्रह्मतेजसा । तौ दृष्ट्वा मनसा भीतस्त्रस्तः किंचिदुवाच ह ॥२३॥
विनयेन विनीतश्च दुर्विनीतौ महाबलौ । आत्मनः सर्ववृत्तान्तं कथयामास तत्पुरः ॥२४॥
विप्रस्य वचनं श्रुत्वा कृपायुक्तौ बभूवतुः । गृहीत्वाऽऽज्ञां चरद्वारा शंकरस्य महात्मनः ॥२५॥

था, जो उत्तम मणियों के बने अनेक भाँति के चित्र-विचित्र कलशों से समुज्ज्वल दिखायी देते थे ॥१२-१३॥ उनके रम्य मध्य भाग में शंकर जी का गृह देखा, जो मणीन्द्र के सारभाग से रचित परकोटों से अतिमनोहर था ॥१४॥ अत्यन्त ऊँचा, गगनस्पर्शी, क्षीर-नीर के समान उत्तम वर्ण, सोलह दरवाजों से युक्त एवं सैकड़ों गृहों से सुशोभित था ॥१५॥ जो गृह अमूल्य रत्नों की बनी (सीढ़ियों) से विभूषित, हीरा जड़े हुए रत्नों के स्तम्भों और किवाड़ों से युक्त थे ॥१६॥ माणिक्य के जालरूपी मालाओं, उत्तम रत्न के समुज्ज्वल कलशों एवं अनेक भाँति के चित्र-विचित्र तथा अति मनोहर चित्रकारियों से सुशोभित थे ॥१७॥ महल के सामने उन्होंने सिंहद्वार देखा, जो उत्तम रत्नों के सार-भाग से खचित कपाटों (किवाड़ों) से विराजमान था। फिर गृह देखा, जो बाहर-भीतर सदा पद्मराग और महा-मरकत की बनी वेदियों से अलंकृत अनेक भाँति के चित्र-विचित्र तथा अति मनोहर चित्रों से चित्रित था। वहाँ भयंकर विकरालरूप वाले दो द्वारपालों को देखा, जिनके दाँत और मुख, महाभयंकर थे; लाल-लाल विकृत आँखे थीं; वे जले हुए पर्वत के समान थे; महान् बली और पराक्रमी थे; सर्वांग में विभूति (राख) लगाये, उत्तम बाघम्बर ओढ़े, पिंगल-विशाल नेत्र, जटा रखाये, त्रिनेत्र एवं त्रिशूल और पट्टिश (अस्त्र) लिए ब्रह्मतेज से प्रज्वलित थे। उन्हें देखकर भृगु मन में डर गये, किन्तु त्रस्त होते हुए भी कुछ बोले ॥१८-२३॥ विनयविनम्र होकर उन्होंने उन दुर्विनीत एवं महाबलवान् द्वारपालों के सामने अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥२४॥ विप्र की बातें सुनकर उन दोनों को दया आ गयी, अतः महात्मा शंकर की आज्ञा लेकर उन दोनों ने उन्हें भीतर जाने की

१क. ०मालावि० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्रवेष्टुमाज्ञां ददतुरीश्वरानुचरौ वरौ। भृगुस्तदाज्ञामादाय प्रविवेश हरिं स्मरन् ॥२६॥
प्रत्येकं षोडश द्वारो ददर्श सुमनोहराः। द्वारपालैर्नियुक्ताश्च नानाचित्रविचित्रिताः ॥२७॥
दृष्ट्वा तां महदाश्चर्यादिपश्यच्छूलिनः सभाम्। नानासिद्धगणाकीर्णां महर्षिगणसेविताम् ॥२८॥
पारिजातसुगन्धाढ्यवायुना सुरभीकृताम्। ददर्श तत्र देवेशं शंकरं चन्द्रशेखरम् ॥२९॥
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम्। विभूतिभूषिताङ्गं तं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ॥३०॥
महाशिवं शिवकरं शिवबीजं शिवाश्रयम्। आत्मारामं पूर्णकामं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥३१॥
ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। शश्वज्ज्योतिः स्वरूपं च लोकानुग्रहविग्रहम् ॥३२॥
धृतवन्तं जटाजालं दक्षकन्या समन्वितम्। तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम् ॥३३॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्। गुह्यं ब्रह्म प्रवोचन्तं शिष्येभ्यस्तत्त्वमुद्रया ॥३४॥
स्तूयमानं च योगीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः परिसेवितम्। पार्षदप्रवरैः शश्वत्सेवितं श्वेतचामरैः ॥३५॥
ज्योतीरूपं च सर्वाद्यं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्। ध्यायन्तं परमानन्दं पुलकाञ्चितविग्रहम् ॥३६॥
सुस्वरं साश्रुनेत्रंतमुद्गायन्तं गुणार्णवम्। भूतेन्द्रैर्वै रुद्रगणैः क्षेत्रपालैश्च वेष्टितम् ॥३७॥

आज्ञा प्रदान की। भृगु ने आज्ञा पाने पर भगवान् का स्मरण करते हुए भीतर प्रवेश किया ॥२५-२६॥ इसी भाँति सोलह दरवाजों को उन्होंने देखा जो अति मनोहर थे एवं जहाँ अनेक भाँति के चित्र-विचित्र द्वारपाल नियुक्त थे ॥२७॥ उन्हें देखते हुए उन्होंने शिव की सभा को देखा, जो अनेक भाँति के सिद्ध-गणों से आच्छन्न, महर्षिगणों से सुसेवित एवं पारिजात की अति सुगन्धित वायु से सुगन्धपूर्ण थी। वहाँ देवाधीश चन्द्रशेखर शिव को देखा, जो त्रिशूल, पट्टिश लिए, सुन्दर बाघम्बर ओढ़े, सर्वांग में विभूति रमाये, नाग का यज्ञोपवीत पहने, रत्न सिंहासन पर सुखासीन एवं रत्नों के भूषणों से विभूषित थे ॥२८-३०॥ वे कल्याणकारी, कल्याण के बीज, कल्याण के आश्रय, आत्माराम, पूर्णकाम, करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाले, मन्दहास वाले, प्रसन्नमुख, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, निरन्तर ज्योतिःस्वरूप, लोककल्याणार्थ शरीरधारी, जटा-जूट धारण किये, गौरी से युक्त, तप का फल और समस्त सम्पत्ति के प्रदाता, शुद्ध स्फटिक के समान वर्ण वाले, पाँच मुख और तीन नेत्र वाले एवं शिष्यों को तत्त्व मुद्रा गुह्य ब्रह्म का उपदेश करने वाले, योगीन्द्रों से स्तुत, सिद्धेन्द्रों से चारों ओर से सेवित, श्रेष्ठ पार्षदों द्वारा निरन्तर श्वेतचामर से सुसेवित, ज्योतिरूप एवं परमानन्द भगवान् श्रीकृष्ण का, जो सर्वादि और प्रकृति से परे हैं, ध्यान करने वाले महाशिव विभोर होकर सर्वांग में पुलकायमान हो रहे थे। एवं उत्तम स्वर से गुण-सागर भगवान् का भजन करते हुए प्रेम का आँसू बहा रहे थे। तथा भूतगण, रुद्रगण एवं क्षेत्रपालों से आवे-

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मूर्ध्ना ननाम परशुरामो दृष्ट्वा तमादरात्। तद्वामे कार्तिकेयं च दक्षिणे च गणेश्वरम् ॥३८॥
नन्दीश्वरं महाकालं वीरभद्रं च तत्पुरः। अङ्के ददर्श कान्तां तां गौरीं शैलेन्द्रकन्यकाम् ॥३९॥
ननाम सर्वान्मूर्ध्ना च भक्त्या च परया मुदा। दृष्ट्वा हरं परं तोषात्स्तोतुं समुपचक्रमे ॥४०॥
सगद्गदपदं दीनः साश्रुनेत्रोऽतिकातरः। कृताञ्जलिपुटः शान्तः शोकार्तः शोकनाशनम् ॥४१॥

परशुराम उवाच

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि सर्वथा स्तोतुमक्षमः। [1]अक्षराक्षयबीजं च किंवा स्तौमि निरीहकम् ॥४२॥
न योजनां कर्तुमीशो देवेशं स्तौमि मूढधीः। [2]वेदा न शक्ता यं स्तोतुं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥४३॥
वाग्बुद्धिमनसां दूरं सारात्सारं[3] परात्परम्। [3]ज्ञानमात्रेण साध्यं च सिद्धं सिद्धैर्निषेवितम् ॥४४॥
यमाकाशमिवाऽद्यन्तमध्यहीनं तथाऽव्ययम्। विश्वतन्त्रमतन्त्रं च स्वतन्त्रं तन्त्रबीजकम् ॥४५॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यमतिसाध्यं कृपानिधिम्। त्राहि मां करुणासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम् ॥४६॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। स्वप्नेऽप्यदृष्टं भक्तैश्चाधुना पश्यामि चक्षुषा ॥४७॥
शक्रादयः सुरगणाः कलया यस्य संभवाः। चराचराः कलांशेन तं नमामि महेश्वरम् ॥४८॥

ष्ठित थे ॥३१-३७॥ अनन्तर परशुराम ने सादर उन्हें प्रणाम किया उनके बाँयें भाग में कार्तिकेय, दाहिने गणेश्वर, नन्दीश्वर, महाकाल एवं वीरभद्र को उनके सामने बैठे हुए देखा। उनके अंक में उनकी पत्नी शैलराज पुत्री गौरी बैठी थीं। उन्होंने उन सबकों भक्तिपूर्वक बड़ी प्रसन्नता से शिर से प्रणाम किया और शिव को देखकर अति सन्तुष्ट होकर उनकी स्तुति करना आरम्भ किया। दीन, आँखों में आँसू भरे एवं अतिकातर राम हाथ जोड़कर शान्त भाव से शोकनाशन शिव का गद्गद्वाणी द्वारा गुणगान करने लगे ॥३८-४१॥

परशुराम बोले—हे ईश! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, किन्तु स्तुति करने में असमर्थ हूँ। तथा अक्षर (अविनाशी), अक्षयबीज और निरीह (इच्छारहित) की स्तुति ही क्या करूँ ॥४२॥ मैं उसकी योजना भी नहीं कर सकता ऐसा मूढ़बुद्धि मैं देवाधीश्वर की स्तुति करता हूँ। जिसकी स्तुति वेद नहीं कर सकते, तो अन्य कौन तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ हो सकता है ॥४३॥ तुम वाणी, बुद्धि और मन से अति दूर, सारभाग के भी सारभाग, परे से परे, केवल ज्ञानमात्र से साध्य होने वाले, सिद्ध और सिद्धों से सुसेवित हो ॥४४॥ आकाश की भाँति आदि, मध्य और अन्त से रहित हो, अविनाशी हो, विश्व के तन्त्र, तन्त्रसे दूर, स्वतन्त्र, तन्त्र के बीज, ध्यान से असाध्य, दुराराध्य अतिसाध्य और कृपानिधान हो, अतः हे करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो! मैं अतिदीन हूँ, मेरी रक्षा करो ॥४५-४६॥ आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन सुजीवन हुआ, क्योंकि भक्तगण जिसे स्वप्न में भी नहीं देख पाते हैं, मैं उन्हें इस समय अपनी आँखों देख रहा हूँ ॥४७॥ इन्द्र आदि देवगण जिसकी कला से उत्पन्न हैं और चर-अचर जगत् जिसके कलांश से, उस महेश्वर को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥४८॥ जो स्त्रीरूप, नपुंसकरूप एवं पौरुष धारण

---

१ क. °क्षरक्षरबी°। २ क. देवा। ३ क. °नबुद्ध्यवसा°।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्त्रीरूपं क्लीबरूपं च पौरुषं च बिभर्ति यः। सर्वाधारं सर्वरूपं तं नमामि महेश्वरम् ॥४९॥
यं भास्करस्वरूपं च शशिरूपं हुताशनम्। जलरूपं वायुरूपं तं नमामि महेश्वरम् ॥५०॥
अनन्तविश्वसृष्टीनां संहर्तारं भयंकरम्। क्षणेन लीलामात्रेण तं नमामि महेश्वरम् ॥५१॥
इत्येवमुक्त्वा स भृगुः पपात चरणाम्बुजे। आशिषं च ददौ तस्मै सुप्रसन्नो बभूव सः ॥५२॥
जामदग्न्यकृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥५३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामस्य कैलाशगमनं
नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः।

शंकर उवाच

कस्त्वं बटो कस्य पुत्रः क्व वासः स्तवनं कथम्। किं वा तेऽहं करिष्यामि वाञ्छितं वद साम्प्रतम् ॥१॥

पार्वत्युवाच

शोकाकुलं त्वां पश्यामि विमनस्कं सुविस्मितम्। वयसाऽतिशिशुं [1]शान्तं गुणेन गुणिनां वरम् ॥२॥

करता है तथा सबका आधार और सर्वरूप है, उस महेश्वर को मैं नमस्कार कर रहा हूँ॥४९॥ जो भास्कर-स्वरूप, चन्द्ररूप, अग्निरूप, जलरूप और वायुरूप है उस महेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥५०॥ अनन्त विश्व-सृष्टि का लीला की भाँति क्षणमात्र में संहार करने वाले, भीषण महेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥५१॥ इतना कहकर भृगु उनके चरण-कमल पर गिर पड़े। उन्होंने सुप्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया ॥५२॥ जामदग्न्य-रचित इस स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह समस्त पाप से मुक्त होकर शिवलोक को जाता है ॥५३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम का कैलाशगमनवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२९॥

अध्याय ३०

शंकर बोले—हे बच्चे! तुम कौन हो, किसके पुत्र हो, कहाँ घर है, (हमारी) स्तुति क्यों कर रहे हो। बताओ, तुम्हारी क्या अभिलाषा है? ॥१॥

पार्वती बोलीं—मैं तुम्हें शोकव्याकुल, उदासीन और अति विस्मित देखती हूँ। तुम्हारी अवस्था छोटे बच्चे की है, किन्तु तुम शान्त एवं गुण से गुणवानों में श्रेष्ठ हो ॥२॥

---

१ क. दान्तं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

भृगुरुवाच

जमदग्निसुतोऽहं च भृगुवंशसमुद्भवः । रेणुकाऽम्बा मे परशुरामोऽहं नामतः प्रभो ॥३॥
क्रीणीहि मां दयासिन्धो विद्यापण्येन किंकरम् । त्वामीश शरणापन्नं रक्ष मां दीनवत्सल ॥४॥
मृगयामागतं भूपं पिता मे चोपवासिनम् । चकाराऽऽतिथ्यमानीय कपिलादत्तवस्तुभिः ॥५॥
राजा तं कपिला लोभाद्घातयामास मन्दधीः । कपिला तं मृतं दृष्ट्वा गोलोकं च जगाम सा ॥६॥
माताऽनुगमनं चक्रे ह्यनाथोऽहं च सांप्रतम् । त्वं मे पिता शिवा माता रक्ष मां पुत्रवत्प्रभो ॥७॥
मया कृता प्रतिज्ञा च शोकेनैवातिदुष्करा । त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति ॥८॥
कार्तवीर्यं हनिष्यामि समरे तातघातकम् । इत्येतत्परिपूर्णं मे भगवान्कर्तुमर्हति ॥९॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः । बभूवाऽऽनम्रवक्त्रश्च सा च शुष्कौष्ठतालुका ॥१०॥

पार्वत्युवाच

तपस्विन्विप्रपुत्र क्षमां निर्भूपां कर्तुमिच्छसि । त्रिःसप्तकृत्वः कोपेन साहसस्ते महान्बटो ॥११॥
हन्तुमिच्छसि निःशस्त्रः सहस्रार्जुनमीश्वरम् । भ्रूभङ्गलीलया यस्य रावणस्य पराजयः ॥१२॥
तस्मै प्रदत्तं दत्तेन श्रीहरेः कवचं बटो । शक्तिरव्यर्थरूपा च यया ते हिंसितः पिता ॥१३॥
हरेर्मन्त्रं संस्तवनं ध्यायते च दिवानिशम् । को वा शक्नोति तं हन्तुं न पश्यामीह भूतले ॥१४॥

भृगु बोले—हे प्रभो ! मैं जमदग्नि का पुत्र एवं भृगु वंश में उत्पन्न हूँ। रेणुका मेरी माता हैं और परशुराम मेरा नाम है ॥३॥ हे दयासिन्धो ! मुझे विद्या प्रदान करके आप अपने सेवक बना लें। हे ईश! हे दीनवत्सल ! मैं आपकी शरण में हूँ, मेरी रक्षा कीजिये ॥४॥ मृगया (शिकार) खेलने के लिए आये हुए राजा को भूखा देखकर मेरे पिता ने कपिला की दी हुई वस्तु से उसका आतिथ्य-सत्कार किया ॥५॥ अनन्तर उस मूर्ख राजा ने कपिला के लिए लालायित होकर मेरे पिता को मार डाला। कपिला उन्हें मृतक देखकर गोलोक चली गयी ॥६॥ माता भी पिता के साथ चली गयी, इस समय मैं अनाथ हूँ। अतः हे प्रभो ! तुम पिता हो और शिवा माता हैं, पुत्र की भाँति मेरी रक्षा करो ॥७॥ मैंने शोकाकुल होकर अति दुष्कर प्रतिज्ञा की है कि—एक्कीस बार इस पृथ्वी को मैं राजाओं से शून्य कर दूँगा और युद्ध में उस कार्तवीर्य्य को नष्ट कर दूँगा, जिसने मेरे पिता का हनन किया है ॥७॥ इस प्रतिज्ञा को भगवान् पूरा करा दें ॥८-९॥ ब्राह्मण की बात सुनकर शिव ने दुर्गा के मुख की ओर देखा और नीचे मुख कर लिया। पार्वती के भी ओंठ और तालू सूख गए ॥१०॥

पार्वती बोलीं—हे तपस्विन् ! ब्राह्मण के पुत्र तुम कोप से इक्कीस बार पृथ्वी को राजा से शून्य करना चाहते हो। हे बटुक ! यह तुम्हारा बहुत बड़ा साहस है। अधीश्वर सहस्रार्जुन को निःशस्त्र होकर मारना चाहते हो, जिसके भौंह टेढ़ी करने पर रावण का पराजय हो गया था ॥११-१२॥ हे बटुक ! दत्तात्रेय ने उसे भगवान् का कवच प्रदान किया है और वह शक्ति कभी भी व्यर्थ नहीं होती है, जिससे उसने तुम्हारे पिता को मारा है ॥१३॥ जो रात-दिन भगवान के मंत्र का जाप और उनकी स्तुति का पाठ करता है, उसे भूतल पर कौन मार

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अये विप्र गृहं गच्छ किं करिष्यति शंकरः। अन्ये भूपाश्च मद्भृत्याः का भीस्तेषां मयि स्थिते ॥१५॥

भद्रकाल्युवाच

अये विप्रबटो जाल्म निर्भूपां कर्तुमिच्छसि। यथा हि वामनश्चन्द्रं करेणाऽहर्तुमिच्छति ॥१६॥
कृतयज्ञान्महापुण्यान्महाबलपराक्रमान्। दिगम्बरसहायेन मद्भृत्यान्हन्तुमिच्छसि ॥१७॥
स तयोर्वचनं श्रुत्वा रुरोदोच्चैश्च शोकतः। सहसा पुरतस्तेषां प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः ॥१८॥
विप्रस्य रोदनं श्रुत्वा शंकरः करुणानिधिः। पश्यन्दुर्गां च कालीं च ज्ञात्वाऽऽशयमथो विभुः ॥१९॥
तयोरनुमतिं प्राप्य सर्वेशो भक्तवत्सलः। जमदग्निसुतं सद्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२०॥

शंकर उवाच

अद्यप्रभृति हे वत्स त्वं मे पुत्रसमो महान्। दास्यामि मन्त्रं गुह्यं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२१॥
एवंभूतं च कवचं दास्यामि परमाद्भुतम्। लीलया मत्प्रसादेन कार्तवीर्यं हनिष्यसि ॥२२॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं द्विज। जगत्ते यशसा पूर्णं भविष्यति न संशयः ॥२३॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ मन्त्रं सुदुर्लभम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥२४॥
स्तवं पूजाविधानं च पुरश्चरणपूर्वकम्। मन्त्रसिद्धेरनुष्ठानं यथावन्नियमक्रमम् ॥२५॥
सिद्धिस्थानं कालसंख्यां कथयामास नारद। वेदवेदाङ्गादिकं च पाठयामास तत्क्षणम् ॥२६॥

सकता है ? मैं (ऐसे व्यक्ति को) नहीं देखती हूँ ॥१४॥ हे विप्र ! अतः तुम घर चले जाओ। (इसमें) शंकर क्या कर सकेंगे ? अन्य राजा लोग मेरे सेवक हैं, मेरे रहते उन्हें क्या भय है ? ॥१५॥

भद्रकाली बोलीं—हे ब्राह्मणबटुक ! तुम मूर्ख हो, जो पृथ्वी को राजशून्य करना चाहते हो। यह तो वैसा ही है जैसे कोई बौना हाथ से चन्द्रमा को पकड़ना चाहता हो ॥१६॥ क्या तुम अनेक यज्ञों को सुसम्पन्न करने वाले, महापुण्यात्मा एवं महापराक्रमी मेरे सेवकों को शिव की सहायता से मारना चाहते हो ? ॥१७॥ परशुराम ने उन दोनों की बातें सुनकर शोकव्याकुल होकर अति ऊँचे स्वर से रोदन किया और उन लोगों के सामने ही सहसा प्राण त्याग देने को तैयार हो गये ॥१८॥ ब्राह्मण का रोदन सुनकर विभु एवं करुणानिधान शिव ने काली और दुर्गा की ओर देखा और उनका आशय जानकर दोनों की अनुमति से सर्वेश्वर एवं भक्तवत्सल शिव ने परशुराम से तुरन्त कहना आरम्भ किया ॥१९-२०॥

शंकर बोले—हे वत्स ! आज से तुम मेरे महान् पुत्र के समान हो गये। मैं तुम्हें तीनों लोकों में दुर्लभ गुप्त मन्त्र दूँगा ॥२१॥ और उसी भाँति परम अद्भुत कवच भी दूँगा मेरे प्रसाद से तुम लीला की भाँति कार्तवीर्य्य का हनन कर सकोगे ॥२२॥ हे द्विज ! पृथ्वी को इक्कीस बार निर्भूप करोगे, जिससे संसार में तुम्हारा यश पूर्णरूप से फैलेगा, इसमें संशय नहीं। इतना कहकर शिव ने उन्हें अति दुर्लभ मंत्र, त्रैलोक्यविजय नामक परम अद्भुत कवच, स्तोत्र, पूजाविधान, पुरश्चरणपूर्वक मंत्रसिद्धि का अनुष्ठान और यथोचित नियम-क्रम भी बताया ॥२३-२५॥ हे नारद ! सिद्धि-स्थान और समय बताते हुए उन्होंने उसी क्षण समस्त वेद, वेदांग आदि पढ़ा दिये ॥२६॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नागपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रं च सुदुर्लभम् । नारायणास्त्रमाग्नेयं वायव्यं वारुणं तथा ॥२७॥
गान्धर्वं गारुडं चैव जृम्भणास्त्रं तथैव च। गदां शक्तिं च परशुं शूलमव्यर्थमुत्तमम् ॥२८॥
नानाप्रकारशस्त्रास्त्रं मन्त्रं च विधिपूर्वकम्। शस्त्रास्त्राणां च संहारं तूणी चाक्षयसायकौ ॥२९॥
आत्मरक्षणसंधानं संग्रामविजयक्रमम् । मायायुद्धं च विविधं हुंकारं मन्त्रपूर्वकम् ॥३०॥
रक्षणं च स्वसैन्यानां परसैन्यविमर्दनम्। नानाप्रकारमतुलमुपायं [1]रणसंकटे ॥
संहारे मोहिनीं विद्यां ददौ मृत्युहरां हरः ॥३१॥
स्थित्वा चिरं गुरोर्वासे सर्वविद्यां विबोध्य सः। तीर्थे कृत्वा मन्त्रसिद्धिं तांश्च नत्वा जगाम सः ॥३२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० परशुरामस्य शिवदत्तास्त्रशस्त्रादिप्राप्तिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कं मन्त्रं भगवान्हरः। कृपया परशुरामाय किं स्तोत्रं कवचं ददौ ॥१॥
को वाऽस्य मन्त्रस्याऽऽराध्यः किं फलं कवचस्य च। स्तवनस्य फलं किं वा तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥२॥

नागपाश, पाशुपत, अतिदुर्लभ ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, आग्नेय, वायव्य,वारुण, गान्धर्व, गारुड़, जृम्भणास्त्र, गदा, शक्ति, परशु, और व्यर्थ न होने वाला शूल प्रदान किया ॥२७-२८॥ विधान समेत अनेक भाँति के शस्त्रास्त्र, मंत्र, शस्त्रास्त्रों की संहार-क्रिया, तरकस, अविनाशी बाण, अपनी रक्षा का उपाय, संग्राम में विजय करने का क्रम, विविध भाँति का माया-युद्ध, मंत्रपूर्वक हुंकार, अपने सैनिकों की रक्षा और शत्रु-सेना का नाश, रण में संकट उपस्थित होने पर अनेक भाँति के अनुपम उपाय, संहार में मृत्युनाशिनी मोहिनी विद्या भी प्रदान की ॥२९-३१॥ गुरु के यहाँ चिरकाल तक रहकर, समस्त विद्याओं को सीख कर और तीर्थ में मन्त्रसिद्धि करने के उपरांत उन सबको नमस्कार करके परशुराम चले गये ॥३२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम को शिव द्वारा अस्त्र-शस्त्रादि की प्राप्ति का वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

अध्याय ३१

नारद बोले—हे भगवन्! भगवान् हर ने कृपया परशुराम को कौन मन्त्र, कौन स्तोत्र और कौन कवच प्रदान किया, उस मन्त्र का आराध्य देव कौन है, कवच का क्या फल है और उस स्तोत्र का क्या फल है? मुझे सुनने की इच्छा है, आप बताएँ ॥१-२॥

१क. प्राणं०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

एकत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

मन्त्राराध्यो हि भगवान्परिपूर्णतमः स्वयम्। गोलोकनाथः श्रीकृष्णो गोपगोपीश्वरः प्रभुः ॥३॥
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्। स्तवराजं महापुण्यं भूतियोगसमुद्भवम् ॥४॥
मन्त्रकल्पतरुं नाम सर्वकामफलप्रदम्। ददौ परशुरामाय रत्नपर्वतसंनिधौ ॥५॥
स्वयंप्रभानदीतीरे पारिजातवनान्तरे। आश्रमे देवलोकस्य माधवस्य च संनिधौ ॥६॥

महादेव उवाच

वत्साऽऽगच्छ महाभाग भृगुवंशसमुद्भव। पुत्राधिकोऽसि प्रेम्णा मे कवचग्रहणं कुरु ॥७॥
शृणु राम प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डे परमाद्भुतम्। त्रैलोक्यविजयं नाम श्रीकृष्णस्य जयावहम् ॥८॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके राधिकाश्रमे। रासमण्डलमध्ये च मह्यं वृन्दावने वने ॥९॥
अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। पुण्यात्पुण्यतरं चैव परं स्नेहाद्ददामि ते ॥१०॥
यद्धृत्वा पठनाद्देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। शुम्भं निशुम्भं महिषं रक्तबीजं जघान ह ॥११॥
यद्धृत्वाऽहं च जगतां संहर्ता सर्वतत्त्ववित्। अवध्यं त्रिपुरं पूर्वं दुरन्तमपि लीलया ॥१२॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा ससृजे सृष्टिमुत्तमाम्। यद्धृत्वा भगवाञ्छेषो बिभर्त्ति विश्वमेव च ॥१३॥
यद्धृत्वा कूर्मराजश्च शेषं धत्ते हि लीलया। यद्धृत्वा भगवान्वायुर्विश्वाधारो विभुः स्वयम् ॥१४॥

नारायण बोले—परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण, जो गोलोक के स्वामी, गोप-गोपियों के ईश्वर एवं प्रभु हैं, स्वयं इसके देवता हैं ॥३॥ परम अद्भुत त्रैलोक्य विजय नामक कवच, ऐश्वर्य योग से उत्पन्न महापुण्य स्तवराज, और कल्पतरु नामक मंत्र, जो समस्त कामनाओं का फल प्रदान करता है, उन्होंने सुमेरु पर्वत के समीप स्वयंप्रभा नदी के किनारे पारिजात वन के बीच देवलोक के आश्रम में माधव के समीप परशुराम को प्रदान किया था ॥४-६॥

शंकर बोले—हे वत्स! हे भृगु-वंश में उत्पन्न महाभाग! आओ, यह कवच ग्रहण करो। प्रेमतः तुम मेरे पुत्र से भी अधिक प्रिय हो ॥७॥ हे राम! मैं तुम्हें भगवान् श्रीकृष्ण का त्रैलोक्यविजय नामक कवच बता रहा हूँ, जो समस्त ब्रह्माण्ड में परम अद्भुत एवं विजयप्रद है, सुनो। पूर्व समय में भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक में राधिकाश्रम के रासमण्डल के मध्य वृन्दावन नामक वन में मुझे यह प्रदान किया था। यह अति गुह्यतर, तत्त्वरूप, सम्पूर्ण मंत्र-समूह का शरीर एवं पुण्य से पुण्यतर है; परम स्नेह के नाते मैं तुम्हें बता रहा हूँ ॥८-१०॥ इसके धारण और पाठ करने से ईश्वरी मूल प्रकृति देवी ने शुम्भ, निशुम्भ, महिषासुर एवं रक्तबीज का वध किया था ॥११॥ इसके धारण करने से मैं समस्त तत्त्वों का वेत्ता एवं समस्त जगत् का संहर्ता हुआ हूँ। और मैंने दुर्द्धर्ष त्रिपुरासुर का इसीसे से अनायास वध किया था ॥१२॥ इसके धारण और पाठ करने से ब्रह्मा ने उत्तम सृष्टि की रचना की तथा इसके धारण करने से भगवान् शेष समस्त विश्व का धारण करते हैं ॥१३॥ इसके धारण करने से कच्छपराज लीला पूर्वक शेष को धारण करते हैं। इसे धारण कर वायु समस्त विश्व

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यद्धृत्वा वरुणः सिद्धः कुबेरश्च धनेश्वरः । यद्धृत्वा पठनादिन्द्रो देवानामधिपः स्वयम् ॥१५॥
यद्धृत्वा भाति भुवने तेजोराशिः स्वयं रविः । यद्धृत्वा पठनाच्चन्द्रो महाबलपराक्रमः ॥१६॥
अगस्त्यः सागरान्सप्त यद्धृत्वा पठनात्पपौ । चकार तेजसा जीर्णं दैत्यं वातापिसंज्ञकम् ॥१७॥
यद्धृत्वा पठनाद्देवी सर्वाधारा वसुंधरा । यद्धृत्वा पठनात्पूता गङ्गा भुवनपावनी ॥१८॥
यद्धृत्वा जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां वरः । सर्वविद्याधिदेवी सा यच्च धृत्वा सरस्वती ॥१९॥
यद्धृत्वा जगतां लक्ष्मीरत्नदात्री परात्परा । यद्धृत्वा पठनाद्देदान्सावित्री सा सुषाव च ॥२०॥
वेदाश्च धर्मवक्तारो यद्धृत्वा पठनाद्भृगो । यद्धृत्वा पठनाच्छुद्धस्तेजस्वी हव्यवाहनः ॥
सनत्कुमारो भगवान्यद्धृत्वा ज्ञानिनां वरः । ॥२१॥
दातव्यं कृष्णभक्ताय साधवे च महात्मने । शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥२२॥
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो रासेश्वरः स्वयम् ॥२३॥
त्रैलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः । परात्परं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२४॥
प्रणवो मे शिरः पातु श्रीकृष्णाय नमः सदा । पायात्कपालं कृष्णाय स्वाहा पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥२५॥
कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्ण स्वाहेति तारकम् । हरये नम इत्येवं भ्रूलतां पातु मे सदा ॥२६॥
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु संततम् । गोपालाय नमो गण्डौ पातु मे सर्वतः सदा ॥२७॥

का आधार और व्यापक हुआ है ॥१४॥ इसके धारण मात्र से वरुण सिद्ध हो गये, कुबेर धनाधीश हुए और इसके धारण तथा पाठ करने से इन्द्र देवों के स्वयं अधीश्वर हुए हैं ॥१५॥ इसे धारण कर सूर्य स्वयं तेजोराशि होकर लोकों में सुशोभित होते हैं। इसके धारण एवं पाठ करने से चन्द्र महाबली और पराक्रमी हो गये ॥१६॥ इसे धारण कर अगस्त्य ने सातों सागरों को पान कर लिया था और अपने तेज से वातापी राक्षस को नष्ट किया था ॥१७॥ इसके धारण एवं पाठ करने से देवी वसुन्धरा समस्त का आधार हुई है। इसके धारण एवं पाठ से गंगा स्वयं पवित्र होकर लोकपावनी हो गयीं ॥१८॥ इसे धारण कर धर्म धार्मिक जनों में श्रेष्ठ एवं जगत् के साक्षी हुए हैं, इसे धारण कर सरस्वती सम्पूर्ण विद्याओं की अधीश्वरी देवी और लक्ष्मी रत्न देने वाली एवं श्रेष्ठ से श्रेष्ठ हुई हैं। इसके धारण और पाठ करने से सावित्री ने वेदों को उत्पन्न किया, तथा हे भृगो ! इसे धारण कर वेदगण धर्म के वक्ता हुए। इसे धारण कर पाठ करने से अग्नि शुद्ध एवं तेजस्वी हुए, और इसे धारण कर भगवान् सनत्कुमार श्रेष्ठ ज्ञानी हो गये ॥१९-२१॥ इसलिए इसे भगवान् कृष्ण के भक्त को, जो साधु महात्मा हो, देना चाहिए। क्योंकि शठ एवं परशिष्य को देने से मृत्यु प्राप्त होती है ॥२२॥

इस त्रैलोक्यविजय नामक कवच के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द और स्वयं रासेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) देवता हैं। त्रैलोक्य-विजय-प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है। यह कवच परे से परे और तीनों लोकों में दुर्लभ है। 'ओं श्रीकृष्णाय नमः' सदा मेरे शिर की रक्षा करे, पांच अक्षर वाले 'कृष्णाय स्वाहा' कपाल की रक्षा करे ॥२३-२५॥ कृष्ण दोनों नेत्रों की रक्षा करें, 'कृष्णाय स्वाहा' पुतलियों की रक्षा करे। 'हरये नमः' सदा मेरी भौंह की रक्षा करे ॥२६॥ 'ओं गोविन्दाय स्वाहा' निरन्तर नासिका की रक्षा करे, 'गोपालाय नमः' सदा दोनों कपोलों की

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ॐ नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णौ पातु सदा मम। ॐ कृष्णाय नमः शश्वत्पातु मेऽधरयुग्मकम् ॥२८॥
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति दन्तौघं मे सदाऽवतु। पातु कृष्णाय दन्ताधो दन्तोर्ध्वं क्लीं सदाऽवतु ॥२९॥
ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातु मे सदा। रासेश्वराय स्वाहेति तालुकं पातु मे सदा ॥३०॥
राधिकेशाय स्वाहेति कण्ठं पातु सदा मम। नमो गोपाङ्गनेशाय वक्षः पातु सदा मम ॥३१॥
ॐगोपेशाय स्वाहेति स्कन्धं पातु सदा मम। नमः किशोरवेषाय स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥३२॥
उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय[1] नमः सदा। ॐ क्लीं कृष्णाय स्वाहेति करौ पातु सदा मम ॥३३॥
ॐ विष्णवे नमो बाहुयुग्मं पातु सदा मम। ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा नखरं पातु मे सदा ॥३४॥
ॐ नमो नारायणायेति नखरन्ध्रं सदाऽवतु। ॐ श्रीं[2] क्लीं पद्मनाभाय नाभिं पातु सदा मम ॥३५॥
ॐ सर्वेशाय स्वाहेति कङ्कालं पातु मे सदा। ॐ गोपीरमणाय स्वाहा नितम्बं पातु मे सदा ॥३६॥
ॐ गोपीनां प्राणनाथाय पादौ पातु सदा मम ॥३७॥
ॐ केशवाय स्वाहेति मम केशान्सदाऽवतु। नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरन्ध्रं सदाऽवतु ॥३८॥
ॐ माधवाय स्वाहेति मे लोमानि सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सर्वं सदाऽवतु ॥३९॥
परिपूर्णतमः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदाऽवतु। स्वयं गोलोकनाथो मामाग्नेय्यां दिशि रक्षतु ॥४०॥

रक्षा करे॥२७॥ 'ओं नमो गोपांगनेशाय' मेरे कानों की सदा रक्षा करे और 'ओं कृष्णाय नमः' दोनों होठों की रक्षा करे॥२८॥ 'ओं गोविन्दाय स्वाहा' मेरी दंतपंक्तियों की रक्षा करे, 'कृष्णाय स्वाहा' दांतों के निचले भाग और 'क्लीं' दाँतों के ऊपरी भाग की रक्षा करे॥२९॥ 'ओं श्री कृष्णाय स्वाहा' सदा मेरी जिह्वा की रक्षा करे, 'रासेश्वराय स्वाहा' सदा मेरे तालु की रक्षा करे॥३०॥ 'राधिकेशाय स्वाहा' सदा मेरे कण्ठ की रक्षा करे। 'नमो गोपांगनेशाय' मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे॥३१॥ 'ओं गोपेशाय स्वाहा' सदा मेरे कन्धे की रक्षा करे' 'नमः किशोरवेषाय स्वाहा' मेरे पृष्ठ की रक्षा करे॥३२॥ 'मुकुन्दाय नमः' मेरे उदर की नित्य रक्षा करे, 'ओं ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहा' सदा मेरे हाथों की रक्षा करे॥३३॥ 'ओं विष्णवे नमः' मेरी वाहुओं की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं भगवते स्वाहा' सदा मेरे नखों की रक्षा करे॥३४॥ 'ओं नमो नाराणाय' सदा नखच्छिद्रों की रक्षा करे। 'ओं श्रीं क्लीं पद्मनाभाय' सदा मेरी नाभी की रक्षा करे। ॥३५॥ 'ओं सर्वेशाय स्वाहा' सदा मेरे कंकाल की रक्षा करे। ओं 'गोपीरमणाय स्वाहा' मेरे नितम्व की रक्षा करे॥३६॥ 'ओं गोपीनां प्राणनाथाय' सदा मेरे चरण की रक्षा करे॥३७॥ 'ओं केशवाय स्वाहा' सदा मेरे केशों की रक्षा करे। 'नमः कृष्णाय स्वाहा' सदा ब्रह्मरन्ध्र की रक्षा करे॥३८॥ 'ओं माधवाय स्वाहा' सदा मेरे लोमों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सदा सब की रक्षा करे॥३९॥ परिपूर्णतम कृष्ण सर्वदा पूर्वदिशा में मेरी रक्षा करे, स्वयं गोलोकनाथ अग्निकोण में मेरी रक्षा करे॥४०॥ पूर्णब्रह्मस्वरूप सदा दक्षिण में मेरी रक्षा करें। नैर्ऋत्य में कृष्ण मेरी

---

१ क. मुक्तिदाय नमो नमः। २ ख. ह्रीं ह्रीं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदाऽवतु। नैर्ऋत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातु मां हरिः ॥४१॥
गोविन्दः पातु मां शश्वद्वायव्यां दिशि नित्यशः। उत्तरे मां सदा पातु रसिकानां शिरोमणिः॥४२॥
ऐशान्यां मां सदा पातु वृन्दावनविहारकृत्। वृन्दावनीप्राणनाथः पातु मामूर्ध्वदेशतः ॥४३॥
सदैव माधवः पातु बलिहारी महाबलः। जले स्थले चान्तरिक्षे नृसिंहः पातु मां सदा ॥४४॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत्पातु मां माधवः सदा। सर्वान्तरात्मा निर्लिप्तः पातु मां सर्वतो विभुः ॥४५॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥४६॥
मया श्रुतं कृष्णवक्त्रात्प्रवक्तव्यं न कस्यचित्। गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः ॥४७॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः। स च भक्तो वसेद्यत्र लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥४८॥
यदि स्यात्सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो भवेत्तु सः। निश्चितं कोटिवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥४९॥
राजसूयसहस्राणि वाजपेयशतानि च। अश्वमेधायुतान्येव नरमेधायुतानि च ॥५०॥
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा। त्रैलोक्यविजयस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥५१॥
व्रतोपवासनियमं स्वाध्यायाध्ययनं तपः। स्नानं च सर्वतीर्थेषु नास्यार्हति कलामपि ॥५२॥
सिद्धत्वममरत्वं च दासत्वं श्रीहरेरपि। यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वं प्राप्नोति निश्चितम् ॥५३॥
स भवेत्सिद्धकवचो दशलक्षं जपेत्तु यः। यो भवेत्सिद्धकवचः सर्वज्ञः स भवेद्ध्रुवम् ॥५४॥

रक्षा करें, पश्चिम में हरि मेरी रक्षा करें ॥४१॥ गोविन्द वायव्यकोण में मेरी निरन्तर रक्षा करें, रसिकों के शिरोमणि सदा उत्तर में मेरी रक्षा करें ॥४२॥ वृन्दावनविहारी सदा ऐशान्यकोण में मेरी रक्षा करे। वृन्दावनीप्राणनाथ सदा उर्ध्वदेश में मेरी रक्षा करें ॥४३॥ बलिहारी एवं महाबलवान् माधव मेरी सदैव रक्षा करें। जल, स्थल एवं आकाश में सदा नृसिंह मेरी रक्षा करें ॥४४॥ सदा सोते-जागते माधव मेरी निरन्तर रक्षा करें। सर्वान्तरात्मा विभु, जो निर्लिप्त रहते हैं, मेरी चारों ओर से रक्षा करें ॥४५॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने त्रैलोक्यविजय नामक कवच, जो समस्त मन्त्रसमुदाय का शरीर और परम अद्भुत है, तुम्हें बता दिया ॥४६॥ मैंने भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से यह सुना है, इसलिए किसी को न बताना। विधिपूर्वक गुरु की अर्चना करके जो इस कवच को कण्ठ में या दाहिनी बाहु में धारण करता है, वह भी विष्णु ही है, इसमें संशय नहीं। वह भक्त जहाँ निवास करता है वहाँ लक्ष्मी सरस्वती सदा निवास करती हैं ॥४७-४८॥ यदि कवच सिद्ध हो जाता है, तो वह जीवन्मुक्त होता है और करोड़ों वर्षों की पूजा का फल उसे निश्चित प्राप्त होता है ॥४९॥ सहस्र राजसूय, सौ वाजपेय, दश सहस्र अश्वमेध, दस सहस्र नरमेध, सभी महादान और निखिल पृथ्वी की प्रदक्षिणा के फल इस त्रैलोक्यविजय नामक कवच की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥५०-५१॥ व्रत, उपवास, नियम, स्वाध्याय, अध्ययन, तप और समस्त तीर्थों के स्नान इसकी कला के भी समान नहीं है ॥५२॥ जो सिद्धकवच हो जाता है, तो उसे सिद्धत्व, अमरत्व और श्रीहरि का दासत्व आदि सब कुछ निश्चित प्राप्त होता है ॥५३॥ जो दश लाख इसका जप करता है, वह सिद्धकवच एवं सर्वज्ञ होता है ॥५४॥ इस कवच को बिना जाने जो भगवान् की आराधना करता

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इदं कवचमज्ञात्वा भजेत्कृष्णं सुमन्दधीः। कोटिकल्पं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥५५॥
गृहीत्वा कवचं वत्स महीं निःक्षत्रियां कुरु। त्रिःसप्तकृत्वो निःशङ्कः सदानन्दो हि लीलया ॥५६॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च पुत्रक। एवं भूतं च कवचं न देयं प्राणसंकटे ॥५७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामाय श्रीकृष्णकवचप्रदानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः।

भृगुरुवाच

संप्राप्तं कवचं नाथ शश्वत्सर्वाङ्गरक्षणम्। सुखदं मोक्षदं सारं शत्रुसंहारकारणम् ॥१॥
अधुना भगवन्मन्त्रं स्तोत्रं पूजाविधिं प्रभो। देहि मह्यमनाथाय शरणागतपालक ॥२॥

महादेव उवाच

ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च। स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण भज गोपीश्वरं प्रभुम् ॥३॥
मन्त्रेषु मन्त्रराजोऽयं महान्सप्तदशाक्षरः। सिद्धोऽयं पञ्चलक्षेण जपेन मुनिपुंगव ॥४॥

है, वह अतिमन्दबुद्धि (मूर्ख) है और करोड़ों कल्प तक जपा जाने पर भी उसका मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होता है ॥५५॥ हे वत्स! इस कवच को ग्रहण कर पृथ्वी को निःशंक लीला की भाँति इक्कीस बार क्षत्रियरहित करो और सदा आनन्द से रहो ॥५६॥ हे पुत्रक! राज्य दे देना, शिर दे देना तथा प्राण भी दे देना पर, प्राण संकट उपस्थित होने पर भी यह कवच कभी न देना ॥५७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम को श्रीकृष्ण का कवच प्रदान नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

अध्याय ३२

भृगु बोले—हे नाथ! निरन्तर सर्वांग की रक्षा करने वाला यह कवच मुझे प्राप्त हो गया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक, साररूप एवं शत्रु के संहार करने का कारण है ॥१॥ हे भगवन्! हे प्रभो! अब मुझे मंत्र, स्तोत्र और पूजा विधान बताने की कृपा कीजिये, क्योंकि मैं अनाथ हूँ और आप शरणागत के पालक हैं ॥२॥

महादेव बोले—'ओं श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय स्वाहा' इस मन्त्र से गोपीनाथ प्रभु का पूजन करो ॥३॥ यह सत्रह अक्षरों का महान् मंत्र मंत्रो का राजा है। हे मुनिश्रेष्ठ! पांच लाख जप करने से यह मंत्र सिद्ध होता है ॥४॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तद्दशांशं च हवनं तद्दशांशा[1]भिषेचनम्। तर्पणं तद्दशांशं च तद्दशांशं च मार्जनम्॥५॥
सुवर्णानां च शतकं पुरश्चरणदक्षिणा। मन्त्रसिद्धस्य पुंसश्च विश्वं करतले मुने॥६॥
शक्तः पातुं समुद्रांश्च विश्वं संहर्तुमीश्वरः। पाञ्चभौतिकदेहेन वैकुण्ठं गन्तुमीश्वरः॥७॥
तस्य संस्पर्शमात्रेण पदपङ्कजरेणुना। पूतानि सर्वतीर्थानि सद्यः पूता वसुंधरा॥८॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु मन्मुखतो मुने। सर्वेश्वरस्य कृष्णस्य भक्तिमुक्तिप्रदायि च॥९॥
नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम्॥१०॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाममनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं तं रत्नभूषणभूषितम्॥११॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पीताम्बरधरं वरम्। वीक्ष्यमाणं च गोपीभिः सस्मिताभिश्च संततम्॥१२॥
प्रफुल्लमालतीमालावनमालाविभूषितम्। दधतं कुन्दपुष्पाढ्यां चूडां चन्द्रकचर्चिताम्॥१३॥
प्रभां क्षिपन्तीं नभसश्चन्द्रतारान्वितस्य च। रत्नभूषितसर्वाङ्गं राधावक्षःस्थलस्थितम्॥१४॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च देवेन्द्रैः परिसेवितम्। ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च श्रुतिभिश्च स्तुतं भजे॥१५॥
ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा चोपचारांस्तु षोडश। दत्त्वा भक्त्या च संपूज्य सर्वज्ञत्वं लभेत्पुमान्॥१६॥
अर्घ्यं पाद्यं चाऽऽसनं च वसनं भूषणं तथा। गामर्घ्यं मधुपर्कं च यज्ञसूत्रमनुत्तमम्॥१७॥

उसका दशांश हवन, उसका दशांश अभिषेचन, उसका दशांश मार्जन और सौ सुवर्ण (की मोहर) पुरश्चरण की दक्षिणा देनी चाहिए। हे मुने! मंत्रसिद्ध हो जाने पर उस पुरुष के हाथ में समस्त विश्व हो जाता है और वह समस्त विश्व का संहार भी करने में समर्थ होता है। इसी पाञ्चभौतिक शरीर से वह वैकुण्ठ जाने में समर्थ होता है और उसके चरणकमल की धूलि का स्पर्श होते ही समस्त तीर्थ एवं निखिल पृथिवी तुरन्त पवित्र हो जाती है॥५-८॥ हे मुने! भगवान् श्रीकृष्ण का सामवेदोक्त ध्यान मेरे मुख से सुनो, जो भक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करता है॥९॥ नवीन मेघ के समान श्याम, नीलकमल की भाँति युगल नयन, शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख, मनोहर मन्दहास तथा करोड़ों काम की भाँति लावण्य से युक्त, मनोहर लीला धाम, रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नों के भूषणों से भूषित, चन्दन-चर्चित सर्वांग, पीताम्बर धारण किये और मन्द मुसुकान करती हुई गोपियाँ से निरन्तर देखे जाते हुए, अत्यन्त विकसित मालती पुष्पों की माला एवं वनमाला धारण किये, चन्द्रक (चन्द्रिका) समेत कुन्द पुष्प भूषित चूडा धारण किये, चन्द्रमा और तारागण से युक्त आकाश की प्रभा को तिरस्कृत करने वाली कान्ति से युक्त, रत्नों से सर्वांग भूषित राधा के वक्षःस्थल पर स्थित, सिद्धेन्द्रगण, मुनिवर्यवृन्द और देवाधीश्वरों से सुसेवित एवं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर द्वारा तथा वेदों द्वारा स्तुत भगवान् की मैं सेवा कर रहा हूँ॥१०-१५॥ इस भाँति ध्यानपूर्वक सोलहो उपचार से भक्तिपूर्वक पूजन करने पर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है॥१६॥ अर्घ्य, पाद्य, आसन, वसन, भूषण, गौ, अर्घ्य, मधुपर्क, परमोत्तम यज्ञसूत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, और पुनः

१क. भोजनम्।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

धूपदीपौ च नैवेद्यं पुनराचमनीयकम्। नानाप्रकारपुष्पाणि ताम्बूलं च सुवासितम् ॥१८॥
मनोहरं दिव्यतल्पं कस्तूर्यगुरुचन्दनैः। भक्त्या भगवते देयं माल्यं पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥१९॥
ततः षडङ्गं संपूज्य पश्चात्संपूजयेद्गणम्। श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च ॥२०॥
हरिभानुं चन्द्रभानुं सूर्यभानुं सुभानुकम्। पार्षदप्रवरान्सप्त पूजयेद्भक्तिभावतः ॥२१॥
गोपीश्वरीं राधिकां च मूलप्रकृतिमीश्वरीम्। कृष्णशक्तिं कृष्णपूज्यां पूजयेद्भक्तिपूर्वकम् ॥२२॥
गोपगोपीगणं शान्तं मां ब्रह्माणं च पार्वतीम्। लक्ष्मीं सरस्वतीं पृथ्वीं सर्वदेवं सपार्षदम् ॥२३॥
देवषट्कं समभ्यर्च्य पुनः पञ्चोपचारतः। पश्चादेवंक्रमेणैव श्रीकृष्णं पूजयेत्सुधीः ॥२४॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। देवषट्कं समभ्यर्च्य चेष्टदेवं च पूजयेत् ॥२५॥
गणेशं विघ्ननाशाय व्याधिनाशाय भास्करम्। आत्मनः शुद्धये वह्निं श्रीविष्णुं मुक्तिहेतवे ॥२६॥
ज्ञानाय शंकरं दुर्गां परमैश्वर्यहेतवे। संपूजने फलमिदं विपरीतमपूजने ॥२७॥
ततः कृत्वा परीहारमिष्टदेवं च भक्तितः। स्तोत्रं च सामवेदोक्तं पठेद्भक्त्या च तच्छृणु ॥२८॥

महादेव उवाच

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिः सनातनम्। निर्लिप्तं परमात्मानं नमाम्यखिलकारणम् ॥२९॥
स्थूलात्स्थूलतमं देवं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमं परम्। सर्वदृश्यमदृश्यं च स्वेच्छाचारं नमाम्यहम् ॥३०॥

आचमन समेत विविध भाँति के पुष्प, सुवासित ताम्बूल, कस्तूरी, अगुरु, चन्दन समेत मनोहर दिव्य शय्या, माला और तीन पुष्पाञ्जलि भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करना चाहिए ॥१७-१९॥ अनन्तर षडंग पूजन और गणपूजन करके श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, हरिभानु, चन्द्रभानु, सूर्यभानु, एवं सुभानु इन सातों पार्षद-प्रवरों का भक्तिभाव से पूजन करे ॥२०-२१॥ उपरांत गोपियों की अधीश्वरी राधिका की भक्तिपूर्वक पूजा करे,जो मूल प्रकृति, ईश्वरी, भगवान् कृष्ण की शक्ति और उनकी पूज्या हैं ॥२२॥ गोप-गोपीगण, शान्त मुझ ब्रह्मा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, पृथ्वी, पार्षद समेत सर्वदेव एवं पांचों उपचारों से छहों देवों की अर्चना करने के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण की इसी क्रम से अर्चना करनी चाहिए ॥२३-२४॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती इन छह देवों की पूजा करके इष्टदेव की अर्चना करनी चाहिए ॥२५॥ फिर विघ्नविनाशार्थ गणेश की, रोगनाश के लिए भास्कर की, आत्म-शुद्धि के लिए अग्नि की, मुक्त्यर्थ श्री विष्णु की, ज्ञानार्थ शंकर की और परम ऐश्वर्य्य के लिए पार्वती की पूजा करनी चाहिए। इनके पूजन से उपर्युक्त फल प्राप्त होता है और न पूजने से विपरीत फल ॥२६-२७॥ अनन्तर परीहार पूर्वक भक्ति से इष्टदेव की पूजा करके सामवेदोक्त स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करे, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ॥२८॥

महादेव बोले—परब्रह्म, परंधाम, परम ज्योति, सनातन एवं निर्लिप्त परमात्मा को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥२९॥ स्थूल से स्थूलतम, सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म, सबको दिखायी देने वाले और अदृश्य स्वेच्छाचारी उस परमदेव को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३०॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

साकारं च निराकारं सगुणं निर्गुणं [1]प्रभुम् सर्वाधारं च सर्वं च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम् ॥३१॥
अतीव कमनीयं च रूपं निरुपमं विभुम्। करालरूपमत्यन्तं बिभ्रतं प्रणमाम्यहम् ॥३२॥
कर्मणः कर्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्। फलं च फलदातारं सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥३३॥
स्रष्टा पाता च संहर्ता कलया मूर्तिभेदतः। नानामूर्तिः कलांशेन यः पुमांस्तं नमाम्यहम् ॥३४॥
स्वयं प्रकृतिरूपश्च मायया च स्वयं पुमान्। तयोः परः स्वयं शश्वत्तं नमामि परात्परम् ॥३५॥
स्त्रीपुंनपुंसकं रूपं यो बिभर्ति स्वमायया। स्वयं माया स्वयं मायी यो देवस्तं नमाम्यहम् ॥३६॥
तारकं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम् । धारकं[2] सर्वविश्वानां सर्वबीजं नमाम्यहम् ॥३७॥
तेजस्विनां रविर्यो हि सर्वजातिषु वाडवः। नक्षत्राणां च यश्चन्द्रस्तं नमामि जगत्प्रभुम् ॥३८॥
रुद्राणां वैष्णवानां च ज्ञानिनां यो हि शंकरः। नागानां यो हि शेषश्च तं नमामि जगत्पतिम् ॥३९॥
प्रजापतीनां यो ब्रह्मा सिद्धानां कपिलः स्वयम्। सनत्कुमारो मुनिषु तं नमामि जगद्गुरुम् ॥४०॥
देवानां यो हि विष्णुश्च देवीनां प्रकृतिः स्वयम्। स्वायंभुवो मनूनां यो मानवेषु च वैष्णवः॥
नारीणां शतरूपा च बहुरूपं नमाम्यहम् ॥४१॥
ऋतूनां यो वसन्तश्च मासानां मार्गशीर्षकः। एकादशी तिथीनां च नमाम्यखिलरूपिणम् ॥४२॥

साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण, सबका आधार और स्वेच्छा रूप उस सर्वमय प्रभु को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३१॥ अत्यन्त सुन्दर, अनुपम रूप और अत्यन्त करालरूप धारण करने वाले उस विभु (व्यापक) को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३२॥ कर्मों के कर्मरूप और समस्त कर्मों के साक्षी, फलरूप एवं फल के दाता उस सर्वरूप को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३३॥ कला द्वारा मूर्तिभेद से (जगत् का) सर्जन, पालन, संहार करने वाले और अपनी कलाओं के अंश से अनेक भाँति की मूर्ति धारण करने वाले उस पुरुष को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३४॥ जो स्वयं प्रकृति रूप और माया द्वारा स्वयं पुरुष रूप है तथा उन दोनों से निरन्तर परे है, उस परात्पर (देव) को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३५॥ जो अपनी माया द्वारा स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक रूप धारण करता है और स्वयं माया रूप तथा स्वयं मायी (माया करने वाला) है, उस देव को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥३६॥ समस्त दुःखों से पार करने वाले, सभी कारणों के कारण, समस्त विश्वों को धारण करने वाले और समस्त के बीज रूप को नमस्कार कर रहा हूँ ॥३७॥ जो तेजस्वियों का सूर्य, समस्त जातियों में ब्राह्मण है और नक्षत्रों में चन्द्रमा रूप है, उस जगत्प्रभु को नमस्कार कर रहा हूँ ॥३८॥ जो रुद्रों, वैष्णवों एवं ज्ञानियों में शंकर और नागों में शेषरूप हैं, उस जगत्पत्ति को नमस्कार कर रहा हूँ ॥३९॥ जो प्रजापतियों में ब्रह्मा, सिद्धों में स्वयं कपिल और मुनियों में सनत्कुमार रूप हैं, उस जगत् के गुरु को नमस्कार कर रहा हूँ ॥४०॥ जो देवों में विष्णु, देवियों में स्वयं प्रकृति रूप, मनुओं में स्वायम्भु-वरूप और मनुष्यों में वैष्णव रूप है, तथा स्त्रियों में शतरूपा रूप हैं उस बहुरूपी को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥४१॥ जो ऋतुओं में वसन्त, मासों में मार्गशीर्ष (अगहन) और तिथियों में एकादशी रूप है, उस अखिल रूप को नमस्कार कर रहा हूँ ॥४२॥

१क. परम्। २क. ०रणं सर्वबीजानां सर्वरूपं न०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सागरः सरितां यश्च पर्वतानां हिमालयः। वसुंधरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमाम्यहम् ॥४३॥
पत्राणां तुलसीपत्रं दारुरूपेषु चन्दनम्। वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्तं नमामि जगत्पतिम् ॥४४॥
पुष्पाणां पारिजातश्च सस्यानां धान्यमेव च। अमृतं भक्ष्यवस्तूनां नानारूपं नमाम्यहम् ॥४५॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां वैनतेयश्च पक्षिणाम्। कामधेनुश्च धेनूनां सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥४६॥
तैजसानां सुवर्णं च धान्यानां यव एव च। यः केसरी पशूनां च वररूपं नमाम्यहम् ॥४७॥
यक्षाणां च कुबेरो यो ग्रहाणां च बृहस्पतिः। दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमामि परं वरम् ॥४८॥
वेदसंघश्च शास्त्राणां पण्डितानां सरस्वती। अक्षराणामकारो यस्तं प्रधानं नमाम्यहम् ॥४९॥
मन्त्राणां विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाह्नवी स्वयम्। इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वश्रेष्ठं नमाम्यहम् ॥५०॥
सुदर्शनं च शस्त्राणां व्याधीनां वैष्णवो ज्वरः। तेजसां ब्रह्मतेजश्च वरेण्यं तं नमाम्यहम् ॥५१॥
बलं यो वै बलवतां मनो वै शीघ्रगामिनाम्। कालः कलयतां यो हि तं नमामि विचक्षणम् ॥५२॥
ज्ञानदाता गुरूणां च मातृरूपश्च बन्धुषु। मित्रेषु जन्मदाता यस्तं सारं प्रणमाम्यहम् ॥५३॥
शिल्पिनां विश्वकर्मा यः कामदेवश्च रूपिणाम्। पतिव्रता च पत्नीनां नमस्यं तं नमाम्यहम् ॥५४॥
प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपरूपो नरेषु च। शालग्रामश्च यन्त्राणां तं विशिष्टं नमाम्यहम् ॥५५॥
धर्मः कल्याणबीजानां वेदानां सामवेदकः। धर्माणां सत्यरूपो यो विशिष्टं तं नमाम्यहम् ॥५६॥
जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु। शब्दरूपश्च गगने तं प्रणम्यं नमाम्यहम् ॥५७॥

जो सरिताओं में सागर, पर्वतों में हिमालयरूप, सहिष्णुओं में वसुन्धरा रूप है, उस सर्वमय को प्रणाम कर रहा हूँ ॥४३॥ जो पत्रों में तुलसीपत्र, दारुरूप (लकड़ियों) में चन्दन और वृक्षों में कल्पवृक्ष है, उस जगत्पति को नमस्कार कर रहा हूँ ॥४४॥ जो पुष्पों में पारिजात, सस्यों में धान्य और भक्ष्य वस्तुओं में अमृतरूप है, उस नाना रूप वाले को नमस्कार करता हूं ॥४५॥ जो गजेन्द्रों में ऐरावत, पक्षियों में वैनतेय (गरुड़), धेनुओं में कामधेनु है उस सब रूप को नमस्कार करता हूं ॥४६॥ जो तैजस पदार्थों में सुवर्ण, धान्यों में यव, पशुओं में केसरी (सिंह) रूप है, उस श्रेष्ठ रूप को नमस्कार करता हूँ ॥४७॥ जो यक्षों में कुबेर, ग्रहों में बृहस्पति, दिक्पालों में महेन्द्र रूप है, उस श्रेष्ठ रूप को नमस्कार करता हूँ ॥४८॥ जो शास्त्रों में वेदगण, पण्डितों में सरस्वती, अक्षरों में आकार रूप है, उस प्रधान देव को नमस्कार करता हूँ ॥४९॥ जो मन्त्रों में विष्णु मन्त्र, तीर्थों में स्वयं गंगा और इन्द्रियों में मनरूप है, उस सर्वश्रेष्ठ को नमस्कार करता हूं ॥५०॥ जो शस्त्रों में सुदर्शन, व्याधियों में वैष्णव ज्वर, तेजों में ब्रह्मतेज रूप है, उस वरेण्य को नमस्कार करता हूं ॥५१॥ जो बलवानों में बल, शीघ्रगामियों में मन, गिनने में कालरूप है, उस विलक्षण को नमस्कार करता हूँ ॥५२॥ जो गुरुओं में ज्ञानदाता, बन्धुओं में माता, मित्रों में जन्मदाता है, उस साररूप को नमस्कार करता हूँ ॥५३॥ जो शिल्पियों में विश्वकर्मा, रूपवानों में कामदेव, पत्नियों में पतिव्रता रूप है, उस नमस्कार योग्य को नमस्कार है ॥५४॥ जो प्रियों में पुत्र रूप, मनुष्यों में राजा रूप, यन्त्रों में शालग्राम रूप है, उस विशिष्ट को नमस्कार करता हूँ ॥५५॥ जो कल्याणबीजों का धर्मरूप, वेदों में सामवेद, और धर्मों में सत्यरूप है, उस विशिष्ट को नमस्कार करता हूँ ॥५६॥ जो जल में शीतलता रूप, पृथिवी में गन्धरूप, आकाश में शब्दरूप है, उस प्रणामयोग्य को नमस्कार करता हूँ ॥५७॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

क्रतूनां राजसूयो यो गायत्री छन्दसां च यः । गन्धर्वाणां चित्ररथस्तं गरिष्ठं नमाम्यहम् ॥५८॥
क्षीरस्वरूपो गव्यानां पवित्राणां च पावकः । पुण्यदानां च यः [1]स्तोत्रं तं नमामि शुभप्रदम् ॥५९॥
तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च वैरिणाम् । गुणानां शान्तरूपो यश्चित्ररूपं नमाम्यहम् ॥६०॥
तेजोरूपो ज्ञानरूपः सर्वरूपश्च यो महान् । सर्वानिर्वचनीयं च तं नमामि स्वयं विभुम् ॥६१॥
सर्वाधारेषु यो वायुर्यथाऽऽत्मा नित्यरूपिणाम् । आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम् ॥६२॥
वेदानिर्वचनीयं यं न स्तोतुं पण्डितः क्षमः । यदनिर्वचनीयं च को वा तत्स्तोतुमीश्वरः ॥६३॥
वेदा न शक्ता यं स्तोतुं जडीभूता सरस्वती । तं च वाङ्मनसोः पारं को विद्वान्स्तोतुमीश्वरः ॥६४॥
शुद्धतेजः स्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीव कमनीयं च श्यामरूपं नमाम्यहम् ॥६५॥
द्विभुजं मुरलीवक्त्रं किशोरं सस्मितं मुदा । शश्वद्गोपाङ्गनाभिश्च वीक्ष्यमाणं नमाम्यहम् ॥६६॥
राधया दत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थं च तमीशं प्रणमाम्यहम् ॥६७॥
रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः । पार्षदप्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम् ॥६८॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लाससमुत्सुकम् । रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम् ॥६९॥
शतशृङ्गे महाशैले गोलोके रत्नपर्वते । विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहारिणम् ॥७०॥

यज्ञों में राजसूय, छन्दों में गायत्री तथा गन्धर्वों में चित्ररथ है, उस गरिष्ठ को नमस्कार करता हूँ ॥५८॥ जो गव्य पदार्थों में दुग्धरूप, पवित्रों में अग्नि और पुण्यदाताओं में स्तोत्र रूप है उस शुभप्रद को नमस्कार करता हूँ ॥५९॥ जो तृणों में कुशरूप, वैरियों में व्याधिरूप और गुणों में शान्त रूप है उस चित्ररूप को नमस्कार करता हूँ ॥६०॥ जो तेजोरूप, ज्ञानरूप, सर्वरूप, महान् और सबसे अनिर्वचनीय रूप है, उस स्वयं विभु को नमस्कार करता हूँ ॥६१॥ जो समस्त आधारों में वायु, नित्य रूपियों में आत्मारूप और व्यापकों में आकाश रूप है, उस व्यापक को नमस्कार करता हूँ ॥६२॥ जिस, वेद के अनिर्वचनीय की स्तुति करने में पण्डित भी समर्थ नहीं है और जो अनिर्वचनीय है, उसकी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ॥६३॥ वेद जिसकी स्तुति नहीं कर सकते हैं और सरस्वती भी (जिसकी स्तुति करने में) जड़ीभूत रहती हैं, उस वाणी-मन से परे की स्तुति करने में कौन विद्वान् समर्थ हो सकता है ॥६४॥ शुद्ध तेजःस्वरूप, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले, अत्यन्त सुन्दर एवं श्याम रूप को नमस्कार करता हूँ ॥६५॥ दो भुजाएँ, मुख में मुरली, किशोररूप, मन्दहास, और निरन्तर गोपियों का वृन्द जिसे नयनकोर से देखा करता है, उसे नमस्कार करता हूँ ॥६६॥ राधा के दिये हुए मनोहर ताम्बूल को खाने वाले और रत्नसिंहासन पर सुशोभित उस ईश को प्रणाम करता हूँ ॥६७॥ रत्नों के भूषणों से भूषित, श्रेष्ठ पार्षदों और गोपकुमारों द्वारा श्वेतचामरों से सुसेवित उस देव को नमस्कार करता हूँ ॥६८॥ वृन्दावन के मध्य रम्य स्थान में (सदैव) रासोल्लास के हेतु समुत्सुक रहने वाले रासमण्डल के मध्यवर्ती रसिकेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥६९॥ गोलोक के सौ शिखर वाले महाशैल रत्नपर्वत पर और विरजा (नदी) के रम्य तट पर विहार करने वाले को प्रणाम करता हूँ ॥७०॥

१क. स्तोयस्तं । २ क. °हृस्तं° ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। सत्यं ब्रह्मस्वरूपं च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम् ॥७१॥
श्रीकृष्णस्य स्तोत्रमिदं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। धर्मार्थकाममोक्षाणां स दाता भारते भवेत् ॥७२॥
हरिदास्यं हरौ भक्तिं लभेत्स्तोत्रप्रसादतः। इह लोके जगत्पूज्यो विष्णुतुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥७३॥
सर्वसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते याति हरेः पदम्। तेजसा यशसा भाति यथा सूर्यो महीतले ॥७४॥
जीवन्मुक्तः कृष्णभक्तः स भवेन्नात्र संशयः। अरोगी गुणवान्विद्वान्पुत्रवान्धनवान्सदा ॥७५॥
षडभिज्ञो दशबलो मनोयायी भवेद्ध्रुवम्। सर्वज्ञः सर्वदश्चैव स दाता सर्वसंपदाम् ॥७६॥
कल्पवृक्षसमः शश्वद्भवेत्कृष्णप्रसादतः। इत्येवं कथितं स्तोत्रं वत्स त्वं गच्छ पुष्करम् ॥७७॥
तत्र कृत्वा मन्त्रसिद्धिं पश्चात्प्राप्स्यसि वाञ्छितम्। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कुरु पृथ्वीं यथासुखम्।
ममाऽऽशिषा मुनिश्रेष्ठ श्रीकृष्णस्य प्रसादतः ॥७८॥

इति श्री ब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० स्तवप्रदानं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

शिवं प्रणम्य स भृगुर्दुर्गां कालीं मुदाऽन्वितः। गत्वा पुष्करतीर्थं च मन्त्रसिद्धिं चकार ह ॥

परिपूर्णतम, शान्त, राधाकान्त, मनोहर, सत्य, ब्रह्मस्वरूप कृष्ण को नित्य नमस्कार करता हूँ ॥७१॥ भगवान् श्रीकृष्ण के इस स्तोत्र को तीनों समय जो पाठ करता है, वह भारत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का दाता होता है ॥७२॥ इस स्तोत्र के प्रसाद से उसे भगवान् की भक्ति समेत हरिदास्य प्राप्त होता है और इस लोक में वह विष्णु के समान निश्चित रूप से जगत्पूज्य होता है ॥७३॥ वह समस्त सिद्धों का अधीश्वर, शान्त और अन्त में भगवान् के लोक को जाता है। तेज और यश से वह सूर्य के समान पृथ्वी पर सुशोभित होता है ॥७४॥ वह कृष्णभक्त जीवन्मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं। नीरोग, गुणवान्, विद्वान्, पुत्रवान्, सदा धनवान्, षडभिज्ञ, दशबल और मन की भाँति शीघ्रगामी होता है। सर्वज्ञाता, सर्वदानी, समस्त सम्पत्ति का दाता और भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से वह निरन्तर कल्पवृक्ष के समान होता है। हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें स्तोत्र सुना दिया, अब तुम पुष्कर चले जाओ ॥७५-७७॥ वहाँ मन्त्रसिद्धि करने के पश्चात् अपना अभीष्ट प्राप्त करोगे। हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे आशीर्वाद और भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से सुख पूर्वक तुम पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय करो ॥७८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में स्तव-प्रदान नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३२॥

अध्याय ३३

नारायण बोले—भृगु ने सप्रेम शिव, दुर्गा और काली को प्रणाम करके पुष्कर तीर्थ में जाकर मन्त्र सिद्ध करना आरम्भ किया ॥१॥ वे भक्तिपूर्वक एक मास तक निराहार रहे—केवल भगवान् श्रीकृष्ण

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स बभूव निराहारो मासं भक्तिसमन्वितः। ध्यायन्कृष्णपदाम्भोजं वायुरोधं चकार सः ॥२॥
ददर्श चक्षुरुन्मील्य गगनं तेजसाऽऽवृतम्। दिशो दश द्योतयन्तं समाच्छन्नदिवाकरम् ॥३॥
तेजोमण्डलमध्यस्थं रत्नयानं ददर्श ह। ददर्श तत्र पुरुषमत्यन्तं सुन्दरं वरम् ॥४॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। प्रणम्य दण्डवन्मूर्ध्ना वरं वव्रे तमीश्वरम् ॥५॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति। पादारविन्दे सुदृढां तां भक्तिमनपायिनीम् ॥६॥
दास्यं सुदुर्लभं शश्वत्त्वत्पादाब्जे च देहि मे। कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥७॥
भृगुः प्रणम्य भवनं तज्जगाम परात्परम्। पस्पन्द दक्षिणाङ्गं च परं मङ्गलसूचकम् ॥८॥
वाञ्छाप्रतीतिजननं सुस्वप्नं च ददर्श ह। मनः प्रसन्नं स्फीतं च तद्बभूव दिवानिशम् ॥
संभाष्य स्वजनं सर्वं गृहे तस्थौ मुदाऽन्वितः ॥९॥
स्वशिष्यान्पितृशिष्यांश्च भ्रातृवर्गांश्च बान्धवान्। आनीयाऽऽनीय विविधान्मन्त्रांश्च स चकार ह ॥१०॥
पौर्वापर्यं स्ववृत्तान्तं तानेवोक्त्वा शुभक्षणे। तैरेव सार्धं बलवान्बभूव गमनोन्मुखः ॥११॥
ददर्श मङ्गलं रामः शुश्राव जयसूचकम्। बुबुधे मनसा सर्वं स्वजयं वैरिसंक्षयम् ॥१२॥
यात्राकाले च पुरतः शुश्राव सहसा मुनिः। हरिशब्दं शङ्खरवं घण्टादुन्दुभिवादनम् ॥१३॥

के चरण-कमल का ध्यान करते हुए उन्होंने अपनी श्वास-गति रोक ली ॥२॥ अनन्तर आँखें खुलने पर उन्हें आकाश तेज से आच्छन्न दिखायी पड़ा। वहाँ दशो दिशाओं को प्रदीप्त करते हुए तथा सूर्य को आच्छादित किये तेजोमण्डल के मध्य में एक रत्न का यान (विमान) दिखायी पड़ा और उसमें अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ एक पुरुष दिखायी पड़ा, जो मन्दहास समेत प्रसन्न मुख एवं भक्तों पर अनुग्रह करनेवाला था। उस ईश्वर को शिर से दण्डवत्प्रणाम करके उससे वर की याचना की कि—'मैं इक्कीस बार इस पृथिवी को निःक्षत्रिय करूँ, आपके चरण कमल में अति दृढ़ एवं अविनाशिनी भक्ति प्राप्त हो तथा अपने चरणकमल का निरन्तर अतिदुर्लभ दास्य भाव मुझे प्रदान करने की कृपा करें।' भगवान् कृष्ण ने उन्हें वर प्रदान किया और उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ॥३-७॥ भृगु भी उस परात्पर भगवान् को प्रणाम कर अपने घर चले आये। परम मंगल सूचक उनका दक्षिणांग फड़कने लगा। मनोरथ सिद्ध होने का सुस्वप्न भी देखा। और तभी से दिन रात मन से प्रसन्न एवं स्फूर्तियुक्त रहने लगा। अपने परिवार के लोगों से समस्त वृत्तान्त बताकर घर में आनन्द चित्त से रहने लगे ॥८-९॥ अनन्तर अपने शिष्यों, पिता के शिष्यों, भ्राताओं और बन्धुवर्गों को बुला-बुलाकर विविध भाँति के मंत्रों की शिक्षा देने लगे ॥१०॥ शुभ क्षण में उन सबसे अपना समस्त वृत्तान्त कहते हुए उन सबों के साथ (युद्धार्थ) चलने की तैयारी की ॥११॥ उस समय राम ने विजयसूचक शब्द सुना और मंगल दर्शन किया। जिससे उन्होंने मन में निश्चय किया कि—मेरा विजय होगा और शत्रुओं का नाश होगा ॥१२॥ यात्रासमय मुनि ने अपने सामने सहसा घोड़े का शब्द, शंख-शब्द तथा घण्टा और नगाड़े की ध्वनि सुनी एवं आकाशवाणी का संगीत भी सुना कि—'तुम्हारा विजय होगा।'

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

आकाशवाणीसंगीतं जयस्ते भवितेति च। नवेङ्गितं च कल्याणं मेघशब्दं जयावहम्॥१४॥
चकार यात्रां भगवाञ्छुत्वैवं विविधं शुभम्। ददर्श पुरतो विप्रवह्निदैवज्ञभिक्षुकान्॥१५॥
ज्वलत्प्रदीपं दधतीं पतिपुत्रवतीं सतीम्। पुरो ददर्श स्मेरास्यां नानाभूषणभूषिताम्॥१६॥
शिवं शिवां पूर्णकुम्भं चाषं च नकुलं तथा। गच्छन्ददर्श रामश्च यात्रामङ्गलसूचकम्॥१७॥
कृष्णसारं गजं सिंहं तुरङ्गं गण्डकं द्विपम्। चमरीं राजहंसं च चक्रवाकं शुकं पिकम्॥१८॥
मयूरं खञ्जनं चैव शङ्खचिल्लं चकोरकम्। पारावतं बलाकं च कारण्डं चातकं चटम्॥१९॥
सौदामनीं शक्रचापं सूर्यं सूर्यप्रभां शुभाम्। सद्योमांसं सजीवं च मत्स्यं शङ्खं सुवर्णकम्॥२०॥
माणिक्यं रजतं मुक्तां मणीन्द्रं च प्रवालकम्। दधि लाजाञ्छुक्लधान्यं शुक्लपुष्पं च कुङ्कुमम्॥२१॥
पर्णं पताकां छत्रं च दर्पणं श्वेतचामरम्। धेनुं वत्सप्रयुक्तां च रथस्थं भूमिपं तथा॥२२॥
[1]दुग्धमाज्यं तथा पूगममृतं पायसं तथा। शालग्रामं [2]पक्वफलं स्वस्तिकं शर्करां[3] मधु॥२३॥
मार्जारं च वृषेन्द्रं च मेषं पर्वतमूषिकम्। मेघाच्छन्नस्य च रवेरुदयं चन्द्रमण्डलम्॥२४॥
कस्तूरीं व्यजनं[4] तोयं हरिद्रां तीर्थमृत्तिकाम्। सिद्धार्थं[5] सर्षपं दूर्वां विप्रबालं च बालिकाम्॥२५॥
मृगं वेश्यां षट्पदं च कर्पूरं पीतवाससम्। गोमूत्रं गोपुरीषं च गोधूलिं गोपदाङ्कितम्॥२६॥
गोष्ठं गवां वर्त्म रम्यां गोशालां गोगतिं शुभाम्। भूषणं देवमूर्तिं च ज्वलदग्निं महोत्सवम्॥२७॥

कल्याणात्मक नूतन चेष्टायें और विजयसूचक घन-गर्जन हुआ॥१३-१४॥ भगवान् परशुराम ने इस प्रकार के विविध शुभ नादों को सुनते हुए (युद्ध) यात्रा आरम्भ की। उसी समय सामने ब्राह्मण, वह्नि, दैवज्ञ (ज्योतिषी), संन्यासी तथा प्रज्वलित दीपक हाथ में लिए पतिपुत्रवती पतिव्रता स्त्री का दर्शन किया, जो मन्दहास करती हुई प्रसन्न मुख एवं अनेक भाँति के भूषणों से भूषित थी॥१५-१६॥ यात्रा करते हुए राम ने स्यार, शिवा (सियारिन), पूर्ण कलश, नीलकंठ और नकुल (नेवला) इन मंगल सूचकों को देखा॥१७॥ पुनः कृष्ण मृग, गज, सिंह, घोड़े, गण्डक, चमरी गौ, राजहंस, चक्रवाक, तोता, कोयल, मोर, खञ्जन पक्षी, शंखचिल्ल चकोर, कबूतर, बगुला, हारिल, पपीहा, गौरैया, विद्युत्, इन्द्रधनुष सूर्य और सूर्य की शुभ कांति, नवीन मांस, सजीव मत्स्य, शंख, सुवर्ण, माणिक्य, रजत (चांदी), मोती, मणीन्द्र, प्रवाल (मूँगा), दही, धान का लावा, शुक्ल धान्य, श्वेत पुष्प, कुंकुम, पलाश, पताका, छत्र, दर्पण, श्वेत चामर, सवत्सा गौ, रथ पर स्थित राजा, दुग्ध, घृत, सुपाड़ी, अमृत, खीर, शालग्राम, पके फल, स्वस्तिक, शक्कर, मधु, बिल्ली, सांड़, भेंड़ा, पर्वतीय चूहा, मेघाच्छन्न सूर्य का उदय, चन्द्रमण्डल, कस्तूरी, पंखा, जल, हरदी, तीर्थ की मिट्टी, राई, सरसों, दूर्वा, ब्राह्मण बालक और बालिका, मृग, वेश्या, भौंरा, कपूर, पीताम्बर, गोमूत्र, गोबर, गौ का चरणचिह्न, गोधूलि, गौओं के रहने का स्थान, उनके मार्ग, गोशाला, गौओं की शुभ गति, भूषण, देवमूर्ति, प्रज्वलित अग्नि, महोत्सव, ताँबा, स्फटिक,

---

१क. ०ग्धं च रोचनामाल्यम०। २क. ०कङ्कफ०। ३क. ०र्करान्विता। ४क. कज्जलं०। ५क. ०द्धान्नं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ताम्रं च स्फटिकं 'वन्द्यं सिन्दूरं माल्यचन्दनम्। गन्धं च हीरकं रत्नं ददर्श दक्षिणे शुभम्॥२८॥
सुगन्धिवायोराघ्राणं प्राप विप्राशिषं शुभाम् ॥२९॥
इत्येवं मङ्गलं ज्ञात्वा प्रययौ स मुदाऽन्वितः। अस्तं गते दिनकरे नर्मदातीरसंनिधौ॥३०॥
तत्राक्षयवटं दिव्यं ददर्श सुमनोहरम्। अत्यूर्ध्वं विस्तृतमतिपुण्याश्रमपदं परम् ॥३१॥
पौलस्त्यतपसः स्थानं सुगन्धिमरुदन्वितम्। कार्तवीर्यार्जुनाभ्याशे तत्र तस्थौ गणैः सह॥३२॥
सुष्वाप पुष्पशय्यायां किंकरैः परिसेवितः। निद्रां ययौ परिश्रान्तः परमानन्दसंयुतः॥३३॥
निशातीते च स भृगुश्चारु स्वप्नं ददर्श ह। न चिन्तितं यन्मनसा वायुपित्तकफं विना॥३४॥
गजाश्वशैलप्रासादगोवृक्षफलितेषु च । आरुह्यमाणमात्मानं रुदन्तं कृमिभक्षितम्॥३५॥
आरुह्यमाणमात्मानं नौकायां चन्दनोक्षितम्। धृतवन्तं पुष्पमालां शोभितं पीतवाससा॥३६॥
विण्मूत्रोक्षितसर्वाङ्गं वसापूयसमन्वितम् । वीणां वरां वादयन्तमात्मानं च ददर्श ह॥३७॥
विस्तीर्णपद्मपत्रैश्च स्वं ददर्श सरित्तटे। दध्याज्यमधुसंयुक्तं भुक्तवन्तं च पायसम्॥३८॥
भुक्तवन्तं च ताम्बूलं लभन्तं ब्राह्मणाशिषम् । फलपुष्पप्रदीपं च पश्यन्तं स्वं ददर्श ह॥३९॥
परिपक्वफलं क्षीरमुष्णान्नं शर्करान्वितम् । स्वस्तिकं भुक्तवन्तं स्वं ददर्श च पुनः पुनः॥४०॥

वन्दनीय सिन्दूर, माला, चन्दन, गन्ध, हीरा और रत्न दाहिनी ओर देखा॥१८-२८॥ सुगन्धित वायु का सूँघना तथा ब्राह्मणों का शुभाशीर्वाद उन्हें प्राप्त हुआ॥२९॥ इस प्रकार मंगल समय जानकर परशुराम ने प्रसन्नता पूर्वक यात्रा की। सूर्य के अस्त होते-होते नर्मदा तट पर पहुँचकर वहाँ उस दिव्य एवं अति मनोहर अक्षयवट वृक्ष को देखा, जो अति ऊँचा, विस्तृत (चौड़ा) एवं आश्रम के समीप था॥३०-३१॥ वह पौलस्त्य का तपः-स्थान था, जहाँ सदैव सुगन्धित वायु चलता रहता था। ऐसे कार्तवीर्यार्जुन के समीप वाले स्थान में अपने गणों समेत उन्होंने निवास किया। पुष्प-शय्या पर शयन किया और किंकर लोग उनकी सेवा कर रहे थे। अधिक श्रान्त होने के कारण वे परम आनन्द से निद्रामग्न हो गये॥३२-३३॥ रात्रि के अन्तिम प्रहर में उन्होंने बिना कफ, वायु, पित्त के प्रकोप के, सुन्दर स्वप्न देखा, जिसे कभी सोचा भी नहीं था॥३४॥ स्वप्न में गज, घोड़े, पर्वत, प्रासाद, गौ और फल समेत वृक्ष पर चढ़ते हुए, रोदन करते हुए एवं कीड़ों द्वारा खाये जाते हुए अपने को देखा। नौका पर बैठे अपने को देखा तथा चन्दन-चर्चित सर्वांग, पुष्पमाला धारण किये, पीताम्बर भूषित, विष्ठा, मूत्र समेत चर्बी और पीव सर्वांग में लगाये तथा सुन्दर वीणा बजाते हुए देखा॥३५-३७॥ नदी के तट पर विस्तृत कमल पत्तों पर दही, घी और मधु समेत खीर खाते हुए अपने को देखा॥३८॥ ताम्बूल खाते एवं ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करते तथा फल, पुष्प, प्रदीप देखते अपने को देखा॥३९॥ परिपक्व फल, क्षीर शक्कर समेत उष्ण (गरम) अन्न और स्वस्तिक (बरा) खाते अपने को बार-बार देखा॥४०॥ जोंक, बिच्छू, मछली, और सर्प से डंसे

१क. रैत्यं सि०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

जलौकसा वृश्चिकेन मीनेन भुजगेन च। भक्षितं भीतमात्मानं पलायन्तं ददर्श सः ॥४१॥
ततो ददर्श चाऽऽत्मानं मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । पतिपुत्रवतीं नारीं पश्यन्तं सस्मितं द्विजम् ॥४२॥
सुवेषया कन्यकया सस्मितेन द्विजेन च। ददर्श श्लिष्टमात्मानं तुष्टेन परितुष्टया ॥४३॥
फलितं पुष्पितं वृक्षं देवताप्रतिमां नृपम्। गजस्थं च रथस्थं च पश्यन्तं स्वं ददर्श सः ॥४४॥
पीतवस्त्रपरिधानां रत्नालंकारभूषिताम् । विशन्तीं ब्राह्मणीं गेहं पश्यन्तं स्वं ददर्श सः ॥४५॥
शंख च स्फटिकं श्वेतमालां मुक्तां च चन्दनम् । सुवर्णं रजतं रत्नं पश्यन्तं स्वं ददर्श सः ॥६॥
गजं वृषं च सर्पं च श्वेतं च श्वेतचामरम् । नीलोत्पलं दर्पणं च भार्गवो वै ददर्श सः ॥४७॥
रथस्थं नवरत्नाढ्यं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नसिंहासनस्थं स्वं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥४८॥
पद्मश्रेणीं पूर्णकुम्भं दधिलाजान्घृतं मधु। पर्णच्छत्रं छत्रिणं च भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥४९॥
बकपङ्क्तिं हंसपङ्क्तिं कन्यापङ्क्तिं व्रतान्विताम्। पूजयन्तीं घटं शुभ्रं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५०॥
मण्डपस्थं द्विजगणं पूजयन्तं हरं हरिम्। जयोऽस्त्वित्युक्तवन्तं तं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५१॥
सुधावृष्टिं पर्णवृष्टिं फलवृष्टिं च शाश्वतीम्। पुष्पचन्दनवृष्टिं च भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५२॥
सद्योमांसं जीवमत्स्यं मयूरं श्वेतखञ्जनम्। सरोवरं च तीर्थानि भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५३॥
पारावतं शुकं चाषं शङ्खं चिल्लं च चातकम्। व्याघ्रं सिंहं च सुरभीं भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५४॥
गोरोचनां हरिद्रां च शुक्लधान्याचलं वरम्। ज्वलदग्निं तथा दूर्वां भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५५॥

जाते एवं भीत होकर भागते हुए अपने को देखा ॥४१॥ पुनः उस ब्राह्मण ने अपने समेत चन्द्र सूर्य का मण्डल और मन्दहास करती हुई पति-पुत्रवती स्त्री को देखते एवं मुसकराते हुए द्विज को देखा। सजी-धजी एवं सन्तुष्ट कन्या और सन्तुष्ट एवं मुसकराते हुए ब्राह्मण द्वारा अपने को आलिंगित देखा ॥४२-४३॥ फूल-फल समेत वृक्ष, देवता की मूर्ति, राजा और गज एवं रथ पर बठे अपने को देखा ॥४४॥ पीताम्बर पहने, रत्नों के भूषणों से भूषित होकर घर में प्रवेश करती हुई ब्राह्मणी को देखते अपने को देखा ॥४५॥ शंख, स्फटिक, श्वेतमाला, मुक्ता, चन्दन, सुवर्ण, चाँदी और रत्न देखते अपने को देखा ॥४६॥ गज, वृष (बैल), सर्प, श्वेत, श्वेतचामर, नीलकमल, और दर्पण भार्गव ने देखे ॥४७॥ राम ने स्वप्न में रथपर बैठे, नूतन रत्नों से भूषित, मालती माला से सुशोभित और रत्न सिंहासन पर स्थित अपने को देखा ॥४८॥ कमल-पंक्तियाँ, पूर्णघट, दही, लावा, घृत, मधु, पत्ते का छत्र तथा अपने को छत्र लगाये देखा ॥४९॥ बगुला की पंक्ति, हंसों की पंक्ति तथा व्रत करनेवाली कन्याओं की पंक्ति को, जो शुभ्र कलश की पूजा कर रही थीं, राम ने स्वप्न में देखा ॥५०॥ मण्डप में बैठे एवं विष्णु और शिव को पूजते हुए ब्राह्मणों को, जो कह रहे थे कि—'तुम्हारा विजय हो,' स्वप्न में देखा ॥५१॥ सुधावृष्टि, पत्ते की वर्षा, निरन्तर फल की-वर्षा एवं पुष्प-चन्दन की वर्षा स्वप्न में उन्होंने देखी ॥५२॥ तुरन्त का मांस, जीवित मत्स्य, मोर, श्वेत खञ्जन पक्षी, सरोवर एवं तीर्थ राम ने स्वप्न में देखे ॥५३॥ कबूतर, तोते, नीलकण्ठ, श्वेत चील्ह पक्षी, पपीहा, बाघ, सिंह और गौ को स्वप्न में देखा ॥५४॥ गोरोचना, हरिद्रा, चावल का पर्वत, प्रज्वलित अग्नि एवं दूर्वा को स्वप्न

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

देवालयसमूहं च शिवलिङ्गं च पूजितम् । अर्चितां मृण्मयीं शैवां भृगुः स्वप्ने ददर्श सः ॥५६॥
यवगोधूमचूर्णानां [1]भक्ष्याणि विविधानि च। भृगुर्ददर्श स्वप्ने च बुभुजे च पुनः पुनः ॥५७॥
दिव्यवस्त्रपरिधानो रत्नभूषणभूषितः । अगम्यागमनं स्वप्ने चकार भृगुनन्दनः ॥५८॥
ददर्श नर्तकीं वेश्यां रुधिरं च सुरां पपौ। रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः स्वप्ने च भृगुनन्दनः ॥५९॥
पक्षिणां पीतवर्णानां मानुषाणां च नारद। मांसानि बुभुजे रामो हृष्टः स्वप्नेऽरुणोदये ॥६०॥
अकस्माल्लिगडैर्बद्धं क्षतं शस्त्रेण स्वं पुनः। दृष्ट्वा च बुबुधे प्रातः समुत्तस्थौ हरिं स्मरन्॥६१॥
अतीव हृष्टः स्वप्नेन प्रातःकृत्यं चकार सः। मनसा बुबुधे सर्वं विजेष्यामि रिपुं ध्रुवम् ॥६२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

स प्रातराह्निकं कृत्वा समालोच्य च तैः सह। दूतं प्रस्थापयामास कार्तवीर्याश्रमं भृगुः ॥१॥
स दूतः शीघ्रमागत्य वसन्तं राजसंसदि। वेष्टितं सचिवैः सार्धमुवाच नृपतीश्वरम् ॥२॥

में भृगु ने देखा ॥५५॥ देव-मन्दिरों के समूह, पूजित शिवलिंग, दुर्गा की मिट्टी की पूजित मूर्ति को स्वप्न में देखा ॥५६॥ जवा, गेहूँ के आंटे के बने अनेक भांति के भक्ष्य पदार्थ और उन्हें बार-बार खाते अपने को स्वप्न में भृगु ने देखा ॥५७॥ भृगुनन्दन राम ने स्वप्न में दिव्य वस्त्र पहने एवं रत्नों के भूषणों से भूषित हो अगम्या स्त्री के साथ संभोग किया स्वप्न में नृत्य करती वेश्या को देखा तथा रुधिर और मद्य का पान किया और रुधिर से भीगा अपना सर्वांग देखा ॥५८-५९॥ हे नारद! राम ने स्वप्न में अरुणोदय समय पीले रंग के पक्षी और मनुष्यों का मांस सुप्रसन्न होकर खाया ॥६०॥ पुनः अकस्मात् बेड़ी से आबद्ध होकर शस्त्र से अपने को क्षत देखा। ऐसा स्वप्न देखते हुए प्रातःकाल भगवान् का स्मरण करते हुए वे उठ बैठे ॥६१॥ स्वप्न से अति हर्षित होकर उन्होंने प्रातःकाल का नित्य-कर्म समाप्त किया और मन में निश्चित बोध किया कि—मैं शत्रु को निश्चित जीतूंगा ॥६२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

अध्याय ३४

नारायण बोले—प्रातःकालीन कर्म समाप्त करके राम ने अपने लोगों के साथ मंत्रणा (सलाह) की और कार्तवीर्य्य के यहाँ दूत भेज दिया ॥१॥ उस दूत ने शीघ्र राजसभा में आकर राजा से, जो अपने मंत्रियों के साथ घिरा बैठा था, कहा ॥२॥

१क. पिष्टानि लड्डुकानि च।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रामदूत उवाच

नर्मदातीरसांनिध्ये न्यग्रोधाक्षयमूलके । स भृगुभ्रातृभिः सार्धं त्वं तत्राऽऽगन्तुमर्हसि ॥३॥
युद्धं कुरु महाराज जातिभिर्ज्ञातिभिः सह। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यति महीमिति ॥४॥
इत्युक्त्वा रामदूतश्चाप्यगच्छद्रामसंनिधिम् । राजा विधाय संनाहं समरं गन्तुमुद्यतः ॥५॥
गच्छन्तं समरं दृष्ट्वा प्राणेशं सा मनोरमा। तमेव वारयामास वासयामास संनिधौ ॥६॥
राजा मनोरमां दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणः । तामुवाच सभामध्ये वाक्यं मानसिकं मुने ॥७॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

मामेवाह्वयते कान्ते जमदग्निसुतो महान्। स तिष्ठन्नर्मदातीरे रणाय भ्रातृभिः सह ॥८॥
संप्राप्य शंकराच्छस्त्रं मन्त्रं च कवचं हरेः। त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छति मेदिनीम् ॥९॥
आन्दोलयन्ति मे प्राणा मनः संक्षुभितं मुहुः। शश्वत्स्फुरति वामाङ्गं दृष्टं स्वप्नं शृणु प्रिये ॥१०॥
तैलाभ्यङ्गृतमात्मानपश्यं गर्दभोपरि। ओण्डपुष्पस्य माल्यं च बिभ्रतं रक्तचन्दनम् ॥११॥
रक्तवस्त्रपरीधानं लोहालंकारभूषितम् । क्रीडन्तं च हसन्तं च निर्वाणाङ्गाररराशिना ॥१२॥

रामदूत बोला—हे महाराज ! नर्मदा तट पर स्थित उस अक्षय मूल वाले वट वृक्ष के नीचे भृगु अपने भ्राताओं समेत स्थित हैं, अतः अपने जाति-बन्धुओं समेत वहाँ चल कर उनसे युद्ध करो—'वे इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करेंगे ॥३-४॥ इतना कह कर राम का दूत राम के पास चला आया। उधर राजा भी कवच आदि धारण कर समर जाने को तैयार हुआ ॥५॥ युद्ध के लिए जाते हुए प्राणेश को देख कर उसकी पत्नी मनोरमा ने उसे मना किया और पास बुला कर अपने वक्ष से लगा लिया ॥६॥ हे मुने ! मनोरमा को देख कर राजा का मुख और नेत्र प्रसन्नता से खिल उठा। उसने अपना मानसिक विचार सभामध्य में ही उससे कहना आरम्भ किया ॥७॥

कार्तवीर्यार्जुन बोले—हे कान्ते ! जमदग्नि का महान् पुत्र राम मुझे बुला रहा है, जो अपने भ्राताओं समेत युद्ध के लिए नर्मदा के तट पर स्थित है ॥८॥ शंकर से शस्त्र, मंत्र और कवच प्राप्त कर वह इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करना चाहता है ॥९॥ इससे मेरे प्राण भयाकुल हो रहे हैं, मन बार-बार संक्षुब्ध हो रहा है, बायाँ अंग निरन्तर फड़क रहा है और हे प्रिये ! मैंने जो स्वप्न देखा है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥१०॥ सर्वाङ्ग में तेल लगाये, गधे पर बैठे अपने को देखा है और अड़हुल पुष्प की माला धारण किये, रक्त चन्दन लगाये, रक्त वस्त्र पहने, लोहे के आभूषण से भूषित, बुझे कोयलों की ढेरी पर खेलते और हँसते अपने को मैंने देखा है ॥११-१२॥

१क. ०वाऽऽज्ञायते वीर्याज्ज०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

भस्माच्छन्नां च पृथिवीं जपापुष्पान्वितां सति। रहितं चन्द्रसूर्याभ्यां रक्तसंध्यान्वितं नभः ॥१३॥
मुक्तकेशां च नृत्यन्तीं विधवां छिन्ननासिकाम्। रक्तवस्त्रपरीधानामपश्यं चाट्टहासिनीम् ॥१४॥
सशरामग्निरहितां चितां भस्मसमन्विताम्। भस्मवृष्टिमसृग्वृष्टिमग्निवृष्टिमपीश्वरि ॥१५॥
पक्वतालफलाकीर्णां पृथिवीमस्थिसंयुताम्। अपश्यं कर्परौघं च च्छिन्नकेशनखान्वितम् ॥१६॥
पर्वतं लवणानां च राशीभूतं कपर्दकम्। चूर्णानां चैव तैलानामदृशं कन्दरं निशि ॥१७॥
अदृशं पुष्पितं वृक्षमशोककरवीरयोः। तालवृक्षं च फलितं तत्र चैव पतत्फलम् ॥१८॥
स्वकरात्पूर्णकलशः पपात च बभञ्ज च। इत्यपश्यं च गगनात्संपतच्चन्द्रमण्डलम् ॥१९॥
अपश्यमम्बरात्सूर्यमण्डलं संपतद्भुवि। उल्कापातं धूमकेतुं ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ॥२०॥
विकृताकारपुरुषं विकटास्यं दिगम्बरम्। आगच्छन्तं चाग्रतस्तमपश्यं च भयानकम् ॥२१॥
बाला द्वादशवर्षीया वस्त्रभूषणभूषिता। संरुष्टा याति मद्गेहादित्यपश्यमहं निशि ॥२२॥
आज्ञां त्वं देहि राजेन्द्र त्वद्गेहाद्यामि काननम्। वदसि त्वं मामिति च निश्यपश्यमहं शुचा ॥२३॥
रुष्टो विप्रो मां शपते संन्यासी च तथा गुरुः। भित्तौ पुत्तेलिकाश्चित्रा नृत्यन्तीश्च ददर्श ह ॥२४॥
चञ्चलानां च गृध्राणां काकानां निकरैः सदा। पीडितं महिषाणां च स्वमपश्यमहं निशि ॥२५॥
पीडितं तैलयन्त्रेण भ्रामितं तैलकारिणा। दिगम्बरान्पाशहस्तानपश्यमहमीश्वरि ॥२६॥

पृथ्वी को भस्म (राख) से आच्छन्न और जपापुष्प (अड़हुल से) युक्त तथा आकाश को चन्द्र-सूर्य से रहित और रक्त वर्ण की संध्या से युक्त देखा ॥१३॥ खुले केश, नृत्य करती, छिन्न नासिका (कटी नाक), रक्त वस्त्र पहने और अट्टहास करती हुई विधवा स्त्री को देखा है ॥१४॥ हे ईश्वरि! बाणयुक्त, अग्नि रहित, तथा भस्म (राख) युक्त चिता को एवं भस्म की वर्षा, रक्त की वर्षा और अग्नि की वर्षा को देखा है ॥१५॥ पके ताड़ फल से आच्छन्न एवं अस्थि (हड्डी) से युक्त पृथ्वी को कटे केश और नख से युक्त तथा कपाल (खोपड़ी) के समूह को देखा है ॥१६॥ नमक के पर्वत, कौड़ी की राशि, चूर्ण और तेल की कन्दरा (गुफा) को रात (स्वप्न) में देखा है ॥१७॥ अशोक और कनेर के फूले वृक्ष, फल लगे ताड़ वृक्ष और उसके गिरते हुए फल को देखा। अपने हाथ से पूर्ण कलश गिर पड़ा और फूट गया, यह देखा। आकाश से गिरते चन्द्रमण्डल को देखा है ॥१८-१९॥ आकाश से सूर्य मण्डल को पृथ्वी पर गिरते देखा है। उल्कापात, धूमकेतु तारा और चन्द्र-सूर्य का ग्रहण देखा है ॥२०॥ विकृत आकार वाला पुरुष, जो भीषण मुख, नग्न एवं भयानक था, सामने से आ रहा था, ऐसा देखा है ॥२१॥ वस्त्र-भूषणों से भूषित, बारह वर्ष की स्त्री रुष्ट होकर मेरे घर से जा रही थी, ऐसा रात स्वप्न में मैंने देखा है ॥२२॥ और वह कह रही थी कि—'हे राजेन्द्र! आज्ञा प्रदान करो, मैं तुम्हारे घर से वन जाना चाहती हूँ, मुझसे कहो। शोकग्रस्त होकर मैंने रात में यह देखा है ॥२३॥ रुष्ट होकर ब्राह्मण, संन्यासी और गुरु मुझे शाप दे रहे थे। और दीवाल पर चित्रित पुतलियाँ नाच रही थीं, ऐसा देखा है ॥२४॥ चंचल गीधों, कौओं और भैंसों के समूहों से पीड़ित अपने को मैंने रात में देखा है ॥२५॥ हे ईश्वरि! तेली द्वारा कोल्हू में घुमाये जाते हुए अपने को और हाथों में फांस लिए दिगम्बरों (नग्नों) को मैंने देखा है ॥२६॥ अपने घर में सभी गवैयों को नाचते-गाते देखा है। परमानन्द पूर्ण विवाह मैंने रात में देखा

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नृत्यन्ति गायकाः सर्वे गानं गायन्ति मे गृहे। विवाहं परमानन्दमित्यपश्यमहं निशि ॥२७॥
रमणं कुर्वतो लोकान्केशाकेशि च कुर्वतः। अदृशं समरं रात्रौ काकानां च शुनामपि ॥२८॥
मोटकानि च पिण्डानि श्मशानं शवसंयुतम्। रक्तवस्त्रं शुक्लवस्त्रमपश्यं निशि कामिनि ॥२९॥
कृष्णाम्बरा कृष्णवर्णा नग्ना वै मुक्तकेशिनी। विधवा श्लिष्यति च मामपश्यं निशि शोभने ॥३०॥
नापितो मुण्डते मुण्डं श्मश्रुश्रेणीं च मे प्रिये। वक्षःस्थलं च नखरमित्यपश्यमहं निशि ॥३१॥
पादुकाचर्मरज्जूनामपश्यं राशिमुल्बणम्। चक्रं भ्रमन्तं भूमौ च कुलालस्येति सुन्दरि ॥३२॥
वात्यया घूर्णमानं च शुष्कवृक्षं तमुत्थितम्। पूर्णमानं कबन्धं वै चापश्यं निशि सुव्रते ॥३३॥
ग्रथितां मुण्डमालां च चू (घू) र्णमानां च वात्यया। अतीव घोरदशनामप्यपश्यमहं वरे ॥३४॥
भूतप्रेता मुक्तकेशा वमन्तश्च हुताशनम्। मां भीषयन्ति सततमित्यपश्यमहं निशि ॥३५॥
दग्धजीवं दग्धवृक्षं व्याधिग्रस्तं नरं परम्। अङ्गहीनं च वृषलमप्यपश्यमहं निशि ॥३६॥
गेहपर्वतवृक्षाणां सहसा पततं परम्। मुहुर्मुहुर्वज्रपातमप्यपश्यमहं निशि ॥३७॥
कुक्कुराणां शृगालानां रोदनं च मुहुर्मुहुः। गृहे गृहे च नियतमपश्यं सर्वतो निशि ॥३८॥
अधःशिरस्तूर्ध्वपादं मुक्तकेशं दिगम्बरम्। भूमौ भ्रमन्तं गच्छन्तं चाप्यपश्यमहं नरम् ॥३९॥
विकृताकारशब्दं च ग्रामादौ देवरोदनम्। प्रातः श्रुत्वैवावबुद्धः क उपायो वदाधुना ॥४०॥
नृपतेर्वचनं श्रुत्वा हृदयेन विदूयता। सगद्गदं च रुदती तमुवाच नृपेश्वरम् ॥४१॥

है ॥२७॥ लोग परस्पर में केश पकड़ कर रमण करते थे, तथा रात में कौवे, कुत्ते का युद्ध देखा है ॥२८॥ हे कामिनि ! रात में मैंने मोटक, पिण्ड, शव समेत श्मशान, रक्त वस्त्र और श्वेत वस्त्र देखा है ॥२९॥ हे शोभने ! रात में काले वस्त्र वाली, काले वर्ण वाली, नग्न और केश खोले विधवा स्त्री मेरा आलिंगन कर रही थी, ऐसा मैंने देखा है ॥३०॥ हे प्रिये ! नापित (नाई) दाढ़ी मूछ समेत मेरा मुण्डन कर रहा था और वक्षः स्थल में नख-व्रण (घाव) रात में मैंने देखा है ॥३१॥ हे सुन्दरि ! पादुका, चमड़े की रस्सी की उत्कट राशि एवं भूमि पर घूमते हुए कुम्हार का चक्का मैंने देखा है ॥३२॥ हे सुव्रते ! रात में वायु द्वारा घूमते हुए सूखा वृक्ष उठ कर खड़ा हो गया है, कबन्ध (सिर से अलग धड़) घूम रहा है, ऐसा मैंने देखा है ॥३३॥ हे श्रेष्ठे ! गूँथी हुई मुण्डमाला को, जो प्रचण्ड वायु (बवन्डर) के झोंके से घूम रही थी और जिसके और दाँत विकराल थे, मैंने देखा है ॥३४॥रात में यह भी देखा है कि—भूत-प्रेत खुले केश रह कर अग्नि का वमन करके मुझे निरन्तर भयभीत कर रहे हैं ॥३५॥ जले हुए जीव, जले हुए वृक्ष, परम रोगी मनुष्य और अंगहीन शूद्र को मैंने रात में देखा है ॥३६॥ घर, पर्वत और वृक्षों के सहसा पतन और बार-बार वज्रपात भी रात में मैंने देखा है ॥३७॥ प्रत्येक घर में कुत्ते और स्यार के बार-बार रोदन भी देखा है, जो चारों ओर नियत होकर कर रहे थे ॥३८॥ रात में मैंने यह भी देखा कि—कोई मनुष्य नीचे शिर, ऊपर चरण कर, खुले केश और नग्न होकर भूमि पर घूमते हुए चल रहा है ॥३९॥ गाँव आदि में विकृत आकार वालों का शब्द और देवों का रोदन सुनते ही मैं प्रातःकाल जगा हूँ, बताओ, इस समय इसका क्या उपाय है ॥४०॥ राजा की बातें सुन कर दुखी हृदय से रोती हुई मनोरमा ने गद्गद वाणी में राजा से कहा ॥४१॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठ सर्वमहीभृताम्। प्राणातिरेक प्राणेश शृणु वाक्यं शुभावहम्॥४२॥
नारायणांशो भगवाञ्जामदग्न्यो महाबली। सृष्टिसंहर्तुरीशस्य शिष्योऽयं जगतः प्रभोः॥४३॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति। प्रतिज्ञा यस्य रामस्य तेन सार्धं रणं त्यज॥४४॥
पापिनं रावणं जित्वा शूरं त्वमपि मन्यसे। स त्वया न जितो नाथ स्वपापेन पराजितः॥४५॥
यो न रक्षति धर्मं च तस्य को रक्षिता भुवि। स नश्यति स्वयं मूढो जीवन्नपि मृतो हि सः॥४६॥
शुभाशुभस्य सततं साक्षी धर्मस्य कर्मणः। आत्मारामः स्थितः स्वान्तो मूढस्त्वं नहि पश्यसि॥४७॥
पुत्रदारादिकं यद्यत्सर्वैश्वर्यं सुधर्मिणाम्। जलबुद्बुदवत्सर्वमनित्यं नश्वरं नृप॥४८॥
संसारं स्वप्नसदृशं मत्वा सन्तोऽत्र भारते। ध्यायन्ति सततं धर्मं तपः कुर्वन्ति भक्तितः॥४९॥
दत्तेन दत्तं यज्ज्ञानं तत्सर्वं विस्मृतं त्वया। अस्ति चेद्विप्रहिंसायां कुबुद्धे त्वन्मनः कथम्॥५०॥
सुखार्थे मृगयां गत्वा तत्रोषोष्य द्विजाश्रमे। भुक्त्वा मिष्टमपूर्वं च हतो विप्रो निरर्थकम्॥५१॥
गुरुविप्रसुराणां च यः करोति पराभवम्। अभीष्टदेवस्तं रुष्टो विपत्तिस्तस्य संनिधौ॥५२॥
स्मरणं कुरु राजेन्द्र दत्तात्रेयपदाम्बुजम्। गुरौ भक्तिश्च सर्वेषां सर्वविघ्नविनाशिनी॥५३॥

मनोरमा बोली—हे रमणश्रेष्ठ ! नाथ ! आप सभी राजाओं में श्रेष्ठ हैं। हे प्राणों से अधिक ! प्राणेश ! मेरी शुभ बातें सुनो॥४२॥ भगवान् जामदग्न्य महाबली एवं नारायण के अंश हैं और सृष्टि का संहार करने वाले एवं जगत् के स्वामी शंकर के शिष्य हैं॥४३॥ इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करूँगा, ऐसी जिसकी प्रतिज्ञा है, उस राम के साथ युद्ध करने की बात छोड़ दो॥४४॥ पापी रावण को जीत कर तुम भी अपने को शूर मानते हो। हे नाथ ! उसको तुमने जीता नहीं, अपितु वह अपने पाप से पराजित हुआ॥४५॥ क्योंकि जो धर्म की रक्षा नहीं करता है भूतल पर उसकी रक्षा कौन कर सकता है ? वह मूढ़ स्वयं नष्ट हो जाता है और जीवित रहते हुए भी मृतक रहता है॥४६॥ जो शुभ-अशुभ, धर्म-कर्म का साक्षी, आत्माराम और अन्तःकरण में स्थित है, मूढ़ता के कारण तुम उसे नहीं देख रहे हो॥४७॥ हे राजन् ! सुधर्मी पुरुषों के लिए पुत्र, स्त्री आदि समस्त ऐश्वर्य जल के बुल्ले के समान अनित्य और नश्वर हैं॥४८॥ इसीलिए भारत में सन्त महात्मा लोग संसार को स्वप्नवत् मान कर निरन्तर धर्म का ध्यान करते और भक्तिपूर्वक तप करते हैं॥४९॥ दत्तात्रेय के दिए हुए समस्त ज्ञान को तुमने विस्मृत कर दिया, नहीं तो ब्राह्मण की हिंसारूपी कुबुद्धि में तुम्हारा मन कैसे लगता॥५०॥ सुख के लिए मृगया (शिकार) खेलने गए थे वहाँ उपवास करने पर ब्राह्मण के आश्रम में अपूर्व मधुर भोजन किया और निरर्थक उसी ब्राह्मण को मार डाला॥५१॥ गुरु, ब्राह्मण, देवता का जो अपमान करता है, अभीष्ट देव उस पर रुष्ट हो जाते हैं और विपत्ति उसके समीप आ जाती है॥५२॥ हे राजेन्द्र ! दत्तात्रेय के चरण-कमल का स्मरण करो, क्योंकि गुरु में भक्ति करने से समस्त विघ्नों का नाश होता है॥५३॥ उन्हीं गुरुदेव की अर्चना करके मृगु की

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गुरुदेवं समभ्यर्च्य तं भृगुं शरणं व्रज। विप्रे देवे प्रसन्ने च क्षत्रियाणां नहि क्षतिः ॥५४॥
विप्रस्य किंकरो भूपो वैश्यो भूपस्य भूमिप। सर्वेषां किंकराः शूद्रा ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥५५॥
अयशः शरणं शश्वत्क्षत्रियस्य च क्षत्रिये। महद्यशस्तच्छरणं गुरुदेवद्विजेषु च ॥५६॥
ब्राह्मणं भज राजेन्द्र गरीयांसं सुरादपि। ब्राह्मणे परितुष्टे च संतुष्टाः सर्वदेवताः ॥५७॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रं क्रोडे कृत्वा महासती। मुहुर्मुहुर्मुखं दृष्ट्वा विललाप रुरोद च ॥५८॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरेवमुवाच सा। स्नानं कुरु महाराज भोजयिष्यामि वाञ्छितम् ॥५९॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरैः कुङ्कुमैर्युतम्। अनुलेपं करिष्यामि सर्वाङ्गे तव सुन्दर ॥६०॥
क्षणं सिंहासने तिष्ठ क्षणं वक्षसि मे प्रभो। सभायां पुष्परचिते तल्पे पश्यामि शोभनम् ॥६१॥
शतपुत्राधिकः प्रेम्णा सतीनां वै पतिर्नृप। निरूपितो भगवता वेदेषु हरिणा स्वयम् ॥६२॥
मनोरमावचः श्रुत्वा राजा परमपण्डितः। बोधयामास तां राज्ञीं ददौ प्रत्युत्तरं पुनः ॥६३॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि श्रुतं सर्वं त्वयेरितम्। शोकार्तानां च वचनं न प्रशंस्यं सभासु च ॥६४॥
सुखं दुःखं भयं शोकः कलहः प्रीतिरेव च। कर्मभोगार्हकालेन सर्वं भवति सुन्दरि ॥६५॥

शरण में चले जाओ। ब्राह्मण और देवता के प्रसन्न होने पर क्षत्रियों की कोई हानि नहीं होती है ॥५४॥ हे भूमिपाल! राजा ब्राह्मण का सेवक होता है, वैश्य राजा का और शूद्र सबका सेवक होता है विशेष कर ब्राह्मण का ॥५५॥ क्षत्रिय की शरण जाने से क्षत्रियों का महान् अयश होता है किन्तु गुरु, देवता और ब्राह्मणों की शरण जाने से उसे महान् यश की प्राप्ति होती है ॥५६॥ हे राजेन्द्र! देवों से भी श्रेष्ठ ब्राह्मण होते हैं अतः उनकी सेवा करो, क्योंकि ब्राह्मण के प्रसन्न होने पर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥५७॥ इस प्रकार उस महासती ने राजेन्द्र को सब बातें बता कर उन्हें अपने अंक से लगा लिया और उनका मुख देख कर बार-बार विलाप-रोदन करने लगी ॥५८॥ उसने पुनः कहा—हे महाराज! क्षण मात्र ठहरो, स्नान करो, मैं तुम्हें मनचाहा भोजन कराऊँगी ॥५९॥ हे सुन्दर! चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कर्पूर और कुंकुम युक्त अनुलेप (उबटन) तुम्हारे सर्वांग में लगाऊँगी ॥६०॥ हे प्रभो! क्षण मात्र सिंहासन पर बैठ कर क्षणमात्र मेरे वक्षःस्थल पर बैठो, सभा में पुष्पशय्या पर मैं तुम्हें देखना चाहती हूँ ॥६१॥ क्योंकि हे नृप! पतिव्रताओं के लिए पति उसके सैकड़ों पुत्रों से प्रेम में अधिक होता है, इसे वेद में भगवान् ने स्वयं बताया है ॥६२॥ मनोरमा की बातें सुनकर उस महान् पण्डित राजा ने रानी को समझाया और पुनः प्रत्युत्तर रूप में कहा ॥६३॥

कार्तवीर्यार्जुन बोले—हे कान्ते! मैंने तुम्हारी सभी बातें सुन लीं। शोकाकुल की बातें सभा में प्रशस्त नहीं मानी जाती हैं ॥६४॥ हे सुन्दरि! सुख, दुःख, भय, शोक, कलह (झगड़ा) और प्रीति ये सब कर्मभोग के उचित समय पर

---

१ क. रतितल्पे च पश्यामि जन्म शो०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कालो ददाति राजत्वं कालो मृत्युं पुनर्भवम्। कालः सृजति संसारं कालः संहरते पुनः॥६६॥
करोति पालनं कालः कालरूपी जनार्दनः। कालस्य कालः श्रीकृष्णो विधातुर्विधिरेव च॥६७॥
संहर्तुर्वाऽपि संहर्ता पातुः पाता च कर्मकृत्। स कर्मणां कर्मरूपी ददाति तपसां फलम्॥६८॥
कः केन हन्यते जन्तुः कर्मणा वै विना सति। स्रष्टा सृजति सृष्टिं च संहर्ता संहरेत्पुनः॥६९॥
पाता पाति च भूतानि यस्याऽऽज्ञां परिपालयेत्। यस्याऽऽज्ञया वाति वातः संततं भयविह्वलः॥७०॥
शश्वत्संचरते मृत्युः सूर्यस्तपति संततम्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः कालो भ्रमति भीतवत्॥७१॥
तिष्ठन्ति स्थावराः सर्वे चरन्ति सततं चराः। वृक्षाश्च पुष्पिताः काले फलिताः पल्लवान्विताः॥७२॥
शुष्यन्ति कालतः काले वर्धन्ते च तदाज्ञया। आविर्भूता तिरोभूता सृष्टिरेव यदाज्ञया॥
तस्याऽऽज्ञया भवेत्सर्वं न किंचित्स्वेच्छया नृणाम् ॥७३॥
नारायणांशो भगवाञ्जामदग्न्यो महाबलः। त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यति महीमिति॥७४॥
प्रतिज्ञा विफला तस्य न भवेत्तु कदाचन। निश्चितं तस्य वध्योऽहमिति जानामि सुव्रते॥७५॥
ज्ञात्वा सर्वं भविष्यं च शरणं यामि तत्कथम्। प्रतिष्ठितानां चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥७६॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रः समरं गन्तुमुद्यतः। वाद्यं च वादयामास कारयामास मङ्गलम्॥७७॥
शतकोटिनृपाणां च राजेन्द्राणां त्रिलक्षकम्। अक्षौहिणीनां शतकं महाबलपराक्रमम्॥७८॥

क्योंकि काल ही राजत्व प्रदान करता है, काल ही मृत्यु और पुनर्जन्म प्रदान करता है, काल संसार का सर्जन करता है और उसका पुनः संहार भी करता है॥६६॥ काल ही पालन करता है, जनार्दन काल रूपी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण काल के काल, विधाता के विधाता, संहर्त्ता के संहर्त्ता, पालक के पालक तथा कर्म करने वाले हैं। वही कर्मों के कर्म रूपी होकर तप के फल प्रदान करते हैं। हे सति! अतः बिना कर्म के कौन किसे मार सकता है॥६७-६८½॥ जिसकी आज्ञा से स्रष्टा सृष्टि का सर्जन करता है, संहर्त्ता संहार करता है, और पालक जीवों की रक्षा करता है॥६९½॥ जिसकी आज्ञा से वायु भयभीत होकर निरन्तर बहता रहता है, मृत्यु का निरन्तर संचार होता है, और सूर्य सदैव तपते हैं॥७०½॥ इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि जलाता है, भीत होकर काल भ्रमण करता है। सभी स्थावर गण स्थित रहते हैं और चर लोग निरन्तर चलते हैं॥७१½॥ कालानुसार वृक्ष फूल-फल और पल्लव से युक्त होते हैं, कालानुसार सूख जाते हैं और उसकी आज्ञा से समय पर बढ़ते हैं॥७२½॥ उसी की आज्ञा से सृष्टि प्रकट और अन्तर्हित होती रहती है, उसी की आज्ञा से मनुष्यों का सभी कुछ होता है, स्वेच्छा से कुछ भी नहीं होता॥७३॥ भगवान् परशुराम नारायणांश और महाबली हैं, इक्कीस बार पृथ्वी को निर्भूप करेंगे, यह प्रतिज्ञा उनकी कभी विफल नहीं हो सकती है। अतः हे सुव्रते! मेरा वध उन्हीं के द्वारा होगा, यह सुनिश्चित जानता हूँ॥७४-७५॥ सब भविष्य जान कर मैं उनकी शरण कैसे जा सकता हूँ, क्योंकि प्रतिष्ठितों के लिए अयश मरण से भी अधिक दुःख-प्रद होता है॥७६॥ इतना कह कर वह राजेन्द्र समर जाने के लिए तैयार हो गया—वाद्य बजवाने लगा और मंगल कराने लगा॥७७॥ सौ करोड़ राजा, तीन लाख महाराज, महाबली और पराक्रमी सैनिकों की सौ अक्षौहिणी

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अश्वानां च गजानां च पदातीनां तथैव च। असंख्यकं रथानां च गृहीत्वा गन्तुमुद्यतः ॥७९॥
बभूव स्तिमिता साध्वी दृष्ट्वा तं गमनोन्मुखम्। धृतवन्तं च सन्नाहमक्षयं सशरं धनुः ॥८०॥
क्रीडागारे क्षणं तस्थौ कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि। पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥८१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

मनोरमा प्राणनाथं क्षणं कृत्वा स्ववक्षसि। भविष्यं मनसा चक्रे यद्यत्स्वामिमुखाच्छ्रुतम् ॥१॥
पुत्रांश्च पुरतः कृत्वा बान्धवांश्च स्वकिंकरान्। सस्मार सा हरिपदं मेने सत्यं भवेन्मुने ॥२॥
योगेन भित्त्वा षट्चक्रं वायुं संस्थाप्य मूर्धनि। ब्रह्मरन्ध्रस्थकमले सहस्रदलसंयुते ॥३॥
स्वान्तमाकृष्य विषयाज्जलबुद्बुदसंनिभात्। संस्थाप्य बध्वा ज्ञानेन लोलं ब्रह्मणि निष्कले ॥४॥
त्रिविधं कर्म संन्यस्य निर्मूलमपुनर्भवम्। तत्र प्राणांश्च तत्याज न च प्राणाधिकं प्रियम् ॥५॥
स राजा तां मृतां दृष्ट्वा विललाप रुरोद च। संनाहं संपरित्यज्य कृत्वा वक्षस्युवाच ताम् ॥६॥

सेना तथा हाथी, घोड़े, पैदल और रथ असंख्य थे, उन्हें लेकर चलना चाहा। इसी बीच सती मनोरमा ने मन्दहास करती हुई उन्हें रोक कर उनके अक्षय कवच और बाण समेत धनुष ले लिया ॥७८-८०॥ उन्हें क्रीड़ागार में ले जाकर क्षणमात्र अपने वक्ष से लगाया और उनका मुखकमल देखती हुई बार-बार चुम्बन करने लगी ॥८१-८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में कार्तवीर्यार्जुन-संनाह नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

अध्याय ३५

नारायण बोले—मनोरमा ने क्षणमात्र अपने प्राणेश्वर को अंग से लगाकर स्वामी के मुख से जो कुछ सुना था, उसका भावी अर्थ मन में निश्चय किया ॥१॥ हे मुने! अनन्तर उसने अपने पुत्रों, बन्धुओं और भृत्यों (नौकरों) को अपने सामने बुलवाया और होनहार को अटल समझ कर भगवच्चरण का स्मरण करने लगी ॥२॥ तथा योग द्वारा षट् चक्र का भेदन कर वायु को मूर्द्धा (ब्रह्माण्ड) में स्थापित किया और जल के बुल्ले के समान विषयों से अपने मन को हटा कर ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्र दल वाले कमल में उसे लगा दिया। उसी स्थान पर निष्कल (निर्गुण) ब्रह्म में उस चंचल मन को ज्ञान द्वारा बाँध कर अविचल कर दिया ॥३-४॥ पुनर्जन्म न हो इसलिए निर्मूल करने के लिए तीनों प्रकार के कर्मों का त्याग किया और प्राण परित्याग भी उसी स्थान में कर दिया किन्तु प्राणाधिक प्रिय का त्याग नहीं किया ॥५॥ उसे मृतक देख राजा विलाप और रोदन करने लगा और कवच त्याग कर उसे गोद में लेकर कहने लगा ॥६॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

राजोवाच

मनोरमे समुत्तिष्ठ न यास्यामि रणाजिरम् । सचेतना मां पश्येति विलपन्तं मुहुर्मुहुः ॥७॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मया सार्धं गृहं व्रज। न करिष्यामि समरं भृगुणा सह भामिनि ॥८॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ श्रीशैलं व्रज सुन्दरि. तत्र क्रीडां करिष्यामि त्वया सार्धं यथा पुरा ॥९॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ व्रज गोदावरीं प्रिये। जलक्रीडां करिष्यामि त्वया सार्धं यथा पुरा ॥१०॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ नन्दनं व्रज सुन्दरि। पुष्पभद्रानदीतीरे विहरिष्यामि निर्जने ॥११॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मलयं व्रज सुन्दरि। त्वया सार्धं रमिष्येऽहं तत्र चन्दनकानने ॥१२॥
शीतेन गन्धयुक्तेन वायुना सुरभीकृते। भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलश्रुतश्रिते ॥१३॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुकुंमालेपनं कुरु। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पश्य मां सस्मिते सति ॥१४॥
सुधातुल्यं सुमधुरं वचनं रचय प्रिये। कुटिलभ्रूविकारं च कथं न कुरुषेऽधुना ॥१५॥
नृपस्य रोदनं श्रुत्वा वाग्बभूवाशरीरिणी। स्थिरो भव महाराज कुरुषे रोदनं कथम् ॥१६॥
त्वं महाज्ञानिनां श्रेष्ठो दत्तात्रेयप्रसादतः। जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं पश्य शोभनम् ॥१७॥
कमलांशा च सा साध्वी जगाम कमलालयम्। त्वमेव गच्छ वैकुण्ठं रणं कृत्वा रणाजिरे ॥१८॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा जहौ शोकं नराधिपः। ततश्चन्दनकाष्ठेन चितां दिव्यां चकार ह ॥१९॥
संस्काराग्निं कारयित्वा पुत्रद्वारा ददाह ताम्। नानाविधानि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥२०॥

राजा बोले—हे मनोरमे ! उठो, मैं अब रण में नहीं जाऊँगा। चेतना प्राप्त कर मुझे देखो। इस भाँति बार-बार विलाप करने लगा ॥७॥ हे मनोरमे ! उठो। मेरे साथ घर चलो। हे भामिनि ! मैं अब भृगु से युद्ध नहीं करूँगा ॥८॥ हे मनोरमे ! हे सुन्दरि ! उठो, श्री शैल पर चलो और वहाँ पहले की भाँति तुम्हारे साथ क्रीड़ा करूँगा ॥९॥ हे मनोरमे, प्रिये ! उठो, गोदावरी चलो, वहाँ पहले की भाँति तुम्हारे साथ जल-क्रीड़ा करूँगा ॥१०॥ हे मनोरमे, सुन्दरि ! उठो, नन्दन चलें; पुष्पभद्रा नदी के तट पर निर्जन स्थान में तुम्हारे साथ विहार करूँगा ॥११॥ हे मनोरमे, सुन्दरि ! उठो, मलय चलें, वहाँ चन्दन वन में तुम्हारे साथ रमण करूँगा ॥१२॥जो शीतल, सुगन्ध वायु से सुगन्धित, भौंरों की गूँज से युक्त एवं पुरुष कोकिल की मधुर ध्वनि से संयुक्त है ॥१३॥ वहाँ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम का लेपन करके मन्द मुसुकान करती हुई तुम चन्दनचर्चित मेरे सर्वांग को देखो ॥१४॥ हे प्रिये ! अमृत की भाँति अत्यन्त मधुर वचन बोलो। तुम इस समय अपनी भौंहों को टेढ़ी क्यों नहीं कर रही हो ॥१५॥ राजा का रोदन सुन कर वहाँ आकाशवाणी हुई—'हे महाराज ! (चित्त को) स्थिर करो, रोदन क्यों कर रहे हो ॥१६॥ तुम दत्तात्रेय के प्रसाद से महाज्ञानियों में श्रेष्ठ हो, इस सुन्दर संसार को जल के बुलबुले के समान समझो ॥१७॥ वह पतिव्रता कमला (लक्ष्मी) का अंश थी अतः कमला के यहाँ चली गयी और रण में तुम भी युद्ध करके वैकुण्ठ चले जाओ ॥१८॥ इतना सुन कर राजा ने शोक त्याग दिया और रानी के लिए चन्दन काष्ठ की दिव्य चिता बनायी। पुत्र द्वारा उसका दाह संस्कार सुसम्पन्न करा कर ब्राह्मणों को हर्ष से, अनेक भाँति के रत्न प्रदान किये ॥१९-२०॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नानाविधानि दानानि [1]वस्त्राणि विविधानि च। मनोरमायाः पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥२१॥
भुज्यतां भुज्यतां शश्वद्दीयतां दीयतामिति। शब्दो बभूव सर्वत्र कार्तवीर्याश्रमे मुने ॥२२॥
कोषेषु स्वाधिकारेषु स्थितं यद्धनं तदा। मनोरमायाः पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥२३॥
राजा जगाम समरं हृदयेन विदूयता। सार्धं सैन्यसमूहैश्च वाद्यभाण्डैरसंख्यकैः ॥२४॥
ददर्शामङ्गलं राजा पुरो वर्त्मनि वर्त्मनि। ययौ तथाऽपि समरं नाऽऽजगाम गृहं पुनः ॥२५॥
मुक्तकेशीं छिन्ननासां रुदतीं च दिगम्बराम्। कृष्णवस्त्रपरीधानामपरां विधवामपि ॥२६॥
मुखदुष्टां योनिदुष्टां व्याधियुक्तां च कुट्टिनीम्। पतिपुत्रविहीनां च डाकिनीं पुंश्चलीं तथा ॥२७॥
कुम्भकारं तैलकारं व्याधं सर्पोपजीविनम्। कुचैलमतिरूक्षाङ्गं नग्नं काषायवासिनम् ॥२८॥
वसाविक्रयिणं चैव कन्याविक्रयिणं तथा। चितादग्धं शवं भस्म निर्वाणाङ्गारमेव च ॥२९॥
सर्पक्षतं नरं सर्पं गोधां च शशकं विषम्। श्राद्धपाकं च पिण्डं च मोटकं च तिलांस्तथा ॥३०॥
देवलं वृषवाहं च शूद्रश्राद्धान्नभोजिनम्। शूद्रान्नपाचकं शूद्रयाजकं ग्रामयाजकम् ॥३१॥
कुशपुत्तलिकां चैव शवदाहनकारिणम्। शून्यकुम्भं भग्नकुम्भं तैलं लवणमस्थि च ॥३२॥
कार्पासं कच्छपं चूर्णं कुक्कुरं शब्दकारिणम्। दक्षिणे च शृगालं च कुर्वन्तं भैरवं रवम् ॥३३॥
कपर्दकं च क्षौरं च च्छिन्नकेशं नखं मलम्। कलहं च विलापं च तथा तत्कारिणं जनम् ॥३४॥

मनोरमा के पुण्यार्थ उन्होंने अनेक भाँति के वस्त्र समेत विविध भाँति के दान ब्राह्मणों को सुप्रसन्न मन से प्रदान किये ॥२१॥ हे मुने! उस समय कार्तवीर्य्यार्जुन के आश्रम में खाओ-खाओ और हमें दो-दो ऐसा निरन्तर शब्द हो रहा था। अपने अधिकार में स्थित कोष में जितना धन था, वह मनोरमा के पुण्यार्थ ब्राह्मणों को उन्होंने दे दिया ॥२२-२३॥ उपरान्त राजा ने संसप्त हृदय से असंख्य सैनिकों और वाद्यों समेत रणस्थल की यात्रा आरम्भ की ॥२४॥ जाते समय मार्गों में सामने उन्होंने अमंगल देखा, किन्तु उसकी उपेक्षा कर के समर के लिए चले ही गये, घर नहीं लौटे ॥२५॥ केश खोले, छिन्न नासिका वाली, रोदन करती हुई, नग्न, काला वस्त्र पहने विधवा स्त्री तथा मुख दुष्ट, योनिदुष्ट, रोगिणी, कुट्टिनी, पतिपुत्रहीना, डाकिनी, पुंश्चली, कुम्हार, तेली, व्याध (बहेलिया), सँपेरा, मलिन वस्त्रधारी, अत्यन्त, रूक्षशरीर, नग्न, गेरुआ वस्त्रधारी, चर्बी का विक्रेता, कन्या-विक्रेता, चिता में जला हुआ शव, राख, कोयला, साँप का काटा-मनुष्य, गोह, शशक (खरगोश), विष, श्राद्ध का पाक, पिण्ड, मोटक, तिल, शूद्र के मन्दिर का पुजारी, वृषवाह (गाड़ीवान हलवाहे आदि), शूद्र के श्राद्ध का अन्न खाने वाला, शूद्र का भण्डारी, शूद्र का यज्ञ कराने वाला, गाँव-गाँव यज्ञ कराने वाला, कुश का पुतला बना कर शव का दाह करने वाला, छूछा घड़ा, फूटा घड़ा, तेल, नमक, हड्डी, कपास, कछुवा, चूर्ण, भूँकता हुआ कुत्ता, दाहिनी ओर भीषण शब्द करता हुआ स्यार, कौड़ी, बाल बनवाना, छिन्न केश, नख, मल, कलह, विलाप तथा विलाप करने वाला मनुष्य, अमंगल बोलने वाला, रोने वाला, शोक करने वाला, झूठी गवाही देने वाला, चोर, मनुष्य-घातक, पुंश्चली स्त्री के

---

१. क. वस्तूनि।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अमङ्गलं वदन्तं च रुदन्तं शोककारिणम् ॥३५॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारं चौरं च नरघातिनम्। पुंश्चलीपतिपुत्रौ च पुंश्चल्योदनभोजिनम् ॥३६॥
देवतागुरुविप्राणां वस्तुवित्तापहारिणम्। दत्तापहारिणं दस्युं हिंसकं सूचकं खलम् ॥३७॥
पितृमातृविरक्तं च द्विजाश्वत्थविघातिनम्। सत्यघ्नं च कृतघ्नं च स्थाप्यस्याप्यपहारिणम् ॥३८॥
विप्रमित्रद्रोहमेवं क्षतं विश्वासघातकम्। गुरुदेवद्विजानां च निन्दकं स्वाङ्गघातकम् ॥३९॥
जीवानां घातकं चैव स्वाङ्गहीनं च निर्दयम्। व्रतोपवासहीनं च दीक्षाहीनं नपुंसकम् ॥४०॥
गलितव्याधिगात्रं च काणं[1] बधिरमेव च। पुल्कसं छिन्नलिङ्गं च सुरामत्तं सुरां तथा ॥४१॥
क्षिप्तं वमन्तं रुधिरं महिषं गर्दभं तथा। मूत्रं पुरीषं श्लेष्माणं रूक्षिणं नृकपालिनम् ॥४२॥
चण्डवातं रक्तवृष्टिं वाद्यं वै वृक्षपातनम्। वृकं च सूकरं गृध्रं श्येनं कंकं च भल्लुकम् ॥४३॥
पाशं च शुष्ककाष्ठं च वायसं गन्धकं तथा ॥४४॥
प्रतिग्राहिब्राह्मणं च तन्त्रमन्त्रोपजीविनम्। वैद्यं च रक्तपुष्पं चाप्यौषधं तुषमेव च ॥४५॥
कुवार्तां मृतवार्तां च विप्रशापं च दारुणम्। दुर्गन्धिवातं दुःशब्दं राजाऽपश्यत्स वर्त्मनि ॥४६॥
मनश्च कुत्सितं प्राणाः क्षुभिताश्च निरन्तरम्। वामाङ्गस्पन्दनं देहजाड्यं राज्ञो बभूव ह ॥४७॥
तथाऽपि राजा निःशंको ददर्श समराङ्गणम्। सर्वसैन्यसमायुक्तः प्रविवेश रणाजिरम् ॥४८॥

पति-पुत्र, पुंश्चली का भात खाने वाला, देवता, गुरु, विप्र की वस्तु और धन का अपहरण करने वाला, दान दी हुई वस्तु का अपहरण करने वाला, दस्यु, हिंसक, चुगुलखोर, खल (दुष्ट), पिता-माता से विरक्त रहने वाला, ब्राह्मण एवं पीपल का घाती, सत्यनाशक, कृतघ्न, धरोहर का अपहर्त्ता, ब्राह्मण और मित्र से द्रोह करने वाला, आहत, विश्वासघाती, गुरु, देवता और ब्राह्मण के निन्दक, अपने अंग का नाशक, जीवों का घातक, अंगहीन, निर्दयी, व्रत और उपवास से रहित, दीक्षाहीन, नपुंसक, गलितरोग-ग्रस्त शरीर वाला, काना, बहिरा, चाण्डाल, कटे लिंग वाला, सुरापान से मत्त, मद्यविक्रेता, रुधिर वमन करने वाला, भैंसा, गधा, मूत्र, विष्ठा, कफ, रुखा, नरमुण्डधारी, प्रचण्ड वायु, रुधिर की वर्षा, वाद्य, वृक्ष का गिरना, भेंड़िया, सूकर, गीध, बाज, कंक, भालू, फाँस, सूखा काष्ठ, कौआ, गन्धक, दान लेने वाला ब्राह्मण, तन्त्र-मन्त्र से जीविका चलाने वाला, वैद्य, रक्तपुष्प, औषध, भूसी, निन्दित समाचार, मृतक समाचार, भीषण ब्राह्मण-शाप, दुर्गन्धपूर्ण वायु और दुःशब्द, ये सब मार्ग में राजा ने देखे ॥२६-४६॥ इससे राजा का मन म्लान हो गया, प्राण क्षुब्ध होने लगे, वामांग फड़कने लगा और देह शिथिल हो गयी ॥४७॥ तथापि राजा निःशंक होकर समर भूमि की ओर देखने लगा और समस्त सेनाओं समेत रणांगण में

१क. यक्ष्मव्याधिनमे० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अवरुह्य रथात्तूर्णं दृष्ट्वा च पुरतो भृगुम्। ननाम दण्डवद्भूमौ राजेन्द्रैः सह भक्तितः ॥४९॥
आशिषं युयुजे रामः स्वर्गं याहीति वाञ्छितम्। तेषां सह्यं तद्बभूवुर्दुर्लङ्घ्या ब्राह्मणाशिषः ॥५०॥
भृगुं प्रणम्य राजेन्द्रो राजेन्द्रैः सह तत्क्षणात्। आरुरोह रथं तूर्णं नानायुधसमन्वितम् ॥५१॥
नानाप्रकारवाद्यं च दुन्दुभिं मुरजादिकम्। वादयामास सहसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ॥५२॥
उवाच रामो राजेन्द्रं राजेन्द्राणां च संसदि। हितं सत्यं नीतिसारं वाक्यं वेदविदां वरः ॥५३॥

परशुराम उवाच

शृणु राजेन्द्र धर्मिष्ठ चन्द्रवंशसमुद्भव। विष्णोरंशस्य शिष्यस्त्वं दत्तात्रेयस्य धीमतः ॥५४॥
स्वयं विद्वांश्च वेदांश्च श्रुत्वा वेदविदो मुखात्। कथं दुर्बुद्धिरधुना सज्जनानां विहिंसना ॥५५॥
त्वं पूर्वमहनो लोभान्निरीहं ब्राह्मणं कथम्। ब्राह्मणी शोकसंतप्ता भर्त्रा सार्धं गता सती ॥५६॥
किं भविष्यति ते भूप परत्रैवानयोर्वधात्। सर्वं मिथ्यैव संसारं पद्मपत्रे यथा जलम् ॥५७॥
सत्कीर्तिश्चाथ दुष्कीर्तिः कथामात्रावशेषिता। विडम्बना वा किमतो दुष्कीर्तेश्च सतामहो ॥५८॥
क्व गता कपिला त्वं क्व क्व विवादो मुनिः कुतः। यत्कृतं विदुषा राज्ञा न कृतं हालिकेन तत् ॥५९॥

प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ वहाँ राम को सामने देख कर रथ से तुरन्त उतर पड़ा और सहसा उन्हें भूमि पर सहायक राजकुमारों समेत भक्तिपूर्वक दण्डवत्प्रणाम करने लगा ॥४९॥ राम ने शुभाशिष प्रदान किया कि—'अभिलषित स्वर्ग प्राप्त करो।' यह उन लोगों के लिए सह्य हो गया क्योंकि ब्राह्मणों के आशीर्वाद अलंघ्य होते हैं ॥५०॥ सहायक राजकुमारों के साथ राजा उसी समय भृगु को प्रणाम कर अनेक अस्त्रों से युक्त होकर शीघ्रता से रथ पर बैठा और अनेक प्रकार के वाद्यों समेत दुन्दुभि (नगाड़ा) एवं मृदंग बजवाया और ब्राह्मणों को धन दान दिया ॥५१-५२॥ अनन्तर वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ राम ने राजाओं की उस सभा में राजा से कहा, जो हितकर, सत्य और नीति का सार भाग था ॥५३॥

परशुराम बोले—हे राजन्! तुम धर्मात्मा, चन्द्रवंश में उत्पन्न और भगवान् विष्णु के अंश एवं विद्वान् दत्तात्रेय के शिष्य हो ॥५४॥ तथा वेदवेत्ता के मुख से वेदों को सुन कर स्वयं भी विद्वान् हो। किन्तु सम्प्रति तुम्हारी दुर्बुद्धि कैसे हो गयी सज्जनों की हिंसा की ॥५५॥ तुमने पहले लोभवश एक निरीह ब्राह्मण की हिंसा कैसे की, जिससे पतिव्रता ब्राह्मणी शोक से सन्तप्त होकर पति के साथ चली गयी ॥५६॥ हे भूप! इन दोनों के वध करने से तुम्हें लोक-परलोक में क्या लाभ होगा? कमलपत्र पर स्थित जल की भाँति समस्त संसार मिथ्या है ॥५७॥ प्राणी यहाँ केवल यश-अयश का भागी होता है और (जो कुछ करता है उसकी) कथा मात्र शेष रह जाती है। अहो सज्जनों को अयश प्राप्त करने की विडम्बना से क्या लाभ ॥५८॥ वह कपिला कहाँ गयी, उसके निमित्त होने वाला विवाद कहाँ और वे मुनि कहाँ चले गये। (इससे यही कहना पड़ता है कि) एक विद्वान् राजा ने जैसा अनुचित कर्म किया, वैसा एक हलवाहा भी नहीं कर सकता ॥५९॥ तुम्हें उपवास किये

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

त्वामुपोषितमीशं हि दृष्ट्वा तातो हि धार्मिकः। पारणां कारयामास दत्तं तस्य फलं त्वया ॥६०॥
अधीतं विधिवद्दत्तं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने। जगत्ते यशसा पूर्णमयशो वार्धके कथम् ॥६१॥
दाता बलिष्ठो धर्मिष्ठो यशस्वी पुण्यवान्सुधीः। कार्तवीर्यार्जुनसमो न भूतो न भविष्यति ॥६२॥
पुरातना वदन्तीति वन्दिनो धरणीतले। यो विख्यातः पुराणेषु तस्य दुष्कीर्तिरीदृशी ॥६३॥
दुर्वाक्यं दुःसहं राजंस्तीक्ष्णास्त्रादपि जीविनाम्। संकटेऽपि सतां वक्त्राद्दुरुक्तिर्न विनिर्गता ॥६४॥
न ददामि दुरुक्तिं ते प्रकृतं कथयाम्यहम्। उत्तरं देहि राजेन्द्र मह्यं राजेन्द्रसंसदि ॥६५॥
सूर्यचन्द्रमनूनां च वंशजाः सन्ति संसदि। सत्यं वद सभायां च शृण्वन्तु पितरः सुराः ॥६६॥
शृण्वन्तु सर्वे राजेन्द्राः सदसद्वक्तुमीश्वराः। पश्यन्तो हि समं सन्तः पाक्षिकं न वदन्ति च ॥६७॥
इत्युक्त्वा रैणुकेयश्च विरराम रणस्थले। राजा बृहस्पतिसमः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥६८॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच

शृणु राम हरेरंशो हरिभक्तो जितेन्द्रियः। श्रुतो धर्मो मुखाद्येषां त्वं च तेषां गुरोर्गुरुः ॥६९॥
कर्मणा[1] ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्मभावनाम्। स्वधर्मनिरतः शुद्धस्तस्माद्ब्राह्मण उच्यते ॥७०॥

देख कर मेरे धार्मिक पिता ने तुम्हें भोजन कांराया, जिसका तुमने यह फल प्रदान किया ॥६०॥ तुमने स्वयं वेदाध्ययन किया है, ब्राह्मणों को प्रतिदिन धन दान किया है जिससे समस्त जगत् में तुम्हारा पूर्ण यश व्याप्त है किन्तु अब वृद्धावस्था में तुमने यह अयश क्यों प्राप्त किया ॥६१॥ क्योंकि 'दाता, बलवान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुण्यवान् एवं विद्वान् कार्तवीर्यार्जुन के समान न कोई हुआ और न होगा' ऐसा पृथ्वीतल पर पुराने वन्दीगण गाते हैं। जो पुराणों में प्रख्यात है, उसकी ऐसी अपकीर्ति कैसे हुई ॥६३॥ हे राजन्! जीवों का कटुवचन तीक्ष्ण अस्त्र से भी दुःसह होता है, पर कितना बड़ा संकट क्यों न हो, सज्जनों के मुख से कभी भी बुरी बात नहीं निकलती है ॥६४॥ मैं तुम्हें दुष्ट बचन नहीं कह रहा हूँ, केवल प्रासंगिक बात कह रहा हूँ। अतः हे राजेन्द्र! इस राजसभा के भीतर मुझे उत्तर प्रदान करो ॥६५॥ क्योंकि इस सभा में सूर्य, चन्द्र एवं मनु के वंशज विराजमान हैं अतः सभा में सत्य-सत्य कहो, जिससे देवता, पितर लोग सुनें और सत् असत् कहने के अधिकारी राजेन्द्रगण भी सुनें। सन्त लोग सब को समान भाव से देखते हुए कभी भी पक्षपात नहीं करते हैं ॥६६-६७॥ इतना कह कर उस रणभूमि में परशुराम चुप हो गए, अनन्तर बृहस्पति के समान राजा ने कहना आरम्भ किया ॥६८॥

कार्तवीर्यार्जुन बोले—हे राम! आप भगवान् के अंश, भगवद्भक्त एवं जितेन्द्रिय हैं और जिनके मुख से मैंने धर्म का श्रवण किया है, तुम उनके गुरु के गुरु हो ॥६९॥ जो कर्म से ब्राह्मण होकर उत्पन्न होता है, ब्रह्म की भावना करता है, अपने धर्म में निरन्तर लगा रहता है तथा शुद्ध है उसे 'ब्राह्मण' कहते हैं ॥७०॥ जो सदैव बाहर-

---

१ ख. °णा वाऽप्यसद्बुद्ध्या क°।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अन्तर्बहिश्च मननात्कुरुते कर्मनित्यशः । मौनी शश्वद्वदेत्काले यो वै स मुनिरुच्यते ॥७१॥
स्वर्णे लोष्टे गृहेऽरण्ये पंके सुस्निग्धचन्दने । समताभावना यस्य स योगी परिकीर्तितः ॥७२॥
सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावयेत्समताधिया । हरौ करोति भक्तिं च हरिभक्तः स च स्मृतः ॥७३॥
तपो धनं ब्राह्मणानां तपः कल्पतरुर्यथा । तपस्या कामधेनुश्च सततं तपसि स्पृहा ॥७४॥
ऐश्वर्ये क्षत्रियाणां च वाणिज्ये च तथा विशाम् । शूद्राणां विप्रसेवैव स्पृहा वेदेष्वनिन्दिता ॥७५॥
क्षत्रियाणां च तपसि स्पृहाऽतीवाप्रशंसिता । ब्राह्मणानां विवादे च स्पृहाऽतीव विनिन्दिता ॥७६॥
रागी राजसिकं कार्यं[1] कुरुते कर्मरागतः । रागान्धो यो राजसिकस्तेन राजा प्रकीर्तितः ॥७७॥
रागतः कामधेनुश्च मया वै याचिता मुने । को दोष एव मे जातः क्षत्रियस्यानुरागिणः ॥७८॥
कुतः कस्य मुनेरस्ति कामधेनुस्त्वया विना । स्पृहा रणे वा भोगे वा युष्माकं च व्यतिक्रमः ॥७९॥
त्रिंशदक्षौहिणीं सेनां राजेन्द्राणां त्रिकोटिकाम् । निहत्याऽऽयान्तमेकं मां न हन्तुं सहनं मुने ॥८०॥
आत्मानं हन्तुमायान्तमपि वेदाङ्गपारगम् । न दोषो हनने तस्य न तेन ब्रह्महाऽभवम् ॥८१॥
प्रायश्चित्तं हिंसकानां न वेदेषु निरूपितम् । वधः समुचितस्तेषामित्याह कमलोद्भवः ॥८२॥

भीतर मनन करते हुए कर्म करता है और सदा मौन रह कर समय पर बोलता है, उसे 'मुनि' कहा जाता है ॥७१॥ सुवर्ण, मिट्टी, घर, वन, कीचड़ और अतिस्निग्ध चन्दन में जिसकी भावना समान रहती है, उसे 'योगी' कहा जाता है ॥७२॥ जो समान भाव से विष्णु को सभी जीवों में देखता है और भगवान् में भक्ति करता है, उसे 'हरिभक्त' कहा जाता है ॥७३॥ ब्राह्मणों का धन तप है, जो कल्पवृक्ष की भाँति (समस्त फलदायक) होता है और तपस्या कामधेनु रूप है अतः निरन्तर तप करने की इच्छा ब्राह्मणों की, क्षत्रियों की स्पृहा ऐश्वर्य के प्रति, वैश्यों की इच्छा व्यापार के प्रति और शूद्रों की स्पृहा ब्राह्मणों की सेवा के प्रति वेदों में प्रशंसनीय कही गई है ॥७४-७५॥ तप करने की क्षत्रियों की इच्छा अत्यन्त अनुचित है और विवाद करने की ब्राह्मणों की स्पृहा अति निन्दित है ॥७६॥ रागी राग (अनुराग) वश राजस कार्य करता है, और रागान्ध होकर रजोगुण में लिप्त होने के कारण 'राजा' कहलाता है ॥७७॥ हे मुने! मैंने भी राग के वश होकर कामधेनु की याचना की थी। अतः मुझ अनुरागी क्षत्रिय का दोष ही क्या हुआ ॥७८॥ तथा तुमको छोड़कर किस मुनि के पास कामधेनु है। रण या भोग के प्रति तुम्हारी इच्छा व्यतिक्रम (उलटी) है ॥७९॥ हे मुने! तीस अक्षौहिणी सेना और तीन करोड़ राजाओं को मार कर जो एक मुझे मारने आये उसका सहन कैसे किया जाये ॥८०॥ अपने को मारने के लिए कोई वेद का निष्णात विद्वान् ही क्यों न आये, तो उसके मारने में कोई दोष नहीं है, इससे हम ब्रह्मघाती नहीं हैं ॥८१॥ क्योंकि हिंसकों के वध करने पर वेदों में कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है, उनका वध करना ही समुचित है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है

---

१ क. स्वर्गं ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पित्रा ते निहता भूपा महाबलपराक्रमाः। इदानीं राजपुत्राश्च शिशवोऽत्र समागताः ॥८३॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कृत्स्नां कर्तुं महीमिति। त्वया कृता प्रतिज्ञा या तस्यास्त्वं पालनं कुरु ॥८४॥
क्षत्रियाणां रणो धर्मो रणे मृत्युर्न गर्हितः। रणे स्पृहा ब्राह्मणानां लोके वेदे बिडम्बना ॥८५॥
तपोधनानां विप्राणां वाग्बलानां युगे युगे। शान्तिः स्वस्त्ययनं कर्म विप्रधर्मो न संगरः ॥८६॥
क्षत्रियाणां बलं युद्धं व्यापारश्च बलं विशाम्। भिक्षाबलं भिक्षुकाणां शूद्राणां विप्रसेवनम् ॥८७॥
हरौ भक्तिर्हरेर्दास्यं वैष्णवानां बलं हरिः। हिंसा बलं खलानां च तपस्या च तपस्विनाम् ॥८८॥
बलं वेषश्च वेश्यानां योषितां यौवनं बलम्। बलं प्रतापो भूपानां बालानां रोदनं बलम् ॥८९॥
सतां सत्यं बलं मिथ्या बलमेवासतां सदा। अनुगानामनुगमः स्वल्पस्वानां च संचयः ॥९०॥
विद्या बलं पण्डितानां धैर्यं साहसिनां बलम्। शश्वत्कुकर्मशीलानां गाम्भीर्यं साहसं बलम् ॥९१॥
धनं बलं च धनिनां शुचीनां च विशेषतः। बलं विवेकः शान्तानां गुणिनां बलमेकता ॥९२॥
गुणो बलं च गुणिनां चौराणां चौर्यमेव च। प्रियवाक्यं च कापट्यमधर्मः पुंश्चलीबलम् ॥९३॥
हिंसा च हिंस्रजन्तूनां सतीनां पतिसेवनम्। वरशापौ सुराणां च शिष्याणां गुरुसेवनम् ॥९४॥
बलं धर्मो गृहस्थानां भृत्यानां राजसेवनम्। बलं स्तवः स्तावकानां ब्रह्म च ब्रह्मचारिणाम् ॥९५॥
यतीनां च सदाचारो न्यासः संन्यासिनां बलम्। पापं बलं पातकिनामशक्तानां हरिर्बलम् ॥९६॥

तुम्हारे पिता ने महाबलवान् और महापराक्रमी राजाओं का हनन किया है, इस समय उन्हीं के राजकुमार बच्चे ये तुम्हारे सामने आये हैं ॥८३॥ अतः तुमने भी इक्कीस बार इस समस्त पृथिवी को निर्भूप करने की जो प्रतिज्ञा की है, उसका पालन करो ॥८४॥ क्षत्रियों का धर्म युद्ध करना है, इसलिए युद्ध में उनकी मृत्यु होना निन्दित नहीं है। और ब्राह्मणों की युद्ध विषयिणी इच्छा भी लोक वेद दोनों में विडम्बना मात्र है ॥८५॥ इसलिए तपोधन वाले ब्राह्मणों का, जिनका वाग् बल प्रधान है, प्रत्येक युग में शान्ति समेत स्वस्त्ययन (मांगलिक) कर्म करना ही विप्र-धर्म है, युद्ध करना नहीं ॥८६॥ क्षत्रियों का युद्ध बल, वैश्यों का व्यापार बल, भिक्षुक (संन्यासी) का भिक्षा बल शूद्रों का ब्राह्मण-सेवा बल, हरिदास्यों का भगवान् में भक्ति करना बल, वैष्णवों का नारायण बल, दुष्टों का हिंसा बल, तपस्वियों का तप बल, वेश्याओं का वेशभूषा बल, स्त्रियों का यौवन बल, राजाओं का प्रताप बल, बालकों का रोदन बल, सज्जनों का सत्य बल, असज्जनों का सदा मिथ्या कहना बल, अनुगामियों का अनुगमन (पीछे चलना) बल, अल्प धन वालों का संचय बल, पण्डितों का विद्या बल, साहसियों का धैर्य बल, धनिकों और विशेषकर पवित्र रहने वालों का धन बल, शान्त पुरुषों का विवेक बल, गुणियों का एकता बल, गुणीलोगों का गुण बल, चोरों का चोरी बल और पुंश्चली स्त्रियों का कपटपूर्ण प्रिय बोलना तथा अधर्म करना बल है ॥८७-९३॥ हिंसक जीवों का हिंसा बल, सती स्त्रियों का पति-सेवा बल, देवों का वरदान और शाप बल, शिष्यों का गुरु-सेवा बल, गृहस्थों का धर्म बल, नौकरों का राज-सेवा बल, स्तुति करने वालों का स्तुति बल, ब्रह्मचारियों का ब्रह्म बल, यतियों का सदाचार बल, संन्यासियों का त्याग बल, पातकियों का पाप बल, असमर्थ लोगों का भगवान् बल हैं ॥९४-९६॥ पुण्यात्माओं का पुण्य बल, प्रजाओं का राजा बल,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पुण्यं बलं पुण्यवतां प्रजानां नृपतिर्बलम्। फलं बलं च वृक्षाणां जलजानां जलं बलम् ॥९७॥
जलं बलं च सस्यानां मत्स्यानां च जलं बलम्। शान्तिर्बलं च भूपानां विप्राणां च विशेषतः ॥९८॥
विप्रः शान्तो रणोद्योगी नैव दृष्टो न च श्रुतः। स्थिते नारायणे देवे[1] बभूवाद्य विपर्ययः ॥९९॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विरराम रणाजिरे। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सद्यस्तूष्णीं बभूव ह ॥१००॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे तीक्ष्णशस्त्रासिपाणयः। आरेभिरे रणं कर्तुं महावीरास्तदाज्ञया ॥१०१॥
रणोन्मुखांश्च तान्दृष्ट्वा मत्स्यराजो महाबलः। समारेभे रणं कर्तुं मङ्गलो मङ्गलालयः ॥१०२॥
शरजालेन राजेन्द्रो वारयामास तानपि। चिच्छिदुः शरजालं च जमदग्निसुतास्तदा ॥१०३॥
राजा चिक्षेप दिव्यास्त्रं शतसूर्यप्रभं मुने। माहेश्वरेण मुनयश्चिच्छिदुश्चैव लीलया ॥१०४॥
दिव्यास्त्रेणैव मुनयश्चिच्छिदुः सशरं धनुः। रथं च सारथिं चैव राज्ञः संनाहमेव च ॥१०५॥
न्यस्तशस्त्रं नृपं दृष्ट्वा मुनयो हर्षविह्वलाः। दधार शूलिनः शूलं मत्स्यराजजिघांसया ॥१०६॥
शूलनिःक्षेपसमये वाग्बभूवाशरीरिणी। शूलं त्यजत विप्रेन्द्राः शिवस्याव्यर्थमेव च ॥१०७॥
शिवस्य कवचं दिव्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा। मत्स्यराजगलेऽस्त्येतत्सर्वावयवरक्षणम् ॥१०८॥

वृक्षों का फल बल, जलोत्पन्नों का जल बल, सस्यों (धान्यों) का जल बल, मत्स्यों का जल बल, राजाओं और विशेषतया ब्राह्मणों का बल शान्ति है ॥९७-९८॥ युद्ध के लिए प्रयत्न करने वाला शान्त ब्राह्मण न कहीं देखा गया है और न सुना गया है। नारायण देव के रहते ही ऐसा विपर्यय (उलटा) हो रहा है ॥९९॥ उस रणांगण में इतना कहकर वह राजा चुप हो गया और उसकी बातें सुनकर वे भी तुरन्त चुप हो गये ॥१००॥ अनन्तर तीक्ष्ण शस्त्र तलवार आदि हाथ में लिए राम के महावीर भ्राताओं ने उनकी आज्ञा से युद्ध करना आरम्भ कर दिया ॥१०१॥ महाबली राजेन्द्र मत्स्यराज भी, जो मंगल एवं मंगल निवास रूप हैं, उन्हें रणोन्मुख देखकर युद्ध के लिए तैयार हो गया ॥१०२॥ राजेन्द्र ने अपने बाण-जालों द्वारा उन्हें रोक दिया और जमदग्नि के पुत्रों ने भी उसी समय उसके बाण-जाल को काट दिया ॥१०३॥ हे मुने ! राजा ने सैकड़ों सूर्य के समान कान्तिपूर्ण दिव्यास्त्र का प्रयोग किया, जिसे मुनियों ने माहेश्वर अस्त्र द्वारा लीला की भाँति काट दिया ॥१०४॥ अनन्तर मुनियों ने दिव्यास्त्र द्वारा राजा का बाण समेत धनुष, रथ, सारथी और कवच खण्ड-खण्ड करके गिरा दिया ॥१०५॥ उस समय राजा को शस्त्र-रहित देखकर मुनिगण बहुत प्रसन्न हुए और मत्स्यराज का हनन करने के लिए उन लोगों ने शंकर का शूल प्रयोग करना चाहा ॥१०६॥ उसी बीच जब वे शूल प्रयोग कर रहे थे, आकाश वाणी हुई—हे विप्रेन्द्र ! शिव का यह शूल व्यर्थ नहीं जाता है अतः अभी इसका प्रयोग न करो। राजा को पहले समय में दुर्वासा ने दिव्य शिव-कवच प्रदान किया था, जो राजा के गले

---

१ क. विप्रे।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्राणानां च प्रदातारं कवचं याचतं नृपम्। तदा निक्षिप्तशूलं च जघान नृपतीश्वरम् ॥१०९॥
तच्छूलं तं नृपं प्राप्य शतखण्डं गतं मुने। श्रुत्वैवाऽऽकाशवाणीं च शृङ्गी संन्यासवेषकृत् ॥११०॥
ययाचे कवचं भूपं जमदग्निसुतो महान्। राजा ददौ च कवचं ब्रह्माण्डविजयं परम् ॥१११॥
गृहीत्वा कवचं तच्च शूलेनैव जघान ह। पपात मत्स्यराजश्च शतचन्द्रसमाननः ॥
महाबलिष्ठो गुणवांश्चन्द्रवंशसमुद्भवः ॥११२॥

नारद उवाच

शिवस्य कवचं ब्रूहि मत्स्यराजेन यद्धृतम्। नारायण महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम ॥११३॥

नारायण उवाच

कवचं शृणु विप्रेन्द्र शंकरस्य महात्मनः। ब्रह्माण्डविजयं नाम सर्वावयवरक्षणम् ॥११४॥
पुरा दुर्वाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते। दत्त्वा षडक्षरं मन्त्रं [1]सर्वपापप्रणाशनम् ॥११५॥
स्थिते च कवचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम्। अस्त्रे शस्त्रे जले वह्नौ सिद्धिश्चेन्नास्ति संशयः ॥११६॥
यद्धृत्वा पठनाद्बाणः शिवत्वं प्राप लीलया। बभूव शिवतुल्यश्च यद्धृत्वा नन्दिकेश्वरः ॥११७॥
वीरश्रेष्ठो वीरभद्रो साम्बोऽभूद्धारणाद्यतः। त्रैलोक्यविजयी राजा हिरण्यकशिपुः स्वयम् ॥११८॥

में बँधा है और उसके समस्त अवयव की रक्षा करता है। प्रथम राजा से उस प्राणप्रद कवच को मांग लो, पश्चात् शूल का प्रयोग करो। हे मुने! उन लोगों ने शूल का प्रयोग कर दिया था इसलिए राजा के पास पहुँचकर वह शूल सैकड़ों खण्डों में होकर गिर गया। आकाशवाणी सुनकर जमदग्नि के पुत्र शृंगी संन्यासी ने वेष बनाकर राजा से कवच की याचना की। राजा ने ब्रह्माण्डविजय नामक वह कवच सहर्ष प्रदान किया ॥१०७-१११॥ अनन्तर कवच लेकर उन्होंने शूल का प्रयोग किया, जिससे आहत होकर मत्स्यराज गिर गया, जो सैकड़ों चन्द्रों के समान मुख, वाला, महाबली, गुणवान् एवं चन्द्रवंश में उत्पन्न था ॥११२॥

नारद बोले—हे नारायण! हे महाभाग! मत्स्यराज ने शिव का जो कवच धारण किया था, वह मुझे बताने की कृपा करें, उसे सुनने का मुझे कौतूहल है ॥११३॥

नारायण बोले—हे विप्रेन्द्र! महात्मा शिव का ब्रह्माण्ड विजय नामक कवच जो समस्त शरीर के अंगों की रक्षा करता है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। पहले समय में दुर्वासा ने विद्वान् मत्स्यराज को प्रथम षडक्षर मंत्र प्रदान किया था, जो समस्त पापों का नाश करता है ॥११४-११५॥ देह में कवच के रहते हुए प्राणियों की मृत्यु नहीं हो सकती है, अस्त्र, शस्त्र, जल, अग्नि भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं, इसमें संशय नहीं ॥११६॥ जिसे धारण कर पाठ करने से बाणासुर ने लीला की भांति शिवत्व प्राप्त किया, नन्दिकेश्वर शिव के समान हो गये, साम्ब वीरों में श्रेष्ठ तथा महावीर हुए तथा जिसे धारण कर स्वयं राजा हिरण्यकशिपु तीनों लोकों का विजेता हुआ ॥११७-११८॥

---

१. क. ओं नमः शिवायेति च।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

हिरण्याक्षश्च विजयी चाभवद्धारणाद्धि सः। यद्धृत्वा पठनात्सिद्धो दुर्वासा विश्वपूजितः ॥११९॥
जैगीषव्यो महायोगी पठनाद्धारणाद्यतः। यद्धृत्वा वामदेवश्च देवलः पवनः स्वयम्
अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्चाप्यभवद्विश्वपूजितः ॥१२०॥
ॐ नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदाऽवतु। ॐ नमः शिवायेति च स्वाहा भालं सदाऽवतु ॥१२१॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदाऽवतु। ॐ ह्रीं क्लीं हूं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम् ॥१२२॥
ॐ नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदाऽवतु ॥१२३॥
ॐ ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं महेशाय स्वाहा चाधरं पातु मे सदा ॥१२४॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान्सदाऽवतु। ॐ ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ॥१२५॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं मे रुद्राय स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। ॐह्रीं मैं श्रीमीश्वराय स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥१२६॥
ॐह्रीं क्लीं मृत्युंजयाय स्वाहा भ्रुवौ सदाऽवतु। ॐह्रीं श्रींक्लीमीशानाय स्वाहा पार्श्वं सदाऽवतु ॥१२७॥
ॐ ह्रीमीश्वराय स्वाहा चोदरं पातु मे सदा। ॐ श्रीं ह्रीं मृत्युंजयाय स्वाहा बाहू सदाऽवतु ॥१२८॥
ॐ ह्रीं श्रीं [1]क्लीमीश्वराय स्वाहा पातु करौ मम। ॐ महेश्वराय रुद्राय नितम्बं पातु मे सदा ॥१२९॥
ॐ ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौ सदाऽवतु। ॐ सर्वेश्वराय शर्वाय स्वाहा पादौ सदाऽवतु ॥१३०॥

जिसके धारण से हिरण्याक्ष विजयी हुआ, जिसके पाठ करने से दुर्वासा सिद्ध और विश्वपूजित हुए ॥११९॥ जिसे पढ़ने और धारण करने से जैगीषव्य महायोगी हुए तथा वामदेव, देवल, स्वयं पवन देव, अगस्त्य और पुलस्त्य विश्वपूजित हुए हैं ॥१२०॥ 'ओं नमः शिवाय' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'ओं नमः शिवाय स्वाहा' सदा भाल की रक्षा करे ॥१२१॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं शिवाय स्वाहा' नेत्र युगल की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं क्लीं हूं शिवाय नमः' मेरी नासिका की रक्षा करे ॥१२२॥ 'ओं नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा' सदा कण्ठ की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा' दोनों कानों की रक्षा करे ॥१२३॥ 'ओं ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा' सदा दाँतों की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं महेशाय स्वाहा' सदा मेरे अधर की रक्षा करे ॥१२४॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा' सदा केशों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा' सदा वक्षःस्थल की रक्षा करे ॥१२५॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं रुद्राय स्वाहा' मेरी नाभि की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा' मेरे पृष्ठ की रक्षा करे ॥१२६॥ 'ओं ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा' सदा भौंहों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं ह्रीं ईशानाय स्वाहा' सदा पार्श्व भाग की रक्षा करे ॥१२७॥ 'ओं ह्रीं ईश्वराय स्वाहा' उदर की रक्षा करे। 'ओं श्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा' सदा बाहुओं की रक्षा करे ॥१२८॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहा' मेरे हाथों की रक्षा करे'। 'ओं महेश्वराय रुद्राय' नितम्ब की सदा रक्षा करे ॥१२९॥ 'ओं ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा' चरण की रक्षा करे'। 'ओं सर्वेश्वराय सर्वाय स्वाहा' चरणों की रक्षा करे ॥१३०॥ पूर्व दिशा में भूतेश, अग्निकोण में शंकर, दक्षिण

---

१. क. ०मीशानाय।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्राच्यां मां पातु भूतेश आग्नेय्यां पातु शंकरः। दक्षिणे पातु मां रुद्रो नैर्ऋत्यां स्थाणुरेव च ॥१३१॥
पश्चिमे खण्डपरशुर्वायव्यां चन्द्रशेखरः। उत्तरे गिरिशः पातु चैशान्यामीश्वरः स्वयम् ॥१३२॥
ऊर्ध्वे मृडः सदा पातु चाधो मृत्युंजयः स्वयम्। जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे सदा ॥१३३॥
पिनाकी पातु मां प्रीत्या भक्तं वै भक्तवत्सलः। इति ते कथितं वत्स कवचं परमाद्भुतम् ॥१३४॥
दशलक्षजपेनैव सिद्धिर्भवति निश्चितम्। यदि स्यात्सिद्धकवचो रुद्रतुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥१३५॥
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्। कवचं काण्वशाखोक्तमतिगोप्यं सुदुर्लभम् ॥१३६॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च। सर्वाणि कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१३७॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। सर्वज्ञः सर्वसिद्धेशो मनोयायी भवेद्ध्रुवम् ॥१३८॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्यः शंकरप्रभुम्। शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥१३९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शंकरकवचकथन
नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

में रुद्र, और नैर्ऋत्य में स्थाणु मेरी रक्षा करें॥१३१॥ पश्चिम में खण्डपरशु, वायव्य में चन्द्रशेखर, उत्तर में गिरीश, ईशान में स्वयं ईश्वर रक्षा करें॥१३२॥ ऊपर की ओर मृड, नीचे स्वयं मृत्युञ्जय और जल, स्थल, अन्तरिक्ष, शयन, जागरण में मुझ भक्त की भक्तवत्सल पिनाकी प्रेम से रक्षा करें। हे वत्स! इस भाँति मैंने तुम्हें परम अद्भुत कवच बता दिया॥१३३-१३४॥ दश लाख जप करने से इसकी निश्चित सिद्धि होती है। यादे सिद्धकवच हो जाये तो निश्चित ही रुद्र के समान हो जाता है॥१३५॥ स्नेहवश मैंने यह कवच तुम्हें बता दिया है, किसी से कहना नहीं। काण्वशाखोक्त यह कवच अति गोप्य और अति दुर्लभ है॥१३६॥ सहस्र अश्वमेध, सौ राजसूय आदि सभी यज्ञ इस कवच की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं॥१३७॥ इस कवच के प्रसाद से मनुष्य जीवन्मुक्त, सर्वज्ञाता, समस्त सिद्धियों का ईश तथा मन के समान वेगगामी होता है॥१३८॥ इस कवच को बिना जाने जो प्रभु शंकर की सेवा करता है, सौ लाख जप करने पर भी उसका मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होता है॥१३९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में
शंकरकवचकथन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३५॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

मत्स्यराजे निपतिते राजा युद्धविशारदः । राजेन्द्रान्प्रेषयामास युद्धशास्त्रविशारदान् ॥१॥
बृहद्बलं सोमदत्तं विदर्भं मिथिलेश्वरम् । निषधाधिपतिं चैव मगधाधिपतिं तथा ॥२॥
आययुः समरे योद्धुं जामदग्न्यं महारथाः । त्रितयाक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह नारद ॥३॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे वीरास्तीक्ष्णास्त्रपाणयः । वारयामासुरस्त्रैश्च तानेव रणमूर्धनि ॥४॥
ते वीराः शरजालेन दिव्यास्त्रेण प्रयत्नतः । वारयामासुरेकैकं भ्रातृवर्गान्भृगोस्तथा ॥५॥
आययौ समरे शीघ्रं दृष्ट्वा तांश्च पराजितान् । पिनाकहस्तः स भृगुर्ज्वलदग्निशिखोपमः ॥६॥
चिक्षेप नागपाशं च जामदग्न्यो महाबलः । चिच्छेद तं गारुडेन सोमदत्तो महाबलः ॥७॥
भृगुः शंकरशूलेन सोमदत्तं जघान ह । बृहद्बलं च गदया विदर्भं मुष्टिभिस्तथा ॥८॥
मैथिलं मुद्गरेणैव शक्त्या वै नैषधं तथा । मागधं चरणोद्घातैरस्त्रजालेन सैनिकान् ॥९॥
निहत्य निखिलान्भूपान्संहाराग्निसमो रणे । दुद्राव कार्तवीर्यं च जामदग्न्यो महाबलः ॥१०॥
दृष्ट्वा तं योद्धुमायान्तं राजानश्च महारथाः । आययुः समरं कर्तुं कार्तवीर्यं निवार्य च ॥११॥

अध्याय ३६

नारायण बोले—हे नारद ! मत्स्यराज के मारे जाने पर युद्धनिपुण राजा ने युद्धशास्त्र में पारंगत राजेन्द्रों—बृहद्बल, सोमदत्त, विदर्भ, मिथिलेश्वर, निषधेश्वर तथा मगधेश्वर को भेजा। नारद! तीन अक्षौहिणी सेना लेकर उन लोगों ने जमदग्नि-पुत्र के साथ युद्ध करने के लिए आये ॥१-३॥ तीक्ष्ण अस्त्र हाथों में लिए राम के सभी वीर भ्राताओं ने रणक्षेत्र में अपने अस्त्रों द्वारा उन्हें रोक दिया ॥४॥ उन वीरों ने भी बाण-समूह और दिव्य अस्त्रों द्वारा भृगु के भ्राताओं को क्रमशः एक-एक करके रोक दिया ॥५॥ भ्राताओं को पराजित देखकर भृगु स्वयं हाथ में पिनाक धनुष लिए प्रज्वलित अग्नि-शिखा की भांति देदीप्यमान होते हुए रणभूमि में आ गये ॥६॥ अनन्तर महाबली राम ने नागपाश का प्रयोग किया। महाबलवान् सोमदत्त ने उसे गरुडास्त्र से काट दिया ॥७॥ अनन्तर भृगु ने शंकर-शूल द्वारा सोमदत्त का हनन कर दिया। उसी भाँति गदा से बृहद्बल का, मुष्टियों से विदर्भ का, मुद्गर से मैथिल का, शक्ति से नैषध का, चरण-प्रहार से मगधेश्वर का तथा अस्त्रों के समूह से सैनिकों का वध किया ॥८-९॥ रण में संहाराग्नि की भाँति महाबली राम ने समस्त भूपों को मार कर कार्त्तवीर्य की ओर दौड़े ॥१०॥ महारथी राजाओं ने भृगु को युद्ध करने के लिए आते हुए देख कर कार्त्तवीर्य को हटाकर स्वयं युद्ध करना आरम्भ किया ॥११॥ उनमें सौ कान्यकुब्ज, सौ सौराष्ट्र, सौ राष्ट्रीय, सौ

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कान्यकुब्जाश्च शतशः सौराष्ट्राः शतशस्तथा। राष्ट्रीयाः शतशश्चैव वीरेन्द्राः शतशस्तथा ॥१२॥
सौम्या[1] वाङ्गाश्च शतशो महाराष्ट्रास्तथा दश। तथा गुर्जरजातीयाः कलिङ्गाः शतशस्तथा ॥१३॥
कृत्वा ते शरजालं च [2]भृगुं चिच्छिदुरेव च। तं छित्वाऽभ्युत्थितो रामो नीहारमिव भास्करः ॥१४॥
त्रिरात्रं युयुधे रामस्तैः सार्धं समराजिरे। द्वादशाक्षौहिणीं सेनां तथा चिच्छेद पर्शुना ॥१५॥
रम्भास्तम्भसमूहं च यथा खड्गेन लीलया। छित्त्वा सेनां भूपवर्गं जघान शिवशूलतः ॥१६॥
सर्वास्तान्निहतान्दृष्ट्वा सूर्यवंशसमुद्भवः। आजगाम सुचन्द्रश्च लक्षराजेन्द्रसंयुतः ॥१७॥
द्वादशाक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह संयुगे। कोपेन युयुधे रामं सिंहं सिंहो यथा रणे ॥१८॥
भृगुः शंकरशूलेन नृपलक्षं निहत्य च। द्वादशाक्षौहिणीं सेनामहन्वै पर्शुना बली ॥१९॥
निहत्य सर्वाः सेनाश्च सुचन्द्रं युयुधे बली। नागास्त्रं प्रेरयामास निर्हृतं तं भृगुः स्वयम् ॥२०॥
नागपाशं च चिच्छेद गारुडेन नृपेश्वरः। जहास च भृगुं राजा समरे च पुनः पुनः ॥२१॥
भृगुर्नारायणास्त्रं च चिक्षेप रणमूर्धनि। अस्तं ययौ तं निहन्तुं शतसूर्यसमप्रभम् ॥२२॥
दृष्ट्वाऽस्त्रं नृपशार्दूलश्चावरुह्य रथात्क्षणात्। न्यस्तशस्त्रः प्राणमच्च स्तुत्वा नारायणं शिवम् ॥२३॥
तमेव प्रणतं त्यक्त्वा ययौ नारायणान्तिकम्। अस्त्रराजो भगवतो रामः संप्राप विस्मयम् ॥२४॥

वीरेन्द्र (प्रधानवीर) सौ सौम्य, सौ बंगाल के, दस सौ महाराष्ट्र के, सौ गुजरात एवं कलिंग देश के राजा थे ॥१२-१३॥ उन लोगों ने बाणों का जाल बनाकर परशुराम को छाप लिया, किन्तु राम उसे काट कर, कुहासे को काटकर निकलते हुए सूर्य की भाँति ऊपर उठ गये ॥१४॥ समरांगण में राम ने उन राजाओं के साथ तीन रात्रि तक युद्ध किया—फरसे से बारह अक्षौहिणी सेना को काट डाला। कदली के स्तम्भ-समूह को खड्ग से काटने की भांति उन्होंने सैनिकों को लीलापूर्वक काटने के उपरान्त शिवशूल द्वारा राजाओं के समूह को मार डाला ॥१५-१६॥ उन सबको निहत देखकर राजा सुचन्द्र, जो सूर्यवंश में उत्पन्न था, एक लाख राजाओं को साथ लेकर वहाँ युद्ध करने के लिए आ गया ॥१७॥ युद्ध में राजा के साथ बारह अक्षौहिणी सेना थी। सिंह के ऊपर सिंह के आक्रमण करने की भाँति राम ने उस रण में क्रुद्ध होकर युद्ध किया ॥१८॥ बलवान् भृगु ने शंकर के शूल से राजा के एक लाख राजाओं को मारकर उनकी बारह अक्षौहिणी सेना को भी फरसे से काटकर गिरा दिया ॥१९॥ सेनाओं को मारने के अनन्तर उन्होंने सुचन्द्र से युद्ध करना आरम्भ किया। बली भृगु ने स्वयं उसके ऊपर नागास्त्र का प्रयोग किया, जिसे उस नृपेश्वर ने गारुड अस्त्र से काट दिया। और उस युद्ध में वह राजा भृगु का बार-बार उपहास करने लगा ॥२०-२१॥ यह देखकर भृगु ने रणस्थल में उस पर नारायणास्त्र का प्रयोग किया, जो सैकड़ों सूर्य के समान कान्ति पूर्ण था ॥२२॥ वह राजसिंह उस अस्त्र को आते हुए देख कर उसी क्षण से रथ से उतरकर भूमि पर खड़ा हो गया और शस्त्ररहित होकर नारायण और शिव की स्तुतिपूर्वक उसने उसे प्रणाम किया ॥२३॥ उसे प्रणत देख कर वह अस्त्रराज राजा को छोड़ कर नारायण के समीप चला गया। इसे देख राम को अति आश्चर्य

१क० सौवीराङ्गा० । २ख० भृगुश्चिच्छेद तत्क्षणम्।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

भृगुः शक्तिं च मुसलं तोमरं पट्टिशं तथा। गदां पशुं च कोपेन चिक्षिपे तज्जिघांसया ॥२५॥
जग्राह काली तान्सर्वान्सुचन्द्रस्यन्दनस्थिता। चिक्षेप शिवशूलं स नृपमाल्यं बभूव सः ॥२६॥
ददर्श पुरतो रामो भद्रकालीं जगत्प्रसूम्। वहन्तीं मुण्डमालां च विकटास्यां भयंकरीम् ॥२७॥
विहाय शस्त्रमस्त्रं च पिनाकं च भृगुस्तदा। तुष्टाव तां महामायां भक्तिनम्रात्मकंधरः २८॥

परशुराम उवाच

नमः शंकरकान्तायै सारायै ते नमो नमः। नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै ते नमो नमः ॥२९॥
नमो नमो जगद्धात्र्यै जगत्कर्त्र्यै नमो नमः। नमोऽस्तु ते जगन्मात्रे कारणायै नमो नमः ॥३०॥
प्रसीद जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि। त्वत्पादौ शरणं यामि प्रतिज्ञां सार्थिकां कुरु ॥३१॥
त्वयि मे विमुखायाञ्च को मां रक्षितुमीश्वरः। त्वं प्रसन्ना भव शुभे मां भक्तं भक्तवत्सले ॥३२॥
युष्माभिः शिवलोके च मह्यं दत्तो वरः पुरा। तं वरं सफलं कर्तुं त्वमर्हसि वरानने ॥३३॥
रैणुकेयस्तवं श्रुत्वा प्रसन्नाऽभवदम्बिका। मा भैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्तरधीयत ॥३४॥
एतद्भृगुकृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। महाभयात्समुत्तीर्णः स भवेदेव लीलया ॥३५॥
स पूजितश्च त्रैलोक्ये तत्रैव विजयी भवेत्। ज्ञातिश्रेष्ठो भवेच्चैव वैरिपक्षविमर्दकः ॥३६॥
एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा भृगुं धर्मभृतां वरम्। आगत्य कथयामास रहस्यं राममेव च ॥३७॥

हुआ ॥२४॥ अनन्तर भृगु ने क्रुद्ध होकर उसका हनन करने के लिए शक्ति, मूसल, तोमर, पट्टिश, गदा और फरसे का प्रयोग किया, किन्तु सुचन्द्र के रथ पर स्थित काली ने उन सबको पकड़ लिया। राम ने शिव-शूल का प्रयोग किया, वह राजा के पास पहुँच कर उनके कण्ठ की माला हो गया ॥२५-२६॥ अनन्तर राम ने जगज्जननी काली को देखा, जो मुण्डमाला धारण किये विकट मुख एवं भीषण रूप वाली थीं ॥२७॥ भृगु ने तुरन्त शस्त्र, अस्त्र और पिनाक को अलग रख कर भक्ति से कन्धे झुकाये हुए, उस महामाया की स्तुति करना आरम्भ किया ॥२८॥

परशुराम बोले—शंकर की कान्ता को नमस्कार है, सारभाग रूप को बार-बार नमस्कार है, दुर्गति-नाशिनी को नमस्कार है, महामाया को बार-बार नमस्कार है ॥२९॥ जगत् की धात्री को नमस्कार है, जगत् का निर्माण करने वाली को नमस्कार है। जगत् की माता को नमस्कार है और कारण रूप आपको बार-बार नमस्कार है ॥३०॥ हे सृष्टि का संहार करने वाली जगत् की माता ! प्रसन्न हो जाओ, मैं तुम्हारे चरण की शरण में हूँ, मेरी प्रतिज्ञा सफल करो ॥३१॥ तुम्हारे विमुख रहने पर मुझे रक्षित रखने में कौन समर्थ हो सकता है। अतहे: शुभे ! हे भक्तवत्सले ! मुझ भक्त पर तुम प्रसन्न हो जाओ ॥३२॥ हे वरानने ! पूर्व समय तुम लोगों ने शिव-लोक में मुझे वरदान दिया था, उसे सफल करने की कृपा करो ॥३३॥ उपरान्त रेणुका-पुत्र राम की ऐसी स्तुति सुन कर अम्बिका देवी प्रसन्न हो गयीं। 'मत डरो' ऐसी आकाशवाणी हुई और वे उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गयीं ॥३४॥ भृगुरचित इस स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करेगा वह महान् भय से लीला पूर्वक पार हो जायगा ॥३५॥ वह तीनों लोक में पूजित एवं विजयी होगा, ज्ञानियों में श्रेष्ठ और शत्रुदल का मर्दन करेगा ॥३६॥ इसी बीच धार्मिकश्रेष्ठ भृगु के समीप ब्रह्मा आये और उनसे समस्त रहस्य बताया ॥३७॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्मोवाच

शृणु राम महाभाग रहस्यं पूर्वमेव च। सुचन्द्रजयहेतुं च प्रतिज्ञासार्थकाय च ॥३८॥
दशाक्षरी महाविद्या दत्ता दुर्वाससा पुरा। सुचन्द्रायैव कवचं भद्रकाल्या सुदुर्लभम् ॥३९॥
कवचं भद्रकाल्याश्च देवानां च सुदुर्लभम्। कवचं तद्गले यस्य सर्वशत्रुविमर्दकम् ॥४०॥
अतीव पूज्यं शस्तं च त्रैलोक्यजयकारणम्। तस्मिन्स्थिते च कवचे कस्त्वं जेतुमलं भुवि ॥४१॥
भृगुर्गच्छतु भिक्षार्थं करोतु प्रार्थनां नृपम्। सूर्यवंशोद्भवो राजा दाता परमधार्मिकः ॥४२॥
प्राणांश्च कवचं मन्त्रं सर्वं दास्यति निश्चितम् ॥४३॥
भृगुः संन्यासिवेषेण गत्वा राजान्तिकं मुने। भिक्षां चकार मन्त्रं च कवचं परमाद्भुतम् ॥४४॥
राजा ददौ च तन्मन्त्रं कवचं परमादरात्। ततः शंकरशूलेन तं जघान नृपं भृगुः ॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भृगुकार्तवीर्ययुद्धवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

कवचं श्रोतुमिच्छामि तां च विद्यां दशाक्षरीम्। नाथ त्वत्तो हि सर्वज्ञ भद्रकाल्याश्च सांप्रतम् ॥१॥

ब्रह्मा बोले—हे महाभाग! हे राम! मैं तुम्हें पहले का एक रहस्य बता रहा हूँ, जो सुचन्द्र को जीतने का कारण है एवं प्रतिज्ञा को सफल करेगा, सुनो। पूर्वकाल में दुर्वासा ने दश अक्षर की महाविद्या और भद्रकाली का अति दुर्लभ कवच सुचन्द्र को प्रदान किया था ॥३८-३९॥ भद्रकाली का कवच देवों के लिए भी अति दुर्लभ है। समस्त शत्रुओं का मर्दन करने वाला वह कवच, जो त्रैलोक्य में अत्यन्त पूजित, प्रशस्त और तीनों लोकों के विजय का कारण है, जिसके गले में बँधा रहेगा, उस तुमको भूतल में जीतने के लिए भला कौन समर्थ हो सकता है? ॥४०-४१॥ अतः हे भृगो! उसे राजा से मांगने के लिए तुम जाओ और उसकी प्रार्थना करो। राजा सूर्य वंश में उत्पन्न, दाता और परम धार्मिक है। वह प्राण, कवच और मंत्र आदि सब कुछ तुम्हें निश्चित दे देगा ॥४२-४३॥ हे मुने! भृगु ने संन्यासी के वेष में राजा के पास जाकर मंत्र एवं परमाद्भुत कवच की याचना की ॥४४॥ राजा ने परम आदर-पूर्वक उन्हें मन्त्र समेत कवच प्रदान किया। जिससे भृगु ने शिव शूल द्वारा उस राजा को मार दिया ॥४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में भृगुकार्त्तवीर्य्य-युद्धवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

अध्याय ३७

नारद बोले—हे नाथ! हे सर्वज्ञ! मैं इस समय भद्रकाली का कवच और वह दशाक्षरी विद्या आपसे जानना चाहता हूँ, बताने की कृपा करें ॥१॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि महाविद्यां दशाक्षरीम्। गोपनीयं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥२॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहेति च दशाक्षरीम्। दुर्वासा हि ददौ राज्ञे पुष्करे सूर्यपर्वणि॥३॥
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिः कृता पुरा। पञ्चलक्षजपेनैव पठन्कवचमुत्तमम्॥४॥
बभूव सिद्धकवचोऽप्ययोध्यामाजगाम सः। कृत्स्नां हि पृथिवीं जिग्ये कवचस्य प्रसादतः॥५॥

नारद उवाच

श्रुता दशाक्षरी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा। अधुना श्रोतुमिच्छामि कवचं ब्रूहि मे प्रभो॥६॥

नारायण उवाच

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम्। नारायणेन यद्दत्तं कृपया शूलिने पुरा॥७॥
त्रिपुरस्य वधे घोरे शिवस्य विजयाय च। तदेव शूलिना दत्तं पुरा दुर्वाससे मुने॥८॥
दुर्वाससा च यद्दत्तं सुचन्द्राय महात्मने। अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम्॥९॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। क्लीं कपालं सदा पातु ह्रीं ह्रीं ह्रीमिति लोचने॥१०॥
ॐ ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा नासिकां मे सदाऽवतु। क्लीं कालिके रक्ष स्वाहा दन्तान्सदाऽवतु॥११॥
क्लीं भद्रकालिके स्वाहा पातु मेऽधरयुग्मकम्। ॐ ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु॥१२॥

नारायण बोले—हे नारद! मैं तुम्हें दशाक्षरी विद्या तथा वह गोपनीय कवच, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है, बता रहा हूँ, सुनो॥२॥

'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा' यही दशाक्षरी विद्या है, जिसे सूर्यग्रहण के समय पुष्कर में दुर्वासा ने राजा को प्रदान किया था॥३॥ दश लाख जप करके उन्होंने पूर्वकाल में इस मंत्र की सिद्धि प्राप्त की थी और पाँच लाख जप करके पाठ करते हुए परमोत्तम कवच को सिद्ध किया था॥४॥ सिद्धकवच होने पर वे अयोध्या आये थे और इसी कवच के प्रभाव से समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त किया था॥५॥

नारद बोले—हे प्रभो! मैं तीनों लोकों में दुर्लभ दशाक्षरी विद्या सुन ली, किन्तु अब कवच सुनना चाहता हूँ, अतः उसे कहने की कृपा करें॥६॥

नारायण बोले—हे विप्रेन्द्र! मैं तुम्हें वह परम अद्भुत कवच बता रहा हूँ, जिसे पूर्व समय नारायण ने कृपया शिव को दिया था॥७॥ उसी से त्रिपुरासुर का घोर वध होने से उनका विजय हुआ था। हे मुने! उसे ही पूर्व काल में शिव ने दुर्वासा को दिया था॥८॥ और दुर्वासा ने महात्मा सुचन्द्र को दिया है, जो अत्यन्त गुप्ततर तथा तत्त्व समेत समस्त मंत्रों का शरीरस्वरूप है॥९॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'क्लीं' कपाल की रक्षा और 'ह्रीं ह्रीं ह्रीं' दोनों नेत्रों की रक्षा करें॥१०॥ 'ओं ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा' सदा मेरी नासिका की रक्षा करे, 'क्लीं कालिके रक्ष रक्ष स्वाहा' सदा दाँतों की रक्षा करे॥११॥ 'क्लीं भद्रकालिके स्वाहा' मेरे दोनों ओंठों की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा' सदा कण्ठ की रक्षा करे॥१२॥ 'ओं ह्रीं कालिकायै

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा कर्णयुग्मं सदाऽवतु। ॐक्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा स्कन्धं पातु सदा मम ॥१३॥
ॐ क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा मम वक्षः सदाऽवतु। ॐ क्लीं कालिकायै स्वाहा मम नाभिं सदाऽवतु ॥१४॥
ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा मम पृष्ठं सदाऽवतु। रक्तबीजविनाशिन्यै[1] स्वाहा हस्तौ[2] सदाऽवतु ॥१५॥
ॐ ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ॥१६॥
प्राच्यां पातु महाकाली[3] चाग्नेय्यां रक्तदन्तिका। दक्षिणे पातु चामुण्डा नैर्ऋत्यां पातु कालिका ॥१७॥
श्यामा च वारुणे पातु वायव्यां पातु चण्डिका। उत्तरे विकटास्या चाप्यैशान्यां साट्टहासिनी ॥१८॥
पातूर्ध्वं लोलजिह्वा सा मायाद्या पात्वधः सदा। जले स्थले चान्तरिक्षे पातु विश्वप्रसूः सदा ॥१९॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वेषां कवचानां च सारभूतं परात्परम् ॥२०॥
सप्तद्वीपेश्वरो राजा [3]सुचन्द्रोऽस्य प्रसादतः। कवचस्य प्रसादेन मान्धाता पृथिवीपतिः ॥२१॥
प्रचेता लोमशश्चैव यतः सिद्धो बभूव ह। यतो हि योगिनां श्रेष्ठः सौभरिः पिप्पलायनः ॥२२॥
यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वसिद्धेश्वरो भवेत्। महादानानि सर्वाणि तपांस्येवं व्रतानि च ॥
निश्चितं कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२३॥

स्वाहा' सदा दोनों कानों की रक्षा करें। 'ओं क्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा' मेरे कन्धों की रक्षा करे ॥१३॥ 'ओं क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा' सदा मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे, 'ओं क्लीं कालिकायै स्वाहा' सदा मेरी नाभि की रक्षा करे ॥१४॥ 'ओं ह्रीं कालिकायै स्वाहा' मेरे पृष्ठ की रक्षा करे, 'रक्तबीजनाशिन्यै स्वाहा' सदा हाथों की रक्षा करे ॥१५॥ 'ओं ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा' सदा चरणों की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा' सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे ॥१६॥ पूर्व में महाकाली, अग्निकोण में रक्तदन्तिका, दक्षिण में चामुण्डा, नैर्ऋत्य में कालिका, पश्चिम में श्यामा, वायव्य में चण्डिका, उत्तर में विकटास्या (विकट मुख वाली) और ईशान में अट्टहासिनी रक्षा करें ॥१७-१८॥ ऊपर की ओर लोलजिह्वा रक्षा करें, नीचे की ओर मायाद्या और जल, स्थल एवं अन्तरिक्ष (आकाश) में विश्वप्रसू (जगज्जननी) रक्षा करें ॥१९॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें यह कवच बता दिया, जो समस्त मन्त्र-समुदाय का शरीर, सभी कवचों का सारभाग एवं परात्पर है ॥२०॥ इसी के प्रभाव से राजा सुचन्द्र सातों द्वीपों के अधीश्वर एवं मान्धाता पृथ्वीपति हुए ॥२१॥ प्रचेता और लोमश मुनि भी इसी कारण सिद्ध हुए और सौभरि एवं पिप्पलायन योगियों में श्रेष्ठ हुए ॥२२॥ यदि कोई सिद्धकवच हो जाता है, तो वह समस्त सिद्धियों का अधीश्वर होता है। समस्त महादान, तप और व्रत इस कवच की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं ॥२३॥

१क गुह्यं स०। २क. भद्रका०। ३क. सुरथो।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इदं कवचमज्ञात्वा भजेत्कालीं जगत्प्रसूम्। शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥२४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० भद्रकालीकवचनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

सुचन्द्रे पतिते ब्रह्मन्राजेन्द्राणां शिरोमणौ। अगमत्पुष्कराक्षस्तु सेनाऽक्षौहिणीयुतः ॥१॥
सूर्यवंशोद्भवो राजा सुचन्द्रतनयो महान्। महालक्ष्मीसेवकश्च लक्ष्मीवान्सूर्यसंनिभः ॥२॥
महालक्ष्म्याश्च कवचं गले यस्य मनोहरम्। परमैश्वर्यसंयुक्तस्त्रैलोक्यविजयी ततः ॥३॥
तं दृष्ट्वा भ्रातरः सर्वे रैणुकेयस्य धीमतः। आययुः समरं कर्तुं नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥४॥
राजेन्द्रः शरजालेन च्छादयामास तांस्तथा। चिच्छिदुः शरजालं च ते वीराश्चैव लीलया ॥५॥
चिच्छिदुः स्यन्दनं राज्ञस्ते वीराः पञ्चबाणतः। सारथिं पञ्चबाणेन रथाश्वं दशबाणतः ॥६॥
तद्धनुः सप्तबाणेन तूणं वै पञ्चबाणतः। चिच्छिदुस्तद्भ्रातृवर्गान्विप्राः शंकरशूलतः ॥७॥

अतः इस कवच को बिना जाने जगज्जननी भद्रकाली की जो आराधना करता है, उसका मंत्र सौ लाख जपा जाने पर भी सिद्धिप्रद नहीं होता है ॥२४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में भद्रकाली-कवच कथन-नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! राजा सुचन्द्र के मरने पर राजा पुष्कराक्ष युद्ध करने के लिए रणभूमि में आया, जो राजाओं में शिरोमणि था। उसके साथ तीन अक्षौहिणी सेना थी ॥१॥ वह राजा सूर्यवंश में उत्पन्न, सुचन्द्र का बड़ा पुत्र, महालक्ष्मी का सेवक, लक्ष्मीवान् और सूर्य के समान तेजस्वी था ॥२॥ महालक्ष्मी का मनोहर कवच जिसके गले में बंधा रहता है, वह परम ऐश्वर्य से सम्पन्न और तीनों लोकों का विजेता होता है ॥३॥ उसे देख कर धीमान् राम के भातृगण विविध शस्त्रों को हाथ में लिए उससे समर करने के लिए आये ॥४॥ राजकुमार ने अपने बाण-जाल से उन्हें ढक दिया और उन वीरों ने भी लीला की भाँति उस बाण-जाल को काट कर गिरा दिया ॥५॥ पुनः उन वीरों ने पाँच बाण से राजा का रथ, पाँच बाण से सारथी, दश बाण से रथ के घोड़े, सात बाण से धनुष, पाँच बाण से तरकस और शंकर के शूल द्वारा उसके भ्रातृ-वर्गों को काट डाला ॥६-७॥ उनकी तीन अक्षौहिणी सेना

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ते च त्र्यक्षौहिणीं सेनां निजधनुश्चापि लीलया। हन्तुं नृपेन्द्रं ते वीराः शिवशूलं निचिक्षिपुः॥
गले बभूव तच्छूलं राज्ञः पुष्करमालिका ॥८॥
शक्तिं च परिघं चैव भुशुण्डीं मुद्गरं तथा। गदां च चिक्षिपुर्विप्राः कोपेन ज्वलदग्नयः॥९॥
तानि शस्त्राणि चूर्णानि क्ष्माभृतो देहयोगतः। विस्मिता भ्रातरः सर्वे भृगोरेव महामुने॥१०॥
रथं धनुश्च शस्त्राणि चास्त्राणि विविधानि च। सेनां प्रस्थापयामास कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम्॥११॥
राजा स्यन्दनमारुह्य पुष्कराक्षो महाबलः। चकार शरजालं च महाघोरतरं मुने॥१२॥
चिच्छिदुः शरजालं च ते वीराः शस्त्रपाणयः। राजा प्रस्वापनेनैव निद्रितांस्तांश्चकार ह॥१३॥
भ्रातॄंश्च निद्रितान्दृष्ट्वा जामदग्न्यो महाबलः। क्षतविक्षतसर्वाङ्गान्बोधयामास तत्त्वतः॥१४॥
बोधयित्वा तान्निवार्य जगाम रणमूर्धनि। चिक्षेप परशुं कोपेन शीघ्रं राजजिघांसया॥१५॥
छित्त्वा राज्ञः किरीटं च पर्शुर्भूमौ पपात ह। जग्राह परशुं शीघ्रं जामदग्न्यो महाबलः॥१६॥
तदा शंकरशूलं च चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। नृपस्य कुण्डलं छित्त्वा जगाम शिवसंनिधिम्॥१७॥
राजा निहन्तुं तं रामं शरजालं चकार ह। चिच्छेद शरजालं च रैणुकेयश्च लीलया॥१८॥
क्रमेण राजा नानास्त्रं चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। तच्चिच्छेद क्रमेणैव भृगुः शस्त्रभृतां वरः॥१९॥
भृगुश्चिक्षेप नानास्त्रं महासंधानपूर्वकम्। तच्चिच्छेद महाराजः संधानेनैव लीलया॥२०॥

को लीला पूर्वक काट कर उन्होंने राजा को मारने के लिए शिव-शूल का प्रयोग किया, किन्तु वह शूल राजा के गले में जाकर कमल की माला बन गया॥८॥ अनन्तर प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्रुद्ध होकर ब्राह्मणों ने शक्ति, परिघ, भुशुण्डी, मुद्गर और गदा का प्रयोग किया॥९॥ हे महामुने! राजा के शरीर में पहुँचते ही उपर्युक्त सभी शस्त्र चूर्ण-चूर्ण होकर गिर गये। इसे देख कर भृगु के सभी भ्राताओं को महान् आश्चर्य हुआ॥१०॥ उपरांत कार्त्तवीर्य्यार्जुन ने स्वयं रथ, धनुष, अनेक शस्त्रास्त्रों और सेना को राजा के पास भेजा॥११॥ हे मुने! महाबली राजा पुष्कराक्ष ने उस रथ पर बैठ कर महाघोरतर बाण-वर्षा करना आरम्भ किया॥१२॥ शस्त्र हाथों में लिए उन वीरों ने भी उनका शरजाल काट दिया। राजा ने प्रस्वापन द्वारा उन्हें निद्रित कर दिया॥१३॥ उपरांत महाबली जामदग्न्य (राम) ने भ्राताओं को, जिनके अंग क्षत विक्षत (छिन्न-भिन्न) हो गए थे, निद्रित देख कर भलीभाँति उद्बुद्ध कर के रणस्थल से उन्हें हटा दिया और स्वयं क्रुद्ध होकर राजा को मारने के लिए फरसे का शीघ्र प्रयोग किया। फरसा राजा का किरीट काट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। महाबली राम ने उसे शीघ्र पकड़ लिया॥१४-१६॥ अनन्तर उन्होंने मंत्रपूर्वक शिव-शूल का प्रयोग किया, वह राजा का कुण्डल काट कर शिव के पास चला गया॥१७॥ राजा ने पुनः राम के हननार्थ बाणों का जाल-सा बिछा दिया, किन्तु भृगु ने उसे लीला पूर्वक काट दिया॥१८॥ राजा ने क्रमशः मन्त्रपूर्वक अनेक भाँति के अस्त्रों का प्रयोग किया, जिन्हें शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राम ने क्रमशः काट कर गिरा दिया॥१९॥ भृगु ने भी अनेक भाँति के अस्त्रों का महासन्धानपूर्वक प्रयोग किया, जिसे महाराजा ने हस्तलाघव द्वारा काट कर गिरा दिया॥२०॥ राम ने मंत्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र का संधान करके प्रयोग किया, राजा ने

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रामश्चिक्षेप संधाय ब्रह्मास्त्रं मन्त्रपूर्वकम्। राजा निर्वापणं चक्रे संधानेनैव लीलया ॥२१॥
सर्वाण्यस्त्राणि शस्त्राणि रामः पाशुपतं विना। चिक्षेप कोपविभ्रान्तो भूपश्चिच्छेद तानि च ॥२२॥
रामः स्नात्वा[1] शिवं नत्वाऽऽददे पाशुपतं मुने। नारायणश्च भगवानवोचद्विप्ररूपधृक् ॥२३॥

वृद्धब्राह्मण उवाच

किं करोषि भृगो वत्स त्वमेव ज्ञानिनां वरः। नरं हन्तुं पाशुपतं कोपार्तिक क्षिपसि भ्रमात् ॥२४॥
विश्वं पाशुपतेनैव भवेद्भस्म च सेश्वरम्। सर्वघ्नं स्याच्छस्त्रमिदं विना श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥२५॥
अहो पाशुपतं जेतुं नालमेव सुदर्शनम्। हरेः सुदर्शनं चैव सर्वास्त्रपरिमर्दकम् ॥२६॥
खट्वाङ्गिनः पाशुपतं हरेरेव सुदर्शनम्। एते प्रधाने सर्वेषामस्त्राणां च जगत्त्रये ॥२७॥
त्यज पाशुपतं ब्रह्मन्मदीयं वचनं शृणु। यथा जेष्यसि राजानं पुष्कराक्षं महाबलम् ॥२८॥
कार्तवीर्यमजेतारं यथा जेष्यसि सांप्रतम्। श्रूयतां सावधानेन तत्सर्वं कथयामि ते ॥२९॥
महालक्ष्म्याश्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। भक्त्या च पुष्कराक्षेण धृतं कण्ठे विधानतः ॥३०॥
परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं परमाद्भुतम्। धृतं च दक्षिणे बाहौ पुष्कराक्षसुतेन च ॥३१॥
कवचस्य प्रभावेण विश्वं जेतुं क्षमौ च तौ। को जेता च त्रिभुवने देहे च कवचे स्थिते ॥३२॥

संधान से ही उसे लीला पूर्वक समाप्त कर दिया ॥२१॥ अनन्तर राम ने कुपित होकर पाशुपत को छोड़ कर सभी अस्त्रों का प्रयोग किया, राजा ने उसे काट कर गिरा दिया ॥२२॥ हे मुने! राम ने शिव को नमस्कार कर के पाशुपत अस्त्र ग्रहण किया, उसी समय नारायण ने ब्राह्मण रूप धारण कर उनसे कहा ॥२३॥

ब्राह्मण बोले—हे वत्स, भृगो! तुम ज्ञानियों में श्रेष्ठ होकर यह क्या कर रहे हो, एक मनुष्य के वध के लिए भ्रम से कोपवश पाशुपत का प्रयोग कर रहे हो? ॥२४॥ ऐसा करने से पाशुपत द्वारा शंकर समेत सारा विश्व भस्म हो जायगा, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़ कर अन्य सब का विनाश इसके द्वारा हो सकता है ॥२५॥ इतना ही नहीं, पाशुपत को जीतने के लिए भगवान् का सुदर्शन चक्र भी समर्थ नहीं है, वह सभी अस्त्रों एवं शत्रुओं का मर्दन करता है ॥२६॥ इस प्रकार तीनों लोकों में शिव का पाशुपत और भगवान् का सुदर्शन चक्र, ये दोनों समस्त अस्त्रों में प्रधान हैं ॥२७॥ अतः हे ब्रह्मन्! पाशुपत रख कर मेरी बातें सुनो! महाबली पुष्कराक्ष को जिस प्रकार जीतोगे मैं बता रहा हूँ ॥२८॥ अजेता कार्त्तवीर्य्य को जिस प्रकार जीतोगे, मैं सभी कुछ बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥२९॥ राजा पुष्कराक्ष ने तीनों लोकों में दुर्लभ महालक्ष्मी का कवच भक्तिपूर्वक सविधान अपने कण्ठ में बाँधा है ॥३०॥ तथा पुष्कराक्ष के पुत्र ने दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का परमोत्तम कवच अपने दाहिने बाहु में बाँध रखा है ॥३१॥ कवच के प्रभाव से ये दोनों समस्त विश्व को जीतने में समर्थ हैं, अतः देह में कवच के रहते इन्हें तीनों लोक में कौन जीत सकता है? ॥३२॥

---

१. ख. स्तुत्वा।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अहं यास्यामि भिक्षार्थं संनिधाने तयोर्मुने। करिष्यामि च तद्भिक्षां प्रतिज्ञासफलाय ते ॥३३॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः संत्रस्तमानसः। उवाच ब्राह्मणं वृद्धं हृदयेन विदूयता ॥३४॥

परशुराम उवाच

न जानामि महाप्राज्ञ कस्त्वं ब्राह्मणरूपधृक्। शीघ्रं च ब्रूहि मां मूढं तदा गच्छ नृपान्तिकम् ॥३५॥
जामदग्न्यवचः श्रुत्वा प्रहस्य ब्राह्मणः स्वयम्। उक्त्वा चाहं विष्णुरिति ययौ भिक्षितुमीश्वरः ॥३६॥
गत्वा तयोः संनिधानं ययाचे कवचे च तौ। ददतुस्तौ च कवचे विष्णवे विष्णुमायया ॥
गृहीत्वा कवचे विष्णुर्वैकुण्ठं निर्जगाम सः ॥३७॥

नारद उवाच

महालक्ष्म्याश्च कवचं केन दत्तं महामुने। पुष्कराक्षाय भूपाय श्रोतुं कौतुहलं मम ॥३८॥
कवचं चापि दुर्गायाः पुष्कराक्षसुताय च। दुर्लभं केन वादत्तं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥३९॥
कवचं चापि किंभूतं तयोर्वा तस्य किं फलम्। मन्त्रौ तु किंप्रकारौ च तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ॥४०॥

नारायण उवाच

दत्तं सनत्कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते। महालक्ष्म्याश्च कवचं मन्त्रश्चापि दशाक्षरः ॥४१॥
स्तवनं चापि गोप्यं वै प्रोक्तं तच्चरितं च यत्। ध्यानं च सामवेदोक्तं पूजां चैव मनोहराम् ॥४२॥

हे मुने! मैं उन दोनों के पास उसी के भिक्षार्थ जा रहा हूँ, जिससे तुम्हारी प्रतिज्ञा सफल हो जाये ॥३३॥ ब्राह्मण की ऐसी बातें सुन कर राम का चित्त संत्रस्त हो गया, हार्दिक वेदना का अनुभव करते हुए उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण से कहा ॥३४॥

परशुराम बोले—हे महाप्राज्ञ! यह मैं नहीं जानता कि वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किए आप कौन हैं, पहले आप मुझ मूढ को बताने की कृपा करें और पश्चात् राजा के समीप जायें ॥३५॥ जामदग्न्य की बात सुनकर ब्राह्मण ने स्वयं हँस कर कहा—'मैं विष्णु हूँ।' पश्चात् ईश्वर भिक्षा के लिए चले गये ॥३६॥ उन दोनों के पास जाकर उन्होंने उनसे कवच की याचना की। उन दोनों ने भी विष्णु-माया से प्रेरित होकर विष्णु को अपना-अपना कवच दे दिया और विष्णु ने उन्हें लेकर वैकुण्ठ चले गये ॥३७॥

नारद बोले—हे महामुने! राजा पुष्कराक्ष को महालक्ष्मी का कवच किसने प्रदान किया था, यह सुनने का मुझे कौतूहल हो रहा है ॥३८॥ और पुष्कराक्ष के पुत्र को दुर्गा का दुर्लभ कवच किसने दिया है, यह भी आप बताने की कृपा करें ॥३९॥ हे जगद्गुरो! उन दोनों के कवच, उसके फल और मन्त्र मुझे बतायें ॥४०॥

नारायण बोले—सनत्कुमार ने विद्वान् पुष्कराक्ष को महालक्ष्मी का कवच, दशाक्षर मन्त्र, गोप्य स्तव, उनका चरित, सामवेदोक्त ध्यान और मनोहर पूजा बतायी ॥४१-४२॥ पूर्वकाल में दुर्गा का कवच दुर्वासा ने दिया था तथा

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दुर्गायाश्चापि कवचं दत्तं दुर्वाससा पुरा। स्तवनं चातिगोप्यं च मन्त्रश्चापि दशाक्षरः ॥४३॥
पश्चाच्छ्रोष्यसि तत्सर्वं देव्याश्च परमाद्भुतम्। महायुद्धसमारम्भे दत्तं प्रार्थनया च यत् ॥४४॥
महालक्ष्म्याश्च मन्त्रं च शृणु तं कथयामि ते। ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहेति परमाद्भुतम् ॥४५॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु पूजाविधिं मुने। दत्तं तस्मै कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते ॥४६॥
सहस्रदलपद्मस्थां पद्मनाभप्रियां सतीम्। पद्मालयां पद्मवक्त्रां पद्मपत्राभलोचनाम् ॥४७॥
पद्मपुष्पप्रियां पद्मपुष्पतल्पाधिशायिनीम्। पद्मिनीं पद्महस्तां च पद्ममालाविभूषिताम् ॥४८॥
पद्मभूषणभूषाढ्यां पद्मशोभाविवर्धिनीम्। पद्माटवीं प्रपश्यन्तीं सस्मितां तां भजे मुदा ॥४९॥
चन्दनाष्टदले पद्मे पद्मपुष्पेण पूजयेत्। गणं संपूज्य दत्त्वा चैवोपचारांश्च षोडश ॥५०॥
ततः स्तुत्वा च प्रणमेत्साधको भक्तिपूर्वकम्। कवचं श्रूयतां ब्रह्मन्सर्वसारं वदामि ते ॥५१॥

नारायण उवाच

शृणु विप्रेन्द्र पद्मायाः कवचं परमं शुभम्। पद्मनाभेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपद्मके ॥५२॥
संप्राप्य कवचं ब्रह्मा तत्पद्मे ससृजे जगत्। पद्मालयाप्रसादेन सलक्ष्मीको बभूव सः ॥५३॥
पद्मालयावरं प्राप्य पाद्मश्च जगतां प्रभुः। पाद्मेन पद्मकल्पे च कवचं परमाद्भुतम् ॥५४॥
दत्तं सनत्कुमाराय प्रियपुत्राय धीमते। कुमारेण च यद्दत्तं पुष्कराक्षाय नारद ॥५५॥

गोप्य स्तवसमेत दशाक्षर मन्त्र भी बताया था ॥४३॥ देवी का परम अद्भुत कवच आदि सब कुछ पश्चात् बताऊँगा, जो महायुद्ध के आरम्भ के समय प्रार्थना करने पर उन्होंने दिया था ॥४४॥ इस समय महालक्ष्मी का मंत्र तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। 'ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' यह परमोत्तम मंत्र है ॥४५॥ हे मुने ! सामवेदोक्त ध्यान और पूजा-विधान, जो कुमार ने पुष्कराक्ष को दिया था, बता रहा हूँ, सुनो ॥४६॥ सहस्र दल वाले कमल पर स्थित, पद्मनाभ (विष्णु) की प्रेयसी, सती, कमलालया, कमलमुखी, कमलपत्र के समान नेत्र वाली, कमलपुष्पप्रिया, कमल पुष्प की शय्या पर शयन करने वाली, पद्मिनी, कमल हाथ में लिए, कमल की माला से सुशोभित, कमल के भूषणों से विभूषित, कमल की शोभा बढ़ाने वाली, कमल-वन को देखती हुई और मन्द-मन्द मुसुकाती उस लक्ष्मी की मैं सहर्ष सेवा कर रहा हूँ ॥४७-४९॥ चन्दन द्वारा अष्टदल कमल पर लिख कर कमलपुष्प से पूजन करे। गण की पूजा, सोलहों उपचार का समर्पण और स्तुति करके साधक को चाहिए कि भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। हे ब्रह्मन् ! अब तुम्हें समस्त का सार-भाग वह कवच बता रहा हूँ, सुनो ॥५०-५१॥

नारायण बोले—हे विप्रेन्द्र ! पद्मा (लक्ष्मी) का वह परम शुभ कवच, जिसे भगवान् पद्मनाभ ने अपने नाभिकमल में स्थित ब्रह्मा को प्रदान किया था, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। ब्रह्मा ने कवच प्राप्त कर उसी कमल पर सारे संसार की रचना आरम्भ की और कमलालया (लक्ष्मी) के प्रसाद से लक्ष्मीसम्पन्न भी हो गए ॥५२-५३॥ जगत् के स्वामी ब्रह्मा ने लक्ष्मी से वर प्राप्त करके पद्मकल्प में वह परम अद्भुत कवच अपने धीमान् प्रिय पुत्र सनत्कुमार को प्रदान किया था। हे नारद ! वही कवच सनत्कुमार ने पुष्कराक्ष को दिया है ॥५४-५५॥ जिसे धारण करने और पाठ करने से ब्रह्मा समस्त सिद्धों के महान् अधीश्वर,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा सर्वसिद्धेश्वरो महान्। परमैश्वर्यसंयुक्तः सर्वसंपत्समन्वितः ॥५६॥
यद्धृत्वा च धनाध्यक्षः कुबेरश्च धनाधिपः। स्वायंभुवो मनुः श्रीमान्पठनाद्धारणाद्यतः ॥५७॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ लक्ष्मीवन्तौ यतो मुने। पृथुः पृथ्वीपतिः सद्यो ह्यभवद्धारणाद्यतः ॥५८॥
कवचस्य प्रसादेन स्वयं दक्षः प्रजापतिः। धर्मश्च कर्मणां साक्षी पाता यस्य प्रसादतः ॥५९॥
यद्धृत्वा दक्षिणे बाहौ विष्णुः क्षीरोदशायितः। भक्त्या विधत्ते कण्ठे च शेषो नारायणांशकः ॥६०॥
यद्धृत्वा वामनं लेभे कश्यपश्च प्रजापतिः। सर्वदेवाधिपः श्रीमान्महेन्द्रो धारणाद्यतः ॥६१॥
राजा मरुत्तो भगवानभवद्धारणाद्यतः। त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान्नहुषो यस्य धारणात् ॥६२॥
विश्वं विजिग्ये खट्वाङ्गः पठनाद्धारणाद्यतः। मुचुकुन्दो यतः श्रीमान्मान्धातृतनयो महान् ॥६३॥
सर्वसंपत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवी पद्मालया स्वयम् ॥६४॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यबीजं च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥६५॥
[1]ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। श्रीं मे पातु कपालं च लोचने श्रीं श्रियै नमः ॥६६॥
[2]ॐ श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु। [3]ॐ श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम् ॥६७॥
ॐ श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तान्सदाऽवतु। ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदाऽवतु ॥६८॥

परम ऐश्वर्य सम्पन्न तथा समस्त सम्पत्ति से युक्त हुए ॥५६॥ जिसे धारण कर कुबेर धनाध्यक्ष और धन के अधीश्वर हुए तथा धारण एवं पाठ करने से स्वायम्भुव मनु हुए ॥५७॥ हे मुने! उसके धारण करने से प्रियव्रत और उत्तानपाद लक्ष्मीवान् तथा राजा पृथु तत्क्षण पृथ्वीपति हुए ॥५८॥ कवच के प्रसाद से दक्ष स्वयं प्रजापति हुए। उसके प्रसाद से धर्म कर्मों के साक्षी हुए, दाहिने बाहु में धारण करने से विष्णु क्षीरसागरशायी हुए और उसे नारायण के अंश से उत्पन्न शेष भक्तिपूर्वक कण्ठ में धारण किये हुए हैं ॥५९-६०॥ उसे धारण कर कश्यप प्रजापति ने वामन को प्राप्त किया और महेन्द्र समस्त देवों के अधिप हुए ॥६१॥ उसे धारण कर राजा मरुत्त भगवान् हो गए, श्रीमान् राजा नहुष तीनों लोकों के अधीश्वर हुए ॥६२॥ पढ़ने और धारण करने से राजा खट्वांग ने विश्व विजय किया और मान्धाता के पुत्र राजा मुचुकुन्द श्रीपति हुए ॥६३॥ समस्त-सम्पत्ति-प्रदायक इस कवच के प्रजापति ऋषि, बृहती छन्द, स्वयं पद्मालया देवी, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थ की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है, यह कवच परम अद्भुत और महान् होने का एकमात्र पुण्य बीज है ॥६४-६५॥ 'ओं ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'श्रीं' मेरे कपाल की रक्षा करे 'श्रीं श्रियै नमः' दोनों नेत्रों की रक्षा करे ॥६६॥ 'ओं श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे कानों की रक्षा करे। 'ओं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरी नासिका की रक्षा करे ॥६७॥ 'ओं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा' सदा दाँतों की रक्षा करे। 'ओं श्रीं कृष्णप्रियायै' सदा दाँतों के छिद्रों की रक्षा करे ॥६८॥

१क. ओं क्लीं ह्रीं श्रीं क०। २क. ओं ह्रीं श्रीं। ३क. ह्रीं श्रीं म०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ॐ श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदाऽवतु। ॐ श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदाऽवतु ॥६९॥
ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदाऽवतु ॥७०॥
ॐ श्रीं मों कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा च मम हस्तौ सदाऽवतु ॥७१॥
ॐ श्रीनिवासकान्तायै मम पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ॥७२॥
प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया। पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया ॥७३॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु सा स्वयम्। उत्तरे कमला पातु चैशान्यां सिन्धुकन्यका ॥७४॥
नारायणी च पातूर्ध्वमधो विष्णुप्रियाऽवतु। संततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम ॥७५॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥७६॥
सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये। यत्फलं लभते धर्मी कवचेन[1] ततोऽधिकम् ॥७७॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान्प्रतिजन्मनि ॥७८॥
अस्ति लक्ष्मीगृहे तस्य निश्चला शतपूरुषम्। देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत् ॥८९॥
स सर्वपुण्यवान्धीमान्सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। स स्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले ॥८०॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोहभयैरपि। गुरुभक्ताय शिष्याय शरण्याय[2] प्रकाशयेत् ॥८१॥

'ओं श्रीं नारायणेशायै' मेरे कण्ठ की सदा रक्षा करे। 'ओं श्रीं केशवकान्तायै' सदा मेरे कन्धों की रक्षा करे ॥६९॥ 'ओं श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा' सदा नाभि की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं संसारमात्रे' सदा मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे ॥७०॥ 'ओं श्रीं मों कृष्णकान्तायैस्वाहा' सदा पृष्ठ की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा' मेरे हाथों की सदा रक्षा करे ॥७१॥ 'ओं श्रीनिवासकान्तायै' सदा मेरे चरणों की रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे ॥७२॥ पूर्व दिशा में महालक्ष्मी, अग्निकोण में कमलालया, दक्षिण में पद्मा, नैर्ऋत्य में श्रीहरिप्रिया, पश्चिम में पद्मालया, वायव्य में वह स्वयं, उत्तर में कमला और ईशान में सिन्धुकन्यका मेरी रक्षा करें ॥७३-७४॥ ऊपर की ओर नारायणी रक्षा करें, नीचे विष्णुप्रिया और मेरे चारों ओर विष्णुप्राणाधिका निरन्तर रक्षा करें ॥७५॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें सर्वैश्वर्यप्रद नामक कवच, जो समस्त मन्त्र-समुदाय का स्वरूप तथा परम अद्भुत है, बता दिया ॥७६॥ मेरु के समान सुवर्ण का पर्वत ब्राह्मणों को दान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, उससे अधिक फल धर्मी को इस कवच द्वारा प्राप्त होता है ॥७७॥ सविधि गुरु की पूजा करके जो इस कवच को कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह प्रतिजन्म में श्रीमान् होता है ॥७८॥ लक्ष्मी उसके घर सौ पीढ़ी तक निश्चल निवास करती हैं और वह देवेन्द्रों एवं असुरराजों से निश्चित अवध्य रहता है ॥७९॥ जिसके गले में यह कवच वर्तमान रहता है, वह समस्तपुण्यवान्, विद्वान्, समस्त यज्ञों में दीक्षित और समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका हुआ होता है ॥८०॥ अतः लोभ, मोह एवं भय वश भी इसे जिस किसी को न प्रदान करे, गुरुभक्त शिष्य को, जो शरण योग्य हो, बताये

---

१. चे च हृदि स्थिते। २क. सरलाय।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इदं कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम्। कोटिसंख्यं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० श्रीलक्ष्मीकवचवर्णनं
नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

कवचं कथितं ब्रह्मन्पद्मायाश्च मनोहरम्। परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं कथय प्रभौ ॥१॥
पद्माक्षप्राणतुल्यं च जीवनं बलकारणम्। कवचानां च यत्सारं दुर्गासेवनकारणम् ॥२॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम्। श्रीकृष्णेनैव यद्दत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा ॥३॥
ब्रह्मा त्रिपुरसंग्रामे शंकराय ददौ पुरा। जघान त्रिपुरं रुद्रो यद्धृत्वा भक्तिपूर्वकम् ॥४॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः। यतो बभूव पद्माक्षः सप्तद्वीपेश्वरो जयी ॥५॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा ज्ञानवाञ्छक्तिमान्भुवि। शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनां च गुरुर्यतः ॥
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः ॥६॥

॥८१॥ इस कवच को विना जाने जो जगज्जननी लक्ष्मी की आराधना करता है, उसके लिए करोड़ों की संख्या में जप किया जाने पर भी मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होता है ॥८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में श्रीलक्ष्मी-कवच-वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

अध्याय ३९

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! पद्मा का मनोहर कवच आपने सुना दिया, अब परम दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का कवच कहने की कृपा करें ॥१॥ जो राजा पद्माक्ष के प्राण के समान, जीवन और बल का कारण, समस्त कवचों का सारभाग और दुर्गा की आराधना का एकमात्र कारण है ॥२॥

नारायण बोले—हे नारद! दुर्गा का शुभ कवच मैं तुम्हें बताऊँगा जिसे गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने पूर्व समय ब्रह्मा को प्रदान किया था ॥३॥ त्रिपुरासुर के संग्राम में ब्रह्मा ने शंकर को कवच दिया और जिसे भक्तिपूर्वक धारण कर रुद्र ने त्रिपुर का वध किया ॥४॥ उपरान्त शिव ने गौतम को एवं गौतम ने पद्माक्ष को दिया। जिससे पद्माक्ष विजयी एवं सातों द्वीपों के अधीश्वर हुए हैं ॥५॥ जिसे धारण और पाठ करने से ब्रह्मा भूतल पर (सबसे अधिक) ज्ञानवान् और शक्तिमान् हुए, शिव सर्वज्ञाता एवं योगियों के गुरु हुए तथा मुनिश्रेष्ठ गौतम शिव

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ब्रह्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवी दुर्गतिनाशिनी ॥७॥
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्तितः। [1]पुण्यतीर्थं च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥८॥
ओं ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। ओं ह्रीं मे पातु कपालं चाप्यों[2] ह्रीं श्रीं पातु लोचने ॥९॥
पातु मे कर्णयुग्मं चाप्यों दुर्गायै नमः सदा। ओं ह्रीं श्रीमिति नासां मे सदा पातु च सर्वतः ॥१०॥
ह्रीं[3] श्रीं ह्रूमिति दन्तांश्च पातु क्लीमोष्ठयुग्मकम्। क्लीं[4] क्लीं क्लीं पातु कण्ठं च दुर्गे रक्षतु गण्डके ॥११॥
स्कन्धं[5] महाकालि दुर्गे स्वाहा पातु निरन्तरम्। वक्षो विपद्विनाशिन्यै स्वाहा मे पातु सर्वतः ॥१२॥
दुर्गे दुर्गे रक्ष पार्श्वौ[6] स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। दुर्गे दुर्गे देहि रक्षां पृष्ठं मे पातु सर्वतः ॥१३॥
ओं[7] ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ॥१४॥
प्राच्यां पातु महामाया चाऽऽग्नेय्यां पातु कालिका। दक्षिणे दक्षकन्यां च नैर्ऋत्यां शिवसुन्दरी ॥१५॥
पश्चिमे पार्वती पातु वाराही वारुणे सदा। कुबेरमाता कौबेर्यामैशान्यामीश्वरी सदा ॥१६॥
ऊर्ध्वं नारायणी पातु त्वम्बिकाऽधः सदाऽवतु। ज्ञानं ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रा सदाऽवतु ॥१७॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१८॥

के तुल्य हुए ॥६॥ ब्रह्माण्डविजय नामक इस कवच के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, दुर्गतिनाशिनी दुर्गा देवी और ब्रह्माण्ड के विजयार्थ इसका विनियोग कहा गया है। यह कवच परम अद्भुत एवं महान् लोगों का पुण्यतीर्थ है ॥७-८॥ 'ओं ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'ओं ह्रीं' मेरे कपाल की करे और 'ओं ह्रीं श्रीं' दोनों नेत्रों की रक्षा करे ॥९॥' ओं दुर्गायै नमः' सदा मेरे कानों की और 'ओं ह्रीं श्रीं' सदा चारों ओर से मेरी नासिका की रक्षा करे॥१०॥ 'ह्रीं श्रीं ह्रूं' दाँतों की, 'क्लीं' दोनों ओंठों की तथा 'क्लीं क्लीं क्लीं' कण्ठ की और 'दुर्गे' कपोलों की रक्षा करे ॥११॥ 'महाकालि दुर्गे स्वाहा' निरन्तर कन्धे की और 'विपद्विनाशिन्यै स्वाहा' वक्षःस्थल की चारों ओर से रक्षा करे ॥१२॥ 'दुर्गे दुर्गे रक्ष' दोनों पार्श्वों की और 'दुर्गे स्वाहा' सदा नाभि की रक्षा करे। 'दुर्गे दुर्गे देहि रक्षां' सब ओर से पीठ की रक्षा करे ॥१३॥ 'ओं ह्रीं दुर्गायै स्वाहा' सदा हाथ और चरण की और 'ओं ह्रीं दुर्गायै स्वाहा' सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे ॥१४॥ पूर्व की ओर महामाया, अग्निकोण में कालिका, दक्षिण में दक्षकन्या, नैर्ऋत्य में शिवसुन्दरी, पश्चिम में पार्वती, वायव्य में वाराही, उत्तर में कुबेरमाता और ईशान में ईश्वरी सदा रक्षा करें ॥१५-१६॥ ऊपर की ओर नारायणी, नीचे की ओर अम्बिका, ज्ञान की ज्ञानप्रदा तथा स्वप्न में निद्रा देवी सदा रक्षा करें ॥१७॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने परम अद्भुत और समस्त मन्त्रसमूहस्वरूप ब्रह्माण्डविजय नामक कवच तुम्हें बता दिया ॥१८॥ सभी तीर्थों में सविधि स्नान से, समस्त यज्ञों के अनुष्ठान से और समस्त

१क. ०ण्यजीवश्च०। २. चाप्यैं ह्रीं। ३क. ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं इति ना०। ४क. श्रीं ह्रीं क्लीमिति दन्तालि पातु ह्री मो०। ५क. क्लीं ह्रीं ह्रीं पा०। ६क. ०न्धं दुर्गेविनाशिन्यै स्वा०। ७क. ओं श्रीं ह्रीं।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासे च तत्फलं लभते नरः ॥१९॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ कवचं धारयेत्तु यः ॥२०॥
स च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः । ॥२१॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्दुर्गतिनाशिनीम् । शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥२२॥
कवचं काण्वशाखोक्तमुक्तं नारद सिद्धिदम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं सदुर्लभम् ॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० दुर्गतिनाशिनीकवचं
नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

तं गृहीत्वा तदा विष्णौ वैकुण्ठं च गते सति । सपुत्रं च सहस्राक्षं जघान भृगुनन्दनः ॥१॥
कृत्वा युद्धं तु सप्ताहं ब्रह्मास्त्रेण प्रयत्नतः । राजा कवचहीनोऽपि सपुत्रश्च पपात ह ॥२॥
पतिते तु सहस्राक्षे कार्तवीर्यार्जुनः स्वयम् । आजगाम महावीरो द्विलक्षाक्षौहिणीयुतः ॥३॥
सुवर्णरथमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम् । नानास्त्रं परितः कृत्वा तस्थौ समरमूर्धनि ॥४॥

व्रतों एवं उपवास करने से जो फल प्राप्त होता है, वह फल मनुष्य को इसके द्वारा प्राप्त होता है ॥१९॥ जो अनेक भाँति के वस्त्र, अलंकार और चन्दन द्वारा सविधि गुरु की अर्चा करके इसे कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह तीनों लोकों का विजयी एवं समस्त शत्रुओं का मर्दक होता है। अतः इस कवच को बिना जाने जो दुर्गतिनाशिनी की सेवा करता है, उसका सौ लाख जप करने पर भी मंत्र सिद्धप्रद नहीं होता है ॥२०-२२॥ हे नारद! सिद्धिप्रद तथा काण्वशाखोक्त यह कवच, जो गोपनीय और अति दुर्लभ है, जिस किसी को नहीं देना चाहिए ॥२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण के संवाद में दुर्गतिनाशिनी-
कवच-वर्णन नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

अध्याय ४०

नारायण बोले—तब उसे लेकर विष्णु के वैकुण्ठ चले जाने पर भृगुनन्दन राम ने पुत्र समेत सहस्राक्ष का वध किया ॥१॥ कवचहीन होने पर भी राजा ब्रह्मास्त्र द्वारा सात दिन तक युद्ध कर सपुत्र समाप्त हो गया ॥२॥ सहस्राक्ष के मर जाने पर महावीर कार्त्तवीर्य्यार्जुन स्वयं दो लाख अक्षौहिणी सेना समेत युद्ध के लिए आ गया ॥३॥ वह सुवर्ण के रथ पर चढ़ कर, रत्नों के सारभाग से निर्मित पोशाक पहने हुए और अपने चारों ओर विविध अस्त्रों को

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

समरे तं परशुरामो राजेन्द्रं च ददर्श ह । रत्नालंकारभूषाढ्यै राजेन्द्राणां च कोटिभिः ॥५॥
रत्नातपत्रभूषाढ्यं रत्नालंकारभूषितम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं सुमनोहरम् ॥६॥
राजा दृष्ट्वा मुनीन्द्रं तमवरुह्य रथादहो । प्रणम्य रथमारुह्य तस्थौ नृपगणैः सह ॥७॥
ददौ शुभाशिषं तस्मै रामश्च समयोचिताम् । प्रोवाच च गतार्थं तं स्वर्गं गच्छेति सानुगः ॥८॥
उभयोः सेनयोर्युद्धमभवत्तत्र नारद । पलायिता रामशिष्या भ्रातरश्च महाबलाः ॥
क्षतविक्षतसर्वाङ्गाः कार्तवीर्यप्रपीडिताः ॥९॥
नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतां वरः । न ददर्श स्वसैन्यं च राजसैन्यं तथैव च ॥१०॥
चिक्षेप रामश्चाऽऽग्नेयं बभूवाग्निमयं रणे । निर्वापयामास राजा वारुणेनैव लीलया ॥११॥
चिक्षेप रामो गान्धर्वं शैलसर्पसमन्वितम् । वायव्येन महाराजः प्रेरयामास लीलया ॥१२॥
चिक्षेप रामो नागास्त्रं दुर्निवार्यं भयंकरम् । गारुडेन महाराजः प्रेरयामास लीलया ॥१३॥
माहेश्वरं च भगवांश्चिक्षेप भृगुनन्दनः । निर्वापयामास राजा वैष्णवास्त्रेण लीलया ॥१४॥
ब्रह्मास्त्रं चिक्षिपे रामो नृपनाशाय नारद । ब्रह्मास्त्रेण च शान्तं तत्प्राणनिर्वापणं रणे ॥१५॥
दत्तदत्तं च यच्छूलमव्यर्थं मन्त्रपूर्वकम् । जग्राह राजा परशुरामनाशाय संयुगे ॥१६॥
शूलं ददर्श रामश्च शतसूर्यसमप्रभम् । प्रलयाग्निशिखोद्रिक्तं दुर्निवार्यं सुरैरपि ॥१७॥

सुरक्षित किये हुए रणभूमि में स्थित था ॥४॥ अनन्तर समरांगण में परशुराम ने उस राजेन्द्र को देखा, जो रत्नों के अलंकारों से विभूषित करोड़ों राजेन्द्रों से युक्त, रत्नों के छत्र से समन्वित, रत्नों के आभूषणों से भूषित, सर्वांग में चन्दन लगाये, मुस्कराता हुआ और अत्यन्त मनोहर था ॥५-६॥ उस समय राजा भी मुनीन्द्र राम को देखकर रथ से उतर पड़ा और उन्हें प्रणाम कर पुनः राजाओं समेत रथ पर बैठ गया ॥७॥ राम ने शुभाशिष देकर उससे समयोचित बात कही कि 'अनुचरों समेत अब स्वर्ग को प्रस्थान करो' ॥८॥ हे नारद ! अनन्तर दोनों सैनिकों में युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें राम के शिष्यगण और महाबली भ्रातृगण कार्तवीर्य्य से अतिपीड़ित एवं छिन्न-भिन्न सर्वांग होने पर रण से भाग निकले ॥९॥ राजा के बाण-जाल से आच्छन्न होने के कारण राम अपनी सेना और राजा की सेनाओं को नहीं देख सके ॥१०॥ पश्चात् राम ने समर में आग्नेय बाण का प्रयोग किया जिससे सब कुछ अग्निमय हो गया। राजा ने वारुण बाण द्वारा उसे लीला पूर्वक भाँति शान्त कर दिया ॥११॥ राम ने पर्वत-सर्प-युक्त गान्धर्व अस्त्र का प्रयोग किया, जिसे महाराज ने वायव्य बाण द्वारा समाप्त कर दिया ॥१२॥ राम ने अनिवार्य एवं भयंकर नागास्त्र का प्रयोग किया, जिसे महाराज ने गारुड़ अस्त्र द्वारा बिना यत्न के नष्ट कर दिया ॥१३॥ भृगुनन्दन भगवान् राम ने माहेश्वर अस्त्र का प्रयोग किया, जिसे राजा ने वैष्णव अस्त्र द्वारा लीला पूर्वक समाप्त कर दिया ॥१४॥ हे नारद ! अनन्तर राम ने राजा के बिनाशार्थ ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, राजा ने भी ब्रह्मास्त्र द्वारा उस प्राणनाशक को युद्ध में शान्त कर दिया ॥१५॥ राजा ने उस रण में परशुराम के वधार्थ दत्तात्रेय-प्रदत्त शूल का मंत्र-पूर्वक उपयोग किया, जो कभी भी व्यर्थ न होने वाला था ॥१६॥ राम ने सैकड़ों सूर्य के समान कान्ति-पूर्ण, प्रलयकालीन अग्निशिखा से बढ़ा-चढ़ा और देवों के लिए भी दुर्निवार उस शूल को देखा ॥१७॥ हे नारद !

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पपात शूलं समरे रामस्योपरि नारद। मूर्च्छांपवाप स भृगुः पपात च हरिं स्मरन्॥१८॥
पतिते तु तदा रामे सर्वे देवा भयाकुलाः। आजग्मुः समरं तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥१९॥
शंकरश्च महाज्ञानी महाज्ञानेन लीलया। ब्राह्मणं जीवयामास तूर्णं नारायणाज्ञया॥२०॥
भृगुश्च चेतनां प्राप्य ददर्श पुरतः सुरान्। प्रणनाम परं भक्त्या लज्जानम्रात्मकंधरः॥२१॥
राजा दृष्ट्वा सुरेशांश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः। प्रणम्य शिरसा मूर्ध्ना तुष्टाव च सुरेश्वरान्॥२२॥
तत्राऽऽजगाम भगवान्दत्तात्रेयो रणस्थलम्। शिष्यरक्षानिमित्तेन कृपालुर्भक्तवत्सलः॥२३॥
भृगुः पाशुपतास्त्रं च सोऽग्रहीत्कोपसंयुतः। दत्तदत्तेन दृष्टेन बभूव स्तम्भितो भृगुः॥२४॥
ददर्श स्तम्भितो रामो राजानं रणमूर्धनि। नानापार्षदयुक्तेन कृष्णेनाऽऽरक्षितं रणे॥२५॥
सुदर्शनं प्रज्ज्वलन्तं भ्रमणं कुर्वता सदा। सस्मितेन स्तुतेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः॥२६॥
गोपालशतयुक्तेन गोपवेषविधारिणा। नवीजलदाभेन वंशीहस्तेन गायता॥२७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। दत्तेन दत्तं कवचं कृष्णस्य परमात्मनः॥२८॥
राज्ञोऽस्ति दक्षिणे बाहौ सद्रत्नगुटिकान्वितम्। गृहीतकवचे शंभौ भिक्षया योगिनां गुरौ॥२९॥
तदा हन्तुं नृपं शक्तो भृगुश्चेति च नारद। श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाणीं शंकरो द्विजरूपधृक्॥३०॥

राम के ऊपर वह शूल गिरा, जिससे भगवान् का स्मरण करते हुए भृगु मूर्च्छित हो गये॥१८॥ राम के गिर जाने पर समस्त देवगण भयाकुल हो गये, उस समय युद्ध में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर भी आ गये॥१९॥ नारायण की आज्ञा से महाज्ञानी शिव ने अपने महाज्ञान द्वारा लीलापूर्वक शीघ्र ब्राह्मण को जीवित कर दिया॥२०॥ चेतना प्राप्त होने पर भृगु ने अपने सामने स्थित देवों को देखा और लज्जा से कन्धे को झुकाकर भक्तिपूर्वक सभी को प्रणाम किया॥२१॥ राजा ने भी वहाँ देवों को देखकर भक्ति से कन्धे झुकाये शिर से सबको प्रणाम किया और देवेश्वरों की स्तुति की॥२२॥ इसी बीच वहाँ रणभूमि में अपने शिष्य के रक्षार्थ कृपालु एवं भक्तवत्सल भगवान् दत्तात्रेय आ गये॥२३॥ अनन्तर राम ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाशुपत अस्त्र का ग्रहण किया, किन्तु उसी क्षण दत्तात्रेय के दृष्टिपात द्वारा भृगु स्तम्भित हो गये॥२४॥ स्तम्भित होने पर भी राम ने रण में राजा को देखा, जो रणभूमि में अनेक पार्षदों समेत भगवान् कृष्ण से सुरक्षित था॥२५॥ प्रज्वलित सुदर्शनचक्र घुमाकर कृष्ण सदा उसकी रक्षा कर रहे थे और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर मुसकराते हुए कृष्ण की स्तुति कर रहे थे॥२६॥ सैकड़ों लिये गोपों से युक्त, गोपवेष धारण करने वाले, नवीन मेघ के समान कान्ति वाले और हाथ में मुरली लिये हुए श्रीकृष्ण गायन कर रहे थे॥२७॥ इसी बीच वहाँ आकाशवाणी हुई कि दत्तात्रेय द्वारा परमात्मा कृष्ण का कवच राजा को प्राप्त है, जिसे उसने उत्तम रत्न की गुटिका (तावीज) में रखकर अपने दाहिने बाहुमें धारण कर रखा है, अतः योगियों के गुरु शिव भिक्षा द्वारा उसे ग्रहण करें, तब राजा को मारने में भृगु समर्थ होंगे। हे नारद! इस आकाशवाणी को सुनकर शिव ने ब्राह्मण का वेष बनाया और राजा से वह

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

भिक्षां कृत्वा तु कवचमानीय च नृपस्य च। शंभुना भृगवे दत्तं कृष्णस्य कवचं च यत् ॥३१॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा जग्मुः स्वस्थानमुत्तमम्। प्रत्युवाचापि परशुरामो वै समरे नृपम् ॥३२॥

परशुराम उवाच

राजेन्द्रोत्तिष्ठ समरं कुरु साहसपूर्वकम्। कालभेदे जयो नृणां कालभेदे पराजयः ॥३३॥
अधीतं विधिवद्दत्तं कृत्स्ना पृथ्वी सुशासिता। [1]सम्यक्कृतश्च संग्रामो त्वयाऽहं मूर्च्छितोऽधुना ॥३४॥
जिताः सर्वे च राजेन्द्रा लीलया रावणो जितः। जितोऽहं दत्तशूलेन शंभुना जीवितः पुनः ॥३५॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः। मूर्ध्ना प्रणम्य तं भक्त्या यथार्थोक्तमुवाच ह ॥३६॥

राजोवाच

किमधीतं तथा दत्तं का वा पृथ्वी सुशासिता। हताः कतिविधा भूपा मादृशा धरणीतले ॥३७॥
बुद्धिस्तेजो विक्रमश्च विविधा रणमन्त्रणा। श्रीरैश्वर्यं तथा ज्ञानं दानशक्तिश्च लौकिकम् ॥३८॥
आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा परमं तपः। सर्वं मनोरमासङ्गे गतमेव मम प्रभो ॥३९॥
सा च स्त्री प्राणतुल्या मे साध्वी पद्मांशसंभवा। यज्ञेषु पत्नी मातेव स्नेहे क्रीडति सङ्गिनी ॥४०॥

कृष्ण का कवच माँगकर भृगु को दे दिया ॥२८-३१॥ अनन्तर देवगण अपने-अपने स्थान पर चले गये और राम ने रण में पुनः राजा से कहा ॥३२॥

परशुराम बोले—हे राजेन्द्र ! उठो, साहसपूर्वक युद्ध करो। समय के भेद से मनुष्यों का जय और पराजय हुआ करता है ॥३३॥ क्योंकि मैंने विधिवत् अध्ययन कर शिष्यों को अध्ययन कराया, समस्त पृथिवी पर सुशासन किया और अच्छे ढंग से युद्ध किया, किन्तु तुम्हारे द्वारा मूर्च्छित हो गया ॥३४॥ लीला से समस्त राजाओं समेत रावण को जीता, पर दत्तके शूल से मैं भी पराजित हो गया। फिर शिव ने आकर मुझे जीवित कर दिया ॥३५॥ राम की ऐसी बातें सुनकर परम धार्मिक राजा ने भक्तिपूर्वक शिर से उन्हें प्रणाम किया और यथार्थ वचन कहना आरम्भ किया ॥३६॥

राजा बोला—आपने क्या अध्ययन किया, क्या दिया, किस पृथ्वी पर सुशासन किया और भूतल पर मेरे समान कितने राजा (आपके द्वारा) निहत हुए ? ॥३७॥ हे प्रभो ! हमारी बुद्धि, तेज, विक्रम, विविध प्रकार की युद्ध-मन्त्रणा (सलाह), श्री, ऐश्वर्य, ज्ञान, दानशक्ति, लौकिक यश, आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, परम तप आदि सब कुछ मेरा मनोरमा के साथ चला गया ॥३८-३९॥ वह मेरी पत्नी प्राण के समान, पतिव्रता और कमला के अंश से उत्पन्न थी। यज्ञों में पत्नी, स्नेह करने में माता की भाँति और क्रीड़ा के समय संगिनी (साथी) थी, शयन, भोजन और युद्ध में बाल्यकाल से साथ रहती थी, अतः उसके बिना

---

१. क. यशः कृतं च संसारे स्व०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

आबाल्यात्सङ्गिनी शश्वच्छयने भोजने रणे। तां विना प्राणहीनोऽहं विषहीनो यथोरगः ॥४१॥
त्वया न दृष्टं युद्धं मे पुरेयं शोचना स्थिता। द्वितीया शोचना विप्र हतोऽहं ब्राह्मणेन च ॥४२॥
काले सिंहः शृगालं च शृगालः सिंहमेव च। काले व्याघ्रं हन्ति मृगो गजेन्द्रं हरिणस्तथा ॥४३॥
महिषं मक्षिका काले गरुडं च तथोरगः। किंकरः स्तौति राजेन्द्रं काले राजा च किंकरम् ॥४४॥
इन्द्रं च मानवः काले काले ब्रह्मा मरिष्यति। तिरो भूत्वा सा प्रकृतिः काले श्रीकृष्णविग्रहे ॥४५॥
मरिष्यन्ति सुराः सर्वे त्रिलोकस्थाश्चराचराः। सर्वे काले लयं यान्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥४६॥
कालस्य कालः श्रीकृष्णः स्रष्टुः स्रष्टा यथेच्छया। संहर्ता चैव संहर्तुः पातुः पाता परात्परः ॥४७॥
महास्थूलात्स्थूलतमः सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमः कृशः। [1]परमाणुपरः कालकालः स्यात्कालभेदकः ॥४८॥
यस्य लोमानि विश्वानि स पुमांश्च महाविराट्। तेजसां षोडशांशश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥४९॥
ततः क्षुद्रविराड्जातः सर्वेषां कारणं परम्। यः स्रष्टा च स्वयं ब्रह्मा यन्नाभिकमलोद्भवः ॥५०॥
नाभेः कमलदण्डस्य योऽन्तं न प्राप यत्नतः। भ्रमणाल्लक्षवर्षं च ततः स्वस्थानसंस्थितः ॥५१॥
तपश्चक्रे ततस्तत्र लक्षवर्षं च वायुभुक्। ततो ददर्श गोलोकं श्रीकृष्णं च सपार्षदम् ॥५२॥

मैं विषहीन साँप की भाँति प्राणहीन हो गया हूँ ॥४०-४१॥ हे विप्र! आपने मेरा युद्ध पहले कभी नहीं देखा था। मुझे पहला यही शोक है, दूसरा शोक यह है कि मैं ब्राह्मण द्वारा निहत हो रहा हूँ ॥४२॥ यद्यपि समयानुसार सिंह स्यार को मारता है, और स्यार सिंह को। समय पर मृग बाघ को मारता है और हरिण गजराज को ॥४३॥ काल में ही मक्खी महिष (भैंसे) को मारती है, और उसी प्रकार सर्प गरुड़ को। सेवक राजा की स्तुति करता है और समय आने पर राजा सेवक की प्रार्थना करता है ॥४४॥ काल आने पर मानव इन्द्र को मार देता है एवं काल के आने पर ब्रह्मा भी मर जायंगे। काल आने पर प्रकृति भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में विलीन हो जाती है ॥४५॥ सभी देवगण मर जायंगे और तीनों लोकों के चर-अचर समेत समस्त जगत् काल में विलीन हो जाता है, अतः काल ही दुर्निवार है ॥४६॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण स्वेच्छा से काल के भी काल, स्रष्टा के स्रष्टा, संहर्ता के संहारक और रक्षक के रक्षक एवं परात्पर हैं ॥४७॥ महास्थूल से स्थूलतम, सूक्ष्म से सूक्ष्मतम, कृश (दुर्बल), परमाणु से भी परे, काल के काल और कालभेद करने वाले हैं ॥४८॥ उनके लोमों में असंख्य विश्व हैं और महाविराट् पुरुष परमात्मा श्रीकृष्ण के तेज का सोलहवाँ अंशरूप है ॥४९॥ उनसे शुद्ध विराट् की उत्पत्ति हुई, जो समस्त के परम कारण हैं। स्वयं ब्रह्मा, जो सृष्टि करने वाले हैं, उनके नाभिकमल से उत्पन्न हुए हैं, किन्तु प्रयास करने पर भी ब्रह्मा उस कमलदण्ड का अन्त नहीं पा सके। एक लाख वर्ष तक उसकी खोज में भ्रमण कर पुनः अपने स्थान पर स्थित हो गये ॥५०-५१॥ अनन्तर वायुभक्षण करते हुए एक लाख वर्ष तक तप करने पर उन्हें पार्षद समेत भगवान् श्रीकृष्ण और गोलोक का दर्शन प्राप्त हुआ ॥५२॥

१क. पुराणः परमः का०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गोपगोपीपरिवृतं द्विभुजं मुरलीधरम्। रत्नसिंहासनस्थं च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥५३॥
दृष्ट्वाऽनुज्ञां गृहीत्वा च प्रणम्य च पुनः पुनः। ईश्वरेच्छां च विज्ञाय स्रष्टुं सृष्टिं मनो दधे ॥५४॥
यः शिवः सृष्टिसंहर्ता स च स्रष्टुर्ललाटजः। विष्णुः पाता क्षुद्रविराट्श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥५५॥
सृष्टिकारणभूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। सन्ति विश्वेषु सर्वेषु श्रीकृष्णस्य कलोद्भवाः ॥५६॥
तेऽपि देवाः प्राकृतिकाः प्राकृतश्च महाविराट्। सर्वप्रसूतिः प्रकृतिः श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥५७॥
न शक्तः परमेशोऽपि तां शक्तिं प्रकृतिं विना। सृष्टिं विधातुं मायेशो न सृष्टिर्मायया विना ॥५८॥
सा च कृष्णे तिरो भूत्वा सृष्टिसंहारकारके। साऽऽविर्भूता सृष्टिकाले सा च नित्या[1] महेश्वरी ॥५९॥
कुलालश्च घटं कर्तुं यथाऽशक्तो मृदं विना। स्वर्णं विना स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः ॥६०॥
सा च शक्तिः सृष्टिकाले पञ्चधा चेश्वरेच्छया। राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती ॥६१॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः। प्राणाधिकप्रियतमा सा राधा परिकीर्तिता ॥६२॥
ऐश्वर्याधिष्ठातृदेवी सर्वमङ्गलकारिणी। परमानन्दरूपा च सा लक्ष्मीः परिकीर्तिता ॥६३॥
विद्याधिष्ठातृदेवी या परमेशस्य दुर्लभा। या माता वेदशास्त्राणां सा सावित्री प्रकीर्तिता ॥६४॥

तब ब्रह्मा ने गोप-गोपियों से घिरे, दो भुजाओं वाले, अधर पर मुरली रखे, रत्नसिंहासन पर अवस्थित और राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान कृष्ण को देखकर उन्हें बार-बार प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर ईश्वर की इच्छा जानते हुए सृष्टि सर्जन करने का मन में निश्चय किया ॥५३-५४॥ जो शिव सृष्टि का संहार करते हैं वे स्रष्टा (ब्रह्मा) के भाल से उत्पन्न हुए हैं और श्वेतद्वीपनिवासी रक्षक विष्णु क्षुद्र विराट् कहे जाते हैं ॥५५॥ भगवान् श्रीकृष्ण की कला से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर सभी विश्वों में सृष्टि के कारण रूप हैं ॥५६॥ समस्त देवगण भी प्राकृत (प्रकृति जन्य) हैं और महाविराट् भी प्रकृति से उत्पन्न हैं प्रकृति सबकी जननी है और भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं। परमेश्वर भी बिना प्रकृति-शक्ति के सृष्टि करने में समर्थ नहीं हैं। वे मायाधीश्वर हैं बिना माया के सृष्टि सम्भव नहीं होती है ॥५७-५८॥ सृष्टि-संहार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण में वह प्रकृति (महाप्रलय में) तिरोहित हो जाती है और सृष्टि के अवसर पर पुनः प्रकट होती है। वह महेश्वरी प्रकृति नित्य है ॥५९॥ जिस प्रकार बिना मिट्टी के कुम्हार घड़ा बनाने में और सोनार सुवर्ण बिना कुण्डल बनाने में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार माया के बिना सृष्टि असम्भव है ॥६०॥ शक्ति रूप वह प्रकृति सृष्टि के समय ईश्वर की इच्छा से अपने को—राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती देवी, इनपांच रूपों में विभक्त करती है ॥६१॥ परमात्मा श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी एवं तथा उनके प्राणों से भी अधिक प्रियतमा होने के नाते उसे 'राधा' कहा जाता है ॥६२॥ ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी एवं सम्पूर्ण मंगल करने वाली उस परमानन्द रूपा को 'लक्ष्मी' कहा गया है ॥६३॥ जो परमेश्वर की दुर्लभा शक्ति विद्या की अधिष्ठात्री देवी तथा वेदशास्त्रों की जननी है, उसे 'सावित्री' कहा गया है ॥६४॥ बुद्धि की अधि-

---

१क. ०त्या यथेश्वराः।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी या सर्वशक्तिस्वरूपिणी। सर्वज्ञानात्मिका सर्वा सा दुर्गा दुर्गनाशिनी ॥६५॥
वागधिष्ठातृदेवी या शास्त्रज्ञानप्रदा सदा। कृष्णकण्ठोद्भवा सा स्याद्या च देवी सरस्वती ॥६६॥
पञ्चधाऽऽदौ स्वयं देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। ततः सृष्टिक्रमेणैव बहुधा कलया च सा ॥६७॥
योषितः प्रकृतेरंशाः पुमांसः पुरुषस्य च। मायया सृष्टिकाले च तद्विना न भवेद्भवः ॥६८॥
सृष्टिश्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मन्ब्रह्मोद्भवा सदा। पाता विष्णुश्च संहर्ता शिवः शश्वच्छिवप्रदः ॥६९॥
दत्तदत्तं ज्ञानमिदं राम मह्यं च पुष्करे। दीक्षाकाले च माघ्यां च मुनिप्रवरसंनिधौ ॥७०॥
इत्युक्त्वा कार्तवीर्यश्च रामं नत्वा च सस्मितः। आरुरोह रथं शीघ्रं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥७१॥
रामस्ततो राजसैन्यं ब्रह्मास्त्रेण जघान ह। नृपं पाशुपतेनैव लीलया श्रीहरिं स्मरन् ॥७२॥
एवं त्रिःसप्तकृत्वश्च क्रमेण च वसुंधराम्। रामश्चकार निर्भूपां लीलया च शिवं स्मरन् ॥७३॥
गर्भस्थं मातुरङ्कस्थं शिशुं वृद्धं च मध्यमम्। जघान क्षत्रियं रामः प्रतिज्ञापालनाय वै ॥७४॥
कार्तवीर्यश्च गोलोकं त्वगमत्कृष्णसंनिधिम्। जगाम परशुरामश्च स्वालयं श्रीहरिं स्मरन् ॥७५॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां महीं दृष्ट्वा महेश्वरः। पर्शुना रमणं दृष्ट्वा परशुरामं चकार तम् ॥७६॥
देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः। सर्वे चक्रुः पुष्पवृष्टिं राममूर्ध्नि च नारद ॥७७॥

ष्ठात्री देवी, समस्त शक्तिस्वरूपिणी, समस्त ज्ञानस्वरूपा, सर्वरूपा और दुर्गतिनाशिनी देवी को 'दुर्गा' कहा जाता है ॥६५॥ वाणी की अधिष्ठात्री देवी को, जो सदा शास्त्र-ज्ञान प्रदान करती है और भगवान् श्रीकृष्ण के कण्ठ से उत्पन्न है, 'सरस्वती देवी' कहते हैं ॥६६॥ वह ईश्वरी मूलप्रकृति आदि में स्वयं पांच रूपों में प्रकट होती है और अनन्तर सृष्टि-क्रम से अपनी कला द्वारा बहुत रूपों में हो जाती है ॥६७॥ अतः विश्व की समस्त स्त्रियाँ प्रकृति के अंश से और पुरुष (पुरुषोत्तम) के अंश से उत्पन्न हैं, क्योंकि सृष्टिकाल में बिना माया के जन्म सम्भव नहीं होता है ॥६८॥ हे ब्रह्मन्! प्रत्येक विश्व में सृष्टि का सर्जन ब्रह्मा ही करते हैं, सदा पालन विष्णु करते हैं और निरन्तर शिव (कल्याण) प्रद शिव संहार करते हैं ॥६९॥ हे राम! यह ज्ञान दत्तात्रेय ने मुझे पुष्कर क्षेत्र में माघी पूर्णिमा के दिन मुनिश्रेष्ठ के समीप प्रदान किया था ॥७०॥ राम से इतना कह कर कार्त्तवीर्य्य ने राम को नमस्कार किया और धनुष बाण लेकर शीघ्र रथ पर बैठ गया ॥७१॥ अनन्तर राम ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर राजसेनाओं का विनाश किया और श्रीहरि का स्मरण करते हुए लीला पूर्वक राजा को पाशुपत अस्त्र द्वारा मार डाला ॥७२॥ इस भाँति राम ने शिव के स्मरणपूर्वक क्रमशः इस पृथ्वी को लीलापूर्वक इक्कीस बार भूपविहीन किया ॥७३॥ राम ने अपनी प्रतिज्ञा के रक्षणार्थ माता के गर्भ एवं गोद में स्थित शिशुओं, वृद्धों एवं युवा क्षत्रियों का विनाश किया। ॥७४॥ निधन होने पर कार्त्तवीर्य्य गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के समीप चला गया और परशुराम भी प्रसन्न होकर श्री हरि का स्मरण करते हुए वहाँ से चले गये ॥७५॥ महेश्वर ने इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय करते तथा पर्शु (फरसे) से ही रमण करते देखकर 'परशुराम' उनका नामकरण किया ॥७६॥ हे नारद! देवगण, मुनिवृन्द, देवियों एवं सिद्धों, गन्धर्वों और किन्नर गणों ने राम के शिर पर पुष्पों की वर्षा की ॥७७॥ स्वर्ग में

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुर्हर्षशब्दो बभूव ह। यशसा चैव परशुरामस्याऽऽपूरितं जगत् ॥७८॥
ब्रह्मा भृगुश्च शुक्रश्च वाल्मीकिश्च्यवनस्तथा। जमदग्निर्ब्रह्मलोकादाजगाम प्रहर्षितः ॥७९॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः सानन्दाश्रुसमन्विताः। दूर्वापुष्पकराः सर्वे कुर्वन्तो मङ्गलाशिषः ॥८०॥
प्रणनाम च तान्रामो दण्डवत्पतितो भुवि। क्रोडे चकार ब्रह्माऽऽदौ क्रमात्तातेति संवदन्[1] ॥८१॥
तमुवाचाथ परशुरामं ब्रह्मा जगद्गुरुः। वेदसारं नीतियुतं परिणामसुखावहम् ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु राम प्रवक्ष्यामि सर्वसंपत्करं परम्। काण्वशाखोक्तवचनं सत्यं वै सर्वसंमतम् ॥८३॥
पूज्यानामेव सर्वेषामिष्टः पूज्यतमः परः। जनको जन्मदानाच्च पालनाच्च पिता स्मृतः ॥८४॥
गरीयाञ्जन्मदातुश्च सोऽन्नदाता पिता मुने। विनाऽन्नं नश्वरो देहो न नित्यं पितुरुद्भवः ॥८५॥
तयोः शतगुणं माता पूज्या मान्या च वन्दिता। गर्भधारणपोषाभ्यां सैव प्रोक्ता गरीयसी ॥८६॥
तेभ्यः शतगुणं पूज्योऽभीष्टदेवः श्रुतौ श्रुतः। ज्ञानविद्यामन्त्रदाताऽभीष्टदेवात्परो गुरुः ॥८७॥
गुरुवद्गुरुपुत्रश्च गुरुपत्नी ततोऽधिका। देवे रुष्टे गुरू रक्षेद् गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥८८॥

दुन्दुभी बजने लगी, देवों ने महान् हर्ष प्रकट किया। परशुराम के यश से समस्त जगत् आच्छन्न हो गया ॥७८॥ पश्चात् ब्रह्मा, भृगु, शुक्र, वाल्मीकि, च्यवन और जमदग्नि अत्यन्त हर्षित होकर ब्रह्मलोक से वहाँ आये ॥७९॥ सभी लोग रोमाञ्चित शरीर एवं आनन्द के आँसू से युक्त थे, दूर्वा और पुष्प हाथ में लिए मंगल आशीर्वाद दे रहे थे ॥८०॥ उन्हें देखकर राम ने भूमि में लेट कर दण्डवत् प्रणाम किया। पहले ब्रह्मा ने गोद में लिया, फिर हे तात! कह कर हर्ष प्रकट किया ॥८१॥ जगद्गुरु ब्रह्मा ने परशुराम से वेद का सारभाग, नीतिपूर्ण एवं परिणाम में सुखदायक वचन कहा ॥८२॥

ब्रह्मा बोले—हे राम! मैं तुम्हें समस्तसम्पतिप्रद, श्रेष्ठ, सत्य और सर्वसम्मत काण्वशाखा का वचन बता रहा हूँ, सुनो। सभी पूज्य गणों में इष्टदेव परम पूज्य होता है। (कोई) जन्म देने के कारण जनक और पालन करने के नाते पिता कहलाता है ॥८३-८४॥ हे मुने! उस जन्मदाता से अन्नदाता पिता श्रेष्ठ होता है क्योंकि बिना अन्न के देह नष्ट हो जाती है और पिता से उत्पन्न होना नित्य नहीं है ॥८५॥ उन दोनों में माता सौ गुनी अधिक पूज्या, मान्या एवं वन्दिता होती है। गर्भ धारण तथा पोषण करने के नाते वह श्रेष्ठ कही गयी है ॥८६॥ इन लोगों से सौ गुना अधिक अभीष्ट देव पूज्य है, ऐसा वेद में सुना गया है। ज्ञान, विद्या और मन्त्र देने वाला गुरु अभीष्टदेव से भी श्रेष्ठ है ॥८७॥ गुरुवत् गुरुपुत्र भी सम्माननीय होता है और गुरुपत्नी उससे भी अधिक। क्योंकि देवता के रुष्ट होने पर गुरु रक्षक होता है और गुरु के रुष्ट होने पर कोई नहीं ॥८८॥ गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु और गुरु महेश्वर

१क. संरुदन्।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुरेव परं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रियः परः ॥८९॥
गुरुर्ज्ञानं ददात्येव ज्ञानं च हरिभक्तिदम् । हरिभक्तिप्रदाता यः को वा बन्धुस्ततः परः ॥९०॥
अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानदीपं यतो लभेत् । लब्ध्वा च निर्मलं पश्येत्को वा बन्धुस्ततः परः ॥९१॥
गुरुदत्तं सुमन्त्रं च जप्त्वा ज्ञानं ततो लभेत् । सर्वज्ञत्वाच्च सिद्धिं च को वा बन्धुस्ततोऽधिकः ॥९२॥
सुखं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया । यया पूज्योऽपि जगति को वा बन्धुस्ततोऽधिकः ॥९३॥
विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मूढो न यजेद्गुरुम् । ब्रह्महत्यादिकं पापं लभते नात्र संशयः ॥९४॥
दरिद्रं पतितं क्षुद्रं नरबुद्ध्या भजेद्गुरुम् । तीर्थस्नातोऽपि न शुचिर्नाधिकारी च कर्मसु ॥९५॥
अभीष्टदेवः श्रीकृष्णो गुरुस्ते शंकरः स्वयम् । शरणं गच्छ हे पुत्र देवपूज्यतमं गुरुम् ॥९६॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपा त्वया पृथ्वी कृता यतः । प्राप्ता त्वया हरेर्भक्तिस्तं शिवं शरणं व्रज ॥९७॥
शिवां च शिवरूपं च शिवदं शिवकारणम् । शिवाराध्यं शिवं शान्तं गुरुं त्वं शरणं व्रज ॥९८॥
गोलोकनाथो भगवानंशेन शिवरूपधृक् । य इष्टदेवः स गुरुस्तमेव शरणं व्रज ॥९९॥
आत्मा कृष्णः शिवो ज्ञानं मनोऽहं सर्वजीविषु । प्राणा विष्णुः सा प्रकृतिः सर्वं शक्तियुता सुत ॥१००॥

देव हैं, गुरु ही परब्रह्म तथा ब्राह्मण से भी अधिक प्रिय हैं ॥८९॥ गुरु ज्ञान प्रदान करते हैं, जिससे हरि की भक्ति प्राप्त होती है। फिर जो भगवान् की भक्ति प्रदान करता है उससे बढ़कर दूसरा कौन बन्धु हो सकता है? ॥९०॥ अज्ञान रूपी अन्धकार से आच्छन्न प्राणी जिसके द्वारा ज्ञानरूपी दीपक प्राप्त करता है और प्राप्त करके निर्मल दर्शन करता है उससे बढ़कर अन्य कौन बन्धु है? ॥९१॥ गुरु के दिये हुए मंत्र का जप करके (शिष्य) उससे ज्ञान प्राप्त करता है और सर्वज्ञता एवं सिद्धि को भी प्राप्त कर सकता है, अतः उससे बढ़कर अन्य कौन बन्धु हो सकता है? ॥९२॥ गुरु की दी हुई विद्या द्वारा सर्वत्र सुख से जीतता है, और उस (विद्या) से जगत् में पूज्य होता है, अतः उससे अधिक बन्धु कौन है? ॥९३॥ जो मूर्ख विद्या से या धन से अन्धा होकर गुरु की अर्चना नहीं करता है, उसे ब्रह्महत्या आदि पाप का भागी होना पड़ता है, इसमें संशय नहीं ॥९४॥ जो व्यक्ति दरिद्र, पतित और क्षुद्र गुरु को मनुष्य समझकर सेवा करता है, वह तीर्थ-स्नान करने पर भी पवित्र नहीं होता है और न कर्मों का अधिकारी ही होता है ॥९५॥ भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे अभीष्ट देव हैं और शिव जी स्वयं गुरु हैं, अतः हे पुत्र! देवों से भी अधिक पूजनीय गुरु की शरण में जाओ ॥९६॥ जिसके द्वारा तुमने इक्कीस बार इस वसुन्धरा को निःक्षत्रिय किया है और जिससे भगवान् की भक्ति प्राप्त की है, उस शिव की शरण में जाओ ॥९७॥ शिवा (भवानी) रूप, शिवरूप, शिवप्रद, शिवकारण, शिवा के आराध्य-देव एवं शान्त गुरु शिव की शरण में जाओ ॥९८॥ गोलोकाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही अंश से शिवरूप धारण करते हैं। जो इष्टदेव है, वही गुरु है, अतः उसकी शरण में जाओ ॥९९॥ हे सुत! समस्त जीवों के आत्मा भगवान् कृष्ण हैं, शिव ज्ञान हैं, मैं मन हूँ, विष्णु प्राण हैं और वह प्रकृति समस्त शक्ति से युक्त है ॥१००॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ज्ञानदं ज्ञानरूप च ज्ञानबीजं सनातनम् । मृत्युंजयं कालकालं तं गुरुं शरणं व्रज ॥१०१॥
ब्रह्मज्योतिः स्वरूपं तं भक्तानुग्रहविग्रहम् । शरणं व्रज सर्वज्ञं भगवन्तं सनातनम् ॥१०२॥
प्रकृतिर्लक्षवर्षं च तपस्तप्त्वा यमीश्वरम् । कान्तं प्रियपतिं लेभे तं गुरुं शरणं व्रज ॥१०३॥
इत्युक्त्वा मुनिभिः सार्धं जगाम कमलोद्भवः । रामश्च गन्तुं कैलासं मनश्चक्रे च नारद ॥१०४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० भृगोः कैलासगमनोपदेशो नाम
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरेश्च कवचं धृत्वा कृत्वा निःक्षत्रियां महीम् । रामो जगाम कैलासं नमस्कर्तुं शिवं गुरुम् ॥१॥
गुरुपत्नीं शिवामम्बां द्रष्टुं गुरुसुतौ च तौ । गुणैर्नारायणसमौ कार्तिकेयगणेश्वरौ ॥२॥
मनोयायी महात्मा स भृगुः संप्राप्य तत्क्षणम् । ददर्श नगरं रम्यमतीव सुमनोहरम् ॥३॥
शुद्धस्फटिकसंकाशैर्मणिभिः सुमनोहरैः । [1]सुवर्णभूमिसदृशै राजमार्गैर्विराजितम् ॥४॥

ज्ञानप्रद, ज्ञानरूप, ज्ञान के बीज, सनातन, मृत्यु के विजेता और काल के भी काल उस गुरु की शरण में जाओ ॥१०१॥ ब्रह्मज्योतिःस्वरूप, भक्तों पर अनुग्रहार्थ रूप धारण करने वाले, सर्वज्ञाता एवं सनातन भगवान् की शरण में जाओ ॥१०२॥ प्रकृति ने एक लाख वर्ष तक तप करके जिस ईश्वर को मनोहर एवं प्रियपति के रूप में प्राप्त किया है, उस गुरु की शरण में जाओ ॥१०३॥ हे नारद! इतना कहकर ब्रह्मा मुनियों समेत चले गये और राम ने कैलाश जाने का निश्चय किया ॥१०४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में भृगु को कैलास-गमन-उपदेश-वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

अध्याय ४१

कैलास का वर्णन

नारायण बोले—राम ने भगवान् का कवच धारण करके पृथिवी को निःक्षत्रिय किया और पश्चात् गुरु शिव को नमस्कार करने के लिए तथा गुरुपत्नी माता पार्वती और गुणों में नारायण के समान कार्तिकेय एवं गणेश नामक गुरुपुत्रों को देखने के लिए कैलास की यात्रा की ॥१-२॥ मन के समान वेग-गामी महात्मा भृगु ने उसी क्षण कैलास पहुँच कर रम्य एवं अति मनोहर उस नगर को देखा, जो शुद्ध स्फटिक के समान मणियों एवं अतिमनोहर सुवर्ण-भूमि के समान राजमार्गों (सड़कों) से सुशोभित, सिन्दूर

---

१. क. ०र्णैश्यमास० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सिन्दूरारुणवर्णैश्च वेष्टितं मणिवेदिभिः । संयुक्तं मुक्तानिकरैः पूरितं मणिमण्डपैः ॥५॥
यक्षाणामालयैर्दिव्यैः संयुक्तं शतकोटिभिः । कपाटस्तम्भसोपानैः शोभितैर्मणिनिर्मितैः ॥६॥
सुवर्णकलशैर्दिव्यै राजतैः श्वेतचामरैः । रत्नकाञ्चनपूर्णैश्च यक्षेन्द्रगणवेष्टितैः ॥७॥
रत्नभूषणभूषाढ्यैर्दीपितैः सुन्दरीगणैः । बालिकाभिर्बालकैश्च चित्रपुत्तलिकाकरैः ॥८॥
क्रीडद्भिः सस्मितैः शश्वत्स्वच्छन्दं च विराजितैः । पारिजातद्रुमगणैः स्वर्णदीतीरजैः ॥९॥
आकीर्णं पुष्पजालैश्च पुष्पितैश्च सुगन्धिभिः । कल्पवृक्षाश्रितैः सिद्धैः कामधेनुपुरस्कृतैः ॥१०॥
सिद्धविद्यासु निपुणैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम् । त्रिलक्षयोजनोच्छ्रायैर्वटवृक्षैरथाक्षयैः ॥११॥
शतयोजनविस्तीर्णैः शतस्कन्धसमन्वितैः । असंख्यशाखानिकरैरसंख्यफलसंयुतैः ॥१२॥
नानापक्षिगणाकीर्णैः सुमनोहरशब्दितैः । कम्पितैः शीतवातेन मण्डितं च सुगन्धिना ॥१३॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण सरसां च शतेन च । सिद्धेन्द्रालयलक्षैश्च मणिरत्नविकारजैः ॥१४॥
रामश्च दृष्ट्वा नगरमतिसंहृष्टमानसः । ददर्श पुरतो रम्यं श्रीयुक्तं शंकरालयम् ॥१५॥
सुवर्णमूल्यशतकैर्मणिभिः स्वर्णवर्णकैः । खचितं रत्नसारैश्च रचितं विश्वकर्मणा ॥१६॥
त्रिपञ्चयोजनोच्छ्रायं चतुर्योजनविस्तृतम् । चतुरस्रं चतुष्कोणं प्राकारं सुमनोहरम् ॥१७॥
द्वारं रत्नकपाटेन नानाचित्रान्वितेन च । मणीन्द्रवेदिभिर्युक्तं मणिस्तम्भविराजितैः ॥१८॥

के समान लालवर्ण की मणिवेदियों से वेष्टित मोतियों के समूहों से युक्त, मणिनिर्मित मण्डपों से पूर्ण और यक्षों के दिव्य सौ करोड़ गृहों से युक्त था। उन (गृहों) में मणि के बने किवाड़, खम्भे और सीढ़ियाँ थीं ॥३-६॥ उनमें सुवर्ण के दिव्य कलश, चांदी के श्वेत चामर, रत्नों और सुवर्णों के ढेर, यक्षेन्द्रों के समूह रत्नों के भूषणों से अत्यन्त भूषित सुन्दरी-गण, हाथों में कठपुतली लिये बालक-बालिकागण, जो मन्द मुसुकान समेत स्वच्छन्द होकर निरन्तर खेल रहे थे, विराजमान थे। स्वर्ग की नदी (गंगा) के किनारे उत्पन्न होने वाले पारिजात वृक्ष थे। सुगन्धित पुष्पों के समूह बिखरे हुए थे। कल्पवृक्षों के आश्रय में सिद्धगण, कामधेनु, सिद्धविद्याओं में निपुण पुण्यवान् लोग थे। वहाँ अक्षय वट वृक्ष थे जो तीन लाख योजन ऊँचे, सौ योजन विस्तीर्ण, सौ स्कन्धों, असंख्य शाखाओं और असंख्य फलों से युक्त, अति मनोहर शब्द करने वाले असंख्य पक्षिगणों और शीतल सुगन्धित वायु से कम्पित थे। वह नगर सहस्र वाटिकाओं, सौ नदियों और मणिरत्नों के बने एक लाख सिद्धों के गृहों से पूर्ण था ॥७-१४॥ इस प्रकार नगर को देखकर राम का चित्त अति प्रसन्न हुआ। अनन्तर उन्होंने सामने रम्य एवं श्रीसम्पन्न शंकर का भवन देखा ॥१५॥ सौ सुवर्ण मूल्य वाली एवं सोने के समान वर्ण वाली मणियों और रत्नों के सार भागों से विश्वकर्मा ने उसका निर्माण किया था ॥१६॥ वह पन्द्रह योजन ऊँचे, चार योजन चौड़े, चौकोर और अति मनोहर प्राकार (चहार दीवारी) से घिरा था ॥१७॥ अनेक भाँति के चित्रों से चित्रित रत्नों के किवाड़ से विभूषित उसका द्वार था, जो उत्तम मणि की वेदियों और मणि के स्तम्भों से युक्त था ॥१८॥ हे

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तद्दक्षिणे वृषेन्द्रं च वामे सिंहं च नारद। नन्दीश्वरं महाकालं पिङ्गलाक्षं भयंकरम् ॥१९॥
विशालाक्षं च बाणं च विरूपाक्षं महाबलम्। विकटाक्षं भास्कराक्षं रक्ताक्षं विकटोदरम् ॥२०॥
संहारभैरवं कालभैरवं च भयंकरम्। रुरुभैरवमीशाभं महाभैरवमेव च ॥२१॥
कृष्णाङ्गभैरवं चैव क्रोधभैरवमुल्बणम् । कपालभैरवं चैव रुद्रभैरवमेव च ॥२२॥
सिद्धेन्द्रादीन्रुद्रगणान्विद्याधरसुगुह्यकान् । भूतान्प्रेतान्पिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् ॥२३॥
वेतालान्दानवांश्चैव योगीन्द्रांश्च जटाधरान् । यक्षान्किंपुरुषांश्चैव किन्नरांश्च ददर्श ह ॥२४॥
तान्दृष्ट्वा नन्दिकेशाज्ञां गृहीत्वा भृगुनन्दनः । तान्संभाष्याभ्यन्तरं च जगामाऽऽनन्दसंप्लुतः ॥२५॥
रत्नेन्द्रसारखचितं ददर्श शतमन्दिरम् । अमूल्यरत्नकलशैर्ज्वलद्भिश्च विराजितम् ॥२६॥
अमूल्यरत्नरचितैर्मुक्तानिर्मलदर्पणैः । हीरसारविकारैश्च कपाटैश्च विराजितम् ॥२७॥
गोरोचनाभिर्मणिभिर्युतं स्तम्भसहस्रकैः । मणिसारविकारैश्च सोपानैः परिशोभितम् ॥२८॥
ददर्शाभ्यन्तरं द्वारं नानाचित्रैश्च चित्रितम् । माणिक्यमुक्ताग्रथितैर्मालाजालैर्विराजितम् ॥२९॥
ददर्श कार्तिकेयं च वामे दक्षे गणेश्वरम्। वीरभद्रं महाकायं शिवतुल्यपराक्रमम् ॥३०॥
प्रधानपार्षदगणान्क्षेत्रपालांश्च नारद । रत्नसिंहासनस्थांश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥३१॥
तान्संभाष्य भृगुः शीघ्रं महाबलपराक्रमः । पर्शुहस्तः स परशुरामो गन्तुं समुद्यतः ॥३२॥
गच्छन्तं तं गणेशश्च क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह। निद्रितो निद्रया युक्तो महादेवोऽधुनेति च ॥३३॥

नारद! उसके दाहिने भाग में नन्दी, बायें भाग में सिंह, नन्दीश्वर, महाकाल, भयंकर पिंगलाक्ष, विशालाक्ष, बाण, महाबली विरूपाक्ष, विकटाक्ष, भास्कराक्ष, रक्ताक्ष, विकटोदर, संहारभैरव, भयंकर कालभैरव, रुरुभैरव, ईशाभ, महाभैरव, कृष्णांगभैरव, क्रोधभैरव, उल्वण, कपालभैरव और रुद्रभैरव थे ॥१९-२२॥ अनन्तर सिद्धेन्द्र आदि रुद्र गण, विद्याधर, गुह्यकगण, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, दानव, जटाधारी योगीन्द्रगण, यक्षगण, किम्पुरुषों और किन्नरों को देखा ॥२३-२४॥ उन्हें देखने के पश्चात् भृगुनन्दन (राम) नन्दिकेश्वर की आज्ञा से सबसे बात-चीत करके आनन्दमग्न होते हुए भीतर चले गये ॥२५॥ वहाँ उन्होंने सैकड़ों मन्दिरों को देखा, जो रत्नेन्द्र के सार भाग से खचित, अमूल्य रत्नों के समुज्ज्वल कलशों से सुशोभित, अमूल्य रत्नों के बने मोती जैसे निर्मल दर्पणों और हीरों के सारभाग से बने किवाड़ों से विराजित, गोरोचन एवं मणि के सहस्र स्तम्भों से युक्त और मणि के सारभाग से बनी सीढ़ियों से परिशोभित थे। फिर अनेक चित्रों से चित्रित, तथा माणिक्य एवं मोती से बँधे मालाजाल से विराजित वहाँ का भीतरी दरवाजा देखा ॥२६-२९॥ वामभाग में कार्तिकेय को तथा दाहिने गणेश्वर, महाकाय और शिव के समान पराक्रमी वीरभद्र को देखा ॥३०॥ हे नारद! प्रधान पार्षदगणों समेत क्षेत्रपालों को देखा जो रत्नों के सिंहासनों पर स्थित एवं रत्नभूषणों से भूषित थे ॥३१॥ हाथ में फरसा लिए महाबलवान् एवं पराक्रमी परशुराम उन लोगों से सम्भाषण करके आगे जाने के लिए तैयार हो गये ॥३२॥ उन्हें जाते हुए देख कर गणेश ने कहा—थोड़ी देर रुको, महादेव इस समय निद्रायुक्त होकर शयन कर रहे हैं ॥३३॥ हे भ्रातः!

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ईश्वराज्ञां गृहीत्वाऽहमत्राऽऽगत्य क्षणान्तरे । त्वया सार्धं गमिष्यामि भ्रातस्तिष्ठात्र सांप्रतम् ॥३४॥
गणेशवाक्यं परशुरामः श्रुत्वा महाबलः । बृहस्पतिसमो वक्ता प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० कैलासवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

परशुराम उवाच

यास्याम्यन्तः पुरं भ्रातः प्रणामं कर्तुमीश्वरम् । प्रणम्य मातरं भक्त्या यास्यामि त्वरितं गृहम् ॥१॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कृत्वा पृथ्वीं च लीलया । कार्तवीर्यः सुचन्द्रश्च हतो यस्य प्रसादतः ॥२॥
नानाविद्या यतो लब्ध्वा नानाशास्त्रं सुदुर्लभम् । तं गुरुं जगतां नाथं द्रष्टुमिच्छामि सांप्रतम् ॥३॥
सगुणं निर्गुणं चैव भक्तानुग्रहविग्रहम् । सत्यं सत्यस्वरूपं च ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥४॥
स्वेच्छामयं दयासिन्धुं दीनबन्धुं मुनीश्वरम् । आत्मारामं पूर्णकामं व्यक्ताव्यक्तं परात्परम् ॥५॥
परापराणां स्रष्टारं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । पुराणं परमात्मानमीशानं त्वादिमव्ययम् ॥६॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वमङ्गलकारणम् । सर्वमङ्गलदं शान्तं सर्वैश्वर्यप्रदं वरम् ॥७॥
आशुतोषं प्रसन्नास्यं शरणागतवत्सलम् । भक्ताभयप्रदं भक्तवत्सलं समदर्शनम् ॥८॥

मैं क्षण भर में वहाँ जाकर उनसे आज्ञा लेकर अभी आ रहा हूँ, और तुम्हारे साथ वहाँ चलूँगा ॥३४॥ गणेश की बातें सुनकर बृहस्पति के समान वक्ता तथा महाबली परशुराम ने उनसे कहना प्रारम्भ किया ॥३५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में कैलास-वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

अध्याय ४२

परशुराम और गणपति का परस्पर विवाद

परशुराम बोले—हे भ्रातः ! मैं भक्तिपूर्वक ईश्वर (शिव) और माता पार्वती को प्रणाम करने के लिए अन्तःपुर जा रहा हूँ, पश्चात् मैं शीघ्र चला जाऊँगा ॥१॥ क्योंकि जिसके प्रसाद से मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वी को निर्भूप किया—कार्तवीर्य्य और सुचन्द्र का वध किया एवं अनेक भाँति की विद्या तथा अनेक दुर्लभ अस्त्र प्राप्त किये, उन जगत् के नाथ गुरु का मैं इस समय दर्शन करना चाहता हूँ ॥३॥ वे सगुण, निर्गुण, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले, सत्यस्वरूप, ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप और सनातन हैं तथा सत्य, स्वेच्छामय, दया के सागर, दीनों के हितैषी, मुनीश्वर, आत्मा में रमण करने वाले, पूर्णकाम, व्यक्त (प्रकट) अव्यक्त (अप्रकट), परे से भी परे, पर-अपर की सृष्टि करने वाले, बहुतों से आहूत, बहुतों से स्तुत, पुराणरूप, परमात्मा, ईशान, आदिरूप, अव्यय (अविनाशी), सम्पूर्ण मंगलों के मंगल, समस्त मंगल प्रदायक, शान्त, सम्पूर्ण ऐश्वर्य देने वाले, श्रेष्ठ, आशुतोष, प्रसन्नमुख, शरणागत के प्रेमी, भक्तों को अभय देने वाले, भक्तवत्सल और समदर्शी हैं ॥४-८॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इत्थं परशुरामोऽस्थादुक्त्वा गणपतेः पुरः । वाचा मधुरया तत्र समुवाच गणेश्वरः ॥९॥

गणेश्वर उवाच

क्षणं तिष्ठ क्षणं तिष्ठ शृणु भ्रातरिदं वचः । रहःस्थलस्थितौ नैव द्रष्टव्यः स्त्रीयुतः पुमान् ॥१०॥
स्त्रीसंयुक्तं च पुरुषं यः पश्यति नराधमः । करोति रसभङ्गं वा कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम् ॥११॥
तत्र तिष्ठति पापीयान्यावच्चन्द्रदिवाकरौ । विशेषतश्च पितरं गुरुं वा भूपतिं द्विजम् ॥१२॥
रहःसुरतसंसक्तं नहि पश्येद्विचक्षणः । कामतः कोपतो वाऽपि यः पश्येत्सुरतोन्मुखम् ॥१३॥
स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु। श्रोणीं वक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियः ॥
कामतोऽपि विमूढश्च [1]सोऽन्धो भवति निश्चितम् ॥१४॥
गणेशस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भृगुनन्दनः । तमुवाच महाकोपान्निष्ठुरं वचनं मुने ॥१५॥

परशुराम उवाच

अहो श्रुतं किं वचनमपूर्वं नीतिसंयुतम् । इदमेवमहो नैवं श्रुतमीश्वरवक्त्रतः ॥१६॥
श्रुतं श्रुतौ वाक्यमिदं कामिनां च विकारिणाम्। निर्विकारस्य च शिशोर्न दोषः कश्चिदेव हि ॥१७॥
यास्याम्यन्तःपुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक। यथादृष्टं करिष्यामि मत्कार्यं समयोचितम् ॥१८॥

इस प्रकार कहकर परशुराम गणपति के सामने खड़े हो गये। तब गणनायक ने मधुरवाणी द्वारा उसका उत्तर देना आरम्भ किया ॥९॥

गणेश्वर बोले—हे भ्रातः! क्षणमात्र ठहरो और मेरी बात सुनो—एकान्तस्थल में स्थित स्त्री-पुरुष को नहीं देखना चाहिए ॥१०॥ क्योंकि जो नराधम स्त्रीयुक्त पुरुष को देखता है अथवा रसभंग करता है, उसे कालसूत्र नामक नरक में निश्चित जाना पड़ता है ॥११॥ हे द्विज! चन्द्रमा-सूर्य के समय तक उस पापी को वहाँ रहना पड़ता है। विशेषतया पिता, गुरु, राजा और ब्राह्मण को एकान्त में सुरत-संसक्त जानकर विद्वान् उन्हें न देखें। क्योंकि कामना से या क्रोधवश जो सुरतोन्मुख प्राणी को देखता है, उसे सात जन्मों तक निश्चित स्त्रीवियोग होता है। और जो काम भाव से परस्त्री का नितम्ब, वक्षःस्थल और मुख देखता है, वह महामूढ़ निश्चित अन्धा होता है ॥१२-१४॥ हे मुने! गणेश की बातें सुनकर भृगुनन्दन ने हँसकर क्रुद्धभाव से निष्ठुर वचन कहना आरम्भ किया ॥१५॥

परशुराम बोले—अहो! आज मैंने नीतियुक्त और अपूर्व वाक्य सुना, क्योंकि ईश्वर (शिव) के मुख से मैंने ऐसा कभी नहीं सुना था ॥१६॥ कामी और विकारयुक्त पुरुषों के लिए ही ऐसी बातें वेद में बतायी गयी हैं, ऐसा मैंने सुना है। निर्विकार बच्चे को कोई दोष नहीं लगता। इसलिए हे भ्रातः! मैं अन्तःपुर जा रहा हूँ, बालक! तुम्हें, क्या करना है, रुको (अर्थात् जाने से मुझे मत रोको) ॥१७॥ मैं वहाँ जाकर जैसा देखूंगा वैसा समयोचित कार्य करूँगा ॥१८॥ वे तुम्हारे ही पिता माता हैं, ऐसा भी तो नहीं कहा

१क. षण्ढो भ०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तवैव तातो माता चत्येवं नैव निरूपितम्। जगतां पितरौ तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ ॥१९॥
पार्वती स्त्री पुमाञ्छंभुरिति कैर्न निरूपितः। सर्वरूपः शंकरश्च सर्वरूपा च पार्वती ॥२०॥
गुणातीतस्य का क्रीडा तद्भङ्गे वा कुतो विभो। क्रीडा लज्जा भीतिभङ्गो ग्राम्यस्यैव न वेधितुः ॥२१॥
स्तनन्धयं च सं दृष्ट्वा पित्रोर्लज्जा कुतो भवेत्। लज्जायाश्च कुतो लज्जा लज्जेशस्य जसा कुतः ॥२२॥
लज्जा लज्जां किमाप्नोति तार्थं किं वा हुताशनः। शीतं शैत्यमहोभीतिर्निर्वाहो वाहनेव च ॥२३॥
भीतेर्भीतिरवाप्नोति मृत्योर्मृत्युर्बिभेति किम्। कुतो ज्वरो ज्वरं हन्ति व्याधिं व्याधिश्च जीर्यति ॥२४॥
संहर्तारं च संहर्ता कालः कालाद्बिभेति किम्। स्रष्टारं सृजते स्रष्टा पाता किं पाति ते वने ॥२५॥
क्षुत्क्षुधं तमवाप्नोति तृष्णा तृष्णां प्रयाति किम्। निद्रा निद्रां च शोभा श्रीः शान्तिः शान्तिं च ते वने ॥२६॥
पुष्टिः पुष्टिं किमाप्नोति तुष्टिस्तुष्टिं क्षमा क्षमाम्। आत्मनः परमात्मापि शक्तिः शक्त्या बिभेति किम् ॥२७॥
कामक्रोधौ लोभमोहौ स्वात्मनस्ते न बाधिता। दया न बद्धा दयया वेच्छा बद्धेच्छया प्रभो ॥२८॥
ज्ञानबुद्धयोः को विकारो जरा नो बाधते जरा। चिन्ता न चिन्तया ग्रस्ता चक्षुश्चक्षुर्न पश्यति ॥२९॥
हर्षो मुदं किं प्राप्नोति शोकं शोको न बाधते। का विपत्तिर्विपत्तेश्च संपत्तिः संपदः कुतः ॥३०॥

गया है। क्योंकि वे पार्वती और परमेश्वर (शिव) समस्त जगत् के माता-पिता हैं ॥१९॥ यह कोई भी नहीं कहता है कि पार्वती स्त्री और शिव पुरुष हैं। शिव सर्वरूप हैं और पार्वती सर्वरूपा हैं। हे विभो! गुणों से परे रहने वाले की कैसी क्रीड़ा और कैसा उसका संग करना? (रति) क्रीड़ा, लज्जा, भय और भंग ग्राम्य जनों के लिए है ईश्वर के लिए नहीं ॥२०-२१॥ दुग्धपान करने वाले मुझ बच्चे को देखकर माता-पिता को लज्जा क्या हो सकती है? लज्जा को और लज्जाधीश्वर को लज्जा कहाँ? ॥२२॥ क्या लज्जा लज्जा को प्राप्त करती है या अग्नि ताप को प्राप्त करता है? हे भाई! शीत को शीत, तेज को दाह (गर्मी), भय को भय और मृत्यु को मृत्यु प्राप्त होती है क्या? ज्वर ज्वर का और रोग रोग का नाश करता है क्या? ॥२३-२४॥ संहर्त्ता संहर्त्ता से और कला काल से भयभीत होता है क्या? क्या तुम्हारे मत से स्रष्टा सृष्टिकर्ता का सर्जन करता है और रक्षक रक्षक की रक्षा करता है? ॥२५॥ क्षुधा क्षुधा को और तृष्णा तृष्णा को प्राप्त होती है क्या? तुम्हारे मत से निद्रा निद्रा को, शोभा शोभा को, शान्ति शान्ति को, पुष्टि पुष्टि को, तुष्टितुष्टि को और क्षमा क्षमा को प्राप्त होती है क्या? आत्मा से परमात्मा और शक्ति से शक्ति भयभीत होती है क्या? ॥२६-२७॥ हे प्रभो! काम-क्रोध, लोभ-मोह ये अपने से नष्ट नहीं होते हैं। दया दया से अथवा इच्छा इच्छा से आबद्ध नहीं होती है ॥२८॥ ज्ञान-बुद्धि में विकार होता है क्या? जरा (बुढ़ाई) जरा से नष्ट नहीं होती है। चिन्ता चिन्ता से ग्रस्त नहीं होती है और आँख आँख को नहीं देखती है ॥२९॥ क्या हर्ष को हर्ष होता है? शोक शोक को नष्ट नहीं करता है। विपत्ति को विपत्ति क्या? और सम्पत्ति को सम्पत्ति कहां होती है? ॥३०॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मेधाया धारणाशक्तिः स्मृतेर्वा स्मरणं कुतः। न दग्धः स्वप्रतापेन विवस्वानिति संमतः ॥३१॥
विपरीतमतो भ्रातस्त्वयैवाऽऽचारितोऽधुना। न श्रुतोऽयं गुरुमुखान्न दृष्टो न श्रुतौ श्रुतः ॥३२॥
इत्युक्त्वा चापि परशुरामः शश्वत्प्रहस्य सः। शीघ्रं गन्तुं मनश्चक्रे तद्गृहाभ्यन्तरं मुदा ॥३३॥
तच्च रामवचः श्रुत्वा जितक्रोधो गणेश्वरः। शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥३४॥

गणपतिरुवाच

अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानं प्राप्नोति तद्विदः। पितुर्भ्रातुर्मुखाज्ज्ञानं दुर्लभं भाग्यवाँल्लभेत् ॥३५॥
श्रुतं ज्ञानं विशिष्टं च ज्ञानिनामपि दुर्लभम्। किंचिन्मे त्वं मन्दबुद्धेः शृणु भ्रातर्निवेदनम् ॥३६॥
यो निर्गुणः स निर्लिप्तः शक्तिभिर्नहि संयुतः। सिसृक्षुराश्रितः शक्त्या निर्गुणः सगुणो भवेत् ॥३७॥
यावन्ति च शरीराणि भोगार्हाणि महामुने। प्राकृतानि च सर्वाणि विना श्रीकृष्णविग्रहम् ॥३८॥
ध्यायन्ति योगिनस्तं च शुद्धज्योतिः स्वरूपिणम्। हस्तपादादिरहितं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥३९॥
वैष्णवास्तं नमस्यन्ति भक्तानुग्रहकारकम्। कुतो बभूव तज्ज्योतिरहो तेजस्विना विना ॥४०॥
ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यं शरीरं श्यामसुन्दरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम् ॥४१॥
अतीवामूल्यसद्रत्नभूषणैश्च विभूषितम्। ज्योतिरभ्यन्तरे मूर्तिं पश्यन्ति कृपया विभोः ॥४२॥

मेधा को धारणा शक्ति या स्मृति को स्मरण नहीं होता है और सूर्य अपने प्रताप से कभी भी दग्ध नहीं होते हैं, ऐसा सभी का मत है ॥३१॥ हे भ्रातः! इस समय तुमने ही विपरीताचरण किया है। मैंने न तो यह गुरु के मुख से सुना और न वेद में कभी देखा-सुना ॥३२॥ इतना कहकर परशुराम ने निरन्तर हँस कर प्रसन्न चित्त से घर के भीतर शीघ्र जाना चाहा ॥३३॥ राम की बातें सुनकर क्रोध को जीते हुए तथा शुद्धसत्त्वस्वरूप गणनायक ने हँसकर उनसे कहा ॥३४॥

गणपति बोले—अज्ञान अन्धकार से आच्छन्न प्राणी उसके वेत्ता से ज्ञान ग्रहण करता है, किन्तु पिता और भ्राता के मुख से दुर्लभ ज्ञान को भाग्यवान् ही प्राप्त करता है ॥३५॥ हे भ्राता! मैंने ज्ञानियों के लिये भी दुर्लभ विशिष्ट ज्ञान सुना है अतः मुझ मन्द बुद्धि का भी कुछ निवेदन सुनो ॥३६॥ जो निर्गुण है, वही निर्लिप्त है, वह शक्ति के साथ नहीं रहता है। सृष्टि करने वाला शक्ति के आश्रित ही रहेगा। एवं निर्गुण ही कभी सगुण हो जाता है ॥३७॥ हे महामुने! एक भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर को छोड़कर अन्य जितने शरीर हैं, सब भोग के योग्य एवं प्राकृत हैं ॥३८॥ अतः योगी गण उसी निर्गुण का ध्यान करते हैं, जो शुद्ध ज्योतिःस्वरूप, हाथ-पैर आदि से रहित एवं प्रकृति से परे है ॥३९॥ भक्तों पर अनुग्रह करने वाले उसी को वैष्ण व लोग नमस्कार करते हैं क्योंकि तेजस्वी के विना उसकी ज्योति कहाँ सम्भव हो सकती है ॥४०॥ उस ज्योति के भीतर श्याम और सुन्दर नित्य शरीर रहता है, जो दो भुजा, हाथ में मुरली, मन्द मुसुकान, पीताम्बर और अति अमूल्य उत्तम रत्नों के भूषणों से भूषित है। योगी लोग उसी विभु की कृपा से ज्योति के भीतर उस मूर्ति को देखते हैं ॥४१-४२॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

तदा दास्ये नियुक्तास्ते भवन्त्येवेश्वरेच्छया । योगस्तपो वा दास्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥४३॥
यदा सृष्टयन्मुखः कृष्णः ससृजे प्रकृतिं मुदा । तद्योनौ ह्यर्पितं वीर्यं वीर्याद्डिम्भो बभूव ह ॥४४॥
दिव्येन लक्षवर्षेण गर्भाद्डिम्भो विनिर्गतः । तदा बभूव निःश्वासस्ततो वायुर्बभूव ह ॥४५॥
निःश्वासेन समं भ्रातर्मुखबिन्दुर्विनिर्गतः । ततो बभूव सहसा जलराशिर्हरेः पुरः ॥४६॥
तज्जले च स्थितो डिम्भो दिव्यवर्षाणि लक्षकम् । ततो बभूव सहसा विश्वाधारो महाविराट् ॥४७॥
यावन्ति गात्रलोमानि तस्य सन्ति महात्मनः । ब्रह्माण्डानि च तावन्ति विद्यमानानि निश्चितम् ॥४८॥
तत्रैव प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । देवा नराश्च मुनयो विद्यमानाश्चराचराः ॥४९॥
महाविराडाश्रयश्च सर्वस्य च जनस्य च । निःश्वासवायुर्भगवान्बभूव श्रीहरेर्मुने ॥५०॥
महाविष्णुश्च कलया ततः क्षुद्रविराडभूत् । तन्नाभिकमले ब्रह्मा शंकरस्तल्ललाटजः ॥५१॥
विष्णुस्तदंशः पाता यः श्वेतद्वीपनिवासकृत् । एवं ते प्रतिविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥५२॥
स्वयं च स्वांशकलया नानामूर्तिधरो हरिः । तदाऽभवच्च सगुणः सर्वशक्तियुतस्तदा ॥५३॥
कथं लज्जादिरहितः स च स्वेच्छामयो महान् । सर्वदा सर्वभोगार्हः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥५४॥

वे ईश्वर की इच्छा से उनके दास्य कर्म में नियुक्त होते हैं। योग या तप दास्य की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होता है ॥४३॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने जब सृष्टि करना चाहा तब प्रसन्नचित्त से प्रकृति की सृष्टि की और उसकी योनी में वीर्य का निक्षेप किया। वीर्य से डिम्म (सुवर्ण-पिण्ड) हुआ और वह डिम्भ दिव्य एक लाख वर्ष के उपरांत गर्भ से बाहर निकला। तब निश्वास हुआ उससे वायु उत्पन्न हुआ ॥४४-४५॥ हे भ्रातः! निःश्वास के साथ ही मुख से बिन्दु गिरा, जिससे भगवान् के सामने ही सहसा जल की राशि उत्पन्न हो गई ॥४६॥ उस जल के भीतर वह डिम्भ एक लाख दिव्य वर्ष तक स्थित रहा। उस से सहसा महाविराट् की उत्पत्ति हुई जो विश्व का आधार है ॥४७॥ उस महात्मा (विराट्) के शरीर में जितने लोम हैं, उतने ही ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं ॥४८॥ प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शिव देववृन्द एवं मुनिगण आदि चर-अचर विद्यमान रहते हैं ॥४९॥ सभी जनों का यह महाविराट् आश्रय है। हे मुने! श्रीहरि के निःश्वास से वायु भगवान् हुए और कला से महाविष्णु। उनसे क्षुद्रविराट् (विष्णु) उत्पन्न हुए जिनके नाभिकमल से ब्रह्मा तथा ब्रह्मा के ललाट से शंकर उत्पन्न हुए ॥५०-५१॥ भगवान् के अंश से उत्पन्न होने वाले विष्णु, जो श्वेत द्वीप में निवास करते हैं, सृष्टि के रक्षक हैं। इस प्रकार प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर होते हैं ॥५२॥ भगवान् स्वयं अपने अंश की कला द्वारा अनेक प्रकार की मूर्ति धारण करते हैं। तब वे सगुण हुए और तब सर्वशक्तिमान् कहलाये ॥५३॥ वे स्वेच्छामय और महान् होते हुए लज्जा आदि से रहित कैसे हैं? वे समस्त शक्ति से युक्त होने के नाते सर्वदा सब भोगों के लिए उपयुक्त हैं ॥५४॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

लज्जा नास्त्येव लज्जायामतोऽयं सर्वसंमतः। या च लज्जावती देवी तस्या लज्जा कुतो गता ॥५५॥
सर्वशक्तिमती दुर्गा प्रकृत्या सा च शैलजा। तस्या लज्जादयः सन्ति सर्वदा सर्वसंमताः ॥५६॥
पञ्चधा प्रकृतिर्या च श्रीकृष्णस्य बभूव ह। राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती ॥५७॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः। प्राणाधिका प्रिया सा च राधाऽऽस्ते तस्य वक्षसि ॥५८॥
विद्याधिष्ठातृदेवी या सावित्री ब्रह्मणः प्रिया। लक्ष्मीर्नारायणस्यैव सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥५९॥
सरस्वती द्विधा भूत्वा कृष्णस्य मुखनिर्गता। [1]सावित्री ब्रह्मणः कान्ता स्वयं नारायणस्य च ॥६०॥
बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी या ज्ञानसूः शक्तिसंयुता। सा दुर्गा शूलिनः कान्ता तस्या लज्जा कुतो गता ॥६१॥
प्रकृतिः पञ्चधा भ्रातर्गोलोके च बभूव ह। इमाः प्रधानाः कलया बभूवुर्नैकधा यतः ॥६२॥
विप्रेन्द्र नित्यं वैकुण्ठं ब्रह्माण्डात्परमुच्यते। अविनाशि स्थलं शश्वल्लये प्राकृतिके ध्रुवम् ॥६३॥
तत्र नारायणो देवः कृष्णार्धांशश्चतुर्भुजः। वनमाली पीतवासाः शक्त्या वै पद्मया सह ॥६४॥
स्वयं कृष्णश्च गोलोके द्विभुजः श्यामसुन्दरः। सस्मितो मुरलीहस्तो राधावक्षः स्थलस्थितः ॥६५॥
शश्वद्गोगोपगोपीभिः संयुक्तो गोपरूपधृत्। परिपूर्णतमः श्रीमान्निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥६६॥

यद्यपि लज्जा को लज्जा नहीं होती है, यह सर्वसम्मत है, तथापि जो देवी लज्जावती है, उसकी लज्जा कहाँ चली जायगी? ॥५५॥ दुर्गा सर्वशक्तिसम्पन्न हैं किन्तु इस समय हिमालय से उत्पन्न होने के नाते प्राकृत हैं। इसलिए उनमें सर्वदा लज्जा आदि वर्तमान रहते हैं, यह सर्वसम्मत है ॥५६॥ भगवान् श्रीकृष्ण की जो प्रकृति—राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती देवी इन पाँच रूपों में परिणत हुई थी, उनमें परमात्मा कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी और प्राणों से अधिक प्रिय जो है, उसका नाम राधा है, जो उनके वक्षःस्थल पर स्थित रहती है ॥५७-५८॥ विद्या की अधिष्ठात्री देवी सावित्री ब्रह्मा की पत्नी हुईं और समस्त सम्पत्ति-स्वरूपा लक्ष्मी नारायण की पत्नी हुईं ॥५९॥ भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निकल कर सरस्वती दो रूपों में प्रकट हुईं जिसमें एक सावित्री रूप से ब्रह्मा की और स्वयं सरस्वती नारायण की प्रिय पत्नी हुईं ॥६०॥ बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी जो ज्ञानजननी एवं शक्तियुक्त हैं, वह दुर्गा शिव की कान्ता हुई हैं, अतः उनकी लज्जा कहाँ चली जायगी? ॥६१॥ हे भ्रातः! गोलोक में ही प्रकृति इन पांचों रूपों में परिणत हुई और कला से ये ही प्रधान हैं क्योंकि ये एक ही बार नहीं हुई हैं ॥६२॥ हे विप्रेन्द्र! नित्य वैकुण्ठलोक ब्रह्माण्ड से श्रेष्ठ और अविनाशी स्थान है। यह प्राकृत लय में भी निरन्तर विद्यमान रहता है ॥६३॥ वहाँ भगवान् कृष्ण के अर्द्धांश भाग विष्णु लक्ष्मी के साथ रहते हैं, जो चार भुजाओं, वनमाला एवं पीताम्बर से सुशोभित हैं और स्वयं श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक में दो भुजा, मन्द मुसुकान तथा हाथ में मुरली लिए राधा के वक्षःस्थल पर स्थित रहते हैं ॥६४-६५॥ वे निरन्तर गोप-गोपी से संयुक्त, गोपवेष धारण किये, परिपूर्णतम, श्रीमान्, निर्गुण,

---

१. क० भारती ब्र०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्वेच्छामयः स्वतन्त्रस्तु परमानन्दरूपधृत् । सुराः कलोद्भवा यस्य षोडशांशो महाविराट् ॥६७॥
यतो भवन्ति विश्वानि स्थूलसूक्ष्मादिकानि च । पुनस्तत्र प्रलीयन्त एवमेव मुहुर्मुहुः ॥६८॥
गोलोक ऊर्ध्वं वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनः । नास्ति लोकस्तदूर्ध्वं च नास्ति कृष्णात्परः प्रभुः ॥६९॥
इदं श्रुतं शंभुवक्त्रान्मया ते कथितं द्विज । क्षणं तिष्ठाधुना भ्रातरीश्वरः सुरतोन्मुखः ॥७०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशपरशुरामसंवादो
नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

गणेशवचनं श्रुत्वा स तदा वेगतः सुधीः । पर्शुहस्तः स वै रामो निर्भयो गन्तुमुद्यतः ॥१॥
गणेश्वरस्तदा दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाय यत्नतः । वारयामास संप्रीत्या चकार विनयं पुनः ॥२॥
रामस्तं प्रेरयामास हुं कृत्वा तु पुनः पुनः । बभूव च ततस्तत्र वाग्युद्धं हस्तकर्षजैः ॥३॥
पर्शुनिःक्षेपणं कर्तुं मनश्चक्रे भृगुस्तदा । हाहा कृत्वा कार्तिकेयो बोधयामास संसदि ॥४॥
अव्यर्थमस्त्रं हे भ्रातर्गुरुपुत्रे कथं क्षिपेः । गुरुवद्गुरुपुत्रं च मा भवान्हन्तुमर्हति ॥५॥

प्रकृति से परे, स्वेच्छामय, स्वतन्त्र और परमानन्दरूपधारी हैं। उनकी कला से समस्त देवगण उत्पन्न हुए हैं तथा महाविराट् उनका सोलहवाँ अंश है ॥६६-६७॥ उनसे स्थूल-सूक्ष्म आदि विश्व उत्पन्न होते हैं तथा पुनः उन्हीं में विलीन हो जाते हैं, ऐसा बार-बार होता रहता है ॥६८॥ वैकुण्ठ से ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर गोलोक स्थित है, जिसके ऊपर कोई अन्य लोक नहीं है तथा भगवान् श्रीकृष्ण से महान् कोई अन्य प्रभु नहीं है ॥६९॥ हे द्विज! यह सब मैंने शम्भु के मुख से सुना था, जो तुम्हें बताया है। अतः हे भ्रातः! इस समय क्षणमात्र ठहरो। क्योंकि ईश्वर शिव सम्प्रति सुरतोन्मुख हैं ॥७०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद-प्रकरण में गणेश-परशुराम-संवाद-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

अध्याय ४३

गणेश का दन्त-भंग

नारायण बोले—गणेश की बातें सुनकर विद्वान् राम ने फरसा हाथ में लिए निर्भय होकर वेग से भीतर जाना चाहा ॥१॥ तब गणाधीश ने यह देखकर शीघ्र उठकर प्रयत्नपूर्वक सप्रेम राम को रोका तथा पुनः विनती की ॥२॥ किन्तु राम ने हुंकार करके उन्हें बार-बार ललकारा जिससे दोनों में वाग्युद्ध हुआ और हाथापाई होने लगी ॥३॥ उस समय भृगु ने उन पर फरसा चलाना चाहा, जिस पर सभा में हाहाकार करके कार्तिकेय ने कहा—हे भ्रातः! निष्फल न होने वाले इस अस्त्र को गुरुपुत्र के ऊपर क्यों चलाते हो? गुरु के समान ही गुरुपुत्र को आप मारने योग्य नहीं हैं ॥५॥ फरसा चलाते हुए राम को क्रुद्ध और रक्तकमल की

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पशुं क्षिपन्तं कुपितं रक्तपद्मदलेक्षणम्। गणेशो रोधयामास निवर्तस्वेत्युवाच तम् ॥६॥
पुनर्गणेशं रामश्च प्रेरयामास कोपतः। पपात पुरतो वेगान्मानहीनो[1] गजाननः ॥७॥
गजाननः समुत्थाय धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम्। पुनस्तं बोधयामास जितक्रोधः शिवात्मजः ॥८॥
निवर्तस्व निवर्तस्वेत्युच्चार्य च पुनः पुनः। प्रवेशने ते का शक्तिरीश्वराज्ञां विना प्रभो ॥९॥
मम भ्राता त्वमतिथिर्विद्यासंबन्धतो ध्रुवम्। ईश्वरप्रियशिष्यश्च सोढं वै तेन हेतुना ॥१०॥
नह्यहं कार्तवीर्यश्च भूपास्ते क्षुद्रजन्तवः। अतो विप्र न जानासि मां च विश्वेश्वरात्मजम् ॥११॥
क्षणं तिष्ठ निवर्तस्व समये ब्राह्मणातिथे। क्षणान्तरे त्वया सार्धं यास्यामीश्वरसंनिधिम् ॥१२॥

नारायण उवाच

हेरम्बवचनं श्रुत्वा प्रजहास पुनः पुनः। पशुं क्षेप्तुं मनश्चक्रे प्रणम्य हरिशंकरौ ॥१३॥
पशुं क्षिपन्तं कोपेन तं च रामं गजाननः। दृष्ट्वा मुमूर्षुं देवेशो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम् ॥१४॥
[2]योगेन वर्धयामास शुण्डां तां कोटियोजनाम्। योगीन्द्रस्तत्र संतिष्ठन्भ्रामयित्वा पुनः पुनः ॥१५॥
शतधा वेष्टयित्वा तु भ्रामयित्वा तु तत्र वै। ऊर्ध्वमुत्तोल्य वेगेन क्षुद्राहिं गरुडो यथा ॥१६॥

भाँति लाल नेत्र किये देखकर गणेश ने उन्हें रोका और कहा—'लौट जाओ! किन्तु राम ने क्रुद्ध होकर पुनः गणेश को ललकारा, यह देखकर अपमानित गजानन वेग से दौड़कर उनके सम्मुख आ गये ॥६-७॥ गणेश ने उठ कर धर्म को साक्षी किया और क्रोधजयी शिवपुत्र ने उन्हें पुनः समझाया तथा बार-बार कहा—हे प्रभो! लौट जाओ, लौट जाओ। बिना ईश्वर (शिव) की आज्ञा के भीतर प्रविष्ट होने की तुम्हारी शक्ति नहीं है ॥८-९॥ तुम विद्या सम्बन्ध से मेरे भ्राता और अतिथि हो, ईश्वर के प्रिय शिष्य हो। इसीलिए मैं तुम्हारी सभी बातों का सहन कर रहा हूँ ॥१०॥ हे विप्र! न मैं कार्तवीर्य्य हूँ और न तुम्हारे (संग्राम वाले) क्षुद्रजन्तु राजा हूँ, इसी लिए तुम मुझ विश्वेश्वरपुत्र को नहीं जानते हो ॥११॥ हे ब्राह्मण अतिथि! क्षणमात्र ठहरो, लौट जाओ, मैं तुम्हारे साथ शिव के समीप क्षणभर में चलूँगा ॥१२॥

नारायण बोले—हेरम्ब (गणेश) की ऐसी बातें सुनकर भृगु ने बार-बार उनका उपहास किया, और हरि तथा शिव को प्रणाम करके फरसा चलाने का ही मन में निश्चय किया ॥१३॥ गजानन ने देखा कि परशुराम क्रुद्ध होकर मारने की इच्छा से फरसा चलाना ही चाहते हैं, अतः उस समय धर्म को साक्षी बनाकर उन्होंने योग द्वारा अपने शुण्डदण्ड (सूँड) को बढ़ाया, जो करोड़ योजन लम्बा हो गया योगीन्द्र गणेश ने वहीं खड़े होकर उसे बार-बार घुमाया ॥१४-१५॥ उससे परशुराम को सैकड़ों बार वेष्टित (लपेट) कर घुमाया। पश्चात् छोटे सर्प को गरुड़ की भाँति उसे वेग से ऊपर उठाकर योग द्वारा आहत राम को उन्होंने सातों द्वीप,

---

१ क. ०गाच्छन्नमानो। २ क. अये। ३ क. कोपेन।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सप्तद्वीपांश्च शैलांश्च मेरुं चाखिलसागरान् । क्षणेन दर्शयामास रामं योगपराहतम् ॥१७॥
हस्तपादाद्यनाथं तं जडं सर्वाङ्गकम्पितम् । पुनस्तं भ्रामयामास दर्पितं दर्पनाशनः ॥१८॥
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च सुरेश्वरः । जनोलोकं तपोलोकं दर्शयामास लीलया ॥१९॥
पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादूर्ध्वमुत्तमम् । सत्यलोकं ब्रह्मलोकं ध्रुवलोकं च तत्परम् ॥२०॥
गौरीलोकं शंभुलोकं दर्शयामास नारद । दर्शयित्वा तु विध्यण्डं स पपौ सप्तसागरान् ॥२१॥
पुनरुद्गिरणं चक्रे सनक्रमकरोदकम् । तत्र तं पातयामास गम्भीरे सागरोदके ॥२२॥
मुमूर्षुं तं संतरन्तं पुनर्जग्राह लीलया । पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादूर्ध्वमप्यमुम् ॥२३॥
वैकुण्ठं दर्शयामास सलक्ष्मीकं जनार्दनम् ॥२४॥
क्षणं तत्र भ्रामयित्वा योगीन्द्रो योगमायया । पुनः करं च योगेन वर्धयामास लीलया ॥२५॥
गोलोकं दर्शयामास विरजां च नदीश्वरीम् । वृन्दावनं शृङ्गशतं शैलेन्द्रं रासमण्डलम् ॥२६॥
गोपीगोपादिभिः सार्धं श्रीकृष्णं श्यामसुन्दरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् ॥२७॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् । तेजसा कोटिसूर्याभं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥२८॥
एवं कृष्णं दर्शयित्वा प्रणमय्य पुनः पुनः । क्षणेन लम्बमानं च भ्रामयित्वा पुनः पुनः ॥२९॥

पर्वतगण, मेरु और समस्त सागर क्षणमात्र में दिखा दिये ॥१६-१७॥ अनन्तर दर्पनाशन गणेश ने पुनः अभिमानी राम को, हाथ-चरण आदि से असहाय, जड़ तथा सर्वांग में कम्पित करके पुनः भ्रमण कराया ॥१८॥ फिर सुरेश ने भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनोलोक तथा तपोलोक को लीलापूर्वक दिखा दिया। पुनः वहाँ घुमाकर ब्रह्माण्ड से ऊपर उत्तम सत्यलोक, ब्रह्मलोक, ध्रुवलोक, उससे परे गौरीलोक और शिवलोक का दर्शन कराया। फिर ब्रह्माण्ड दिखा कर सातों सागरों का पान कर लिया ॥१९-२१॥ पुनः मगर आदि जलचर जीवों समेत समुद्र को बाहर उगल दिया और उसी गम्भीर सागर-जल में उन्हें गिरा दिया ॥२२॥ वहाँ तैरते हुए मरणासन्न राम को लीलापूर्वक पकड़ कर पुनः घुमाकर ब्रह्माण्ड से भी ऊपर वैकुण्ठ लोक में लक्ष्मी समेत चतुर्भुजधारी भगवान् का उन्हें दर्शन कराया। ॥२३-२४॥ इस भाँति योगीन्द्र गणेश ने क्षणमात्र में पुनः योगमाया द्वारा उन्हें भ्रमण कराकर लीला पूर्वक अपने शुण्ड (सूँड) को बढ़ाया और उन्हें नदीश्वरी विरजा समेत गोलोक का दर्शन कराया। फिर वृन्दावन, सौ शिखरवाला पर्वतराज, रास-मण्डल एवं गोप-गोपी आदि समेत श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का दर्शन कराया, जो दो भुजा से युक्त, हाथ में मुरली लिये, मन्दहास समेत अति मनोहर, रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नों के भूषणों से भूषित, करोड़ों सूर्य के समान कान्तिमान्, और राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान थे ॥२५-२८॥ इस भाँति कृष्ण का दर्शन और उन्हें बार-बार प्रणाम कराकर पुनः सूँड को बढ़ाया। उसे बार-बार घुमाकर इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करा कर

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दृष्ट्वा कृष्णं चेष्टदेवं सर्वपापप्रणाशनम्। भ्रूणहत्यादिकं पापं भृगोर्दूरं चकार ह ॥३०॥
न भवेद्यातना नष्टा विना भोगेन पापजा। स्वल्पां च बुभुजे रामो गताऽन्या कृष्णदर्शनात् ॥३१॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य भुवि वेगात्पपात ह। बभूव दूरीभूतं च गणेशस्तम्भनं भृगोः ॥३२॥
सस्मार कवचं स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम्। अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शंभुं जगद्गुरुम् ॥३३॥
चिक्षेप पर्शुमव्यर्थं शिवतुल्यं च तेजसा। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने ॥३४॥
पितुरव्यर्थमस्त्रं च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम्। जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थं चकार ह ॥३५॥
निपात्य पर्शुवेगेन च्छित्त्वा दन्तं समूलकम्। जगाम रामहस्तं च महादेवबलेन च ॥३६॥
हाहेति शब्दमाकाशे देवाश्चक्रुर्महाभिया। वीरभद्रः[1] कार्तिकेयः क्षेत्रपालाश्च पार्षदाः ॥३७॥
पपात भूमौ दन्तश्च सरक्तः शब्दयंस्तदा। पपात गैरिकायुक्तो यथा स्फटिकपर्वतः ॥३८॥
शब्देन महता विप्र चकम्पे पृथिवी भिया। कैलासस्था जनाः सर्वे मूर्च्छामापुः क्षणं भिया ॥३९॥
निद्रा बभञ्ज तत्काले निद्रेशस्य जगत्प्रभोः। आजगाम बहिः शंभुः पार्वत्या सह संभ्रमात् ॥४०॥
पुरो ददर्श हेरम्बं लोहितास्यं क्षतेन तम्। भग्नदन्तं जितक्रोधं सस्मितं लज्जितं मुने ॥४१॥

राम के भ्रूण हत्या आदि समस्त पापों को नष्ट कराया, क्योंकि भगवान् सभी पापों के विनाशक हैं ॥२९-३०॥ पापजन्य यातना बिना भोगे नष्ट नहीं होती है। राम ने कुछ का उपभोग किया था और शेष भगवान् कृष्ण के दर्शन से नष्ट हो गयी ॥३१॥ पुनः क्षणमात्र में चेतना प्राप्त होने पर वेग से भूतल पर राम आ गये और गणेश कृत स्तम्भन भी दूर हो गया ॥३२॥ तब परशुराम ने गुरु प्रदत्त अतिदुर्लभ कवच एवं स्तोत्र, अभीष्टदेव श्रीकृष्ण और जगद्गुरु गुरुदेव शिव का स्मरण किया ॥३३॥ हे मुने! तदुपरांत उस अव्यर्थ फरसे का प्रयोग कर दिया, जो शिव तुल्य एवं तेज में ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्य की प्रभा से सौ गुना अधिक था ॥३४॥ गणपति ने अपने पिता के उस अमोघ अस्त्र को (राम द्वारा प्रयुक्त) देखकर स्वयं अपने बांयें दांत से उसे ग्रहण कर लिया, और उसे व्यर्थ नहीं किया ॥३५॥ वह फरसा वेग से गणपति का बायां दाँत समूल नष्ट कर महादेव के बल द्वारा पुनः राम के हाथ में पहुँच गया ॥३६॥ यह देखकर आकाश में देवगण तथा वीरभद्र, कार्तिकेय एवं पार्षद समेत क्षेत्रपाल लोग महाभय से हाहाकार करने लगे ॥३७॥ तब गेरू युक्त स्फटिक के पर्वत की भाँति वह रक्त युक्त दाँत शब्द करते हुए भूमि पर गिर पड़ा ॥३८॥ हे विप्र! उसके महान् शब्द से भयभीत हुई पृथिवी कांप उठी और कैलासनिवासी सभी लोग भय के मारे क्षण मात्र के लिए मूर्च्छित हो गये ॥३९॥ अनन्तर जगत्स्वामी और निद्रा के अधीश्वर शिव जी की भी निद्रा भंग हो गयी, पार्वती समेत सहसा वे बाहर आ गये ॥४०॥ हे मुने! उन्होंने सामने देखा कि प्रहार से गणेश का मुख रक्तपूर्ण है, दाँत टूट गया है, उन्होंने क्रोध को जीत लिया हैं फिर भी वे मुसकरा रहे हैं और लज्जित हैं ॥४१॥

१क. ०द्रश्च नन्दिश्च।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

पप्रच्छ पार्वती शीघ्रं स्कन्दं किमिति पुत्रक । स च तां कथयामास वार्तां पौर्वापरीं भिया ॥४२॥
चुकोप दुर्गा कृपया रुरोद च मुहुर्मुहुः । उवाच शंभोः पुरतः पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥४३॥
संबोध्य शंभुं शोकेन भिया विनयपूर्वकम् । उवाच प्रणता साध्वी प्रणतार्तिहरं पतिम् ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशदन्तभङ्गकारणवर्णनं
नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

सर्वे जानन्ति जगति दुर्गां शंकरकिंकरीम् । अपेक्षारहिता दासी तस्या वै जीवनं वृथा ॥१॥
ईश्वरस्य समाः सर्वास्तृणपर्वतजातयः । दासीपुत्रस्य शिष्यस्य दोषः कस्येति च प्रभो ॥२॥
विचारं कर्तुमुचितं त्वं च धर्मविदां वरः । वीरभद्रः कार्तिकेयः पार्षदाः सन्ति साक्षिणः ॥३॥
साक्ष्ये मिथ्यां को वदेद्वा द्वावेषां भ्रातरौ समौ । साक्ष्ये समे शत्रुमित्रे सतां धर्मनिरूपणे ॥४॥
साक्षी सभायां यत्साक्ष्यं जानन्नप्यन्यथा वदेत् । कामतः क्रोधतो वाऽपि लोभेन च भयेन च ॥५॥
स याति कुम्भीपाकं च निपात्य शतपूरुषम् । तैश्च सार्धं वसेत्तत्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६॥

पार्वती ने शीघ्र स्कन्द से पूछा—हे पुत्र ! यह क्या हुआ ? उन्होंने भय से पूर्वापर सभी बातें कह कर उन्हें सुना दीं । उपरांत दुर्गा को क्रोध उत्पन्न हुआ; शिव के सम्मुख वे दयावश बार-बार रोदन करने लगीं और पुत्र को अपनी गोद में रखकर बोलीं ॥४२-४३॥ शोक और भय के कारण विनय पूर्वक शिव को सम्बोधित करके उस पतिव्रता ने नम्र होकर भक्तों के दुःखनाशक अपने पति से कहा ॥४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में गणेश-दन्तभंग का कारण वर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

अध्याय ४४

गणेश-स्तोत्र-कथन

पार्वती बोलीं—संसार में सभी लोग जानते हैं कि दुर्गा शंकर की दासी है, किन्तु (स्वामी के यहाँ) जिसकी आवश्यकता ही न हो उस दासी का जीवन व्यर्थ है ॥१॥ हे प्रभो ! ईश्वर (शिव) के यहाँ तृण से लेकर पर्वत तक सभी समान भाव से देखे जाते हैं । इसमें किस का दोष है ? मेरे पुत्र का या आपके शिष्य का ? ॥२॥ आप धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं, अतः इसका विचार करना परमावश्यक है । वीरभद्र-कार्तिकेय और सभी पार्षदगण इसमें साक्षी भी हैं ॥३॥ ये दोनों (गणेश, कार्तिकेय) यद्यपि भ्राता हैं, पर साक्ष्य देने में मिथ्या कौन बोल सकता है, क्योंकि धर्म-निरूपण में साक्ष्य देते समय सज्जनों के लिए शत्रु-मित्र सब समान होते हैं ॥४॥ सभा में साक्षी यदि जानते हुए भी काम, क्रोध, लोभ या भय से मिथ्या कह दे तो वह अपनी सौ पीढ़ियों समेत कुम्भीपाक नरक में जाता है और वहाँ उन लोगों के साथ चन्द्र-सूर्य के समय तक निवास करता

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अहं विबोधितुं शक्ता निर्णेत्री च द्वयोरपि । तथाऽपि तव साक्षात्तु ममाऽऽज्ञा निन्दिता श्रुतौ ॥७॥
किंकराणां प्रभा कुत्र नृपे वसति संसदि । उदिते भास्करे पृथ्व्यां खद्योतो हि यथा प्रभो ॥८॥
सुचिरं तपसा प्राप्तं त्वदीयं चरणाम्बुजम् । परित्यागभयेनैव संततं भीतया मया ॥९॥
यत्किंचित्कोपशोकाभ्यामुक्तं मोहेन तत्परम् । तत्क्षमस्व जगन्नाथ पुत्रस्नेहाच्च दारुणात् ॥१०॥
त्वया यदि परित्यक्ता तदा पुत्रेण तेन किम् । साध्व्या सद्वंशजायाश्च शतपुत्राधिकः पतिः ॥११॥
असद्वंशप्रसूता या दुःशीला ज्ञानवर्जिता । स्वामिनं मन्यते नासौ पित्रोर्दोषेण कुत्सिता ॥१२॥
कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणं जडम् । कुलजा विष्णुतुल्यं च कान्तं पश्यति संततम् ॥१३॥
हुताशनो वा सूर्यो वा सर्वतेजस्विनां वरः । पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हति षोडशीम् ॥१४॥
महादानानि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च । तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१५॥
पुत्रो वाऽपि पिता वाऽपि बान्धवोऽथ सहोदरः । योषितां कुलजातानां न कश्चित्स्वामिनः समः ॥१६॥
इत्युक्त्वा स्वामिनं दुर्गा ददर्श पुरतो भृगुम् । शंभोः पदाब्जं सेवन्तं निर्भयं तमुवाच ह ॥१७॥

पार्वत्युवाच

अये राम महाभाग ब्रह्मवंश्योऽसि पण्डितः । पुत्रोऽसि जमदग्नेश्च शिष्योऽस्य योगिनां गुरोः ॥१८॥

है ॥५-६॥ यद्यपि मैं दोनों का निर्णय करके बता देने में समर्थ हूँ, तथापि तुम्हारे रहते हुए यह मेरे लिये उचित नहीं है, क्योंकि ऐसे समय में मेरी आज्ञा वेद में निन्दित है ॥७॥ हे प्रभो ! सभा में राजा के वर्तमान रहते सेवकों का तेज वैसा ही होता है, जैसे सूर्य के उदित रहते पृथ्वी पर जुगनू का ॥८॥ मैंने अत्यन्त चिरकाल तक तप करके आपका चरण-कमल प्राप्त किया है, परित्यागमय के कारण ही मैं सदैव भयभीत रहती हूँ, अतः हे जगन्नाथ ! क्रोध, शोक एवं मोहवश और दारुण पुत्र-स्नेहवश जो कुछ मैंने कहा है, उसे क्षमा करें ॥९-१०॥ क्योंकि आपने यदि मेरा त्याग कर दिया, तो पुत्र लेकर ही मैं क्या करूंगी ? कुलीन पतिव्रताओं के लिए पति सौ पुत्रों से भी अधिक प्रिय होता है ॥११॥ जो अकुलीना, दुष्टा एवं अज्ञानी स्त्री होती है वह माता-पिता के दोष से निन्दित होने के कारण पति का सम्मान नहीं करती है ॥१२॥ निन्दित, पतित, मूर्ख, दरिद्र, रोगी, तथा जड़ पति को भी कुलीनाएँ निरन्तर विष्णु के समान देखती हैं ॥१३॥ इसीलिए अग्नि या समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ सूर्य भी पतिव्रता स्त्री के तेज की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते हैं ॥१४॥ महादान, पुण्य, व्रत, उपवास और तप पतिसेवा की सोलहवीं कला के समान नहीं होते हैं ॥१५॥ पुत्र, पिता, बन्धु और सहोदर कोई भी कुलीन स्त्रियों के लिए पति के समान नहीं होता है ॥१६॥ स्वामी से इतना कहकर दुर्गा ने सामने भृगु को देखा, जो शिव के चरण-कमल की सेवा कर रहा था और निर्भय था। उससे वह बोलीं ॥१७॥

पार्वती बोलीं—हे महाभाग राम ! तुम ब्राह्मण वंश में उत्पन्न और पण्डित हो, जमदग्नि के पुत्र एवं योगियों के गुरु (शिव) के शिष्य हो ॥१८॥ तुम्हारी माता रेणुका थीं, जो पतिव्रता, कमला के अंश से उत्तम कुल

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

माता ते रेणुका साध्वी पद्मांशा सत्कुलोद्भवा । मातामहो वैष्णवश्च मातुलश्च ततोऽधिकः ॥१९॥
त्वं च रेणुकभूपस्य मनुवंशोद्भवस्य च । दौहित्रो मातुलः साधुः शूरो विष्णुपदाश्रयः ॥२०॥
कस्य दोषेण दुर्धर्षस्त्वं न जानेऽप्यशुद्धधीः । येषां दोषैर्जनो दुष्टस्तमृते शुद्धमानसः ॥२१॥
अमोघं प्राप्य परशुं च गुरोश्च करुणानिधेः । परीक्षां क्षत्रिये कृत्वा बभूवास्य सुते पुनः ॥२२॥
गुरवे दक्षिणादानमुदितं च श्रुतौ श्रुतम् । भग्नो दन्तस्तत्सुतस्य च्छिन्धि मस्तकमप्यहो ॥२३॥
गणेश्वरं रणे जित्वा स्थितश्चेत्रावयोः पुरः । स त्वं लब्ध्वाऽऽशिषो लोके पूजितोऽभूर्जगत्त्रये ॥२४॥
परशुनाऽमोघवीर्येण शंकरस्य वरेण च । हन्तुं शक्तः सृगालश्च सिंहं शार्दूलमाखुभुक् ॥२५॥
त्वद्विधं लक्षकोटिं च हन्तुं शक्तो गणेश्वरः । जितेन्द्रियाणां प्रवरो नहि हन्ति च मक्षिकाम् ॥२६॥
तेजसा कृष्णतुल्योऽयं कृष्णांशश्च गणेश्वरः । देवाश्चान्ये कृष्णकलाः पूजाऽस्य पुरतस्ततः ॥२७॥
व्रतप्रभावतः प्राप्तः शंकरस्य वरेण च । शोकेनातिकठोरेण नहि संपद्विनाऽऽपदम् ॥२८॥
इत्युक्त्वा पार्वती रोषात्तं रामं शप्तुमुद्यता । रामः सस्मार तं कृष्णं प्रणम्य मनसा गुरुम् ॥२९॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा ददर्श पुरतो द्विजम् । अतीव वामनं बालं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥३०॥

में उत्पन्न हुई थीं। मातामह (नाना) वैष्णव और मातुल (मामा) तो उनसे भी बढ़ कर थे ॥१९॥ मनुवंश में उत्पन्न राजा रेणुक के तुम दौहित्र (कन्यापुत्र) हो। तुम्हारा मातुल (मामा) साधु, शूर और विष्णु के चरणों के आश्रय में सदैव रहता है ॥२०॥ मैं नहीं समझता कि तुम किसके दोष से दुर्धर्ष होते हुए भी अशुद्ध बुद्धि वाले हो गये। जिनके दोष से मनुष्य दुष्ट होता है उनके न रहने पर शुद्ध-चित्त होता है ॥२१॥ करुणानिधि गुरु से अमोघ फरसा प्राप्त करके तुमने पहले क्षत्रियों पर उसकी परीक्षा की और अब गुरु के पुत्र पर की है ॥२२॥ इस प्रकार गुरु के लिए दक्षिणा देना वेद में तुमने उचित ही सुना है। गुरु के पुत्र का अभी दाँत ही भग्न किया (तोड़ा) है अब उसका मस्तक भी काट डालो। ॥२३॥ गणेश्वर को रण में जीतकर तदि तुम हम लोगों के सामने स्थित हो तो तुम आशीर्वाद प्राप्त करके तीनों लोकों में पूजित हो गये ॥२४॥ (यह नहीं जानते कि)—शंकर का अमोघ अस्त्र फरसा और उनका वरदान प्राप्त कर स्यार सिंह को और चूहा बाघ को मारने में समर्थ हो जाता है ॥२५॥ तुम्हारे ऐसे लाखों करोड़ों को मारने में गणेश्वर समर्थ हैं, किन्तु जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ पुरुष मक्खी का हनन नहीं करता है ॥२६॥ गणनायक तेज में कृष्ण के समान और साक्षात् उनका अंश हैं, अन्य देवगण उनकी कला हैं, इसीलिए इनकी पूजा सबके पहले होती है ॥२७॥ व्रत के प्रभाव, शंकर के वरदान और अति कठोर शोक करने पर मैंने इन्हें प्राप्त की है, क्योंकि बिना दुःख के सुख सम्भव नहीं होता है ॥२८॥ इतना कहकर पार्वती रोष के कारण राम को शाप देने के लिए तैयार हो गयीं, यह देखकर राम मन ही मन गुरु को प्रणाम कर कृष्ण का स्मरण करने लगे ॥२९॥ इसी बीच दुर्गा ने अपने सामने एक बहुत ही बौने ब्राह्मण-बालक को देखा, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा से पूर्ण था, शुक्ल दाँत, शुक्ल वस्त्र, शुक्ल यज्ञोपवीत, दण्ड, और छत्र धारण किये हुए था।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

शुक्लदन्तं शुक्लवस्त्रं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् । दण्डिनं छत्रिणं चैव सुप्रभं तिलकोज्ज्वलम् ॥३१॥
दधतं तुलसीमालां सस्मितं सुमनोहरम् । रत्नकेयूरवलयं रत्नमालाविभूषितम् ॥३२॥
रत्ननूपुरपादं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजितम् ॥३३॥
स्थिरमुद्रां दर्शयन्तं भक्तं वामकरेण च । दक्षिणेऽभयमुद्रां च भक्तेशं भक्तवत्सलम् ॥३४॥
बालिकाबालकगणैर्नगरैः सस्मितैर्युतम् । कैलासवासिभिः सर्वैरावृद्धैरीक्षितं मुदा ॥३५॥
तं दृष्ट्वा संभ्रमाच्छंभुः सभृत्यः सहपुत्रकः । मूर्ध्ना भक्त्या प्रणमच्च दुर्गा च दण्डवद्भुवि ॥३६॥
आशिषं प्रददौ बालः सर्वेभ्यो वाञ्छितप्रदाम् । तं दृष्ट्वा बालकाः सर्वे महाश्चर्यं ययुर्भिया ॥३७॥
दत्त्वा तस्मै शिवो भक्त्या तूपचारांस्तु षोडश । पूजां चकार श्रुत्युक्तां परिपूर्णतमस्य च ॥३८॥
तुष्टाव काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण नतकंधरः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भगवन्तं सनातनम् ॥३९॥
रत्नसिंहासनस्थं च प्रावोचच्छंकरः स्वयम् । अतीव तेजसाऽत्यन्तं प्रच्छन्नाकृतिमेव च ॥४०॥

शंकर उवाच

आत्मारामेषु कुशलप्रश्नोऽतीव विडम्बनम् । ते शश्वत्कुशलाधाराः कुशलाः [1]कुशलप्रदाः ॥४१॥

वह प्रभापूर्ण उज्ज्वल तिलक और तुलसी की माला पहने, मन्दहास समेत, अति मनोहर था। वह रत्नों के केयूर, कंकण और रत्नों की माला से भूषित था, रत्नों के नूपुर से सुशोभित उसके चरण थे और वह उत्तम रत्न के मुकुट से समुज्ज्वल तथा रत्नों के युगल कुण्डलों से युक्त गण्डस्थल से शोभित था ॥३०-३३॥ भक्त को बायें हाथ से स्थिर होने की मुद्रा और दाहिने से अभय मुद्रा दिखाते हुए, भक्तों के ईश एवं भक्तवत्सल था ॥३४॥ मन्दहास करते हुए नगर के बालक-बालिकागण उसे चारों ओर से घेरे हुए थे और कैलाशवासी सभी युवा-वृद्ध प्रसन्नता से उसे देख रहे थे ॥३५॥ शम्भु ने उसे देखकर सहसा सेवक और पुत्रों समेत भक्तिपूर्वक शिर से प्रणाम किया तथा दुर्गा ने भूमि पर दण्डवत् किया ॥३६॥ अनन्तर उस बालक ने सबको अभीष्ट सिद्ध होने का आशीर्वाद दिया। नगर के सभी बालक उस आश्चर्य को देखकर भय से चले गये ॥३७॥ उपरान्त शिव ने भक्तिपूर्वक उस परिपूर्णतम बालक भगवान् की सोलहों उपचार से वेदोक्त अर्चना की तथा सर्वांग में पुलकायमान हो कन्धे झुकाकर काण्व शाखा के अनुसार स्तोत्र से सनातन भगवान् की स्तुति की ॥३८-३९॥ पश्चात् स्वयं शिव ने रत्नसिंहासन पर स्थित तथा अत्यन्त तेज के कारण आकार को आच्छन्न किये उस बालक से कहा ॥४०॥

शंकर बोले—आत्मा में रमण करने वालों के लिए कुशल प्रश्न करना अत्यन्त विडम्बना ही है, क्योंकि वे निरन्तर कुशल के आधार, कुशलस्वरूप और कुशलप्रदायक होते हैं ॥४१॥ हे ब्राह्मण! आज मेरा जन्म

१क. ०शलात्मिकाः ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । प्राप्तस्त्वमतिथिर्ब्रह्मन्कृष्णसेवाफलोदयात् ॥४२॥
परिपूर्णतमः कृष्णो लोकनिस्तारहेतवे । पुण्यक्षेत्रे हि कलया भारते च कृपानिधिः ॥४३॥
अतिथिः पूजितो येन पूजिताः सर्वदेवताः । अतिथिर्यस्य संतुष्टस्तस्य तुष्टो हरः स्वयम् ॥४४॥
स्नानेन सर्वतीर्थेषु सर्वदानेन यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासेन सर्वयज्ञेषु दीक्षया ॥४५॥
सर्वैस्तपोभिर्विविधैर्नित्यैर्नैमित्तिकादिभिः । तदेवातिथिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥४६॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो याति रुष्टश्च मन्दिरात् । कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥४७॥
स्त्रीगोघ्नश्च कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः । पितृमातृगुरूणां च निन्दको नरघातकः ॥४८॥
संध्याहीनो स्वघाती च सत्यघ्नो हरिनिन्दकः । ब्रह्मस्वस्थाप्यहारी च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ॥४९॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च वृषवाहश्च सूपकृत् । शवदाही ग्रामयाजी ब्राह्मणो वृषलीपतिः ॥५०॥
शूद्रश्राद्धान्नभोजी च शूद्रश्राद्धेषु भोजकः । कन्याविक्रयकारी च श्रीहरेर्नामविक्रयी ॥५१॥
[1]लाक्षामांसतिलानां च लवणस्य तिलस्य च । विक्रेता ब्राह्मणश्चैव तुरगाणां गवां तथा ॥५२॥
एकादशीकृष्णसेवाहीनो विप्रश्च भारते । एते महापातकिनस्त्रिषु लोकेषु निन्दिताः ॥५३॥
कालसूत्रे च नरके पतन्ति ब्रह्मणां शतम् । एतेभ्योऽप्यधमः सोऽपि यश्चातिथिपराङ्मुखः ॥५४॥

सफल हो गया, जीवन उत्तम हो गया, क्योंकि भगवान् कृष्ण की सेवा का फलोदय होने से तुम हमें अतिथिरूप में प्राप्त हुए हो ॥४२॥ परिपूर्णतम एवं कृपानिधान भगवान् कृष्ण लोक के निस्तार के लिए पुण्य क्षेत्र भारत में अपनी कला द्वारा अवतीर्ण होते रहते हैं ॥४३॥ जो अतिथि की पूजा करता है उससे सभी देवता पूजित हो जाते हैं। अतिथि के प्रसन्न होने पर स्वयं भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥४४॥ समस्त तीर्थों में स्नान, समस्त दान, समस्त व्रत के उपवास, सम्पूर्ण यज्ञों की दीक्षा तथा विविध भाँति के नित्य नैमित्तिक आदि सभी तप के फल अतिथि-सेवा की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होते हैं ॥४५-४६॥ अतिथि जिसके घर से निराश एवं रुष्ट होकर चला जाता है, उसका करोड़ों जन्म का संचित पुण्य निश्चित नष्ट हो जाता है ॥४७॥ स्त्री और गौ का घाती, कृतघ्न, ब्रह्म-घाती, गुरुस्त्रीगामी, पिता, माता और गुरु का निन्दक, नरहन्ता, संध्याकर्महीन, आत्महन्ता, सत्य का घाती, हरिनिन्दक, ब्राह्मण-धन का अपहर्त्ता, मिथ्यासाक्ष्य (झूठी गवाही) देने वाला, मित्रद्रोही, कृतघ्न, बैलों पर लादने वाला, भण्डारी, शव-दाह का कर्म करने वाला, गांवों को पुजाने वाला, वृषली (शूद्र स्त्री) का पति ब्राह्मण, शूद्रों का श्राद्धान्न भोजन करने वाला, शूद्रों के श्राद्ध में खिलाने वाला, कन्याविक्रेता, भगवान् का नाम विक्रेता, लाख (लाह), मांस, तिल, नमक, घोड़े और गौओं का विक्रेता ब्राह्मण तथा भारत में एकादशी व्रत और भगवान् कृष्ण की सेवा से हीन ब्राह्मण, ये तीनों लोकों में 'महापातकी' कहे जाते हैं और अतिनिन्दित हैं ॥४८-५३॥ ये सब कालसूत्र नरक में सौ ब्रह्मा के समय तक पड़े रहते हैं तथा इनसे भी बढ़कर वह है जो अतिथि को निराश लौटा देता है ॥५४॥

१क. ०क्षालोहरसानां च ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

शुक्लदन्तं शुक्लवस्त्रं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् । दण्डिनं छत्रिणं चैव सुप्रभं तिलकोज्ज्वलम् ॥३१॥
दधतं तुलसीमालां सस्मितं सुमनोहरम् । रत्नकेयूरवलयं रत्नमालाविभूषितम् ॥३२॥
रत्ननूपुरपादं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजितम् ॥३३॥
स्थिरमुद्रां दर्शयन्तं भक्तं वामकरेण च । दक्षिणेऽभयमुद्रां च भक्तेशं भक्तवत्सलम् ॥३४॥
बालिकाबालकगणैर्नगरैः सस्मितैर्युतम् । कैलासवासिभिः सर्वैरावृद्धैरीक्षितं मुदा ॥३५॥
तं दृष्ट्वा संभ्रमाच्छंभुः सभृत्यः सहपुत्रकः । मूर्ध्ना भक्त्या प्रणमच्च दुर्गा च दण्डवद्भुवि ॥३६॥
आशिषं प्रददौ बालः सर्वेभ्यो वाञ्छितप्रदाम् । तं दृष्ट्वा बालकाः सर्वे महाश्चर्यं ययुर्भिया ॥३७॥
दत्त्वा तस्मै शिवो भक्त्या तूपचारांस्तु षोडश । पूजां चकार श्रुत्युक्तां परिपूर्णतमस्य च ॥३८॥
तुष्टाव काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण नतकंधरः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भगवन्तं सनातनम् ॥३९॥
रत्नसिंहासनस्थं च प्रावोचच्छंकरः स्वयम् । अतीव तेजसाऽत्यन्तं प्रच्छन्नाकृतिमेव च ॥४०॥

शंकर उवाच

आत्मारामेषु कुशलप्रश्नोऽतीव विडम्बनम् । ते शश्वत्कुशलाधाराः कुशलाः [1]कुशलप्रदाः ॥४१॥

वह प्रभापूर्ण उज्ज्वल तिलक और तुलसी की माला पहने, मन्दहास समेत, अति मनोहर था। वह रत्नों के केयूर, कंकण और रत्नों की माला से भूषित था, रत्नों के नूपुर से सुशोभित उसके चरण थे और वह उत्तम रत्न के मुकुट से समुज्ज्वल तथा रत्नों के युगल कुण्डलों से युक्त गण्डस्थल से शोभित था ॥३०-३३॥ भक्त को बायें हाथ से स्थिर होने की मुद्रा और दाहिने से अभय मुद्रा दिखाते हुए, भक्तों के ईश एवं भक्तवत्सल था ॥३४॥ मन्दहास करते हुए नगर के बालक-बालिकागण उसे चारों ओर से घेरे हुए थे और कैलाशवासी सभी युवा-वृद्ध प्रसन्नता से उसे देख रहे थे ॥३५॥ शम्भु ने उसे देखकर सहसा सेवक और पुत्रों समेत भक्तिपूर्वक शिर से प्रणाम किया तथा दुर्गा ने भूमि पर दण्डवत् किया ॥३६॥ अनन्तर उस बालक ने सबको अभीष्ट सिद्ध होने का आशीर्वाद दिया। नगर के सभी बालक उस आश्चर्य को देखकर भय से चले गये ॥३७॥ उपरान्त शिव ने भक्तिपूर्वक उस परिपूर्णतम बालक भगवान् की सोलहों उपचार से वेदोक्त अर्चना की तथा सर्वांग में पुलकायमान हो कन्धे झुकाकर काण्व शाखा के अनुसार स्तोत्र से सनातन भगवान् की स्तुति की ॥३८-३९॥ पश्चात् स्वयं शिव ने रत्नसिंहासन पर स्थित तथा अत्यन्त तेज के कारण आकार को आच्छन्न किये उस बालक से कहा ॥४०॥

शंकर बोले—आत्मा में रमण करने वालों के लिए कुशल प्रश्न करना अत्यन्त विडम्बना ही है, क्योंकि वे निरन्तर कुशल के आधार, कुशलस्वरूप और कुशलप्रदायक होते हैं ॥४१॥ हे ब्राह्मण! आज मेरा जन्म

१क. ०शलात्मिकाः।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । प्राप्तस्त्वमतिथिर्ब्रह्मन्कृष्णसेवाफलोदयात् ॥४२॥
परिपूर्णतमः कृष्णो लोकनिस्तारहेतवे । पुण्यक्षेत्रे हि कलया भारते च कृपानिधिः ॥४३॥
अतिथिः पूजितो येन पूजिताः सर्वदेवताः । अतिथिर्यस्य संतुष्टस्तस्य तुष्टो हरः स्वयम् ॥४४॥
स्नानेन सर्वतीर्थेषु सर्वदानेन यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासेन सर्वयज्ञेषु दीक्षया ॥४५॥
सर्वैस्तपोभिर्विविधैर्नित्यैर्नैमित्तिकादिभिः । तदेवातिथिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥४६॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो याति रुष्टश्च मन्दिरात् । कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥४७॥
स्त्रीगोघ्नश्च कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः । पितृमातृगुरूणां च निन्दको नरघातकः ॥४८॥
संध्याहीनो स्वघाती च सत्यघ्नो हरिनिन्दकः । ब्रह्मस्वस्थाप्यहारी च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ॥४९॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च वृषवाहश्च सूपकृत् । शवदाही ग्रामयाजी ब्राह्मणो वृषलीपतिः ॥५०॥
शूद्रश्राद्धान्नभोजी च शूद्रश्राद्धेषु भोजकः । कन्याविक्रयकारी च श्रीहरेर्नामविक्रयी ॥५१॥
[1]लाक्षामांसतिलानां च लवणस्य तिलस्य च । विक्रेता ब्राह्मणश्चैव तुरगाणां गवां तथा ॥५२॥
एकादशीकृष्णसेवाहीनो विप्रश्च भारते । एते महापातकिनस्त्रिषु लोकेषु निन्दिताः ॥५३॥
कालसूत्रे च नरके पतन्ति ब्रह्मणां शतम् । एतेभ्योऽप्यधमः सोऽपि यश्चातिथिपराङ्मुखः ॥५४॥

सफल हो गया, जीवन उत्तम हो गया, क्योंकि भगवान् कृष्ण की सेवा का फलोदय होने से तुम हमें अतिथिरूप में प्राप्त हुए हो ॥४२॥ परिपूर्णतम एवं कृपानिधान भगवान् कृष्ण लोक के निस्तार के लिए पुण्य क्षेत्र भारत में अपनी कला द्वारा अवतीर्ण होते रहते हैं ॥४३॥ जो अतिथि की पूजा करता है उससे सभी देवता पूजित हो जाते हैं। अतिथि के प्रसन्न होने पर स्वयं भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥४४॥ समस्त तीर्थों में स्नान, समस्त दान, समस्त व्रत के उपवास, सम्पूर्ण यज्ञों की दीक्षा तथा विविध भाँति के नित्य नैमित्तिक आदि सभी तप के फल अतिथि-सेवा की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होते हैं ॥४५-४६॥ अतिथि जिसके घर से निराश एवं रुष्ट होकर चला जाता है, उसका करोड़ों जन्म का संचित पुण्य निश्चित नष्ट हो जाता है ॥४७॥ स्त्री और गौ का घाती, कृतघ्न, ब्रह्म-घाती, गुरुस्त्रीगामी, पिता, माता और गुरु का निन्दक, नरहन्ता, संध्याकर्महीन, आत्महन्ता, सत्य का घाती, हरिनिन्दक, ब्राह्मण-धन का अपहर्त्ता, मिथ्यासाक्ष्य (झूठी गवाही) देने वाला, मित्रद्रोही, कृतघ्न, बैलों पर लादने वाला, भण्डारी, शव-दाह का कर्म करने वाला, गांवों को पुजाने वाला, वृषली (शूद्र स्त्री) का पति ब्राह्मण, शूद्रों का श्राद्धान्न भोजन करने वाला, शूद्रों के श्राद्ध में खिलाने वाला, कन्याविक्रेता, भगवान् का नाम विक्रेता, लाख (लाह), मांस, तिल, नमक, घोड़े और गौओं का विक्रेता ब्राह्मण तथा भारत में एकादशी व्रत और भगवान् कृष्ण की सेवा से हीन ब्राह्मण, ये तीनों लोकों में 'महापातकी' कहे जाते हैं और अतिनिन्दित हैं ॥४८-५३॥ ये सब कालसूत्र नरक में सौ ब्रह्मा के समय तक पड़े रहते हैं तथा इनसे भी बढ़कर वह है जो अतिथि को निराश लौटा देता है ॥५४॥

१क. ०क्षालोहरसानां च ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नारायण उवाच

शंकरस्य वचः श्रुत्वा संतुष्टः श्रीहरिः स्वयम् । मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच जगत्पतिः ॥५५॥

विष्णुरुवाच

श्वेतद्वीपादागतोऽहं ज्ञात्वा कोलाहलं च वः । अस्य रामस्य रक्षार्थं कृष्णभक्तस्य सांप्रतम् ॥५६॥
नैतेषां कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । रक्षामि तांश्चक्रहस्तो गुरुत्यं विना शिव ॥५७॥
नाहं पाता गुरौ रुष्टे बलवद्गुरुहेलनम् । तत्परः पातकी नास्ति सेवाहीनो गुरोश्च यः ॥५८॥
मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषां जनको भवेत् । अहो यस्य प्रसादेन सर्वान्पश्यति मानवः ॥५९॥
जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम् । ततो विस्तारकरणात्कलया स प्रजापतिः ॥६०॥
पितुः शतगुणं माता पोषणाद्गर्भधारणात् । वन्द्या पूज्या च मान्या च [1]प्रसूः स्याद्वै वसुंधरा ॥६१॥
मातुः शतगुणं वन्द्यः पूज्यो मान्योऽन्नदायकः । यद्विना नश्वरो देहो विष्णुश्च कलयाऽन्नदः ॥६२॥
अन्नदातुः शतगुणोऽभीष्टदेवः परः स्मृतः । गुरुस्तस्माच्छतगुणो विद्यामन्त्रप्रदायकः ॥६३॥
अज्ञानतिमिराच्छन्नं ज्ञानदीपेन चक्षुषा । यः सर्वार्थं दर्शयति तत्परो नैव बान्धवः ॥६४॥

नारायण बोले—शंकर की बातें सुनकर स्वयं श्रीभगवान् प्रसन्न हुए और पश्चात् जगत्पति ने मेघ की भाँति गंभीर वाणी द्वारा उनसे कहना प्रारम्भ किया ॥५५॥

विष्णु बोले—मैं तुम लोगों का कोलाहल (शोरगुल) सुनकर इस कृष्णभक्त राम के रक्षणार्थ इस समय श्वेत द्वीप से आ रहा हूँ ॥५६॥ हे शिव! इन कृष्ण-भक्तों का कहीं भी अमंगल नहीं होता है। मैं हाथ में चक्र लेकर उनकी रक्षा करता हूँ। केवल अपने को ही गुरु मान लेने वाले (गुरुद्रोही) की छोड़कर ॥५७॥ क्योंकि गुरु के रुष्ट होने पर मैं उसकी रक्षा नहीं कर सकता हूँ। गुरु-अनादर बलवान् होता है। गुरुसेवा से हीन प्राणी से बढ़कर कोई अन्य पातकी नहीं है ॥५८॥ अहो! जिसकी कृपा से मानव सभी को देखता है, वह सब का पूज्य माननीय और सबका जनक हो सकता है ॥५९॥ वही मनुष्यों का जन्म देने से जनक, पालन करने से पिता और कला द्वारा विस्तार करने से प्रजापति कहलाता है ॥६०॥ पोषण और गर्भ में धारण करने के नाते माता, पिता से सौगुने अधिक वन्दनीय, पूजनीय और मान्य है; इतना ही नहीं, जननी वसुन्धरा रूप है ॥६१॥ अन्नदाता, माता से सौ गुना वन्दनीय, पूज्य और मान्य होता है, क्योंकि उसके बिना यह देह नष्ट हो जाती है। विष्णु कला रूप से अन्नदाता होते हैं ॥६२॥ अन्नदाता से सौ गुने अधिक इष्टदेव होता है तथा उससे सौ गुने अधिक गुरु होता है, जो विद्या और मन्त्र प्रदान करता है ॥६३॥ गुरु अज्ञान अन्धकार से आच्छन्न प्राणी को अपने ज्ञानदीपक नेत्र से सभी वस्तुओं का दर्शन कराता है, अतः उससे बढ़कर कोई अन्य बन्धु नहीं है ॥६४॥ गुरुप्रदत्त मन्त्र द्वारा तप करके

१क. प्रसूरूपा ब०

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गुरुदत्तेन मन्त्रेण तपसेष्टसुखं लभेत् । सर्वज्ञत्वं सर्वसिद्धिं तत्परो नैव बान्धवः ॥६५॥
सर्वं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया । तस्मात्पूज्यो हि जगति को वा बन्धुस्ततोऽधिकः ॥६६॥
विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मूढो न भजेद्गुरुम् । ब्रह्महत्यादिभिः पापैः स लिप्तो नात्र संशयः ॥६७॥
दरिद्रं पतितं क्षुद्रं नरबुद्ध्याऽऽश्रयेद्गुरुम् । तीर्थस्नातोऽपि न शुचिर्नाधिकारी च कर्मसु ॥६८॥
पितरं मातरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरुं परम् । यो न पुष्णाति कापट्यात्स महापातकी शिव ॥६९॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुर्भास्करूपकः ॥७०॥
गुरुश्चन्द्रस्तथेन्द्रश्च वायुश्च वरुणोऽनलः । सर्वरूपो हि भगवान्परमात्मा स्वयं गुरुः ॥७१॥
नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नहि कृष्णात्परः सुरः । नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न पुष्पं तुलसीदलात् ॥७२॥
नास्ति क्षमावती भूमेः पुत्रान्नास्त्यपरः प्रियः । न च दैवात्परा शक्तिर्नैकादश्याः परं व्रतम् ॥७३॥
शालग्रामात्परो यन्त्रो न क्षेत्रं भारतात्परम् । परं पुण्यस्थलानां च पुण्यं वृन्दावनं यथा ॥७४॥
मोक्षदानां यथा काशी वैष्णवानां यथा शिवः । न पार्वत्याः परा साध्वी न गणेशात्परो वशी ॥७५॥
न च विद्यासमो बन्धुर्नास्ति कश्चिद्गुरोः परः । विद्यादातुः पुत्रदारौ तत्समौ नात्र संशयः ॥७६॥
गुरुस्त्रियां च पुत्रे चाप्यभवद्रामहेलनम् । परं संमार्जनं कर्तुमागतोऽहं तवाऽऽलयम् ॥७७॥

मनुष्य अभीष्ट सुख, सर्वज्ञत्व और समस्त सिद्धि प्राप्त कर सकता है, अतः उससे बढ़कर अन्य कोई बन्धु नहीं होता है। ॥६५॥ मनुष्य गुरु की दी हुई विद्या द्वारा सर्वत्र सब पर विजय प्राप्त करता है, अतः संसार में उससे अधिक पूज्य और बन्धु कौन हो सकता है ? ॥६६॥ इसीलिए विद्या या धन से अन्धा होकर जो मूर्ख गुरु-सेवा नहीं करता है, वह ब्रह्महत्या आदि पापों का भागी होता है, इसमें संशय नहीं ॥६७॥ इस प्रकार दरिद्र, पतित और क्षुद्र गुरु के प्रति भी जो मनुष्य-बुद्धि से आचरण करता है, वह तीर्थों में स्नान करने पर भी शुद्ध नहीं होता है और न कर्मों का अधिकारी ही होता है ॥६८॥ हे शिव ! पिता, माता, स्त्री, गुरुपत्नी और परम गुरु का जो कपट के कारण पोषण नहीं करता है, वह महापातकी है। गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु है, गुरु भगवान् शंकर है, गुरु ही परब्रह्म है और गुरु सूर्यरूप हैं। गुरु ही चन्द्र, इन्द्र, वायु, वरुण तथा अग्नि है। गुरु ही स्वयं सर्वरूप भगवान् परमात्मा हैं। ॥६९–७१॥ वेद से बढ़कर कोई शास्त्र और कृष्ण से बढ़कर कोई देवता नहीं है। गंगा के समान तीर्थ, तुलसी दल से बढ़कर अन्य पुष्प, पृथिवी से बढ़कर क्षमाशील और पुत्र से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है। दैव से बढ़कर शक्ति, एकादशी से बढ़कर व्रत, शालग्राम से बढ़कर यंत्र, भारत से बढ़कर क्षेत्र एवं पुण्यस्थलों में वृन्दावन से अधिक पवित्र कोई नहीं है ॥७२-७४॥ मोक्षदायकों में काशी और वैष्णवों में शिव से बढ़कर कोई नहीं है। पार्वती से बढ़कर पतिव्रता और गणेश से बढ़कर आत्मसंयमी कोई नहीं है ॥७५॥ विद्या के समान बन्धु और गुरु से बढ़कर कोई दूसरा हितैषी नहीं है। विद्या देने वाले की पत्नी और पुत्र भी उन्हीं के समान हैं, इसमें संशय नहीं ॥७६॥ गुरुपत्नी और उनके पुत्र का राम ने अपमान किया है, उसी का क्षालन करने के लिए मैं तुम्हारे घर आया हूँ ॥७७॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा शंभुं च दुर्गां संबोध्य नारद। उवाच भगवांस्तत्र सत्यसारं परं वचः ॥७८॥

विष्णुरुवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मदीयं वचनं शुभम्। नीतियुक्तं वेदसारं परिणामसुखावहम् ॥७९॥
यथा ते गजवक्त्रश्च कार्तिकेयश्च पार्वति। तथा परशुरामश्च भार्गवो नात्र संशयः ॥८०॥
नास्त्येषु स्नेहभेदश्च तव वा शंकरस्य च। विचार्य सर्वं सर्वज्ञे कुरु मातर्यथोचितम् ॥८१॥
पुत्रेण सार्धं पुत्रस्य विवादो दैवदोषतः। दैवं हन्तुं को हि शक्तो दैवं च बलवत्तरम् ॥८२॥
पुत्राभिधानं वेदेषु[1] पश्य वत्से वरानने। एकदन्त इति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥८३॥
पुत्रनामाष्टकं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीश्वरि। शृणुष्वावहितं मातः सर्वविघ्नहरं परम् ॥८४॥

विष्णुरुवाच

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्। लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम् ॥८५॥
अष्टाख्यार्थं च पुत्रस्य शृणु मातर्हरप्रिये। स्तोत्राणां सारभूतं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥८६॥
ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः। तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम् ॥८७॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः। बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम् ॥८८॥

नारायण बोले—हे नारद! इस प्रकार कह कर शिव और दुर्गा को सम्बोधित करके भगवान् ने सत्य का सार एवं श्रेष्ठ वचन कहा ॥७८॥

विष्णु बोले—हे देवि! मैं तुमसे कुछ शुभ वचन कह रहा हूँ, जो नीतियुक्त, वेद का सार भाग और परिणाम में सुखप्रद होगा, सुनो ॥७९॥ हे पार्वती! जिस प्रकार तुम्हारे पुत्र गजानन और कार्तिकेय हैं उसी भाँति भार्गव परशुराम भी हैं, इसमें संशय नहीं ॥८०॥ हे सर्वज्ञे, हे मातः! तुम्हारा और शिव का इसमें स्नेह-भेद भी नहीं है, अतः विचार करके जो उचित हो, करो ॥८१॥ पुत्र के साथ पुत्र का विवाद हो गया, तो यह दैव का दोष है। दैव को हटाने में कौन समर्थ है? वह सबसे बलवान् होता है ॥८२॥ हे वत्से! हे वरानने! वेदों में पुत्र का नाम देखो—'एकदन्त' यही विख्यात है जो सब देवों से नमस्कृत है ॥८३॥ अतः हे ईश्वरि! हे मातः! सामवेदानुसार पुत्र का नामाष्टक स्तोत्र, जो समस्त विघ्नों का परम नाशक है, सावधानी से सुनो ॥८४॥

विष्णु बोले—गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण (सूप के समान कान वाले), गजानन, गुहाग्रज (स्कन्द के ज्येष्ठ भ्राता), यही आठ नाम हैं ॥८५॥ हे हरप्रिये! मातः! पुत्र के इन आठों नामों के अर्थ सुनो, जो स्तोत्रों का सारभाग और समस्त विघ्नों का परम नाशक है ॥८६॥ ग का अर्थ ज्ञान, ण का अर्थ (मुक्ति), इन दोनों के अधीश्वर परब्रह्म गणेश को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥८७॥ एक का अर्थ प्रधान, दन्त का अर्थ बल है, अतः सबसे प्रधान बली एकदन्त को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥८८॥ हे का अर्थ दीन और रम्ब का अर्थ पालन करना है,

---

१ क. देवेषु। २ क. मत्तः।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः। पालकं दीनलोकानां हेरम्बं प्रण०॥८९॥
विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः। विपत्खण्डनकारं तं प्रणमे विघ्ननायकम्॥९०॥
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बं पुरोदरम्। पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम्॥९१॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारकौ। संपद्दौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम्॥९२॥
विष्णुप्रसादं मुनिना दत्तं यन्मूर्ध्नि पुष्पकम्। तद्गजेन्द्रमुखं कान्तं गजवक्त्रं न०॥९३॥
गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये। वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम्॥९४॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे नानाशक्तियुतं परम्। एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं [1]नानार्थसहितं शुभम्॥९५॥
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी। ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद्यथोरगाः॥९६॥
गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद्ध्रुवम्। पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी कुशलां स्त्रियम्॥९७॥
महामूढः कवीन्द्रश्च विद्यावांश्च भवेद्ध्रुवम्। पुत्र त्वं पश्य वेदे च तथा कोपं च नो कुरु॥९८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० गणेशस्तोत्रकथनं नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥

अतः दीनों और लोकों के पालनकर्ता हेरम्ब को मैं प्रणाम कर रहा हूँ॥८९॥ विघ्न का अर्थ है विपत्ति और नायक का अर्थ है खण्डन करना, अतः विपत्ति के खण्डन करने वाले विघ्ननायक को मैं प्रणाम कर रहा हूँ॥९०॥ भगवान् विष्णु के दिये हुए नैवेद्य खाने से तथा पिता द्वारा भी विविध भाँति के नैवेद्य देने से जिसका उदर लम्बा हो गया है, उस लम्बोदर की मैं वन्दना कर रहा हूँ॥९१॥ विघ्नों को दूर भगाने के लिए जिसके दोनों कान सूप की भाँति बड़े हैं, सम्पत्तिदायक हैं तथा ज्ञानस्वरूप हैं, उन शूर्पकर्ण को नमस्कार कर रहा हूँ॥९२॥ मुनिप्रदत्त विष्णु का प्रसाद पुष्प जिसके मस्तक पर था, उस मनोहर गजेन्द्र मुखवाले गजानन को मैं नमस्कार कर रहा हूँ॥९३॥ शिव के घर स्कन्द से प्रथम यह प्रकट हुए हैं, अतः समस्त बड़े देवों से पूजित गुहाग्रज देव की मैं वन्दना कर रहा हूँ॥९४॥ हे दुर्गे! इस प्रकार यह अष्टक अनेक शक्तियों और अनेक अर्थों से युक्त एवं शुभ स्तोत्र है॥९५॥ जो तीनों कालों में इसका नित्य पाठ करता है, वह सुखी और सबसे विजयी होता है तथा गरुड़ से साँप की भाँति उससे सभी विघ्न पलायन कर जाते हैं॥९६॥ गणेश्वर के प्रसाद से वह निश्चित रूप से महाज्ञानी होता है। पुत्रार्थी पुत्र और भार्या चाहने वाला कुशल स्त्री प्राप्त करता है॥९७॥ महामूर्ख कवीन्द्र और विद्यावान् होता है। अतः हे पुत्र! तुम वेद में देखो, कोप न करो॥९८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में गणेश-स्तोत्र-कथन नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४४॥

---

१ क. नामार्थस०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

पार्वतीं बोधयित्वा तु विष्णू राममुवाच ह। हितं सत्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम् ॥१॥

विष्णुरुवाच

राम त्वमधुना सत्यमपराधी श्रुतेर्मते। कोपात्कृत्वा दन्तभङ्गं गणेशस्य स्थिते[1] शिवे ॥२॥
स्तोत्रेणैव मयोक्तेन स्तुत्वा गणपतिं परम्। काण्वशाखोक्तविधिना स्तुहि दुर्गां जगत्प्रसूम् ॥३॥
श्रीकृष्णस्य परा शक्तिर्बुद्धिरूपा जगत्प्रभोः। अस्यां च तव रुष्टायां हता बुद्धिर्भविष्यति ॥४॥
सर्वशक्तिस्वरूपेयमनया शक्तिमज्जगत्। अनया शक्तिमान्कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥५॥
सृष्टिं कर्तुं न शक्तश्च ब्रह्मा शक्त्याऽनया विना। वयमस्यां प्रसूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६॥
सुरसंघेऽसुरग्रस्ते काले घोरतरे द्विज। तेजःसु सर्वदेवानामाविर्भूता पुरा[2] सती ॥७॥
कृष्णाज्ञयाऽसुरान्हत्वा दत्त्वा तेभ्यः पदं ततः। दक्षपत्न्यां जनिं लेभे दक्षस्य तपसा पुरा ॥८॥

अध्याय ४५

परशुरामकृत दुर्गास्तोत्र

नारायण बोले—इस प्रकार पार्वती को समझाकर विष्णु ने राम से हितकर, सत्य, नीति का सार और परिणाम में सुखप्रद वचन कहा ॥१॥

विष्णु बोले—हे राम! तुम इस समय वेदानुसार सत्य अपराधी हो, क्योंकि शिव के रहते तुमने कोप से गणेश का दाँत तोड़ दिया है ॥२॥ अतः मेरे कहे हुए स्तोत्र द्वारा ही श्रेष्ठ गणपति की स्तुति करके तुम काण्वशाखानुसार जगज्जननी दुर्गा की स्तुति करो ॥३॥ क्योंकि जगत्स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की यह बुद्धिरूप पराशक्ति है, अतः इसके रुष्ट होने पर तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो जायगी ॥४॥ यह सम्पूर्ण शक्तिरूप है और सारा जगत् इसी के द्वारा शक्तिमान् हुआ है। निर्गुण एवं प्रकृति से परे रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण भी इसी से शक्तिमान् हैं ॥५॥ इस शक्ति के बिना ब्रह्मा भी सृष्टि करने में असमर्थ रहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर आदि हम लोग इन्हीं से उत्पन्न हुए हैं ॥६॥ हे द्विज! देवगणों के असुरों के अधीन हो जाने पर उस अति घोर काल में समस्त देवों के तेज से यह सती पहले उत्पन्न हुई थी ॥७॥ भगवान् कृष्ण की आज्ञा से राक्षसों का वध करके इसने देवों को उनका अपना पद (अधिकार) प्रदान किया तथा दक्ष की तपस्या के कारण उनकी पत्नी में जन्म ग्रहण किया ॥८॥ और शंकर की पत्नी होने पर पुनः पति-निन्दा के कारण उस

---

१ ख. स्थितोऽशि०। २ क. सनातनी।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

भार्या भूत्वा शंकरस्य पुनः पत्युश्च निन्दया । देहं त्यक्त्वा शैलपत्न्यां जनिं लेभे पुरा सती ॥९॥
शंकरस्तपसा लब्धो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । लब्धो गणपतिः पुत्रः कृष्णांशः कृष्णसेवया ॥१०॥
यं ध्यायस्येव नित्यं किं तं न जानासि बालक । स एव भगवान्कृष्णश्चांशेन गिरिजासुतः ॥११॥
कृताञ्जलिर्नतो भूत्वा स्तुहि दुर्गां शिवप्रियाम् । शिवां शिवप्रदां शैवां शिवबीजां शिवेश्वरीम् ॥१२॥
शिवायाः स्तोत्रराजेन पुरा शूलिकृतेन वै । त्रिपुरस्य वधे घोरे ब्रह्मणा प्रेरितेन च ॥१३॥
इत्युक्त्वा श्रीपदं शीघ्रं जगाम श्रीनिकेतनम् । गते हरौ हरिं स्मृत्वा रामस्तां स्तोतुमुद्यतः ॥१४॥
स्तोत्रेण विष्णुदत्तेन सर्वविघ्नहरेण च । धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणेन च नारद ॥१५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्नात्वा गङ्गोदके शुभे । गुरुं प्रणम्य भक्तेशं धृत्वा धौते च वाससी ॥१६॥
आचम्य नत्वा मूर्ध्ना तां भक्तिनम्रात्मकंधरः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गश्चानन्दाश्रुसमन्वितः ॥१७॥

परशुराम उवाच

श्रीकृष्णस्य च गोलोके परिपूर्णतमस्य च । आविर्भूता विग्रहतः पुरा सृष्ट्युन्मुखस्य च ॥१८॥
सूर्यकोटिप्रभायुक्ता वस्त्रालंकारभूषिता । वह्निशुद्धांशुकाधाना सस्मिता सुमनोहरा ॥१९॥

(दक्ष-जनित) देह का त्याग कर दिया तथा हिमालय की पत्नी में जन्म लिया ॥९॥ अनन्तर तप करके योगीन्द्रों के गुरु के गुरु शंकर को पति रूप में पुनः प्राप्त किया और भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करके गणपति पुत्र प्राप्त किया है, जो कृष्ण का अंश है ॥१०॥ हे बालक ! जिसका नित्य ध्यान करते हो, क्या उसे नहीं जानते ? वही भगवान् कृष्ण अंशतः गिरिजा के पुत्र हुए हैं ॥११॥ इसलिए हाथ जोड़कर विनम्र हो शिवप्रिया दुर्गा की स्तुति करो, जो शिवा (कल्याणरूपा), शिवप्रदा, शिव-भक्त, शिवबीज स्वरूप तथा शिव की ईश्वरी है ॥१२॥ पहले के शंकर कृत स्तोत्रराज से तुम शिवा की स्तुति करो, जिसे उन्होंने त्रिपुर के घोर वध के समय ब्रह्मा से प्रेरित होकर उन्होंने रचा था ॥१३॥ हे नारद ! इतना कह कर वह (वामन बालक) शीघ्रता से विष्णुलोक चला गया। भगवान् के चले जाने पर भगवान् का स्मरण करके राम पार्वती की उस स्तोत्र द्वारा स्तुति करने के लिए तैयार हो गये, जो विष्णुप्रदत्त, समस्तविघ्नहारी और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का कारण था ॥१४-१५॥ शुभ गंगाजल में स्नान करके हाथ जोड़कर, भक्तों के ईश गुरु को प्रणाम करके दो धुले वस्त्रों को पहना और आचमन करके भक्ति से कन्धे झुकाये, सर्वांग में पुलक (रोमाञ्च) एवं नेत्रों में आनन्द के आंसू भरे तथा शिर से नमस्कार करते हुए राम ने देवी की स्तुति की ॥१६-१७॥

परशुराम बोले—पूर्व समय गोलोक में परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण की देह से, जब वे सृष्टि के उन्मुख हो रहे थे, तुम प्रकट हुई ॥१८॥ तुम करोड़ों सूर्य की प्रभा से युक्त, वस्त्र-आभूषणों से विभूषित, अग्नि की भाँति

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नवयौवनसंपन्ना [1]सिन्दूरारुण्यशोभिता । ललितं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥२०॥
अहोऽनिर्वचनीया त्वं चारुमूर्तिं च बिभ्रती । मोक्षप्रदा मुमुक्षूणां महाविष्णुर्विधिः स्वयम् ॥२१॥
मुमोह क्षणमात्रेण दृष्ट्वा त्वां सर्वमोहिनीम् । [2]बालैः संभूय सहसा सस्मिता धाविता[3] पुरा ॥२२॥
सद्भिः ख्याता तेन राधा मूलप्रकृतिरीश्वरी । कृष्णस्तां सहसा[4] भीतो वीर्याधानं चकार ह ॥२३॥
ततो डिम्भं महज्जज्ञे ततो जातो महान्विराट् । यस्यैव लोमकूपेषु ब्रह्माण्डान्यखिलानि च ॥२४॥
राधारतिक्रमेणैव तन्निःश्वासो बभूव ह । स निःश्वासो महावायुः स विराड्विश्वधारकः ॥२५॥
भयघर्मजलेनैव पुप्लुवे विश्वगोलकम् । स विराड्विश्वनिलयो जलराशिर्बभूव ह ॥२६॥
ततस्त्वं पञ्चधा भूय पञ्च मूर्तीश्च बिभ्रती । प्राणाधिष्ठातृमूर्तिर्या कृष्णस्य परमात्मनः ॥२७॥
कृष्णप्राणाधिकां राधां तां वदन्ति पुराविदः । वेदाधिष्ठातृमूर्तिर्या वेदशास्त्रप्रसूरपि ॥२८॥
तां सावित्रीं शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः । ऐश्वर्याधिष्ठातृमूर्तिः शान्तिस्त्वं शान्तरूपिणी ॥२९॥
लक्ष्मीं वदन्ति सन्तस्तां शुद्धां सत्त्वस्वरूपिणीम् । रागाधिष्ठातृदेवी या शुक्लमूर्तिः सतां प्रसूः ॥३०॥
सरस्वतीं तां शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो । बुद्धिर्विद्या सर्वशक्तेर्या मूर्तिरधिदेवता ॥३१॥
सर्वमङ्गलदा सन्तो वदन्ति सर्वमङ्गलाम् । सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ॥३२॥

विशुद्ध वस्त्र पहने, मन्दहास करती हुई, अति मनोहर, नवयौवना, सिन्दूर की लाली से सुशोभित, मालती-माला से विभूषित और ललित कवरी भार (केशपाश) धारण किये हुई थीं ॥१९-२०॥ अहो ! सुन्दर मूर्ति धारण करने वाली तुम अनिर्वचनीया, एवं मुमुक्षजनों को मोक्ष देने वाली हो और तुम्हारा सर्वमोहन रूप देखकर स्वयं महाविष्णु और ब्रह्मा क्षणमात्र में मोहित हो गये थे। तुम सहसा बच्चों के साथ मन्दहास करते दौड़ने लगी थीं, इसीलिए सज्जनों ने तुम मूलप्रकृति ईश्वरी को 'राधा' नाम से प्रख्यात किया। कृष्ण ने भी सहसा भयभीत होकर तुम में वीर्याधान किया ॥२१-२३॥ जिससे महान् डिम्भ (सुवर्ण का अंडा) उत्पन्न हुआ, और उससे महाविराट् का जन्म हुआ है जिसके लोमकूपों में निखिल ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं ॥२४॥ राधा के साथ रति करते समय क्रमशः जो उनका निःश्वास उत्पन्न हुआ, वह निःश्वास महावायु एवं विश्व का आधार विराट् हुआ ॥२५॥ उस समय उनके पसीने के जल से गोलाकार विश्व उत्पन्न हुआ। वह विश्व-धारक विराट् जलराशि हो गया ॥२६॥ अनन्तर तुमने अपने को पाँच रूपों में प्रकट किया। जो परमात्मा कृष्ण की प्राणाधिष्ठात्री मूर्ति है वह उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय है, अतः पुरावेत्ता लोग उसे राधा कहते हैं। वेदों की अधिष्ठात्री देवी, जो वेद शास्त्रों की जननी भी है, उसे मनीषी गण शुद्धरूपा सावित्री कहते हैं। ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री मूर्ति तुम शान्ति एवं शान्त रूपा हो, अतः उस शुद्ध सत्त्वस्वरूपा को सन्त लोग लक्ष्मी कहते हैं। रागों की अधिष्ठात्री देवी, जो शुक्लरूप एवं सज्जनों की जननी है, उस शास्त्रज्ञा को शास्त्रज्ञ लोग सरस्वती कहते हैं। बुद्धि और विद्यारूप, समस्त शक्ति की अधिदेवता, तथा समस्त मंगलों को देने वाली जो मूर्ति है उसे सन्त लोग सर्वमंगला कहते हैं। तुम समस्त मंगलों की मंगलकारिका तथा सकल मंगल स्वरूपा, हो ॥२७-३२॥ हे

१क. ०न्दूरविन्दुशो०। २. रासे सं०। ३. क. राधिता। ४क. ०साऽज्ञाय भी०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सर्वमङ्गलबीजस्य शिवस्य निलयेऽधुना । शिवे शिवास्वरूपा त्वं लक्ष्मीर्नारायणान्तिके ॥३३॥
सरस्वती च सावित्री वेदसूर्ब्रह्मणः प्रिया । राधा रासेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च ॥३४॥
परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी । त्वत्कलांशांशकलया देवानामपि योषितः ॥३५॥
त्वं विद्या योषितः सर्वाः सर्वेषां बिजरूपिणी । छाया सूर्यस्य चन्द्रस्य रोहिणी सर्वमोहिनी ॥३६॥
शची शक्रस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी । वरुणानी जलेशस्य वायोः स्त्री प्राणवल्लभा ॥३७॥
वह्नेः प्रिया हि स्वाहा च कुबेरस्य च सुन्दरी । यमस्य तु सुशीला च नैर्ऋतस्य च कैटभी ॥३८॥
ऐशानी स्याच्छशिकला शतरूपा मनोः प्रिया । देवहूतिः कर्दमस्य वसिष्ठस्याप्यरुन्धती ॥३९॥
लोपामुद्राऽप्यगस्त्यस्य देवमातादितिस्तथा । अहल्या गौतमस्यापि सर्वाधारा वसुंधरा ॥४०॥
गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां या सरिद्वरा । एताः सर्वाश्च या ह्यन्या सर्वास्त्वत्कलयाऽम्बिके ॥४१॥
गृहलक्ष्मीर्गृहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु । तपस्विनां तपस्या त्वं गायत्री ब्राह्मणस्य च ॥४२॥
सतां [1]सत्त्वस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्कुरा । ज्योतीरूपा निर्गुणस्य शक्तिस्त्वं सगुणस्य च ॥४३॥
सूर्ये प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने । जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे ॥४४॥
त्वं भूमौ गन्धरूपा चाप्याकाशे शब्दरूपिणी । क्षुत्पिपासादयस्त्वं च जीविनां सर्वशक्तयः ॥४५॥
सर्वबीजस्वरूपा त्वं संसारे साररूपिणी । स्मृतिर्मेधा च बुद्धिर्वा ज्ञानशक्तिर्विपश्चिताम् ॥४६॥

इस समय तुम शिव के भवन में समस्त मंगलों का बीज हो। तुम शिव में शिवास्वरूप, नारायण के यहाँ लक्ष्मी, और ब्रह्मा के यहाँ सरस्वती तथा वेद-जननी सावित्री हो। परिपूर्णतम श्रीकृष्ण की तुम राधा हो, परमानन्दरूप की परमानन्दरूपिणी हो। तुम्हारी ही कलाओं के अंशांश से देवों की पत्नियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥३३-३५॥ तुम विद्या, सभी स्त्रियाँ और सबकी बीज रूपा हो। तुम सूर्य की छाया और चन्द्रमा की रोहिणी हो, जो सबको मोहित करती है। तुम इन्द्र की इन्द्राणी, कामदेव की कामिनी रति, वरुण की वरुणानी एवं वायु की प्राणवल्लभा स्त्री हो ॥३६-३७॥ अग्नि की प्रिया स्वाहा, कुबेर की सुन्दरी, यम की सुशीला, नैर्ऋत की कैटभी, शंकर की शशिकला, मनु की प्रिया शतरूपा, कर्दम की देवहूति, वसिष्ठ की अरुन्धती, अगस्त्य की लोपामुद्रा, देवों की माता अदिति, गौतम की अहल्या और सब की आधार वसुन्धरा (पृथ्वी) हो। हे अम्बिके ! पृथ्वी पर गंगा, तुलसी और श्रेष्ठ नदियाँ जो हैं वे सब तथा अन्य समस्त तुम्हारी कला से उत्पन्न हुई हैं ॥३८-४१॥ मनुष्यों के घर में गृहलक्ष्मी, राजाओं की राजलक्ष्मी, तपस्वी जनों की तपस्या, ब्राह्मण की गायत्री, सज्जनों की सत्त्वस्वरूपा, असज्जनों को कलहबीज, निर्गुण की ज्योतिरूप, सगुण की शक्ति, सूर्य की प्रभा, अग्नि की दाहिका, जल में शैत्य रूप, चन्द्र में शोभा रूप, पृथिवी में गन्ध-रूप, आकाश में शब्द रूप और जीवों की भूख-प्यास आदि समस्त शक्तियाँ तुम्हीं हो ॥४२-४५॥ संसार में सर्वबीजरूप और साररूप एवं विद्वानों की स्मृति, मेधा, बुद्धि और ज्ञानशक्ति हो ॥४६॥ कृष्ण ने शिव

---

१ क. सत्यस्व० ।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कृष्णेन विद्या या दत्ता सर्वज्ञानप्रसूः शुभा । शूलिने कृपया सा त्वं यया मृत्युंजयः शिवः ॥४७॥
सृष्टिपालनसंहारशक्तयस्तिस्रविधाश्च याः । ब्रह्मविष्णुमहेशानां सा त्वमेव नमोऽस्तु ते ॥४८॥
मधुकैटभभीत्या च त्रस्तो धाता प्रकम्पितः । स्तुत्वा मुक्तश्च यां देवीं तां मूर्ध्ना प्रणमाम्यहम् ॥४९॥
मधुकैटभयोर्युद्धे त्राताऽसौ विष्णुरीश्वरीम् । बभूव शक्तिमान्स्तुत्वा तां दुर्गां प्रण० ॥५०॥
त्रिपुरस्य महायुद्धे सरथे पतिते शिवे । यां तुष्टुवुः सुराः सर्वे तां दुर्गां प्रण० ॥५१॥
विष्णुना वृषरूपेण स्वयं शंभुः समुत्थितः । जघान त्रिपुरं स्तुत्वा तां दुर्गां प्रण० ॥५२॥
यदाज्ञया वाति वातः सूर्यस्तपति संततम् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निस्तां दुर्गां प्रण० ॥५३॥
यदाज्ञया हि कालश्च शश्वद्भ्रमति वेगतः । मृत्युश्चरति जन्तूनां तां दुर्गां प्रण० ॥५४॥
स्रष्टा सृजति सृष्टिं च पाता पाति यदाज्ञया । संहर्ता संहरेत्काले तां दुर्गां प्रण० ॥५५॥
ज्योतिःस्वरूपो भगवाञ्छ्रीकृष्णो निर्गुणः स्वयम् । यया विना न शक्तश्च सृष्टिं कर्तुं नमामि ताम् ॥५६॥
रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे । शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति ॥५७॥
इत्युक्त्वा परशुरामश्च नत्वा तां च रुरोद ह । तुष्टा दुर्गा संभ्रमेण चाभयं च वरं ददौ ॥५८॥
अमरो भव हे पुत्र वत्स सुस्थिरतां व्रज । सर्वप्रसादात्सर्वत्र जयोऽस्तु तव संततम् ॥५९॥

को कृपया जो सर्वज्ञान की जननी विद्या प्रदान की, जिससे शिव मृत्युञ्जय हो गये हैं, वह तुम्ही हो ॥४७॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की सृष्टि, पालन और संहार ये तीन प्रकार की शक्तियाँ तुम्हीं हो, अतः तुम्हें नमस्कार है ॥४८॥ मधुकैटभ के भय से ब्रह्मा त्रस्त होकर काँप गये, फिर वे जिसकी स्तुति करने से मुक्त हुए उस देवी को मैं शिर से प्रणाम कर रहा हूँ ॥४९॥ मधुकैटभ के युद्ध के समय जिस ईश्वरी की स्तुति करके त्राता विष्णु शक्तिमान् हुए,उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५०॥ त्रिपुर के महायुद्ध में रथ समेत शिव के गिर जाने पर देवों ने जिस देवी की स्तुति की उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५१॥ विष्णु ने स्वयं वृष (बैल) रूप बनकर शिव को उठाया, पश्चात् शम्भु ने जिसकी स्तुति कर त्रिपुर का हनन किया उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५२॥ जिसकी आज्ञा से वायु चलता है, सूर्य सतत तपता है, इन्द्र वर्षा करता है और अग्नि जलाता है, उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५३॥ जिसकी आज्ञा वश काल निरन्तर वेग से भ्रमण किया करता है और मृत्यु जन्तुओं में विचरण करता है, उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥५४॥ जिसकी आज्ञा से स्रष्टा सृष्टि का सर्जन करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिव संहार करते हैं, उस दुर्गा को मैं प्रणाम कर रहा हूं ॥५५॥ ज्योतिःस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं निर्गुण हैं और जिस शक्ति के बिना सृष्टि करने में समर्थ नहीं होते हैं उस देवी को नमस्कार करता हूँ ॥५६॥ हे संसार की माता ! मेरी रक्षा करो। मेरी रक्षा करो। मेरा अपराध क्षमा करो, बच्चों के अपराध से माता कहाँ कुपित होती है ? ॥५७॥ इतना कहकर नमस्कार करके परशुराम रोदन करने लगे, जिससे सहसा दुर्गा ने प्रसन्न होकर उन्हें अभय और वर प्रदान किया ॥५८॥ हे पुत्र ! अमर हो, हे वत्स ! सुस्थिर हो और सबके प्रसाद से तुम्हारा सर्वत्र जय हो ॥५९॥ सबके अन्तरात्मा भगवान् निरन्तर प्रसन्न रहें, कृष्ण में तुम्हारी

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

सर्वान्तरात्मा भगवांस्तुष्टः स्यात्सततं हरिः । भक्तिर्भवतु ते कृष्णे शिवदे च शिवे गुरौ ॥६०॥
इष्टदेवे गुरौ यस्य भक्तिर्भवति शाश्वती । तं हन्तुं न हि शक्ता वा रुष्टा वा सर्वदेवताः ॥६१॥
श्रीकृष्णस्य च भक्तस्त्वं शिष्यो वै शंकरस्य च । गुरुपत्नीं स्तौषि यस्मात्कस्त्वां हन्तुमिहेश्वरः ॥६२॥
अहो न कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । अन्यदेवेषु ये भक्ता न भक्ता वा निरङ्कुशाः ॥६३॥
चन्द्रमा बलवांस्तुष्टो येषां भाग्यवतां भृगो । तेषां तारागणा रुष्टाः किं कुर्वन्ति च दुर्बलाः ॥६४॥
यस्मै तुष्टः पालयति नरदेवो महान्सुखी । तस्य किंवा करिष्यन्ति रुष्टा भृत्याश्च दुर्बलाः ॥६५॥
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा दत्त्वा रामाय चाऽऽशिषम् । जगामान्तःपुरं तूर्णं हर्षशब्दो बभूव ह ॥६६॥
स्तोत्रं वै कण्वशाखोक्तं पूजाकाले च यः पठेत् । यात्राकाले तथा प्रातर्वाञ्छितार्थं लभेद्ध्रुवम् ॥६७॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत् । विद्यार्थी लभते विद्यां प्रजार्थी चाऽप्नुयात्प्रजाः ॥६८॥
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं नष्टवित्तो धनं लभेत् । यस्य रुष्टो गुरुर्देवो राजा वा बान्धवोऽथवा ॥६९॥
तस्मै तुष्टश्च वरदः स्तोत्रराजप्रसादतः । दस्युग्रस्तः [1]फणिग्रस्तः शत्रुग्रस्तो भयानकः ॥७०॥
व्याधिग्रस्तो भवेन्मुक्तः स्तोत्रस्मरणमात्रतः । राजद्वारे श्मशाने च कारागारे च बन्धने ॥७१॥
जलराशौ निमग्नश्च मुक्तस्तत्स्मृतिमात्रतः । स्वामिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च दारुणे ॥७२॥

भक्ति हो और श्रीकृष्ण एवं कल्याणप्रद गुरु शिव में भक्ति हो ॥६०॥ क्योंकि इष्टदेव और गुरु में जिसकी निरन्तर निश्चल भक्ति बनी रहती है, उसे समस्त देवता के रुष्ट रहने पर भी कोई मार नहीं सकता है ॥६१॥ श्रीकृष्ण के भक्त और शंकर के शिष्य होकर तुम गुरुपत्नी की स्तुति कर रहे हो, अतः तुम्हें मारने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥६२॥ अहो ! कृष्ण के भक्तों का कहीं भी अशुभ नहीं होता । अन्य देवता के जो भक्त हैं, वे या तो भक्त नहीं हैं या निरंकुश हैं ॥६३॥ हे भृगो ! जिन भाग्यवानों पर चन्द्रमा प्रसन्न हों और तारागण रुष्ट हों तो दुर्बल तारे उनका क्या बिगाड़ सकते हैं ? ॥६४॥ राजा प्रसन्न चित्त से जिसका पालन करता है, वह महासुखी होता है । यदि सेवक वर्ग उस पर असन्तुष्ट रहें तो वे दुर्बल कर ही क्या सकते हैं ? ॥६५॥ इतना कहकर पार्वती ने प्रसन्न होकर राम को आशीर्वाद दिया और शीघ्रता से अपने अन्तःपुर चली गयीं । तदनन्तर हर्ष का शब्द होने लगा ॥६६॥ इस काण्वशाखोक्त स्तोत्र का, जो पूजा समय, यात्रा समय और प्रातःकाल पाठ करता है, उसे निश्चित अभीष्ट प्राप्त होता है ॥६७॥ पुत्र चाहने वाले को पुत्र, कन्यार्थी को कन्या, विद्यार्थी को विद्या, प्रजार्थी को प्रजा, नष्ट राज्य वाले को राज्य और नष्ट धन वाले को धन की प्राप्ति होती है ॥६८½॥ जिसके ऊपर गुरुदेव, राजा या बन्धुगण रुष्ट रहते हैं, इस स्तोत्रराज के प्रसाद से वे सब उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। लुटेरों से घिरा, सर्पग्रस्त, शत्रुओं से घिरा, भयानक और रोगी इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से मुक्त हो जाता है। राजदरबार, श्मशान, कारागृह (जेल), बन्धन तथा जल-राशि में निमग्न व्यक्ति इसके स्मरण मात्र से मुक्त हो जाता है। पति, पुत्र या मित्र से घोर विरोध होने पर इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से उसे निश्चित ही अभीष्ट-सिद्धि मिलती है ॥६९-७२½॥ एक वर्ष तक हविष्य भोजन कर जो स्त्री इस

---

१ क. ग्रहग्र०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्तोत्रस्मरणमात्रेण वाञ्छितार्थं लभेद्ध्रुवम् । कृत्वा हविष्यं वर्षं च स्तोत्रराजं शृणोति या ॥७३॥
भक्त्या दुर्गां च संपूज्य महावन्ध्या प्रसूयते । लभते सा दिव्यपुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम् ॥७४॥
असौभाग्या च सौभाग्यं षण्मासश्रवणाल्लभेत् । नवमासं काकवन्ध्या मृतवत्सा च भक्तितः ॥७५॥
स्तोत्रराजं या शृणोति सा पुत्रं लभते ध्रुवम् । कन्यामाता पुत्रहीना पञ्चमासं शृणोति या ॥७६॥
घटे संपूज्य दुर्गां च सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥७७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० परशुरामकृतदुर्गास्तोत्रं
नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

स्तुत्वा तां परशुरामोऽसौ हर्षसंफुल्लमानसः । स्तोत्रेण हरिणोक्तेन स तुष्टाव गणाधिपम् ॥१॥
पूजां चकार भक्त्या च नैवेद्यैर्विविधैरपि । धूपैर्दीपैश्च गन्धैश्च पुष्पैश्च तुलसीं विना ॥२॥
संपूज्य भ्रातरं भक्त्या स रामः शंकराज्ञया । गुरुपत्नीं गुरुं नत्वा गमनं कर्तुमुद्यतः ॥३॥

स्तोत्रराज का श्रवण करती है और दुर्गा की पूजा करती है, वह महावन्ध्या हो जाने पर भी बच्चा उत्पन्न करती है। उसे ज्ञानी, चिरजीवी और दिव्य पुत्र की प्राप्ति होती है ॥७३-७४॥ छह मास तक श्रवण करने से दुर्भगा सौभाग्य प्राप्त करती है। नव मास तक भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रराज के सुनने से काकवन्ध्या और मृतवत्सा भी पुत्र प्राप्त करती है ॥७५॥ जो स्तोत्रराज का श्रवण करती है, वह निश्चित ही पुत्र पाती है। कन्या जनने वाली स्त्री पुत्रहीन होने पर पांच मास तक इसका श्रवण और कलश में दुर्गापूजन करके निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त करती है ॥७६-७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुरामकृत
दुर्गा-स्तोत्र-वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

अध्याय ४६

गणेश और तुलसी का संवाद तथा फलश्रुति

नारायण बोले—परशुराम ने प्रसन्नचित्त होकर पार्वती की स्तुति के उपरान्त भगवान् के कहे हुए स्तोत्र द्वारा गणेश की भी स्तुति की ॥१॥ और तुलसी के बिना विविध नैवेद्य द्वारा भक्तिपूर्वक धूप, दीप, गन्ध एवं पुष्प से उनकी पूजा की ॥२॥ शंकर की आज्ञा से राम ने भ्राता गणेश को पूजकर गुरुपत्नी और गुरु को नमस्कार करके गृह की ओर प्रस्थान किया ॥३॥

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

नारद उवाच

पूजां भगवतश्चक्रे रामो गणपतेर्यदा। नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैस्तुलसीं च विना कथम् ॥४॥
तुलसी सर्वपुष्पाणां मान्या धन्या मनोहरा। कथं पूतां सारभूतां न गृह्णाति गणेश्वरः ॥५॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। ब्रह्मकल्पस्य वृत्तान्तं निगूढं च मनोहरम् ॥६॥
एकदा तुलसी देवी प्रोद्भिन्नवयौवना। तीर्थं भ्रमन्ती तपसा नारायणपरायणा ॥७॥
ददर्श गङ्गातीरे सा गणेशं यौवनान्वितम्। अतीव सुन्दरं शुद्धं सस्मितं पीतवाससम् ॥८॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्। ध्यायन्तं कृष्णपादाब्जं जन्ममृत्युजरापहम् ॥९॥
जितेन्द्रियाणां प्रवरं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्। सुरूपहार्यं निष्कामं सकामा तमुवाच ह ॥१०॥

तुलस्युवाच

अहो ध्यायसि किं देव शान्तरूप गजानन। कथं लम्बोदरो देहो गजवक्त्रं कथं तव ॥११॥
एकदन्तः कथं वक्त्रे वदामुत्र च कारणम्। त्यज ध्यानं महाभाग सायंकाल उपस्थितः ॥१२॥
इत्युक्त्वा तुलसी देवी प्रजहास पुनः पुनः। परं चेतसि दग्धा सा कामबाणैः सुदारुणैः ॥१३॥

नारद बोले—राम ने विविध नैवेद्य और पुष्पों से भगवान् गणेश्वर देव की पूजा की, किन्तु तुलसी के बिना उनकी पूजा कैसे सम्पन्न हुई? क्योंकि सभी पुष्पों में तुलसी मान्या, धन्या एवं मनोहरा है। तब सारभूत (तुलसी) को गणेश्वर क्यों नहीं ग्रहण करते हैं? ॥४-५॥

नारायण बोले—हे नारद! मैं एक प्राचीन इतिहास, जिसमें ब्रह्म कल्प का निगूढ़ एवं मनोहर वृत्तान्त भरा पड़ा है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥६॥ एक बार तुलसी देवी अपने नवयौवन में तप के व्याज से नारायण का भजन करती हुई तीर्थों में भ्रमण कर रही थीं। अनन्तर गंगा के तट पर नवयौवनपूर्ण गणेश को उन्होंने देखा, जो अत्यन्त सुन्दर, शुद्धचित्त, मन्दहास करते हुए एवं पीताम्बर पहने हुए स्थित थे ॥७-८॥ सर्वांग में चन्दन का लेप लगाये और रत्नों के भूषणों से भूषित हुए गणेश भगवान् कृष्ण के चरण-कमल का ध्यान कर रहे थे, जो जन्म, मृत्यु और जरा का अपहर्ता है ॥९॥ जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, योगीन्द्रों के गुरुओं के गुरु व अत्यन्त सुन्दर एवं निष्काम उन्हें देखकर कामातुर तुलसी ने उनसे कहा ॥१०॥

तुलसी बोली—हे देव गजानन! शान्त रूप से किसका ध्यान कर रहे हो? तुम्हारी देह में यह लम्बा उदर और गजमुख कैसे हो गया? ॥११॥ हे महाभाग! तुम्हारे मुख में एक ही दाँत क्यों है? इसका कारण बताओ, अब सायंकाल हो रहा है, ध्यान करना बन्द करो ॥१२॥ इतना कहकर तुलसी देवी बार-बार हँसने लगीं, किन्तु मन में भीषण कामबाणों से वह दग्ध हो रही थी ॥१३॥ हे मुने! अनन्तर गणेश

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गणेशस्य प्रधानाङ्गे दत्त्वा किंचिज्जलं मुने। जघान तर्जन्यग्रेण निष्पन्दं कृष्णमानसम् ॥१४॥
बभूव ध्यानभग्नं च तस्य नारद चेतनम्। दुःखं च ध्यानभेदेन तद्विच्छेदो हि शोकदः ॥१५॥
ध्यानं त्यक्त्वा हरिं स्मृत्वा चापश्यत्कामिनीं पुरः। नवयौवनसंपन्नां सस्मितां कामपीडिताम् ॥१६॥
लम्बोदरश्च तां दृष्ट्वा परं विनयपूर्वकम्। उवाच सस्मितः शान्तः शान्तां कामातुरां वशी ॥१७॥

गणेश्वर उवाच

का त्वं वत्से कस्य कन्या मातर्मां ब्रूहि किं शुभे। पापदोऽशुभदः शश्वद्ध्यानभङ्गस्तपस्विनाम् ॥१८॥
कृष्णः करोतु कल्याणं हन्तु विघ्नं कृपानिधिः। तद्ध्यानभङ्गजाद्दोषान्नाशुभं स्यात्तु ते शुभे ॥१९॥
गणेशवचनं श्रुत्वा तमुवाच स्मरातुरा। सस्मितं सकटाक्षं च देवं मधुरया गिरा ॥२०॥

तुलस्युवाच

धर्मात्मजस्य कन्याऽहमप्रौढा च तपस्विनी। तपस्या मे स्वामिनोऽर्थे त्वं स्वामी भव मे प्रभो ॥२१॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा गणेशः श्रीहरिं स्मरन्। तामुवाच महाप्राज्ञः प्राज्ञीं मधुरया गिरा ॥२२॥

के प्रधान अंग में उसने थोड़ा-सा जल डालकर अपनी तर्जनी के अग्र भाग से उनको धक्का दिया, जो भगवान् कृष्ण में निश्चल मन लगाये हुए थे ॥१४॥ हे नारद! इससे उनका ध्यान भंग हो गया और ध्यान भङ्ग होने से उन्हें दुःख हुआ। क्योंकि ध्यान का टूटना शोकप्रद होता है ॥१५॥ ध्यान त्यागकर हरि का स्मरण करके उन्होंने सामने एक कामिनी स्त्री को देखा, जो नवयौवन से सम्पन्न, मन्द मुसुकान करती हुई काम-पीड़ित हो रही थी ॥१६॥ संयमी लम्बोदर ने मन्दहास समेत शान्त भाव से उसे देखकर विनयपूर्वक उस कामातुरा से कहा ॥१७॥

गणेश्वर बोले—हे वत्से! तुम कौन हो? किस की कन्या हो? हे मातः! हे शुभे! मुझे बताओ। तपस्वियों का निरन्तर ध्यान भंग करना पाप और अशुभ फल देने वाला होता है ॥१८॥ हे शुभे! कृष्ण तुम्हारा कल्याण करें, विघ्न को कृपा निधान नष्ट करें, उनके ध्यान भंग जनित दोष से तुम्हारा अशुभ न हो ॥१९॥ गणेश की बातें सुनकर कामातुरा तुलसी ने मन्दहास एवं उन पर कटाक्ष करती हुई अपनी मधुरवाणी द्वारा उस देव से कहा ॥२०॥

तुलसी बोली—हे प्रभो! मैं धर्मपुत्र की कन्या हूँ, अप्रौढ़ा और तपस्विनी हूँ, पति के लिए तप कर रही हूं, अतः तुम हमारे स्वामी बनो ॥२१॥ तुलसी की बात सुनकर महाविद्वान् गणेश ने भगवान् का स्मरण करते हुए, उस विदुषी से मधुरवाणी द्वारा कहा ॥२२॥

१क. मद्द्या०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गणेश उवाच

हे मातर्नास्ति मे वाञ्छा घोरे दारपरिग्रहे । दारग्रहो हि दुःखाय न सुखाय कदाचन ॥२३॥
हरिभक्तेर्व्यवायश्च तपस्यानाशकारकः । मोक्षद्वारकपाटश्च भवबन्धनपाशकः ॥२४॥
गर्भवासकरः शश्वत्तत्त्वज्ञाननिकृन्तकः । संशयानां समारम्भो यस्त्याज्यो वृषलैरपि ॥२५॥
गेहोऽहंकरणानां च सर्वमायाकरण्डकम् । साहसानां समूहश्च दोषाणां च विशेषतः ॥२६॥
निवर्तस्व महाभागे पश्यान्यं कामुकं पतिम् । कामुकेनैव कामुक्याः संगमो गुणवान्भवेत् ॥२७॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा कोपात्सा तं शशाप ह । दारास्ते भविताऽसाध्वी गणेश्वर न संशयः ॥२८॥
इत्याकर्ण्य सुरश्रेष्ठस्तां शशाप शिवात्मजः । देवि त्वमसुरग्रस्ता भविष्यसि न संशयः ॥२९॥
तत्पश्चान्महतां शापाद्वृक्षस्त्वं भवितेति च । महातपस्वीत्युक्त्वा तां विरराम च नारद ॥३०॥
शापं श्रुत्वा तु तुलसी सा रुरोद पुनः पुनः । तुष्टाव च सुरश्रेष्ठं स प्रसन्न उवाच ताम् ॥३१॥

गणेश्वर उवाच

पुष्पाणां सारभूता त्वं भविष्यसि मनोरमे । कलांशेन महाभागे स्वयं नारायणप्रिया ॥३२॥
प्रिया त्वं सर्वदेवानां श्रीकृष्णस्य विशेषतः । पूता विमुक्तिदा नृणां मया भोग्या न नित्यशः ॥३३॥

गणेश बोले—हे मातः ! स्त्री ग्रहण (विवाह) करना भयंकर है, अतः मुझे इसकी इच्छा नहीं है। विवाह कभी भी सिवाय दुःख के सुखकर नहीं होता है ॥२३॥ इससे हरिभक्ति का व्यवधान तथा तप का नाश होता है और यह मोक्ष द्वार का कपाट (किवाड़) तथा संसार बन्धन का फांस रूप है ॥२४॥ गर्भवास का निरन्तर तत्त्वज्ञान का नाशक कारण, और संशयो का आरंम्भक होता है, जिसे शूद्र को भी त्याग देना चाहिए। यह अहंकारों का घर, समस्त माया की पिटारी, साहसों का समूह एवं विशेषकर दोषों का समूह है ॥२५-२६॥ अतः हे महा ! भागे तुम लौट जाओ औरकिसी अन्य कामुक पति को ढूंढ़ो, क्योंकि कामुक का ही कामुकी के साथ संगम होना हितकर होता है ॥२७॥ ऐसी बातें सुनकर उसने क्रोधवश उन्हें शाप दिया कि हे गणेश्वर ! तुम्हें व्यभिचारिणी स्त्री मिलेगी, इसमें संशय नहीं ॥२८॥ इतना सुनकर शिवपुत्र गणेश ने भी उसे शाप दिया कि देवि ! तुम असुर के अधीन रहोगी, इसमें संशय नहीं ॥२९॥ उसके अनन्तर बड़ों के शाप से तुम्हें वृक्ष होना पड़ेगा। इतना कहकर, हे नारद !, वे महातपस्वी चुप हो गये ॥३०॥ शाप सुनकर तुलसी बार-बार रोदन करने लगी और उस देवश्रेष्ठ की स्तुति की। तब प्रसन्न होकर गणेश ने उससे कहा ॥३१॥

गणेश्वर बोले—हे मनोरमे ! तुम पुष्पों में सारभूत (तुलसी) होगी, और हे महाभागे !, कलांश द्वारा स्वयं नारायण की प्रिया भी ॥३२॥ समस्त देवों तथा विशेषकर भगवान् श्रीकृष्ण की प्रिया बनोगी। तुम पवित्र होगी एवं मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करोगी, पर हम कभी भी (तुम्हारा) उपभोग नहीं करेंगे ॥३३॥ देवश्रेष्ठ गणेश

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

इत्युक्त्वा तां सुरश्रेष्ठो जगाम तपसे पुनः। हरेराराधनव्यग्रो बदरीसंनिधिं ययौ ॥३४॥
जगाम तुलसीदेवी हृदयेन विदूयता। निराहारा तपश्चक्रे पुष्करे लक्षवर्षकम् ॥३५॥
पश्चान्मुनीन्द्रशापेन गणेशस्य च नारद। सा प्रिया शङ्खचूडस्य बभूव सुचिरं मुने ॥३६॥
ततः शंकरशूलेन स ममारासुरेश्वरः। सा कलांशेन वृक्षत्वं ययौ नारायणप्रिया ॥३७॥
कथितश्चेतिहासस्ते श्रुतो धर्ममुखात्पुरा। मोक्षप्रदश्च सारश्च पुराणेन प्रकीर्तितः ॥३८॥
ततः परशुरामोऽसौ जगाम तपसे वनम्। प्रणम्य शंकरं दुर्गां संपूज्य च गणेश्वरम् ॥३९॥
पूजितो वन्दितः सर्वैः सुरेन्द्रमुनिपुंगवैः। पार्वतीशिवसांनिध्ये सुखं तस्थौ गणेश्वरः ॥४०॥
इदं गणपतेः खण्डं यः शृणोति समाहितः। स राजसूययज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥४१॥
अपुत्रो लभते पुत्रं श्रीगणेशप्रसादतः। धीरं वीरं च धनिनं गुणिनं चिरजीविनम् ॥४२॥
यशस्विनं पुत्रिणं च विद्वांसं सुकवीश्वरम्। जितेन्द्रियाणां प्रवरं दातारं सर्वसंपदाम् ॥४३॥
सुशीलं[1] च सदाचारं प्रशंस्यं वैष्णवं लभेत्। अहिंसकं दयालुं च तत्त्वज्ञानविशारदम् ॥४४॥
भक्त्या गणेशं संपूज्य वस्त्रालंकारचन्दनैः। श्रुत्वा गणपतेः खण्डं महावन्ध्या प्रसूयते ॥४५॥

उससे इतना कहकर भगवान् की आराधना में व्यग्र होने के कारण पुनः तप करने के लिए बदरिकाश्रम के निकट चले गये और हार्दिक दुःख का अनुभव करती हुई तुलसी भी पुष्कर चली गयी। उसने वहाँ एक लाख वर्षतक निराहार रहकर तप किया ॥३४-३५॥ हे नारद! हे मुने! मुनिश्रेष्ठ गणेश के शापवश वह चिरकाल तक शंखचूड़ की प्रिया रही ॥३६॥ पश्चात् शिव के शूल से उसका निधन होने पर वह नारायण की प्रिया तुलसी कलांश से वृक्ष होकर उत्पन्न हुई ॥३७॥ मैंने धर्म के मुख से जिस प्रकार यह इतिहास सुना था, तुम्हें सुना दिया, जो पुराण में प्रसिद्ध, मोक्षप्रद तथा सारभूत है ॥३८॥ अनन्तर वे परशुराम गणेश की पूजा और शंकर एवं दुर्गा को प्रणाम करके तप के लिए वन चले गये ॥३९॥ समस्त सुरनायकों और मुनि-श्रेष्ठों द्वारा पूजित एवं वन्दित होकर गणेश भी पार्वती शिव के समीप सुखपूर्वक रहने लगे ॥४०॥ इस प्रकार सावधान होकर इस गणपति खण्ड का जो श्रवण करता है, वह निश्चित रूप से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। श्री गणेश के प्रसाद से पुत्रहीन व्यक्ति ऐसे पुत्र की प्राप्ति करता है, जो धीर, वीर, धनी, गुणी, चिरजीवी, यशस्वी, पुत्री, विद्वान्, कवीश्वर, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, समस्त सम्पत्ति के दाता, सुशील, सदाचारी, प्रशंसनीय, वैष्णव, अहिंसक, दयालु, और तत्त्वज्ञान में निपुण होता है ॥४१-४४॥ गणेश की भक्तिपूर्वक वस्त्राभूषण एवं चन्दन से पूजा करके गणपतिखण्ड के श्रवण करने पर महावन्ध्या भी प्रसव करती है। हे ब्रह्मन्! मृतवत्सा और काकवन्ध्या निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त

---

१ क. सुपवित्रं स०।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मृतवत्सा काकवन्ध्या ब्रह्मन्पुत्रं लभेद्ध्रुवम् । अदूष्यदूषणपरा शुद्धा चैव लभेत्सुतम् ॥४६॥
सपूर्णं ब्रह्मवैवर्तं श्रुत्वा यल्लभते फलम् । तत्फलं लभते मर्त्यः श्रुत्वेदं खण्डमुत्तमम् ॥४७॥
वाञ्छां कृत्वा तु मनसि शृणोति परमास्थितः । तस्मै ददाति सर्वेष्टं शूरश्रेष्ठो गणेश्वरः ॥४८॥
श्रुत्वा गणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय यत्नतः । स्वर्णयज्ञोपवीतं च श्वेतच्छत्रं च माल्यकम् ॥४९॥
प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललड्डुकान् । परिपक्वफलान्येव देशकलोद्भवानि च ॥५०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारदनारायणसंवादे परशुरामागमनं-तत्खण्डश्रवणफलवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

समाप्तमिदं श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणस्थ तृतीयं महागणपतिखण्डम्

करती हैं। एवं दूषण रहित के ऊपर दोष लगानेवाली स्त्री भी शुद्ध होकर पुत्र प्राप्त करती है ॥४५-४६॥ मनुष्य को समस्त ब्रह्मवैवर्त पुराण के सुनने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल इस उत्तम खण्ड के सुनने पर भी प्राप्त होता है ॥४७॥ जो मन में अभिलाषा रखकर परमश्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे श्रेष्ठ गणेश्वर समस्त अभीष्ट प्रदान करते हैं ॥४८॥ गणपतिखण्ड सुनकर विघ्न के नाशार्थ सुवर्ण का यज्ञोपवीत, श्वेत छत्र, माला, तिल के लड्डू एवं देश-काल के अनुसार उत्पन्न फल समेत स्वस्तिक (मंगल द्रव्य) वाचक को समर्पित करना चाहिए ॥४९-५०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में परशुराम के आगमन तथा इस खण्ड के सुनने का फल वर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४६॥

⊙⊙

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण का तीसरा महागणपतिखण्ड समाप्त

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

परिशिष्ट

ब्रह्मवैवर्तपुराण में आये व्यक्तिवाची संज्ञाशब्दों की अनुक्रमणी

अ

अंगिरा—३९, ५१, १२९, १३६, ५१८, ५२१, ५७४, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५९३, ५९७, ६१२, ६५३, ७४१।

अंबिका—४५५, ५६५, ५६७, ८२४।

अंशुमान्—२३८।

अकूपार—५४२, ६१२।

अगस्त्य—९३, ९४, ५१९, ५६१, ६५३, ७४१, ७७७, ८०८, ८५९।

अग्नि—२०, २१, २४, २७, २८, ३४, ७७, ८०, ८१, १०३, १०७, १४४, १८२, १८८, १९८, २४४, २७४, २७५, २७६, २९२, ३०३, ३०५, ३१७, ३४१, ३५२, ४१५, ४२४, ४५०, ४६०, ४६१, ४९८, ५४१, ५४९, ५७२, ५८०, ५९३, ६१२, ६१४, ६१८, ६२०, ६३५, ६९८, ७०८, ७०९, ७१८, ७२०, ७७७, ७८२, ८५३, ८५९।

अघमर्षण—५१९, ६५३।

अचला—२३६।

अच्युत—२९, ११४, २१३।

अतल—३६।

अतिचण्डा—६२०।

अत्रि—४३, १३०, १३६, १७९, २९२, ५१९, ५६९, ५७२, ५७३, ५९१, ६१२, ६५१, ६५३, ७४१।

अदिति—४३, १४९, १७९, २८९, ३५२, ४५४, ४९६, ४९९, ५१४, ५५६, ५५७, ६५०, ७१८, ८५९।

अधर्म—१७८।

अधिरथ—६०५।

अनन्त—३५ ४५, १७४, १७७, १९७, २००, २०५, २५९, ३३०, ५४९, ५९३, ५९४, ५९९, ६०१।

अनन्तनाग—५१५।

अनन्ता—२३६।

अनसूया—२८९, २९२, ७१८।

अनुराधा—४६।

अपान्तरतमा—३९, ६९, १३०।

अभिमन्यु—४९७।

अरणि—३९, ६९।

अरुण—४६।

अरुणि—६५३

अरुन्धती—१४९, १७९, २८९, २९२, ३५२, ५६२, ६५०, ७१७, ८५९।

अलकनन्दा—२४८।

अश्वपति—३३८, ३४१, ३४५, ३४६।

अश्विनी—४६।

अश्विनीकुमार—६०, ६४, ६५, ९३, ३०३, ३१७, ६९९, ७०८।

असमंजस—२३७, २३८।

असित—२८।

असितभैरव—६२०।

अस्ताचल—३५।

अहल्या—१४९, १७९, २८९, २९३, ३५२, ७१८, ७२५, ८५९।

आ

आंगरिस—१२१।

आकूति—४३, ७१८।

आदित्य—४४, ३१७, ५४५, ५९९।

आपिशलि—५१८, ६५३।

आरुणि—१२९, १३६।

आर्द्रा—४६।

आश्लेषा—४६।

आसुरि—५१९, ६५३, ७४१।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

आस्तीक—४६, १७५, २००, २०१, ४८७, ४९६, ४९७, ५१९, ५३०।
आहवनीय—४६१।
आहूति—१७९।

इ

इंद्र—१, ४४, ७७, ८८, १०३, १२१, १७९, २०६, २२७, २३५, २४५, २५९, २९१, २९२, ३०५, ३१२, ३४७, ३५२, ३५९, ३६१, ३६२, ३६३, ३६६, ३६७, ३६८, ३८६, ३९४, ३९५, ४१५, ४१६, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४३०, ४३४, ४३९, ४४०, ४४१, ४४४, ४५०, ४५३, ४५४, ४५७, ५००, ५०३, ५०६, ५०८, ५२४, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३५, ५३७, ५४१, ५४२, ५७७, ५७८, ५८२, ५९९, ६२६, ६३४, ६३५, ६४१, ६५४, ६८५, ६८९, ६९०, ६९४, ६९८, ७०७, ७१८, ७२५, ७३०, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७६१, ७७१, ७७७, ७९७, ८२९, ८५३, ८५९, ८६०।
इंद्रद्युम्न—५४२, ६१२।
इंद्राणी—२८९, २९२, ३५२, ६२०, ६५१, ७१८, ८५९।

ई

इज्या—२३६।
ईशान—१७७, ३०३, ३१७, ५६१, ६३५, ७०७।
ईशाना—१८७, ५६६।
ईशानी—२४९, ५६५।
ईशाम—८३६।
ईश्वर—८०९, ८३७, ८३८।
ईश्वरी—२४९, ५०८, ७८२।

उ

उग्रचण्डा—३०३, ३१८, ६२०।
उग्रदंष्ट्रा—३०३।
उग्रदण्डा—३१७।
उग्रश्रवा—२।
उच्चैःश्रवा—४४९।
उतथ्य—५१ ५१९, ५८३, ६५३।
उत्कल—५१६, ६०६।
उत्तरभाद्रपदा—४६।
उत्तरफाल्गुनी—४६।
उत्तराषाढ़ा—४६।
उत्तानपाद—४३, ४२३, ४५३, ५१६, ५६२, ६५०, ६५१, ८२१।
उदयाचल—३५।
उपबर्हण—४०, ४२, ७२, ७३, ७४, ७८, ८२, ८८, १००, १०१, १११, ११८, ११९।
उपेन्द्र—४४।
उर्वशी—४५, ७१८।
उर्वी—२३६।
उलूक—६१२।
उल्कामुख—३१७।
उल्वण—८३६।
उषा—१७९।

ऊ

ऊर्ध्वकेश—३८।

ऋ

ऋचीक—५१९।
ऋतु—५२१।
ऋतुध्वज—३८।
ऋष्यशृंग—२००, २०१, ५२३, ६५३।

ए

एकदन्त—६९८, ७०४, ८५४।
एकपर्णा—७१८।

ऐ

ऐरावत—४५, ६४०, ७८४।

औ

और्य—५१९, ७४१।

क

कंदर्प—९, १६०, ३२६।
कंदली—४३।
कंस—५१३।
कच्छ—६१८।
कच्छप—५४२।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कच्छपराज—७७६।
कठ—५१८।
कणाद—२००, २०१, ५१८, ६५३, ७४१।
कण्व—२०१, ५१८, ६५३, ७४१।
कदम्बमाला—७१८।
कद्रू—४३, ४६, १७९।
कनखला—६१८।
कपालभैरव—८३६।
कपिल—४३, १७७, २३८, ३६८, ४१३, ५१९, ५४९, ५६१, ५६२, ५९३, ५९७, ६१२, ६४०, ६५०, ६५३, ७४१।
कपिलाक्ष—३०३।
कबन्धक—७११।
कमला—१०८, १६५, २१०, २७१, ४२३, ४३३, ४५५, ४७०, ४७४, ६१४, ६२९, ७३७, ७९९, ८२२, ८२८।
कमलापति—३२७।
करभ—९३, ९४, ५१९।
कर्कोटक—४५।
कर्दम—३९, ४३, १२९, १३६, १७९, २९२, ३५२, ३६८, ६१२, ८५९।
कर्दमप्रस्कन्न—५१९।
कलविङ्क—३१७।
कलहप्रिया—४३।
कला—४३, ७१८।
कलाग्निरुद्र—१७८।
कलावती—४३, ११९, १२०, १२१, १२२, १७९, ५०९, ५१२, ५१३, ५१४।
कल्याणमित्र—६५।
कवि—७७।
कश्यप—४३, ४६, ५१, १२०, १७४, २००, २०५, २६८, २७०, २९२, ३१०, ३११, ३५२, ३६८, ४२३, ४२८, ४७६, ४८६, ४८९, ४९०, ४९२, ४९६, ५१४, ५१८, ५२१, ५३३, ५५७, ५६१, ५९३, ६१३, ६५३, ६९६, ७२२, ७२३, ७४१।
कांचीमुख—३१७।
कांति—२८९।
कात्यायन—२००, २०१, ५१८, ५२४, ६५३, ७४१।
काम—२९, ५५, ५७, ७७, १७७, ५५७, ५५९, ६६६, ७८१।
कामदेव—२०, ३४, ५२, ५४, ५६, १२३, २८३, २८४, २९२, ३०३, ३५२, ६१६, ७०७, ७२०, ७८४, ८५९।
कामधेनु—२, २६, ७४५, ७४७, ७४८, ७४९, ७८४।
काम्या—५५५।
कार्तवीर्य—७४४, ७५०, ७५८, ७७३, ७७४, ७९१, ८१८, ८२६, ८३१, ८३७, ८४४।
कार्तवीर्यार्जुन—७५५, ७५७, ७६५, ७८९, ७९२, ७९६, ८००, ८०३, ८१७, ८२५।
कार्तिकी—६२०।
कार्तिकेय—१७५, ३०३, ३०४, ३१५, ३१६, ३१८, ३५२, ४१७, ६२०, ६३६, ७११, ७१३, ७१५, ७१८, ७१९, ७७१, ८३४, ८३६, ८४६, ८४७, ८५४।
कालंकट—३०३।
काल—२८, ८९, ९०, ९२, १४२, १७८।
कालकेय—३१७।
कालजिह्व—३०३।
कालभैरव—६२०, ८३६।
कालाग्नि—१९३, ३१३।
कालाग्निरुद्र—३८, १३१।
कालिंदी—४४, १७९।
कालिका—४३, २८९, ८१५।
काली—४, १७६, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ६०१, ७८६।
कालीभ—४५।
कालेश्वर—३१७।
कावेरी—१४८, ६१८, ७६३।
काशिराज—९३।
काशी—२१९, ६४०, ७६३।
काश्यप—५१।
काश्यपी—२३६।
काष्ठा—४३।
कीर्ति—१७७, २८९।
क्रिया—१७७, २८९।
कुंती—१७९।
कुटीचर—३०३।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

आस्तीक—४६, १७५, २००, २०१, ४८७, ४९६, ४९७, ५१९, ५३०।
आहवनीय—४६१।
आहूति—१७९।

इ

इंद्र—१, ४४, ७७, ८८, १०३, १२१, १७९, २०६, २२७, २३५, २४५, २५९, २९१, २९२, ३०५, ३१२, ३४७, ३५२, ३५९, ३६१, ३६२, ३६३, ३६६, ३६७, ३६८, ३८६, ३९४, ३९५, ४१५, ४१६, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४३०, ४३४, ४३९, ४४०, ४४१, ४४४, ४५०, ४५३, ४५४, ४५७, ५००, ५०३, ५०६, ५०८, ५२४, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३५, ५३७, ५४१, ५४२, ५७७, ५७८, ५८२, ५९९, ६२६, ६३४, ६३५, ६४१, ६५४, ६८५, ६८९, ६९०, ६९४, ६९८, ७०७, ७१८, ७२५, ७३०, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७६१, ७७१, ७७७, ७९७, ८२९, ८५३, ८५९, ८६०।
इंद्रद्युम्न—५४२, ६१२।
इंद्राणी—२८९, २९२, ३५२, ६२०, ६५१, ७१८, ८५९।

ई

इज्या—२३६।
ईशान—१७७, ३०३, ३१७, ५६१, ६३५, ७०७।
ईशाना—१८७, ५६६।
ईशानी—२४९, ५६५।
ईशाम—८३६।
ईश्वर—८०९, ८३७, ८३८।
ईश्वरी—२४९, ५०८, ७८२।

उ

उग्रचण्डा—३०३, ३१८, ६२०।
उग्रदंष्ट्रा—३०३।
उग्रदण्डा—३१७।
उग्रश्रवा—२।
उच्चैःश्रवा—४४९।
उतथ्य—५१ ५१९, ५८३, ६५३।
उत्कल—५१६, ६०६।
उत्तरभाद्रपदा—४६।
उत्तरफाल्गुनी—४६।
उत्तराषाढ़ा—४६।
उत्तानपाद—४३, ४२३, ४५३, ५१६, ५६२, ६५०, ६५१, ८२१।
उदयाचल—३५।
उपबर्हण—४०, ४२, ७२, ७३, ७४, ७८, ८२, ८८, १००, १०१, १११, ११८, ११९।
उपेन्द्र—४४।
उर्वशी—४५, ७१८।
उर्वी—२३६।
उलूक—६१२।
उल्कामुख—३१७।
उल्वण—८३६।
उषा—१७९।

ऊ

ऊर्ध्वकेश—३८।

ऋ

ऋचीक—५१९।
ऋतु—५२१।
ऋतुध्वज—३८।
ऋष्यशृंग—२००, २०१, ५२३, ६५३।

ए

एकदन्त—६९८, ७०४, ८५४।
एकपर्णा—७१८।

ऐ

ऐरावत—४५, ६४०, ७८४।

औ

और्य—५१९, ७४१।

क

कंदर्प—९, १६०, ३२६।
कंदली—४३।
कंस—५१३।
कच्छ—६१८।
कच्छप—५४२।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कच्छपराज—७७६।
कठ—५१८।
कणाद—२००, २०१, ५१८, ६५३, ७४१।
कण्व—२०१, ५१८, ६५३, ७४१।
कदम्बमाला—७१८।
कद्रू—४३, ४६, १७९।
कनखला—६१८।
कपालभैरव—८३६।
कपिल—४३, १७७, २३८, ३६८, ४१३, ५१९, ५४९, ५६१, ५६२, ५९३, ५९७, ६१२, ६४०, ६५०, ६५३, ७४१।
कपिलाक्ष—३०३।
कबन्धक—७११।
कमला—१०८, १६५, २१०, २७१, ४२३, ४३३, ४५५, ४७०, ४७४, ६१४, ६२९, ७३७, ७९९, ८२२, ८२८।
कमलापति—३२७।
करभ—९३, ९४, ५१९।
कर्कोटक—४५।
कर्दम—३९, ४३, १२९, १३६, १७९, २९२, ३५२, ३६८, ६१२, ८५९।
कर्दमप्रस्कन्न—५१९।
कलविङ्क—३१७।
कलहप्रिया—४३।
कला—४३, ७१८।
कलाग्निरुद्र—१७८।
कलावती—४३, ११९, १२०, १२१, १२२, १७९, ५०९, ५१२, ५१३, ५१४।
कल्याणमित्र—६५।
कवि—७७।
कश्यप—४३, ४६, ५१, १२०, १७४, २००, २०५, २६८, २७०, २९२, ३१०, ३११, ३५२, ३६८, ४२३, ४२८, ४७६, ४८६, ४८९, ४९०, ४९२, ४९६, ५१४, ५१८, ५२१, ५३३, ५५७, ५६१, ५९३, ६१३, ६५३, ६९६, ७२२, ७२३, ७४१।
कांचीमुख—३१७।
कांति—२८९।
कात्यायन—२००, २०१, ५१८, ५२४, ६५३, ७४१।
काम—२९, ५५, ५७, ७७, १७७, ५५७, ५५९, ६६६, ७८१।
कामदेव—२०, ३४, ५२, ५४, ५६, १२३, २८३, २८४, २९२, ३०३, ३५२, ६१६, ७०७, ७२०, ७८४, ८५९।
कामधेनु—२, २६, ७४५, ७४७, ७४८, ७४९, ७८४।
काम्या—५५५।
कार्तवीर्य—७४४, ७५०, ७५८, ७७३, ७७४, ७९१, ८१८, ८२६, ८३१, ८३७, ८४४।
कार्तवीर्यार्जुन—७५५, ७५७, ७६५, ७८९, ७९२, ७९६, ८००, ८०३, ८१७, ८२५।
कार्तिकी—६२०।
कार्तिकेय—१७५, ३०३, ३०४, ३१५, ३१६, ३१८, ३५२, ४१७, ६२०, ६३६, ७११, ७१३, ७१५, ७१८, ७१९, ७७१, ८३४, ८३६, ८४६, ८४७, ८५४।
कालंकट—३०३।
काल—२८, ८९, ९०, ९२, १४२, १७८।
कालकेय—३१७।
कालजिह्व—३०३।
कालभैरव—६२०, ८३६।
कालाग्नि—१९३, ३१३।
कालाग्निरुद्र—३८, १३१।
कालिंदी—४४, १७९।
कालिका—४३, २८९, ८१५।
काली—४, १७६, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ६०१, ७८६।
कालीभ—४५।
कालेश्वर—३१७।
कावेरी—१४८, ६१८, ७६३।
काशिराज—९३।
काशी—२१९, ६४०, ७६३।
काश्यप—५१।
काश्यपी—२३६।
काष्ठा—४३।
कीर्ति—१७७, २८९।
क्रिया—१७७, २८९।
कुंती—१७९।
कुटीचर—३०३।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

कुबेर—२७, २९, ३४, ५३, ७७, ११८, १७९, २८९, ३००, ३०३, ३१७, ४२४, ६०४, ६३५, ६४१, ६५१, ६५४, ६८६, ६९८, ७०७, ७८४, ८५९।

कुमार—११२, ५९३, ५९७, ६६८, ६६९, ७१६, ७१८, ७१९।

कुमुद—१०५, ५३७।

कुम्भकर्ण—५१।

कुरुक्षेत्र—७६३।

कुश—३५।

कुशध्वज—२७१, २७२, २७६, २७७।

कूर्म—१६६, ६१२।

कृत्तिका—३७, ४६, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१६, ७१७।

कृत्या—२८९।

कृष्ण—५, १७, २८, २२४, २८१, ३०५, ३३५, ३६२, ३६५, ४३३, ४३७, ४५४, ४६६, ४६७, ४६८, ४७०, ४९४, ५०६, ५०७, ५०८, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५३६, ५४१, ५५५, ५५६, ५६५, ५७२, ५७४, ५९५, ६११, ६४५, ६४६, ६५१, ६८९, ६९१, ६९३, ६९४, ७४७, ७५९, ७६२, ७७७, ७७८, ७८२, ७८६, ७८७, ८२७, ८३०, ८४६, ८४९, ८५१, ८५२, ८५८, ८५९, ८६०, ८६४।

कृष्णजीवनी—३३५, ३३६।

कृष्णांगभैरव—८३६।

केदार—४२३।

केदारनाथ—४५३।

केशव—३२२, ४५६, ६४५, ७७८।

कैकेयी—१७९।

कटभ—२३, ३५, २२८, ३१४, ६००।

कैटभी—२८९, ३०३, ८५९।

कैलास—३५, ७३२, ७६३।

कोट्टरी—३०३, ३१८।

कौत्स—५१९, ६५३।

कौशिकी—७८, १४८, ४९७, ६१८, ७६३।

कौसल्या—१७९।

क्रतु—५०, १२९, १३६, ५१८, ५९३, ५९७, ६५३, ७४१।

क्रिया—५०।

क्रोध—२८।

क्रोधभैरव—६२०, ८३६।

क्रौञ्च—३५।

क्षमा—४३, १७७, २५७।

क्षिति—२३६, ७०९।

क्षुधा—२८९।

क्षेमा—१४९।

क्षोणी—२३६।

ख

खट्वांग—२८, ८२१।

खड्ग—३१७।

ग

गंगा—४, ६६, १४८, १६५, १७४, १९६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१८, २३७, २३८, २३९, २४१, २४२, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २५२, २५३, २५५, २५९, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २७४, २८९, ३३२, ३३३, ३३६, ३६९, ५१४, ५३७, ५४९, ५५६, ५५८, ५६१, ६१८, ७६३, ७७७।

गंडकी—६१८, ७६३।

गंधमादन—३५, २९५, ७६३।

गजानन—६९८, ७०४, ८५४, ८५५।

गणपति—४, १७७, ५९३, ६३१, ८३८, ८४०, ८४६, ८६७।

गणाधिप—७०४।

गणेश—१, ६, १६५, १६७, १६८, १८१, १९५, १९८, २४४, ३४१, ३५५, ३८६, ४१३, ४३३, ४५०, ४५६, ४५७, ४६०, ४९८, ६१४, ६५१, ६८८, ६९८, ७०२, ७०५, ७१२, ७२१, ७४४, ७८२, ८३४, ८३६, ८३७, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८५३, ८५४, ८६२, ८६३, ८६५, ८६६।

गणेश्वर—२९२, ५४९, ६१२, ७०१, ७७१, ८३६, ८४९, ८६४।

गदाधर—३३०।

गरुड—२५, ४६, ८६, ९५, २४१, ३६९, ५६१, ५८६, ५९२, ५९३, ७०४, ७१२, ७२६, ८५५।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

गर्ग—५१९।
गान्धारी—१७९।
गायत्री—१७१, ३३९, ५६२, ७२०।
गार्हपत्य—४६१।
गिरिजा—५६२, ६४१, ६४२।
गिरीश—८०९।
गुहाग्रज—८५४, ८५५।
गुह्यक—२७।
गोकर्ण—३१७।
गोकामुख—६५३।
गोकार्मुक—४५।
गोक्ष—४५।
गोदावरी—१४८, ६१८, ७६३।
गोधामुख—७११।
गोमती—१४९, ६१८।
गोलोक—४, ८, ९, २९२, ३०६, ३२३, ३२७, ३२९, ३४४, ४१९, ४२०, ५४८, ५५१, ५५२, ५६७, ६६८, ७०५, ७५७।
गोविन्द—१४, १५, ४१, ४९, ११३, १२८, २५९, २८०, २८२, २९२, ३०६, ७१५, ७७८, ७७९।
गौतम—४३, ५१, १७९, २००, २०१, २९२, ३५२, ५१८, ५२३, ५६१, ६५३, ७२५, ७३५, ७४१, ८२३, ८५९।
गौरी—१६५, ४८६, ५६५, ५६७, ५९०, ६८३, ७७१।

घ

घंटेश्वर—४५।
घृताची—५२, ५४, ५५, ५६, ५७, ६०४, ७१८।

च

चंचल—३१७।
चंडनायिका—६२०।
चंडवती—६२०।
चंडा—६२०।
चंडिका—६१७, ६२१, ८१५।
चंडी—६१९।
चंडोग्रा—६२०।
चंद्र—५२, १२३, १४४, १५७, १८२, १८५, २२६, २३४, २४०, ३०३, ३५९, ३९३, ४२४, ४९१, ५३७, ५४२, ५४९, ५५१, ५७०, ५७६, ५७७, ५७८, ५८४, ६१२, ६२०, ६९८, ७०८, ७०९, ७१८, ७७७, ७९०, ८४७, ८५३।
चंद्रचूड—११५।
चंद्रचूडभागा—६१८, ७६३।
चंद्रचूडभैरव—६२०।
चंद्रभानु—७८२।
चंद्रमा—५, ३१, ४२, ४३, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५४, ५५, ७७, ८१, १०५, ११६, १२७, १४०, १६०, १६१, १७२, १७९, १८८, १८९, १९९, २२७, २३२, २४५, २४८, २५३, २९२, २९७, ३०५, ३१२, ३१७, ३५२, ३५६, ३६३, ३६९, ४१४, ४२६, ४५४, ४८४, ५०७, ५१५, ५२६, ५२९, ५५२, ५५७, ५५८, ५६९, ५७०, ५७२, ५७३, ५७५, ५७९, ५८१, ५८२, ५८३, ५९०, ५९२, ५९५, ५९९, ६०२, ६०३, ६०४, ६१५, ६१८, ६३५, ६३८, ६४०, ६५१, ६६६, ७१२, ७२०, ७४०, ७७४, ७८१, ८३८, ८५९, ८६१।
चंद्ररेखा—६१८।
चंद्रशेखर—२६२, २७०, २९६, ३०४, ३६८, ४३९, ८०९।
चंद्रसावर्णि—५४१।
चंद्रावली—५५५।
चंपा—६१८।
चंपावती—५५५।
चक्रपाणि—६४६।
चतुरानन—४२।
चतुर्भुज—२९२।
चाक्षुष—५४१।
चामुण्डा—६२०, ८१५।
चित्रगुप्त—४३८।
चित्ररथ—७३, ७८, ८२, ८८, १००, ६४०।
चित्रलेखा—१७९।
चित्रा—४६, ६०४, ६०५।
चेलगंगा—६१८।
चैत्र—५६९, ६०५।
च्यवन—५०, ९३, ५१९, ६५३, ८३२।

छ

छाया—२९४, ८५९।
छायावती—२८९।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ज

जंबू—३५।
जगद्गौरी—४८६, ४८७।
जनक—९३, ९४, २७४।
जनमेजय—४९७।
जनार्दन—७९, ८२, ९३, ९९, १०६, ६८२।
जनोलोक—३५।
जमदग्नि—५१९, ५६१, ६५३, ७४४, ७५१, ७५४, ७५५, ७५७, ७६०, ७६४, ७६५, ७७३, ७९२, ८०७, ८३२, ८४८।
जयंत—३०३, ३१७, ६५१।
जय—२७५।
जया—३७।
जरत्कारु—४६, १७४, २००, ४८६, ४८७, ४९०, ४९३, ४९५, ४९९, ५१८, ५२५, ६५३।
जरत्कारुप्रिया—४८७।
जरा—९५, १७८।
जांववती—१७९।
जाजलि—९३, ९४, ५१८।
जातिस्मर—४३।
जानकी—२७५, २७६, ५६१।
जाबाल—९३, ९४।
जाबालि—२०१, ६५३।
जामदग्न्य—७६२, ७७२, ७९५, ८१७।
जैगीषव्य—२०१, २८४, ५१९, ५२९, ६५३, ८०८।
ज्ञान—४३, १७८।
ज्येष्ठा—४६।
ज्वर—१७८।

त

तंद्रा—१७९, २८९।
तक्षक—४५, ४९७।
तपन—४१५।
तपोलोक—३५।
तलातल—३६।
ताम्रचूडभैरव—६२०।
ताम्रलोचन—३०३।
तारकासुर—६७३, ७१२।
तारा—१७९, २८९, २९२, ५६९, ५७०, ५७२, ५७८, ५७९, ५८२, ५९२, ५९४, ५९५, ५९९, ६०२, ६०३, ६०४, ७१८।
तिलोत्तमा—६१८।
तुलसी—४, १४९, १७४, १९६, २११, २१३, २१८, २१९, २६३, २६४, २६७, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८६, २८९, २९०, २९१, २९३, २९४, ३०४, ३०७, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२९, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ५१२, ५१४, ५३७, ५४९, ५५७, ५५८, ५६१, ७१७, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५।
तुष्टि—४३, १७७, २८९।
तेज—१७८।
तैत्तिरि—५१८।
त्रिपर्णाशा—६१८।
त्रिपुर—३१४, ५६८, ६०१, ८६०।
त्रिपुरारि—५६८, ६१६, ६२९।
त्रिपुरासुर—४८२, ६२६, ६२९, ७७६, ८१४, ८२३।
त्रिलोचन—३१४।
त्रिहायणी—२७६।
त्वष्टा—५३३।

द

दंभ—३१०, ३१७, ३१८।
दंष्ट्रा—३१८।
दक्ष—३९, ४३, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, १२९, १७९, २०१, २६७, ३१०, ३६८, ४२३, ४४४, ५१९, ५६१, ५८६, ५९३, ६१२, ६३३, ६५३, ७८०।
दक्षप्रजापति—३६८।
दक्षसावर्णि—४५३, ५४१।
दक्षा—१४८, ६७३।
दक्षिणा—१७६, १९६, २८९, २९२, ३५२, ४२३, ४५४, ४५८, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४७०, ४७२, ४७३, ४७४।
दक्षिणाग्नि—४६१।
दत्त—८२८।
दत्तात्रेय—७४४, ७५०, ७५६, ७५७, ७७३, ८०२, ८२६, ८२७, ८३१।
दधिवामन—३२९।
दधीचि—६४१, ७४७।
दनू—४४, ४६, १७९, ३१०।
दमयन्ती—१७९, २८९, २९२, ५६१।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दया—१७७।
दर्प—४३।
दामोदर—३२९।
दाहिका—१७८।
दिक्पाल—७६, ४१५, ४७३, ५६१।
दिगम्बर—११५।
दिति—४३, ४५, १४९, १७९, २८९, २९२, ४९६, ५५६, ७१८।
दिन—१७८।
दिनकर—७२६।
दिलीप—२३८।
दिवाकर—३५२।
दिवोदास—९३।
दीप्तिमान्—३१७।
दीर्घद्रंष्ट्र—३०३।
दुर्गम—३०३।
दुर्गा—४, १९, १४९, १६७, १६८, १६९, १७६, १८०, १८७, १९५, १९६, २२७, २४९, २८८, ३६५, ३६९, ४१७, ४२०, ४३३, ४४८, ४८३, ४८३, ५०६, ५१४, ५४३, ५५१, ५५३, ५५६, ५६१, ५६२, ५६५, ५६६, ५६९, ५७१, ६०८, ६०९, ६१०, ६१५, ६१७, ६१८, ६१९, ६२१, ६२४, ६२६, ६२८, ६४२, ६४४, ६४७, ६४९, ६६५, ६६९, ६७४, ६७५, ६७६, ६८१, ६८२, ६८३, ६९०, ६९२, ६९५, ६९७, ७०५, ७१७, ७७३, ७७४, ७८६, ७९१, ८१८, ८१९, ८२३, ८२४, ८३०, ८३१, ८४२, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८६०, ८६२।
दुर्जय—४५, ३०३।
दुर्धर्ष—४५।
दुर्मुख—४५।
दुर्योधन—५६२, ५६४।
दुर्वासा—११४, ११५, ११६, ४२५, ४२६, ४३०, ४३८, ४३९, ४४७, ४५६, ४५७, ५१८, ५२२, ५५९, ५६१, ५८६, ५९३, ६१२, ६३०, ६५३, ७३२, ७३३, ७३५, ७४१, ७४५, ८०६, ८०७, ८०८, ८१३, ८१४, ८१९।
देवकी—१७९, ५१४।
देवल—२०१, ५१९, ५२९, ६५३, ८०८।
देवसावर्णि—२६७, ५४१।
देवसेना—३७, १७५, २९२, ३५२, ४७७, ४७९, ४८०।
देवहूति—४३, १४९, १७९, २८९, २९२, ३५२, ५६२, ६५०, ७१८, ८५९।
द्युमत्सेन—३४६।
द्रुमिण—६०५।
द्रुमिल—११९, १२०, १२१।
द्रोण—५१४।
द्रौपदी—१७९, २७६, २७७।

ध

धनंजय —४५।
धनाध्यक्ष—८२१।
धनिष्ठा—४६।
धनुर्धर—३१७।
धनेश्वर—५१।
धन्वन्तरि—९३, ४४९, ४८८, ४९७।
धरणी—२३६।
धरा—२३६, ५१४।
धरित्री—२३६।
धर्म—७, १५, १६, २६, २९, ३४, ४३, ४९, ५४, ७६, ७७, ७८, ७९, ८१, ८४, ९१, १०३, १०५, १०७, ११२, ११३, १५७, १७८, १९७, २५९, २८९, २९२, ३०३, ३१०, ३११, ३१७, ३५२, ३६८, ४१३, ४१४, ४४५, ४६०, ५०६, ५१५, ५४९, ५५७, ५७२, ५८३, ५९२, ५९३, ५९५, ५९७, ५९९, ६०४, ६१२, ६२९, ६६५, ६७०, ६८५, ६८६, ६८९, ७०८, ७१८, ७१९, ७२१।
धर्मध्वज—२७१, २७२, २७७, २७८, २८६, ३७१, ३९८।
धर्मराज—४२०, ४५६।
धर्मसावर्णि—२६७, ५४१।
धार्मिक—४३।
धूम्र—३१७।
धृतपुष्ट—३१७।
धृतराष्ट्र—४५।
धृति—४३, १७७।
ध्रुव—४३, १४०, ३६८, ४२३, ६०६, ६५१।
ध्वज—३१७।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ज

जंबू—३५।
जगद्गौरी—४८६, ४८७।
जनक—९३, ९४, २७४।
जनमेजय—४९७।
जनार्दन—७९, ८२, ९३, ९९, १०६, ६८२।
जनोलोक—३५।
जमदग्नि—५१९, ५६१, ६५३, ७४४, ७५१, ७५४, ७५५, ७५७, ७६०, ७६४, ७६५, ७७३, ७९२, ८०७, ८३२, ८४८।
जयंत—३०३, ३१७, ६५१।
जय—२७५।
जया—३७।
जरत्कारु—४६, १७४, २००, ४८६, ४८७, ४९०, ४९३, ४९५, ४९९, ५१८, ५२५, ६५३।
जरत्कारुप्रिया—४८७।
जरा—९५, १७८।
जांबवती—१७९।
जाजलि—९३, ९४, ५१८।
जातिस्मर—४३।
जानकी—२७५, २७६, ५६१।
जाबाल—९३, ९४।
जाबालि—२०१, ६५३।
जामदग्न्य—७६२, ७७२, ७९५, ८१७।
जैगीषव्य—२०१, २८४, ५१९, ५२९, ६५३, ८०८।
ज्ञान—४३, १७८।
ज्येष्ठा—४६।
ज्वर—१७८।

त

तंद्रा—१७९, २८९।
तक्षक—४५, ४९७।
तपन—४१५।
तपोलोक—३५।
तलातल—३६।
ताम्रचूडभैरव—६२०।
ताम्रलोचन—३०३।
तारकासुर—६७३, ७१२।
तारा—१७९, २८९, २९२, ५६९, ५७०, ५७२, ५७८, ५७९, ५८२, ५९२, ५९४, ५९५, ५९९, ६०२, ६०३, ६०४, ७१८।
तिलोत्तमा—६१८।
तुलसी—४, १४९, १७४, १९६, २११, २१३, २१८, २१९, २६३, २६४, २६७, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८६, २८९, २९०, २९१, २९३, २९४, ३०४, ३०७, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२९, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ५१२, ५१४, ५३७, ५४९, ५५७, ५५८, ५६१, ७१७, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५।
तुष्टि—४३, १७७, २८९।
तेज—१७८।
तैत्तिरि—५१८।
त्रिपर्णाशा—६१८।
त्रिपुर—३१४, ५६८, ६०१, ८६०।
त्रिपुरारि—५६८, ६१६, ६२९।
त्रिपुरासुर—४८२, ६२६, ६२९, ७७६, ८१४, ८२३।
त्रिलोचन—३१४।
त्रिहायणी—२७६।
त्वष्टा—५३३।

द

दंभ—३१०, ३१७, ३१८।
दंष्ट्रा—३१८।
दक्ष—३९, ४३, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, १२९, १७९, २०१, २६७, ३१०, ३६८, ४२३, ४४४, ५१९, ५६१, ५८६, ५९३, ६१२, ६३३, ६५३, ७८०।
दक्षप्रजापति—३६८।
दक्षसावर्णि—४५३, ५४१।
दक्षा—१४८, ६७३।
दक्षिणा—१७६, १९६, २८९, २९२, ३५२, ४२३, ४५४, ४५८, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४७०, ४७२, ४७३, ४७४।
दक्षिणाग्नि—४६१।
दत्त—८२८।
दत्तात्रेय—७४४, ७५०, ७५६, ७५७, ७७३, ८०२, ८२६, ८२७, ८३१।
दधिवामन—३२९।
दधीचि—६४१, ७४७।
दनू—४४, ४६, १७९, ३१०।
दमयन्ती—१७९, २८९, २९२, ५६१।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दया—१७७।
दर्प—४३।
दामोदर—३२९।
दाहिका—१७८।
दिक्पाल—७६, ४१५, ४७३, ५६१।
दिगम्बर—११५।
दिति—४३, ४५, १४९, १७९, २८९, २९२, ४९६, ५५६, ७१८।
दिन—१७८।
दिनकर—७२६।
दिलीप—२३८।
दिवाकर—३५२।
दिवोदास—९३।
दीप्तिमान्—३१७।
दीर्घद्रंष्ट्र—३०३।
दुर्गम—३०३।
दुर्गा—४, १९, १४९, १६७, १६८, १६९, १७६, १८०, १८७, १९५, १९६, २२७, २४९, २८८, ३६५, ३६९, ४१७, ४२०, ४३३, ४४८, ४८३, ४८३, ५०६, ५१४, ५४३, ५५१, ५५३, ५५६, ५६१, ५६२, ५६५, ५६६, ५६९, ५७१, ६०८, ६०९, ६१०, ६१५, ६१७, ६१८, ६१९, ६२१, ६२४, ६२६, ६२८, ६४२, ६४४, ६४७, ६४९, ६६५, ६६९, ६७४, ६७५, ६७६, ६८१, ६८२, ६८३, ६९०, ६९२, ६९५, ६९७, ७०५, ७१७, ७७३, ७७४, ७८६, ७९१, ८१८, ८१९, ८२३, ८२४, ८३०, ८३१, ८४२, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८६०, ८६२।
दुर्जय—४५, ३०३।
दुर्धर्ष—४५।
दुर्मुख—४५।
दुर्योधन—५६२, ५६४।
दुर्वासा—११४, ११५, ११६, ४२५, ४२६, ४३०, ४३८, ४३९, ४४७, ४५६, ४५७, ५१८, ५२२, ५५९, ५६१, ५८६, ५९३, ६१२, ६३०, ६५३, ७३२, ७३३, ७३५, ७४१, ७४५, ८०६, ८०७, ८०८, ८१३, ८१४, ८१९।
देवकी—१७९, ५१४।
देवल—२०१, ५१९, ५२९, ६५३, ८०८।
देवसावर्णि—२६७, ५४१।
देवसेना—३७, १७५, २९२, ३५२, ४७७, ४७९, ४८०।
देवहूति—४३, १४९, १७९, २८९, २९२, ३५२, ५६२, ६५०, ७१८, ८५९।
द्युमत्सेन—३४६।
द्रुमिण—६०५।
द्रुमिल—११९, १२०, १२१।
द्रोण—५१४।
द्रौपदी—१७९, २७६, २७७।

ध

धनंजय —४५।
धनाध्यक्ष—८२१।
धनिष्ठा—४६।
धनुर्धर—३१७।
धनेश्वर—५१।
धन्वन्तरि—९३, ४४९, ४८८, ४९७।
धरणी—२३६।
धरा—२३६, ५१४।
धरित्री—२३६।
धर्म—७, १५, १६, २६, २९, ३४, ४३, ४९, ५४, ७६, ७७, ७८, ७९, ८१, ८४, ९१, १०३, १०५, १०७, ११२, ११३, १५७, १७८, १९७, २५९, २८९, २९२, ३०३, ३१०, ३११, ३१७, ३५२, ३६८, ४१३, ४१४, ४४५, ४६०, ५०६, ५१५, ५४९, ५५७, ५७२, ५८३, ५९२, ५९३, ५९५, ५९७, ५९९, ६०४, ६१२, ६२९, ६६५, ६७०, ६८५, ६८६, ६८९, ७०८, ७१८, ७१९, ७२१।
धर्मध्वज—२७१, २७२, २७७, २७८, २८६, ३७१, ३९८।
धर्मराज—४२०, ४५६।
धर्मसावर्णि—२६७, ५४१।
धार्मिक—४३।
धूम्र—३१७।
धृतपुष्ट—३१७।
धृतराष्ट्र—४५।
धृति—४३, १७७।
ध्रुव—४३, १४०, ३६८, ४२३, ६०६, ६५१।
ध्वज—३१७।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ज

जंबू—३५।
जगद्गौरी—४८६, ४८७।
जनक—९३, ९४, २७४।
जनमेजय—४९७।
जनार्दन—७९, ८२, ९३, ९९, १०६, ६८२।
जनोलोक—३५।
जमदग्नि—५१९, ५६१, ६५३, ७४४, ७५१, ७५४, ७५५, ७५७, ७६०, ७६४, ७६५, ७७३, ७९२, ८०७, ८३२, ८४८।
जयंत—३०३, ३१७, ६५१।
जय—२७५।
जया—३७।
जरत्कारु—४६, १७४, २००, ४८६, ४८७, ४९०, ४९३, ४९५, ४९९, ५१८, ५२५, ६५३।
जरत्कारुप्रिया—४८७।
जरा—९५, १७८।
जांववती—१७९।
जाजलि—९३, ९४, ५१८।
जातिस्मर—४३।
जानकी—२७५, २७६, ५६१।
जाबाल—९३, ९४।
जाबालि—२०१, ६५३।
जामदग्न्य—७६२, ७७२, ७९५, ८१७।
जैगीषव्य—२०१, २८४, ५१९, ५२९, ६५३, ८०८।
ज्ञान—४३, १७८।
ज्येष्ठा—४६।
ज्वर—१७८।

त

तंद्रा—१७९, २८९।
तक्षक—४५, ४९७।
तपन—४१५।
तपोलोक—३५।
तलातल—३६।
ताम्रचूडभैरव—६२०।
ताम्रलोचन—३०३।
तारकासुर—६७३, ७१२।
तारा—१७९, २८९, २९२, ५६९, ५७०, ५७२, ५७८, ५७९, ५८२, ५९२, ५९४, ५९५, ५९९, ६०२, ६०३, ६०४, ७१८।
तिलोत्तमा—६१८।
तुलसी—४, १४९, १७४, १९६, २११, २१३, २१८, २१९, २६३, २६४, २६७, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८६, २८९, २९०, २९१, २९३, २९४, ३०४, ३०७, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२९, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ५१२, ५१४, ५३७, ५४९, ५५७, ५५८, ५६१, ७१७, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५।
तुष्टि—४३, १७७, २८९।
तेज—१७८।
तैत्तिरि—५१८।
त्रिपर्णाशा—६१८।
त्रिपुर—३१४, ५६८, ६०१, ८६०।
त्रिपुरारि—५६८, ६१६, ६२९।
त्रिपुरासुर—४८२, ६२६, ६२९, ७७६, ८१४, ८२३।
त्रिलोचन—३१४।
त्रिहायणी—२७६।
त्वष्टा—५३३।

द

दंभ—३१०, ३१७, ३१८।
दंष्ट्रा—३१८।
दक्ष—३९, ४३, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, १२९, १७९, २०१, २६७, ३१०, ३६८, ४२३, ४४४, ५१९, ५६१, ५८६, ५९३, ६१२, ६३३, ६५३, ७८०।
दक्षप्रजापति—३६८।
दक्षसावर्णि—४५३, ५४१।
दक्षा—१४८, ६७३।
दक्षिणा—१७६, १९६, २८९, २९२, ३५२, ४२३, ४५४, ४५८, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४७०, ४७२, ४७३, ४७४।
दक्षिणाग्नि—४६१।
दत्त—८२८।
दत्तात्रेय—७४४, ७५०, ७५६, ७५७, ७७३, ८०२, ८२६, ८२७, ८३१।
दधिवामन—३२९।
दधीचि—६४१, ७४७।
दनू—४४, ४६, १७९, ३१०।
दमयन्ती—१७९, २८९, २९२, ५६१।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दया—१७७।
दर्प—४३।
दामोदर—३२९।
दाहिका—१७८।
दिक्पाल—७६, ४१५, ४७३, ५६१।
दिगम्बर—११५।
दिति—४३, ४५, १४९, १७९, २८९, २९२, ४९६, ५५६, ७१८।
दिन—१७८।
दिनकर—७२६।
दिलीप—२३८।
दिवाकर—३५२।
दिवोदास—९३।
दीप्तिमान्—३१७।
दीर्घद्रंष्ट्र—३०३।
दुर्गम—३०३।
दुर्गा—४, १९, १४९, १६७, १६८, १६९, १७६, १८०, १८७, १९५, १९६, २२७, २४९, २८८, ३६५, ३६९, ४१७, ४२०, ४३३, ४४८, ४८३, ४८३, ५०६, ५१४, ५४३, ५५१, ५५३, ५५६, ५६१, ५६२, ५६५, ५६६, ५६९, ५७१, ६०८, ६०९, ६१०, ६१५, ६१७, ६१८, ६१९, ६२१, ६२४, ६२६, ६२८, ६४२, ६४४, ६४७, ६४९, ६६५, ६६९, ६७४, ६७५, ६७६, ६८१, ६८२, ६८३, ६९०, ६९२, ६९५, ६९७, ७०५, ७१७, ७७३, ७७४, ७८६, ७९१, ८१८, ८१९, ८२३, ८२४, ८३०, ८३१, ८४२, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८६०, ८६२।
दुर्जय—४५, ३०३।
दुर्धर्ष—४५।
दुर्मुख—४५।
दुर्योधन—५६२, ५६४।
दुर्वासा—११४, ११५, ११६, ४२५, ४२६, ४३०, ४३८, ४३९, ४४७, ४५६, ४५७, ५१८, ५२२, ५५९, ५६१, ५८६, ५९३, ६१२, ६३०, ६५३, ७३२, ७३३, ७३५, ७४१, ७४५, ८०६, ८०७, ८०८, ८१३, ८१४, ८१९।
देवकी—१७९, ५१४।
देवल—२०१, ५१९, ५२९, ६५३, ८०८।
देवसावर्णि—२६७, ५४१।
देवसेना—३७, १७५, २९२, ३५२, ४७७, ४७९, ४८०।
देवहूति—४३, १४९, १७९, २८९, २९२, ३५२, ५६२, ६५०, ७१८, ८५९।
द्युमत्सेन—३४६।
द्रुमिण—६०५।
द्रुमिल—११९, १२०, १२१।
द्रोण—५१४।
द्रौपदी—१७९, २७६, २७७।

ध

धनंजय —४५।
धनाध्यक्ष—८२१।
धनिष्ठा—४६।
धनुर्धर—३१७।
धनेश्वर—५१।
धन्वन्तरि—९३, ४४९, ४८८, ४९७।
धरणी—२३६।
धरा—२३६, ५१४।
धरित्री—२३६।
धर्म—७, १५, १६, २६, २९, ३४, ४३, ४९, ५४, ७६, ७७, ७८, ७९, ८१, ८४, ९१, १०३, १०५, १०७, ११२, ११३, १५७, १७८, १९७, २५९, २८९, २९२, ३०३, ३१०, ३११, ३१७, ३५२, ३६८, ४१३, ४१४, ४४५, ४६०, ५०६, ५१५, ५४९, ५५७, ५७२, ५८३, ५९२, ५९३, ५९५, ५९७, ५९९, ६०४, ६१२, ६२९, ६६५, ६७०, ६८५, ६८६, ६८९, ७०८, ७१८, ७१९, ७२१।
धर्मध्वज—२७१, २७२, २७७, २७८, २८६, ३७१, ३९८।
धर्मराज—४२०, ४५६।
धर्मसावर्णि—२६७, ५४१।
धार्मिक—४३।
धूम्र—३१७।
धृतपुष्ट—३१७।
धृतराष्ट्र—४५।
धृति—४३, १७७।
ध्रुव—४३, १४०, ३६८, ४२३, ६०६, ६५१।
ध्वज—३१७।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

ज

जंबू—३५।
जगद्गौरी—४८६, ४८७।
जनक—९३, ९४, २७४।
जनमेजय—४९७।
जनार्दन—७९, ८२, ९३, ९९, १०६, ६८२।
जनोलोक—३५।
जमदग्नि—५१९, ५६१, ६५३, ७४४, ७५१, ७५४, ७५५, ७५७, ७६०, ७६४, ७६५, ७७३, ७९२, ८०७, ८३२, ८४८।
जयंत—३०३, ३१७, ६५१।
जय—२७५।
जया—३७।
जरत्कारु—४६, १७४, २००, ४८६, ४८७, ४९०, ४९३, ४९५, ४९९, ५१८, ५२५, ६५३।
जरत्कारुप्रिया—४८७।
जरा—९५, १७८।
जांबवती—१७९।
जाजलि—९३, ९४, ५१८।
जातिस्मर—४३।
जानकी—२७५, २७६, ५६१।
जाबाल—९३, ९४।
जाबालि—२०१, ६५३।
जामदग्न्य—७६२, ७७२, ७९५, ८१७।
जैगीषव्य—२०१, २८४, ५१९, ५२९, ६५३, ८०८।
ज्ञान—४३, १७८।
ज्येष्ठा—४६।
ज्वर—१७८।

त

तंद्रा—१७९, २८९।
तक्षक—४५, ४९७।
तपन—४१५।
तपोलोक—३५।
तलातल—३६।
ताम्रचूडभैरव—६२०।
ताम्रलोचन—३०३।
तारकासुर—६७३, ७१२।
तारा—१७९, २८९, २९२, ५६९, ५७०, ५७२, ५७८, ५७९, ५८२, ५९२, ५९४, ५९५, ५९९, ६०२, ६०३, ६०४, ७१८।
तिलोत्तमा—६१८।
तुलसी—४, १४९, १७४, १९६, २११, २१३, २१८, २१९, २६३, २६४, २६७, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८६, २८९, २९०, २९१, २९३, २९४, ३०४, ३०७, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२९, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ५१२, ५१४, ५३७, ५४९, ५५७, ५५८, ५६१, ७१७, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५।
तुष्टि—४३, १७७, २८९।
तेज—१७८।
तैत्तिरि—५१८।
त्रिपर्णाशा—६१८।
त्रिपुर—३१४, ५६८, ६०१, ८६०।
त्रिपुरारि—५६८, ६१६, ६२९।
त्रिपुरासुर—४८२, ६२६, ६२९, ७७६, ८१४, ८२३।
त्रिलोचन—३१४।
त्रिहायणी—२७६।
त्वष्टा—५३३।

द

दंभ—३१०, ३१७, ३१८।
दंष्ट्रा—३१८।
दक्ष—३९, ४३, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, १२९, १७९, २०१, २६७, ३१०, ३६८, ४२३, ४४४, ५१९, ५६१, ५८६, ५९३, ६१२, ६३३, ६५३, ७८०।
दक्षप्रजापति—३६८।
दक्षसावर्णि—४५३, ५४१।
दक्षा—१४८, ६७३।
दक्षिणा—१७६, १९६, २८९, २९२, ३५२, ४२३, ४५४, ४५८, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४७०, ४७२, ४७३, ४७४।
दक्षिणाग्नि—४६१।
दत्त—८२८।
दत्तात्रेय—७४४, ७५०, ७५६, ७५७, ७७३, ८०२, ८२६, ८२७, ८३१।
दधिवामन—३२९।
दधीचि—६४१, ७४७।
दनु—४४, ४६, १७९, ३१०।
दमयन्ती—१७९, २८९, २९२, ५६१।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

दया—१७७।
दर्प—४३।
दामोदर—३२९।
दाहिका—१७८।
दिक्पाल—७६, ४१५, ४७३, ५६१।
दिगम्बर—११५।
दिति—४३, ४५, १४९, १७९, २८९, २९२, ४९६, ५५६, ७१८।
दिन—१७८।
दिनकर—७२६।
दिलीप—२३८।
दिवाकर—३५२।
दिवोदास—९३।
दीप्तिमान्—३१७।
दीर्घद्रंष्ट्र—३०३।
दुर्गम—३०३।
दुर्गा—४, १९, १४९, १६७, १६८, १६९, १७६, १८०, १८७, १९५, १९६, २२७, २४९, २८८, ३६५, ३६९, ४१७, ४२०, ४३३, ४४८, ४८३, ४८३, ५०६, ५१४, ५४३, ५५१, ५५३, ५५६, ५६१, ५६२, ५६५, ५६६, ५६९, ५७१, ६०८, ६०९, ६१०, ६१५, ६१७, ६१८, ६१९, ६२१, ६२४, ६२६, ६२८, ६४२, ६४४, ६४७, ६४९, ६६५, ६६९, ६७४, ६७५, ६७६, ६८१, ६८२, ६८३, ६९०, ६९२, ६९५, ६९७, ७०५, ७१७, ७७३, ७७४, ७८६, ७९१, ८१८, ८१९, ८२३, ८२४, ८३०, ८३१, ८४२, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८६०, ८६२।
दुर्जय—४५, ३०३।
दुर्धर्ष—४५।
दुर्मुख—४५।
दुर्योधन—५६२, ५६४।
दुर्वासा—११४, ११५, ११६, ४२५, ४२६, ४३०, ४३८, ४३९, ४४७, ४५६, ४५७, ५१८, ५२२, ५५९, ५६१, ५८६, ५९३, ६१२, ६३०, ६५३, ७३२, ७३३, ७३५, ७४१, ७४५, ८०६, ८०७, ८०८, ८१३, ८१४, ८१९।
देवकी—१७९, ५१४।
देवल—२०१, ५१९, ५२९, ६५३, ८०८।
देवसावर्णि—२६७, ५४१।
देवसेना—३७, १७५, २९२, ३५२, ४७७, ४७९, ४८०।
देवहूति—४३, १४९, १७९, २८९, २९२, ३५२, ५६२, ६५०, ७१८, ८५९।
द्युमत्सेन—३४६।
द्रुमिण—६०५।
द्रुमिल—११९, १२०, १२१।
द्रोण—५१४।
द्रौपदी—१७९, २७६, २७७।

ध

धनंजय —४५।
धनाध्यक्ष—८२१।
धनिष्ठा—४६।
धनुर्धर—३१७।
धनेश्वर—५१।
धन्वन्तरि—९३, ४४९, ४८८, ४९७।
धरणी—२३६।
धरा—२३६, ५१४।
धरित्री—२३६।
धर्म—७, १५, १६, २६, २९, ३४, ४३, ४९, ५४, ७६, ७७, ७८, ७९, ८१, ८४, ९१, १०३, १०५, १०७, ११२, ११३, १५७, १७८, १९७, २५९, २८९, २९२, ३०३, ३१०, ३११, ३१७, ३५२, ३६८, ४१३, ४१४, ४४५, ४६०, ५०६, ५१५, ५४९, ५५७, ५७२, ५८३, ५९२, ५९३, ५९५, ५९७, ५९९, ६०४, ६१२, ६२९, ६६५, ६७०, ६८५, ६८६, ६८९, ७०८, ७१८, ७१९, ७२१।
धर्मध्वज—२७१, २७२, २७७, २७८, २८६, ३७१, ३९८।
धर्मराज—४२०, ४५६।
धर्मसावर्णि—२६७, ५४१।
धार्मिक—४३।
धूम्र—३१७।
धृतपुष्ट—३१७।
धृतराष्ट्र—४५।
धृति—४३, १७७।
ध्रुव—४३, १४०, ३६८, ४२३, ६०६, ६५१।
ध्वज—३१७।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

न

नंद—१०५, ५१३, ५१४, ५३७।
नंदनवन—२९५।
नंदि—६०६, ६०७।
नंदिकेश्वर—७११, ७१४।
नंदिनी—१४८, ३३५, ३३६।
नंदी—३०३, ३१७, ३२१, ३६८, ६३०, ८३६।
नंदीश्वर—३१०, ३१५, ३१८, ७११, ७७१।
नकुल—९३, ९४।
नग्नजित्—४६०।
नग्नजिती—४६०।
नर—४३, ५९७, ६१२।
नरनारायण—१३९, ५१८ ५४९, ५५६, ५६१, ५९३, ५९४, ६५३।
नरसिंह—३३०।
नर्मदा—१४८, ५४०, ६१८, ७६३, ७९२।
नल—२९२, ४२३, ५६१।
नलकूवर—३०३, ३१७, ६५१।
नलिनी—१४८।
नहुष—८२१।
नागमगिनी—४८७।
नागेश्वरी—४८६, ४८७।
नाग्नजिती—१७९।
नाडीजंघ—५४२, ६१२।
नारद—७, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ६८, ६९, ७२, १०१, ११९, १२४, १२८, १३१, १३२, १३३, १३५, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४३, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५५, १५६, १५७, १५९, १६२, १६३, १६४, १६६, १६८, १६९, १७२, १७५, १७७, १८१, १८२, १८४, १९०, १९२, १९३, १९४, १९५, १९८, २०८, २१५, २१८, २२७, २२८, २३०, २३२, २३४, २३७, २४४, २४५, २४६, २४८, २४९, २५२, २५३, २६४, २६७, २७०, २७२, २७७, २८४, २९१, ३०८, ३१३, ३१५, ३२१, ३२४, ३२६, ३३३, ३३४, ३३६, ३३७, ३३८, ३४१, ३७२, ३९८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२३, ४२४, ४२५, ४४०, ४४४, ४५०, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४६०, ४६१, ४६३, ४६४, ४६८, ४७२, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४८०, ४८४, ४८६, ४९१, ४९८, ५०१, ५०४, ५१८, ५२८, ५६४, ५६५, ५६९, ५७०, ५७३, ५८७, ५९०, ५९५, ५९६, ५९७, ६०१, ६०६, ६१०, ६१२, ६१३, ६१४, ६२१, ६२२, ६२३, ६२६, ६२९, ६३२, ६४०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६७३, ६८६, ६९५, ७००, ७०२, ७११, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२८, ७२९, ७३१, ७३४, ७३६, ७४३, ७४७, ७५३, ७५६, ७६०, ७६२, ७६४, ७७४, ७७५, ७९१, ८०७, ८१०, ८१३, ८१४, ८१९, ८२०, ८२३, ८२५, ८२६, ८३१, ८३४, ८३६, ८५७, ८६३, ८६४, ८६६।
नारसिंही—६२०।
नारायण—७, ९, १०, ११, १२, १३, २१, २२, २७, ४३, ४५, ४६, ४७, ४९, ७७, ८४, ८९, ९०, ११४, ११८, १४०, १५२, १६३, १६७, १६८, १७४, १८६, १८७, १८९, १९०, १९५, १९६, १९८, २००, २०७, २०८, २१४, २१६, २२८, २३०, २३२, २३४, २३७, २४४, २४५, २४६, २४८, २४९, २५२, २५३, २६४, २६७, २६८, २७०, २७२, २७७, २७८, २८१, २८३, ३००, ३०८, ३१५, ३२१, ३२२, ३२४, ३३३, ३३५, ३३८, ३४१, ३४५, ३४८, ३५२, ३७०, ३७२, ३९८, ४१७, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२८, ४३१, ४३५, ४४०, ४४४, ४४६, ४५०, ४५७, ४५८, ४६०, ४६२, ४६३, ४६४, ४६७, ४७२, ४७५, ४७६, ४८२, ४८६, ४८८, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५०१, ५०४, ५१६, ५२८, ५३३, ५३७, ५४३, ५४५, ५४९, ५५८, ५६४, ५६६, ५६९, ५७०, ५७९, ५८६, ५८७, ५९१, ५९६, ५९७, ६०६, ६१०, ६१२, ६१३, ६१४, ६२२, ६२६, ६२९, ६३३, ६३४, ६३६, ६४२, ६४९, ६५० ६५१, ६५२, ६५५, ६६६, ६६७, ६६८, ६७४, ६८१, ६८५, ६८९, ६९२, ६९८, ७०१, ७०२, ७०५, ७१०, ७१५, ७१९, ७२१, ७२२, ७२४, ७२९, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७४०, ७४४, ७५०, ७५२, ८५४, ७५६, ७६०, ७६२, ७६८, ७७६, ७८६, ७९१, ७९५, ७९८, ८०५, ८०६, ८०७, ८१०, ८११, ८१४, ८१६, ८१९ ८२०, ८२३, ८२४, ८२५, ८२७, ८३४, ८४२, ८४३, ८४४, ८५२, ८५४, ८५६, ८५९, ८६२, ८६३, ८६५।
नारायणी—१६६, १६९, १८२, १८७, २४९, ५६५, ५६६, ६१८, ६४५, ६६७।
नित्या—५६५।
निद्रा—१७८, १७९, १९६, २८९।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

निर्ऋति—४५।
निशुंभ—१७६, ६१६, ७७६।
नील—४२३।
नीलकंठ—११५।
नीललोहित—११६।
नैमिषारण्य—२।
नैर्ऋत—४५, ८५९।
न्यग्रोध—३५।

प

पंचशिख—३९, ६९, १३०, १३६, ५१९, ५९७, ६१२, ६५३, ७४१।
पद्म—४५।
पद्मनाथ—७७८।
पद्मा—२१८, ४१७, ४५२, ४५४, ५०३, ७१८, ७३७, ८२०, ८२३, ८३०, ८४२।
पद्माक्ष—८२३।
पद्मावती—१४८, २१४, २५२, ५५५, ६१८।
पद्मिनी—२७८।
पनसा—७६३।
पंपा—६१८।
परमात्मा—५७२।
परशुराम—५६१, ७५७, ७५८, ७६०, ७६४, ७६६, ७६८, ७७१, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७८८, ७८९, ७९७, ८०२, ८११, ८१२, ८१९, ८२६, ८३१, ८३२, ८३६, ८३७, ८३८, ८४०, ८५४, ८५७, ८६०, ८६२, ८६६।
पराशर—५१, २०१, ३३८, ३३९, ३४१, ५१८, ५२५, ५९३, ६१२, ६५०, ६५३।
परीक्षित—४९७।
पलाश—३१७।
पवन—२१, ६३६, ८०८।
पशुपति—१८१।
पाटला—७१८।
पाणिनि—२००, २०१, ५१८, ६५३, ७४१।
पारिभद्र—६१८, ६५३।
पार्वती—१, ३३, ६६, १७९, १९८, २०६, २४४, ६३७, ३४१, ४५०, ४९६, ५०५, ५०९, ५१६, ५१७, ५१९, ५२८, ५३२, ५५१, ५५८, ५५९, ५६०, ५६२, ५६५, ५६७, ६२३, ६३२, ६३४, ६३६, ६३८, ६३९, ६४२, ६४३, ६४९, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६६५, ६६६, ६६८, ६६९, ६७१, ६७३, ६७४, ६७६, ६७७, ६८१, ६८३, ६८४, ६८८, ६९०, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ७०३, ७०६, ७१०, ७१२, ७१३, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२१, ७७२, ७७३, ७८२, ८२४, ८३४, ८३७, ८३९, ८४६, ८४७, ८४८, ८५३, ८५४, ८६१, ८६२।
पिंगलाक्ष—३८, ३०३, ८३६।
पिंड—३१७।
पिठर—३१७।
पिनाकी—८०९।
पिपासा—२८९।
पिप्पलायन—८१५।
पुण्य—१७७।
पुनर्वसु—४६।
पुरन्दर—४३२, ४४२।
पुरुषोत्तम—४५।
पुलस्त्य—३८, ४३, ५१, १३०, ५१८, ५२०, ६५३, ७२६, ७४१, ८०८।
पुलह—३८, ५१, १३०, ५१८, ५२१, ६१२, ६५३, ७४१।
पुष्कर—३५, ६५३, ७६३।
पुष्कराक्ष—८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०।
पुष्टि—४३, १७७, २८९, २९२।
पुष्पदन्त—३००, ३०१, ३०२।
पुष्पभद्रा—२९५, ७६३।
पुष्पसारा—३३६।
पुष्या—४६।
पूर्वभाद्रपदा—४६।
पूर्वफाल्गुनी—४६।
पूर्वाषाढ़ा—४६।
पूषा—७२६।
पृथिवी—२३, १४८, २९२, ३५०, ३५२, ३६९, ६१८।
पृथु—२३२, २३६, ३६९, ८२१।
पृश्वी—४, २१, ४४, ७७, २३२, २३४, २३६, ७०८, ७८२।

पेचक—५४२।
पैल—९३, ९४, ५१८।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

न

नंद—१०५, ५१३, ५१४, ५३७।
नंदनवन—२९५।
नंदि—६०६, ६०७।
नंदिकेश्वर—७११, ७१४।
नंदिनी—१४८, ३३५, ३३६।
नंदी—३०३, ३१७, ३२१, ३६८, ६३०, ८३६।
नंदीश्वर—३१०, ३१५, ३१८, ७११, ७७१।
नकुल—९३, ९४।
नग्नजित्—४६०।
नग्नजिती—४६०।
नर—४३, ५९७, ६१२।
नरनारायण—१३९, ५१८ ५४९, ५५६, ५६१, ५९३, ५९४, ६५३।
नर्सिंह—३३०।
नर्मदा—१४८, ५४०, ६१८, ७६३, ७९२।
नल—२९२, ४२३, ५६१।
नलकूबर—३०३, ३१७, ६५१।
नलिनी—१४८।
नहुष—८२१।
नागमगिनी—४८७।
नागेश्वरी—४८६, ४८७।
नाग्नजिती—१७९।
नाडीजंघ—५४२, ६१२।
नारद—७, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ६८, ६९, ७२, १०१, ११९, १२४, १२८, १३१, १३२, १३३, १३५, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४३, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५५, १५६, १५७, १५९, १६२, १६३, १६४, १६६, १६८, १६९, १७२, १७५, १७७, १८१, १८२, १८४, १९०, १९२, १९३, १९४, १९५, १९८, २०८, २१५, २१८, २२७, २२८, २३०, २३२, २३४, २३७, २४४, २४५, २४६, २४८, २४९, २५२, २५३, २६४, २६७, २७०, २७२, २७७, २८४, २९१, ३०८, ३१३, ३१५, ३२१, ३२४, ३२६, ३३३, ३३४, ३३६, ३३७, ३३८, ३४१, ३७२, ३९८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२३, ४२४, ४२५, ४४०, ४४४, ४५०, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४६०, ४६१, ४६३, ४६४, ४६८, ४७२, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४८०, ४८४, ४८६, ४९१, ४९८, ५०१, ५०४, ५१८, ५२८, ५६४, ५६५, ५६९, ५७०, ५७३, ५८७, ५९०, ५९५, ५९६, ५९७, ६०१, ६०६, ६१०, ६१२, ६१३, ६१४, ६२१, ६२२, ६२३, ६२६, ६२९, ६३२, ६४०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६७३, ६८६, ६९५, ७००, ७०२, ७११, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२८, ७२९, ७३१, ७३४, ७३६, ७४३, ७४७, ७५३, ७५६, ७६०, ७६२, ७६४, ७७४, ७७५, ७९१, ८०७, ८१०, ८१३, ८१४, ८१९, ८२०, ८२३, ८२५, ८२६, ८३१, ८३४, ८३६, ८५७, ८६३, ८६४, ८६६।
नारसिंही—६२०।
नारायण—७, ९, १०, ११, १२, १३, २१, २२, २७, ४३, ४५, ४६, ४७, ४९, ७७, ८४, ८९, ९०, ११४, ११८, १४०, १५२, १६३, १६७, १६८, १७४, १८६, १८७, १८९, १९०, १९५, १९६, १९८, २००, २०७, २०८, २१४, २१६, २२८, २३०, २३२, २३४, २३७, २४४, २४५, २४६, २४८, २४९, २५२, २५३, २६४, २६७, २६८, २७०, २७२, २७७, २७८, २८१, २८३, ३००, ३०८, ३१५, ३२१, ३२२, ३२४, ३३३, ३३५, ३३८, ३४१, ३४५, ३४८, ३५२, ३७०, ३७२, ३९८, ४१७, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२८, ४३१, ४३५, ४४०, ४४४, ४४६, ४५०, ४५७, ४५८, ४६०, ४६२, ४६३, ४६४, ४६७, ४७२, ४७५, ४७६, ४८२, ४८६, ४८८, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५०१, ५०४, ५१६, ५२८, ५३३, ५३७, ५४३, ५४५, ५४९, ५५८, ५६४, ५६६, ५६९, ५७०, ५७९, ५८६, ५८७, ५९१, ५९६, ५९७, ६०६, ६१०, ६१२, ६१३, ६१४, ६२२, ६२६, ६२९, ६३३, ६३४, ६३६, ६४२, ६४९, ६५० ६५१, ६५२, ६५५, ६६६, ६६७, ६६८, ६७४, ६८१, ६८५, ६८९, ६९२, ६९८, ७०१, ७०२, ७०५, ७१०, ७१५, ७१९, ७२१, ७२२, ७२४, ७२९, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७४०, ७४४, ७५०, ७५२, ८५४, ७५६, ७६०, ७६२, ७६८, ७७६, ७८६, ७९१, ७९५, ७९८, ८०५, ८०६, ८०७, ८१०, ८११, ८१४, ८१६, ८१९ ८२०, ८२३, ८२४, ८२५, ८२७, ८३४, ८४२, ८४३, ८४४, ८५२, ८५४, ८५६, ८५९, ८६२, ८६३, ८६५।
नारायणी—१६६, १६९, १८२, १८७, २४९, ५६५, ५६६, ६१८, ६४५, ६६७।
नित्या—५६५।
निद्रा—१७८, १७९, १९६, २८९।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

निर्ऋति—४५।
निशुंभ—१७६, ६१६, ७७६।
नील—४२३।
नीलकंठ—११५।
नीललोहित—११६।
नैमिषारण्य—२।
नैर्ऋत—४५, ८५९।
न्यग्रोध—३५।

प

पंचशिख—३९, ६९, १३०, १३६, ५१९, ५९७, ६१२, ६५३, ७४१।
पद्म—४५।
पद्मनाथ—७७८।
पद्मा—२१८, ४१७, ४५२, ४५४, ५०३, ७१८, ७३७, ८२०, ८२३, ८३०, ८४२।
पद्माक्ष—८२३।
पद्मावती—१४८, २१४, २५२, ५५५, ६१८।
पद्मिनी—२७८।
पनसा—७६३।
पंपा—६१८।
परमात्मा—५७२।
परशुराम—५६१, ७५७, ७५८, ७६०, ७६४, ७६६, ७६८, ७७१, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७८८, ७८९, ७९७, ८०२, ८११, ८१२, ८१९, ८२६, ८३१, ८३२, ८३६, ८३७, ८३८, ८४०, ८५४, ८५७, ८६०, ८६२, ८६६।
पराशर—५१, २०१, ३३८, ३३९, ३४१, ५१८, ५२५, ५९३, ६१२, ६५०, ६५३।
परीक्षित—४९७।
पलाश—३१७।
पवन—२१, ६३६, ८०८।
पशुपति—१८१।
पाटला—७१८।
पाणिनि—२००, २०१, ५१८, ६५३, ७४१।
पारिभद्र—६१८, ६५३।
पार्वती—१, ३३, ६६, १७९, १९८, २०६, २४४, ६३७, ३४१, ४५०, ४९६, ५०५, ५०९, ५१६, ५१७, ५१९, ५२८, ५३२, ५५१, ५५८, ५५९, ५६०, ५६२, ५६५, ५६७, ६२३, ६३२, ६३४, ६३६, ६३८, ६३९, ६४२, ६४३, ६४९, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६६५, ६६६, ६६८, ६६९, ६७१, ६७३, ६७४, ६७६, ६७७, ६८१, ६८३, ६८४, ६८८, ६९०, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ७०३, ७०६, ७१०, ७१२, ७१३, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२१, ७७२, ७७३, ७८२, ८२४, ८३४, ८३७, ८३९, ८४६, ८४७, ८४८, ८५३, ८५४, ८६१, ८६२।
पिंगलाक्ष—३८, ३०३, ८३६।
पिंड—३१७।
पिठर—३१७।
पिनाकी—८०९।
पिपासा—२८९।
पिप्पलायन—८१५।
पुण्य—१७७।
पुनर्वसु—४६।
पुरन्दर—४३२, ४४२।
पुरुषोत्तम—४५।
पुलस्त्य—३८, ४३, ५१, १३०, ५१८, ५२०, ६५३, ७२६, ७४१, ८०८।
पुलह—३८, ५१, १३०, ५१८, ५२१, ६१२, ६५३, ७४१।
पुष्कर—३५, ६५३, ७६३।
पुष्कराक्ष—८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०।
पुष्टि—४३, १७७, २८९, २९२।
पुष्पदन्त—३००, ३०१, ३०२।
पुष्पभद्रा—२९५, ७६३।
पुष्पसारा—३३६।
पुष्या—४६।
पूर्वभाद्रपदा—४६।
पूर्वफाल्गुनी—४६।
पूर्वाषाढ़ा—४६।
पूषा—७२६।
पृथिवी—२३, १४८, २९२, ३५०, ३५२, ३६९, ६१८।
पृथु—२३२, २३६, ३६९, ८२१।
पृश्वी—४, २१, ४४, ७७, २३२, २३४, २३६, ७०८, ७८२।

पेचक—५४२।
पैल—९३, ९४, ५१८।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

प्रकृति—२, ४, १८, २२, २६, २९, ३२, ३३, ३८, ६५, ८३, ८५, ९१, १०१, १०७, १४४, १५६, १५७, १५८, १५९, १६६, १६८, १६९, १७३, १७४, १७६, १७९, १८०, १८२, १८६, १८७, १९३, १९५, २४९, २६२, ३०५, ३१४, ३६९, ४४५, ४५९, ४६०, ४७६, ४८०, ५३५, ५३७, ५४३, ५४४, ५४५, ५४९, ५५१, ५५८, ५६२, ५६५, ६१०, ६११, ६१३, ६२६, ६३१, ७१४, ७८३, ८३३, ८३४, ८४२, ८५६।

प्रचंडा—६२०।

प्रचेता—३९, ४३, ५१, १२९, १३६, ५१८, ५२१, ६५३, ७४१, ८१५।

प्रजापति—७६, ७७, ११५, २०१, ३६९, ५६२, ७२०, ७७७।

प्रतिष्ठा—१७७।

प्रभा—१७८, २५७, २८९, ६१८।

प्रभाकर—७२६।

प्रभावती—१७९।

प्रमोचा—४३।

प्रयाग—७६३।

प्रसूति—४३, १७९, ७१८।

प्रह्लाद—४५, ५९३, ६०१, ६०३, ६१२, ६४१।

प्रियव्रत—४३, ३६८, ४२४, ४५३, ५७६, ४७७, ४८०, ५६२, ६५०, ८२१।

प्रीति—१७९।

प्लक्ष—३५।

ब

बक—५४२।

बदरिकाश्रम—७६३।

बल—४५।

बलराम—१७९, ५६४।

बलि—४५, २००, ३१२, ३१३, ४२३, ५९३, ६१२, ६४१।

बलीमद्र—३०३।

बलोन्मत्त—३०३।

बाण—११५, १७९, ३०३, ८३६।

बाणासुर—११४, ११६, ८०७।

बालखिल्य—५०, ५१९, ५९३।

बालाग्नि—६५३।

बुद्धि —१७८।

बुध—९३, ३०३, ३१७, ५६९, ६०४।

बृहच्छ्रवा—६०५।

बृहद्बल—८१०।

बृहस्पति—५१, ७७, १७९, २००, २०१, २०६, २२७, २९२, ४२८, ४४१, ४४४, ४४५, ४५०, ५१८, ५२३, ५३३, ५७०, ५७१, ५७३, ५७४, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८९, ५९०, ५९३, ५९४, ५९५, ५९९, ६०४, ६१२, ६४०, ६५१, ६५३, ६६६, ७००, ७२५, ७२६, ७३४, ७३५, ७४०, ७८४, ८३७।

ब्रध्न—७२६।

ब्रह्म—१, ९, १०, १०९, १५८, १५९, १८२।

ब्रह्मसावर्णि—५४१।

ब्रह्मा—१, २, १३, १५, १८, २०, २१, २३, २६, २९, ३१, ३४, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४८, ५१, ५२, ५५, ५६, ६१, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७३, ७४, ७६, ७७, ७८, ८१, ८२, ८५, ८६, ८८, ९०, ९१, १००, १०१, १०३, १०५, १०६, १०७, ११२, ११३, ११४, ११८, १२०, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३१, १३२, १३३, १३५, १३६, १३८, १३९, १४४, १४७, १५३, १५७,, १६१, १६४, १६५, १६६, १६७, १७१, १७३, १७८, १७९, १८१, १८४, १८५, १८८, १८९, १९०, १९१, १९३, १९४, ,१९५, १९६, १९७, १९९, २००, २०१, २०५, २६०, २११, २१२, २१४, २१८, २२४, २२५, २२७, २२८, २२९, २३०, २३२, २३८, २३९, २४१, २४३, २४७, २४९, २५०, २५१, २५३, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६८, २६९, २७०, २७१, २७९, २८०, २८१, २८२, २८४, २८८, २८९, २९१, २९६, २९७, २९८, ३००, ३०५, ३०६, ३१०, ३११, ३१३, ३१४, ३१९, ३२२, ३२५, ३३२, ३३७, ३४७, ३५२, ३६२, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७१, ३९०, ३९१, ३९३, ४१२, ४१३, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४२३, ४२५, ४२८, ४३१, ४३२, ४३४, ४३५, ४३९, ४४३, ४४४, ४४६, ४४९, ४५०, ४५३, ४५४, ४५६, ४५८, ४५९, ४६०,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

४६१, ४६३, ४६५, ४६७, ४७०, ४७१, ४७३, ४७६, ४७८, ४८०, ४८३, ४८९, ४९२, ४९३, ४९८, ४९९, ५०३, ५०६, ५०९, ५१३, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५३१, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४९, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६६, ५६८, ५६९, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५८१, ५८३, ५८४, ५८७, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०९, ६१२, ६१४, ६२४, ६२५, ६२६, ६२८, ६२९, ६३३, ६३४, ६४०, ६४९, ६५०, ६५३, ६५५, ६५६, ६६५, ६६६, ६६७, ६७०, ६७२, ६७३, ६८०, ६८२, ६८५, ६८९, ६९०, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ७००, ७०१, ७०६, ७१२, ७१३, ७१५, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२७, ७२८, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७४८, ७५४, ७५६, ७६२, ७६४, ७६५, ७६६, ७६८, ७७६, ७८१, ७८२, ८०४, ८१३, ८२०, ८२३, ८२७, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३४, ८४१, ८५१, ८५६, ८५८, ८५९, ८६०।

ब्रह्माणी—६२०, ६२४, ६२७।

भ

भक्ति—१७९, १८१।
भगंदर—७११।
भगवती—५६५।
भगीरथ—२११, २१८, २३८, २४४, २४५, २४८।
भद्रकाली—३०३, ३१०, ३२१, ६००, ६२८, ६२९, ७७४, ८१३, ८१५, ८१६।
भद्रा—४८५, ५५५।
भरणी—४६।
भरद्वाज—२०१, ५१९, ५२६।
भयंकर—३८, ३१७।
भव—२९२।
भवानी—२९२, ३५२।
भानुमती—१७९।
भारतवर्ष—७।
भारती—५५८, ६९८।
भारद्वाज—५१, २००।
भार्गव—१७९।
भास्कर—९४, १८८, ३७१, ७२६, ७२७, ७२८, ७८२।
भास्कराक्ष—८३६।
भीषण—२८, ३८।
भीषणा—४३।
भुवर्लोक—३५।
भूर्लोक—३५।
भूषणा—४३।
भृगु—६, ३९, ५०, ७७, १२९, १३६, २००, ५१८, ५२०, ५६१, ५९३, ६१२, ६५१, ६५३, ७४१, ७४८, ७५७, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६४, ७६५, ७६९, ७७०, ७७२, ७७३, ७७७, ७८०, ७८७, ७९१, ७९२, ८०२, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१७, ८३२, ८३४, ८४४, ८४८, ८६१।
भैरव—२८, ३०३।
भोगवती—१४८, २४७।

म

मंगल—४४, ४५, १८१, २३२, ३०३, ३१७, ४२३, ४८२।
मंगलचंडिका—१९६, ४१९, ४८४, ४८५।
मंगलचंडी—१७५, २८९, ४७६, ४८२, ४८३।
मंगला—४८५।
मंडूकाक्ष—३१७।
मंदोदरी—१७९, २८९।
मघा—४६।
मणि३०३।
मति—३९, ४३, १३०, १३६।
मतिमान्—३८।
मधु—२३, ३५, २२८, ३१४, ६००।
मधुकैटभ—६०१, ६१६, ६२६।
मधुसूदन—३३०, ४४४, ५१४, ७१०, ७३६।
मनसा— ४, ४६, १७४, ४२०, ४७६, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९५, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५६२, ७१८।
मनु —४३, ५२, ७७, १३६, १७९, २५९, २९२, ३५२, ४२३, ४२४, ५१५, ५१८, ५३७, ५४०, ६०६, ६४९, ६५१, ७२६, ८५९।
मनोरमा—२९, ७९२, ७९५, ७९६, ७९८, ७९९, ८००, ८२८।
मन्मथ—३१७।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मय—३१७।
मरीचि—३९, ४३, १२९, १३६, २००, ३१०, ५१८, ५२१, ५३३, ५९७, ६१२, ६५३, ७४१।
मरुत्त—८२१।
मर्त्यलक्ष्मी—५०८।
मलय—३५।
महाकाल—३०३, ७११, ७७१, ८३६।
महाज्ञानयुता—४८७।
महातल—३६।
महात्मा—३८।
महादेव—१३, १५, ७०, ७९, १५७, १६६, १८९, २६१, २७०, २७१, ३१०, ३१४, ५०६, ५०९, ५१६, ५१९, ५३४, ५४३, ५६५, ५८९, ५९४, ६०१, ६३९, ६४३, ६४९, ६५५, ६७०, ६८७, ६९५, ७०६, ७८०, ७८२।
महान्—३८, ४३।
महापद्म—४५।
महाभैरव—२८, ६२०, ८३६।
महामारी—३१७।
महालक्ष्मी—२८, १४९, १७०, २२५, २६५, ४१९, ४२२, ४२४, ४२५, ४५१, ४५३, ४५४, ४७०, ५०८, ५१४, ५१६, ५४३, ५५५, ५५६, ५५८, ५६०, ५६१, ६७८, ७२९, ७३३, ७३७, ७४०, ७४१, ८२०, ८२२।
महाविराट्—१९०, १९२, १९४, ५४९, ५६०, ६१२, ६७०, ६९५, ८५८।
महाविष्णु—५३६, ५३७, ५४३, ५४४, ५५३, ५५८, ५६२।
महाषष्ठी—७२०।
महिषासुर—६१६, ७७६।
महेन्द्र—३००, ३१७, ४२८, ४३८, ४३९, ४५६, ४९७, ४९९, ५१५, ५६८, ५८२, ५८३, ५८४, ५८७, ६२९, ७२९, ७३१, ७३३, ७८४, ८२१।
महेश—१२७, १३०, १६६, ४७३, ६३८।
महेश्वर—२९, ३६, ११४, ११५, १३९, १४३, १४४, १५१, १९७, ५२८, ५३२, ५५१, ५५७, ५६० ६६७, ६६८, ६९५, ७०८, ७२२, ७२७, ७७१, ७७२, ७८१, ८२७, ८३०, ८३१, ८३२, ८५६।
मांधाता—८१५, ८२१।
माधव—७८, ७९, ११३, २८१, ३२३, ६४०, ७७८, ७७९।
माधवी—२७८।
मानसी—६५, १७९, १९६, ४६५।
मायावती—१७९।
मार्कण्डेय—२३, ५१८, ५२७, ५४२, ६१२, ६५३, ७४१।
मार्तण्ड—४२६, ७२६।
मालती—११२, १३७, ३३८।
मालावती—७४, ७५, ७६, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८७, ८८, ८९, ९०, ९२, ९९, १०६, १०७, १०९, १११, ११८, २७२।
मालिनी—१४८, ४७६।
माली—७२२, ७२३, ७२४।
माहेश्वरी—६२०, ६२७।
मित्रविन्दा—१७९।
मिथ्या—१७८।
मिहिर—७२६।
मुंडमालिनी—८१५।
मुकुन्द—७७८।
मुचुकुन्द—८२१।
मुक्ति—१७७।
मूर्ति—२९, ४३, १७८, २८९, २९२, ३५२, ५५७।
मूलप्रकृति—५०८, ६२४, ८५८।
मूला—४६।
मृकंडु—६५३।
मृगशिरा—४६।
मृड—८०९।
मृत्युंजय—५३, ४१३, ४३१, ७१३, ८०९।
मृत्यु—१७८, ३०५, ३१७, ४१५।
मेदिनी—२२।
मेधस्—५६९, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१०, ६१३।
मेधा—३७, ४५, १७८, २८९।
मेधावी—६१२।
मेनका—१२१, १७९, ६८७, ७१८।
मेना—३३, १८१, २८९, २९२, ५६२, ६३३, ६७३, ७१०, ७१८।
मेरु—३६।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

मैत्रावरुण—४३।
मैनाक—७१८।
मोह—१७७।
मोहिनी—७१८।

य

यज्ञ—३५२, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३।
यति—६९, ६५३।
यम—४४, ७८, ८१, ८९, ९२, १४२, १७७, १७९, ३०३, ३४९, ३५२, ३५३, ३५८, ३७०, ३७२, ३७४, ३८६, ३८९, ३९२, ३९८, ४०१, ४१२, ४१९, ४२४, ४९४, ५६१, ६१२, ६९६, ७०७, ७२०, ८५९।
यमराज—८६, ९३, ९४, २८७, ३०५, ३४६, ३४८, ४९४, ५३५।
यमुना—१४८, २८९, ६१८, ७६३।
यशोदा—१७९, ५१३, ५१४।
याज्ञवल्क्य—२००, २०१, २०३, २०४, २०६।
योजनगन्धा—१७९।

र

रंभा—५३, ४२५, ७१८, ७२९, ७३१, ७३३, ७३४, ७३५।
रक्तदन्तिका—८१५।
रक्तबीज—६२९, ७७६।
रक्ताक्ष—३१७, ८३६।
रघुनाथ—३२९।
रणराम—३३०।
रणश्लाघी—३०३।
रति—२०, २९, १४९, १७७, २९२, २९४, ३५२, ५५७, ५५९, ५६१, ७१७, ८५९।
रत्नपर्वत—७६३।
रत्नमाला—१३७, ७१८।
रत्नसार—३१७।
रमा—२७४, ४६७।
रवि—७२६।
रसातल—३६।
राजराजेश्वर—३३०।
राजलक्ष्मी—५०८।
राजसावर्णि—२६७।
राजसूय—५६४।
रात्रि—१७८, २८९।
राधा—२४, २७, १२७, १६७, १६८, १७३, १८७, १९५, १९७, २४६, २४७, २५०, २५१, २५३, २५८, २६०, २६१, २६५, २८०, २८२, २९८, २९९, ३०६, ३२३, ३५२, ३६५, ४१५, ४२०, ४६७, ४६८, ४७३, ५०३, ५०६, ५०८, ५१०, ५११, ५१३, ५१४, ५१५, ५४३, ५४५, ५४७, ५४८, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६१, ६००, ७८५, ८३०, ८४२, ८४५, ८५८।
राधिका—४, १४९, १७९, १८१, १८६, १९६, २२६, २४९, २५४, २५५, २५६, २६२, २६६, २८१, २८८, २९०, २९२, ३११, ३६९, ४१७, ४२२, ४६६, ४७०, ५०१, ५०२, ५०७, ५०९, ५१२, ५१६, ५३४, ५३८, ५४९, ५५१, ५६४।
राधिकेश्वर—११३।
राम—२७४, २७५, २७७, ३६५, ५६१, ६३०, ६४१, ७५७, ७५८, ७७६, ८०२, ८१०, ८१८, ८२५, ८२८, ८३१, ८३४, ८३५, ८४३, ८४४, ८४६, ८४९, ८५२, ८५६, ८६१, ८६३।
रायण—५०९, ५१२, ५१३।
रावण—५१, ११४, २७३, २७४, २७६, ५६१, ७७३, ७९५, ८२८।
रासेश—११३।
रासेश्वरी—५६२।
रास्ना—४३।
राहु—४५, ३१२।
रुक्मिणी—१७९।
रुचि—३८, ३९, ४३, ५१, १३०, १३६।
रुद्र—२८, ३८, ४३, ८८, १३०, १३१, १९३, १९४, २४२, ३०३, ३०५, ४१५, ५४४, ५४९, ५६१, ६०१, ७०७, ८०९।
रुद्रभैरव—६२०, ८३६।
रुद्रसावर्णि—५४१।
रुद्ररेणुक— ८४९।
रेणुका—१७९, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ८४८।
रेवती—४६, १७९।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रैवत—५४१, ७६३।

रोहिणी—४६, १७९, २८९, २९२, २९४, ३५२, ५५७ ७१८, ८५९।

रौद्री—६२०।

ल

लंबोदर—६९८, ८५४, ८५५।
लक्ष्मण—२७४, २७५, २७६, ६४१।
लक्ष्मणा—१७९।

लक्ष्मी—१, ४, ९, १७, ३८, ४५, ८०, ८४, १०९, १३७, १४७, १४९, १६२, १६७, १६८, १७८, १७९, १८१, १८६, १८७, १८८, १९५, १९७, २००, २०८, २०९, २११, २१२, २१३, २१४, २१६, २२७, २४२, २५२, २६३, २६४, २६६, २६८, २७०, २७२, २७६, २७७, २७८, २८८, २९२, २९७, ३२३, ३२४, ३२७, ३२९, ३३२, ३३३, ३३६, ३३८, ३४३, ३४६, ३५२, ४२१, ४२३, ४२६, ४२७, ४२८, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५६, ४५७, ४७२, ४७४, ४९९, ५०२, ५३७, ५४९, ५५५, ५५९, ५६१, ५८८, ६०९, ६२२, ६२४, ६४१, ६५३, ६५५, ६६६, ६६८, ६७१, ६७२, ६८७, ६९८, ७०२, ७१०, ७१७, ७२०, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७४३, ७७७, ७८२, ८२०, ८२२, ८२३, ८४२ ८५८, ८५९।

लक्ष्मीजनार्दन—३२९।
लक्ष्मीनृसिंह—३३०।
लज्जा—१७८।
ललिता—७१८।
लांगलि—५१९।
लोकप्रसाधिनी—१४८।
लोपामुद्रा—१४९, १७९, २८९, ५६२, ८५९।
लोमश—५१८, ५४२, ६१२, ६५३, ७४१, ८१५।

व

वक्रतुण्ड—६५३।
वज्रदन्त—७११।
वटुक—६२०।
वत्स—५१९, ६५३।
वनमाला—७१८।
वनिता—४६।
वराह—२९२, ७६३।
वराहावतार—३५२।

वरुण—५३, १४४, १८५, २९४, ३०३, ३१७, ३५२, ३५९, ४२४, ५४९, ५६१, ५९३, ६०९, ६१२, ६१८, ६२०, ६३५, ६९८, ७०७, ८५३, ८५९।

वरुणानी—१७९, २८९, ३५२, ८५९।

वसिष्ठ—३९, ५१, ६९, ७०, ७२, ७३, १११, ११२, ११४, ११५, ११६, १३०, १३६, १७९, २०१, २९२, ३३८, ३५२, ५१८, ५२२, ५३२, ५६१, ५९३, ५९७, ६१२, ६५३, ७४१, ८५९।

वसुंधरा—२२, ४१, १४८, १७६, १९६, २२८, २३६, २४१, २८९, ५५८, ५६२, ६८७, ६९८, ७१८।

वसु—३०३, ५९९।
वसुगण—३१७।
वसुदामा—७८२।
वसुदेव—५१४, ५६१।
वसुधा—२३१, २३६।
वह्नि—४६२।
वाणी—१८, २०२, ५५५, ५५८।
वात्स्य—५१।
वामदेव—५१९, ६५३, ८०८।
वामन—८२१।
वामनावतार—६५१।
वायवी—२१।

वायु—३४, ५३, १४४, १७७, १८५, २८९, ३०३, ३१७, ३५०, ४२४, ५३५, ५४९, ५७२, ५९३, ६१२, ६२०, ६३५, ६९८, ७०८, ७०९, ७१८, ७७६, ८५३।

वाराणसी—७६३।
वाराह—२३०।
वाराही—६२०, ८२४।
वाल्मीकि—२०१, २०५, ५१९, ५२९, ८३२।
वाष्कल—३०३।
वासव—३०३।
वासुकि—४५, ४४९, ५१५।
वासुदेव—२, १५, ३३०।
विंध्यावली—१७९।
विकंकन—३१८।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

विकंपन—३०३।
विकट—३०३।
विकटाक्ष—८३६।
विकटोदर—८३६।
विकर्तन—७२६।
विकृति—३०३।
विघ्ननायक—८५४।
विघ्नेश—६९८, ७०४।
विजय—२७५।
विजया—३७।
वितल—३६।
विद्या—५२।
विद्याधरी—१४८।
विधाता—१७८।
विधि—१३३।
विनता—४४, १७९।
विनायक—६९८, ७०३।
विपाशा—६१८।
विप्रचित्ति—३१०, ३१७, ३१८।
विभाकर—७२६।
विभाण्डक—२००, ५१८, ५२७, ६५३।
विभीषण—५१, २७७, ६१२।
विरजा—२५६, २९८, ५१०, ५११, ५४८, ५५५, ६१८, ७८५।
विराट्—९१, १५७, १९१, ४४५।
विराध—६०५।
विरूप—४५, ३०३।
विरूपाक्ष—८३६।
विरोचन—४५।
विवस्वान्—४२४।
विशाखा—४६।
विशालाक्ष—३०३, ६८९, ६९०, ७११, ८३६।
विश्वंभर—३१०।
विश्वंभरा—२३६।
विश्वकर्मा—३८, ४४, ५२, ५३, ५५, ५६, ५७, १४१, २९४, ३०३, ३१७, ४५१, ५४१, ५५३, ५९७, ७१६, ७६८, ८३५।
विश्वकाया—१४८।
विश्वज—३१०।
विश्वनाथ—३१०।
विश्वपावनी—३३५, ३३६।
विश्वपूजिता—३३५, ३३६।
विश्वबीज—३१०।
विश्वरूप—३१०, ५३३, ५३४।
विश्ववर—३१०।
विश्वश्रवा—५१।
विश्वसंहारक—३१०।
विश्वामित्र—५१९, ६५३।
विश्वेदेव—३१७।
विश्वेश—११५।
विषहरी—४८७।
विष्णु—२, ५, ६, ८, १५, १८, २३, ३६, ३८, ४५, ५०, ५१, ५७, ६५, ६७, ७४, ७५, ७६, ७८, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ९१, १००, १०१, १०३, १०६, १०७, १११, ११२, ११८, १२५, १२६, १२७, १२८, १३१, १३५, १३८, १४४, १४७, १४८, १५०, १५२, १५३, १५४, १५७, १६१, १६२, १६४, १६५, १६६, १६७, १६९, १७०, १७१, १७३, १७४, १८१, १८७, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९७, १९८, १९९, २०६, २०८, २०९, २१४ २१६, २१७, २१८, २१९, २२३, २२४, २२५, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३८, २३९, २४०, २४१, २४३, २४४, २४६, २४९, २५१, २५२, २५३, २५८, २५९, २६०, २६२, २६४, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २८०, २८१, २८८, २९२, २९६, २९८, ३०५, ३१३, ३१६, ३१९, ३२२, ३२४, ३२६, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३४, ३३५, ३३६, ३३८, ३४१, ३४७, ३४९, ३५२, ३५४, ३५५, ३५७, ३६०, ३६२, ३६३, ३६५ ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७२, ३८७, ३८८, ३९०, ३९५, ४१३, ४१५, ४१७, ४२०, ४२२, ४२३, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४३०, ४३१, ४३३, ४३६, ४४३, ४४४, ४४५, ४४८, ४४९, ४५० ४७३, ४७४, ४७६, ४७८, ४८३, ४८४, ४९२, ४९३, ४९४, ४९६, ४९८, ४९९, ५०८, ५०९, ५१८, ५२१, ५२४, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५४०, ५४१, ५४४, ५४६, ५४७, ५४९, ५५१, ५५३, ५५५ ५५६, ५५७, ५६१, ५६२, ५६४, ५६६, ५७५, ५७७, ५८३, ५८६, ५९० ५९१, ५९३,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

रैवत—५४१, ७६३।

रोहिणी—४६, १७९, २८९, २९२, २९४, ३५२, ५५७ ७१८, ८५९।

रौद्री—६२०।

ल

लंबोदर—६९८, ८५४, ८५५।
लक्ष्मण—२७४, २७५, २७६, ६४१।
लक्ष्मणा—१७९।

लक्ष्मी—१, ४, ९, १७, ३८, ४५, ८०, ८४, १०९, १३७, १४७, १४९, १६२, १६७, १६८, १७८, १७९, १८१, १८६, १८७, १८८, १९५, १९७, २००, २०८, २०९, २११, २१२, २१३, २१४, २१६, २२७, २४२, २५२, २६३, २६४, २६६, २६८, २७०, २७२, २७६, २७७, २७८, २८८, २९२, २९७, ३२३, ३२४, ३२७, ३२९, ३३२, ३३३, ३३६, ३३८, ३४३, ३४६, ३५२, ४२१, ४२३, ४२६, ४२७, ४२८, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५६, ४५७, ४७२, ४७४, ४९९, ५०२, ५३७, ५४९, ५५५, ५५९, ५६१, ५८८, ६०९, ६२२, ६२४, ६४१, ६५३, ६५५, ६६६, ६६८, ६७१, ६७२, ६८७, ६९८, ७०२, ७१०, ७१७, ७२०, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७४३, ७७७, ७८२, ८२०, ८२२, ८२३, ८४२ ८५८, ८५९।

लक्ष्मीजनार्दन—३२९।
लक्ष्मीनृसिंह—३३०।
लज्जा—१७८।
ललिता—७१८।
लांगलि—५१९।
लोकप्रसाधिनी—१४८।
लोपामुद्रा—१४९, १७९, २८९, ५६२, ८५९।
लोमश—५१८, ५४२, ६१२, ६५३, ७४१, ८१५।

व

वक्रतुण्ड—६५३।
वज्रदन्त—७११।
वटुक—६२०।
वत्स—५१९, ६५३।
वनमाला—७१८।
वनिता—४६।
वराह—२९२, ७६३।
वराहावतार—३५२।

वरुण—५३, १४४, १८५, २९४, ३०३, ३१७, ३५२, ३५९, ४२४, ५४९, ५६१, ५९३, ६०९, ६१२, ६१८, ६२०, ६३५, ६९८, ७०७, ८५३, ८५९।

वरुणानी—१७९, २८९, ३५२, ८५९।

वसिष्ठ—३९, ५१, ६९, ७०, ७२, ७३, १११, ११२, ११४, ११५, ११६, १३०, १३६, १७९, २०१, २९२, ३३८, ३५२, ५१८, ५२२, ५३२, ५६१, ५९३, ५९७, ६१२, ६५३, ७४१, ८५९।

वसुंधरा—२२, ४१, १४८, १७६, १९६, २२८, २३६, २४१, २८९, ५५८, ५६२, ६८७, ६९८, ७१८।

वसु—३०३, ५९९।
वसुगण—३१७।
वसुदामा—७८२।
वसुदेव—५१४, ५६१।
वसुधा—२३१, २३६।
वह्नि—४६२।
वाणी—१८, २०२, ५५५, ५५८।
वात्स्य—५१।
वामदेव—५१९, ६५३, ८०८।
वामन—८२१।
वामनावतार—६५१।
वायवी—२१।

वायु—३४, ५३, १४४, १७७, १८५, २८९, ३०३, ३१७, ३५०, ४२४, ५३५, ५४९, ५७२, ५९३, ६१२, ६२०, ६३५, ६९८, ७०८, ७०९, ७१८, ७७६, ८५३।

वाराणसी—७६३।
वाराह—२३०।
वाराही—६२०, ८२४।
वाल्मीकि—२०१, २०५, ५१९, ५२९, ८३२।
वाष्कल—३०३।
वासव—३०३।
वासुकि—४५, ४४९, ५१५।
वासुदेव—२, १५, ३३०।
विंध्यावली—१७९।
विकंकन—३१८।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

विकंपन—३०३।
विकट—३०३।
विकटाक्ष—८३६।
विकटोदर—८३६।
विकर्तन—७२६।
विकृति—३०३।
विघ्ननायक—८५४।
विघ्नेश—६९८, ७०४।
विजय—२७५।
विजया—३७।
वितल—३६।
विद्या—५२।
विद्याधरी—१४८।
विधाता—१७८।
विधि—१३३।
विनता—४४, १७९।
विनायक—६९८, ७०३।
विपाशा—६१८।
विप्रचित्ति—३१०, ३१७, ३१८।
विभाकर—७२६।
विभाण्डक—२००, ५१८, ५२७, ६५३।
विभीषण—५१, २७७, ६१२।
विरजा—२५६, २९८, ५१०, ५११, ५४८, ५५५, ६१८, ७८५।
विराट्—९१, १५७, १९१, ४४५।
विराध—६०५।
विरूप—४५, ३०३।
विरूपाक्ष—८३६।
विरोचन—४५।
विवस्वान्—४२४।
विशाखा—४६।
विशालाक्ष—३०३, ६८९, ६९०, ७११, ८३६।
विश्वंभर—३१०।
विश्वंभरा—२३६।
विश्वकर्मा—३८, ४४, ५२, ५३, ५५, ५६, ५७, १४१, २९४, ३०३, ३१७, ४५१, ५४१, ५५३, ५९७, ७१६, ७६८, ८३५।
विश्वकाया—१४८।
विश्वज—३१०।
विश्वनाथ—३१०।
विश्वपावनी—३३५, ३३६।
विश्वपूजिता—३३५, ३३६।
विश्वबीज—३१०।
विश्वरूप—३१०, ५३३, ५३४।
विश्ववर—३१०।
विश्वश्रवा—५१।
विश्वसंहारक—३१०।
विश्वामित्र—५१९, ६५३।
विश्वेदेव—३१७।
विश्वेश—११५।
विषहरी—४८७।
विष्णु—२, ५, ६, ८, १५, १८, २३, ३६, ३८, ४५, ५०, ५१, ५७, ६५, ६७, ७४, ७५, ७६, ७८, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ९१, १००, १०१, १०३, १०६, १०७, १११, ११२, ११८, १२५, १२६, १२७, १२८, १३१, १३५, १३८, १४४, १४७, १४८, १५०, १५२, १५३, १५४, १५७, १६१, १६२, १६४, १६५, १६६, १६७, १६९, १७०, १७१, १७३, १७४, १८१, १८७, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९७, १९८, १९९, २०६, २०८, २०९, २१४ २१६, २१७, २१८, २१९, २२३, २२४, २२५, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३८, २३९, २४०, २४१, २४३, २४४, २४६, २४९, २५१, २५२, २५३, २५८, २५९, २६०, २६२, २६४, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २८०, २८१, २८८, २९२, २९६, २९८, ३०५, ३१३, ३१६, ३१९, ३२२, ३२४, ३२६, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३४, ३३५, ३३६, ३३८, ३४१, ३४७, ३४९, ३५२, ३५४, ३५५, ३५७, ३६०, ३६२, ३६३, ३६५ ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७२, ३८७, ३८८, ३९०, ३९५, ४१३, ४१५, ४१७, ४२०, ४२२, ४२३, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४३०, ४३१, ४३३, ४३६, ४४३, ४४४, ४४५, ४४८, ४४९, ४५० ४७३, ४७४, ४७६, ४७८, ४८३, ४८४, ४९२, ४९३, ४९४, ४९६, ४९८, ४९९, ५०८, ५०९, ५१८, ५२१, ५२४, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५४०, ५४१, ५४४, ५४६, ५४७, ५४९, ५५१, ५५३, ५५५ ५५६, ५५७, ५६१, ५६२, ५६४, ५६६, ५७५, ५७७, ५८३, ५८६, ५९० ५९१, ५९३,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

५९४, ५९५, ६००, ६०१, ६०८, ६१२, ६१४, ६१८, ६२४, ६२५, ६२६, ६३०, ६३१, ६३९, ६५०, ६५३, ६५५, ६६८, ६७०, ६७१, ६७२, ६८२, ६८५, ६८६, ६८९, ६९०, ६९३, ६९४, ६९५, ६९८, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०५, ७०६, ७०८, ७१०, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१८, ७१९, ७२२, ७२४, ७२७ ७३३, ७३६, ७७९, ७८१, ७८२, ७८३, ७८६, ७९०, ८०२, ८१९, ८२१, ८२७, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८४१, ८४२, ८४८, ८४९, ८५४, ८५६, ८५८, ८६०।

विष्णुमाया—५६५, ५६६।
विष्णुसावर्णि २६७:

वीरभद्र—३०३, ६००, ७११, ७७१, ८३६, ८४६, ८४७।

वृंदा—३३५, ३३६, ५५५।

वृंदावन—१४, १६०, १७३, २१९, २५७, २८१, ३०६, ३२३, ३६९, ४६६, ५०९, ५१३, ५४५, ५४८, ५६७, ६२४, ६४०, ६४७ ७०५, ७६३, ७७६।

वृंदावनी—३३५, ३३६।
वृत्ति—२८९।
वृत्रासुर—६२६।
वृषध्वज—२६८, २७१, ४८३।
वृषपर्वा—३१७, ३१८।
वृषभवाहन—११५।
वृषभानु—१७३, १७९, ५०९, ५१२, ५१३, ५१४।
वेदवती—२७२, २७४, २७६, २७७, २८९।
वैकुंठ—४, ९, ३२७, ३२९, ३६६, ४२४, ६६८, ७३२।
वैदर्भी—२३७।
वैनतेय—७८४।
वैराग्य—१७९।
वैश्य—५६८।
वैष्णवी—१४९, ४५४, ४८७, ५६५, ६२०।

वोढु—३९, ६९, १३०, १३६, ५१८, ५९७, ६१२, ६५३, ७४१।

व्यास—७, ८, ५१, ११७, २०१, २०५, ६३२।
व्रणदाता—४५।

श

शंकर—१, ९, २६, २७, २९, ३४, ४३, ४५, ४७, ४८, ५०, ६५, ६६, ६९, ७२, १११, ११२, ११६, ११७, १३१, १४०, १४२, १६२, १६४, १६७, १६९, १७३, १७४, १८१, १९३, २०६, २३७, २४६, २५०, २५१, २५३, २६२, २६८, २६९, २७७, २९७, २९९, ३०२, ३०९, ३१०, ३१३, ३१५, ३१७, ३२०, ३२३, ३६४, ३६८, ३७८, ३९३, ४२३, ४३१, ४३३, ४४४, ४४५, ४४७, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८९, ४९६, ५०४, ५१२ ५३९, ५४६, ५५६, ५६४, ५८८, ५९३, ५९५, ६००, ६०९, ६२०, ६३४, ६४२, ६५४, ६७५, ६७६, ६८१, ६८३, ६८५, ६८९, ६९०, ६९५, ६९८, ७०८, ७१६, ७२१, ७२४, ७३३, ७६७, ७६९, ७७२, ७७४, ७७६, ७८२, ७८३, ७९५, ८०६, ८०९, ८११, ८१२, ८२३ ८३५, ८४९, ८५०, ८५७, ८५९, ८६१, ८६२।

शंकु—४५, ६५३।
शंकुकर्ण—७११।
शंख—४५, ६५३।

शंखचूड—२११, २८०, २८४, २८५, २८६, २८८, २९०, २९१, २९२, २९५, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०४, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२७, ३३२, ६००, ६०१, ६१८, ८६६।

शंवर—५११।

शंभु—१३, ७१, ७८, ११३, ११४, ११५, १७४, ५९९, ६१५, ६३३।

शक्ति—५१, ३५५, ५१९, ६१२, ६५०, ६६७।
शक्र—४३०, ७३६।
शची—४४, १७९, ५५६, ७३५।
शतभिषा—४६।
शतभुजा—३०३।
शतरूपा—३८, ४३, १४९, १७९, १८९, २९२, ३५२, ५१६, ५४०, ५५६, ५६२, ६४०, ६४९, ७१८, ७८३, ८५९।

शतह्रदा—६१८।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

शनि—४४, ३०३, ६९३, ६९६, ७०५।
शनैश्चर—३१७, ६८९, ६९०, ६९२, ६९७, ७०२।
शर्वाणी—५६५, ५६७।
शशिकला——८५९।
शांडिल्य—५१।
शांता—१४९।
शांति—४३, १७८, २५७, २५८, २८९।
शांतिदा—१४९।
शाक—३५।
शाकटायन——२००, २०१, ५१९, ६५३।
शाकल्य—५१९।
शातातप—२०१।
शालग्राम—४।
शिलालि—५१९।
शिव—२, १८, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३८, ४३, ४९, ५१, ६९, ७०, ७६, ८१, ८४, ८५, ९१, १०५, १०६, १०७, ११४, ११८, १२८, १४०, १४७, १५७, १६१, १६४, १६५, १६९, १८१, १९०, १९१, १९३, १९४, १९५, १९८, १९९, २००, २०६, २१२, २१४, २२५, २२९, २३७, २३८, २३९, २४१, २४४, २४९, २५०, २५१, २५९, २६८, २६९, २७०, २७२, २८८, २९६, २९९, ३००, ३०२, ३०३, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२६, ३४१, ३५२, ३५५, ३६४, ३६५, ३६७, ३६८, ३६९, ३८६, ३८७, ३९०, ४१३, ४१४, ४१५, ४१७, ४२८, ४३३, ४४५, ४४९, ४५०, ४५६, ४६०, ४८३, ४८६, ४८९, ४९२, ४९५, ४९६, ४९८, ४९९, ५०५, ५१८, ५३४, ५३५, ५३६, ५४०, ५४१, ५४३, ५४५, ५५७, ५५८, ५६४, ५७४, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५९०, ५९५, ५९९, ६०१, ६०२, ६०४, ६०८, ६११, ६१२, ६१४, ६१८, ६२४, ६२५, ६३०, ६३३. ६३६ ६३७, ६३९, ६५१, ६५२, ६५४, ६६७, ६६९, ६७१, ६७२, ६७४, ६७५, ६७६, ६८१, ६८२, ६८४, ६८६, ६८९, ६९०, ६९७, ७००, ७०६, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७५६, ७६७, ७७०, ७७३, ७७४, ७८२, ७८६, ७९०, ८०६, ८०७, ८११, ८१३, ८१४, ८१७, ८१८, ८२८, ८३०, ८३१, ८३३, ८३४, ८३६, ८३९, ८४१, ८४२, ८४३, ८४६, ८४७, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५९, ८६०, ८६६।
शिवदायिनी—५६६।
शिवा—५०८, ५४९, ५५०, ५६१, ५६५, ६१६, ६१९, ६४०, ६६८।
शिवामृत—१४८।
शुंभ—१०९, ३१३, ३१४, ६१६, ७७६।
शुक—५१।
शुकी—४३।
शुक्र—५०, २००, २०१, ५१८, ५२३, ५७३, ५७८, ५८३, ५९२, ५९३, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६०२, ६०३, ६१२, ६४०, ६५१, ८३२।
शुक्राचार्य—३१०, ५७६, ५८२।
शुचि—३८।
शूपकर्ण—६९८, ८५४, ८५५।
शृंगी—४९७, ५१८।
शेष—१५७, १६५, २०६, २२७, ३६८, ४४५, ४५६, ४६०, ५०६, ५५८, ५६०, ५६१, ५९२, ६१२, ६१८, ७७६।
शेषनाग—१।
शैवी—४८६, ४८७।
शैव्या—१७९, २३७।
शोभा—२५७, २८९।
शोभाकरण—३१७।
शौनक—२, ३, ६, ८, २२, २४, २६, ४२, ४३, ४४, ४५, ५१, ५२, ५५, ५६, ५८, ५९, ६४, ६५, ६८, ६९, ७४, ८३, ९२, १०३, १०६, ११०, १११, ११४, ११५, ११७, ११८, १२१, १२२, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३२, १३५, १३८, १४०, १४१, १४२, १६२, १६३, २०८, ६५२।
श्यामा—८१५।
श्रवणा—४६।
श्रद्धा—४३, १७९, २८९।
श्राद्धदेव—५४१।
श्री—३६९।
श्रीकृष्ण—२, ३, ७, ९, १०, ११, १२, १४, १५, १६, १८, १९, २०, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २९,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

३०, ३३, ३४, ३६, ४०, ४२, ५०, ५७, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ७०, ७४, ७६, ७८, ८५, ८६, ८९, १०३, १०५, १०९, ११२, ११३, ११९, १२३, १२४, १२८, १३१, १३३, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४१, १४२, १४३, १४८, १५०, १५१, १६०, १६२, १६३, १६५, १६६, १६७, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७६, १७९, १८१, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, २०१, २०५, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३८, २३९, २४३, २४४, २४५, २४६, २४९, २५०, २५१, २५३, २५४, २५५, २५६, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २९०, २९२, ३०६, ३०८, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३२३, ३४४, ३५०, ३५२, ३५३, ३५४, ३६०, ३६४, ३७१, ३७६, ३८६, ३८७, ३९८, ३९९, ४१२, ४१३, ४१४, ४१७, ४१८, ४२१, ४२२, ४२९, ४३१, ४३२, ४३८, ४३९, ४४०, ४४२, ४४५, ४४६, ४५९, ४६०, ४७३, ४८६, ४८९, ४९०, ४९२, ४९५, ५०१, ५०२, ५०४, ५०५, ५०९, ५१६, ५२४, ५३४, ५३५, ५३७, ५३८, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५५, ५५७, ५५९, ५६०, ५६२, ५६४, ५६७, ५७१, ५७७, ५८३, ५८५, ५८६, ५९०, ५९१, ५९२, ५९४, ५९७, ५९८, ६००, ६०१, ६०२, ६०८, ६०९, ६१२, ६१३, ६१४, ६१७, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२९, ६३१, ६४१, ६४४, ६४७, ६५०, ६५२, ६६६, ६७१, ६७४, ६८०, ६८२, ६९५, ७०४, ७०५, ७१३, ७१५, ७२१, ७२२, ७५७, ७६५, ७६७, ७७०, ७७६, ७७९, ७८०, ७८१, ७९७, ८१८, ८२३, ८२९, ८३१, ८३३, ८४०, ८४२, ८४३, ८४५, ८८६, ८५७, ८५९, ८६१।

श्रीदामा—७८२।
श्रीधर—३२९।
श्रीशैल—७६३।
श्वेतगंगा—६१८।

ष

षष्ठी—१७५, १९६, २८९, ४१९, ४७६, ४७९, ४८२।

स

संकर्ता—५१९।
संजय—११८।
संज्ञा—१४९, १७९, ३५२, ६५१, ७१८।
संतोष—४३।
संध्या—१७८, २८९, ७१८।
संपत्ति—१७७, २८९।
संवरण—४५।
संवर्त—२०१, ५१८, ५८३, ६५३।
संहार—२८, ३१७।
संहारभैरव—६२०, ८३६।
सगर—२३७, २३९।
सती—५५५, ५६५, ५६६, ६३३।
सत्य—१७७।
सत्यभामा—१७९।
सत्यलोक—३६।
सत्यवान्—१७९, ३४६, ३४७, ३५२, ३५३।
सत्यव्रत—७७।
सनंद—१३१, ४१३, ५१८, ५९७, ६५३।
सनंदन—३८, १३६, ५२४, ६०२, ६१२, ७४१।
सनक—३८, ६९, १३१, १३६, १९७, २४९, २७५, ४१३, ५१८, ५९७, ६०२, ६१२, ६५३, ७४१।
सनत्कुमार—३८, १२६, १३१, १३६, २०५, ३६८, ४१३, ५०६, ५१८, ५२०, ५४९, ५६१, ५८५, ६०२, ६१२, ६६९, ६७४, ७४१, ७७७, ८२०।
सनातन—३८, १३१, १३६, २७५, ४१३, ५१८, ५२४, ५९७, ६०२, ६१२, ६५३, ७४१।
सनातनी—५६२, ५६५, ५६७।
समाधि—५६९, ६०५, ६०७, ६१०, ६१३।
सरमा—४४, ४६।
सरयू—७६३।
सरस्वती—१, २, ४, १४, १६, २८, १०७, १०९, १४७, १४८, १४९, १६५, १६८, १७१, १८१, १८६, १९५, १९६, १९८, १९९, २००, २०१, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१३, २१४, २१७, २१८, २२७, २३७, २३९, २४२, २४३, २४९, २५२, २६३, २६४, २६६, २६८, २८८, ३३२, ३३३, ३३४, ३६६, ३६९, ४१३, ४१७, ४४६, ५१४, ५३७,

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

५४९, ५५६, ५६१, ६१८, ६२४, ६३२, ६४१, ६६६, ६७०, ६७१, ६८२, ६८६, ६८७, ७०१, ७१०, ७१७, ७२०, ७६३, ७७७, ७७९, ७८२, ७८४, ८३०, ८४२, ८५९।

सर्वमंगला—५६५, ५६७, ६२०।
सवर्णा—४४।
सविता—४२०।
सहस्राक्ष—८२५।
सहस्रार्जुन—७७३।
सहदेव—९३, ९४।
सहिष्णु—४३।
सांदीपनि—५६२, ५६४।
सांब—८०७।
सावर्णि—५१, २६७, ५४१, ५६८, ६२४।

सावित्री—४, २०, २९, ३७, १४९, १६७, १६८, १७१, १७९, १८१, १९५, २२५, २२७, २८८, २९२, ३३७, ३३८, ३४४, २४५, ३४६, ३४८, ३४९, ३५१, ३५२, ३५३, ३५६, ३५८, ३६६, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३८६, ३८९, ३९८, ४१२, ४१७, ४१९, ४२०, ४२१, ५४३, ५४९, ५५६, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ६२४, ६७१, ६८६, ६८७, ६९८, ७१०, ७१७, ७२०, ७७७, ८३०, ८४२, ८५९।

सिंधु—१४८, २९५, ६१८।
सिंहिका—४५।
सिद्धयोगिनी—४८६, ४८७।
सीता—१४८, १७९, २७४, २७६, २७७।
सुकर्म—१७७।
सुख—१७९।

सुचन्द्र—३०८, ८११, ८१२, ८१४, ८१५, ८१६, ८३७।

सुतल—३६।
सुतपा—६४, ६५, ६६, ५३४, ५४५, ५४७।
सुदर्शन—३२२, ३३०।

सुदामा—२८०, २९०, २९८, ३२३, ४६८, ५०९, ५०९, ५११, ५१२, ७८२।
सुनंद—१०५, ५३७।
सुबल—४२३।
सुभगा—१४८।
सुभद्र—३०३।
सुभद्रा—१७९।
सुभानु—७८२।
सुमति—६५३।
सुमाली—७२२, ७२३, ७२४
सुमेरु—३५, ७६३।

सुयज्ञ—१८१, ५१५, ५१६, ५१७, ५२४, ५२५, ५२७, ५३४, ५४४, ५४६, ५४८।

सुरभि—४४, १७९, ४५४, ६४१।
सुरभी—४६, ४२३, ७४८।
सुरथ—१८०, ५६८, ५६९, ६०५, ६०६, ६०७, ६१३, ६२३, ६२६।
सुरमा—७१८।
सुवेल—३५।
सुव्रत—४७९।
सुशील—१७८।
सुशीला—४६६, ४६८, ४७३, ७१८, ८५९।
सूत—६५२, ७४४।

सूर्य—५, ८, १७, ३१, ४४, ४५, ५२, ५५, ६५, ६६, ७७, ८१, ८४, ९३, १०८, १२३, १२६, १४०, १४४, १४७, १५७, १५८, १५९, १६०, १७६, १७९, १८२, १८९, १९८, २००, २०४, २२७, २२९, २३०, २३४, २३७, २३८, २४०, २४४, २५९, २६८, २६९, २७०, २७१, ३०५, ३११, ३१२, ३१७, ३२०, ३४१, ३५०, ३५६, ३५९, ३६३, ३७५, ३८६, ३९३, ४१३, ४१४, ४३३, ४४२, ४५०, ४५९, ४९१, ४९२, ४९८, ५०७, ५१५, ५१८, ५२६, ५२९, ५३५, ५३७, ५४२, ५४९, ५५१, ५७२, ५८१, ५८४, ५९३, ५९४, ५९९, ६००, ६१२, ६१४, ६१५, ६१८, ६२०, ६२३, ६३५, ६४०, ६५१, ६५४, ६८५, ६८९, ६९०, ६९६, ६९८, ७०८, ७०९, ७१८, ७२०, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२८, ७७७, ७८२, ७८६, ७८७, ७८८, ७९०, ७९३, ८०६, ८१६, ८३८, ८४०, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५७, ८५९, ८६०।

सृंजय—१३७।
सैंहिकेय—४५।
सोमदत्त—८१०।
सौभरि—६५३, ८२५।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

स्कन्द—१८१, २९२, ३१०, ३१५, ३१६, ३१७ ३१८, ४१७, ४७६, ४७७, ४७८, ५४९, ७१६, ८५५।

स्थाणु—११५।
स्मृति—४३, १७८, २८९।
स्रष्टा—६१६।

स्वधा—१४९, १७७, १९६, २८९, ३५२, ४५५, ४५८, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७।

स्वयंक्रतु—३८।
स्वयंभू—५४१।
स्वर्णरेखा—१४८, ६१८, ७६३।
स्वर्लोक—३५।
स्वस्ति—१७७, २८९।
स्वाती—४६।

स्वायंभुव—३८, २०१, ३६८, ४७६, ४७९, ५१६, ५४०, ५४१, ५९३, ६०६, ७८३, ८२१।

स्वारोचिष—५४१।

स्वाहा—१४९, १७६, १९२, १९६, २८९, २९२, २९४, ३५२, ४५५, ४५८, ४६०, ४६१, ४६२, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ७१८, ८५९।

ह

हंस—३९, ६९, ६५३।
हंसध्वज—२७१।
हंसी—१२९, १३६।
हनुमान्—६१२, ६४०।
हयग्रीव—३३०।
हर—७७, ७७५।

हरि—२०, ७०, ७१, ७७, १००, १२०, १२२, १२४, १४९, १६५, १७०, १७४, १८२, २४४, २६६, २६७, २९०, २९६, २९७, २९९, ३०२, ३०९, ३२५, ३२९, ३३२, ३३३, ३३४, ४२०, ६५२, ७१६।

हरिद्वार—७६३।

हरिभानु—७८२।
हर्ष—४३।
हस्ता—४६।
हिमवान्—६३३, ६४१।
हिमालय—३५, २९२, ६५४, ६६८, ६७१, ६७२, ६७३, ६८७, ७२०, ७६३, ८५७।

हिरण्यकशिपु—४५, ३१४, ६००, ६०१, ६१६, ८०७।
हिरण्याक्ष—४५, ३१४।
हृषीकेश—७८, ३८७।
हेरम्ब—६९८, ७०४, ८५४, ८५५।

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

Bhuvan Vani Trust, Lucknow

CC-0. In Public Domain. Digitized By Sarayu Foundation Trust and eGangotri

Bhuvan Vani Trust, Lucknow